हिंदी - अनुवाद के दो शब्द

भारतवर्ष विभिन्न भाषा-भाषियों का राष्ट्र है। एक भाषा के ग्रन्थ या पुस्तक का दूसरी भाषा में अनुवाद हो जाने पर दूसरी भाषावाले उसके ग्रन्थ या पुस्तक में उल्लिखित विचारों से लाभान्वित हो सकते हैं। जैनधर्म के वर्तमान में मुख्य दो सम्प्रदाय हैं - दिगम्बर और श्वेताम्बर। श्वेताम्बरों में मुख्यतया तीन उपसम्प्रदाय हैं - श्वेताम्बर मूर्ति पूजक, श्वेत-स्थानकवासी और श्वेत-तेरापंथी। श्वेताम्बर स्थानकवासी उपसम्प्रदाय में प्रान्तीय दृष्टि से अथवा आद्य महान् एवं कठोर क्रिया पात्र की दृष्टि से कई शाखाएँ हो गई। पूर्व में भी *श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ऐसी कई शाखाएँ - उपशाखाएँ थी, आज* भी है। स्थानकवासी उपसम्प्रदाय की एक शाखा है - खम्भात (स्तम्भतीर्थ सम्प्रदाय/ खम्भात-सम्प्रदाय में वालब्रह्मचारिणी प्रतिभाशाली विदुषी प्रखर वक्त्री हुई हैं - शारदाबाई महासतीजी। उनके व्याख्यान शास्त्रीय आधार को लेकर बहुत ही हृदयस्पर्शी, प्रेरणादायक, जीवन को बदल देनेवाले होते थे। गुजरात में उनके व्याख्यानों की धूम मची हुई थी। गुजरात के अलावा भी मुंबई, मद्रास, बेंगलोर, महाराष्ट्र आदि में भी उनके व्याख्यान लोकप्रिय हुए हैं। गुजराती-भाषी लोगों ने उनके व्याख्यानों की कई बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यथा-'शारदा शिरोमणि', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा ज्योत', 'शारदा सुकानी' इत्यादि। हिन्दीभाषी लोगों के पवित्र अनुरोध 'शारदा सिद्धि', 'शारदा शिरोमणि', 'शारदा ज्योत', 'शारदा सुकानी' आदि हिंदी भाषा में भी प्रकाशित हो चुकी है। गत वर्ष बा. ब्र. विदुषी रंजनाबाई महासतीजी का चातुर्मास बेंगलोर था। बेंगलोर के कतिपय हिंदीभाषी लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि 'शारदा शिखर' का भी हिंदी भाषा में अनुवाद हो जाए तो हम सब हिंदीभाषी लाभ ले के पवित्र हो सकते हैं। बेंगलोर में विराजित पं. रत्न मधुरभाषी श्री विमलमुनिजी एवं प्रखरवक्ता श्री वीरेन्द्रमुनिजी से महासती रंजनाबाई ने हिन्दी अनुवाद के विषय में बातचीत की। श्री विमलमुनिजी ने मेरा नाम सुझाया। फलतः मुझे उन्होंने पत्र द्वारा सूचित किया और संग्रह अनुरोध किया कि आप 'शारदा शिखर' का हिंदी में अनुवाद कर दें। व्याख्यान के विषय के अनुरूप मुख्य शीर्षक भी लगा दें। यद्यपि मेरी उम्र का ८३वाँ वर्ष चल रहा है। शरीर में पहले जैसी शक्ति और स्फूर्ति नहीं रही। फिर भी शारदाबाई महासतीजी के शास्त्रीय आधार पर व्याख्यान से बहुत कुछ नये-नये विचार और भाव जानने को मिलेंगे, ज्ञानवृद्धि भी होगी, शब्द सम्बद्ध होने से शास्त्र-स्वाध्याय के एक अंग-धर्मकथा का भी लाभ मिलेगा और श्रुत-सेवा, एवं महासतीजी के विशिष्ट भावनापूर्ण अनुरोध के कारण मैंने अपनी स्वीकृति दे दी। साथ ही यह भी निवेदन कर दिया कि आप जल्दी न करें। मैं अपनी सुविधा के अनुसार जितना-जितना अनुवाद होता जाएगा, आप को ठाणे सूचित पते से भिजवाता रहूँगा। उन्होंने स्वीकार किया, मैंने अनुवाद-कार्य प्रारम्भ किया। कुछ व्याख्यानों का अनुवाद हुआ ही था कि मुंबई से श्री कृष्णकांत भाई पटेल आए, उन्हें सौंप दिया, उन्होंने महासतीजी को अनुवाद किये हुए व्याख्यान दिखाये। महासतीजी द्वारा बा. ब्र. विदुषी महासती श्री वसुबाई महासतीजी तथा बा.ब्र. विदुषी श्री रंजनाबाई महासतीजी दोनों को मेरे द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद पसंद आया। किन्तु इतने में ही हमारे गुरुभ्रात का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया है। उसके कारण बीच

निवेदन

नम्र निवेदन है कि महान् विद्वान बा. ब्र. गुजरात सिंहनी **श्री शारदाबाई महासतीजी** के १६ पुस्तक गुजराती में प्रकाशित हुए हैं, उनमें ६ का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । उसमें 'शारदा शिरोमणि' 'सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न' 'शारदा ज्योत' यह सब दो भागों में हमने प्रकाशित करवाया हैं । 'दीवादांडी' भी अभी प्रकाशित हो चुकी है । उसमें 'शारदा शिरोमणि', 'सफल सुकानी' आदि पुस्तक आप तक पहुँचा ही होगा और यही **'शारदा शिखर'** भी आप तक पहुँच रही है । अब आपसे निवेदन है की इसकी मूल किमत से २०% में ही हम आप तक यह पुस्तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे आप जान सकते हैं कि किसी दानी के सहयोग से ही यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सकता है, तो हमारा आपसे अनुरोध है कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद आपकी श्रद्धा हो तो आप भी इसमें सहयोगी बने और दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरणा दें, जिससे हम ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करवा कर आप तक पहुँचाने की कोशिश कर सके । आपसे इसलिए निवेदन कर रहे हैं कि यह बहुत ही बड़ा अर्थ का मामला है, हम व्यक्तिगत संपर्क कर नहीं सकते, मगर इस पुस्तक द्वारा निवेदन कर रहे हैं । यदि आपकी आत्मा संपूर्ण जगे तो ज़रूर इस महान कार्य में यथा-योग्य सहयोग प्रदान करावें, तो हमारा अगला कार्य सरल बनेगा । हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है, आपके आत्मा में छूपी दान-भावना तीव्र बने । इस आशा और विश्वास के साथ ।

पू. नेमिचंद्रजी म.सा. के बहुत एहसानमंद है । आपने इतनी बड़ी उम्र में भी बहुत मेहनत करके शासन-सेवा का और ज्ञानप्रचार-प्रसार का काम ठीक समय पर कर दिया । गुजराती का हिन्दी में अनुवाद करके इतना बड़ा काम बहुत अच्छी तरह से कर दिया, इसके लिए हमारी समिति आप का बहुत शुक्रिया अदा करते है । आपके हम बहुत शुक्रगुजार है ।

आपके

शारदा प्रवचन संग्रह समिति - सुरत

'शारदा-शिखर' - शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी आवृत्ति, प्रत : ३०००

प्राप्तिस्थान

शा. गांगीलाल उदेराम नंगावत

संकल्प : सेल्स डिपार्ट. : ४१२/२, यार्डलिया कम्पाउन्ड, वस्ता देवडी रोड़, सुरत-३९५ ००४

घर : १२, महावीर सोसायटी, सुमुल-डेरी रोड़, सुरत - ३९५००४

(ओ) २५३२६८७/२५३२६८८(फेक्स) (९१ ०२६१) २५३२६८५(घर) २४८६११०/२४८६३८१

शा. रोशनलाल चंपालाल कोठारी

विजय लक्ष्मी फैबरीक्स

३०१६, गोलवाला मार्केट, दूसरा मजला, सुरत - ३९५००१

दूरभाष (घर) २६८४३४७ (ओ) २३२०५७१

शा. धरमचंदजी देरासरीया

ठे. होस्पिटल रोड़, मारु दरवाजा बाहर, देवगढ़, मदारीया, जीला राजसमंद (राज.)

दूरभाष : S.T.D. (०२९०४) २५२०२७ (घर) (०२९०४) २५२०६१

१०, गोगरा वाडी

रोशनलाल पब्लिक स्कूल के पास, उदयपुर, दूरभाष : S.T.D. (०२९४) २४८५९५१

लागत मूल्य : रु. ३००/- ज्ञानप्रचार अर्थे दोनों भागों का मूल्य : रु. ४०/-

संपर्कस्थान

नरेन्द्रभाई साकरलाल राड़ीवाला

डुंमाल ट्रान्सपोर्टनगर गोडाउन नं. ५

पूणाजकातनाका के सामने, सुरत - बारडोली रोड़, सुरत

दूरभाष (घर) २६५४५२७ (ओ) २८५१७८२

शा. नानालाल गांगीलाल कोठारी

३, श्रीनाथ सोसायटी, पोदार एवन्यू के पास,

युनियन की गली, घोड़ दोड़ रोड़, सुरत दूरभाष (घर) २६६१९३१ (ओ) २६५११३१

शा. बाबुलाल रोशनलाल सिंघवी

विमल ज्योति फैबरीक्स

६, दर्शन मार्केट, रींग रोड़, सुरत - ३९५००२

दूरभाष (घर) २६८५५३० (ओ) २३२०७६८

मुद्रक : सस्तुं पुस्तक भंडार नडियाद - पिन : ३८७००१ फोन : (घर) २५५४२४३ (ओ) २५६६२५८

अनुवादक : प. पू. श्री नेमिचंद्रजी महाराज साहेब

स्वप्न साकार

'शारदा-शिखर' शारदा प्रवचन हिन्दी आवृत्ति

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि व्याख्यान वाचस्पति गुजरात सिंहनी बा. ब्र. पू. श्रीगुरुणी मैया श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्यारत्ना प्रखर व्याख्याता बा. ब्र. पू. श्री वसुबाई महासतीजी आदि ठा. २४ का मुंबई आगमन हुआ । उस समय हिन्दीभाषी धर्म-प्रेमीयों से बातचीत होने पर उनकी इच्छा सन्मुख आई कि (पू. शारदाबाई महासतीजी के ग्रन्थो की हिन्दीभाषी क्षेत्रों में बड़ी माँग है, परन्तु अब तक मात्र 'शारदा शिरोमणि' और 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', 'दीवादांडी' हिन्दी में प्रकाशित हुई है । अतः यदि उनकी नई पुस्तक **'शारदा-शिखर'** हिन्दी में अनुवादित करवा कर प्रकाशित करने के योजना बनाई जाये तो असंख्य हिन्दीभाषी को उनकी अमूल्य वाणी का लाभ मिल सकता है । ज्ञानप्रचार कि इस योजना को पू. महासतीजी के समक्ष रखते ही यह काम श्री मांगीलालजी नंगावत और नरेन्द्रभाई साड़ीवाला ने यह कार्य करने कि तैयारी बताई क्योंकि इससे पहले मांगीलालभाई और नानाभाई ने 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह का प्रकाशक बन कर अनुभव लिया हुआ था । उनके साथ रोशनलालजी कोठारी, नरेन्द्रभाई साड़ीवाला व बाबुलालजी सिंघवी ने भी अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया । इन पाँचो भाईओं ने एक समिति का गठन किया और 'शारदा प्रवचन संग्रह समिति' नाम रखा और काम बराबर तेजी से होने लगा ।

हम आपको यह विदित करना चाहते है कि हमारा 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' का जो अनुभव था उस आधार पर उस वक्त कि जो भूले हुई उसको ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के प्रकाशन में ऐसी कोई भूल न हो ऐसी कोशिश कि फिर भी मानव मात्र भूल के पात्र है । भूल होना स्वाभाविक है उसके लिए क्षमा चाहते है ।

हमे आनंद तो इस बात का है कि अगला पुस्तक 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', दीवादांडी, 'शारदा शिखर' जन जन तक पहुँचाया, साधु-साध्वीओं व छोटे गाँवों के उपाश्रय, साधनाभवन, स्वाध्यायी भाईओं को बिना शुल्क वितरण किया । आज काश्मीर से कन्याकुमारी तक की माँग है । हररोज़ पत्र आया करते है मगर हम उन सबकी माँग पूरी नहीं कर पा रहे है क्योंकि 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' ६००० (छ हजार) प्रत छपवाई थी, जो पूरी हो गई इसके बाद शारदा रत्न, शारदा ज्योत, दीवादांडी, शारदा शिखर ३००० प्रत भी छपवाई जो बहुत बीक रही है, उसका कारण

Grams : "Jain Bhavan" Ph. 2532 2077, 2641 3825

SHRI GUJARATI SWETAMBER STHANAKWASI JAIN ASSOCIATION

श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओशन

શ્રી ગુજરાતી શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન એસોશીએશન

परस्परोपग्रहो जीवानाम् "C. U. Shah Bhavan", New 4, (Old 78/79), Ritherdon Road, Purasawalkam, Chennai - 600 007.

॥ श्री रत्न शारदा गुरवे नमः ॥

खंबात संप्रदाय के साध्वीरत्ना बा. ब्र. गुरुणीमैया
श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्या
पू. रंजनबाई महासतीजी आदि ठा-५ के
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओशन
चेन्नई के चातुर्मास दरमियान
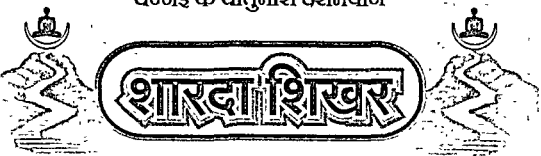
महाग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद प्रकाशन अनुदाता
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओसन चेन्नई

श्री रसीकलाल सी. बदाणी, अध्यक्ष
श्री गु. श्वे. स्था. जैन ओसोशीओशन, चेन्नई-७.

पुस्तक की कीमत हमने खरीद कीमत से सिर्फ २५ प्रतिशत ही रखी थी।
काम आप उदार दान-दाताओं की सहायता से ही बना है, हमारा उसमें
योगदान नहीं है। उसी अनुभव के आधार पर हमने यह तिसरा काम हाथ
लिया है। इस पुस्तक कि कीमत भी हमने २०% - बीस प्रतिशत ही र
इसमें दाताओं का अच्छा सहयोग मिला और दाताओं की लाईन लग गई।
उन सभी दाताओं के खूब खूब ऋणी हैं। जिन्हों ने खुद तो दान दिया
दूसरों से भी दिलवाया। इसी पुस्तक में हमारे सहयोगी दाताओं कि अलग
नामावली है, उन्होंने किसी प्रकार कि अपेक्षा के बिना दान भी दिया
दूसरों से दान भी लाये। हम उन महानुभावों का किन शब्दों में आभार प्रद
करें! उनकी प्रशंसा के लिए कोई शब्द नहीं है। इस काम मे हमें निःशुल्क
निःस्वार्थ भाव से 'सस्तु पुस्तक भंडार' ने भी अपना खुद का काम समझ
ही समय समय हाजर रहकर इस पुस्तक प्रकाशन में बहुत ही अच्छा सहय
दिया। विशेष हम आप से यह बात भी कह देना चाहते है कि महासती
ने शुद्ध शास्त्र वाणी में व्याख्यान गुजराती में दिया है, उसका अनुवाद ह
करवाया है। यदि अनुवादक कि शब्दरचना में परिवर्तन होता हो तो
भाव भूल अनुवादक व प्रेस कि है, उसमें महासतीजी के उच्चारणों में क
भूल नहीं है।

अंत में हमारी समिति के अथाग प्रयत्नों से इस हिन्दी पुस्तक 'शारदा-शिख
को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया, उसमें दान दाताओं का बहुत ही बड़ा सि
भाग है। हम उनके तो आभारी है ही, मगर समिति के सभ्यों ने भी एक-र
से काम किया, तभी यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सका और साथ साथ हम उ
दान-दाताओं को भी कैसे भूल सकते, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशक त
विमोचक बनने का भार उठाया। अब पुस्तक आप तक पहुँचने कि तैयारी
है, तो आप से हमारा अनुरोध है। आप इस पुस्तक से खूब ज्ञान-ध्यान प्रा
करें और आपकी आत्मा का कल्याण करें और दानवीर बने, शीलवान बने

हमने इस पुस्तक के चन्दे मे आप सब दाताओं से संपर्क किया। उस
आपके साथ हमारी समिति का व्यवहार बराबर न हुआ हो व आपके हृदय व
ठेस पहुँचाई हो तो हम सब आपसे क्षमा-याचना करते हैं, क्षमा करें।

शाह मांगीलाल उदेराम नंगावल *(प्रमुख)*
शाह रोशनलाल चम्पालाल कोठारी *(उपाध्यक्ष)*
शाह नानालाल कोठारी *(मंत्री)*
शाह बाबुलाल सिंघवी *(सहमंत्री)*
शाह नरेन्द्रभाई साड़ीवाला *(कोषाध्यक्ष)*

Grams : "Jain Bhavan" ☎ 2532 2077, 2641 3825
SHRI GUJARATI SWETAMBER STHANAKWASI JAIN ASSOCIATION
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन एसोशीएशन
શ્રી ગુજરાતી શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન એસોશીએશન
"C.U Shah Bhavan", New # 4, (Old # 78/79), Ritherdon Road, Purasawalkam, Chennai-600 007.

श्री संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्री सुरेन्द्रभाई एम. महेता	वर्ष १९७६ से १९९०
श्री हरिलाल वी. संघवी	वर्ष १९९० से १९९२

श्री संघ की कार्यकारिणी एवम् पदाधिकारीगण

१. श्री रसीकलाल सी. वदाणी	अध्यक्ष-१९९२ से
२. श्री प्रभुदासभाई एन. कामदार	उपाध्यक्ष
३. श्री हर्षदराय एम. शाह	उपाध्यक्ष
४. श्री प्रफुलभाई आर. शाह	मंत्री
५. श्री प्रवीणचंद्र एस. तुरखीया	सह-मंत्री
६. श्री चीलेशभाई पी. शाह	कोषाध्यक्ष
७. श्री सी. यु. शाह	पेट्रन-सदस्य
८. श्री सुरेन्द्राभाई एम. महेता	पेट्रन-सदस्य
९. श्री रसीकलाल सी. पारेख	पेट्रन-सदस्य
१०. श्री बलवंतराय एच. मावाणी	पेट्रन-सदस्य

११. श्री मनहरलाल सी. दोशी	सदस्य	१७. श्री बकुलेश जे. वीराणी	सदस्य
१२. श्री हरेशभाई एन. शाह	सदस्य	१८. श्री नगीनदास सी. वावीशी	सदस्य
१३. श्री चंद्रकांत एच. संघवी	सदस्य	१९. श्री महेन्द्र के. पारेख	सदस्य
१४. श्री केतन सी. बगड़ीया	सदस्य	२०. श्री बीपीनभाई ए. शाह	सदस्य
१५. श्री रमेशभाई एन. दामाणी	सदस्य	२१. श्री चंद्रकांत सी. उदाणी	सदस्य
१६. श्री निलेश बी. शाह	सदस्य	२२. श्री मनोज आर. पतीरा	सदस्य

(२०६१) दि. २६-११-२००४

सुश्रावक, श्राविकाश्री,

जय जिनेन्द्र !

चेन्नई शहर में गुजराती स्थानकवासीओं की बढ़ती हुई संख्या को ध्यान में रखते हुए सन १९७६ में श्री गुजराती श्वेतांबर स्थानकवासी जैन एसोसिएशन, चेन्नई की स्थापना की गई। श्री संघ की सदस्य संख्या आज ७७७ परिवारों की है। ३६००० स्क. फी. के बने यह संकुल में स्थानक, लग्नवाटिका, अतिथिगृह तथा क्लीनीक एवम् डायेग्नोस्टीक केन्द्र कार्यान्वित है। पुण्यशाली दानवीरों एवम् कर्मठ कार्यकरों के सन्निष्ठ परिश्रम के फल-स्वरूप श्री गुजराती श्वेतांबर स्थाकवासी जैन एसोसिएशन (श्री सी. यु. शाह भवन) ने गरिमामय नाम अर्जित किया है।

श्री शारदा रत्न विविधलक्षी चेरीटेबल ट्रस्ट

श्री शारदा प्रवचन संग्रह समिति सं. २०४८ में स्थापना हुई तब से बहुत पुरुषार्थ करके पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई म. के गुजराती किताबों का एक के बाद एक हिन्दी में प्रकाशित करके जिन शासन का गौरव बढ़या है । 'शारदा शिरोमणी' कांदावाडी संघने प्रकाशित किया, बाद में 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', 'दीवादांडी' और 'शारदा-शिखर' यह सात किताबें हिन्दी में प्रकाशित होकर समाज को मिली है । जो किताबों की माँग दिन ब दिन बढ़ती ही रहती है और ये किताबे कश्मीर से कन्याकुमारी तक पहुँची है । ये ज्ञान प्रचार और प्रसार का भगीरथ कार्य बहुत ही बढिया है । उसके लिए हमारा ट्रस्ट हर्ष महसूस करता है । मांगीलालजी, नरेन्द्रभाई रोशनलालजी, नानालालजी बाबुलालजी आदि समिति में काम करके जो योगदान दे रहे है उसके लिए आप सब का बहुत शुक्रिया मानते है । ऐसे सुकार्य करने के लिए शासनदेवं गुरुवर्यो आपको शक्ति प्रदान करे वहीं अंतर की भावना ।

ट्रस्टी

विनयचंद्र एम. देसाई

कृष्णकांत एम. पटेल

जयंतिलाल के. पटेल

अशोकभाई वी. पटेल

२८ साल के श्री संघ के अस्तित्व में प्राय: हरसाल विविध संप्रदायों के संत - सतीओं के वर्षावास चातुर्मास का लाभ श्री संघ ने पाया है। संत सतीओं की निश्रा में यहां साल भर धर्मकरणी एवम् धर्माराधना होती रहती है। श्री संघ में ललित महिला मंडल, मंगल मंडल, प्रार्थना मंडल एवम् युवा फोरम कार्यरत है।

हमारा श्री संघ खंभात संप्रदाय का ऋणी है। हमें सर्व प्रथम एकावतारी महान वैरागी गुरुदेव आचार्य श्री कांतिऋषिजी म.सा. का चातुर्मास उपलब्ध हुआ। तत्पश्चात् प. पू. कमलेशमुनि म.सा. आदि संतो के दो चातुर्मास प्राप्त हुए और अब वर्तमान आचार्य प. पू. अरविंदमुनि म.सा. एवम् विदुषि म.स. वसुबाई म.स. की आज्ञानुवर्ती सरलमना मधुर व्याख्याता प. पू. रंजनबाई म.स. आदि ठा-५ के मुखारविंद से भगवान महावीर प्ररूपित सत्त्व एवम् तत्त्व सभर प्रशस्त धर्मबोध का रसपान करने के लिए हम भाग्यवान बने। इस एतिहासिक चातुर्मास में अनेक- विध धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन रहा। श्रावक-श्राविकाओं ने भाव- विभोर होकर चातुर्मास मनाया।

खंभात संप्रदाय की गुरुणीमैया व्याख्यान वाचस्पति बा.ब्र. विदुषि प.पू. शारदाबाई म.स. ने अपनी संयम साधना करते हुए देश-विदेश में बसे हुए जैन-जैनतर समाज को आगमवाणी का अदभुत रसपान करवाया। प्रवचन पारसमणि प.पू. महासतीर्जी के विद्वत्तापूर्ण इन व्याख्यानों को १४ पुस्तकों में गुजराती में ग्रन्थस्थ किया गया जिन की १,५०,००० से भी अधिक प्रतों का वितरण हुआ। हिन्दीभाषी समाज में भी इन धर्मप्रेरक प्रभावशाली ग्रथों की सराहना हुई और इन ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की जबरजस्त मांग उठी। फलस्वरूप श्री शारदा हिन्दी साहित्य प्रकाशन समिति के सघन प्रयत्नों से म.स. के गुजराती में प्रकाशित व्याख्यान ग्रंथों का हिन्दी संस्करण समय-समय पर प्रकाशित हो रहा है। प.पू. महासतीजी के ५वें ग्रंथ 'शारदा ज्योत' के हिन्दी संस्करण का विमोचन श्री शारदा हिन्दी साहित्य प्रकाशन के ट्रस्टीगण एवम् अन्य श्रेष्ठिवर्यो की उपस्थिति में हमारे यहाँ हुआ। यह छठा ग्रथ प्रकाशित होने जा रहा है।

श्रमण संघ के आगम ज्ञाता विद्वान प.पू. नेमीचंदजी महाराज साहब ने अत्यंत चौकसी के साथ प.पू. शारदाबाई म.स. के व्याख्यान संग्रह 'शारदा शिखर' का हिन्दी मे भाषान्तर किया है। प.पू. म.सा. के इस भव्य पुरुषार्थ की हम सराहना एवम् भूरी भूरी प्रशंसा करते है। इस ग्रंथ के प्रकाशन में अनुदान प्रदान कराने का हमारे श्री संघ को जो लाभ मिला उसके लिए हम गर्व और धन्यता का अनुभव करतें है। यह ग्रंथ भी अन्य प्रकाशित ग्रंथों की तरह ही लोकचाहना प्राप्त करेगा ऐसा हमें संपूर्ण विश्वास है।

प.पू. आचार्य भगवंत अरविंदमुनि म.सा. एवम् बा.ब्र. विदुषी वसुबाई म.स.जी आदि सर्वे संत-सतीओं के श्री चरणों में श्री गु. श्वे. स्था. जैन संघ चेन्नई के कोटि कोटि वंदन।

श्री गु. श्वे. स्था. जैन एसोशिएशन

रसीकलाल सी वदाणी	- अध्यक्ष	प्रफुलभाई आर. शाह	- मंत्री
प्रभुदासभाई एन. कामदार	- उपाध्यक्ष	प्रवीणभाई एस. तुरखीया	- सह-मंत्री
हर्षदराय एम. शाह	- उपाध्यक्ष	चौलेश पी. शाह	- कोषाध्यक्ष

तथा समग्र कार्यकारिणी के सदस्य...

अद्भुत शासन दीपावक, प्रवचन प्रभावक, मोक्षमार्ग के अखंड उपदेशक, शासन का छत्र, स्नेह का शिवालय, जैनशासन का पीठ राहवर, स्थंभनपुरी का स्थंभ, शासन-गगन का चमकता चाँद, वीर के वारसदार, जीवन-नैया के नाविक, आह्लादकारी स्मृतिओं के सर्जक, कुशल कारीगर, जैनों की जवाहीर, धर्मशासन की शान, धर्म के पथदर्शक, सर्वहित-चिंतक, सौम्यता के शिखर, खंभात की ख्याति बढ़ानेवाले, प्रेरणा की प्याऊ, धर्ममार्ग के देशक और दर्शक, गुणरत्न रत्नाकर, कलिकाल में साक्षात् सरस्वती का अवतार, शासन का स्तंभ समान और संघ के सूत्रधार, श्रुतज्ञान की गंगोत्री के वाहक, गुजरात-सौराष्ट्र के वल्लभवाणी के जादुगर, शासन का शणगार, नितनया का अणगार, प्रवचन के पारसमणि, शासन शिरोमणि, ज्ञान के गुणमणि, दर्शन के दिनमणि, चारित्र चूडामणि, प्रतिभाशाली, अनुभव के लब्धि, तपत्याग की तरवरती संयम मूर्ति, हजारो के हितस्वी, करोडें के कल्याणकामी, वात्सल्य वारिधि, करुणा और अहिंसा के अवतारी, सात्त्विकता और सरलता की मूर्ति, इस युग के एक भाग्यवान विभूति, लोकप्रिय सतीजी, जिनशासन की ज्वलंत ज्योति, वात्सल्य की वीरडी, जीवनबाग का बागवान, जीवनकला के कुशल शिल्पी, महावीर के सच्चे अनुयायी, गुजरात-सौराष्ट्र के मरकत-मणि, प्रशांत मूर्ति, यशस्वी और यशनामी, निराभिमानता की निधि, सम्यकत्व, रत्नझवेरी, अद्वितीय पुण्य प्रभावी, सहनशीलता के स्वामी, स्वाध्याय की सेज पर मुनिजीवन की मौज उडाते, लाखों के लाडले, तेजस्वी तारिका, गुणों की गंगा, विश्रांति का पेड़, परोपकार की प्रतिमा, भव्यजीवों के तारणहार, कल्याण के रस्ते को बनानेवाले, शासन के हीरा, कुथीर को कंचन करनेवाले, वीरल व्यक्तित्व को पानेवाला, वीरल वीरांगना, कांतिवंत कोहीनूर हीरा, बेरिस्टर जैसे बुद्धिमान धर्मदाता, मोक्षमार्ग के फरिस्ता, पावनकारी प्रतिमा, वचनसिद्धि को पानेवाला, दया के दीपक, निखालसता का अजोड़ नमूना, भारत के भानु, ज्ञानगंगा का पवित्र झरना, कलियुग का कल्पवृक्ष, अनंतानंत उपकारी, ममतालु मैया, गौरवशाली गुरुणीदेव - ये विराट गुण-वैभव के स्वामी, विरल विशेष गुणों के सुभग संगम, ख्यातनाम सतीजी यानी महाश्रमणी बा.ब्र. विदुषी

पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी

श्रुत अनुरागी

१.	सुरेशचंद्रजी बरमैया परिवार	- अजमेर
२.	सज्जनराज प्रवीणकुमार	- अंडालिया
३.	रतनकंवर भंवरलाल	
४.	दुलीचंद बगमार एन्ड सन्स	
५.	सोहनलालजी राजमलजी भाउ	
६.	श्रीमान सद्गृहस्थ	- कोईम्बतूर
७.	श्री श्वेतांबर स्थानकवासी जैन संघ	- मेलोपर
८.	श्री जैन संघ	- कोईम्बतूर
९.	शांतिलाल अवन्थकुमार	
१०.	रतनलाल रणजितकुमार	
११.	श्री नेमीचंदजी हंसराजजी कावडीया	- जलगाँव
१२.	अ.सौ.धनप्रेमा नेमीचंदजी कावडीया	- जलगाँव
१३.	कुसुमबहन शांतिभाई महेता	- पोंडिचेरी
१४.	मीनाबहनजी चोरडीया	- पोंडिचेरी
१५.	मूलचंदजी मीट्ठालालजी रमेशकुमारजी	- बाफना
१६.	रोशनचंद चंद एन्ड सन्स	
१७.	सद्गृहस्थ	
१८.	गौतम स्टेशनरी हाउस	
१९.	मानेककंवर पींछा	
२०.	सुखलालजी संपथ	- मुंद्रा
२१.	कुवरचंदजी	
२२.	थुसला महिला मंडल	
२३.	श्री प्रवीणचंद्रजी एम. दोशी	- कोईम्बतूर
२४.	मणीलाल भाईचंद महेता परिवार	
२५.	सज्जनकंवर पन्नालाल चोपडा	- सुरत

श्रुत अनुमोदक

१.	प्रफुलाबहन महेन्द्रभाई शेठ	
२.	जोली (बहन)	
३.	जवेरबाई जथुबाई गोविंदजी	
४.	निलेश ट्रेडिंग	- कोईम्बतूर
५.	शारदाबहन	- पोंडिचेरी
६.	बसंतभाई महेता	- पोंडिचेरी
७.	जीज्ञाबहन हितेश बगडीआ	
८.	श्री जैन संघ	- कुडलोर

उत्कृष्ट वैरागी बालकुमारी शारदाबेन (उम्र वर्ष : १६)

जन्म :
सं. १९८१
मार्गशीर्ष वदी नवमी
ता. १-१-१९२४
मंगलवार
साणंद

दीक्षा :
सं. १९९६
वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता.१३-५-१९४०
सोमवार
साणंद

जिन्होंने मात्र सोलह वर्ष की नाजुक वय में संयम लेकर रत्नयत्र की रोशनी झलका दी, वीरवाणी का शेष देशोदेश में गुँजित कर दी, शासन की शान बढायी हैं । ऐसे पुस्तक प्रवचन कर्ता, प्रवचन प्रभाविका, शासनदीपिका महान विदुषी बा.ब्र. पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी के चरण कमल में हम सबका कोटि-कोटि वंदन

श्रुत प्रेमी

१. मोहनडोसामलजी गौतमचंदजी दुक्कड
२. मामथलजी उदकुमारजी नागर
३. पवलजी पृथ्वीराजजी
४. मोहनजी पारसमलजी चौधरी
५. लूमकतचंदजी रमेशकुमारजी रोका
६. श्रीमान शांतिलालजी रोका
७. श्री मंधरांजी जोधराजी सुराना
८. पारसमलजी सुरेशकुमारजी कावड
९. मनुभाई महेता
१०. भोपालचंदजी पींछा
११. श्रीकांतभाई महेता
१२. श्रीमान हंसराजजी जूरोट
१३. श्रीमती रतनबाई जूकारजी महेता
१४. कांतिलालजी महावीरचंदजी
१५. सोहनलालजी साविक
१६. प्रदीप उर्मीलाबहन
१७. श्री जुगराज बालाजी महेता
१८. धर्मीचंद शांतिलाल छाजेड
१९. पुष्पाबाई महावीरचंदजी मुथा
२०. सुधाबहन अनीलभाई महेता
२१. जोली
२२. मंगल मंडल
२३. सद्गृहस्थ
२४. वीपीनकुमार मणीलाल कोठारी
२५. दोरेनचंदजी धावेती - पोंडिचेरी
२६. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ - वीलुपुरम
२७. मंगलचंदजी डुंगरचंदजी - वीलुपुरम
२८. अगरमलजी विजयचंदजी गुलेचा
२९. श्रीमती चंद्रबाई ललीतकुमारजी
३०. श्रीमती दिनेशकुमारजी
३१. विमलचंदजी नवथामजी बोमा
३२. श्रीमत्ती वसंतबाई गुलेचा
३३. गौतमचंदजी योगेशकुमारजी लाकवाला
३४. प्रकाशचंद्रजी मुकेशचंद्रजी अस्थोमल - जोहरा
३५. चंदनबाला महिला मंडल
३६. श्रीमती उर्मीला मोहनलालजी खीवलाल
३७. रूपचंदजी सज्जनराजजी ओसवाल
३८. महावीरचंदजी पारसमलजी कीथरी
३९. ब्दमचंदजी राजेन्द्रकुमारजी
४०. श्रीमान पारसमलजी महावीरचंदजी
४१. श्रीमती हनुमंतकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी
४२. श्रीमान बाबु गनपतराजजी अभयकुमारजी सुराना
४३. महिला मंडल
४४. गांतिलालजी खुशनलालजी छोकरा
४५. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन संघ
४६. श्री त्रिशला महिला मंडल
४७. श्रीमान गौतमचंदजी पीपडा
४८. शाह विजयराजजी नेमीचंदजी कटाडिया
४९. श्रीमान अनीलकुमारजी चोरडीया
५०. देलीपभाई एन्ड श्रीमती विमलबाई
५१. मूलचंदजी जी. गुलेचा
५२. श्री गुजराती शुभेच्छक मंडल - तिरुप्पुर
५३. वेनयकांत रामजी पंचमीया
५४. हेरालालजी रसवजी
५५. ह़ंसराजी वरसी नागदा
५६. पामायिक महिला मंडल
५७. ह़समुख रामजी पंचमीया
५८. हैलसींग डोलीया
५९. कै. पीयूष ओस्तवाल
६०. पज्जनराजजी प्रवीणकुमार मनोज
६१. ब्रंपाबाई पारसमल कोठारी
६२. अशोककुमार देवराज बागमार
६२. ह्च. एल. शांतिलाल जैन
६३. पुधीरकुमार आदर्शकुमार

६४. श्री प्रमन्नचंदजी - वीलुपुरम
६५. श्री सुनील जैन - दिल्ली
६६. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन संघ - वीलुपुरम्
६७. मंगलचंदजी डुंगरचंदजी - वीलुपुरम्
६८. अगरमलजी विजयचंदजी गुलेचा
६९. दिनेशकुमार ताराचंद चोरडीया
७०. लातोषकुमारजी लोकेशकुमारजी नागर
७१ श्री हरिकांत पुरुषोत्तमदास वोरा
७२. श्री मयूर वाडीलाल शाह
७३. मंछावहन बाबुलाल
७४. ललीतजी सुराना
७५. सरोजहीनजी कोठारी
७६. कांतिलाल धोक
७७. ललीतावहन कांतिलाल गांधी - हैद्राबाद
७८. सेरीमलजी गनपतजी
७९. ललीताबाई
८०. अमरचंदजी
८१. प्रेमल हेमलताबाई
८२. लीलाबाई
८३. आशाबाई पुष्पाबाई
८४. सरलाबाई बोहरा
८५. पारसमलजी पदमचंदजी
८६. मीनाबाई पारसमलजी
८७. सुरेशकुमारजी मुथा
८८. वसंतबाई
८९. उच्छ्वास वेनही - पोंडिचेरी
९०. कोकिलाबहन - पोंडिचेरी
९१. इन्दीराबहन सुजीत रोजी
९२. उज्जराल वेनजी - पोंडिचेरी
९३. किरनबहन - पोंडिचेरी
९४. पारसमलजी शांतिलाल
९५. पुखराजजी चंद्रप्रकाश
९६. श्रीमती भावरीबाई W/o भीखाम -
९७. श्री दिलसुखमलजी अशोककुमार
९८. तेजबाई W/o स्व. मूलचंदजी
९९. चेहत परिवार - कुडलोर
१००. महावीरमल चोरडीया
१०१. व्रिधिबाई बोहरा
१०२. मोहनभाई छलानी जे.
१०३. सखुभाई बोहरा एस.
१०४. अर्जीतराजी सींगावी एन्ड सन्स
१०५. एच. शंकरलालजी बारमेता
१०६. स्व. किशोर हस्ते मंगुबहन पटेल
१०७. वर्धमान स्था. जैन संघ - चितोडगा राजस्थान.
१०८. नलीनीबहन वखारवाला - सुरत
१०९. चेतन्य धर्मेश शाह
११०. श्रीमती कमलाबाई शांतिलालजी - कतेला
१११. श्रीमान शक्कवलजी प्रकाशचंदजी
११२. श्रीमान जब्बारचंदजी काकडीया
११३. श्रीमती सुशीलाबाई
११४. सज्जनराज शर्मानी
११५. पी. एस. शाह - सावरनाथ
११६. आर. सी. परीख
११७. अनील अनीथा बोकडीया
११८. कमलादेवी बोकडीया
११९. श्री धर्मजाजी वेद - कुडलोर
१२०. श्री पुखराजी महेन्द्रजी
१२१. सुशीलाबाई बोहरा पी.
१२२. प्रेमाबाई चोरडीया सी.
१२३. कैवमलजी जयुरमरजी - लुंकड
१२४. निहलचंदजी टी. कग्गा
१२५. रंगलालजी महानचंदजी फोचा
१२६. शांतिलालजी आनंदकुमारजी
१२७. नवरतनमलजी विजयराजजी - कसलवा

[illegible] बाल ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म	: विक्रम सं. १९८१ मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी मंगलवार, वीर सं. २४५१, ई. सन् १९२४, दिनांक : १-१-१९२४ मध्यरात्री में अढ़ाई बजे ।
जन्म स्थान	: साणंद ।
माता-पिता	: धर्मस्नेही श्रीमती शकरीवहन और धर्मप्रेमी श्रीमान वाडीभाई ।
भाई-भाभी, वहन	: [illegible]र्वश्री नटवरभाई प्राणलाल भाई अ.सौ. नारंगीवहन, अ.सौ. इन्दिरावहन, [illegible] सौ. गंगावहन, अ.सौ. विमलावहन, अ.सौ. शान्तावहन, अ.सौ. ह[illegible]पतिवहन।
वंश और गोत्र	: शा[illegible] ।
शिक्षा	: गुज[illegible]नी ६ श्रेणी साणंद में ।
दीक्षा	: विक्र[illegible] सं. १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, सोमवार तदनुसार दिनांक : १३-५-१९४० प्रातः ८-३० बजे ।
दीक्षा स्थल	: [illegible] अहमदावाद से २२ कि.मी., गुजरात ।
दीक्षादाता गुरु	: [illegible]तेर्धर, ज्ञानदिवाकर बा. ब्र. पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब ।
दीक्षादात्री गुरुणी	: वात्सल्यमूर्ति, पारसमणि समान पूज्य गुरुणीदेव श्री पार्वतीबाई महासतीजी ।
संप्रदाय	: खंभात ।
भाषाज्ञान	: गुजराती, हि[illegible]दी, संस्कृत, प्राकृत ।
शास्त्रीय ज्ञान	: जैन आगम [illegible]त्तीस शास्त्र तथा सिद्धांत, थोकड़ा ।
शिष्या समुदाय	: पूज्य सुभद्राबा[illegible] महासतीजी, बा.ब्र.वसुबाई महासतीजी आदि ठाणा ३९।
विशिष्ट चारित्रिक गुण	: सरल, गम्भीर, नि[illegible]र, वक्ता, अद्भुत, जागृति, यशस्वी, समतामूर्ति, विशाल दृष्टि, परमपुण्यप्रभावक, संप्रदायक की खेवैया, संतो की दीक्षादात्री, मात्र दो वर्ष के [illegible]यमपर्याय से प्रारम्भ करके अंतिम दिवस तक प्रवचन प्रभावना की एक[illegible]र अमृतवर्षा की तथा अंतिम समय में स्वमुख से मांगलिक, नवकार मंत्र सुनाकर लगातार गुरुदेव का अजपाजाप किया।
प्रवचन प्रकाशन	: शारदा सुधा, शारदा संजीवनी, शारदा माधुरी, शारदा परिमल, शारदा सौरभ, शारदा सरिता, शारदा ज्योत, शारदा सागर, शारदा शिखर, शारदा दर्शन, शारदा सुवास, शारदा सिद्धि, शारदा रत्न, शारदा शिरोमणि आदि लगभग सवा लाख प्रतियाँ उनकी उपस्थिति में प्रकाशित हुई तथा उनकी चिर विदाय के पश्चात् 'शारदा शिरोमणि' की दूसरी आवृत्ति तथा हिन्दी आवृत्ति प्रकाश में आयी तथा 'सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह' की दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं । और हिन्दी में ६ हजार 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह । और अंग्रेजी में ३ हजार प्रकाशित हुई है।
विहार-यात्रा	: गुजरात, सौराष्ट्र, काठियावाड़, महाराष्ट्र आदि ।
अंतिम प्रयाण	: विक्रम सं. २०४२, वैशाख शुक्ल षष्ठी, बुधवार तदनुसार १४-५-१९८६ को संध्याकाल छः बजे मलाड़-बम्बई में । (अपनी दीक्षा जयंती के दिन) ।

णमो जिणाणं

॥ श्री छगंन-रत्न-गुलाब-हर्षद-कांती गुरुभ्यो नमः ॥

जिनशासन के सफल खेवैया आचार्य सम्राट्
वा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.की जय हो, विजय हो ।

शासन शिरोमणि, प्रवचन की पारसमणि, आशीर्वाददात्री
वा. ब्र. पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई महासतीजी अमर रहें ।

भाग - १

प्रवचनकार

खंभात संप्रदाय के जैन ज्योतिर्धर
वा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.की
सुशिष्यारत्ना प्रभावक प्रवचनकार
वा. ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

: हिन्दी-अनुवादकर्ता :
पण्डितरत्न मुनि श्री नेमिचन्द्रजी म.सा.

: प्रेरणादायीनी :
सुशिष्या वा. ब्र. विदुषी पू. श्री वसुबाई महासतीजी

व्याख्यान वाचस्पति वालब्रह्मचारी विदुषी

'पूज्य शारदाबाई महासतीजी की जीवन रेखा'

'प्रेरणादायी वैराग्यमय जीवन'

सृष्टि की सुन्दर फूलवारी में अनेक पुष्प खिलते हैं और मुर्झा जाते हैं, लेकिन पुष्प की विशेषता और महत्ता इसीमें होती है कि वह अपने सौरभ से दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है तथा लोगों को ताजगी और प्रफुल्लता से भर देता है। संसार में अनेक जीव जन्म लेते हैं, लेकिन उसीका जीवन सार्थक होता है, जिसका आकर्षक व्यक्तित्व सदैव दूसरों के जीवन को नयी और सही राह दिखाता हैं। जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार जैसे उच्चतम संस्कारों का खजाना जगत के समक्ष रखते हुए मुमुक्षु जीवों को यह विरासत सौंपने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करते हैं, प्रमाद की गाढ़ी निद्रा से जागृत करके कर्तव्य की राह पर आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हैं और जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध प्रदान करते हैं। जो अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के साथ दूसरों का जीवन भी उज्ज्वल करते हैं - ऐसे शासन रत्नों में जैनशासन की साध्वी के रूप में, जिनशासन का डंका देश-विदेश में जिन्होंने गूँजाया, वे गौरववंत गुजरात की भूमि में जन्मी, प्रखर व्याख्याता, अप्रतिम उदारता की मूर्ति, क्षमा, तप, त्याग और संयम मार्ग की दृढ़ उपासिका, आर्जवता तथा मार्दवता से मुमुक्षों का मन मोह लेने वाली वाल ब्रह्मचारी विदुषी पूज्य श्री शारदावाई महासतीजी हैं।

"सुमनोहर भूमि साणंद की, गूँजती ध्वनि जहाँ सदा आनन्द की,
मस्ती मनाने निजानंद की, जन्मी विरल विभूति शारदा गुरुणी।"

पूज्य शारदावाई महासतीजी का जन्म अहमदावाद के नजदीक साणंद शहर में संवत १९८१ की मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी, तदनुसार मंगलवार दिनांक : १-१-१९२४ की मध्यरात्रि के पश्चात् अढ़ाई बजे हुआ था। धन्य हे वह भूमि ! किसे ज्ञात था कि साणंद सहर में खिला यह पुष्प, अपने सद्‌गुणों की सौरभ जगत के कोने-कोने तक बिखरा कर, आत्मा का अपूर्व आनन्द प्राप्त करेगा। शासन प्रेमी, धर्मानुरागी पिता वाडीभाई और सद्‌गुणों से सुशोभित रत्नकुक्षि माता शकरीवहन भी धन्यवाद के पात्र है कि जिन्होंने जिनशासन को उज्ज्वल करने वाली, संप्रदाय की शान बढ़ानेवाली शारदाबहन के जीवन में सुंदर संस्कारों के ऐसा बीज बोए कि आज वह बीज विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल कर चारों दिशा में अपनी महक फैला रहा है। सचमुच ही, जब शारदावहन का जन्म हुआ तब किसने सोचा था कि यह नन्हीं बालिका भविष्य में जैनशासन में धर्म की धुरी ग्रहण करके माता-पिता का नाम दुनिया में रोशन करेगी ! गौरववंती माता शकरीवहन ने पाँच पुत्रियों और दो पुत्रों को जन्म दिया। जैनशासन की शान बढ़ाने वाली, प्रव्रज्या का परिमल प्रसारित करने वाली, रत्नत्रयी की रोशनी फैलाने वाली महान विदुषी बा. ब्र. पूज्य शारदाबाई महासतीजी के तेजस्वी जीवन की यहाँ संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश है।

जिनका जीवन शक्कर जैसा मधुर तथा गुणरूपी पुष्पों की सुवास से महकता हुआ था, ऐसे माता-पिता ने अपनी लाड़ली पुत्री शारदाबहन को बाल्यावस्था में पहुँचते ही शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाठशाला भेजा । साथ ही धार्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए जैन-शाला में भी भेजते रहे । संस्कारी माता-पिता के सुसंस्कारों के सिंचन तथा पूर्व के संस्कारो की किरणों का प्रकाश पुरुषार्थ द्वारा फैलता गया । यह प्रकाश उनके अंतर में ऐसा आलोक बन कर बिखरा कि बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ते हुए, सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए, गरबा गाते हुए भी उनका चित्त कहीं रमता नहीं था । उस समय भला किसे यह कल्पना तक न थी कि इस संसार से विरक्त बालिका के हृदय - समुद्र में आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना भरा है । वे भविष्य में अपने जीवन के हर सुनहरे क्षण को आत्म-साधना की मस्ती में, प्रवचन-प्रभावना में, जैनशासन की बेजोड़ सेवा करने में सदुपयोग करने वाली हैं और अपनी उत्कृष्ट प्रज्ञा की तेजस्विता से जेन तथा जैनेतर समाज को दान, दया, शील, तप, अहिंसा, सत्य, नीति, सदाचार और सद्‌गुणों का पाठ पढ़ाकर, श्रेष्ठतम जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाली है।

बाल्यावस्था में ही वैराग्यमूलक विचारधारा : शारदाबहन जैन-पाठशाला में सीखते हुए जब महान वीर पुरुषों की तथा चंदनबाला, राजेमती, मृगावती, दमयंती आदि महान सतियों की कथा सुनती तो उनका मन किसी अगम्य प्रदेश में खो जाता और विचार करने लगती कि 'क्या हम भी इन सतियों जैसा जीवन नहीं जी सकते ?' इसी विचार को अपनी सखियों के सम्मुख रखते हुए वे कहती, "सखियों ! यह संसार दुःख का दावानल है और संयम सुख का सागर है । चलो, हम दीक्षा ले लें ।" उनकी इस बात से हम कल्पना कर सकते हैं कि जिसके विचार इस नन्हीं उम्र में इतने उत्तम हो उसका भावी जीवन कितना उज्ज्वल बनेगा ? शारदाबहन की विचारधारा वैराग्य से भरपूर तो थी ही, उनकी वैराग्य ज्योति को और अधिक उज्ज्वल बनाने और गहराने वाला एक प्रसंग सामने आया । उनकी बड़ी बहन विमलाबहन का प्रसूति के पश्चात्, अत्यन्त छोटी उम्र में देहान्त हो गया। इस घटना ने बालकुमारी शारदाबहन पर जीवन की क्षणिकता और संसार की असारता की छाप गहरी कर दी । उनके अंतर में हलचल मच गई कि क्या जीवन इतना क्षणिक है ? ऐसे क्षणिक जीवन में नश्वर का मोह छोड़ अविनाशी की आराधना करने के लिए प्रव्रज्या के पंथ पर प्रयाण करना ही श्रेयष्कर है, हितकारी है । इस प्रसंग ने शारदाबहन के हृदय में संयमी जीवन का आनन्द लूटने की मस्ती पैदा की और वैराग्य दृढ़ होता गया।

शारदाबहन के वैराग्यपूर्ण विचार, वाणी और व्यवहार से माता-पिता को आभास होने लगा कि उनकी प्यारी, लाड़ली पुत्री संसार को सुलगता दावानल मान कर, आत्मिक आनन्द की अनुभूति करने महावीर मेडिकल कोलेज में दाखिल होकर पाँच महाव्रत रूपी दिव्य अलंकारों से विभूषित होने के सुनहरे सपनों में खो रही है ।

'शारदा-शिखर' - शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी आवृत्ति, प्रत : ३०००

❖ प्राप्तिस्थान ❖

शा. मांगीलाल उदेराम नंगावत

संकल्प : सेल्स डिपार्ट. : ४१२/२, याईलिया कम्पाउन्ड, वस्ता देवडी रोड़, सुरत-३९५ ००४
घर : १२, महावीर सोसायटी, सुमुल-डेरी रोड़, सुरत - ३९५००४
(ओ) २५३२६८७/२५३२६८८(फेक्स) (९१ ०२६१) २५३२६८५(घर) २४८६११०/२४८६३८९

शा. रोशनलाल चंपालाल कोठारी

विजय लक्ष्मी फैवरीक्स
३०१६, गोलवाला मार्केट, दूसरा मजला, सुरत - ३९५००१
दूरभाप (घर) २६८४३४७ (ओ) २३२०५७१

शा. धरमचंदजी देरासरीया

ठे. होस्पिटल रोड़, मारु दरवाजा बाहर, देवगढ़, मदारीया, जीला राजसमथ (राज.)
दूरभाप : S.T.D. (०२९०४) २५२०२७ (घर) (०२९०४) २५२०६१

१०, मोगरा वाडी

रोशनलाल पब्लिक स्कूल के पास, उदयपुर, दूरभाप : S.T.D. (०२९४) २४८५९५१

लागत मूल्य : रु. ३००/- ज्ञानप्रचार अर्थे दोनों भागो का मूल्य : रु. ४०/-

❖ संपर्कस्थान ❖

नरेन्द्रभाई साकरलाल राड़ीवाला

डुंमाल ट्रान्सपोर्टनगर गोडाउन नं. ५
पूणाजकातनाका के सामने, सुरत - बारडोली रोड़, सुरत
दूरभाप (घर) २६५४५२७ (ओ) २८५१७८२

शा. नानालाल मांगीलाल कोठारी

३, श्रीनाथ सोसायटी, पोदार एवन्यू के पास,
युनियन की गली, घोड़ दोड़ रोड़, सुरत दूरभाप (घर) २६६९१३९ (ओ) २६५११३९

शा. बाबुलाल रोशनलाल सिंघवी

विमल ज्योति फैवरीक्स
६, दर्शन मार्केट, रींग रोड़, सुरत - ३९५००२
दूरभाप (घर) २६८५५३० (ओ) २३२०७६८

मुद्रक : सस्तुं पुस्तक भंडार नडियाद - पिन : ३८७००१ फोन : (घर) २५५४२४३ (ओ) २५६६२५८

अनुवादक : प. पू. श्री नेमिचंद्रजी महाराज साहेब

रत्न समान रत्न गुरुदेव का समागम : जो आत्मा आध्यात्मिक भाव में रमण करती रहती है और उच्च भावनाओं का सेवन करती रहती है, उसकी भावना को साकार करने के लिए कोई न कोई सहायक मिल ही जाता है । इसीके अनुसार शारदाबहन के दृढ़ वैराग्य को चुम्बक से आकर्षित होकर खंभात संप्रदाय के गच्छाधिपति कोहिनूर रत्न के समान तेजस्वी, अध्यात्मयोगी, महायशस्वी बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब का साणंद की पवित्र भूमि में पुनित पदार्पण हुआ । उनका वैराग्य और दृढ़ बना । गुरुदेव ने कुमारी शारदाबहन से कहा, "बहन ! तुम्हारी संयम की भावना अति उत्तम और श्रेष्ठ है; परन्तु क्या तुम्हें पता है कि आत्मकल्याण की राह बड़ी कठिन है । इस किशोर वय में माता-पिता की शीतल छाया और संसार का रंग-राग छोड़ कर कष्टों और कंटकों से भरपूर संयम मार्ग को स्वीकारना कोई सामान्य या आसान काम नहीं है । इस संयम मार्ग के संकटों का तुम सहर्ष सामना कर पाओगी ? क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें आज्ञा प्रदान करेंगे ?" शारदाबहन ने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ । इस विषम संसार में, जहाँ छः काय के जीवों की हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, जहाँ राग-द्वेष की होली सतत जलती हो, जहाँ पुण्य बेचकर पाप की कमायी होती हो, ऐसा संसार रहने योग्य है क्या ? इसलिए ऐसा संसार का त्याग कर आत्म-प्रकाश प्राप्त करने के लिए संयम अंगीकार करने की मेरी उत्कृष्ट भावना है ।" देखिए, उम्र छोटी होने पर भी उनका उत्तर वैराग्य की कैसी अद्‌भुत छटा फैला रहा है !

गुरुदेव की दृष्टि में शारदाबहन का उज्ज्वल भविष्य : बाल्यकाल के प्रांगण में क्रीड़ा करती बालिका को संयम पंथ पर प्रयाण करने की कितनी तीव्र उत्कंठा है ! उनका अंतर संयमी जीवन का आनन्द पाने के लिए लालायित हो रहा था । इसी कारण अब संसार में व्यतीत होते क्षण उन्हें युगों जैसे महसूस होने लगे । पूज्य गुरुदेव को उनकी दृढ़ भावना से यह निश्चय होने लगा कि 'यह कन्यारत्न दीक्षा लेकर जैनशासन को उज्ज्वल बनायेगी, संप्रदाय की शान बढ़ायेगी और भविष्य में खंभात संप्रदाय में जब कठिन समय आयेगा तब यही संप्रदाय की नैया पार लगायेगी तथा शासन को रोशन करेगी ।' उस चातुर्मास में वैरागी शारदाबहन ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में अल्पकाल में ही 'दशवैकालिक सूत्र', 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा 'थोकड़े' कंठस्थ कर लिए । उन्होंने तभी, मात्र तेरह वर्ष की उम्र में कभी ट्रेन में सफर न करने तथा बस से अहमदाबाद से आगे न जाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली । ये बातें उनके उच्च कोटि के वैराग्य को सूचित करती हैं ।

वैराग्य की कसौटी में शारदाबहन की दृढ़ता : शारदाबहन के माता-पिता, भाई, मामा आदि सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, बहुत डराया-धमकाया, परन्तु शारदाबहन अपने निश्चय से तिल-मात्र भी विचलित न हुई । माता-पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने कहा कि "हम अन्न-जल का त्याग करेंगे ।" परन्तु जिसके रग-रग में वैराग्य का स्रोत बह रहा हो, जिसके चित्त को

आचार्य जैन ज्योतिर्धर १००८ बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. के सुशिष्यारत्ना बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी (शारदामण्डल) की नामावली

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
१.	बा. ब्र. विदुषी पू. शारदाबाई महा.साणंद	१९९६	वैशाख शुक्ल	६	सोमवार
	निर्वाण-मलाड़-मुंबई	२०४२	वैशाख शुक्ल	६	बुधवार
२.	स्व. पू. सुभद्राबाई महासतीजी खंभात	२००८	चैत्र शुक्ल	१०	शुक्रवार
३.	स्व. पू. इन्दुबाई महासतीजी सुरत				
	दीक्षा-नार	२०११	अषाढ़ शुक्ल	५	गुरुवार
४.	बा. ब्र. पू. वसुबाई महासतीजी विरमगाम	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	५	शुक्रवार
५.	स्व. पू. कान्ताबाई महासतीजी	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	१०	गुरुवार
६.	स्व. पू. सद्गुणाबाई महासतीजी लखतर	२०१३	माघ शुक्ल	६	बुधवार
७.	बा. ब्र. पू. इन्दिराबाई महासतीजी सुरत	२०१४	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	बुधवार
८.	स्व. पू. शान्ताबाई महासतीजी मोडासर				
	दीक्षा-नार	२०१४	माघ वदि	७	सोमवार
९.	पू. कमलाबाई महासतीजी खंभात	२०१४	वैशाख शुक्ल	६	शुक्रवार
१०.	स्व. पू. ताराबाई महासतीजी साबरमती	२०१४	अषाढ़ शुक्ल	२	गुरुवार
	निर्वाण-माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ वदि	२	शनिवार
११.	बा. ब्र. पू. चंदनबाई महासतीजी लखतर	२०१७	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	गुरुवार
१२.	बा. ब्र. पू. रंजनबाई महासतीजी साबरमती				
	दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१३.	बा. ब्र. पू. निर्मलाबाई महासतीजी खंभात				
	दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१४.	बा. ब्र. पू. शोभनाबाई महासतीजी लींबड़ी				
	दीक्षा-मलाड़	२०२२	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
१५.	पू. मंदाकिनीबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ शुक्ल	८	रविवार
१६.	बा.ब्र.पू. संगीताबाई महासतीजी खंभात	२०२६	वैशाख वदि	५	रविवार
१७.	बा. ब्र. पू. हर्षिदाबाई महासतीजी घाटकोपर-मुंबई				
	दीक्षा-भावनगर	२०२६	वैशाख वदि	११	रविवार
१८.	बा. ब्र. पू. साधनाबाई महासतीजी खंभात	२०२९	मार्गशीर्ष शुक्ल	२	गुरुवार
१९.	बा. ब्र. पू. भावनाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई	२०२९	वैशाख शुक्ल	५	सोमवार

चारित्र की चटक लगी हो और संसार रूपी ज्वालामुखी से सुरक्षित बचने के लिए जिसने मेरुपर्वत जैसी अड़िग और अड़ोल आस्था और श्रद्धा को धारण कर रखा हो, वह क्या वैराग्य भाव से जरा भी चलित होगी भला ? विविध प्रकार की कसौटियों के पश्चात् भी उनकी भावना में अड़िग निष्कंपन देख कर माता-पिता ने कहा कि "अभी इस सोलह वर्ष की अवस्था में तो नहीं पर इक्कीस वर्ष की उम्र में तुम्हें दीक्षा लेने की आज्ञा देंगे ।" परन्तु शारदाबहन तो उसी समय दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी । अतः उन्होंने पूछा कि "सत्रह वर्ष की विमलाबहन की मृत्यु को कोई रोक न सका तो मेरी इस जिंदगी का क्या भरोसा ?" अंत में शारदाबहन की विजय हुई और माता-पिता ने राजी-खुशी से दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान की ।

भाग्यवान शारदाबहन भागवती दीक्षा के पंथ पर : संवत १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, तदनुसार दिनांक १३-५-१९४०, सोमवार को साणंद में अत्यन्त भव्यता से शारदाबहन का दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हुआ । खंभात संप्रदाय में, साणंद ग्राम से, मन्दिर- मार्गी या स्थानकमार्गी या स्थानकवासी समाज से, बाल कुमारी के रूप में सर्वप्रथमदीक्षा शारदाबहन की हुई । अतएव समस्त ग्राम हर्ष की हिलोर में मग्न हो रहा था । दीक्षाविधि पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब के मुखारविन्द द्वारा सम्पन्न हुई । गुरुणी पूज्य पार्वतीबाई महासतीजी की शिष्या बनी । इनके साथ ही साणंद की एक अन्य बहन जीवीबहन भी दीक्षित हुई थी । जीवीबहन का नाम पूज्य जसुबाई महासतीजी तथा शारदाबहन का नाम पूज्य शारदाबाई महासतीजी रखा गया । इस प्रकार वैरागी विजेता बनी ।

उनके पूज्य पिता श्री वाडीलालभाई और मातुश्री शकरीबहन, भाई श्री नटवरभाई तथा प्राणलालभाई, भाभी अ. सौ. नारंगीबहन, अ. सौ. इन्दिराबहन, बहनें अ. सौ. गंगाबहन, अ. सौ. शान्ताबहन, अ. सौ. हसुमतीबहन सभी धर्मप्रेमी तथा सुसंस्कारी हैं । साणंद में उनका कपड़े का व्यापार है । जिस परिवार से ऐसा अनमोल रत्नशासन को प्राप्त हुआ हो उस परिवार के सदस्यों का धर्म, दान, दया, अनुकंपा आदि से ओतप्रोत होना स्वाभाविक है ।

गुरु चरण व शरण में समर्पणता : इस विशाल संसारसागर में जीवननैया के कुशल खेवैया मात्र गुरुदेव ही है । पूज्य शारदाबाई महासतीजी ने इसी तथ्य के अनुरूप अपनी जीवन नैया को पूज्य पार्वतीबाई महासतीजी की शरण में सर्वदा के लिए तैरता रख दिया तथा अपना जीवन उनकी आज्ञा में अर्पित कर दिया । पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव से संयमी जीवन की सभी कलाएँ सीखीं । अल्पायु में दीक्षा लेकर भी पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव की आज्ञा में ऐसे समर्पित हो गयीं कि अपने जीवन में कभी भी गुरुआज्ञा का उल्लंघन तो क्या किसी तरह की कोई दलील या अपील तक नहीं की । पूज्य गुरु-गुरुणी की शीतल छत्रछाया में पूज्य महासतीजी का धार्मिक अभ्यास और पुरुषार्थ अत्यन्त प्रबल बना और सुन्दर आत्मज्ञान प्राप्त किया । शास्त्रों का पठन किया । संस्कृत, प्राकृत भाषा सीखी । अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को प्रदान करने के प्रयत्न में, अति अल्प काल

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
२०.	बा. ब्र. पू. प्रफुल्लाबाई महासतीजी विरमगाम दीक्षा-मलाड	२०३३	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	शुक्रवार
२१.	बा. ब्र. पू. सुजाताबाई महासतीजी - दादर-मुंबई	२०३३	वैशाख शुक्ल	१३	रविवार
२२.	बा. ब्र. पू. पूर्वीपाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई दीक्षा-साणंद	२०३७	फाल्गुन वदि	२	रविवार
२३.	बा. ब्र. पू. मनीषाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२४.	बा. ब्र. पू. उर्वीशाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२५.	बा. ब्र. पू. सुरेखाबाई महासतीजी मुंबई दीक्षा-अहमदाबाद	२०३८	वैशाख शुक्ल	६	गुरुवार
२६.	बा. ब्र. पू. श्वेताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२७.	बा. ब्र. पू. नम्रताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२८.	बा. ब्र. पू. विरतिबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
२९.	बा. ब्र. पू. रक्षिताबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३०.	बा. ब्र. पू. हेतलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३१.	बा. ब्र. पू. रोशनीबाई महासतीजी नार	२०४१	माघ शुक्ल	११	शुक्रवार
३२.	बा. ब्र. पू. चाँदनीबाई महासतीजी खंभात	२०४१	माघ वद	३	शुक्रवार
३३.	बा. ब्र. पू. अर्पिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३४.	बा. ब्र. पू. पूर्णिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३५.	बा. ब्र. पू. सुज्ञाबाई महासतीजी जोरावरनगर	२०४२	फाल्गुन शुक्ल	३	शुक्रवार
३६.	बा. ब्र. पू. प्रेक्षाबाई महासतीजी खंभात दीक्षा-नार	२०४३	वैशाख शुक्ल	११	शनिवार
३७.	बा. ब्र. पू. सेजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३८.	बा. ब्र. पू. बीजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३९.	बा. ब्र. पू. हर्षज्ञाबाई महासतीजी धंधुका दीक्षा खंभात	२०४७	मागसर वदि	५	गुरुवार
४०.	बा. ब्र. पू. श्रेयाबाई महासतीजी-धानेरा	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४१.	बा. ब्र. पू. श्रुतिबाई महासतीजी-धानेरा	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४२.	बा. ब्र. पू. माधुरीबाई महासतीजी-सुरत बर्मा-दीक्षा-सुरत	२०४९	वैशाख शुक्ल	१०	शनिवार
४३.	बा. ब्र. पू. चेतनाबाई महासतीजी-रापर	२०५२	महा शुक्ल	१३	शुक्रवार
४४.	बा. ब्र. पू. समीक्षाबाई महासतीजी अहमदाबाद	२०५७	महा शुक्ल	११	रविवार
४५.	बा. ब्र. पू. शितलबाई महासतीजी खंभात दिक्षा - विलेपारला	२०५९	महा शुक्ल	५	शुक्रवार

में ही प्रतिभाशाली और प्रखर व्याख्याता तथा विदुषी के रूप में पूज्य महासतीजी की ख्याति चारों ओर फैल गयी ।

सम्मोहनकारी वीरवाणी की वीणा बजाने की अनोखी शक्ति : पूज्य महासतीजी के व्याख्यान में मात्र विद्वत्ता नहीं वरन आत्मा की चैतन्य विशुद्धि का स्वर उनके अंतर की गहराई से उभरता था । धर्म के तत्त्व का शब्दार्थ, भावार्थ तथा गूढ़ार्थ ऐसी गम्भीर और प्रभावक शैली में विविध न्याय, दृष्टांत द्वारा समझाती कि श्रोतावृंद उसमें तन्मय होकर अपूर्व शांति से शारदा सुधा का रसपान करते । उनकी वाणी में आत्मा के स्वर गूँजते थे तथा उस ध्वनि ने अनेक जीवों को प्रतिबोध प्राप्त करवाया है । सुषुप्त आत्माओं को झिझोड़ कर संयम मार्ग की ओर प्रेरित किया है । पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तक ने तो लोगों पर ऐसा जादू किया है कि पुस्तक पढ़ कर जैन-जैनेतर अनेक (हजार से अधिक) भाई-बहनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया है । अनेकों ने व्यसनों का त्याग किया । नास्तिक आस्तिक बने, पापी पुनित बने और भोगी योगी बने ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। ज्यादा क्या लिखूँ ? ये पुस्तकें मीसा के तहत, कारावास भोगते जैन भाई तक पहुँची तो इसे पढ़ कर वे आर्तध्यान छोड़, धर्मध्यान में जुड़ने लगे, और कर्म का दर्शन (फिलोसोफी) समजने लगे। पूज्य महासतीजी की अंतर वाणी का नाद उनके दिल तक पहुँचने पर जेल धर्मस्थानक जैसा बन गया और वहाँ रहने वाले कैदी भाईयों ने तप, त्याग तथा धर्माराधना की मंगल शुरूआत की । जेल से मुक्त होने पर पूज्य महासतीजी के पास आकर रो पड़े और अनेकों व्रत, नियम धारण किये। संक्षेप में इस उदाहरण से पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तकों का प्रभाव स्पष्ट होता है, जिसने मानवों के जीवन को परिवर्तित कर दिया ।

गुण रूपी गुलाब से महकता जीवन बाग : पूज्य महासतीजी परम विदुषी ही नहीं अन्य अनेक अमूल्य गुणों से सजी हुई थीं । उनके असीम गुणों का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर की बात है । फिर भी गुरुभक्ति सरलता, निराभिमानता, नम्रता, लघुता, अपूर्व क्षमा, स्नेह गुणानुराग तथा करुणा आदि गुण तो उनके जीवन में रचे-बसे थे । अपने इन गुणों के प्रभाव से उन्होंने अनेक जीवों को धर्म-मार्ग की ओर मोड़ा । उनकी आत्मा में निरन्तर यही भाव रहता कि सर्व जीव शासन के स्नेही कैसे बने, वीर की संतान वीर के मार्ग पर कैसे चलें ? **"दुःख में अजब समाधि साधी, सुख में रहे समभावी, तेजस्वी, यशस्वी गुरुणीदेव भी आत्मभावी ।"** अस्वस्थ होने पर भी प्रवचन की प्रभावना करने में वे कभी न चूकती थी । पूज्य महासतीजी ने सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात आदि क्षेत्रों में विहार करके, अमूल्य लाभ प्रदान किया है, परन्तु उनकी पुस्तकें तो देश, विदेश तक पहुँची हैं ।

पूज्य महासतीजी के प्रतिबोध से ३६ (छत्तीस) बहनों ने वैराग्य प्राप्त करके, उनसे दीक्षा अंगीकार की और जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि कर रही है । पूज्य महासतीजी एक जैन साध्वी के रूप में रह कर पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.

प्रभावक प्रवचनकार महान विदुषी बा.ब्र.पू.श्री शारदाबाई महासतीजी

क्र.	पुस्तक	स्थान	संवत्	प्रतियाँ
२.	शारदा संजीवनी 'भगवती सूत्र' का तामलीतापस-धनचरित्र	दादर-मुंबई	२०२०	६०००
३.	शारदा माधुरी 'भगवती सूत्र' का गोशालक-गुणश्रीचरित्र	घाटकोपर	२०२२	६०००
४.	शारदा परिमल 'उत्तराध्ययन सूत्र' का १४वाँ अध्य.-छः जीव.	राजकोट	२०२६	२०००
५.	शारदा सौरभ 'ज्ञाताजी सूत्र' थावर्चापुत्र, महाबल-मलयाचरित्र	अहमदाबाद	२०२७	६०००
६.	शारदा सरिता 'भगवती सूत्र' जमालिककुमार अग्निशर्मा को गुणसेन (समरादित्य केवली) चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०२९	५५००
७.	शारदा ज्योत 'ज्ञाताजी सूत्र' द्रौपदी-ऋषिदत्ता चरित्र	माटुंगा	२०३०	३०००
८.	शारदा सागर 'उत्तराध्ययन सूत्र' २०वाँ अध्ययन अनाथी मुनि अंजना चरित्र	वालकेश्वर	२०३१	१७,०००
९.	शारदा शिखर 'ज्ञाताजी सूत्र' मल्लिनाथ भगवान-प्राद्युम्नचरित्र	घाटकोपर	२०३२	१०,०००
१०.	शारदा दर्शन 'अंतगड सूत्र' गजसुकुमाल-पांडव चरित्र	बोरीवली	२०३३	८०००
११.	शारदा सुवास 'उत्तराध्ययन सूत्र' २२वाँ अध्य. नेम राजेमति, जिनसेन रामसेन चरित्र	मलाड़	२०३४	८०००
१२.	शारदा सिद्धि 'उत्तराध्ययन सूत्र' १३वाँ अध्य. चित्तसंभूति, भीमसेन हरिसेन चरित्र	सुरत	२०३५	८,०००
१३.	शारदा रत्न 'उत्तराध्ययन सूत्र' ९वाँ अध्य. नमिप्रव्रज्या, सागरदत्त चरित्र	अहमदाबाद	२०३७	६०००
१४.	शारदा शिरोमणि 'उपासक दशांग सूत्र' आनंदश्रावक, पुण्यसागर चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०४१	१२,०००

ता. क. आश्चर्य की बात यह है कि बा. ब. महाउपकारी **पू. गुरुणीमैयाश्री शारदाबाई महासतीजी** के देह की उपस्थिति न होने के बाद भी वह हमारे सामने हाजिर हो इस तरह हर साल पुस्तक प्रकाशित होते रहे हैं, वह भी हजार पन्ने के ग्रंथ जैसा । यह है ज्ञान का प्रभाव ।

पुस्तक	स्थान	संवत्	प्रतियाँ
शारदा शिरोमणि प्रथम आवृत्ति का उद्घाटन ता. ६-४-८६	कांदावाडी-मुं.	२०४२	१२,०००
शारदा शिरोमणि दूसरी आवृत्ति का उद्घाटन ता. २४-५-८७	कांदावाडी-मुं.	२०४३	६०००
दीवादांडी-शारदा स्मृति ग्रंथ का उद्घाटन ता. १९-६-८८	मलाड़-मुंबई	२०४५	१०,०००
शारदा शिरोमणि हिन्दी अनुवाद का उद्घाटन ता. २२-१-८९	कांदावाडी-मुं.	२०४५	३०००
सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह का उद्घाटन ता. २५-३-९०	कांदावाडी-मुं.	२०४६	१०,०००
द्वितीय संवत्सर पुण्यतिथि का रत्नझरूनकाट तूटया तार	चींचपोकली	२०४४	४०००
शारदा सितार का अथवा श्रद्धा सुमन श्रद्धांजलि गीत आदि	मुंबई		
तृतीय वार्षिक पुण्यतिथि पर रत्नप्रकाश अथवा शारदाजीवन पराग	अंधेरी वे.-मुं.	२०४५	४०००
चतुर्थ वार्षिक पुण्यतिथि पर शारदाप्रेरक प्रसंगो की गुणों की गीता	कांदावाडी-मुं.	२०४६	४०००

हिन्दी संस्करण

पुस्तक	स्थान	संवत्	प्रतियाँ
शारदा शिरोमणी - भाग-१	कांदावाड़ी-मुं.	२०४५	३०००
सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०४९	६०००
शारदा सिद्धि हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५८	५०००
शारदा रत्न हिन्दी भाग-१-२	सुरत	२०५८	३०००
शारदा ज्योत हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५९	३०००
शारदा शिखर हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०६१	३०००
दीवादांडी हिन्दी	सुरत	२०६१	३०००

और अंग्रेजी में सामायिक प्रतिक्रमण पुस्तक सुरत

तथा पूज्य गुरुदेव श्री गुलाबचन्दजी महाराज साहब के काल-धर्म प्राप्त करने के पश्चात् खंभात संप्रदाय की नैया कुशल खेवैया बनी, जो जिनशासन में विरल है। इतना ही नहीं वरन खंभात संघ के संघपति श्री कांतिभाई की दीक्षा भी पूज्य महासतीजी के पुनित हस्तों द्वारा हुई तथा दीक्षा मंत्र भी उन्होंने ही दिया । आज जिनकी ख्याति महान वैरागी पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. के रूप में है । पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. ठाणा-१३ में से प्रथम चार संतों को दीक्षा की प्रेरणा प्रदान करने का श्रेय भी पूज्य महासतीजी की अद्भुत वाणी को है ।

पूज्य महासतीजी की वाणी ने बम्बई की जनता को इतना आकर्षित कर लिया था कि जब वे अन्य स्थानों पर होती तब भी बम्बई की जनता उनके चातुर्मास के लिए लालायित रहती । कांदावाड़ी आदि अनेक संघ लगातार अपनी विनती लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहते थे । अत: कांदावाडी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती को मान देकर पूज्य महासतीजी तीसरी बार बम्बई में चातुर्मास करना स्वीकार किया । इसीसे ज्ञात हो जाता है कि बम्बई की जनता में उन्होंने कैसे स्नेह और आकर्षण की वर्षा की ।

केसरवाड़ी में केसर की क्यारी के समान महकता चरम चातुर्मास : सं. २०४१ में कांदावाड़ी श्रीसंघ की अत्यन्त आग्रहभरी विनती का मान रख कर पूज्य महासतीजी कांदावाड़ी पधारें । पूज्य महासतीजी के वैराग्य भरे, आत्मस्पर्शी, ओजस्वी और प्रभावशाली प्रवचनों ने जनता के हृदय में ऐसा अनोखा आकर्षण उत्पन्न किया कि चातुर्मास दरमियान व्याख्यान कक्ष हंमेशा जिज्ञासुओं से भरी रहती और उनकी दिव्य, तेजस्वी वाणी की प्रेरणा से तप, त्याग और व्रत-नियमों का एक धारा - प्रवाह बहता रहा । कांदावाड़ी श्रीसंघ में सोलह मासखमण और दो उपवास के सिद्धितप हुए । छ उपवास से लेकर इकत्तीस (३१) उपवास तक की तपश्चर्या करने वालों की संख्या २०० को पार कर गई । इसी प्रकार उनके हर चातुर्मास में दान, शील, तप और भावना का ज्वार उठता । इस सब का श्रेय पूज्य महासतीजी को ही है । उनका प्रत्येक चातुर्मास ऐसा रहा है जो श्रीसंघ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने की योग्यता रखता है । परन्तु कांदावाड़ी का चातुर्मास हंमेशा के लिए एक यादगार और चरम चातुर्मास बन गया । इस चातुर्मास को कांदावाड़ी संघ कभी विस्मृत नहीं कर सकता ।

विशेष आनन्द का विषय तो यह है कि आज तक पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों की पुस्तकें दस-दस हज़ार की संख्या में प्रकाशित हुई, परन्तु आज एक भी प्रत उपलब्ध नहीं है । मात्र यही बात इस बात को प्रमाणित कर देता है कि पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों का आकर्षण कैसा है ? पूज्य महासतीजी के सं. २०४१ के कांदावाड़ी चातुर्मास के व्याख्यान 'शारदा शिरोमणि' नाम से १२००० (बारह हज़ार) प्रतियाँ प्रकाशित हुई । सौभाग्य हमारा कि बम्बई में 'शारदा शिरोमणि' का भव्य उद्घाटन पूज्य महासतीजी के सान्निध्य में ता. ६-४-८६ रविवार को कांदावाड़ी में हुआ । एक महीने में समस्त प्रतियाँ बिक गई - यह है पूज्य महासतीजी की वाणी का प्रभाव !

गुरुगुण स्तुति

श्री रत्नगुरु... शरणं मम (२)
श्री शारदाबाई स्वामी शरणं मम (२)
नवकार नादे बोलीओ रत्नगुरु...
चौद पूर्वना सारे बोलीओ शारदाबाई
श्वासे श्वासे बोलीओ रत्नगुरु...
नाडीना धबकारे बोलीओ शारदाबाई
आत्मप्रदेशे बोलीओ रत्नगुरु...
रोमे रोमे बोलीओ शारदाबाई
नाभिनादे बोलीओ रत्नगुरु...
ओकी अवाजे बोलीओ शारदाबाई
हालतां चालतां बोलीओ रत्नगुरु...
खाता पीता बोलीओ शारदाबाई
रातदिवस बोलीओ रत्नगुरु...
सूतां जागतां बोलीओ शारदाबाई
व्याख्यान वांचणीमां बोलीओ रत्नगुरु...
स्वाध्याय करता बोलीओ शारदाबाई
जैनशासनना सितारा रत्नगुरु...
शासनना कोहीनूर हीरा शारदाबाई
शासनना शिरोमणि रत्नगुरु...
व्याख्यानना वाचस्पति शारदाबाई
संप्रदायना शिरताज रत्नगुरु...
शिष्याओना रखेवाल शारदाबाई
अवनिना अणगार रत्नगुरु...
शासनना शणगार शारदाबाई
संसारसागरना तैरैया रत्नगुरु...
संयमनावना खवैया शारदाबाई
क्षमा ध्याननी मूर्ति हता रत्नगुरु...
गुरुभक्तिना अजोड नमूना शारदाबाई
वचनसिद्धि ने यशनामी रत्नगुरु...
बेरिस्टरनी बुद्धि जेनी शारदाबाई
आशीर्वाददाता रत्नगुरु...
कृपाकिरण वरसावतां शारदाबाई
श्री रत्नगुरु...शरणं मम (२)
श्री शारदाबाई स्वामी शरणं मम (२)

मलाड़ की ओर प्रयाण : 'शारदा शिरोमणि' के उद्‌घाटन के पश्चात् आयंबिल की ओली तथा वर्षीतप के पारणा के प्रसंग पर मलाड़ में पदार्पण किया । तब किसे मालूम था कि पूज्य महासतीजी का यही अंतिम प्रयाण है! पूज्य महासतीजी की रग-रग में शासन के प्रति खुमारी, शासन के प्रति अड़िग श्रद्धा तथा शासन के लिए कुछ कर गुजरने की अदम्य इच्छा और उत्साह था । **"शासन के लिए मरना मंजूर लेकिन शासन के लिए कुछ करके जाना !"** यही उनका जीवनमंत्र था, इसीके लिए उनका रोम-रोम उत्साहित हो उठता था । ओली और वर्षीतप के निमित्त से उनकी जोरदार प्रवचन प्रभावना ने अपना विशिष्ट रूप दिखाया । अनेक आयंबिल तथा नये वर्षीतप प्रारम्भ किये गये। वर्षीतप का पारणा भी बड़ी धूमधाम से हुआ । अंत में वैशाख षष्ठी के दिन, उनकी दीक्षा जयंती का दिवस था, जब वे सुवर्ण संयम साधना के ४६ वर्ष पूर्ण कर ४७ वें वर्ष में प्रवेश करेंगी । मलाड़ संघ इस सुनहरे अवसर का लाभ प्राप्त कर बड़ा उत्साह और अनोखे आनन्द में झूम उठा था । ता. १५-५-८६ बुधवार को दीक्षा जयंती के दिन उन्होंने एक घंटा प्रवचन दिया। व्याख्यान के पश्चात् १३५ जीवों को अभयदान, ५१ अखण्ड अट्ठम (तेला) के प्रत्याख्यान आदि विभिन्न व्रत-प्रत्याख्यान करवाये । दोपहर में १०८ लोगस्स का कायोत्सर्ग, नवकार मंत्र का जाप आदि आराधना की तथा करवाई । पूर्ण दिवस आराधना के कार्यक्रम चले । अंत में संध्या समय ५-१० मिनट पर अत्यंन्त उत्साह से मांगलिक का पाठ सबको सुनाया । दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में अनेक भावक भक्तों का आना-जाना बना हुआ था । लगभग सभी को स्वयंही मांगलिक सुनाते थे । थोड़ी देर बाद ही छाती में दर्द उठा । उस समय सभी शिष्या-वृंद उनके पास थे, कितने ही भाई-बहनों ने पौषध किया था, वे तथा अनेक दर्शनार्थी भी वहाँ उपस्थित थे । सबकी उपस्थिति में उन्होंने स्वयं जावजीव का संथारा ग्रहण किया। प्रसन्न चित्त से आलोचना की, सबसे खमत-खामना किया तथा अरिहंत, सिद्ध, ऋषभदेव, भगवान महावीर का शरण स्वीकार किया । ४६ वर्ष के संयमपर्याय में जाने-अनजाने लगे दोषों की शुद्धि के लिए स्वयं छः महीने दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त किया । तीन बार 'वोसरामि...' शब्द का उच्चारण किया । अंत में "जीव जा रहा है, नवकार बोलो।" कहा । देखने वाले तो देखते रह गये कि अंतिम समय में भी कितनी चित्त प्रसन्नता, आह्लाद-भाव, सौम्यता और शांत मुख-मुद्रा! ऐसा देख कर विश्वास न होता था कि ये जो कह रही हैं वह सच है ! परन्तु उन्होंने तो अपना साध्य पा लिया था । आत्मा अन्तरात्मा बन कर नवकार मंत्र का स्मरण करते और कराते अपूर्व समाधिपूर्वक दुनिया को अलविदा कह कर अनन्त की यात्रा पर बढ़ गया । मृत्युंजयी बन गये । **"साणंद शहर में जन्म हुआ, मलाड़ में देह छोड़ा, दीक्षा-निर्वाण एक दिन, वैशाख सुदि छट्ठ बुधवार"** सुबह किसे कल्पना थी कि आज का दीक्षा जयंती का शुभ-दिन, संध्या होने तक पुण्यतिथि बन जायेगा !

"कल्याणकारी है आपका च्यवन, मंगलकारी है आपका जन्म,
पावनकारी है आपकी प्रव्रज्या, प्रेरणादायी है आपका निर्वाण ।"

भात संप्रदाय की महान रत्ना विदुषी वाणीभूषण शासन प्रभाविका
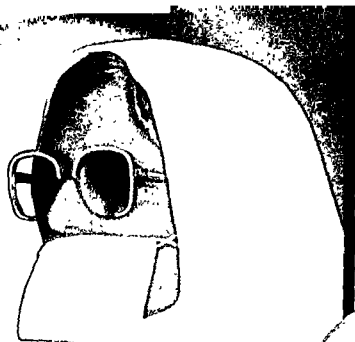
स्व. बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

निर्वाण सं. २०४२ वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता. १४-५-१९८६ बुधवार, मलाड, बम्बई

शारदागुरुणी सरस्वती, ज्ञान गुणों की ही है खान ।
अनेक जीव प्रबुद्ध हुए उनका अमृत सुन व्याख्यान ॥
रत्न गुरु के शुभाशीष से, जिन शासन विकसाया था ।
गौरव बढाकर नारी जाति का शासन शिरोमणि हरि पदपाया था ॥

जिनशासन का अनमोल कोहिनूर रत्न कालराजा ने छीन लिया । सोलह कलाओं में खिला हुआ चाँद जगत को अंधेरा करके विलीन हो गया । यह समाचार वायुवेग से प्रसरित हुआ, पर लोग सुन कर अचंभित रह गये कि 'क्या यह सत्य है ?' पूर्ण बम्बई तथा समस्त देश के कोने-कोने में हाहाकार मच गया । इस दुःखद समाचार के मिलते ही श्रद्धालुओं की भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ी । उनका पार्थिव शरीर देख सबके मन में आता कि कैसा अद्भुत है इस तेजस्वी मूर्ति का अलौकिक तेज ! ता. १५-५-८६ की दोपहर को उनकी भव्य पालकी निकली तब तीस से पैंतीस हजार भक्तों की विशाल मेदिनी साथ थी। थोड़े से समय में पाँच लाख रुपयों का दान एकत्रित हो गया और आज भी यह प्रवाह जारी है । पूज्य महासतीजी को गये तीन वर्ष ही हुए थे कि तब-तक में मलाड़, खंभात, अहमदाबाद, जोरावरनगर, साणंद, पाटडी, पोपटपुरा आदि गाँवों में एकान्त कर्मनिर्जरा करने, संवर करणी तथा गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए उनके नाम से स्मारक, उपाश्रय आदि गुरुणीमैया का नाम रोशन कर रहे हैं । तीनों वार्षिक पुण्यतिथियों पर भी अनेक प्रकार के तप, जाप, कार्योत्सर्ग, संवर करणी, अभयदान आदि आराधनाओं का भव्य आयोजन हुआ । यह सब गुरुणीमैया का पुण्य प्रभाव है ।

पूज्य महासतीजी की पुण्य प्रभावकता : पूज्य म.सा. तो सबको छोड़ कर चली गई, परन्तु उनके पुण्य का प्रभाव ऐसा है कि उनके प्रवचन का ग्रंथ 'शारदा शिरोमणि' की बारह हज़ार प्रतियाँ अति अल्प समय में बिक गई, पर उनकी माँग फिर भी इतनी अधिक थी कि श्री कांदावाड़ी संघ ने द्वितीय संस्करण में ६ हजार प्रतियों का प्रकाशन करवाया । राजस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि स्थानों पर भी इस पुस्तक की बहुत माँग थी, अतः दस हजार प्रतियाँ हिन्दी के संस्करण की निकाली । मलाड़ संघ ने पूज्य महासतीजी का स्मृति ग्रंथ **'दीवादांडी शारदा स्मृति ग्रंथ'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ छपवाई जो आज अनुपलब्ध है, पूज्य महासतीजी की गैरहाजिरी में इसीको ध्यान में रख कर कांदावाड़ी श्रीसंघ ने **'सफल सुकानी - शारदा प्रवचन संग्रह'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ प्रस्तुत की । पूज्य महासतीजी की वाणी का ऐसा अलौकिक जादू और ऐसा प्रचण्ड पुण्य प्रभाव कि व्यक्ति के न रहने पर भी उसकी पुस्तकों के लिए इतनी माँग ! ऐसा तो विरल ही होता है । **"दिव्य देशना का बजाया नाद, देश-देश में पहुँचा साद; करते हैं सभी आपको याद, नहीं भूलती आपकी आवाज़ ।"** ऐसी विरल विभूति, शासन की सेनानी, वीर प्रभु की आज्ञा में डूबी योद्धा और

"कृति जिनकी कल्याणकारी, आकृति जिनकी आह्लादकारी,
प्रकृति जिनकी प्रेम-क्यारी, जिनाज्ञा थी जिन्हें प्राण से प्यारी,
ऐसे अनन्त गुणों के धारी, स्वीकारो गुरुणी वन्दना हमारी ।"
"दीप बुझा प्रकाश अर्पित कर, फूल मुरझाया सुवास समर्पित कर,
टूटे तार पर सुर बहा कर, गुरुणी चले पर नूर फैला कर ।"

शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो

शा □ शासन सितारा युग-युग चमके ।

र □ रत्न गुरुदेव की तेजस्वी शिष्या ने ज्ञान तेज प्रसारा ।

दा □ दान दिया अंत तक दिव्य देशना और अभयदान का ।

बा □ बाल ब्रह्मचारी के रूप में संप्रदाय में सर्वप्रथम प्रव्रज्या पंथ पर।

ई □ इन्द्रिय विजेता बनी, जिन शासन नेता ।

म □ मनीषा थी जिनका मंगलकारी मोक्ष प्राप्त करने की ।

हा □ हार थी हृदय की सबको तारने वालों ।

स □ समता, सरलता, सौम्यता सहिष्णुता की अजोड़ मूर्ति ।

ती □ तीतीक्षा थी उन्हें तरने और तारने की ।

जी □ जीवन था जिनका जवाहर-सा जगमगाता ।

अ □ अमरपंथ की पथिक बन जीवन अज्ज्वल कर गई ।

म □ ममता मारी, समता साधी, अहिंसा आराधी ।

र □ रत्नत्रय की पुकार कर, जागृति की झंकार और चारित्र की चाँदनी चमका गई ।

र □ रक्षक बन कर छकाय के आत्मरमणता में रही ।

हो □ हो कोटि-कोटि वंदन तारक शारदा गुरुणीमैया के पवित्र चरण कमल में ।

शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो

व्याख्यान - १

आषाढ़ सुदी ९, सोमवार | दिनांक : ५-७-७६

विषयों का वमन : सच्चे सुख में रमण

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं एवं बहनों !

समस्त जगत् के जीवों का शाश्वत स्वधाम प्राप्त करने के लिए अमृतरस - प्रवाहिनी अनन्तज्ञानी भगवन्तों की वाणी है । भगवन्त शास्त्रों में फरमाते हैं कि "अनन्तकाल से आत्मा ने सम्यग्दर्शनरूपी तेजस्वी रत्न के अभाव में स्व-भाव को भूल कर परद्रव्य के पागलपन में मिथ्यात्व-अन्धकार में दौड़-धूप की है । परन्तु पुण्योदय के फलस्वरूप बोधि बीज के कारणभूत मनुष्य भव की प्राप्ति हुई है ।" सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के अभाव में सारी दौड़-धूप व्यर्थ है । भगवान् ने लोकोत्तर मार्ग बताया है । लौकिक मार्ग पर चलनेवाले और इन्द्रिय-विषयों के अधीन हुए अज्ञानी आत्मा शारीरिक अनुकूलता में सुख ढूंढते हैं ।

बन्धुओं ! लौकिक मार्ग तो कर्माधीन है, जबतक उसमें आनन्द मानकर उसका अनुसरण करेंगे, तबतक लोकोत्तर मार्ग में प्रवेश करना कठिन है और तबतक आधि-व्याधि-उपाधि और दुःख-दारिद्र्य दूर नहीं हो सकेंगे । परन्तु वर्तमान मानव भौतिकवाद की आंधी में सुख की खोज करके उसमें मौज मान रहा है । परन्तु उसे पता नहीं है कि इस मौज के पीछे दुःख की कितनी बड़ी फौज खड़ी है ?

शासन रत्ना महान विदुषी बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी के पुनीत पदार्पण से पवित्र हुए यशस्वी चातुर्मासों की चमकती सूचि ।

अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष	अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष
१.	१९९६	अहमदाबाद	१९४०	१६	२४.	२०१९	माटुंगा-मुंबई	१९६३	३९
२.	१९९७	खंभात	१९४१	१७	२५.	२०२०	दादर-मुंबई	१९६४	४०
३.	१९९८	खेड़ा	१९४२	१८	२६.	२०२१	विलेपार्ला-मुंबई	१९६५	४१
४.	१९९९	साणंद	१९४३	१९	२७.	२०२२	घाटकोपर-मुंबई	१९६६	४२
५.	२०००	खंभात	१९४४	२०	२८.	२०२३	खंभात	१९६७	४३
६.	२००१	साणंद	१९४५	२१	२९.	२०२४	अहमदाबाद	१९६८	४४
७.	२००२	अहमदाबाद	१९४६	२२	३०.	२०२५	भावनगर	१९६९	४५
८.	२००३	साणंद	१९४७	२३	३१.	२०२६	राजकोट	१९७०	४६
९.	२००४	अहमदाबाद	१९४८	२४	३२.	२०२७	ध्रांगध्रा	१९७१	४७
१०.	२००५	साणंद	१९४९	२५	३३.	२०२८	अहमदाबाद	१९७२	४८
११.	२००६	खंभात	१९५०	२६	३४.	२०२९	कांदावाड़ी-मुंबई	१९७३	४९
१२.	२००७	सुरत	१९५१	२७	३५.	२०३०	माटुंगा	१९७४	५०
१३.	२००८	अहमदाबाद	१९५२	२८	३६.	२०३१	वालकेश्वर	१९७५	५१
१४.	२००९	जोरावरनगर	१९५३	२९	३७.	२०३२	घाटकोपर	१९७६	५२
१५.	२०१०	लखतर	१९५४	३०	३८.	२०३३	बोरीवली	१९७७	५३
१६.	२०११	खंभात	१९५५	३१	३९.	२०३४	मलाड़	१९७८	५४
१७.	२०१२	साणंद	१९५६	३२	४०.	२०३५	सुरत	१९७९	५५
१८.	२०१३	सुरत	१९५७	३३	४१.	२०३६	साणंद	१९८०	५६
१९.	२०१४	अहमदाबाद	१९५८	३४	४२.	२०३७	अहमदाबाद	१९८१	५७
२०.	२०१५	विरमगाम	१९५९	३५	४३.	२०३८	नारणपुरा-अ'वाद	१९८२	५८
२१.	२०१६	साबरमती	१९६०	३६	४४.	२०३९	खंभात	१९८३	५९
२२.	२०१७	खंभात	१९६१	३७	४५.	२०४०	नवरंगपुरा-अ'वाद	१९८४	६०
२३.	२०१८	कांदावाड़ी-मुं.	१९६२	३८	४६.	२०४१	कांदावाड़ी-मुंबई	१९८५	६१

अनन्तज्ञानी भगवान् ने घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् उस ज्ञान-ज्योति में जगत् के जीवों को दुःखग्रस्त देखने के बाद उनके श्रीमुख से वाणी फूट निकली। "हे भव्यजीवों ! तुम अनन्त पुद्गल-परावर्तनकाल से सुख की शोध में हो, फिर भी अभी तक सुख प्राप्त नहीं कर सके। उसका कारण यह है कि तुम्हें सुख चाहिए, मगर सुख का मूल क्या है ? उसको अभी तक तुमने नहीं खोजा। सुख प्राप्त करना हो तो सर्वप्रथम सुख के मूल को खोजो।" प्रत्येक सांसारिक कार्य में तुम उस कार्य का मूल खोजते हो। मान लो, तुम्हें कोई रोग हुआ, और तुमने वैद्य अथवा डोक्टर से दवा ली। अब यदि रोग में कुछ आराम नहीं हुआ, तो तुम उसके मूल कारण को ढूंढते हो न ? मैं ऐसी कीमती दवा का सेवन करता हूँ, पथ्य का भी बराबर पालन करता हूँ, फिर भी मेरा रोग मिटता नहीं, इसका क्या कारण है ? क्या दवाई में, डोक्टर में या पथ्यपालन में कुछ कमी है ? तुम व्यापार में बहुत परिश्रम करते हो, परन्तु उसमें मुनाफा न मिले तो उसका कारण खोजते हो न ? मैं इतनी सख्त मेहनत करता हूँ, फिर भी मुझे इस व्यवसाय में मुनाफा क्यों नहीं मिलता ? वहाँ तो एक पैसा भी अधिक नहीं जाने देते, इतने होशियार हो तुम ! इसी प्रकार जमीन पर हल चलाकर, उसे मुलायम बनाकर उसमें अच्छा बीज बोकर उसके पीछे बहुत परिश्रम करता है, परन्तु समय पर उसमें से निर्धारित फसल न मिले, तो वह उसका मूल कारण खोजेगा न ? चौमासे भर खूब मेहनत की, फिर भी उसका फल इतना ही मिला ? इसी प्रकार भगवान् फरमाते हैं कि अनन्तकाल से चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव सुख की खोज कर रहा है, तथापि सुख नहीं मिला, तो उसका मूल कारण क्या है ? यह जानना चाहिए न ? 'आचारांग सूत्र' में भगवान् महावीर ने फरमाया है -

"लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं"

"इस लोक में दुःख का कारण अज्ञान या मोह है, इसे जानो, और यह आत्मा का अहित करनेवाला है।"

वृक्ष को तुम कितना ही पानी पिलाओ, पर यदि उसकी जड़ सड़ी हुई हो तो उसके फल-फूल कहाँ से लगेंगे ? इसी तरह तुम बाहर से सुख की शोध चाहे जितनी करो, परन्तु अंदर यदि अज्ञान और मोह ने अड्डा जमा रखा है तो वह दूर न हो, तबतक दुःख टलनेवाला नहीं, और न सच्चा सुख मिलनेवाला है। संस्कृत भाषा के एक श्लोक में भी कहा है -

"सर्वत्र सर्वस्य सदा प्रवृत्तिः, दुःखस्य नाशाय सुखस्य हेतोः।
तथाऽपि दुःखं न विनाशमेति, सुखं न कस्यापि भजेत् स्थिरत्वम्॥"

"संसार में चींटी से लेकर इन्द्र महाराज तक सर्व जीवों की सदैव सर्वत्र लगातार यही प्रवृत्ति रही है कि दुःख कैसे मिटे और सुख कैसे मिले ? तथापि न तो दुःख मिटता है और न सुख ही स्थिर रहता है।" मैं आपसे पूछती हूँ कि (धर्मसभा में बैठे

श्री खंभात संप्रदाय के शासनरत्न महान संतों की नामावली

क्रम	नाम जन्मस्थल - दीक्षास्थल	संवत	मास	तिथि
१.	स्व. आ. गुरुदेव पू. श्री कान्तिऋषिजी म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
२.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री सूर्यमुनि म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
	निर्वाण-सुरत	२०३८	चैत्र शुक्ल	३
३.	वर्तमान आचार्य बा.ब्र.पू.श्री अरविंदमुनि म.सा.खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
४.	बा. ब्र. पू. नवीनमुनि म.सा. खंभात	२०१८	मार्गशीर्ष शुक्ल	३
५.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री कमलेशमुनि म.सा. खंभात	२०२२	मार्गशीर्ष वदि	२
६.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री प्रकाशमुनि म.सा. दादर, मुंबई	२०२३	श्रावण शुक्ल	५
	दीक्षा-भावनगर			
७.	बा. ब्र. पू. श्री चेतनमुनि म.सा. बेगमपुरा	२०२३	श्रावण वदि	२
	दीक्षा-भावनगर			
८.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री महेन्द्रमुनि म.सा. पीज, खंभात	२०२७	वैशाख शुक्ल	११
	निर्वाण-अहमदाबाद	२०४४	वैशाख वदि	
९.	स्व. तपस्वी पू. श्री दर्शनमुनि म.सा. वसो	२०२१	वैशाख वदि	११
	दीक्षा-बोडेली			
१०.	बा. ब्र. पू. श्री मृगेन्द्रमुनि म.सा. खंभात	२०३४	माघ शुक्ल	१५
११.	बा. ब्र. पू. श्री जितेन्द्रमुनि म.सा. अंधेरी-मुंबई	२०३०	मार्गशीर्ष शुक्ल	५
	दीक्षा-कोईम्बतूर			
१२.	स्व. शांत स्वभावी पू. श्री देवजीमुनि म.सा. कच्छ-कांडागरा	२०४३	कार्तिक वदि	९
	दीक्षा-माटुंगा-मुंबई			

हुए) इतने भाईयों में से प्रतिदिन कौन-कौन सामायिक करता है ? जो भाई सामायिक करते हों, वे अंगुली ऊँची करें, तो ऐसे लोग कम ही निकलेंगे । आषाढ़ सुदी पूनम का दिवस आ रहा है, उस दिन उपवास किसे करना है ? तो वे भी थोड़े ही निकलेंगे । इसके विपरीत मैं अभी यह कहूँ कि दुःख किसे मिटाना है और सुख किसे चाहिए ? तो सभी तुरंत अंगुली ऊँची करेंगे । इच्छा सुख प्राप्त करने की है, पर उसे पता नहीं है कि सुख पाप से मिलता है अथवा पुण्य या धर्म से मिलता है, और वह सुख कैसे टिका रहता है ?

संसार-सुख के सुनहरे सुहावने स्वप्न देखता हुआ मानव शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और कौटुम्बिक आदि सैंकड़ों प्रकार के उपद्रवों से घिरा हुआ है । फिर भी वह यों मानता है कि अगर मेरे पास बहुत धन होता तो मैं सुखी हो जाता । इस जगत् में जो कुछ भी दुःख है, वह धन के अभाव के कारण है । ऐसा कुछ (आज का) मानव मानता है । अब दूसरा प्रकार - मान लो, कोई मनुष्य बड़ा करोड़पति है । उसके आंगन में चार-चार कारें खड़ी हैं । एयरकण्डीशन रूम हैं । संसार में कहे जानेवाले भौतिक सुख की सम्पूर्ण सामग्री उसके घर में मौजूद है । ऐसे लक्ष्मीनन्दन से पूछो कि "भाई ! तू सूखी है न ?" इतने विपुल सुख के साधन होने पर भी वह (प्रायः) यही कहेगा कि मैं सुखी नहीं हूँ । अंदर से चिन्ता रूपी दीपक का कीड़ा उसे कुतरकर खा रहा है । मार्ग में एक भिखारिन बाई चार बालकों को अंगुली से पकड़कर चली जा रही हो, 'दो माँ-बाप ! दो माँ-बाप !' यों बोलती हुई भीख मांग रही हो, उसे देखकर वह अरबपति सेठ रो पड़ता है, क्योंकि उसके संतान नहीं है । जबकि भिखारिन बाई अरबपति सेठ को देखकर रो पड़ती है - 'अहो ! यह कितना सुखी है ? मुझे भी ऐसा सुख मिले तो कितना अच्छा !' देखो, कितनी विपरीत बात है यह ? सेठ के पास धन का संग्रह है, पर वह पुत्र के अभाव में विलाप करता है ! भिखारिन के संतान है तो उसे (उनके व अपने) पेट भरने की चिन्ता है ! कदाचित् (सेठ को) पुत्र हो जाए, मगर वह अल्पकालीन बीमारी भोगकर आयुष्यपूर्ण करके गुजर जाए तो भी उसे दुःख होता है । इस जगत् में जीवों को कोई न कोई दुःख लगा ही रहता है -

कोई धन से रहित दुःखी है, है कोई महारोग - पीड़ित ।
पाता कोई कष्ट मानसिक, पुत्र-विरह से हुआ दुःखित ।
कोई किसी दुःख में रत है, कोई किसी कष्ट में मग्न ।
हा ! इस जग में कोई जन भी नहीं, पूर्ण सुख में संलग्न ॥

इस प्रकार चारों ओर से मानव दुःखों से घिरा हुआ होता है । किसी को पूर्ण सुख नहीं है । 'सात सांधे, वहाँ तेरह टूटे,' ऐसी दशा वह भोगता रहता है । कदाचित् उसका पुण्य उदय हो तो वह यथेच्छ सुख प्राप्त करता है, फिर भी वह सच्चा सुख नहीं है, क्योंकि वह सुख शाश्वत नहीं है, अपितु अशाश्वत है ।

Grams : "Jain Bhavan" Ph. 2532 2077, 2641 3825

SHRI GUJARATI SWETAMBER STHANAKWASI JAIN ASSOCIATION

श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओशन

શ્રી ગુજરાતી શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન એસોશીએશન

"C. U. Shah Bhavan", New 4, (Old 78/79), Ritherdon Road, Purasawalkam, Chennai - 600 007.

॥ श्री रत्न शारदा गुरवे नमः ॥

खंबात संप्रदाय के साध्वीरत्ना बा. ब्र. गुरुणीमैया
श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्या
पू. रंजनबाई महासतीजी आदि ठा-५ के
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओशन
चेन्नई के चातुर्मास दरमियान

महाग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद प्रकाशन अनुदाता
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ओसोशीओसन चेन्नई

श्री रसीकलाल सी. बदाणी, अध्यक्ष
श्री गु. श्वे. स्था. जैन ओसोशीओशन, चेन्नई-७.

कोई महाराजा भव्य राजमहल में मौज करता हो, वैभव की तरगें हिलोरें लेती आसमान को छूती हों, उसे जनता महासुखी मानती है। पर उस जनता को पता नहीं है कि चिन्तारूपी दुःख का कीड़ा महाराजा के दिल को कुतरकर खा रहा है। परन्तु महाराजा का ठाठवाठ देखकर जनता को घड़ीभर लगता है, महाराजा कितने सुखी हैं ? कितने भाग्यशाली हैं ? परन्तु उस राजा के मन में तो लाखों संकल्प-विकल्पों की जाल भरी होती है। किसी राजा ने किसी राजा का एक छोटा-सा गाँव जीत लिया हो तो उसे भोजन अच्छा नहीं लगता। अरे ! राज्य में कुछ नुकसान हो जाए तो चिन्ता का कोई पार नहीं रहता।

वन्धुओं ! ऐसा होने का कारण आपको समझ में आता है ? इसका कारण यह है कि जीव ने वाह्य पदार्थों में सुख मान रखा है, परन्तु सुख वाह्य पदार्थों में नहीं है, फिर भी अज्ञान के कारण जीव मोह छोड़ता नहीं है। एक मानव जिस पदार्थ से सुख का अनुभव करता है, दूसरा मानव उसी पदार्थ से दुःख महसूस करता है। यह तो आपको अनुभव है न ! लक्ष्मी, सत्ता और अधिकार के योग से व्यक्ति सुखोपभोग करता है, परन्तु जैसे मृगमरीचिका का जल दूर से पानी के रूप में दिखाई देता है, परन्तु वह वास्तविक पानी नहीं होता; वह ही भौतिक पदार्थों में सच्चा सुख न होते हुए भी इसमें से सुख मिलता है, यों मानकर इसी आशा ही आशा में जीव उसे प्राप्त करने हेतु उसके पीछे दौड़ रहा है, मगर अन्त तक उसका दुःख मिटता नहीं और सुख टिकता नहीं; फिर भी यह भ्रान्ति टूटती नहीं, और परिणामस्वरूप कर्मवन्धन होता रहता है।

अज्ञानदशा से जीव दुःख के कारणों में सुख मानकर रचापचा रहता है। कोई वहन गले में हीरे का हार पहनकर मुस्कराती है कि मैं कैसी सुन्दर दिखाई देती हूँ। मारवाड़ की वहनें हाथ में सोने की वंगड़ियाँ पहनती हैं और हाथीदांत का चूड़ा पहनती हैं। उनका हाथ आभूषणों से पूरा का पूरा भरा रहता है। हाथ को साफ करने की जगह भी वहाँ नहीं होती। अरे ! इनसे हाथ पर कितना अधिक वजन हो जाता है ? फिर भी उसे ऐसा नहीं लगता कि मुझे वजन लगता है। एक हाथीदांत का चूड़ा वनाने में कितना पाप होता है ? (इसका विचार करो) सर्वप्रथम एक खड्ढा खोदकर उसमें कागज की हथिनी बनाकर खड़ी रखी जाती है। हथिनी को देखकर उसके प्रति आकर्षित होकर हाथी खड्ढे में पड़ता है। फिर इस प्रकार से हाथी के दांत गिराये जाते हैं। फलतः उस हाथी की मृत्यु हो जाती है। फिर भी हाथीदांत का चूड़ा पहनने-वाली वहन हर्षित होती है कि मैंने हाथीदांत का चूड़ा पहना है। मारवाड़ी वहन एक थान जितने कपड़े का घाघरा पहनती है। कम कपड़े का घाघरा उसे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि उसे इसका शौक है। दस वर्ष की वालिका अपने भाई को कंधे पर विठाकर पर्वत पर चढ़ रही हो, उस समय थकान से वह आकुल-व्याकुल होती हो, घवरा जाती हो, उसे देखकर कोई उससे पूछे - "वहन ! तुझे इसका वोझ नहीं लगता ?" तव वह वालिका कह देगी - "आप मुझे यह क्यों पूछते हो ? यह तो मेरा सहोदर प्रिय लाड़ला

भाई है !" इस पर से स्पष्ट समझ में आता है कि जिस जीव की जिसके प्रति जितनी रुचि (उत्कण्ठा) होती है, उसे वह दुःखरूप वस्तु भी सुखरूप लगती है । इतनी रुचि अगर धर्म के प्रति जग जाए तो व्यक्ति का कल्याण हो जाय ।

देवानुप्रियों ! यह सब जीव की अज्ञानदशा है और अज्ञान ही दुःख का मूल है । उस मूल में सुख की आशा रखना व्यर्थ है, केवल लालसा है । परन्तु जीव को इसका भान नहीं है । पतंगिया दीपक के प्रकाश से प्रभावित होकर उसमें अपने आपको होम देता है । यदि उसे ज्ञान होता कि मैं इससे आकर्षित होकर इस पर गिरूँगा तो जल मरूँगा, तो वह ऐसा न करता । एक मन खीर से भरे हुए तपेले में एक बूंद जहर पड़ा है, इसका पता लगे तो वह उसे फेंक देता है, किन्तु यदि उसे पता न लगे तो वह उसे खुशी-खुशी पी लेता है और मौत का आलिंगन कर लेता है । इस प्रकार जीव 'सम्यक् ज्ञान' के अभाव में सुख प्राप्त करने जाते हुए दुःख को न्यौता दे देता है। अतः विचार करो ! सच्ची समझ से सुख प्राप्त होता है, जबकि दुःख अज्ञान का नाश होने से मिटता है । आज तो सम्यक्ज्ञान प्राप्त करने का दिवाला है । आज के मानव को विकथा करने में, पिक्चर देखने में और रेडियो के गीत सुनने में जितना रस है, उतना धर्म (आत्मधर्म) के प्रति नहीं है । यहाँ घाटकोपर में बहुत-सी बहनें प्रतिक्रमण करने के लिए आती हैं । परन्तु बहुत-सी जगह तो रविवार और गुरुवार को भी बहनें प्रतिक्रमण में कम आती हैं । और जैनशाला में धार्मिक सीखने-पढ़ने के लिए बालक आते नहीं । मुझे लगा कि इसके पीछे क्या कारण है ? पूछने पर पता लगा कि गुरुवार को (टी.वी. पर) छायागीत आते हैं, और रविवार को पिक्चर तथा नाटक आते हैं, इसका मतलब हुआ धर्म को तो देश-निकाला दे दिया । किन्तु इसी दिन और इसी टाइम में पुत्र विदेश से आ रहा हो, तो एयरपोर्ट पर उसे लेने के लिए जाएँगे या नहीं ? (श्रोताओं में से आवाज : अवश्य जाते हैं) । आपको संतति जितनी प्रिय लगती है, उतने प्रिय अभी तक संत नहीं लगे हैं । तुम्हें लगता है कि विज्ञान ने प्रगति की है, परन्तु विज्ञान ने धर्म को धक्का मार दिया है । टी. वी. ने धर्म को भुला दिया है और मोह को जगा दिया है ।

हमारे जैनागमों में आत्मा का ऊर्ध्वारोहण करने (ऊँचे चढ़ने) के लिए चौदह गुणस्थान रूपी चौदह सोपान (सीढ़ियाँ) बताए हैं । उनमें से दसवें गुणस्थान तक मोह - महाराजा का साम्राज्य व्याप्त है । यह मोह ही आत्मा का कट्टर दुश्मन है । इस शत्रु पर जबतक विजय प्राप्त नहीं की जाती, तबतक सच्चा सुख मिलनेवाला नहीं है । जीव इस मोहशत्रु को हटाकर बारहवें गुणस्थान पर पहुँच जाए तो फिर गिरने का चांस नहीं रहता । जीव बारहवें गुणस्थान में पहुँच गया, उसका अर्थ है, उसका मोक्ष-गमन रजिस्टर्ड (या रिजर्व) हो गया । फिर तो केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जाना निश्चित है । अगर हमें मोक्ष में जाना हो तो मोह पर विजय प्राप्त करना पड़ेगा । यह मोह ही जीव को संसार में मोहित करता है, मूढ बनाता है । अगर यह बात समझ में आती है तो निम्नोक्त बातें निश्चित करो -

Grams : "Jain Bhavan" 2532 2077, 2641 3825
SHRI GUJARATI SWETAMBER STHANAKWASI JAIN ASSOCIATION
श्री गुजराती श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन ऐसोशीओशन
શ્રી ગુજરાતી શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન એસોશીએશન
"C.U Shah Bhavan", New # 4, (Old # 78/79), Ritherdon Road, Purasawalkam, Chennai-600 007.

श्री संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष

श्री सुरेन्द्रभाई एम. महेता	वर्ष १९७६ से १९९०
श्री हरिलाल वी. संघवी	वर्ष १९९० से १९९२

श्री संघ की कार्यकारिणी एवम् पदाधिकारीगण

१. श्री रसीकलाल सी. वदाणी	अध्यक्ष-१९९२ से
२. श्री प्रभुदासभाई एन. कामदार	उपाध्यक्ष
३. श्री हर्षदराय एम. शाह	उपाध्यक्ष
४. श्री प्रफुलभाई आर. शाह	मंत्री
५. श्री प्रवीणचंद्र एस. तुरखीया	सह-मंत्री
६. श्री चीलेशभाई पी. शाह	कोषाध्यक्ष
७. श्री सी. यु. शाह	पेट्रन-सदस्य
८. श्री सुरेन्द्राभाई एम. महेता	पेट्रन-सदस्य
९. श्री रसीकलाल सी. पारेख	पेट्रन-सदस्य
१०. श्री वलवंतराय एच. मावाणी	पेट्रन-सदस्य

११. श्री मनहरलाल सी. दोशी	सदस्य	१७. श्री वकुलेश जे. वीराणी	सदस्य
१२. श्री हरेशभाई एन. शाह	सदस्य	१८. श्री नगीनदास सी. वावीशी	सदस्य
१३. श्री चंद्रकांत एच. संघवी	सदस्य	१९. श्री महेन्द्र के. पारेख	सदस्य
१४. श्री केतन सी. वगड़ीया	सदस्य	२०. श्री बीपीनभाई ए. शाह	सदस्य
१५. श्री रमेशभाई एन. दामाणी	सदस्य	२१. श्री चंद्रकांत सी. उदाणी	सदस्य
१६. श्री निलेश वी. शाह	सदस्य	२२. श्री मनोज आर. पतीरा	सदस्य

(२०६१) दि. २६-११-२००४

सुश्रावक, श्राविकाश्री,

जय जिनेन्द्र !

चेन्नई शहर में गुजराती स्थानकवासीओं की बढ़ती हुई संख्या को ध्यान में रखते हुए सन १९७६ में श्री गुजराती श्वेतांवर स्थानकवासी जैन एसोसिएशन, चेन्नई की स्थापना की गई । श्री संघ की सदस्य संख्या आज ७७७ परिवारों की है । ३६००० स्क. फी. के वने यह संकुल में स्थानक, लग्नवाटिका, अतिथिगृह तथा क्लीनीक एवम् डायेग्नोस्टीक केन्द्र कार्यान्वित है । पुण्यशाली दानवीरों एवम् कर्मठ कार्यकरों के सन्निष्ठ परिश्रम के फल-स्वरूप श्री गुजराती श्वेतांवर स्थाकवासी जैन एसोसिएशन (श्री सी. यु. शाह भवन) ने गरिमामय नाम अर्जित किया है ।

इन्द्रियों का करना है दमन, त्रिकाल ज्ञानी को करना है नमन ॥

मोह को मारने के लिए सर्वप्रथम विषयों का वमन करना पड़ेगा । पुत्र ने जहर पी लिया है, इसका पता लगते ही तुरंत उसे दवाखाने में एडमिट कर देते हो । उस समय ऐसा विचार नहीं करते कि मैं समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ, समाज में मेरी अपकीर्ति होगी कि अमुक के पुत्र ने जहर पी लिया है । उस समय तो बस एक ही भावना होती है कि पुत्र के शरीर से जल्दी जहर निकल जाए और वह किसी भी तरह से बच जाए । जहर शरीर में जितने अधिक समय तक रहेगा, उतना ही अधिक नुकसान होगा । वैसे ही ज्ञानी कहते हैं - "विषयों का विष जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक नुकसान आत्मा को होगा ।" अतः जल्दी से जल्दी इन्द्रिय-विषयों के विष का वमन कर डालो । भगवान् फरमाते हैं - "इन्द्रियाँ खराब नहीं हैं, किन्तु इन्द्रियों के विषयों के प्रति उत्पन्न होनेवाला विकार खराब है ।" इन्द्रियाँ तो महान् पुण्य के उदय से मिलती हैं । कहा भी है -

मनुष्य योनि में भी दुर्लभ है, आर्य देश उत्तम कुलयोग,
बड़े पुण्य से मिलता है यह, मानव को अति शुभ योग ।
उससे अधिक पुण्य से पाया, सुन्दर तन विचार गम्भीर,
इन्द्रिय-शक्ति, स्वस्थ मन का बल, दीर्घ आयु आरोग्य शरीर ॥

आर्यदेश, उत्तमकुल और पाँच इन्द्रियाँ महान् पुण्य से मिलती हैं । आँखें हों तो संत के दर्शन हो सकते हैं, सद्ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । कान मिलें तो भगवान् की वाणी संतों के मुख से सुनी जा सकती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि आँखें मिली हैं तो चाहे जैसे चित्र देखे जाय, और कान द्वारा किसी की निन्दा सुनी जाए । और जीभ मिली है, तो मुँह से मधुर बोलना, किन्तु अंतर में (कपटरूपी) जहर रखना । बहुत-से लोग कहते हैं कि मयूर का केकारव (टहुकार) मधुर होता है, तो मयूर जैसे बनो । पर मैं तो यह कहती हूँ कि मयूर जैसे नहीं बनना । मयूर मुँह से तो मधुर केकारव (टहुकार) करता है, परन्तु सारे के सारे सांप को निगल जाता है । अतः ऐसे मत बनना । अरे ! वाणी बोलो तो भी मीठी बोलना, कड़वी मत बोलना । यद्यपि शब्द के हाथ या पैर नहीं होते, परन्तु शब्द में ऐसी शक्ति है कि वह जीवित मनुष्य को मार डालती है । हमें साधु-प्रतिक्रमण में बताया गया है कि सोलह प्रकार की सावद्य भाषा साधु-साध्वी को नहीं बोलनी चाहिए । भगवान् फरमाते हैं - "ओ मेरे साधक ! किसी भी जीव को दुःख हो, ऐसी सावद्य भाषा मत बोलना । अय ! मेरे साधक ! किसी भी जीव के दुःख (देने) में निमित्त मत बनना ।" पाँच इन्द्रियों के विषय विकार को जीतकर आत्मा की तरफ मुड़ना (आत्मलक्षी बनना) । विषयों में आरक्त (आसक्त) मत बनना । दूध दुग्धरूप में रहे तो पुष्टिकारक होता है, परन्तु अगर वह दूध विकृत बन गया हो तब भी पीया जाए तो अतिहानि करता है । इसलिए ज्ञानी-

दांत कुरेदने की सली भी गृहस्थ की आज्ञा लेकर ले सकता है। यदि वह गृहस्थ की आज्ञा के बिना कोई चीज लेता है तो तीसरे महाव्रत का भंग होता है। अतः साधु को अपने महाव्रतों के प्रति और श्रावकों को अपने अणुव्रतादि बारह व्रतों के प्रति वफादार रहना चाहिए।

कल हमने यह चर्चा की थी कि त्रिकालज्ञानी बनने के लिए विषयों का वमन करना चाहिए (विषयोनुं करवुं वमन) फिर कषायों का शमन करना चाहिए (कषायोनुं करवुं शमन)। चाहे जितने वर्षो तक महान तप करो, पर अगर विषयों का वमन और कषायों का शमन नहीं किया, वहाँ तक चाहिए जितना लाभ नहीं मिलता। क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार कषाय हैं। आज जगत में मान (अहंकार) और लोभ के कारण बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ और झगड़े होते हैं। मान एक प्रकार का मीठा जहर है। जैसे सोमल कड़वा जहर है, वैसे धोया हुआ घी मीठा जहर है। समझिए - जैसे चोर और सर्प एक भव बिगाड़ते हैं, परन्तु कषाय तो हमारे प्रत्येक भव को बिगाड़ते हैं। तप तो खूब करें, किन्तु कषाय और ममत्व नहीं छोड़े तो आत्मा विशुद्ध कहाँ से हो सकती है। आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए **विषयों का वमन, कषायों का शमन** और **इन्द्रियों का दमन** करना है। इन्द्रियों का दमन करने हेतु चातुर्मास के पवित्र दिवस आ रहे हैं।

इस चातुर्मास में हमें कौन-सा अधिकार व्याख्यान में वांचना (कहना) है, यह आपको बताती हूँ। 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' का आठवाँ अध्ययन महाबलकुमार का है। वे महाबलकुमार मल्लिनाथ (तीर्थंकर) भगवान् किस प्रकार बने ? उस तथ्य के कथन का मंगल प्रारम्भ कल से होगा। सूत्र का वाचन करनें से तथा उसके अर्थ और परमार्थ का श्रवण करने से अनन्त कर्मो की निर्जरा होती है। सिद्धान्त का एक शब्द (रुचिपूर्वक) सुनें और उसे जीवन में अपनाएँ तो बेड़ापार हो जाता है। कर्म की ग्रन्थियाँ (गांठें) टूट जाती हैं। भगवान् महावीर ने चण्डकौशिक सर्पराज को 'बुज्झ-बुज्झ' यह एक ही शब्द कहा था; इतने से शब्द को (रुचिपूर्वक सुनने से) वह सर्प मिटकर देव बन गया। अतः भगवद्‌वाणी सुनने के लिए यथासमय पहुँचने का प्रयास करना। कल से भगवती मल्लि का अधिकार चालू होगा। कुछ जीवों को आत्मतत्त्व की बातें अच्छी लगती हैं, कुछ जीवों को धर्मकथा रुचिकर लगती है। जैसे दरवाजे में कील और कब्जा दोनों की जरूरत होती है, वैसे ही दृष्टान्त ताले हैं, तत्त्व द्वार है, इस दृष्टि से आत्मतत्त्व की बातें अत्यन्त सुन्दर उदाहरणों और तर्कों द्वारा समझाई जाएँ तो जीव आसानी से समझ सकता है। अतः कल से इस अधिकार का मंगल प्रारम्भ होगा। आप सभी वीरवाणी का भलीभांति लाभ लेंगे।

अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा। आज इतना ही।

पुरुष कहते हैं - "इन्द्रिय-विषयों का वमन करके आत्म-साधना कर लो । प्रतिदिन सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, व्याख्यान सुनो, संतदर्शन करो, फिर जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं होगा ?"

बन्धुओं ! जब जीवन में परिवर्तन आएगा, तब उसकी दशा कोई और ही हो जाएगी । अन्तर से विषयों का विष निकल जाएगा, तब कोई तुम्हारे प्रति चाहे जैसे शब्द निकालेगा तो तुम्हें जरा भी दुःख नहीं होगा । किन्तु अन्तर में विषयों के विष भरे होंगे तो कोई तुम्हारे लिए अच्छा कहेगा तो तुम्हें अच्छा लगेगा, (कोई तुम्हारे लिए बुरा कहेगा तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा) । अनादिकाल से जीव को क्या अच्छा लगता है ? कोई तुम्हें पत्र में लिखे - 'श्रीमान्', 'सेठ' या 'शाह' तो तुम्हें प्रिय लगता है, परन्तु कोई कहे - 'क्यों शैतान !' तो तुम्हें कैसा लगता है ? तुरंत बाहर जाकर वक्रता से बोलोगे - "क्या मैं शैतान ? मैं तो श्रावक हूँ श्रावक !" परन्तु (अन्तर की गहराई में उतरकर) विचार करना कि मैं श्रावक हूँ या शैतान हूँ ? श्रावक-कुल में जन्म लेकर मैं काम शैतान का करता हूँ या श्रावक का ? जीव (आत्मा) को स्वयं विचार करना है कि मुझमें श्रावक के गुण हैं या शैतान के ? यह बात अपने आपसे पूछो ! जिस आर्यदेश में तुम्हारा जन्म हुआ है, उसका तुम्हारे मन में कितना गौरव होना चाहिए ? (प्राचीनकाल में) आर्यदेश में जन्मे हुए शिकारी के मन में भी आर्यभूमि का कितना गौरव था ?

एक बार एक शिकारी शिकार करने के लिए जंगल में गया । एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे-बैठे बात कर रहे थे । इतने में शिकारी शिकार करने हेतु तैयार हुआ । उसे देखकर दोनो पक्षी बोले - "वीरा ! तू हमारी एक बात सुन ले, फिर तुझे जो करना हो सो करना ।" पक्षियों की बात सुनकर शिकारी बोला - "पक्षियों ! मैं भले ही शिकारी हूँ, पर आर्यदेश में जन्मा हूँ । मुझे अपने आर्यदेश का गौरव है । अतः कहो, तुम्हारी बात सुनने के लिए मैं तैयार हूँ ।" पक्षी बोले - "वीरा ! हमारे छोटे-छोटे दो बच्चे हैं । वे अभी तक उड़ना नहीं सीखे । उनके लिए हम अन्नकण प्राप्त करने हेतु आए हैं । अगर हम ठीक समय पर नहीं पहुँचे तो वे भूखे रहकर तड़पेंगे । अतः हमें थोड़ी देर के लिए (उनके पास) जाने दो । हम अपने बच्चों को अन्न के दाने खिलाकर, उनसे प्यार करके और अन्तिम हित-शिक्षा देकर तुरंत वापस लौट आएँगे ।" शिकारी ने कहा - "अच्छा ! मैं तुम्हें जाने देता हूँ । परन्तु तुम वापस लौट आओगे, इसकी क्या प्रतीति ?"

बन्धुओं ! इस शिकारी के मन में आर्यभूमि का कितना गौरव है ? शिकारी क्रूर होते हुए भी हाथ में आया हुआ शिकार जाने देता है । बोलो, तुम्हें कोई ग्राहक रूपी शिकार मिल जाए तो उसे छोड़ दोगे या अपना काम निकाल लोगे ? क्या करोगे ? बोलो तो सही : (हँसाहँस) (श्रोताओं में से आवाज - हम तो उसका पूरा शिकार कर

व्याख्यान - ३

आषाढ़ सुदी ११, बुधवार ता. ७-७-७६

धर्मश्रवणपूर्वक श्रेयमार्ग में सच्चा सुख है

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जगत् के समस्त जीवों को आत्मोन्नति और आत्मकल्याण का सत्यपथ बतानेवाले परमकृपानिधि वीतराग - प्रभु ने विश्व के समक्ष अध्यात्म का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया और स्याद्वाद शैली से आगमवाणी का प्रकाश किया। आगम आत्मदर्शन करने का दर्पण है। आत्मनिरीक्षण करने हेतु आगम में दृष्टिपात करना पड़ेगा। आप मुख पर रहे हुए दाग देखने के लिए दर्पण रखते हैं, जैसा आपका मुख होगा, वैसा ही दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ेगा। वैसे ही आगमरूपी दर्पण भी आत्मा पर पड़े हुए दाग (दोष) बताएगा।

भगवद्वाणी के रूप में वर्तमान काल में ३२ आगम हैं। उनमें से ११ अंगसूत्रों में छठ्ठा अंगशास्त्र है - ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र। जिसे धर्मकथानुयोग में परिगणित किया गया है। उसमें महान् पुरुषों के जीवन का वर्णन है। जीव को स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा और देशकथा, इन चार विकथाओं में जितनी दिलचस्पी है, उतनी धर्मकथा में (प्रायः) नहीं है। भगवान् फरमाते हैं - "हे जीवों ! तुम कथा करो तो ऐसी करो, जिससे कर्मो का बन्धन कटे।" विकथा या कर्मकथा जन्म मरणादि रूप संसार की वृद्धि करती है; जबकि धर्मकथा संसार के बन्धन को काटती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन (सू. २३) में गणधर गौतम स्वामी ने धर्मकथा के सम्बन्ध में भगवान से पूछा -

"धम्मकहाएणं भंते । जीवे किं जणयइ ? (उ.) धम्मकहाएणं निज्जरं जणयइ । धम्मकहाएणं पवयणं पभावेइ । पवयणपभावेणं जीवे आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ ।"

अर्थात् "*भंते ! धर्मकथा करने से जीव को क्या लाभ होता है ?*" (उ.) "गौतम ! धर्मकथा करने से कर्मों की निर्जरा होती है, धर्मकथा से प्रवचन की प्रभावना होती है। प्रवचन की प्रभावना करने से जीव भविष्य में शुभफल देनेवाले कर्मों का बन्ध करता है।"

'ज्ञाता सूत्र' में कछुए का दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि कछुए को कोई पकड़ने के लिए आता है, तब वह अपनी इन्द्रियों का गोपन करके बैठ जाता है; इस कारण वह बच जाता है। यही न्याय अपने पर घटित करना है। जो मनुष्य अपनी

लेते हैं) । वे पक्षी कहते हैं – "वीरा ! तू जिस आर्यभूमि में जन्मा हुआ है, उसी आर्यभूमि में हम रहते हैं । हमें भी अपनी आर्यभूमि का गौरव है । हम वचन देते हैं कि हम अपने बच्चों से मिलकर तुरंत वापस लौट आएँगे ।" पक्षी अपने बच्चों के पास गये, उन्हें अन्नकण खिलाये, प्यार किया और उन्हें अंतिम हित-शिक्षा देते हुए कहा – "प्यारे बच्चों ! अब तुम संभलकर रहना और स्वयं अन्न के दाने बीनना सीखना और तुम अब अपने पैरों पर खड़े रहना सीखना । अब हम जा रहे हैं ।" बच्चे पूछते हैं –"हे माता-पिता ? आप हमें (निराधार) छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ?" तब वे बोले – "अब हम सदा के लिए (तुमसे बिछुड़कर) जा रहे हैं ।" इतना कहकर बच्चों को तड़पते छोड़कर वे पक्षी दिये हुए वचन का पालन करने के लिए शिकारी के पास आकर खड़े हो गए । यह देख शिकारी आश्चर्य में पड़ गया । दोनों पक्षी कहने लगे – "वीरा ! अब तुझे जो करना हो, तू कर सकता है । परन्तु तू हमें मारे उससे पहले एक प्रश्न हमें तुमसे पूछना है, क्या तू उसका जवाब हमें देगा ?" शिकारी ने कहा – "पूछो ! मैं स्वयं आर्यदेश का मानव हूँ, तुम्हें जवाब नहीं दूं तो किसे दूंगा ?" पक्षी कहते हैं – "मेरे प्रश्न के उत्तर में मुझे तुम्हें सच्ची सलाह देनी पड़ेगी ।" शिकारी बोला – "मैं अवश्य ही तुम्हें सच्ची सलाह दूंगा । तुम्हें जो कुछ पूछना हो, निःसंकोच पूछ सकते हो ।" पक्षी बोले – "शिकारी शिकार करने हेतु तीर छोड़े, उस समय (पक्षी) किस दिशा में उड़े तो वह बच सकता है ?" यह सुनकर शिकारी विचार करने लगा – 'ओहो ! इन्होंने तो अपने बचने का मार्ग ढूंढ लिया ।' इस प्रश्न के जवाब में अगर मैं सच्ची सलाह दूं तो मेरा धंधा ही चौपट हो जाए । फिर यह दूसरे सबको (शिकार से) बचने का उपाय बता सकता है ।

देवानुप्रियों ! अगर तुम्हारे पास कोई सलाह लेने आए कि कौन-सा धंधा (व्यवसाय) करूँ, जिससे सुखी हो जाऊँ ? तो तुम उसे सच्ची सलाह दे दोगे न ? क्योंकि तुम भी आर्यदेश में जन्मे हो ! (हँसाहँस) शिकारी ने सोचा कि मेरा जो होना हो सो हो, पर मुझे तो इन्हें सच्ची सलाह देनी चाहिए । अगर सच्ची सलाह न दूं तो मेरी आर्यभूमि लज्जित हो (बदनाम हो) जाएगी । शिकारी कहता है – "शिकारी जिस दिशा में तीर छोड़े उससे विरुद्ध दिशा में उड़े तो उसके प्राण बच सकते हैं ।" इस प्रकार शिकारी ने अपना शिकार छोड़कर उसे बचने का मार्ग बता दिया और पक्षियों ने अपने प्राण बचा लिये । ऐसा था आर्यभूमि का गौरव ! वह तो शिकारी था, आप तो श्रावक हैं, आपके मन में भी आर्यभूमि का गौरव होना चाहिए ।

अन्तरात्मा में ज्ञान का दीपक प्रकाशित करने हेतु तथा सच्चा सुख प्राप्त करने हेतु विषयों का वमन और कषायों का शमन करना चाहिए । विषयों का वमन करने के बाद कषायों का शमन किस प्रकार होता है ? इस तथ्य का भाव यथा अवसर कहा जाएगा ।

इन्द्रियों पर कंट्रोल (नियंत्रण) रखता है, वह (अपनी इन्द्रियों को उन्मार्ग से बचाकर) महान् सुख प्राप्त करता है और परम पवित्र रहता है ।

श्रीसुधर्मास्वामी से उनके सुशिष्य श्रीजम्बूस्वामी विनयपूर्वक पूछते हैं - "भंते ! 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में भगवान ने किन भावों का निरूपण किया है ?" यहाँ वीतरागवाणी का अमृतमय भोजन परोसनेवाले भी उत्तम थे, और उसे (रुचिपूर्वक) झेलने (लेने) वाले भी उत्तम थे । ये दोनों महान् पुरुष थे । सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही टिक सकता है । वह मिट्टी के, पीतल के, स्टील के या चांदी के बर्तन में टिक नहीं सकता । प्रथम तो, सिंहनी का दूध प्राप्त होना भी मुश्किल है, अगर मिल भी जाए तो ऐसे-वैसे पात्र में वह टिकता नहीं । इसी प्रकार, बन्धुओं ! अव्वल तो, वीतरागवाणी का श्रवण मिलना मुश्किल है । कदाचित् तुम्हें ऐसा लगता होगा कि हमें तो प्रतिदिन वीतरागवाणी सुनने को मिलती है । फिर कहाँ मुश्किल है ? उपाश्रय जाएँ तो हमें महासतीजी वीतरागवाणी सुनाती हैं । परन्तु ध्यान रखो, तुम्हारे प्रबल पुण्य का उदय हो, तभी यह वाणी सुनने को मिलती है । मान लो, घर से तुम व्याख्यान सुनने के लिए चल पड़े, अभी उपाश्रय के जीने पर पैर रखा कि पीछे से पुत्र दौड़ता-दौड़ता तुमको बुलाने आया - "पिताजी ! जल्दी घर चलिए । माताजी गिर पड़ी हैं, उनको बहुत चोट लगी है ।" ऐसी स्थिति में तुम्हें तुरंत घर जाना पड़ता है न ? कदाचित् तुम व्याख्यान सुनने के लिए आकर बैठे और नींद का झोंका आ जाए तो एक शब्द भी सुना जा सकता है क्या ? इसीलिए मैं कहती हूँ कि वीतरागवाणी के श्रवण का योग मिलना कठिन है । कदाचित् वाणी सुनने का मिल भी जाए, तो उसका अन्तर में उतरना या टिकना, जीव की पात्रता-योग्यता पर निर्भर है ।

बन्धुओं ! आपको करोड़ों की सम्पत्ति मिल गई, परन्तु यदि आपके जीवन में धर्म (धर्माचरण) नहीं है, वीतरागवाणी अन्तर में उतरी नहीं है, तो उस जीवन की कोई कीमत (सार्थकता) नहीं है । कोई व्यक्ति धनवान है, पर धर्मवान नहीं है, तो वह जीव दया का पात्र है । प्रचुर सम्पत्ति होने पर भी (विदेशों में) आत्महत्या के किस्से बहुत बनते हैं, ऐसा क्यों ? इसके पीछे कारण है - धर्म का अभाव ! वहाँ सम्पत्ति है, पर संत नहीं हैं, धन है, पर धर्म नहीं है । जबकि भारत में ऐसे किस्से वहाँ की अपेक्षा बहुत ही कम बनते हैं, क्योंकि यहाँ (की जनता में) धर्म है और धर्म को समझानेवाले संत भी हैं । जैन-धर्मगुरु कितने निःस्वार्थी होते हैं । अन्य धर्मों के धर्मगुरुओं में तो कोई न कोई स्वार्थ होता है, जबकि जैनधर्म के संतों को कोई स्वार्थ नहीं होता । उनके दिल में एक मात्र यही भावना होती है कि भव्यजीव सत्य को (सद्धर्म को). समझे (प्राप्त करे); इसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के प्रति ममत्व भाव हट जाए । जब संत के सत्संग का सच्चा रंग लगेगा, तब तुम्हें करोड़ों की सम्पत्ति भी धूल जैसी लगेगी । ऐसा सत्य समझाने की शक्ति वीतरागवाणी में है ।

व्याख्यान - २

आषाढ़ सुदी १०, मंगलवार ता. ६-७-७६

परभाव में व्याधि : स्व-भाव में समाधि

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त उपकारी, वात्सल्य का प्रवाह प्रवाहित करनेवाले, परम कृपानिधि, जगत के समस्त जीवों को आत्मोन्नति और कल्याण की सच्ची राह बतानेवाले, महान करुणासागर, वीतराग भगवान् ने जगत् के समस्त जीवों का कल्याण करने की भावना से आगम की अमूल्यवाणी का स्त्रोत बहाया। तीर्थकर भगवन्तों के मुखकमल में से वाणी वर्षी, गणधरों ने उसे झेली, आचार्यो ने उसे लिपिबद्ध की। भगवान का कथन है - "जिस आत्मा को (जन्म-मरणादि दुःख रूप) संसार खटकेगा, उसका कर्म से छुटकारा होगा।" संसार का अर्थ क्या ? जहाँ जन्म-मरण, संयोग-वियोग आदि हैं, उसका नाम संसार है। जहाँ ये सब द्वन्द्व नहीं हैं, उसका नाम है - मोक्ष ! जो आत्माएं सिद्धस्वरूप को प्राप्त कर चुकी हैं, उनके जन्म-जरा-मरण, संयोग-वियोग, रोग-शोक आदि कुछ भी नहीं हैं। जहाँ तक कर्मो की वर्गणा मौजूद है, वहाँ तक जन्म-मरणादि का अस्तित्व है। जहाँ तक, भव-परम्परा खड़ी है, वहाँ तक ये दुःख सर्वथा दूर होनेवाले नहीं हैं। संसार में दुःख बहुत हैं। कदाचित् किसी जीव के पुण्योदय से दूसरे दुःख वर्तमान में विद्यमान न हों, परन्तु जन्म-जरा-रोग-मरण, ये चार प्रकार के दुःख तो (सिद्ध परमात्मा के सिवाय) तमाम संसारी जीवों के मौजूद हैं। ये दुःख सिर्फ सिद्धगति में नहीं हैं। जन्म-जरा-मरण-रोगादि दुःखों से मुक्ति पानी हो तो मोक्ष (सर्व कर्म मुक्ति) की साधना करनी चाहिए।

बन्धुओं ! आपके संसार-व्यवहार में भी कोई वस्तु प्राप्त करनी हो तो वह वस्तु जहाँ मिलती है, वहीं से ही प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं। तब फिर मोक्ष प्राप्त करने के लिए तो कितना पुरुषार्थ करना चाहिए ? महान पुरुषों ने कहा - (पहले यह सोचो) "रोग कौन-सा है, और उसके लिए औषध कौन-सा है ?" रोग है - परगृह और औषध है - स्वगृह। तात्पर्य यह है कि परद्रव्य का राग यह रोग है और इसकी दवा है - सत्संग (महान पुरुषों की उपासना), वीतरागवाणी का पान और शास्त्रों का वाचन। पर का संग बीमारी है, इसे मिटाने की दवा है - साधु-साध्वियों, सज्जन पुरुषों का सत्संग, महान आत्माओं की उपासना। आज जीव क्यों दुःखी है ? कर्म की विडम्बना से। कर्म की विडम्बना कहाँ से आई ? पर के संगरूपी रोग से। जीव जगत के विषयों

रांका और गांका के दृष्टान्त से इस तथ्य को समझें । पंढरपुर में रांका नाम के एक सेठ रहते थे । उनकी पत्नी का नाम था - वांका । वे दोनों पति-पत्नी बहुत धर्मिष्ठ थे । धर्म को समझे हुए थे, इसलिए उनके जीवन में खूब सन्तोष था । उनकी सन्तोष वृत्ति और निर्लोभता की प्रशंसा सुनकर एक देव को उनकी परीक्षा करने का विचार हुआ । एक दिन सेठ-सेठानी दोनों घूमने जा रहे थे । उस समय देव ने स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई एक थैली रास्ते में डाल दी । (मार्ग में पड़ी हुई) इस थैली को देखकर रांका सेठ ने सोचा - 'पीछे सेठानी आ रही है । इस थैली में भरी हुई सोने की मोहरें देखकर कदाचित् उसका मन ललचा जाए तो ?' अतः वे सोने की मोहरों पर धूल डालकर उसे ढकने लगे । पीछे-पीछे चली आ रही सेठानी ने अपने पति को सोना-मोहरों पर धूल ढकते देख पूछा - ''स्वामीनाथ ! यह क्या कर रहे हैं आप ?'' इस पर रांका सेठ ने कहा - ''तुम्हें क्या दिखाई देता है ?'' ''मुझे तो आप धूल पर धूल ढकते दिखाई दे रहे हो । धूल पर धूल डालकर ढकने की क्या आवश्यकता है ?'' देव ने दोनों की सन्तोषवृत्ति और निर्लोभता देखकर उनकी बहुत प्रशंसा की और चरणों में नमस्कार करके वह चला गया ।

देवानुप्रियों ! रांका सेठ को सोना मिट्टी जैसा लगा । परन्तु अगर आप चले जा रहे हों और रास्ते में सोना-मोहरों से भरी हुई थैली दिखाई दे तो आप क्या करेंगे ? उसे धूल से ढक दोगे, या उठा लोगे ? (हँसाहँस), भगवान का श्रावक परिग्रह में गले तक डूब जाए, इतना परिग्रह इकट्ठा करे, या परिग्रह की मर्यादा करे ? जैसे रांका-वांका को सोना पीली मिट्टी जैसा लगा, वैसे तुम्हें वह पीली मिट्टी जैसा लगे या प्यारा लगे ? बराबर विचार करके अन्तर्हृदय से जवाब देना । मुझे ओठों से (दिया हुआ) जवाब नहीं चाहिए, आपके हृदय से (उठा हुआ जवाब) चाहिए । आपको सोना मिट्टी जैसा प्रतीत होता हो तो बोलना और यदि मिट्टी-सा नहीं लगता हो तो समझना । मिट्टी तो मिट्टी है ही, सोना, हीरा, चांदी, ये सब भी मिट्टी (के प्रकार) ही हैं न ? मिट्टी और सोना आदि सब पृथ्वीकाय के ही भेद हैं । (अन्तर इतना ही है कि) हीरा, पन्ना, माणिक और सोना, इन सबमें आनेवाले (उत्पन्न होनेवाले) जीव की पुण्यवानी अधिक है । जीवन में जब (सच्ची) समझ आएगी तब सोना और मिट्टी दोनों एक सरीखे प्रतीत होंगे । कहा भी है -

'रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी; सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो ।'

''जब आत्मा (उच्च गुणस्थान पर पहुँचकर) जागृत हो जाएगा, तब उसे वैमानिक देव की समृद्धि और धूल (मिट्टी) दोनों समान प्रतीत होंगे । फिर (संसार की) किसी वस्तु पर ममत्वभाव नहीं रहता । आत्मा स्वयं स्वर्णपात्र बन जाएगा और उसे स्वयं को समझ में आ जाएगा कि मैं हीरे, माणिक, मोती, सोना तथा धन चाहे जितना इकट्ठा (संग्रह) करूँ, मगर मेरे साथ (परलोक में) कुछ भी आनेवाला नहीं है, ये सब यहीं रहनेवाले हैं । बन्धुओं ! आपके बाप-दादा चले गए, वे अपने साथ कुछ ले गए हैं क्या ? यदि ले गए हों तो कहना ! (हँसाहँस), साथ में कुछ भी ले जाया नहीं

की आसक्ति में मूढ बना, विषयों का संग होने से रागादि मलिन भाववाला बना। और फिर वह विषयों (की प्राप्ति) के लिए आरम्भ-समारम्भादि पापाचरण करनेवाला बना। इस कारण बहुत कर्मों का उपार्जन करके उसकी विडम्बनाओं को आमंत्रण दिया। फिर आत्मा दुःखी बनता है न ? उसका मूल कारण क्या है ? यह समझ में आया ? (मूल कारण है-) पर का संग। अतः वीतरागवाणी रूपी दवा कहती है - हे आत्मन् ! पर का संग और राग छोड़। किन्तु दूसरों की बात तो क्या करें, मगर जो कायम तेरे साथ रहता है, उस शरीर का भी राग छूटे तो यह रोग मिट जाय। जब शरीर का राग सर्वथा छूट जाता है, तब निरागी अवस्था आ जाती है। कहा भी है -

देह छतां, जेनी दशा वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमां, वन्दन हो अगणित ॥

जहाँ तक कर्म रहेंगे, वहाँ तक देह रहेगा। कर्मों से पूर्ण मुक्त नहीं बनता है, तब-तक उसे देह धारण करना पड़ता है। जब परद्रव्य का राग छूट जाता है तब आत्मा वीतराग दशा प्राप्त कर लेता है। तभी उसका रोग दूर हो जाता है। मस्तक दुःखता है, तब 'एस्प्रो' या 'एनेसिन' की गोली खाने पर थोड़ी देर के लिए आराम मिलता है। डोक्टर इंजेक्शन देता है, तब भी कुछ समय तक आराम मिलता है। यहाँ यह सोचना जरूरी है कि मस्तक की वेदना मंद पड़ने की हो और गोली ले ली तो सिरदर्द मिट जाता है। यह तो सिर्फ इस भव की वेदना है। परन्तु सदा के लिए भव-भव (भ्रमण) का रोग मिटाना हो तो सत्संग करो। यह सत्संग भी रूखा-सूखा नहीं, परन्तु जो संत वीतरागवाणी का मन्थन-मनन करके, वीतराग संत बनकर, जो औषध दें, उसका पान करने से रोग समूल नष्ट हुए बिना नहीं रहता।

परद्रव्य के प्रति राग ही आत्मा का रोग है। जैसे किसी की पुत्रवधू (घर से) बाहर भटकने लग जाय तो उसकी कोई कीमत नहीं रहती। चैतन्य आत्मा अनन्तशक्ति का स्वामी है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने स्वभाव में परिणत होती है। शरीर को अच्छा (पुष्ट) रखने के लिए इसे चाहे जैसे सुंदर मेवा-मिष्टान्न खिलाओ, फिर भी उसका स्वभाव सड़न-गलन-विध्वंसन का है। भले ही राजा का पुत्र हो, श्रेष्ठी पुत्र हो या महान् संत हो, फिर भी शरीर का स्वभाव तो जैसा है, वैसा ही रहनेवाला है। औदारिक शरीर का स्वभाव है - क्षीण होना, विनष्ट होना। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय आदि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में परिणमित होता है। अज्ञान-अवस्था में जीव स्वद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य में पड़ता है, और विवेक भूल जाने से उसे ध्यान नहीं रहता कि मेरा असली स्वभाव क्या है ? मुझे तो जन्म-मरण का चक्कर मिटाकर मेरे अपने स्थान (मोक्ष) में पहुँचना है। जैसे किसी अपराधी को अपराध करने से आजीवन कारागार की सजा मिली है। वहाँ उसे सख्त मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है, फिर भी

जाता, फिर भी आपका इन पर इतना ममत्व है, यदि (परलोक में) साथ में ले जाया जा सकता तो कितना ममत्व होता ? मुझे तो उन लोगों पर दया आती है, यदि (संग्रह किये हुए) धन पर ममत्व रह जाएगा, तो मरकर विषधर बनकर (कुंडली मारकर) उस पर बैठ जाएँगे क्या ? तीन - चार पीढ़ी उपभोग करे, इतना इकट्ठा कर लिया, फिर भी जीवन में सन्तोष दिखाई नहीं देता । सुबह से शाम तक उनकी दौड़ पुद्गल के पीछे होती है । अरे ! बहुत से लोग तो यों कहते हैं - "महासतीजी ! क्या करें, इस संसार में जरा भी सुख नहीं है ।" हम कहते हैं कि (गृहस्थी में) सुख न हो तो आ जाओ हमारे घर (हमारी लाइन) में (हँसाहँस) । हम तुम्हारे जैसे संकुचित वृत्तिवाले नहीं हैं, उदार हैं । तुम तो अपने सगे भाई को भी बिजनेस (व्यवसाय के सम्बन्ध में) बताये नहीं, जबकि हम खुले दिल से कहते हैं कि (सच्चा) सुख चाहिए तो आ जाओ (यहाँ) । (सच्चा) सुख तो वीतराग-मार्ग में है । कहा भी है -

"नवि सुही देवता देवलोए, नवि सुही पुढवी पईराया ।
नवि सुही सेठि - सेणावई य, एगंत सुही मुणी वीतरागी ।।"

देवलोक में प्रचुर ऋद्धि के स्वामी देव भी सुखी नहीं हैं, पृथ्वीपति राजा हो, सेनापति हो, या अरबपति, करोड़पति, लखपति धनिक हो या श्रीमान् सेठ हो, परन्तु कोई भी सुखी नहीं है । इस दुःखभरे संसार में अगर कोई सुखी है तो वीतरागी संत सच्चे माने में सुखी हैं । यह वेषधारी साधु की बात नहीं है, किन्तु वीतराग-प्रभु की आज्ञानुसार चलते हैं, वैसे साधु की यह बात है । जिसे संसार विष के कटोरे जैसा लगता है, वह जरा-सा निमित्त मिलते ही इसे (इस दुःखबहुल संसार को) छोड़कर चल पड़ते हैं संयम पथ पर ।

गौतम बुद्ध जब गृहस्थ जीवन में थे, तब की बात है । एक बार बहुत से मनुष्य एक मुर्दे को लेकर रोते-रोते जा रहे थे । किसी के जवान पुत्र की मृत्यु होने से उसके सगे-सम्बन्धी करुण विलाप कर रहे थे, साथ ही छाती-माथा भी कूट रहे थे । यह देखकर सिद्धार्थकुमार (बुद्ध का गृहस्थ जीवन का नाम) ने पूछा - "ये सब इतने क्यों रो रहे हैं ?" इस पर उसके आदमी कहते हैं - "जवान पुत्र मर गया है, इस कारण ये सब रो रहे हैं ?" यह सुनकर सिद्धार्थकुमार ने पूछा - "मर गया, इसका क्या मतलब ?" "शरीर में से जीव (आत्मा) निकल गया, इसे ही कहते हैं - मर गया ।" इस पर कुमार ने पूछा - "क्या मैं भी इस तरह मर जाऊँगा ?" उन्होंने कहा - "हाँ, जो जन्मा है, उसे अवश्य ही मरना है । हमें और तुम्हें, सबको एक दिन इस तरह मर जाना है ।" यह सुनकर कुमार बोला - "अहो ! ऐसा दुःख है (मृत्यु का) ? तब तो मुझे इस (जन्म-मरणादि) दुखों से परिपूर्ण संसार में नहीं रहना है ।" एक मनुष्य के शव को ले जाते देखकर, उन्हें संसार की असारता का भान हुआ और वे इसे छोड़कर साधु बन गए ।

बन्धुओं ! मृत्यु की एक घटना प्रत्यक्ष देखकर सिद्धार्थकुमार संसार से विरक्त होकर त्यागी साधु बन गए । मैं तुम्हें पूछती हूँ कि तुमने ऐसे कितने किस्से देखे ?

चौकीदार की हाजरी में उसे कम्पाउंड में घूमने-फिरने की छूट मिलती है। अगर वह ठीक काम करता रहे तो सरकार उसकी आजीवन कारावास की सजा में कटौती करके अमुक वर्ष के बाद उसे रिहा कर देती है। परन्तु कर्म राजा ने तो जीव को ऐसी जेल की सजा दी है, कि वह एक क्षणभर भी बाहर फिरने नहीं देता। जब जीव मोक्ष में जाता है, तभी कर्म से सर्वथा रहित हो जाता है। रोग किसे होता है ? शरीर हो उसको ही। जिसके कर्म लगे हैं, उसके शरीर है। सिद्ध परमात्मा कर्म से सर्वथा रहित हो गए, इस कारण उनके शरीर नहीं हैं, वे अशरीरी हैं। उनके शरीर नहीं हैं तो रोग भी (किसी प्रकार का) नहीं है। जहाँ शरीर है, वहाँ आधि, व्याधि और उपाधि है।

साधक जीवन में भगवान ने २२ परिषह बताये हैं। उसमें वध नामक एक परिषह भी बताया है। भगवान फरमाते हैं - "हे संत ! संयमी जीवन में कर्मयोग से कदाचित् कोई तुम्हारा वध करनेवाला मिल जाए, तब तू कषाय और राग-द्वेष से युक्त तो नहीं होगा न ?" किसी के यहाँ गौचरी-पानी के लिए जाओ, तब कोई तुम्हारा तिरस्कार भी कर सकता है। तिरस्कार की अपेक्षा वध का परिषह विशेष है। फिर भी २२ परिषहों में वध के परिषह को पहले नंबर में नहीं रखकर सर्वप्रथम क्षुधा परिषह को रखा। (इसके पीछे रहस्य यह है) मासखमण, सोलहभक्त, तप करो या वर्षीतप करो, तो कवलाहार बंद होता है, रोज-आहार तो चालू ही रहता है। जीव माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में ओज-आहार लेता है। वह आहार तो जीव जब इस शरीर को छोड़कर जाता है, तब छोड़ता है। यहाँ से छूटने के बाद जीव तीसरे या चौथे समय में तो (अगली गति में) उत्पन्न हो जाता है और वहाँ आहार करना शुरू कर देता है। भूख मिटाने के लिए जीव प्रयत्न करता आया है। शरीर है, वहाँ भूख-प्यास वगैरह सबकुछ है। जिस आत्मा की दशा देह में रहते हुए भी देहातीत रहती है, उसे परद्रव्य का संग अथवा खानपान वगैरह पुद्‌गलों का संग, यह सब आत्मा को बीमारी लगती है। उसके हृदय में रात-दिन यह बात खटकती रहती है कि यह बीमारी कैसे घटे, कैसे मिटे ? इस बात की चिंता रहा करती है, इसमें अगर खाने की बात आती है, तो उसे व्यर्थ की झंझट लगती है।

बन्धुओं ! विचार करना - परद्रव्य का संग और राग, ये आत्मा की बीमारी हैं। यह बात एकदम हृदय में नहीं बैठती। परन्तु बुद्धिपूर्वक विचार करना कि ज्ञानियों ने इसे बीमारी क्यों कही है ? उदाहरणार्थ - तुम्हें बुखार आया हो, तब क्या होता है ? शरीर को चैन नहीं पड़ता, खाने-पीने की रुचि नहीं होती; और संसार के कामकाज, व्यापार-धंधा और कमाई वगैरह ठप्प हो जाती है। इसी प्रकार जीव को 'पर' का संग आत्मा की दृष्टि से रोग है, क्योंकि उससे आत्मा के हित के अनेक काम विगड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ - रात को अपने धंधे के आय-व्यय का हिसाब करना हो, अथवा

तुम पर इस संसार की कितनी चोटें लगीं ? फिर भी अभी तक इस संसार से छूटने का मन होता है ? गन्ना कोल्हू में पेरा जाता है, अन्त में उसके छिलकों को फेंक दिया जाता है, ऐसी दशा (आज) तुम्हारी हो गई है । फिर भी (अभी तक) संसार का रस छूटा नहीं । अन्तिम समय तक - संसार का रस नहीं छूटेगा तो चतुर्गतिरूपी कोल्हू में पेरना पड़ेगा । अतः इसे समझकर संसार का रस (आसक्ति) कम करो ।

चातुर्मास में साधु-साध्वीजी शास्त्र (सिद्धान्त) में से किसी एक अधिकार पर व्याख्यान वांचते हैं । उसमें से श्रोताजन किसी प्रेरणा का पीयूष प्राप्त करके अपना जीवन उज्ज्वल बनाते हैं । हमें 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का वाचन करना है, जिसमें मल्लिनाथ भगवान् का अधिकार है । मल्लिनाथ भगवान् की बात तो बाद में आएगी । उससे पूर्व उसकी पूर्वभूमिका का वर्णन होना चाहिए न ? चित्रकार को एक चित्र बनाना हो तो वह सीधा ही चित्र नहीं खींचता । पहले वह प्लान निश्चित करता है । फिर चित्र खींचता है । चित्र का रेखांकन करने के बाद वह निर्णय करता है कि इसमें कैसे रंग भरूँ, जिससे चित्र का सुन्दर उठाव आए ! दीवार पर चित्र बनाना हो तो पहले उस दीवार को स्वच्छ-समतल बनानी पड़ती है । किसान को खेत में (अनाज) बीज बोना हो तो पहले वह उस जमीन में कांटे-कंकर आदि निकालकर उसे साफ, समतल और मुलायम बनानी पड़ती है । प्रतिक्रमण करते समय पहले आत्मारूपी क्षेत्र को शुद्ध करने हेतु क्षेत्र विशुद्धि करनी पड़ती है । इसी प्रकार सिद्धान्त (शास्त्र) का वाचन व श्रवण करने से पूर्व अन्तर को विशुद्ध एवं निर्मल (पूर्वाग्रहादि रहित) बना लेना चाहिए । ऐसी स्थिति में वीतरागवाणी का श्रवण, मनन और चिन्तन करने से सत्य-मार्ग को समझा-जाना जा सकता है । 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा गया है -

"सोच्चा जाणाइ कल्लाणं, सोच्चा जाणाइ पावगं ।
उभयंपि जाणाइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥"

- दशवैकालिक सूत्र, अ.-४, गा.-११

वीतरागवाणी का श्रवण करने से जीव कल्याण के मार्ग को, और पापकारी मार्ग को जान लेता है । दोनों मार्गों को सुनकर जान लेता है, तत्पश्चात् दोनों में से जो श्रेयस्कर मार्ग है, उसका सम्यक् आचरण करे ।

बन्धुओं ! तुम स्वयं अनुभव करना ! जब तुम्हारे सिर पर बड़ी आफत के बादल मंडरा रहे हों, किसी बड़े आघात का कोई कारण बना हो, उस समय तुमने जिन्हें सुख के साधन माने हैं, वे हीरे, पन्ने, माणिक, मोती, सोना, सम्पत्ति रेडियो, टी.वी., मोटर, पुत्र-परिवार या मित्र कोई भी क्या तुम्हें शान्ति प्रदान कर सकता है ? नहीं । उस समय कोई संतपुरुष आकर तुम्हें धर्म के दो शब्द सुनाए तो कैसी अलौकिक शान्ति होती है ?

धर्मकथानुयोग के रूप में परिगणित 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' गहराई से समझपूर्वक सुना-समझा जाए तो वह मोक्ष का स्थान और धाम (प्राप्त करने में सफल हो सकता

नाम भीष्म पितामह क्यों पड़ा ? पूर्ण यौवन अवस्था में पिता के लिए पुत्र (भीष्म ने भोग का त्याग किया। भोग धधकती आग है। जिस कन्या के साथ भीष्म विवा करनेवाले थे, उस कन्या के साथ विवाह करने का पिता का मन हुआ। अन्त में, पित के लिए भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले ली। और उस कन्या का विवा पिता के साथ करा दिया। इस कारण उनका नाम पड़ा - भीष्म पितामह। भीष्म पितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं - "आज आपके मुख पर उदासीनता और ग्लानि क्यों दिखाई दे रही है ? आपका मुख आज खिन्न क्यों है ?" यह प्रश्न सुनकर भीष्म पितामह की आँख में आंसू आ गए। वे बोले - "मैं अपनी की हुई भूल का पश्चात्ता कर रहा हूँ।" धर्मराज ने कहा - "आप तो महान हैं, आपने कौन-सी भूल की ?" "पुत्र ! तुम्हें इस बात का शायद पता नहीं होगा, पर भूल करनेवाले को तो अपनी भूल का ख्याल होता है न ? जिस समय भरी सभा में द्रौपदी का चीर खींचा जा रह था उस समय मैं वहाँ बैठा हुआ था। सभी मुझे भीष्म पितामह के रूप में मस्तक नमाते हों, मेरी आज्ञा सदैव शिरोमान्य करते हों, ऐसा मैं वहाँ बैठा था, फिर मेरी आँख के समक्ष द्रौपदी को निर्वस्त्र करके अपनी जांघ पर (बिठाने) का षड्‌यंत्र दुर्योधन रच रहा हो, फिर भी उस समय मैं एक शब्द भी नहीं बोला। मैंने कितनी गंभीर भूल की ! मैंने जीवन में बहुत पाप किया है।" इस प्रकार भीष्म पितामह ने भूल को भूल के रूप में मानकर जगत के समक्ष प्रस्तुत की है। जो साधक आत्मा भी अज्ञान दशा से की हुई भूल को प्रगट न करे तो समझो, उसने अपनी साधुता लुटा दी है। श्रावक भी अपनी भूल प्रगट न करे तो उसे श्रावकपन का लोप कर दिया।

सांप की अपेक्षा पाप का भय अधिक लगना चाहिए : बन्धुओं ! क्या तुम्हें वास्तव में सांप की अपेक्षा पाप अधिक भयंकर लगा है ? व्यवहार में जैसे पर्व के दिन पहनने की, बहुत दिनों से सुरक्षित रखी हुई कीमती से कीमती मूल्यवान पगड़ी पहनकर तुम जा रहे हो, और उस समय कोई उच्च स्वर से बोलकर तुम्हें चेताए कि 'तुम्हारी पगड़ी में सांप है !' तो तुम (उसे सुनकर) क्या करोगे ? पगड़ी उतारकर फेंक दोगे। क्योंकि सांप का अर्थ है - जीवननाशक जंतु ! तुम अपनी पगड़ी फेंक देने के बाद घर जाकर सोचोगे की पगड़ी गई तो गई, पर जीते जी घर आ गया, बस इतनी गनीमत है। तुम्हें सांप जितना भय पाप से लगता है क्या ? तुम्हें सांप का और तीखे कांटे का जितना भय लगा है, उतना पाप का नहीं लगता ! सच तो यह है सांप का और कांटे का भय लगा है, उतना पाप का भय नहीं लगा ! पग में कांटा चुभ गया हो तो तुरंत सुई से उसे निकाल लिया जाता है ! क्या कांटे पैर में रहने दिया जाता है ? उसका कारण यह है कि कांटा अगर अंदर रह जाए तो वह सड़ जाता है, वहाँ रस्सी पड़ जाती है। इसी प्रकार कोई (दुःसाध्य) रोग हो जाता है तो तुरंत डोक्टर या वैद्य के यहाँ जाते हो। शरीर के लिए जितनी चिन्ता है, क्या उतनी चिन्ता पाप न हो, इसकी है ? सांप ज्यादा हैरान करता है या पाप ? जहाँ तक आत्मा पाप से डरता नहीं,

है ।) धर्मकथानुयोग जीव ने अनेक बार वांचा (पढ़ा) और सुना है, परन्तु उसमें समागत महापुरुषों का कीर्तन, अन्तःकरण से उनके गुणों का बहुमान, अनुमोदन और उन गुणों की प्राप्ति की उत्कण्ठा होनी चाहिए, वह हुई नहीं । उनकी भक्ति, सम्मान और उनके चरित्र के प्रति बहुमान से मोक्ष की प्राप्ति होती है । धर्मकथानुयोग भगवद्वाणी है । कतिपय जीव धर्मकथा से भी महान् लाभ प्राप्त कर लेते हैं । भगवान् की वाणी तो अर्थरूप होती है । कहा है -

"अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गुंत्थति गणहरा निउणा ।।"

तीर्थकर अर्थरूप में सिद्धान्त का कथन करते हैं, निपुण गणधर भगवन्त उस अर्थरूप में कथित वाणी को गूंथते हैं और फिर आचार्य भगवन्तों ने उन शास्त्रों को लिपिबद्ध किया (लिखा) है । भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे । उनमें प्रथम गणधर थे - इन्द्रभूति गौतमस्वामी । फिर पाटानुपाट पंचम गणधर हुए सुधर्मा-स्वामी । तुम्हारे मन में प्रश्न उठेगा कि प्रथम गणधर गौतमस्वामी थे, तो उसके बाद सीधे पंचम गणधर सुधर्मास्वामी का नाम क्यों आया ? सुधर्मास्वामी से पूर्व चार गणधर हो गए । उनमें गौतमस्वामी को केवलज्ञान हुआ और वे तुरंत मोक्ष पधारे । सिद्धान्तानुसार तीर्थकर हों, गणधर हों या सामान्य केवली हों, उनके केवलज्ञान में कोई अन्तर नहीं होता । तीर्थकर भगवान् की सेवा में ६४ इन्द्र रहते हैं । वे चौतीस अतिशय और पैंतीस प्रकार की सत्यवाणी के अतिशय से अलंकृत होते हैं । बाकी केवलज्ञान तो सब में एक सरीखा होता है । गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, अतः वे उस पाट पर बैठकर यों नहीं कह सकते कि भगवान् जो कह गए हैं, उसीको मैं कहता हूँ । क्योंकि उनका ज्ञान भगवान् के सदृश था । गौतमस्वामी के बाद के तीन गणधर तो भगवान् की मौजूदगी में ही मोक्ष पधार गए थे, और सुधर्मास्वामी छद्मस्थ थे । इस कारण गौतमस्वामी के पाट पर वे शीघ्र आ गए । वे पाट पर बैठकर अपने शिष्य जम्बूस्वामी को कहते थे - "हे आयुष्यन् जम्बू ! भगवान् ऐसा कह गए हैं, मैंने भगवान् के श्रीमुख से इस प्रकार सुना है ।" वे सुधर्मास्वामी कैसे थे ? इस विषय में कहा है -

चौदह पूरवधार कहिये, ज्ञान चार वखाणीए ।
जिन नहीं पण जिन सरीखा, एहवा सुधर्मास्वामी जाणीए ॥

सुधर्मास्वामी छद्मस्थ जरूर थे, परन्तु उनका श्रुतज्ञान इतना अधिक विशुद्ध और विशाल था कि जिन (वीतराग अर्हन्त) न होते हुए भी उन्हें जिन सदृश कहा गया है । ऐसे श्री सुधर्मास्वामी को जम्बूस्वामी विनयपूर्वक वन्दन करके जब प्रश्न पूछते थे, तो वे उसका समाधान करते थे । प्रश्न चर्चा करने का आनन्द तभी आता है, जब एक-एक प्रश्न पर खूब बारीकी से विश्लेषण एवं छानबीन हो, तभी श्रोता का ठीक समाधान होता है, उसकी समझ में आ जाता है । ऐसी छान-बीन करते समय श्रोता में भी ज्ञान होना चाहिए ।

वहाँ तक उसके हाथ से किसी का वास्तविक रूप में भला हो, ऐसी आशा रखना असंभव है ।

पापभीरु बने हुए आत्मा को अनीति करते हुए सैकड़ों विचार आएँगे । परन्तु जो इन्द्रियों के मोह में पड़ा है, उसे यह पता नहीं है कि पाप किसलिए करना पड़ता है ? सुन्दर प्रकार के शब्द, रूप, रंग, गन्ध और स्पर्श इन विषयों को प्राप्त करने के लिए ही न ? आँख को सुन्दर देखना अच्छा लगता है, कान को सुन्दर आवाज सुनना है; नाक को सुन्दर गन्ध चाहिए; जीभ को सुन्दर रस चाहिए, और स्पर्शेन्द्रियों को सुन्दर स्पर्श चाहिए । पाप करनेवाला इन पाँचों इन्द्रियों के आधीन (गुलाम) बना हुआ है । सभी इन्द्रियों की पोषक रसनेन्द्रिय है । सभी इन्द्रियों को मजबूत करके बहकानेवाली जीभ है । जीभ खानपान और भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक को भुला देती है ! उन (इन्द्रियों) को सामग्री दे दी तो समझो, वे सब इन्द्रियाँ हैवान बन जाती हैं । ये इन्द्रियाँ जितनी खुल्ली छूटी कि उतनी ही पाप-परायणता अधिक ! सभी इन्द्रियाँ अपनी-अपनी मनोज्ञ (मनपसंद) वस्तुओं पर टूट पड़ने लगीं, वहाँ फिर पाप की भीति नहीं रहती । और जहाँ पाप की भीति नहीं रहती, वहाँ नीति भी नहीं रहती । इन्द्रियाँ जितना मांगे, उतना दे दो तो क्या जीवन सुखरूप बन जाता है ? नहीं ! उदाहरणार्थ - तुम्हें सुन्दर मेवा-मिष्टान्न भोजन में मिले, तो उनका भोजन करके कौन सुख भोग सकता है ? जीभ पर काबू रख सकता है, वही जो व्यक्ति रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण खोकर खाए, वह सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर सो नहीं सकता ! क्योंकि उसे घबराहंट होती है, तथा गैस जैसे अनेक रोग हो जाते हैं । इन्द्रियों के आधीन बने, कि पाप का भय गया । पाप का भय नहीं रहा (गया) अर्थात् - नीति नहीं रही । नीति के चले जाने का अर्थ हुआ - वह आकृति से मनुष्य रहता है, परन्तु प्रकृति से मानव नहीं रहता । फिर ऐसे व्यक्ति में स्व-पर का, अच्छे-बुरे का, हित-अहित का विचार नष्ट हो जाता है । यह सुविचार नष्ट हो जाने पर जीवन में क्या रहा ? अतः समस्त पापों की जड़ है - इन्द्रियों की आधीनता !

अपनी बात चल रही थी कि भीष्म पितामह ने अपनी भूल तथा स्वयं किये हुए पाप को धर्मराज के समक्ष प्रगट कर दिया । अतः साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका अपने से जो भी भूल हो गई हो, उसे छुपाये नहीं । अपने कृत-पापों को प्रगट करने पर कदाचित् बचन के या मारपीट के प्रहार पड़े तो उन्हें समभाव से सहन करें । अर्जुनमाली प्रतिदिन सात-सात व्यक्तिओं की हत्या करता था, परन्तु सुदर्शन श्रावक का मिलन होने पर भगवान महावीर के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की । फिर उन्होंने भगवान महावीर से कहा - "ओ मेरे तारक प्रभो ! मैंने बहुत पाप किये हैं । मेरे पाप प्रबल हैं । आप मुझे उन पापों से मुक्त कराएँ ।" अर्जुनमाली के आयुष्य का बन्ध पड़ा नहीं था, इसलिए पाप से छुटकारा हो गया । अगर बन्ध पड़ गया होता तो उन

सुधर्मास्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी भी बहुत उत्साही, जिज्ञासु एवं विनयवान् थे । इसलिए उनका भी गुणग्राही विचारक आचार्यों ने खूब बखान किया है -

मात-पिता कुल जात निर्मल, रूप अनुप बखाणीए ।
देवताने वल्लभ लागे, एहवा श्री जम्बूस्वामी जाणीए ।।

जम्बूस्वामी अत्यन्त रूपवान थे । उनके मात-पिता के दोनों कुल पवित्र थे । उनका रूप देवकुमार जैसा था । देवों को भी प्रिय लगें, ऐसे थे - जम्बूस्वामी । उनमें विनयभाव तो इतना अधिक था कि जब-जब वे सुधर्मास्वामी से प्रश्न पूछते थे, तब-तब विनयपूर्वक वन्दन करके पूछते थे । विनयपूर्वक ग्रहण हुआ ज्ञान जीवन के अन्त तक टिक सकता है । उसके विपरीत गुरु का विनय किये बिना लिया हुआ ज्ञान तात्कालिक याद रहेगा, परन्तु बाद में वह उसे भूल जाएगा । अतः आत्मज्ञान प्राप्त करना हो तो अभिमान को और कषाय को दूर करके नम्र बनो । डोरे को सुई के नाक में से पार होना हो तो डोरे को पतला बनना पड़ता है । इसीलिए आत्मारूपी डोरे को सम्यक्त्वरूपी सुई में पिरोना हो तो कषायों को पतले (दुर्बल) करने पड़ेंगे ।

दो दिनों से अपनी बात चल रही है - **"विषयों का करना वमन, कषायों का करना शमन'** पर । अगर मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करना हो तो विषयों का वमन और कषायों का शमन करना पड़ेगा । कारण यह है कि अनादिकाल से आत्मा का अहित करनेवाला कोई शत्रु हो तो वह कषाय है । शास्त्रों में यत्र-तत्र कषायों की निन्दा की गई है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २३वें अध्ययन में कहा गया है - *"कसाया अग्गिणा वुत्ता !"* अर्थात् - कषायों को अग्नि की उपमा दी गई है । कषाय एक प्रकार से अग्नि है । अग्नि जहाँ उत्पन्न होती है, वह सर्वप्रथम उस स्थान को जला देती है । दिया सलाई जलती है तो सबसे पहले वह स्वयं को जलाती है, बाद में दूसरी वस्तु को जलाती है । इसी प्रकार जिसमें कषाय उत्पन्न होती है, वह पहले अपनी आत्मा का पतन करता है, और आत्मिक गुणों को उसमें जला डालता है । फिर कषाय द्वारा वह दूसरों को भी जलाता है ।

कषाय को चाण्डाल की उपमा भी दी गई है । प्राचीनकाल में चाण्डाल जाति सबसे नीच मानी जाती थी । भूल से भी अगर चाण्डाल का स्पर्श हो जाता तो तुरंत स्नान कर लेते थे । इसी प्रकार कषाय भी सबसे नीच (दुर्गुण) है । आत्मा को कषाय का स्पर्श हो जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और (आत्मा के) क्षमा आदि गुण मलिन हो जाते हैं । कहीं-कहीं कषाय को राक्षस की उपमा दी गई है । राक्षस दिखने में भी भयंकर होता है, वह निर्दय और क्रूर होता है । मनुष्यों का भक्षण करता है । इसी प्रकार जब कषाय का उदय होता है, तब आत्मा रौद्ररूप धारण कर लेती है । वह लज्जा, क्षमा आदि गुणों को नष्ट कर देता है तथा सत्य, शील आदि गुणों का भक्षण कर लेता है । अतएव कषायों का त्याग करना आवश्यक है ।

पापों का फल भोगने के लिए (जन्म-मरण करने हेतु अन्यत्र योनि में) जाना पड़
अर्जुनमाली भगवान से आज्ञा लेकर अपने द्वारा किये हुए पापों को नष्ट करने हेतु
के बाहर के दरवाजे के पास जाकर खड़े रहे । आने-जानेवाले लोग पत्थरों से
कटु वचनों के प्रहार करने लगे । फिर भी अर्जुनमुनि ने उन सब यातनाओं (उपस
को समभाव से सहन किया और कर्मों को नष्ट करके शाश्वत सुख पाया ।

भीष्म पितामह ने धर्मराज के समक्ष आँख से अश्रुपात करते हुए कहा - "
सभा में द्रौपदी के चीर खींचे गए, यह आँख से प्रत्यक्ष देखते हुए भी मैं एक श
भी न बोला ! मेरी बुद्धि उस समय कुण्ठित हो गई । कोई पुत्र भी ऐसा निष्ठुर
होता कि अपनी मां-बहन को जगत् के समक्ष कोई निर्वस्त्र करे, तथापि एक शब्द
न बोले । मैंने यह क्या किया ? परन्तु आज मुझे विचार आता है कि मेरी बुद्धि
समय कुण्ठित क्यों बन गई ? उस समय मैंने दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न नहीं कि
उसका कारण था मेरे पेट में दुर्योधन के घर का अशुद्ध आहार पड़ा था ।" 'जैसा आह
वैसी डकार' (यह कहावत प्रसिद्ध है) भगवान ने साधु-साध्वी के लिए भी फरमाय
- तु *औद्देशिक* - अर्थात् खास तेरे लिए बनाया हुआ, *कीयगड* - अर्थात् - ख
कर लाया हुआ, *अभिहडाणीय* - अर्थात् - सामने लाया हुआ आहार ग्रहण न करन
तू ४२ दोष तथा (भेद-प्रभेदों सहित) ९६ दोष टालकर निर्दोष गौचरी कर
अगर गौचरी निर्दोष नहीं होगी तो तेरा संयम लुट जाएगा । भीष्म पितामह ने अनि
आलोचना की और कहा - "धर्मराज ! इसी कारण मेरे मुख पर उदासीनता है और आँ
में आंसू है । (निष्कर्ष यह है कि) आहार भी जबर्दस्त काम करता है।

प्रदेशी राजा को सूरिकन्ता रानी मारने गई, उस समय उसके अध्यवसाय वै
होंगे ? अनेक जीवों के प्राण लेकर जो आहार पेट में गया हो, उससे उसके अध्यवस
भी वैसे अशुभ ही होंगे न ? खटाईवाले बर्तन में दूध भरा हो तो दूध बिगड़ (फ
जाता है । हाँ तो खटाईवाले बर्तन के संग से दूध बिगड़ गया, वैसे ही जीवन की ब
समझें । परद्रव्य का संग होने से आत्मा अपना बिगाड़ कर लेता है । खानपान कै
होना चाहिए ? भगवान ने संतों को कहा - "तुम निर्दोष गौचरी करना ।" तुम इ
घर में गौचरी के लिए फिरना, ऐसा नहीं कहा । अपितु निर्दोष गौचरी
गवेषणा करने को कहा है । 'दशवैकालिक सूत्र' में बताया गया है कि गौचरी कै
करनी चाहिए -

जहा दुमस्स पुप्फस्स, भमरो आवियइ रसं ।
न य पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं ॥

- दशवैकालिक सूत्र, अ-१, गा.-

भ्रमर कमल में से रस पीता है, परन्तु उसे क्षति नहीं पहुँचाता, भ्रमर कमल
आज्ञा नहीं लेता, जबकि संत तो गौचरी जाता है, तब गृहस्थ आहार दे तो लेता है

मैं मेरी बहनों से कहती हूँ, तुम्हें अपने पुण्योदय से गुणवती बहू मिली हो, वह (घर की) सारी व्यवस्था संभालती हो, तो तुम अपने सासुपन का मोह छोड़ देना। तुम सासु हो तो सासु ही रहनेवाली हो। मान लो, तुम उपाश्रय में आई और पीछे से बहू तुमसे पूछे बिना बाजार से कोई नई चीज खरीद लाई, तो तुम उसे यों मत कहना कि 'मैं सासु बेठी हूँ, तुम मुझे तो कुछ पूछती ही नहीं।' परन्तु मान कषाय को छोड़कर यही समझ लेना कि मैं संसार के पाप से छूटी।

हाँ तो, हमारी जम्बूस्वामी की बात चल रही थी। जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी के गुणसम्पन्न और ज्ञानी शिष्य थे। परन्तु जम्बूस्वामी कौन थे ? यह हमें जानना चाहिए। एक बार जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी की देशना (उपदेश) सुनने गए थे। उनकी देशना सुनकर जम्बूस्वामी का अन्तर वैराग्य रंग से रंजित हो गया। घर जाकर मात-पिता की आज्ञा प्राप्त करके उनके दीक्षा लेने के भाव थे। वे देशना सुनकर घर की ओर जा रहे थे कि मार्ग में अचानक एक मकान का छज्जा गिर पड़ा। जम्बूस्वामी उससे सिर्फ दो बीता दूर रह गये। अगर वे दो बीता नजदीक होते तो उसके नीचे दब जाते।

देवानुप्रियों ! तुम (प्रायः) कहा करते हो कि निश्चिंतता होने पर धर्मध्यान करेंगे। परन्तु एक घड़ी के बाद क्या होगा ? उसका (ज्ञानी के सिवाय) किसी को पता है क्या ?

"कोने खबर छे कालनी, आ देह तणी दीवालनी।"

यह देहरूपी दीवार कब टूट पड़ेगी, इसका क्या विश्वास ? हमलोग अपनी आँखों से क्या प्रत्यक्ष नहीं देखते कि किसी व्यक्ति का ट्रेन में, किसी का प्लेन में, किसी का आग में कब काल आ धमकता है ? कोई मनुष्य (नदी-तलाव आदि में) तिरने जाता है और वहीं डूब जाता है। अचानक (मकान में) आग लग जाती है और मनुष्य जल जाता है। अचानक कोई मकान टूट पड़ता है और मनुष्य उसमें दब जाते हैं। कल के समाचार पत्र में था कि विलेपार्ले से बड़ौदा जाते समय हसमुखभाई के घर के पति-पत्नी, नौकर आदि ६ व्यक्ति एक्सीडेंट में खत्म हो गए। दूसरे ६ व्यक्तियों को गंभीर चोट लगी है। विलेपार्ले से निकले थे, तब क्या इन्हें मालूम था कि हम वापस (जीवित) नहीं आएँगे ? ऐसी घटनाएँ पढ़कर भी विचार करो कि इस जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। कल क्या होगा ? इसका कोई पता नहीं है। अतः हो सके जितनी धर्माराधना कर लो। आज बहुत से लोगों को हार्ट-एटेक हो जाता है। उस समय ऐसी गंभीर परिस्थिति हो जाती है, मानो अब रोगी बचेगा नहीं। उस समय उसके घर के लोग दौड़कर हमारे पास हमें बुलाने के लिए आते हैं। कहते हैं - "महासतीजी ! आप जल्दी मांगलिक सुनाने के लिए पधारें।" हम कहते हैं - "बहुत सख्त धूप है। जमीन पर पैर नहीं रखा जा सकता। अतः दो घंटे बाद हम आएँ तो चलेगा ?" तब कहेंगे - "नहीं, महासतीजी शीघ्र पधारो।" यों सख्त धूप में हमें ले जाते हैं। वहाँ पहुँचकर हम मांगलिक सुनाते हैं। मर्यादित व्रत-

२८ साल के श्री संघ के अस्तित्व में प्राय: हरसाल विविध संप्रदायों के संत - सतीओं के वर्षावास चातुर्मास का लाभ श्री संघ ने पाया है । संत सतीओं की निश्रा में यहां साल भर धर्मकरणी एवम् धर्माराधना होती रहती है । श्री संघ में ललित महिला मंडल, मंगल मंडल, प्रार्थना मंडल एवम् युवा फोरम कार्यरत है ।

हमारा श्री संघ खंभात संप्रदाय का ऋणी है । हमें सर्व प्रथम एकावतारी महान वैरागी गुरुदेव आचार्य श्री कांतिऋषिजी म.सा. का चातुर्मास उपलब्ध हुआ । तत्पश्चात् प. पू. कमलेशमुनि म.सा. आदि संतो के दो चातुर्मास प्राप्त हुए और अब वर्तमान आचार्य प. पू. अरविंदमुनि म.सा. एवम् विदुषि म.स. वसुबाई म.स. की आज्ञानुवर्ती सरलमना मधुर व्याख्याता प. पू. रंजनबाई म.स. आदि ठा-५ के मुखारविंद से भगवान महावीर प्ररूपित सत्त्व एवम् तत्त्व सभर प्रशस्त धर्मबोध का रसपान करने के लिए हम भाग्यवान बने । इस एतिहासिक चातुर्मास में अनेक- विध धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन रहा । श्रावक-श्राविकाओं ने भाव- विभोर होकर चातुर्मास मनाया ।

खंभात संप्रदाय की गुरुणीमैया व्याख्यान वाचस्पति बा.ब्र. विदुषि प.पू. शारदाबाई म.स. ने अपनी संयम साधना करते हुए देश-विदेश में बसे हुए जैन-जैनतर समाज को आगमवाणी का अदभुत रसपान करवाया । प्रवचन पारसमणि प.पू. महासतीजी के विद्वत्तापूर्ण इन व्याख्यानों को १४ पुस्तकों में गुजराती में ग्रन्थस्थ किया गया जिन की १,५०,००० से भी अधिक प्रतों का वितरण हुआ । हिन्दीभाषी समाज में भी इन धर्मप्रेरक प्रभावशाली ग्रथों की सराहना हुई और इन ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद की जबरजस्त मांग उठी । फलस्वरूप श्री शारदा हिन्दी साहित्य प्रकाशन समिति के सघन प्रयत्नों से म.स. के गुजराती में प्रकाशित व्याख्यान ग्रंथों का हिन्दी संस्करण समय-समय पर प्रकाशित हो रहा है । प.पू. महासतीजी के ५वें ग्रंथ 'शारदा ज्योत' के हिन्दी संस्करण का विमोचन श्री शारदा हिन्दी साहित्य प्रकाशन के ट्रस्टीगण एवम् अन्य श्रेष्ठिवर्यो की उपस्थिति में हमारे यहाँ हुआ । यह छठा ग्रथ प्रकाशित होने जा रहा है ।

श्रमण संघ के आगम ज्ञाता विद्वान प.पू. नेमीचंदजी महाराज साहब ने अत्यंत चौकसी के साथ प.पू. शारदाबाई म.स. के व्याख्यान संग्रह 'शारदा शिखर' का हिन्दी मे भाषान्तर किया है । प.पू. म.सा. के इस भव्य पुरुषार्थ की हम सराहना एवम् भूरी भूरी प्रशंसा करते है । इस ग्रंथ के प्रकाशन में अनुदान प्रदान कराने का हमारे श्री संघ को जो लाभ मिला उसके लिए हम गर्व और धन्यता का अनुभव करतें है । यह ग्रंथ भी अन्य प्रकाशित ग्रंथों की तरह ही लोकचाहना प्राप्त करेगा ऐसा हमें संपूर्ण विश्वास है ।

प.पू. आचार्य भगवंत अरविंदमुनि म.सा. एवम् बा.ब्र. विदुषी वसुबाई म.स.जी आदि सर्वे संत-सतीओं के श्री चरणों में श्री गु. श्वे. स्था. जैन संघ चेन्नई के कोटि कोटि वंदन ।

श्री गु. श्वे. स्था. जैन एसोशिएशन

रसीकलाल सी वदाणी	- अध्यक्ष	प्रफुलभाई आर. शाह	- मंत्री
प्रभुदासभाई एन. कामदार	- उपाध्यक्ष	प्रवीणभाई एस. तुरखीया	- सह-मंत्री
हर्षदराय एम. शाह	- उपाध्यक्ष	चौलेश पी. शाह	- कोषाध्यक्ष

तथा समग्र कार्यकारिणी के सदस्य...

सुधर्मास्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी भी बहुत उत्साही, जिज्ञासु एवं विनयवान् थे। इसलिए उनका भी गुणग्राही विचारक आचार्यों ने खूब बखान किया है -

मात-पिता कुल जात निर्मल, रूप अनुप वखाणीए।
देवताने वल्लभ लागे, एहवा श्री जम्बूस्वामी जाणीए॥

जम्बूस्वामी अत्यन्त रूपवान थे। उनके मात-पिता के दोनों कुल पवित्र थे। उनका रूप देवकुमार जैसा था। देवों को भी प्रिय लगें, ऐसे थे - जम्बूस्वामी। उनमें विनयभाव तो इतना अधिक था कि जब-जब वे सुधर्मास्वामी से प्रश्न पूछते थे, तब-तब विनयपूर्वक वन्दन करके पूछते थे। विनयपूर्वक ग्रहण हुआ ज्ञान जीवन के अन्त तक टिक सकता है। उसके विपरीत गुरु का विनय किये बिना लिया हुआ ज्ञान तात्कालिक याद रहेगा, परन्तु बाद में वह उसे भूल जाएगा। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करना हो तो अभिमान को और कषाय को दूर करके नम्र बनो। डोरे को सुई के नाक में से पार होना हो तो डोरे को पतला बनना पड़ता है। इसीलिए आत्मारूपी डोरे को सम्यक्त्वरूपी सुई में पिरोना हो तो कषायों को पतले (दुर्बल) करने पड़ेंगे।

दो दिनों से अपनी बात चल रही है - **"विषयों का करना वमन, कषायों का करना शमन'** पर। अगर मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करना हो तो विषयों का वमन और कषायों का शमन करना पड़ेगा। कारण यह है कि अनादिकाल से आत्मा का अहित करनेवाला कोई शत्रु हो तो वह कषाय है। शास्त्रों में यत्र-तत्र कषायों की निन्दा की गई है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २३वें अध्ययन में कहा गया है - *"कसाया अग्गिणा वुत्ता।"* अर्थात् - कषायों को अग्नि की उपमा दी गई है। कषाय एक प्रकार से अग्नि है। अग्नि जहाँ उत्पन्न होती है, वह सर्वप्रथम उस स्थान को जला देती है। दिया सलाई जलती है तो सबसे पहले वह स्वयं को जलाती है, बाद में दूसरी वस्तु को जलाती है। इसी प्रकार जिसमें कषाय उत्पन्न होती है, वह पहले अपनी आत्मा का पतन करता है, और आत्मिक गुणों को उसमें जला डालता है। फिर कषाय द्वारा वह दूसरों को भी जलाता है।

कषाय को चाण्डाल की उपमा भी दी गई है। प्राचीनकाल में चाण्डाल जाति सबसे नीच मानी जाती थी। भूल से भी अगर चाण्डाल का स्पर्श हो जाता तो तुरंत स्नान कर लेते थे। इसी प्रकार कषाय भी सबसे नीच (दुर्गुण) है। आत्मा को कषाय का स्पर्श हो जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और (आत्मा के) क्षमा आदि गुण मलिन हो जाते हैं। कहीं-कहीं कषाय को राक्षस की उपमा दी गई है। राक्षस दिखने में भी भयंकर होता है, वह निर्दय और क्रूर होता है। मनुष्यों का भक्षण करता है। इसी प्रकार जब कषाय का उदय होता है, तब आत्मा रौद्ररूप धारण कर लेती है। वह लज्जा, क्षमा आदि गुणों को नष्ट कर देता है तथा सत्य, शील आदि गुणों का भक्षण कर लेता है। अतएव कषायों का त्याग करना आवश्यक है।

मैं मेरी बहनों से कहती हूँ, तुम्हें अपने पुण्योदय से गुणवती बहू मिली हो, व (घर की) सारी व्यवस्था संभालती हो, तो तुम अपने सासुपन का मोह छोड़ देना। तु सासु हो तो सासु ही रहनेवाली हो। मान लो, तुम उपाश्रय में आई और पीछे से ब तुमसे पूछे बिना बाजार से कोई नई चीज खरीद लाई, तो तुम उसे यों मत कहना कि 'मैं सासु बेठी हूँ, तुम मुझे तो कुछ पूछती ही नहीं।' परन्तु मान कषाय को छोड़क यही समझ लेना कि मैं संसार के पाप से छूटी।

हाँ तो, हमारी जम्बूस्वामी की बात चल रही थी। जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी वे गुणसम्पन्न और ज्ञानी शिष्य थे। परन्तु जम्बूस्वामी कौन थे? यह हमें जानना चाहिए एक बार जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी की देशना (उपदेश) सुनने गए थे। उनकी देशन सुनकर जम्बूस्वामी का अन्तर वैराग्य रंग से रंजित हो गया। घर जाकर मात-पिता क आज्ञा प्राप्त करके उनके दीक्षा लेने के भाव थे। वे देशना सुनकर घर की ओर जा र थे कि मार्ग में अचानक एक मकान का छज्जा गिर पड़ा। जम्बूस्वामी उससे सिर्फ दे बीता दूर रह गये। अगर वे दो बीता नजदीक होते तो उसके नीचे दब जाते।

देवानुप्रियों! तुम (प्रायः) कहा करते हो कि निश्चिंतता होने पर धर्मध्यान करेंगे परन्तु एक घड़ी के बाद क्या होगा? उसका (ज्ञानी के सिवाय) किसी को पता है क्या?

"कोने खबर छे कालनी, आ देह तणी दीवालनी।"

यह देहरूपी दीवार कब टूट पड़ेगी, इसका क्या विश्वास? हमलोग अपनी आँखं से क्या प्रत्यक्ष नहीं देखते कि किसी व्यक्ति का ट्रेन में, किसी का प्लेन में, किसी क आग में कब काल आ धमकता है? कोई मनुष्य (नदी-तलाब आदि में) तिरने जात है और वहीं डूब जाता है। अचानक (मकान में) आग लग जाती है और मनुष्य जल जात है। अचानक कोई मकान टूट पड़ता है और मनुष्य उसमें दब जाते हैं। कल के समाचा पत्र में था कि विलेपार्ले से बड़ौदा जाते समय हसमुखभाई के घर के पति-पत्नी, नौक आदि ६ व्यक्ति एक्सीडेंट में खत्म हो गए। दूसरे ६ व्यक्तियों को गंभीर चोट लगी है विलेपार्ले से निकले थे, तब क्या इन्हें मालूम था कि हम वापस (जीवित) नहीं आएँगे ऐसी घटनाएँ पढ़कर भी विचार करो कि इस जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। कल क्या होगा? इसका कोई पता नहीं है। अतः हो सके जितनी धर्माराधना कर लो। आज बहुत से लोगों को हार्ट-एटेक हो जाता है। उस समय ऐसी गंभीर परिस्थिति हो जाती है, मानो अब रोगी बचेगा नहीं। उस समय उसके घर के लोग दौड़कर हमारे पास हमें बुलाने के लिए आते हैं। कहते हैं - "महासतीजी! आप जल्दी मांगलिक सुनाने के लिए पधारें।" हम कहते हैं - "बहुत सख्त धूप है। जमीन पर पैर नहीं रखा जा सकता। अतः दो घंटे बाद हम आएँ तो चलेगा?" तब कहेंगे - "नहीं, महासतीजी शीघ्र पधारो।" यों सख्त धूप में हमें ले जाते हैं। वहाँ पहुँचकर हम मांगलिक सुनाते हैं। मर्यादित व्रत-

श्रुत अनुरागी

१. सुरेशचंद्रजी बरमैया परिवार - अजमेर
२. सज्जनराज प्रवीणकुमार - अंडालिया
३. रतनकंवर भंवरलाल
४. दुलीचंद बगमार एन्ड सन्स
५. सोहनलालजी राजमलजी भाउ
६. श्रीमान सद्गृहस्थ - कोईम्बतूर
७. श्री श्वेतांबर स्थानकवासी जैन संघ - मेलोपर
८. श्री जैन संघ - कोईम्बतूर
९. शांतिलाल अवन्थकुमार
१०. रतनलाल रणजितकुमार
११. श्री नेमीचंदजी हंसराजजी कावडीया - जलगाँव
१२. अ.सौ.धनप्रेमा नेमीचंदजी कावडीया - जलगाँव
१३. कुसुमबहन शांतिभाई महेता - पोंडिचेरी
१४. मीनाबहनजी चोरडीया - पोंडिचेरी
१५. मूलचंदजी मीठ्ठालालजी रमेशकुमारजी - बाफना
१६. रोशनचंद चंद एन्ड सन्स
१७. सद्गृहस्थ
१८. गौतम स्टेशनरी हाउस
१९. मानेककंवर पींछा
२०. सुखलालजी संपथ - मुंद्रा
२१. कुवरचंदजी
२२. थुसला महिला मंडल
२३. श्री प्रवीणचंद्रजी एम. दोशी - कोईम्बतूर
२४. मणीलाल भाईचंद महेता परिवार
२५. सज्जनकंवर पन्नालाल चोपडा - सुरत

श्रुत अनुमोदक

१. प्रफुलाबहन महेन्द्रभाई शेठ
२. जोली (बहन)
३. जवेरबाई जथुबाई गोविंदजी
४. निलेश ट्रेडिंग - कोईम्बतूर
५. शारदाबहन - पोंडिचेरी
६. वसंतभाई महेता - पोंडिचेरी
७. जीज्ञाबहन हितेश बगडीआ
८. श्री जैन संघ - कुडलोर

प्रत्याख्यान भी करा देते हैं। परन्तु अगर रोगी का आयुष्य वलवान् हो तो असातावेद
कर्म मन्द हो जाता है और वह वच जाता है। उस वक्त वह व्यक्ति कहता है - "साह
धर्म के प्रताप से वच गया।" उस समय संत कहते हैं - "भाई ! तुम धर्म के प्र
से वच गए, तो अव क्या करोगे?" तव वह कहता है - "अव व्यापार जोर-शो
करना है।" (हम कहते हैं) "भला ! धर्म के प्रताप से वच गया तो अव काम-भ
तो छोड़ दे।" मृत्यु के मुख से वच कर धर्म करना नहीं है, परन्तु पत्नी, पुत्र, पि
के लिए धन कमाना है। परन्तु विचार करना, यह (दुर्वृत्ति) तुम्हें परलोक में तुम्हारे प्रा
को शरण देनेवाली नहीं होगी।

जम्बूस्वामी ने विचार किया कि 'अगर मैं इस मकान के जरा-सा और नजद
होता, तो मैं इसके छज्जे के नीचे दब जाता। मैं अपने आयुष्य वल के कारण वच प
हूँ, तो अव (जल्दी से) कुछ (धर्माचरण) कर लूं।' काल का किसे पता है ? अ
सुधर्मास्वामी के पास जाकर आजीवन व्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा अंगीकार कर लूं। विप
का वमन, तथा कषायों का शमन करके इन्द्रियों का दमन करना है। इन्द्रियों का द
किए विना तीन काल में छुटकारा नहीं है। जम्बूस्वामी (यह सोचकर) पीछे मुड़
सुधर्मास्वामी के पास जाकर उन्होंने आजीवन व्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले ली। वे मात-पि
की (इस विषय में) सलाह लेने नहीं गये। उन्होंने यह विचार किया कि 'इन्द्रियों का द
करके मुझे व्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है। इसमें मात-पिता की आज्ञा की व
जरूरत है ?' आठ-आठ कन्याओं के साथ जिनकी सगाई हुई है, विवाह की तैयारि
चल रही थीं। ऐसे समय से *व्रह्मचर्य-प्रतिज्ञावद्ध होकर इन्द्रिय-विजेता* वन गए।

वन्धुओं ! ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "इन्द्रियों का दमन करो।" जिसकी एक इन्द्रि
स्वच्छन्द हो जाती है, वह (इन्द्रिय विषयासक्त होकर) मरण-शरण हो जाता है। फि
जिसकी पांचों इन्द्रियाँ स्वच्छन्द हो जाए, उसकी क्या दशा (दुर्दशा) होती है ? अ
आत्मा का अहित न करना हो तो इन्द्रियों का दमन करो और आत्मसाधना सफल क
हेतु कटिवद्ध वनो। जम्बूस्वामी व्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर घर आए। जिन्हें अपने पु
की धूमधाम से शादी करने की उमंग है, उन माता-पिता को इस वात का प
लगते ही अत्यन्त दुःख हुआ। आँखों से अश्रुधारा वहाते हुए माता-पिता ने उन्हें खू
समझाया, परन्तु जम्बूस्वामी अपने प्रतिज्ञा पर अडिग रहे। जम्बूस्वामी के माता-पि
ने अपने सम्वन्धियों को इस वात की जानकारी दी। इस पर कन्याओं ने कहा - "ज
पति का मार्ग वही हमारा मार्ग !" अन्त में विवाह हुआ। विवाह के दूसरे ही दि
जम्बूस्वामी संयम पथ पर चल पड़े। ऐसे स्वर्णपात्र-समान जम्बूस्वामी थे
ऐसे जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से क्या पूछेंगे ? ये सुन्दर भाव आठवें अध्यय
में आएंगे। उन्हें समझने के लिए विषयों का वमन, कषायों का शमन और इन्द्रिय
का दमन करके अन्तर को पवित्र वनाना पड़ेगा। सभी भाव यथावसर कहे जाएंगे

"तुं तो रंगमहलमां मोज करे छे, मारो ऋषभ तो वनमां फरे छे ।
कोई लावो (२) तेना समाचार, मरुदेवी माता पूछे क्यां छे मारो लाल ?
आदि जिणंद (२), गतावो भरतराय...., मरुदेवी माता पूछे..."

ऋषभदेव भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपनी नगरी (अयोध्या) में पधारे, तब भरत चक्रवर्ती दादीमाँ (मरुदेवी) को दर्शन कराने ले गए । उन्होंने दूर से ही भगवान् का समवसरण देखा । ऋषभदेव प्रभु के दर्शन किये । माता के अपने पुत्र के प्रति राग (मोह) था, परन्तु भगवान् तो वीतराग थे । वे मरुदेवी माता के समक्ष दृष्टि भी नहीं करते थे । ऐसी स्थिति में माता विचार करने लगीं - 'अहो ! मैं तो ऋषभ, ऋषभ कहकर भरत का उपालम्भ देती हूँ, किन्तु यह (ऋषभ) तो मेरे सामने (नजर उठाकर) भी नहीं देखता । कैसा इसका ठाठबाठ है ?' यों हाथी पर बैठे-बैठे ही माता का (ऋषभदेव पर) रागभाव छूट गया और हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । तुम कहते हो न कि मरुदेवी माता को हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया, हमें क्यों नहीं होता ? परन्तु विचार करो, कहाँ तुम और कहाँ वे ? उनकी आराधना कितने भवों की थी । कैसी रत्नकुक्षधारिणी माता थी ? अपने पुत्र और सौ पुत्र सब ने दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष में गए । माता भी मोक्ष में गईं । उनके तो सभी १०० पुत्रों ने दीक्षा ले ली, तुम्हारे कितने पुत्र हैं ? बोलो ! (श्रोताओं में से कोई बोला कि मेरे ६ पुत्र हैं) तो बोलो, कितने पुत्रों को दीक्षा देनी है-? बोलते क्यों नहीं ? बोलो-बोलो । (हँसाहँस) । जैनशासन को जयवन्त रखने के लिए संतों की बहुत आवश्यकता है । पुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार भी हो जाए, तो मातापिता उसे संसार में जकड़ने (बांधने) का प्रयत्न करते हैं । संसार की गाड़ी में उसे राजी खुशी से जोतते हैं । परन्तु अगर आप सच्चे (हितैषी) माता-पिता हों तो उसका संसार (जन्म-मरण) कम हो, ऐसे संस्कार दीजिए । आज का बाहर का (भौतिक) ज्ञान खूब दिया जाता है, परन्तु संतान को पास में बिठाकर पाव या आधा घंटा धार्मिक शिक्षण देने का टाइम मा-बाप के पास नहीं है । यदि आप संतानों के हितैषी हों तो आपको चाहिए कि उन्हें चतुर्गतिक संसार में भटकना न पड़े, ऐसे संस्कार दें ।

भगवान् ऋषभदेव के १०० पुत्र और ब्राह्मी-सुन्दरी, ये दो पुत्रियाँ, ये सभी मोक्ष में गये । धर्माराधना का वह कैसा स्वर्णिय समय था ! ऋषभदेव भगवान् का शासन पचास लाख क्रोड़ सागर तक चला । उसके पश्चात् दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ प्रभु हुए । उस समय १५ कर्मभूमियों में कुल मिलाकर १७० तीर्थंकर थे । उनमें ९ हजार करोड़ साधु और नौ करोड़ केवली थे । अजितनाथ भगवान् के समय में उत्कृष्ट धर्मकाल प्रवृत्त था । चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभदेव भगवान् तीसरे आरे में हुए, बाकी के २३ तीर्थंकर चौथे आरे में हुए । चौथे आरे में दुःख अधिक और सुख कम था । इस समय पंचम आरा चल रहा है । चौथे आरे में जन्म लिया हुआ व्यक्ति पंचम आरे

व्याख्यान - ४

आषाढ़ सुदी १२, गुरुवार ता. ८-७-७६

जीवन की सार्थकता : रत्नत्रयी की आराधना से

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

इस विषमकाल में विरल मार्ग बतानेवाले, जगत की विरल विभूति वीर भगवान् और वीतराग-वाटिका में विचरण करानेवाले सद्गुरुदेवों को बन्दन-नमस्कार करती हूँ। भगवान् ने जगत के जीवों को उपदेश देते हुए कहा है - "हे भव्यजीवों ! अनन्त पुण्योदय से जीव मानव भवरूपी रत्नद्वीप में आया है । प्रबल पुण्योदय से आत्म-साधना करने हेतु उत्तम सामग्री भी मिल गई है । इस मानवभवरूपी रत्नद्वीप पाकर रत्नत्रयी (सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय) का शाश्वत धन का संग्रह कर लेना है । जिसे रत्नत्रयी का शाश्वत धन मिल गया, समझ लो उसका द्रव्य और भाव-दारिद्र्य दूर हो गया । रत्नत्रयी अमूल्य और अपूर्व चिन्तामणि है ।

देवानुप्रियों ! तुम किस धन को प्राप्त करने के लिए रात-दिन धमाल कर रहे हो, शाश्वत धन के लिए या अशाश्वत के लिए ? शाश्वत धन प्राप्त करोगे तो शाश्वत सुख मिलेगा और नाशवान् धन प्राप्त करोगे तो नाशवान् सुख मिलेगा । अब विचार करना कि तुम्हें कौन-सा धन प्राप्त करना है ? अनादिकाल से अर्थ और काम की वृत्तियों ने आत्मा पर अड्डा जमाया है । उन (अनिष्ट वृत्तियों को) को जिनवाणी श्रवण से हटाकर आत्मा को परगृह से स्वगृह में लाना है । मोह के घर में से महावीर के (मोक्ष के) घर में लाना है । जो सदैव रत्नत्रयी में रमणता करता है, वह शिव-सुन्दरी (मुक्ति) के साथ रमणता करता है । रत्नत्रयी का अर्थ क्या है ? यह तो तुम जानते हो न ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - इन तीन तत्त्वों को रत्नत्रयी कहा जाता है।

तुम एकाग्रचित होकर भगवान् से जब प्रार्थना करो, तब उनसे तुम्हें कुछ मांगने का मन हो, तो रत्नत्रयी की मांग करना और कुछ न मांगना । क्योंकि जिसके पास जो पदार्थ होता है, वही मिलता है । (सामान्य स्थूल दृष्टिवाला लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं ।

देवाधिदेव ! तमे मोक्ष केरा दानी, अमे मांगनारा करीए नादानी ।
पारसनी पासे अमे पथराओ मागीए ।
तमे जेनो त्याग कर्यो, ए ज अमे मांगीए ॥

गाऊ का देहमान और दो पल्योपम का आयुष्य, तथैव तीसरे आरे में जुगलियों को १ गाऊ का देहमान और एक पल्योपम का आयुष्य होता है। तुम्हारे पास अरबों की सम्पत्ति हो, पर वह जुगलियों की सम्पत्ति के आगे कुछ नहीं है। ऐसे महान् वैभव का वे उपभोग करते हैं। उन्हें तुम्हारी तरह कमाने की कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें प्रतिदिन आहार करने की इच्छा नहीं होती। पहले आरे में अट्ठमभक्त (तीन दिन से), दूसरे आरे में छट्ठभक्त (दो दिन से) और तीसरे आरे में चउत्थभक्त (एक दिन के अनन्तर) आहार की इच्छा होती है, तब वे आहार करते हैं। उन्हें रसोई बनानी नहीं पड़ती। दश प्रकार के कल्पवृक्ष उन्हें मनोवांछित सुख (फल) देते हैं। इन तीनों आरों में (मनुष्यों के) वज्रऋषभनाराच संघयण होता है। उनका शरीर इतना मजबूत (सुदृढ़) होता है कि उनके ऊपर से हाथी चला जाए तो भी हड्डी नहीं टूटती। अभी तो जरा-सा पैर लपसा कि हड्डी टूट जाती है। जुगलियों के दांतों की बत्तीसी भी बहुत सुन्दर और सुदृढ़ होती है। उन्हें वृद्धावस्था या बीमारी नहीं आती। जुगलिया जोड़े से (युगलरूप में) जन्म लेते हैं और एक को छींक और दूसरे को उबासी आती है, वे एक साथ ही मर जाते हैं। युगलियों के एक-दूसरे का वियोग नहीं होता। मृत्यु के ६ महीने बाकी रहते हैं, तब वे परभव (आगामी जन्म) का आयुष्य बांध लेते हैं। उस समय जुगलिया दम्पत्ति एक जोड़े को जन्म देते हैं। पहले आरे में वे युगल शिशु की ४९ दिन तक, दूसरे आरे में ६४ दिन तक और तीसरे आरे में ७९ दिन तक प्रतिपालन करते हैं। भाई-बहन दोनों साथ-साथ ही जन्म लेते हैं और वे ही पति-पत्नी बन जाते हैं। उन्हें एक दूसरे के साथ किसी प्रकार का वैर-विरोध, ईर्ष्या या द्वेष नहीं होते। वे अपने शुभ परिणामों से मरकर देवलोक में जाते हैं।

बन्धुओं ! युगलियों की इतनी पुण्यवाणी होते हुए भी वे वहाँ से मोक्ष नहीं जा सकते। उसका क्या कारण है, समझे ? (कारण यह है कि) युगलियों में धर्म (धर्माचरण) नहीं है। वहाँ अकर्मभूमि है। यहाँ इस समय (कर्मभूमि होते हुए भी) तीर्थंकर भगवन्त नहीं हैं, किन्तु उनकी वाणी मौजूद है। वीतरागवाणी खारे समुद्र में भी पानी के छोटे कुंए के समान है। (वीतरागवाणी के) श्रवण और (उसपर) श्रद्धा करके चाहे इस समय मनुष्य सीधा (यहाँ से) मोक्ष में न जा सके, किन्तु एकभवावतारी तो जरूर बन सकता है। (इस काल के) पहले के तीन और जुगलियों के जानना। तीसरे आरे के ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहे, तब भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) का जन्म हुआ। उनका ५०० धनुष्य का देहमान और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था। उनकी माता मरुदेवी का आयुष्य करोड़पूर्व का था। ऋषभदेव भगवान् के १०० पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। भगवान् के सभी सौ पुत्रों ने और दोनों पुत्रियों ने दीक्षा ली और उसी भव में वे मोक्ष में गए। भगवान् तो भगवान् थे, पर उनका सारा परिवार भी कितना उज्ज्वल और आदर्श था ?

भगवान् ऋषभदेव के दीक्षा लेने के बाद मरुदेवी माता उनके लिए बहुत ही चिन्ता करती रहती थीं। वे (अपने पौत्र) भरत को उपालम्भ देती हुई कहती थीं –

भगवान् ने जिनका त्याग किया, हम उन वस्तुओं पर राग करते हैं और उनको मांगते हैं । किन्तु मांगना ही हो तो रत्नत्रयी मांगना योग्य है ।

हमारे त्रिकालज्ञ वीतराग भगवन्तों ने भूतकाल में अनन्त आत्माओं को रत्नत्रयी का पथ बताया है, वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी प्रमुख बीस विहरमान तीर्थंकर करोड़ों मानवों को रत्नत्रयी प्राप्त करने का मार्ग बता रहे हैं । (अतः) तीर्थंकर भगवन्तों से रत्नत्रयी की मांग की जा सकती है । पर आपलोग क्या मांग रहे हैं ? आप तो गाड़ी (कार), बाड़ी (बंगला) और लाड़ी (सुन्दरी) की और धन, ये सब मांगते हो न ? बोलो तो सही ! परन्तु इन सबको पाकर आत्मा (पापकर्मों से) हलका नहीं होता । पास में धन न हो तो तुम्हें संसार-सुख में कमी मालूम होती है । परन्तु ज्ञानी-पुरुष कहते हैं – "हे आत्मन् ! रत्नत्रयी के बिना तुम्हें (मानवजीवन) में बहुत कमी प्रतीत होनी चाहिए ।" पास में चाहे जितना वैभव हो, परन्तु रत्नत्रयी न हो तो सम्यग्दृष्टि आत्मा उसे तिनके के तुल्य समझती है । रत्नत्रयी के बिना सम्यक्त्वी आत्मा को जीवन बेकार लगता है । रत्नत्रयी की आराधना भगवान् द्वारा शास्त्र-कथित विधि से निरन्तर होनी चाहिए । रत्नत्रयी की रक्षा के लिए काम-क्रोधादि शत्रुओं से सदा सावधान रहना पड़ता है । जिनेन्द्र जिनेश्वर प्रभु के वचनों के प्रति पूर्ण वफादार रहकर शास्त्र-स्वाध्याय में रत रहना चाहिए । पाँच समिति और तीन गुप्ति को जीवन के साथ ओतप्रोत कर लेना चाहिए । इसके लिए विकथा, वासना, विकार और विलास को जीवन से विदा कर देना पड़ेगा । सद्गुरु के चरणों में जीवन समर्पित कर देना पड़ेगा । कष्टों से जरा भी घबराना नहीं चाहिए ।

देवानुप्रियों ! कष्ट कर्म का कांटा निकालने का श्रेष्ठ साधन है समझपूर्वक समभाव से कष्टों को सहन करने से कर्मों की निर्जरा होती है । कष्ट के बिना कर्मनिर्जरा की कमाई नहीं होती । ज्ञानीपुरुष कहते हैं – **"कष्ट से घबराए वह कंगाल है, आये हुए कष्ट को कुमकुम का तिलक करके जो स्वागत करता है, वह कष्टमय संसार को शीघ्र पार कर जाता है । कष्ट से कसा हुआ आत्मा कर्मसत्ता से टक्कर ले सकता है ।"** जब कर्म का उदय हो, तब समभाव से सहन करने से जो कर्मनिर्जरा का लाभ होता है, वह दूसरी साधना में नहीं होता । कर्मनिर्जरा के बड़े साधन के प्रति घबराहट लाना, साधक की सबसे बड़ी खामी है । पास में पैसा हो, सुख की सामग्री हो, तभी मोक्ष की आराधना हो सकती है, यह मान्यता गलत है । मोक्ष की आराधना सुख में और दुःख में दोनों स्थितियों में हो सकती है । दुनिया जिसे खराब मानती है, उसे मोक्ष के पथिक सम्यक्त्वी आत्मा अच्छा मानती है । वस्तुतः मोक्ष का मुमुक्षु लोकोत्तर दृष्टिवाला होता है । उसका दृष्टिबिन्दु दुनिया के दृष्टिबिन्दु से पृथक् ही होता है ।

जिन्होंने रत्नत्रयी की आराधना की है, वे जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी के पास पहुँचे और तीन बार सविनय वन्दना करके विवेकपूर्वक मधुर भाषा में बोले – "भगवन् ! आप ज्ञान

"तुं तो रंगमहलमां मोज करे छे, मारो ऋषभ तो वनमां फरे छे ।
कोई लावो (२) तेना समाचार, मरुदेवी माता पूछे क्यां छे मारो लाल ?
आदि जिणंद (२), बतावो भरतराय...., मरुदेवी माता पूछे..."

ऋषभदेव भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपनी नगरी (अयोध्या) में पधारे, तब भरत चक्रवर्ती दादीमाँ (मरुदेवी) को दर्शन कराने ले गए । उन्होंने दूर से ही भगवान् का समवसरण देखा । ऋषभदेव प्रभु के दर्शन किये । माता के अपने पुत्र के प्रति राग (मोह) था, परन्तु भगवान् तो वीतराग थे । वे मरुदेवी माता के समक्ष दृष्टि भी नहीं करते थे । ऐसी स्थिति में माता विचार करने लगीं - 'अहो ! मैं तो ऋषभ, ऋषभ कहकर भरत का उपालम्भ देती हूँ, किन्तु यह (ऋषभ) तो मेरे सामने (नजर उठाकर) भी नहीं देखता । कैसा इसका ठाठबाठ है ?' यों हाथी पर बैठे-बैठे ही माता का (ऋषभदेव पर) रागभाव छूट गया और हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । तुम कहते हो न कि मरुदेवी माता को हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया, हमें क्यों नहीं होता ? परन्तु विचार करो, कहाँ तुम और कहाँ वे ? उनकी आराधना कितने भवों की थी । कैसी रत्नकुक्षधारिणी माता थी ? अपने पुत्र और सौ पुत्र सब ने दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष में गए । माता भी मोक्ष में गईं । उनके तो सभी १०० पुत्रों ने दीक्षा ले ली, तुम्हारे कितने पुत्र हैं ? बोलो ! (श्रोताओं में से कोई बोला कि मेरे ६ पुत्र हैं) तो बोलो, कितने पुत्रों को दीक्षा देनी है-? बोलते क्यों नहीं ? बोलो-बोलो । (हँसाहँस) । जैनशासन को जयवन्त रखने के लिए संतों की बहुत आवश्यकता है । पुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार भी हो जाए, तो मातापिता उसे संसार में जकड़ने (बांधने) का प्रयत्न करते हैं । संसार की गाड़ी में उसे राजी खुशी से जोतते हैं । परन्तु अगर आप सच्चे (हितैषी) माता-पिता हों तो उसका संसार (जन्म-मरण) कम हो, ऐसे संस्कार दीजिए । आज का बाहर का (भौतिक) ज्ञान खूब दिया जाता है, परन्तु संतान को पास में बिठाकर पाव या आधा घंटा धार्मिक शिक्षण देने का टाइम मा-बाप के पास नहीं है । यदि आप संतानों के हितैषी हों तो आपको चाहिए कि उन्हें चतुर्गतिक संसार में भटकना न पड़े, ऐसे संस्कार दें ।

भगवान् ऋषभदेव के १०० पुत्र और ब्राह्मी-सुन्दरी, ये दो पुत्रियाँ, ये सभी मोक्ष में गये । धर्माराधना का वह कैसा स्वर्णिय समय था ! ऋषभदेव भगवान् का शासन पचास लाख क्रोड़ सागर तक चला । उसके पश्चात् दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ प्रभु हुए । उस समय १५ कर्मभूमियों में कुल मिलाकर १७० तीर्थंकर थे । उनमें ९ हजार करोड़ साधु और नौ करोड़ केवली थे । अजितनाथ भगवान् के समय में उत्कृष्ट धर्मकाल प्रवृत्त था । चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभदेव भगवान् तीसरे आरे में हुए, बाकी के २३ तीर्थंकर चौथे आरे में हुए । चौथे आरे में दुःख अधिक और सुख कम था । इस समय पंचम आरा चल रहा है । चौथे आरे में जन्म लिया हुआ व्यक्ति पंचम आरे

के भण्डार हैं। मेरी आपश्री से ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है।'' देखिए, श्री जम्बूस्वामी को ज्ञान प्राप्त करने की कैसी तीव्र जिज्ञासा जागी है ? जबतक जीव को योग्यता नहीं होती, तबतक आत्मगुण की प्राप्ति नहीं होती । आँवे में पकाये बिना कच्चे घड़े में पानी भरा जाएगा तो वह तुरंत फूट जाएगा । क्योंकि उसमें पानी टिकाये रखने यानी भरे जाने की योग्यता नहीं है। वैसे ही कच्चे घड़े की तरह योग्यता-रहित मानव को यदि ज्ञान दिया जाएगा तो उसमें टिक नहीं सकेगा । जगत् में विद्वान् वक्ता तो बहुत हैं, पर यदि वे ज्ञान के अनुसार आचरण नहीं करते, इन्द्रियों का निग्रह नहीं करते, तो वे सच्चे विद्वान् नहीं हैं। भगवान् की आज्ञा के अनुसार जिनका आचरण है, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं। ऐसे सच्चे ज्ञानी के पास जाने से कल्याण होता है । केवल वाणी के वक्तृत्व से लोकरंजन करने स्वयं तो तिर नहीं सकते, फिर दूसरों को तारने की बात तो बहुत दूर है । कोई आत्मा यों माने कि मैं व्याख्यान देकर लोकरंजन कर दूं तो मेरी वाहवाही हो जाएगी । परन्तु भगवान् कहते हैं - ''लोकरंजन तो तूने अनेकबार किया, परन्तु उससे तेरा या दूसरों का कल्याण नहीं हो सकेगा ।'' तेरी वाहवाही की हवा हवा बनकर उड़ जाएगी । संत की भावना एकमात्र यही होना चाहिए कि मैं श्रावक-श्राविकाओं को वीतराग-शासन के रसिक बनाऊँ और जल्दी स्व-पर-कल्याण हो वैसा करूँ ।

तुम्हें कोई बीमारी हो जाए तब होस्पिटल में जाते हो । उस होस्पिटल में शरीर की बीमारियाँ दूर होती हैं, जबकि इस वीतराग शासन की होस्पिटल में आत्मा की बीमारी - जन्म-जरा-मृत्यु के रोग-समूल नष्ट किये जाते हैं । होस्पिटल में रोग का निदान करनेवाले डोक्टर होशियार होने चाहिए । अगर डोक्टर गँवार हो तो बीमार का रोग नहीं मिटता । किसी को दस्त लगते हों और किसी को कब्ज हो तो दोनों बीमारों को एक ही दवा दे । रोगी जल्दी खत्म हो जाता है । जिसको जो रोग है, वैसे दवा दी जाए और उससे रोग मिट जाए तो (समझना) वह सच्चा डोक्टर है। वैसे ही भगवान् के संतरूपी डोक्टर के पास अलग-अलग किस्म के मानव आते हैं । किसको किस प्रकार से समझाया जाए, जिससे उसके हृदय में धर्म का स्थापन हो । उसके मस्तिष्क में उतरे, इस प्रकार से धर्म समझाया जाए तो स्व-पर का कल्याण हो ।

जम्बूस्वामी एक ही बार सुधर्मास्वामी की देशना सुनकर वैराग्य रंग में रंग गए । उनका वैराग्य कैसा था ? (उस वैराग्य के प्रभाव से) जम्बूस्वामी सहित ५२७ व्यक्तियों ने (एक साथ) दीक्षा ग्रहण की । स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की, उसके साथ अपनी ८ पत्नियों, ८ कन्याओं के माता-पिता तथा अपने माता-पिता एवं रात्रि को अपने घर में चोरी करने हेतु आए हुए प्रभव आदि ५०० चोरों को वैराग्य रंग में रंगा । इन सबने जम्बूस्वामी के साथ दीक्षा ली । कैसी होगी यह वैराग्य की झलक ? घाटकोपर में ५ भाईयों की दीक्षा होती है, तब वजुभाई की दौड़धूप का कोई पार नहीं रहा । यहाँ तो एक साथ ५२७ दीक्षाएँ हुई, कैसा भव्य होगा वह दृश्य ! जो व्यक्ति धन

में मोक्ष जा सकता है, किन्तु पाँचवें आरे में जन्म हुआ व्यक्ति मोक्ष नहीं जा सकता। गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी, ये सब चौथे आरे में जन्म लिये हुए थे और पाँचवें आरे में मोक्ष गये हैं। हम चाहे जितना पुरुषार्थ करें, किन्तु यहाँ से मोक्ष में नहीं जा सकते। किन्तु एकभवावतारी होकर महाविदेहक्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जा सकते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सदैव तीर्थंकर का योग मिलता है। वहाँ सदा चौथे आरे का समय बरतता रहता है। इसलिए वहाँ से मोक्ष में जाया जा सकता है। यहाँ कोई सुखी मनुष्य हो तो उसे देखकर कह देते हैं कि यह चौथे आरे का जीव है। फिर भले ही वह सिगारेट पीता हो, गुटका खाता हो, शराब की बोतल गटगटाता हो। (यह एक भ्रान्ति है)। चौथे आरे का धन के साथ कोई निस्बत नहीं है, अपितु *धर्म (आत्म-धर्म) के साथ सम्बन्ध है। अतः इस मनुष्यभव में ऐसी आराधना कर लो कि एक-भवावतारी होकर मोक्ष में जा सको।* इस चातुर्मास के पवित्र दिवसों में दान, शील, तप और भाव की आराधना-साधना करो, रत्नत्रयी का साधना करो। फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा।

अब सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को 'उस काल और उस समय' की बात कह रहे हैं। आगे क्या कहेंगे ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ५

आषाढ़ सुदी १३, शुक्रवार — ता. ९-७-७६

धर्म ढूंढो निज चेतन में

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शास्त्रकार भगवन्त फरमा गये हैं कि "हे *भव्यजीवों ! आत्मा को कर्मबन्ध से मुक्त बनाकर शाश्वत सुख का स्वामी बनाने के लिए धर्माचरण करना* आवश्यक है। धर्म कोई बाह्य वस्तु नहीं है, परन्तु वह (धर्म) आत्मा के स्वामित्व की वस्तु है। किन्तु जो मनुष्य धर्म को नहीं समझता, वह कस्तूरी मृग की तरह भटका करता है। कस्तूरी का मृग की नाभि (डूंटी) में कस्तूरी होती है, श्वास द्वारा उसकी सुगन्ध नाक में आती है। उस सुगन्ध को वह कस्तूरी की सुगन्ध के रूप में सच्ची समझता हैं। ऐसा समझने के बाद कस्तूरी कहाँ है ? यह ढूंढने निकलता है। वह छहों दिशाओं में घूमता है, और वापस जहाँ था, वहाँ आ जाता है; क्योंकि अपनी नाभि (डूंटी) में कस्तूरी है, ऐसा ज्ञान कस्तूरी का मृग को स्वयं नहीं होने से, बेचारा बाहर ही बाहर सुगन्ध लेने को दौड़ता

सामनेवाला व्यक्ति भी बुद्धिशाली है, उसके सामने अगर कपट करूँगा, तो पकड़ा जाऊँगा। इसलिए वहाँ सीधे और सरल बन जाते हो। बाकी अंतर से कपट नहीं गया!

देवानुप्रियों! लोभ को भी पतला करना पड़ेगा। लक्ष्मी तीन प्रकार से चली जाती है - **'दानं भोगो नाशः'** लक्ष्मी का दान में उपयोग होता है, भोग में उपयोग होता है, इन दो में उपयोग न हो तो अन्त में उसका नाश होता है। तुमने किसी के यहाँ दस हजार रुपये ब्याज पर रखे। उसका व्यापार जोर-शोर से चल रहा है, वहाँ तक तो वह ब्याज बराबर देता रहता है। परन्तु उसका व्यापार ठंडा पड़ गया, और उसकी नियत बिगड़ी तो तुम्हारी रकम पचा जाए, उस समय क्या होगा? तुमने अपने हाथ से (अच्छे कार्य में) रुपये खर्चे नहीं तो उसने वे रुपये हजम कर लिये न? तुमने मिल के शेयर खरीदे, राज्य सरकार की लोनें ली, उनमें पाँच हजार के पाँच सौ हो गए, तो कितना दुःख होता है? वही रकम तुमने दान में दी होती तो कितना लाभ होता? उतना धन तुमने अपने भोगोपभोग में खर्चा होता तो पापकर्म बांधते। यह तो तुमने दान में या भोग में स्वयं (धन का) उपयोग नहीं किया, (इसके बदले) दूसरे ने उस रकम का उपयोग किया, पर तुम्हारा धन तो गया न? दान और भोग के बाद नाश का नंबर है। अगर धन का (किसी तरह) नाश न हो तो, उतना धन कहाँ समाता? दुनिया में जितने व्यवसायिक प्रतिष्ठान हैं, उन प्रतिष्ठानों के धन का नाश न होता तो आज उनके पास करोड़ों-अरबों रुपये होते। बहुत-सी दफा मनुष्य डबल ब्याज के लोभ में लाखों रुपये उधार देता है। परन्तु अन्त में ब्याज के लोभ में मूल धन डूब जाता है। यह जानकर अनेक डबल ब्याज मिले तो भी (चतुर मनुष्य) ब्याज पर धन किसी में नहीं रखते। अतः ब्याज का लोभ जीता न? मुझे ब्याज नहीं चाहिए। क्यों? (मूल) धन का नाश होने के भय से? धन नाश के भय से लोभ जीता, परन्तु इससे लोभ पतला पड़ गया नहीं कहलाता। उससे मनुष्यपन नहीं मिलता। हमने कषाय पर विजय प्राप्त किया हो, प्रकृति के भद्र बनकर, माया-कपटरहित सरल बने हों, दान देकर अहंकार न किया हो इत्यादि चार बोलों से जो मनुष्यपन मिला है, उस मनुष्यपन में, समझ (विवेक) पूर्वक कषाय पतले करें, तो समझना कि अपनी मूलपूंजी सुरक्षित रखी है। तुम अपने पुत्र को लाख-दो लाख रुपये देते हो, उससे वह तुम्हारा उपकार नहीं मानता, अपितु अपना हक मानता है। परन्तु जो इतना धन दान में दो तो लाभ होता है। जिसे देते हो, वह तुम्हारा उपकार मानता है। तुम्हारी लक्ष्मी का उपयोग अच्छे क्षेत्र में हो और लज्जा आदि मध्यम गुण जीवन में विकसित हो तो मनुष्यभव मिलता है। इन गुणों का विकास करके मानव से महामानव और महामानव से परमात्मा बना जा सकता है।

देवानुप्रियों! जिसे मानवभव प्राप्त करके परमात्मा बनने की लगन लगी है, वैसे जम्बूस्वामी श्री सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते हैं -

रहता है। बन्धुओं ! इसी प्रकार विचार करो; धर्म अपनी आत्मा में ही निहित (रहा हुआ) है, और धर्म बाहर की क्रिया रूप में नहीं है। यद्यपि बाहर की क्रिया छोड़ नहीं देनी है, परन्तु उसके द्वारा आत्मधर्म प्रगट करना है।

सुगन्ध कस्तूरी की है, हवा की नहीं। पर वह (सुगन्ध) हवा में कब आती है ? जब हवा (सुगन्ध के) सम्मुख हो, तब नाभि में रही हुई सुगन्ध का पता भी श्वास न निकलता हो उसे नहीं लगता। सुगन्ध कस्तूरी की है, पर हवा उस सुगन्ध को लाने का मुख्य साधन है। सुगन्ध हवा में नहीं है, कस्तूरी में है। फिर भी अगर हवा न हो, उसके ऊपर का पड़ जरा-सा खिसका हुआ न हो तो कस्तूरी की सुगन्ध नहीं आ सकती। कस्तूरीया मृग को स्वयं को भी सुगन्ध आती है, परन्तु उसे पता नहीं है कि यह सुगन्ध मेरे में से (मेरी डूंटी में से) आ रही है। वह मृग तो अज्ञानी है, परन्तु आप तो समझते हैं कि धर्म आत्मा के गुण में है। उसे सम्यक्रूप से समझने के लिए वीतरागवाणी पर श्रद्धा करेंगे, तो अवश्य समझ में आ जाएगा।

देवानुप्रियों ! कस्तूरीया मृग की अपनी नाभि (डूंटी) में सुगन्ध होने पर भी अज्ञान के कारण वह सुगन्ध ढूंढने हेतु वन-वन में भटकता है। वैसे ही अपनी आत्मा भी अज्ञान के कारण अनन्तकाल से भव-वन में परिभ्रमण कर रहा है। कर्म जीव को संसार में परिभ्रमण कराता है। कर्म के कारण ज्ञान का प्रकाश आच्छादित हो गया है। इस प्रकाश को पुनः प्राप्त करना हो तो कर्म के आवरणों को दूर करने पड़ेंगे। मकान में उजाला करना हो तो किवाड़ बंद हो उन्हें खोलने पड़ते हैं। किवाड़ खुलते ही उजाला आना स्वाभाविक है। इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप नया नहीं बनाना है। सिद्ध भगवन्तों की आत्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा ही निगोद की आत्मा का स्वरूप है। सोने का कण जैसा आभूषण में है, वैसा ही खान में था और जैसा वह खान में था, वैसा ही आभूषण में है। इनमें अन्तर है तो इतना ही है कि खान में रहा हुआ सोने का कण मिट्टी से लिपटा हुआ है, और आभूषण का स्वर्णकण शुद्ध (साफ) हुआ है। वैसे ही सिद्ध भगवान् की आत्मा कर्मरूपी मिट्टी के लेप से रहित है, और एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के समस्त संसारी जीवों की आत्मा कर्मरूपी कचरेवाली हैं। इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "कर्म का कचरा साफ करके मोक्ष में जाना हो तो धर्म की आराधना कर लो।"

जैनशासन में (सबका) साध्य बिन्दु एक ही है - शीघ्र कर्मक्षय करो। कर्म का क्षय कब हो ? जब-जब बांधे हुए कर्म उदय में आएँ, तब-तब किसी भी निमित्त पर रोष न करते हुए ऐसा विचार करना कि इसमें किसका क्या दोष है ? मेरे ही किये हुए कर्म मुझे ही भोगने हैं, मैं स्वकृत कर्मो को ही भोग रहा हूँ। कर्म भोगने का समय आए, कहा भी है - तब सावधान रहो।

दुःख आवे मनवा ज्यारे, त्यारे रोवुं शा माटे ?
जे वाव्युं ते ऊगे छे, एनो शोक शा माटे ?

"जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं, सत्तमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्सणं भंते के अट्ठे पण्णते ?"

"भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने 'ज्ञाता सूत्र' के सातवें अध्ययन में पूर्वोक्त रूप से अर्थ का प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! उन्होंने आठवें अध्ययन में क्या अर्थ (भाव) प्ररूपित किया है ? भगवान् ने उसके क्या गूढ रहस्य फरमाये हैं ? उसके भाव मुझे जानने हैं ।"

जम्बूस्वामी को (भगवत प्रतिपादित भावों को) जानने की कितनी तीव्र तमन्ना है ? अगर ग्रहण करनेवाला पात्र सुयोग्य हो तो देनेवाला नहीं थकता । काली मिट्टी पर एक इंच पानी पड़े तो भी वह उसे चूस लेती है, जबकि पत्थर पर पाँच इंच पानी पड़े तो भी वह ऊपर-ऊपर से बह जाता है । एक बूंद पानी भी उसके अंदर नहीं उतरता । अगर अपना हृदय काली मिट्टी जैसा बन जाएगा, तो वीतरागवाणी के थोड़े-से वचन अंतर में उतर जायेंगे । उसके प्रति रुचि जगेगी और श्रद्धा पैदा होगी तो वह मोक्ष जाने योग्य बन जाएगा ।

इस दुनिया में उज्ज्वल की कीमत है, काले की नहीं । एक रूपक द्वारा समझाती हूँ - एक बार हीरे और कोयले का परस्पर संवाद हुआ । कोयला रोने लगा, तब हीरे ने कहा - "भाई ! तू क्यों रो रहा है ?" तब कोयला रोता-रोता बोला - "भाई ! मैं और तू हम दोनों एक ही माता की संतान हैं । हम दोनों पृथ्वी के पेट से उत्पन्न हुए, फिर भी तुम इतने अधिक उज्ज्वल हो, तुम्हारा बहुत सम्मान होता है और तुम्हारा मूल्य भी बहुत है । मेरे और तुम्हारे वर्ण, मूल्य और तेज में जमीन-आसमान जितना अंतर है । तुम्हें महिलाएँ कान के कर्णफूल में, हार में और अंगूठी में जड़ती हैं । तिजोरी में सुरक्षित रखती हैं । जबकि मुझे तो कोई छूना भी नहीं चाहता । कदाचित् कोई मुझे छू ले, तो मानो उसकी माँ मर गई हो, एवं अस्पृश्य (हाथ में) आ गया हो, वैसे जान कर साबुन से हाथ धो डालता है । मुझे एक बोरे में भरकर एक तरफ पटक देते हैं, और सिगड़ी में डालकर जलाते हैं, मुझे लालसूर्ख बना देते हैं, मुझे मार डालते हैं ।" यों कहकर कोयला खूब रोने लगा, तब हीरे ने कहा - "भाई ! रो मत ! मेरी बात सुन । स्थान और माता एक होने से क्या होता है ? योग्यता तो अपनी-अपनी होती है । तूने जिन अणुओं में निस्तेजता और कालिमा ग्रहण की, जबकि मैंने उन्हीं अणुओं में से उज्ज्वलता और तेजस्विता प्राप्त की, इसी कारण से तुझे जलाया जाता है और मुझे (विविध अंगों में) धारण किया (पहना) जाता है ।" बन्धुओं ! बोलो, तुम्हें हीरे जैसा बनना है या कोयले जैसा ? यदि तुम्हें हीरे जैसा बनना हो तो कोई (तुम्हारे बारे में) चाहे जितनी बातें करे, कोई निन्दा करें, तो उसमें पड़ना नहीं । परन्तु जहाँ-जहाँ जाओ, जो-जो देखो, उसमें से गुण ग्रहण करना, और अवगुणों को छोड़ देना । यों विचार करना कि गुण मेरे हैं और मेरे से पर हैं । गुणानुराग जीवन में आ जाएगा तो

जे पूर्वे कर्यां कर्मों ते, आ भवे उदयमां आव्यां छे !
ज्यां गावलिया वाव्यां'ता, एने कांटा उगवा लाग्या छे... एने कांटा (२)
अंगे - अंगे भोंकाया छे पोताना आज पराया छे,
आ बधी करमनी माया छे !
पाप करेलां प्रगटे ज्यारे, त्यारे रोवुं शा माटे... जे वाव्युं ते...

अज्ञान-अवस्था में कर्म तो बंध चुके, पर अब वीतराग-शासन मिला, वीतरागवाणी सुनने को मिली, उसे सुनकर स्वरूप में स्थिरता करो। कर्म प्रत्येक प्राणी के उदय में आते हैं, परन्तु उसे भोगते समय समझ में अन्तर होता है।

भले होय ज्ञानी के अज्ञानी जन, कर्मरहित न कोई।
ज्ञानी वेदे धैर्यथी अज्ञानी वेदे रोई॥

राजा हो या रंक, साधु हो या गृहस्थ, प्रत्येक जीव के कर्म उदय में आता है। परन्तु ज्ञानी प्रतिक्षण यह विचार करता है कि तेरे द्वारा बांधे हुए कर्म तेरे उदय में आए हैं, उन्हें भोगने में इतना अधिक शोक क्यों करता है ? समभाव से सह लेगा तो ये (कर्म) फल देकर चले जाएँगे। तीर्थंकर भगवान् को भी कर्म ने नहीं छोड़ा। प्रभु महावीर को संगमदेव ने कैसे-कैसे उपसर्ग दिये ? हम कहते हैं कि संगम ने भगवान् को कष्ट दिये। परन्तु अन्तर्दृष्टि से विचार करें तो जरूर समझ में आ जाएगा कि संगम को भगवान को कष्ट देने की बुद्धि कब हुई ? भगवान् के द्वारा पूर्वबद्ध कर्म थे, तभी न ? भगवान् गोचरी जाते, तब संगम सुज्झते आहार को असुज्झता कर डालता; भगवान् विहार करते, तब जहाँ कम रेती होती, वहाँ (उस रास्ते पर) घुटने-घुटने तक रेती के ढेर बना देता, जिनपर चलने में पैर न उठें। फिर भी भगवान् ने ऐसा विचार नहीं किया कि संगम ! तूं यों क्यों करता है ? उन्होंने तो एक ही विचार किया कि मेरे द्वारा पूर्वकृत कर्मों को मैं भोग रहा हूँ। कर्म का कर्ज चुकता हो रहा है। मैं प्रसन्न मुख से कर्म का कर्ज चुका दूं, ऐसा विचार वे करते थे।

कर्मबन्ध तोड़ने का अमूल्य अवसर : बन्धुओं ! हममें शक्ति है, वहाँ तक कर्म का कर्ज चुका देना है। इस मानवभव में जो कर्ज चुकाया जा सकता है, वह दूसरे किसी भव में नहीं चुकाया जा सकता। इसका खास तौर से ध्यान रखना। देखो, मैं एक दृष्टान्त देकर समझाती हूँ। जैसे किसी सेठ का प्रतिष्ठान जोर-शोर से चल रहा हो, उस समय कोई ऋणदाता (साहूकार) दस हजार रुपये मांगने आए तो वह तुरंत दे सकता है। परन्तु यदि वह प्रतिष्ठान कमजोर हो जाए उस वक्त साहूकार (लेनदार) रुपये लेने आए तो क्या होगा ? कई बार माल होते हुए भी तख्ती बदलनी पड़ती है। पाँच लाख का हीरा पास में पड़ा है, परन्तु उसे खरीदनेवाला ग्राहक मिलना चाहिए न ? ग्राहक हो और मिल्कियत बराबर हो, उस समय लेनदार (साहूकार) रकम लेने आए तो उसे निपटाना आसान होता है। परन्तु अगर इससे विपरीत बात हो तो दिवाला निकालना पड़ता है न ? तुम विचार

बेड़ा पार हो जाएगा । तुम चन्द्रमा को तो देखते हो न ? चन्द्रमा के जीवन में होनेवाले उतार और चढ़ाव से बोध ग्रहण करो । चन्द्रमा के जीवन में कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष, यों दो पक्ष आते हैं । शुक्लपक्ष में प्रकाश होता है और कृष्णपक्ष में होता है - अन्धकार। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह जीवन में दिन-प्रतिदिन गुणों की वृद्धि करते जाओ और कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह दुर्गुणों को दिन-प्रतिदिन दूर करते रहो तो तुम्हारा जीवन उज्ज्वल और तेजस्वी बन जाएगा ।

गुण का कलर (रंग) श्वेत है और अवगुण का कलर काला है । वीतरागी संतों के वस्त्र का कलर भी श्वेत होता है । प्रथम और अन्तिम तीर्थकरों के श्वेतवस्त्र होते थे । बीच के २२ तीर्थकरों के संत भले ही रंगीन वस्त्र पहनते थे, पर उनके परिणामों में उज्ज्वलता थी, सरलता थी । सरल हृदयवाले मानव श्वेत कलर के समान गुण को ग्रहण करते हैं और अवगुण को छोड़ देते हैं । अपनी आत्मा स्वयं तीर्थकर भगवान् के समवसरण में गया, किन्तु वहाँ भी उसने अवगुण ग्रहण किये और अपना पकड़ा हुआ पूंछड़ा छोड़ा नहीं, इसी कारण चतुर्गतिक संसार में भटका है ।

इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य रहे हुए हैं । एक हैं - पक्षी जैसे और दूसरे हैं - बंदर जैसे । वृक्ष की एक डाली पर बंदर बैठा है और दूसरी डाली पर पक्षी बैठा है । जब खूब जोर का तूफान आता है, वृक्ष की डाली टूटने के सिरे पर होती है, तब पक्षी समयसूचकता का उपयोग करके वृक्ष की डाली पर से उड़ जाता है, जबकि बंदर गिर जाने के भय से उस डाली से चिपट जाता है, जोर से पकड़े रखता है । अतः वृक्ष के गिरने के साथ ही बंदर उसके नीचे दबकर मर जाता है और पक्षी खतरा आया जानकर (पहले ही) अपना स्थान बदल कर सुरक्षित स्थान का आश्रय ले लेता है । इस प्रकार जिन मनुष्यों की प्रकृति बंदर जैसी है, वे मेरे धन-वैभव और भोग चले जाएँगे, इस भय से उन्हें छोड़ने के समय अधिकाधिक चिपटते जाते हैं और जो मनुष्य पक्षी की प्रकृति जैसे हैं, वे देर-सबेर एक दिन यह सब छोड़ता ही है, मैं इन्हें नहीं छोड़ूं, तो ये मुझे छोड़कर चले जायेंगे, यों समझकर स्वयमेव भोगों का त्याग कर देते हैं और (आत्म) धर्म की शरण स्वीकार कर लेते हैं ।

जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से पूछते हैं - "भगवान् ने किन भावों का प्रकाशन किया है ? उन भावों को मुझे बताइए (समझाइए) ।" शिष्य विनयवान और जिज्ञासु हो तो गुरु के दिल में उसे ज्ञान देने का उत्साह होता है, सहजभाव से गुरु के मानस में भी नये-नये भावों की स्फुरण होती है । इसी प्रकार श्रोताजन जिसासु हों तो वक्ता के दिल में भी वीतरागवाणी सुनाते समय नये-नये भाव जागृत होते हैं । तुम्हें अपना पुत्र अच्छा और विनयी हो तो आनन्द होता है न ? पुत्र विदेश (फोरेन) रहता हो और बार-बार पत्र लिखता हो कि 'पिताजी ! मैं आनन्द में हूँ । मेरी चिन्ता मत करना ।' तब पिताजी पत्र लिखें कि - 'बेटा ! तुझे विदेश गये पाँच वर्ष हो गए । अच्छे घराने

करो - अपनी आत्मा नरकगति, तिर्यचगति या देवगति में गयी, वहाँ कैसी दशा थी ? पास में माल नहीं था, पैसे भी नहीं थे, परन्तु कर्मराजा का कर्ज किया हुआ था, यह बात स्पष्ट है। उस वक्त संवर, तप आदि धर्मक्रियाएँ करके कर्मनिर्जरा करने का क्या कोई साधन पास में था ? नहीं । जहाँ साधन-सामग्री या समझ न हो, वहाँ पुराने कर्मों का फल भोगते हुए नये कर्मों का बंध हो जाता है । इस समय (मनुष्यभव में) कर्मों का कर्ज चुकाने के लिए परिपूर्ण सामग्री मिली है, इसलिए समझपूर्वक (विवेकपूर्वक) सहन कर लो ।

जैनशासन पाया है तो कुछ प्राप्त कर लो : महान् पुण्य योग से हमें वीतराग - शासन मिला है । इस शासन में जिस प्रकार कर्म की फिलोसोफी समझाई गई है, वैसी दूसरे दर्शनों या धर्मो में कहीं नहीं है । जैनशासन को पाकर जो मनुष्य कर्म के उदय के समय समभाव से दुःखों को सहन कर लेता है, वह निष्फल नहीं जाता । पहले जो असातावेदनीय कर्म बंध हुआ है, वह उदय में आया, इस कारण दुःख आया । उस वक्त आर्त-रौद्रध्यान हुआ । इस प्रकार दुःख सहन करने से कर्मनिर्जरा तो होती है, किन्तु नये कर्म तीव्र रूप से बंधते हैं । किसी भी गति या जाति का जीव उदय में आये हुए कर्म से मिलनेवाला दुःख सहन तो करता है, किन्तु आर्तध्यान या रौद्रध्यान से जुड़ता है, इस कारण जो कर्मनिर्जरा का लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता । मान लो, कोई बहन अच्छे कपड़े पहनकर बाहर जाने के लिए निकली । उस समय किसी ने राख के छींटे उछाले । उस समय राख के छींटे धोने के लिए बर्तन धोये हुए गंदे पानी से भरी हुई कुण्डी में कपड़े झकोल दे तो कपड़े साफ होंगे या थे उनसे भी ज्यादा खराब हो जाएँगे ? इसी प्रकार कर्म के विषय में समझना । पहले के बांधे हुए कर्मों के कारण दुःख आया । उस दुःख को भोगा, इससे उन कर्मों की निर्जरा तो हुई, परन्तु उन्हें (कर्मफल) भोगते समय आर्तध्यान-रौद्रध्यान रूपी गंदे पानी की कुण्डी में डुबकी मारी, जिससे जो कर्म पहले थे, उनसे अधिक नये कर्म बांध लिये । चारों गतियों में इस प्रकार जीव पुराने कर्म भोगते हुए (यों) नये कर्म बांधता रहता है और चतुर्गतिक संसार में भटकता रहता है । अतएव तीर्थकर भगवान् फरमा गये हैं कि "हे जीव ! तुझ पर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक या सांयोगिक किसी भी प्रकार से अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दुःख आ पड़े, उस समय एक बात ध्यान में रखना - 'मैं अपने द्वारा किये हुए कर्मों (के फल) को भोग रहा हूँ ।'"

आत्मा में ज्ञानदीपक प्रगट होगा तो कर्मरूपी चोर प्रविष्ट नहीं हो सकेंगे : सुनो, किसी मकान में दीपक जल रहा होगा तो उस घर में चोर घुसने से विचार करेंगे । वैसे ही हमारे आत्म-गृह में यदि ज्ञानरूपी दीपक जल रहा होगा तो कर्मरूपी चोर प्रवेश करने में विचार करेगा । बताइए, आप कौन-सा दीपक रखेंगे ? मैं अपने द्वारा किये हुए कर्मों (फल) को भोग रहा हूँ । दूसरा कोई भी **मुझे दुःख** देनेवाला

की कन्याओं का (तेरे साथ सगाई के लिए) ओफर आ रहा है । अतः तू अब देश में आए तो तेरा विवाह करें ।' इस पर पुत्र लिखता है - 'पिताजी ! आप मुझे बुला रहे हैं, यह बहुत खुशी की बात है । परन्तु मेरे पास टिकट के पैसे नहीं हैं । आप पैसा भेजें तो मैं आऊँ ।' अब बोलो ! पुत्र आए तो आनन्द हो या आनन्द उड़ जाय ? ऐसी स्थिति में (पिता को) चिन्ता होती है कि काफी खर्च करके पुत्र को विदेश भेजा, पर (वहाँ रहकर) कुछ भी कमाया नहीं । ऐसी चिन्ता होती है । परन्तु आपको ५० वर्ष हो गए, फिर भी आत्मा का कुछ भी (हित) नहीं किया । (भविष्य में) मेरा क्या होगा ? इसकी लेशमात्र चिन्ता होती है ? पुत्र बहुत कमाई करके विदेश से आता है, तब तुम्हारा हृदय हर्ष से नाच उठता है । जैसे मेघगर्जना होते ही मोर नाचने लगता है, वैसे ही वीतरागवाणी श्रवण करते हुए तुम्हारा हृदय हर्ष से नाच उठना चाहिए ।

जम्बूस्वामी का हृदय हर्ष से नाच उठता है । गुरु भी ऐसे (गुणवान) और शिष्य भी ऐसे । जम्बूस्वामी ने पूछा - "भगवन् ! आठवें अध्ययन में (भगवान ने) क्या भाव फरमाये हैं ?" इस पर पंचम गणधर सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं - *"एवं खलु जंबु !..."* - हे आयुष्मान् जम्बू ! तेरी प्रबल इच्छा है तो सुन ! सुधर्मास्वामी कैसी मधुर मिष्ट भाषा बोले ? एक पिता अपने पुत्र को प्यार से कहे - "बेटा !" तो कैसा प्रेम उमड़ता है ? बहू सासु से कहे - "माँ ! गर्म-गर्म रोटी बना दूं । आप भोजन कर लें और उपाश्रय जांय !" और सासु बहू से कहे - "बहू बेटी !" तो कैसा वात्सल्यभरा शब्द मालूम हो । इस प्रकार धनवान्, निर्धन, मध्यमवर्ग और उच्चवर्ग आदि का प्रत्येक मनुष्य-एक दूसरे के साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करें तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतर जाय ! सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से वात्सल्यभाव से कहते हैं - "हे जम्बू ! भगवान् ने 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में जिन भावों को प्रगट किया है, उन्हें तू एकाग्रचित्र होकर सुन - *'तेणं कालेणं तेणं समएणं'* - अर्थात् - उस काल और उस समय में (प्रश्न होता है-) यहाँ उस काल और उस समय ऐसा क्यों कहा ? काल दो प्रकार का है - एक उत्सर्पिणी काल और दूसरा अवसर्पिणी काल ! उत्सर्पिणी यानी चढ़ता काल और अवसर्पिणी यानी उतरता काल ! इस समय कौन-सा काल चल रहा है ? यह तुम जानते हो न ? इस समय अवसर्पिणी काल चल रहा है । इस अवसर्पिणी काल के उस काल और उस समय की बात है यहाँ । अवसर्पिणी काल के ६ आरे हैं - (१) सुषम-सुषम, (२) सुषम, (३) सुषम-दुःषम, (४) दुःषम-सुषम, (५) दुःषम और (६) दुःषम-दुःषम । इन ६ आरों के भाव शास्त्र में बताये गए हैं ।

पहले तीन आरे जुगलियों (यौगलिकों) के होते हैं । पहले आरे में जुगलियों का ३ गाऊ का देहमान और ३ पल्योपम का आयुष्य है । दूसरे आरे में जुगलियों का २

नहीं है। जैन के जीवन में पद-पद पर ऐसा विचार (ज्ञानदीपक) होना चाहिए। किसी दूसरे के किये हुए कर्मों (फल) को दूसरा कोई जीव नहीं भोगता। कर्म करे कोई और (उसका फल) भोगे कोई दूसरा, अगर ऐसा होता तो कोई भी जीव दुःखी नहीं होता और न नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों में जाता। तुम प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखते हो कि जो अपराध करता है, उसे ही सजा भोगनी पड़ती है।

किसी मनुष्य ने चोरी की, और वह पकड़ा गया। उसे सजा भोगने के लिए जेल में बंद कर दिया गया। सजा तो चोरी करनेवाला भोगता है। परन्तु (साथ में) उसके माता, पिता और पत्नी आदि सबको दुःख तो होता है न ? परन्तु जो जेल में बंद है, उसका जो दो वर्ष का बेटा है, उसे दुःख नहीं होता, क्योंकि बच्चा छोटा है, और उसे ज्ञान नहीं है, इसी कारण दुःख नहीं होता, परन्तु माँ-बाप को दुःख होता है कि वह हमारा पुत्र है। पत्नी को दुःख होता है कि मेरा पति जेल में है। यह सम्बन्ध लक्ष में रहा, इस कारण दुःख (महसूस) हुआ। अगर यह सगाई का सम्बन्ध नहीं रहा होता तो दुःख नहीं होता। मान लो, तुमने कोई कीमती चीज तुम्हारे मित्र को (उसके किसी काम के लिए) दी, अगर वह चीज उसके पास से खो जाए तो दुःख किसे होगा ? कौन उसकी शोध करेगा ? जिसने उस चीज को अपनी मानी, उसे दुःख होगा, और वही उसकी शोध करेगा। दूसरे को दुःख नहीं होता, और न ही वह उसकी शोध करता है। इस दृष्टि से ज्ञानीपुरुष फरमाते हैं कि "आत्मा में अंधेरा न रखो, चौबीसों घंटे ज्ञानदीपक जलता रखो।" जिन कर्मो (फल) को मैं भोग रहा हूँ, वे मेरे ही किये हुए हैं। ऐसी धारणा सतत बनी रहे तो उसे आर्तध्यान या रौद्रध्यान करने का अवसर ही नहीं आता। ऐसी समझ (ज्ञान) का दीपक (अंतर में) जलता रहे तो आर्त-रौद्रध्यान रूपी चोर अंदर प्रविष्ट नहीं हो सकते। इस ज्ञान का प्रकाश न हो तो आर्त-रौद्रध्यानरूपी चोर आत्मगृह में प्रविष्ट होकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप आदि गुणरूपी माल चुरा ले जाता है। इन कर्मरूपी चोरों से बचना हो तो जिनेश्वर भगवान् के वचन में जो शंका-कांक्षादि दोष लगा रहे हो, उनसे बचो, इन दोषों को दूर करो।

जिन मनुष्यों ने जिनशासन पाया है, जिनेश्वर भगवान् के वचनों पर जिन्हें यथार्थ श्रद्धा है, और तदनुसार आचरण करते हैं, उन्हें दोष नहीं लगता। परन्तु जो जिनशासन की महिमा नहीं समझे, उन्हें सावधान रहने की आवश्यकता है। बहुत-से लोग छोटी-छोटी बातों में सावधान रहते हैं, परन्तु बड़ी बातों में लापरवाह रहते हैं। मान लो, कोई व्यक्ति बड़ी दुकान का मालिक है, दुकान में बहुत ग्राहक आते हैं। माल के ढेर पड़े हैं। ग्राहक कोई चीज उठाकर न ले जाए, इसके लिए बहुत ही सावधानी रखता है। परन्तु उसकी दुकान में बहुत-से मुनीम और नौकर काम करते हैं। उनके प्रति सावधानी न रखी तो ? ग्राहक कदाचित् ले जायेगा तो अधिक नहीं ले जाएगा, परन्तु मुनीमों और नौकरों की नियत बिगड़ी तो बड़ा भारी घोटाला करेंगे। उसकी मार जैसी-तैसी नहीं

गाऊ का देहमान और दो पल्योपम का आयुष्य, तथैव तीसरे आरे में जुगलियों को १ गाऊ का देहमान और एक पल्योपम का आयुष्य होता है। तुम्हारे पास अरबों की सम्पत्ति हो, पर वह जुगलियों की सम्पत्ति के आगे कुछ नहीं है। ऐसे महान् वैभव का वे उपभोग करते हैं। उन्हें तुम्हारी तरह कमाने की कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें प्रतिदिन आहार करने की इच्छा नहीं होती। पहले आरे में अट्ठमभक्त (तीन दिन से), दूसरे आरे में छट्ठभक्त (दो दिन से) और तीसरे आरे में चउत्थभक्त (एक दिन के अनन्तर) आहार की इच्छा होती है, तब वे आहार करते हैं। उन्हें रसोई बनानी नहीं पड़ती। दश प्रकार के कल्पवृक्ष उन्हें मनोवांछित सुख (फल) देते हैं। इन तीनों आरों में (मनुष्यों के) वज्रऋषभनाराच संघयण होता है। उनका शरीर इतना मजबूत (सुदृढ़) होता है कि उनके ऊपर से हाथी चला जाए तो भी हड्डी नहीं टूटती। अभी तो जरा-सा पैर लपसा कि हड्डी टूट जाती है। जुगलियों के दांतों की बत्तीसी भी बहुत सुन्दर और सुदृढ़ होती है। उन्हें वृद्धावस्था या बीमारी नहीं आती। जुगलिया जोड़े से (युगलरूप में) जन्म लेते हैं और एक को छींक और दूसरे को उबासी आती है, वे एक साथ ही मर जाते हैं। युगलियों के एक-दूसरे का वियोग नहीं होता। मृत्यु के ६ महीने बाकी रहते हैं, तब वे परभव (आगामी जन्म) का आयुष्य बांध लेते हैं। उस समय जुगलिया दम्पत्ति एक जोड़े को जन्म देते हैं। पहले आरे में वे युगल शिशु की ४९ दिन तक, दूसरे आरे में ६४ दिन तक और तीसरे आरे में ७९ दिन तक प्रतिपालन करते हैं। भाई-बहन दोनों साथ-साथ ही जन्म लेते हैं और वे ही पति-पत्नी बन जाते हैं। उन्हें एक दूसरे के साथ किसी प्रकार का वैर-विरोध, ईर्ष्या या द्वेष नहीं होते। वे अपने शुभ परिणामों से मरकर देवलोक में जाते हैं।

बन्धुओं ! युगलियों की इतनी पुण्यवाणी होते हुए भी वे वहाँ से मोक्ष नहीं जा सकते। उसका क्या कारण है, समझे ? (कारण यह है कि) युगलियों में धर्म (धर्माचरण) नहीं है। वहाँ अकर्मभूमि है। यहाँ इस समय (कर्मभूमि होते हुए भी) तीर्थंकर भगवन्त नहीं हैं, किन्तु उनकी वाणी मौजूद है। वीतरागवाणी खारे समुद्र में भी पानी के छोटे कुंए के समान है। (वीतरागवाणी के) श्रवण और (उसपर) श्रद्धा करके चाहे इस समय मनुष्य सीधा (यहाँ से) मोक्ष में न जा सके, किन्तु एकभवावतारी तो जरूर बन सकता है। (इस काल के) पहले के तीन और जुगलियों के जानना। तीसरे आरे के ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहे, तब भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) का जन्म हुआ। उनका ५०० धनुष्य का देहमान और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था। उनकी माता मरुदेवी का आयुष्य कोड़पूर्व का था। ऋषभदेव भगवान् के १०० पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। भगवान् के सभी सौ पुत्रों ने और दोनों पुत्रियों ने दीक्षा ली और उसी भव में वे मोक्ष में गए। भगवान् तो भगवान् थे, पर उनका सारा परिवार भी कितना उज्ज्वल और आदर्श था ?

भगवान् ऋषभदेव के दीक्षा लेने ... मरुदेवी ... लिए बहुत ही चिन्ता करती रहती थीं। वे (अपने पौत्र)

पड़ेगी। तुम्हारे घर में रहकर वे तुम्हारा माल ले जाएँगे। इसलिए ग्राहक की अपेक्षा मुनीमों (आदि) के प्रति अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। (अन्यथा) जिनशासन प्राप्त होने पर भी सत्य-मार्ग का स्वीकार नहीं करोगे और असत्य में रहोगे तो ग्राहक को ठगकर लूट लोगे, मगर घर में मुनीम और नौकर खा जायेंगे, नुकसान करेंगे। तुम्हारी ऐसी स्थिति न हो जाए, इसका ध्यान रखो।

जिसे जिनेश्वर भगवान् के वचन पर अटल श्रद्धा है, उस पर चाहे जैसे दुःख आ पड़े, तो भी वह जीव परभाव में नहीं जाता। अर्हन्नक श्रावक की कसौटी समुद्र में एक देव की, फिर भी उसका एक रोम भी विचलित नहीं हुआ। उसकी गर्दन पकड़कर देव ने उसे ऊपर (आकाश में) उछाला, किन्तु उसकी एकमात्र यही श्रद्धा थी कि अगर मेरा आयुष्य बलवान है, तो यह देव चाहे जो करे तो भी मैं मरनेवाला नहीं; और यदि आयुष्य पूरा होनेवाला होगा तो हो जाएगा; किन्तु मेरा धर्म झूठा है, यह तो मैं कदापि नहीं कहूँगा। यह शुद्ध श्रद्धा का प्रभाव था। एक बार जो जीव सम्यक्त्व को पा लेता है, वह जीव नरक में नहीं जाता। हाँ, एक बात है, सम्यक्त्व-प्राप्ति से पहले अगर नरक के आयुष्य का बंध पड़ गया तो नरक में अवश्य जाना पड़ता है। बाकी सम्यक्त्वी जीव नरक, तिर्यंच, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इन ७ बोलों में आयुष्य बंध नहीं करता। वह मरकर वैमानिक देवों में जाता है, और अर्ध-पुद्गल-परावर्तनकाल में मोक्ष चला जाता है। सम्यक्त्व की महिमा तो देखो, सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय तो मोक्षगमन की मुहर छाप लग जाती है। क्या तुम्हारी सम्पत्ति में इतनी शक्ति है कि अरब रुपये कमाए, तब भी अधोगति में नहीं जाती? अथवा करोड़पति बन जाए, उसे कैन्सर, टी.बी. या डायाबिटिज रोग नहीं होगा? (श्रोताओं में से आवाज – नहीं) तुम्हारी (भौतिक) सम्पत्ति में इतनी भी शक्ति नहीं है। (क्योंकि) जहाँ तुम्हारी वाहवाही होती है; नामबरी हो, वहाँ तुम उत्साहपूर्वक सम्पत्ति का उपयोग करते हो, और धर्मकार्य में नामबरी के बिना सम्पत्ति का उपयोग करने में तुम्हारे पेट में दुःखता है! जहाँ अपनी वाहवाही के लिए लाखों रुपये (किसी काम में) लगाओ तो उससे जो लाभ नहीं होता, वहाँ धर्मबुद्धि से परिग्रह पर से ममत्व का त्याग करके थोड़ा-सा भी दान दोगे, तो उससे महान लाभ प्राप्त कर लोगे।

सम्यक्त्वी जीव पुण्य से मिलनेवाली लक्ष्मी और लक्ष्मी से मिलनेवाले सुखों में आसक्त नहीं होता, अपितु उससे अलिप्त रहता है। कदाचित् पाप के उदय से लक्ष्मी प्राप्त न हो तो भी (मन में) दुःख नहीं लाता; बल्कि वह दुःख में सुख निकाल लेता, ढूंढ लेता है। सुख में से सुख तो सभी ढूंढते हैं, किन्तु जो दुःख में से सुख को खोज लेता है, वही सच्चा मानव है। उस सरल-सरस बनी हुई आत्मा को कोई गाली दे तो भी वह उस गाली में से गुण-ग्रहण कर लेगा। उसे कोई उपालम्भ देगा, तो भी उसे वह मीठा लगेगा।

श्रुत प्रेमी

१. मोहनडोसामलजी गौतमचंदजी दुक्कड
२. मामथलजी उदकुमारजी नागर
३. पवलजी पृथ्वीराजजी
४. मोहनजी पारसमलजी चौधरी
५. लूमकतचंदजी रमेशकुमारजी रोका
६. श्रीमान शांतिलालजी रोका
७. श्री मंधरांजी जोधराजी सुराना
८. पारसमलजी सुरेशकुमारजी कावड
९. मनुभाई महेता
१०. भोपालचंदजी पींछा
११. श्रीकांतभाई महेता
१२. श्रीमान हंसराजजी जूरोट
१३. श्रीमती रतनवाई जूकारजी महेता
१४. कांतिलालजी महावीरचंदजी
१५. सोहनलालजी साविक
१६. प्रदीप उर्मीलायहन
१७. श्री जुगराज वालाजी महेता
१८. धर्मीचंद शांतिलाल छाजेड
१९. पुष्पावाई महावीरचंदजी मुथा
२०. सुधावहन अनीलभाई महेता
२१. जोली
२२. मंगल मंडल
२३. सद्गृहस्थ
२४. वीपीनकुमार मणीलाल कोठारी
२५. दोरेनचंदजी धावेती - पोंडिचेरी
२६. श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन संघ - वीलुपुरम
२७. मंगलचंदजी डुंगरचंदजी - वीलुपुरम
२८. अगरमलजी विजयचंदजी गुलेचा
२९. श्रीमती चंद्रवाई ललीतकुमारजी
३०. श्रीमती दिनेशकुमारजी
३१. विमलचंदजी नवथामजी वोमा
३२. श्रीमती वसंतवाई गुलेचा
३३. गौतमचंदजी योगेशकुमारजी लाकवाला
३४. प्रकाशचंद्रजी मुकेशचंद्रजी अस्थोमल - जोहरा
३५. चंदनवाला महिला मंडल
३६. श्रीमती उर्मीला मोहनलालजी खीवलाल
३७. रूपचंदजी सज्जनराजजी ओसवाल
३८. महावीरचंदजी पारसमलजी कोथरी
३९. रदमचंदजी राजेन्द्रकुमारजी
४०. श्रीमान पारसमलजी महावीरचंदजी
४१. श्रीमती हनुमंतकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी
४२. श्रीमान वावु गनपतराजजी अभयकुमारजी सुराना
४३. महिला मंडल
४४. शांतिलालजी खुशनलालजी छोकरा
४५. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन मंघ
४६. श्री त्रिशला महिला मंडल
४७. श्रीमान गौतमचंदजी पीपडा
४८. शाह विजयराजजी नेमीचंदजी कटाडिया
४९. श्रीमान अनीलकुमारजी चोरडीया
५०. देलीपभाई एन्ड श्रीमती विमलवाई
५१. मूलचंदजी जी. गुलेचा
५२. श्री गुजराती शुभेच्छक मंडल - तिरूप्पुर
५३. वेनयकांत रामजी पंचमीया
५४. हेरालालजी रसवजी
५५. ईसराजी वरसी नागदा
५६. पामायिक महिला मंडल
५७. इसमुख रामजी पंचमीया
५८. हैलसींग डोलीया
५९. के. पीयूष ओस्तवाल
६०. पज्जनराजजी प्रवीणकुमार मनोज
६१. चंपावाई पारसमल कोठारी
६२. अशोककुमार देवराज वागमार
६२. एच. एल. शांतिलाल जैन
६३. सुधीरकुमार आदर्शकुमार

उस (देव से आनेवाले) जीव को इलेक्ट्रिक सोर्ट (बीजली के करेंट) जैसा लगता है। उसे यों लगता है कि मुझे ऐसा (अशुचिमय) आहार करना है ? जीव सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति बांधता है। जहाँ (जिस गति व योनि में) जाएगा, वहाँ पहले उसे आहार करना अनिवार्य है। साधु के लिए २२ प्रकार के परिषह बताये हैं। उनमे सबसे पहले क्षुधा परिषह है। देव को मानवदेह की इस दुर्गन्धभरी कोटड़ी में आना अच्छा नहीं लगता। संक्षेप में, मेरे कहने का आशय यह है कि अगर बार-बार ऐसे (विभिन्न गतियों-योनियों में) जन्म-मरण नहीं करने हों तो वीतराग-प्रभु की आज्ञा का पालन करो।

हाँ तो, उस मुनीम ने ३० हजार रुपयों का नफा कमाया है। उसके मन में तो यही विचार है कि सेठ मुझे शाबाशी देंगे और खुश होकर बड़ा भारी ईनाम देंगे। उसने सेठ को पत्र लिखकर सारी हकीकत बताई। इस पर सेठ ने उत्तर में इतना ही लिखा कि 'मैं वहाँ आने के बाद सब देखूंगा (सोचूंगा)।' समय पाकर सेठ स्वदेश आए। मुनीम के मन में आनंद का पार नहीं है। सेठ दुकान में आए। उन्होंने मुनीम से कहा - "वे तीस हजार रुपये लाओ !" मुनीम के मन में यह था कि अभी सेठ मेरी पीठ ठोकेंगे और मेरी प्रशंसा करेंगे। सेठ ने ३० हजार रुपये हाथ में लेकर कहा - "मुनीमजी ! ये ले लो ! मैं तुम्हें राजी-खुशी से देता हूँ।" तब मुनीम ने कहा - "सेठजी ! मैंने तो आपके नाम से रुई खरीदी थी। इसमें मेरा कुछ नहीं है। यह सब आपका है।" मुनीम वह रकम नहीं लेता, सेठ जबरन मुनीम को वे ३० हजार रुपये देते हैं। उसके साथ ही एक चिठ्ठी लिखकर दे दी - "अब इस फर्म से तुम्हें सदा के लिए रिटायर किया जाता है।" चिठ्ठी पढ़ते ही मुनीम को बहुत झटका लगा। उसने सेठ से पूछा - "मेरा क्या गुनाह है कि आप मुझे रिटायर कर रहे हैं ?"

सेठ कहते हैं - "तुम्हारा और कोई गुनाह नहीं है, परन्तु तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, इसलिए तुम्हें रिटायर किया जाता है।"

आज्ञाभंग करने से जीवन में हुई महाहानि : देवानुप्रियों ! समझ में आया न ? आज्ञा का उल्लंघन करने में कितना नुकसान है ? मुनीम सदा के लिए बेकार हो गया। चाहे जितना लाभ होता हो, फिर भी बुजुर्ग की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना है। कोई साधु यों मानता है की अमुक देश में जाएँ तो वहाँ के लोग धर्म प्राप्त करेंगे, अतः गाड़ी में बैठकर जाएँ तो क्या आपत्ति है ? चाहे जितना लाभ होता हो, पर जहाँ वाहन में बैठने की भगवान् की आज्ञा नहीं है, वहाँ उस आज्ञा का उल्लंघन करके जाने में बड़ा पाप है। लाखों जीव तिर जाते हों, परन्तु भगवान् कहते हैं कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, इसलिए मेरी फर्म (धर्मतीर्थ) से तू रिटायर है।

अब सुनो, मन-वचन-काया से गुरु के प्रति अर्पित होकर गुरु की आज्ञा का पालन करने से कितना लाभ है ? इस काल में ऐसे गुरु और शिष्य मिलने मुश्किल हैं। गुरु की आज्ञा चाहे जितनी कठोर हो तो भी (विनीत) शिष्य प्रसन्न मुख से उसे शिरोधार्य करता है।

गुरु उभो सूकावै, तो उभो सूकै, ओ पिण अवसर नहीं चूकै ।
गुरु करावे शिष्यने संथारो, ते पिण आज्ञा न लोपे लिगारो ॥

कदाचित् गुरु शिष्य को सख्त धूप में खड़े रहने की आज्ञा दे, अथवा संथारा करने की आज्ञा दे, तो भी गुरु-आज्ञा का पालन करने का सुअवसर न चूके, और न ही गुरु की आज्ञा का लोप करे ।

एक गुरु के शिष्य को कोई चेपी (संक्रामक) रोग हो गया । उसके शरीर से लोही और पस निकलते थे, और बहुत ही दुर्गन्ध आती थी । गुरु उसे समझा-बुझाकर समत्वभाव में स्थिर रखते थे । एक बार एक बड़ा सर्प निकला । शिष्य ने कहा - "गुरुदेव ! सांप आया है ।" गुरु ने कहा - "भले आया । तू इस सर्प के पास जाकर इसके मुँह में हाथ डाल कर आ ।" शिष्य बहुत ही विनयी था । उसने एक ही विचार किया कि गुरु जो भी कहते हैं - *'मम लाभोति पेहाए'* मेरे हित (लाभ) की दृष्टि से कहते हैं । गुरुदेव मेरे परम उपकारी हैं, मेरे हितैषी हैं । गुरु एक चींटी को भी दुःख नहीं देते । एक सचित्त (वृक्ष के) पत्ते का स्पर्श (संघट्टा) हो जाए, तो भी एक उपवास का प्रायश्चित्त लेते हैं । वे ऐसे षट्कायिक जीवों के प्रति दयालु हैं, छकाय के पीहर (माता-पिता) समान हैं । जैन मुनियों का जीवन कैसा होता है । एक भजन प्रस्तुत है, इस विषय में -

ना पंखो वींझे गरमीमां, ना ठंडीमां कदी तापे,
ना काचा जलनो स्पर्श करे, ना लीलोतरीने चांपे ।
नानामां नाना जीव तणुं पण ए संरक्षण करनारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥
जेना रोम-रोमथी, त्याग अने संयमनी विलसे धारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥
दुनियामां जेनी जोड़ जड़े ना, एवुं जीवन जीवनारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥

क्या ऐसे पवित्र गुरु मुझे मृत्यु के मुख में भेज सकते हैं ? नहीं, ये तो मेरा कल्याण कराना चाहते हैं । शिष्य कैसा पवित्र (हृदय का) होगा ? वह शिष्य सर्प के पास गया और उसके मुँह में हाथ डाला तो सर्प ने डस लिया । गुरु की आज्ञा का पालन करके शिष्य गुरु के पास आया । गुरु ने पूछा - "सर्प ने क्या किया ?" तब शिष्य ने कहा - "मैंने सर्प के मुख में हाथ डाला तो सर्प ने मुझे डस लिया (दंश दिया) ।" गुरु ने कहा - "कोई हर्ज नहीं ।" सर्प के डस लेने के आधा घंटा हुआ कि शिष्य का रोग मिट गया । शिष्य के शरीर में विष फैल गया था । *'विषस्य विषमौषधम्'* इस न्याय से कई बाद जहर जहर को मार देता है । इस दृष्टि से शिष्य के शरीर में (पोइजन) जहर था, और सर्प का जहर उसमें मिलने से वह जहर मर (नष्ट हो) गया और शिष्य रोगरहित हो गया । पर वह स्वस्थ कब हुआ ? जब उसने गुरु की आज्ञा का पालन किया तब । अगर गुरु की आज्ञा का लोप किया होता तो ऐसा लाभ न मिलता ।

६४. श्री प्रमन्नचंदजी - वीलुपुरम
६५. श्री सुनील जैन - दिल्ली
६६. श्वेताम्वर स्थानकवासी जैन संघ - वीलुपुरम्
६७. मंगलचंदजी डुंगरचंदजी - वीलुपुरम्
६८. अगरमलजी विजयचंदजी गुलेचा
६९. दिनेशकुमार ताराचंद चोरडीया
७०. लातोपकुमारजी लोकेशकुमारजी नागर
७१ श्री हरिकांत पुरुषोत्तमदास वोरा
७२. श्री मयूर वाडीलाल शाह
७३. मंछाबहन बाबुलाल
७४. ललीतजी सुराना
७५. सरोजहीनजी कोठारी
७६. कांतिलाल धोक
७७. ललीताबहन कांतिलाल गांधी - हैद्राबाद
७८. सेरीमलजी गनपतजी
७९. ललीताबाई
८०. अमरचंदजी
८१. प्रेमल हेमलतावाई
८२. लीलाबाई
८३. आशावाई पुष्पावाई
८४. सरलावाई वोहरा
८५. पारसमलजी पदमचंदजी
८६. मीनावाई पारसमलजी
८७. सुरेशकुमारजी मुथा
८८. वसंतवाई
८९. उच्छ्वास वेनही - पोंडिचेरी
९०. कोकिलाबहन - पोंडिचेरी
९१. इन्दीराबहन सुजीत रोजी
९२. उज्जराल वेनजी - पोंडिचेरी
९३. किरनबहन - पोंडिचेरी
९४. पारसमलजी शांतिलाल
९५. पुखराजजी चंद्रप्रकाश
९६. श्रीमती भावरीबाई W/o भीखाम -
९७. श्री दिलसुखमलजी अशोककुमार
९८. तेजबाई W/o स्व. मूलचंदजी
९९. चेहत परिवार - कुडलोर
१००. महावीरमल चोरडीया
१०१. विधिबाई बोहरा
१०२. मोहनभाई छलानी जे.
१०३. सखुभाई बोहरा एस.
१०४. अजीतराजी सींगावी एन्ड सन्स
१०५. एच. शंकरलालजी वारमेता
१०६. स्व. किशोर हस्ते मंगुबहन पटेल
१०७. वर्धमान स्था. जैन संघ - चितोडगा राजस्थान.
१०८. नलीनीबहन वखारवाला - सुरत
१०९. चेतन्य धर्मेश शाह
११०. श्रीमती कमलावाई शांतिलालजी - कतेला
१११. श्रीमान शक्कवलजी प्रकाशचंदजी
११२. श्रीमान जव्वारचंदजी काकडीया
११३. श्रीमती सुशीलावाई
११४. सज्जनराज शर्मानी
११५. पी. एस. शाह - सावरनाथ
११६. आर. सी. परीख
११७. अनील अनीथा बोकडीया
११८. कमलादेवी बोकडीया
११९. श्री धर्मजाजी वेद - कुडलोर
१२०. श्री पुखराजी महेन्द्रजी
१२१. सुशीलाबाई बोहरा पी.
१२२. प्रेमाबाई चोरडीया सी.
१२३. कैवमलजी जयुरमरजी - लुंकड
१२४. निहलचंदजी टी. कागा
१२५. रंगलालजी महानचंदजी फोचा
१२६. शांतिलालजी आनंदकुमारजी
१२७. नवरतनमलजी विजयराजजी - कसलवा

जम्बूस्वामी भी ऐसे विनयी शिष्य थे। उन्होंने श्रीसुधर्मास्वामी के चरणों में जीवन समर्पित कर दिया था। ऐसे जम्बूस्वामी को सुधर्मास्वामी कहते हैं -

"हे जम्बू ! उस काल और उस समय में - *"इहेव जंबुदीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदर-पव्वयस्य"*- इस जम्बूद्वीप में स्थित महाविदेहक्षेत्र में रहे हुए सुमेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में, निषिध-पर्वत की उत्तर दिशा में, महानदी शीतोदा के दक्षिण में, सुखोत्पादक वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और पश्चिम लवणसमुद्र के पूर्व (दिशा) में *'सलिलावइ नाम विजए पण्णते'* सलिलावती नामक विजय (बताया गया) है।" अर्थात् - पश्चिम समुद्र में मिलनेवाली महानदी की दक्षिण दिशा में सलिलावती नामक एक विजय-क्षेत्र खंड है। जिसे चक्रवर्ती सम्राट जीतते आए हैं, इस कारण उसका नाम सलिलावती विजय है। उस सलिलावती विजय की कौन-सी राजधानी थी ? और वहाँ का राजा कौन था ? यह बात सुधर्मास्वामी जंबूस्वामी से कहेंगे, उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ६

आषाढ़ सुदी १४, शनिवार | ता. १०-७-७६

मानवशरीर को भोगायतन नहीं, योगायतन बनाओ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त उपकारी, शासनपति प्रभु के मुख में से प्रवाहित होती शाश्वत वाणी, जिसका नाम सिद्धान्त है। भगवान की वाणी सुनने से श्रोता के भवरोग और द्रव्यरोग नष्ट हो जाते हैं। तथैव वह मिथ्यात्व के गाढ़ तिमिर को भेदकर सहस्त्ररश्मि (सूर्य) सम (सम्यग्ज्ञान का) प्रकाश फैलाती है। भगवान की वाणी अनन्त भावों के भेद से भरी हुई है। भगवान् फरमाते हैं - "हे मानव ! तुझे यह महामूल्यवान् मानवशरीर महान् पुण्य के उदय से मिला है, उसे तू भोगायतन न बनाकर योगायतन बनाना।" यह शरीर इन्द्रियविषयों को पुष्ट करने के लिए नहीं, किन्तु इन्द्रिय-विजेता बनने के लिए मिला है। यह जन्म-मरण की श्रृंखला (सांकल) तोड़ने के लिए है। अनन्तकाल से आत्मा भवाटवी में मार्ग भूलकर भटक रहा है। इस प्रकार भ्रमण करते हुए अनन्त पुद्गल-परावर्तनकाल बीत गया। ऐसा मनुष्यजन्म भी अनेक बार पाया, फिर भी भव-भ्रमण क्यों नहीं रुका ? उसका कारण समझ में आता है क्या ? जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया। सम्यक्त्व से रहित क्रिया करने से पुण्यबन्ध होता है, परन्तु कर्मनिर्जरा नहीं होती। सम्यक्त्व पाये बिना की गई क्रिया एक के बिना कोरे शून्य जैसी है। 'भावनाशतक' में भी कहा है -

वैसे ही संत-संतियों का जहाँ-जहाँ पुनीत पदार्पण होता है, वे उस-उस प्रदेश को धर्माराधना से हराभरा बना देते हैं ।

बन्धुओं ! बहुत-से लोग यों मानते हैं कि महासतीजी चातुर्मास करने के लिए घाटकोपर पधारे, इसलिए चार महीने के लिए बंध गए । अब हम उपाश्रय जाएँ या न जाएँ, पर महासतीजी तो चार महीने उपाश्रय छोड़कर कहीं जानेवाली नहीं हैं । भाई ! हम तुम्हारे बंध से बंधे हुए नहीं हैं । परन्तु कर्म के बन्धन से मुक्त होने के लिए वीतराग-प्रभुजी की आज्ञा के बंध से बंधे हुए हैं । क्योंकि चातुर्मास के दिनों में जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है । इस कारण विचरण करने में छहकाया के जीवों की हिंसा होती है । इसलिए चातुर्मास में एक स्थान में रहकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करने और कराने की वीतराग-प्रभु की आज्ञा है । उन प्रभु की आज्ञा का पालन करने में हमें आनन्द है ।

जब वर्षा होती है, तब वह सड़कों, मार्गों और गटरों में जो कचरा इकट्ठा हो जाता है, उसे धोकर साफ कर डालते हैं । वैसे ही वीतरागवाणी की वर्षा होती है, तब मनुष्य के मनरूपी गटर में क्रोध-मान-माया-लोभ और स्वार्थ के कूड़ाकर्कट जमे होते हैं, उन्हें धोकर स्वच्छ बना देते हैं । बन्धुओं ! जब वीतरागवाणी की बरसात हो रही हो, तब तुम अपने मन की गटरों को खोल डालना, ताकि उनमें कुवासना का जो कचरा जम गया हो, वह धुल जाए, और मन स्वच्छ बन जाए । मेघ गर्जन करता है, तो मयूर नाचते हैं, उसी प्रकार संतों के मुख से वीतरागवाणी रूपी मेघ की गर्जना होती है, तब श्रावक वर्ग का मन-मयूर नाच उठना चाहिए । वर्षा होते ही ग्रीष्मऋतु में तपी हुई जमीन शीतल हो जाती है, वैसे ही वीतरागवाणी की वर्षा होते ही संसार की आधि, व्याधि और उपाधि से संतप्त हुए मानवों के अन्तर में शीतलता व्याप्त हो जाती है ।

एक वर्ष में तीन चातुर्मासिक द्वार होते हैं - शियाला (शीतऋतु), ऊन्हाला (ग्रीष्मऋतु) और चौमासा (वर्षाऋतु) । इन तीनों में अधिक महत्त्व चौमासे का है । यदि शीतऋतु में अधिक ठंढ न पड़े तो मनुष्य को अधिक नुकसान नहीं होता । अत्यधिक गर्मी न पड़े तो भी इतना नुकसान नहीं होता । परन्तु अगर बरसात न पड़े तो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्रत्येक जीव का बुरा हाल हो जाता है । भूख-प्यास की जोरदार पुकार सुनाई देती है । वैसे ही जहाँ धर्म नहीं है, संतों का आगमन नहीं है, उस प्रदेश के मनुष्यों के कैसे बुरे हाल होते हैं ? विषय, कषाय और वासना के कचरे से उनका जीवन मलिन बना रहता है । तुम कैसे पुण्यवान हो कि तुम्हें संतों का सान्निध्य मिला है । संत-सतीवर्ग वीतरागवाणी की वीणा बजाकर तुम्हें धर्माराधना करने हेतु जागृत करते हैं । इस मंगलकारी दिवसों में जितनी हो सके उतनी धर्माराधना करके लाभ ले लो; और प्रतिक्षण आत्मा को जागृत रखो । यदि आत्मजागृति नहीं रखोगे तो प्रतिपाती होते देर नहीं लगेगी ।

बन्धुओं ! कितने ज्ञान के धारक प्रतिपाती होते हैं, यह जानते हो न ? मति-श्रुत-अवधि और मनःपर्यवज्ञान में ऋतुमति मनःपर्यवज्ञानवाला प्रतिपाती हो जाता है । चौदह

अंकरहित सब शून्य व्यर्थ ज्यों, नेत्रहीन को व्यर्थ प्रकाश,
वर्षा बिना भूमि में बोया, बीज व्यर्थ पाता है नाश ।
उसी भांति सम्यक्त्व-बिना है; जप, तप, कष्ट, क्रिया बेकार;
कभी न उत्तम फल देती है, मिलता कभी न आत्म-प्रकाश ॥

किसी अंधे आदमी के पास सैकड़ों ट्युवलाइटों का प्रकाश किया जाए तो वह व्यर्थ है, क्योंकि अंधा मनुष्य प्रकाश को देख नहीं सकता । वर्षा के बिना जमीन में चाहे जितना अच्छा बीज बोया जाय तो वह बेकार हो जाता है । उसी प्रकार सम्यक्त्व-रत्न को प्राप्त किये बिना की गई तमाम क्रियाओं से कर्मनिर्जरा नहीं होती, आत्मा का प्रकाश प्रगट नहीं होता । सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया तो मोक्ष में जाने की लोटरी लग चुकी । कोई जीव उसी भव में, कोई तीसरे भव में और कोई पन्द्रहवें भव में मोक्ष में जाता है, और अधिक से अधिक विलम्ब हो तो अर्ध-पुद्गल-परावर्तनकाल में तो अवश्यमेव मोक्ष जाता है । एक बात समझ लेना कि कोई यों माने कि सम्यक्त्व पा लिया, इसलिए मेरा मोक्ष में जाना निश्चित है, अब मुझे कोई व्रत-प्रत्याख्यान करने की आवश्यकता नहीं है, तो उसकी यह मान्यता खोटी है । जीव को संसार में परिभ्रमण करानेवाले पाँच (आस्रव) कारण हैं । उनके नाम तो जानते हो न ?

आत्मा के प्रदेश सब ही जो, असंख्यात ही होते हैं,
कर्मों के अनन्त अणुओं से, बंधे हुए सब रहेते हैं ।
उनके बन्धन के कारण हैं, पाँचों आस्रव शत्रु महान्,
योग, प्रमाद, अव्रत, मिथ्यात्व, कषाय, ये अति ही दुःख खान ॥

एक-एक आत्मा के प्रदेश असंख्यात होते हैं और प्रत्येक प्रदेश पर कर्म की अनन्त वर्गणाएँ होती हैं । इस कर्मवन्ध के यदि कोई कारण हैं तो वे हैं पाँच बड़े-बड़े शत्रु (आस्रव) – मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग । इन पाँच कारणों में से सिर्फ एक मिथ्यात्व के चले जाने मात्र से, मोक्ष मिल जाए, ऐसा नहीं है ।

चौथा गुणस्थान अविरति सम्यग्दृष्टि का है । अविरति सम्यग्दृष्टि जीव चाहे मर्त्यलोक का मानव हो, चाहे देवलोक का देव हो, परन्तु उसके अव्रत के (अभी तक) १२ द्वार खुले हैं । उसके अव्रत के १२ बाजार भरे हुए हैं । तुम चौथे गुणस्थान में हो तो तुम्हारे अव्रत के १२ ही द्वार खुले हैं । बारह अव्रत के १२ बाजार कौन-कौन-से हैं ? यह तो तुम जानती हो न, बहनों ! बोलो – (जवाब : ५ इन्द्रिय, षट्काय और एक मन) ये बारह बाजार हैं अव्रत के । तुम अभी ५ इन्द्रियों और छट्ठे मन से निवृत्त नहीं हुए । षट्कायों में से एक भी काय के बाजार में से बाहर निकले नहीं । यानि ५ इन्द्रियों की तथा षट्कायिक जीव-हिंसा की दुकानों से मन को निवृत्त नहीं किया । मनरूपी वानर को भटकता ही रखा है ।

बन्धुओं ! बारह व्रत अंगीकार कर लो । इससे यों मत समझ लेना कि मेरी १२ की अविरति गई । अब तुम यह विचार करो कि इन १२ बाजारों में से तुमने

पूर्व के पाठक साधक भी भान भूले तो पतित हो जाता है। मोक्ष के आंगन में प्रविष्ट वीतरागत्व पानेवाले भी प्रतिपाती हो जाते हैं न ? वीतरागी गुणस्थान कितने हैं ? ११वाँ, १२वाँ, १३वाँ और १४वाँ, ये चार वीतरागी गुणस्थान कहलाते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुँचा हुआ भी नीचे गिर जाता है। किसलिए ? जरा विचार करो।

कषाय की उपशान्तता : ग्यारहवें गुणस्थान में कषाय की उपशान्तता होती है। वहाँ बुझी हुई आग जैसी कषायें उपशान्त होती हैं। प्रश्न होता है, वहाँ (११वें गुणस्थान में) हीयमान परिणाम नहीं है, फिर वहाँ से नीचे (गुणस्थान में) क्यों आ जाता है ? उसका कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान में रहने का जो काल है, उस स्थिति के पूर्ण होने पर स्वाभाविक रूप से वह ग्यारहवें गुणस्थान से दशवें गुणस्थान में आ जाता है। वहाँ हीयमान परिणाम तो है नहीं; इसलिए नीचे आने के कारण रूप में उसे माना नहीं जा सकता। इस तथ्य को समझने के लिए एक व्यवहारिक उदाहरण लें।

एक न्यायाधीश कुछ दिनों की छुट्टी लेकर गए, उनके स्थान पर उतने (छुट्टी के) दिनों तक के लिए एक दूसरे न्यायाधीश आए। पहले के न्यायाधीश जो छुट्टी पर थे, अपने छुट्टी के दिन पूरे होने पर वापस आ गए। इसलिए उनके स्थान पर जो न्यायाधीश नियुक्त थे, वे अब उतर गए। विचार करो कि जो न्यायाधीश उतर गए, क्या वे अपने किसी दोष के कारण उतरे थे ? नहीं। उन्हें उतने दिन के लिए ही (पूर्व न्यायाधीश के स्थान पर) नियुक्त किया गया था। अब इस उदाहरण का सातवें गुणस्थान से छठ्ठे गुणस्थान में आने तथा ग्यारवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान में आने के विषय में विचार करो। इनमें इनके हीयमान परिणाम का दोष नहीं है, किन्तु उस स्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, यह निश्चित हुआ।

तीर्थंकर देव भी सातवें से छठ्ठे गुणस्थान में आते हैं, उनके लिए भी उपर्युक्त नियम समझना है। जैसे कि छद्मस्थ तीर्थकर जब प्रव्रज्या अंगीकार करते हैं, तब उनके नियम सातवाँ गुणस्थान होता है। और अन्तर्मुहूर्त के पश्चात सातवें गुणस्थान की स्थितिपूर्ण हो जाने पर छठ्ठे गुणस्थान में आ जाते हैं। तीर्थंकर देवों में हीयमान परिणाम नहीं होते, फिर भी नीचे के गुणस्थान में आते हैं। निष्कर्ष यह है कि सातवें गुणस्थान से छठ्ठे में आने में, और ग्यारहवाँ गुणस्थान से दसवें में आने में सिर्फ स्थिति की परिपाकता का प्रभाव है, मगर हीयमान परिणाम का प्रभाव नहीं है। ग्यारहवें गुणस्थान में अगर कालधर्म पाए तो अनुत्तर-विमान में जाता है। फिर मनुष्यभव पाकर उसी भव में या कुछ ही भवों में मोक्ष में जाता है। पर यदि वह दसवें गुणस्थान से नीचे ठेठ पहले गुणस्थान में चला जाए तो वह फेंका जाता है। उपशम श्रेणीवाला तथा चौदह पूर्वधर ज्ञानी एवं चार ज्ञानवाले ऐसे जीव भी जब यों नीचे उतर (पतित हो) जाते हैं; तो हम जैसे लोगों की क्या दशा होगी ?

बन्धुओं ! यह बात आत्मा के उत्साह को भंग करने के लिए नहीं कही है। राजा की तिजोरी लूटी जा रही है, यह सुनकर क्या प्रजा अपनी तिजोरी का धन-माल बाहर

बाजार बंद किया है ? जो अविरति सम्यग्दृष्टि है, उसकी १२ ही बाजारों में बैठक है। और जो देशविरति है, उसके सिर्फ एक बाजार बंद हुआ है। शेष ११ पाप के बाजार खुले हैं। सिर्फ त्रसकाय के बाजार की बारी बंद की है। परन्तु जालियाँ तो खुली रखी हैं न ? क्योंकि तुम विकलेन्द्रिय के सिवाय अन्य त्रसजीवों का जानबूझकर (आकुट्टी की बुद्धि से) हनन न करना, इस प्रकार प्रत्याख्यान लेते हो न ? इस तथ्य पर तुम विचार करोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि तुम चाहे जितना धर्माचरण (धर्मक्रिया) करो, परन्तु जहाँ तक ११ अव्रतों की कमिटी में से इस्तीफा नहीं दे दोगे, वहाँ तक अविरति के पाप से नहीं छूट सकोगे।

देवानुप्रियों ! तुम तो व्यापारी हो न ? तुम्हें तो सब कुछ अनुभव है। तुमने किसी व्यापारी के साथ पार्टनरशिप में व्यापार करने हेतु दस्तावेज की रजिस्ट्री कराई। फिर अगर तुम व्यवसाय करने के लिए फर्म पर न जाओ, घर में ही बैठे रहो, तो भी फर्म में नुकसान के जिम्मेदार होओगे कि नहीं ? एक बार तुमने फर्म में हिस्सेदारी (पार्टनरशिप) की, फिर जहाँ तक तुम उसमें से फारकती नहीं करो, वहाँ तक तुम उस फर्म के (हानि-लाभ में) जिम्मेवार हो। अगर उस फर्म में लाभ हो तो तुम दौड़ते हुए लाभ लेने जाते हो और यदि नुकसान हो तो उसकी भरपाई करने (देने) जाते हो क्या ? नहीं। अगर पार्टनर नुकसान करे तो तुम उसे कह देते हो - "उतर जा मेरी फर्म से। तू नागों का सरदार है।" इस विषय में तो तुम बहुत होशियार हो। तब फिर यहाँ बारह अव्रत के बाजार में तुम जो प्रतिक्षण नुकसान भोग रहे हो। पाप का प्रवाह आ रहा है। तो इस पाप की हिस्सेदारी में से छुटकारा पाने का मन होता है कि नहीं ? पाप के घर में कहाँ तक बैठे रहोगे ? सम्पूर्ण अव्रत में से साधुवर्ग के सिवाय अन्य कोई त्यागपत्र दे नहीं सकता। तुम तो अव्रत के सिरे पर खड़े हो।

एक बार दस्तावेज (Bond) करके तुमने जिसके साथ हिस्सेदारी (पार्टनरशिप) की, फिर भले ही उसमें तुम्हारे मन-वचन-काया का योग न हो, फिर भी जबतक उस फर्म से पृथक् नहीं हुए, मेरा अब इस कंपनी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, इस आशय का स्पष्ट लिखित त्यागपत्र नहीं दे देते, तबतक उस फर्म से छूट नहीं सकते। इसी तरह तुमने अविरति के बाजार की कमिटी में ५ इन्द्रियों, षट्काय और मन मर्कट (बंदर) के बाजार में मेम्बरगीरी (सदस्यता) की है। साथ ही इससे त्यागपत्र न देकर देशाटन करने हेतु निकले हो। इतने मात्र से तुम जवाबदारी से मुक्त नहीं हो सकते। तुमने तो सिर्फ त्रसकाय की हिंसा नहीं करूँगा, इस एक से त्यागपत्र दिया है, वह भी पोला है, ठोस नहीं है। जान-बूझकर हिंसा करने का प्रसंग आये तो (वह हिंसा) बंद रखूंगा। (व्यवसायादि या गृहजीवन के) कार्य करने में हिंसा का प्रसंग आए, अर्थात् किसी ने अपराध किया हो, तो अपराधी त्रस जीव को मारना-पीटना-सताना व सामना करना पड़े, यहाँ तक कि उसे प्राणरहित भी करना पड़े, इससे मेरा त्यागपत्र नहीं है। एक बाजार से त्यागपत्र देते हो, उसमें भी कितनी छूट रखते हो ? अब कहाँ तक अव्रत के घर में रमण करना है ? अब व्रत में रमणता करो।

फेंक देती है ? नहीं । राजा की तिजोरी लूटी जा रही है, यह सुनकर प्रजा अधिक सावधान हो जाती है । भूमि खोदकर उसमें अपनी सम्पत्ति गाड़कर प्रजा अपनी मिल्कियत की अधिक सुरक्षा करती है । वह किसलिए इतनी सावधानी रखती है ? क्या उसका कारण तुम समझे ? राजा के यहाँ इतनी पहरेदारी होने पर भी तिजोरी लूटी गई, तब हमारी सम्पत्ति क्यों नहीं लूटी जा सकती है ? यों समझकर प्रजा अधिक सावधानी रखती है, परन्तु पस्तहिम्मत नहीं होती । इसी प्रकार चार ज्ञान के धारक चौदह पूर्वधर, आहारकशरीरी और उपशमश्रेणीवाले साधक अगर पतित हो जाते हैं, यह सुनकर हमें भी अधिक सावधान रहने की जरूरत है या नहीं ? यह कर्मराजा जीव को चार गतियों में नाच नचाता है ।

कर्मराजा का पराक्रम कैसा है ? यह वीतरागवाणी द्वारा सुन-समझकर हमें ज्ञानी-पुरुषों ने सावधान रहने को कहा है, परन्तु डरपोक बने रहना नहीं है । बस, यही विचार करना है कि जब ऐसे जीव भी पतित हो जाते हैं, हमें कितना सावधान रहना चाहिए ? एकेन्द्रियपन में भटकते-भटकते अनन्तकाल में मनुष्यपन मिला है । सुनो, महावीर-प्रभु के जीव ने मरीचि के भव में (सर्व विरति) चारित्र ग्रहण किया, किन्तु इस चारित्र के कष्ट सहन न होने से श्रमण दीक्षा छोड़कर त्रिदण्डी साधु बन गए । तीर्थंकर बनने से पहले के उनके २७ भव तो बड़े-बड़े गिनाये हैं, किन्तु बीच-बीच में स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों को असंख्य भव करने पड़े हैं । यदि छोटे-छोटे भवों (एकेन्द्रियादि जीवों में जन्म) सहित २७ भव हों तो मरीचि और महावीर के भव का अन्तर कोटाकोटि सागरोपम हो जाता है । पूर्वोक्त २७ भवों में एक-एक भव के आयुष्य का कालमान कैसे गिनेंगे ? यदि प्रत्येक भव का कालमान ३३ सागरोपम कदाचित् गिना जाए तो - तो ८००-९०० सागरोपम काल हो जाए । परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से सोचें तो ३३ सागरोपम की स्थिति-वाला जीव ४ अनुत्तर विमान में जन्म की अपेक्षा से दूसरे भव में पुनः ३३ सागरोपम की स्थिति पा सकता है । मगर तीसरे भव में फिर ३३ सागरोपम की स्थिति नहीं पा सकता । इसी तरह नारकी मरकर पुनः नारकी नहीं होते । श्रमण भगवान् महावीर के (सम्यक्त्व प्राप्ति से लेकर तीर्थंकरत्व प्राप्ति तक) २७ भव (कल्प सूत्र में) गिनाये गए हैं, वे प्रायः त्रसपन में रहने के बताए हैं । जीव त्रसपन में रहे तो वह दो हजार सागरोपम व संख्यात वर्ष से अधिक नहीं रहता । अतः सवाल उठता है कि बाकी काल किन भवों में बिताया ? क्योंकि मरीचि के भव से लेकर भ. महावीर के भव के बीच का अन्तर लगभग एक कोटाकोटि सागरोपम का आंका गया है । उसमें त्रसपन में रहने का काल तो बहुत ही अल्प है । इससे स्पष्ट है कि बीच-बीच में भ. महावीर के जीव ने संख्यात-असंख्यात भव स्थावर जीव के रूप में किये हैं; ऐसी स्थिति में अपनी तो बात ही क्या करनी ? अतः इस चतुर्गतिक रूप संसार में भटकन को कम करने हेतु कर्मबन्ध को रोकने की खूब सावधानी रखो ।

जीव कितने काल के अन्तर से मनुष्यभव प्राप्त करता है ? : बन्धुओं ! एकेन्द्रिय से दोइन्द्रिय में आना भी बहुत कठिन है । 'भावनाशतक' में कहा है -

भरत चक्रवर्ती अव्रत के घर में बैठे थे, किन्तु शीशमहल में गए, वहाँ एक अंगूठी अंगुली में से निकल पड़ी, तब ऐसा लगा कि - अहो ! मेरी अंगुली (अंगूठी के कारण सुंदर लगती थी, किन्तु अंगूठी निकल जाने से) असुन्दर लगती है। दूसरे ही क्षण (उहापोह करते-करते) उस अंगूठी का मोह उतर गया । अहो ! यह कौन है और मैं कोन हूँ ? यह जड़ है, मैं चेतन हूँ । इस प्रकार खूब मन्थन चला । गृहस्थ वेश में अव्रत के द्वार बंद कर के आस्रव का घर छोड़कर संवर के घर में आ गए । फिर वहीं के वहीं भाव-चारित्र में रमणता करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । इसीका नाम सच्चावीर ! कोरी बातें करके बैठे रहना, यह तो कायर का काम है ।

देवानुप्रियों ! तुम कर्म की थियोरी समझो । जैनदर्शन में जिस प्रकार कर्म की थियोरी (सिद्धान्त) समझाई गई है, उस प्रकार से अन्यत्र (अन्य दर्शनों या धर्मो में) समझाई गई नहीं है । जैनदर्शन में यों कहा गया है कि किसी वस्तु का तुम उपभोग नहीं करते हो, किन्तु जहाँ तक उस वस्तु का प्रत्याख्यान (त्याग) नहीं करते, वहाँ तक उसकी दावी आती है, जबकि अन्य दर्शनों में ऐसा नहीं कहा गया है । वहाँ तो बारह ही बाजार खुले हैं, क्योंकि अविरति कर्मबन्ध का कारण है । जो यह मानता है कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग (मन-वचन-काया का व्यापार) ये सब कर्मबन्ध के कारण हैं, वह कर्मो को तोड़ने का प्रयत्न करेगा, पर जो यह कहता है कि प्रत्याख्यान क्यों किया जाए ? प्रत्याख्यान करने से क्या विशेष लाभ है ? हम (वैसे भी) कन्दमूल नहीं खाते, रात्रिभोजन नहीं करते । प्रत्येक बात में हमारा मन दृढ है । फिर प्रत्याख्यान की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहनेवाला जैन नहीं है । मैं रात्रि को भोजन नहीं करता, किन्तु उसके प्रत्याख्यान नहीं लेता तो पापों का आस्रव (आगमन) आता रहेगा । यह जैनदर्शन की मान्यता है ।

अनादिकाल से जीव (जन्म-मरणादि रूप संसार में) क्यों भटका है ? मिथ्यात्व के कारण । मिथ्यात्व तो छूट गया, परन्तु (अभी तक) विरति में नहीं आया, वहाँ तक पाप रुका नहीं, और नये कर्म बंधते गए । विरति के विना कर्मबन्ध होता रहता है । इसीलिए हम कहते हैं - "प्रत्याख्यान करोगे तो पाप से बचोगे ।" आज बहुत-से लोगों को हम प्रत्याख्यान लेने का कहते हैं, तब यों कहते हैं - "उपाश्रय में क्या जाएँ ? वहाँ महासतीजी हमें पच्चक्खाण के बन्धन में बांध देती हैं ।" (हँसाहँस) अगर तुम गहराई से सोचो तो साधु-साध्वी तुम्हें बांधते नहीं बल्कि कर्मबन्धन से छुड़ाते हैं । ऐसी श्रद्धा हो, थोड़े-से दुःख में उसके बहुत-से कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

बन्धुओं ! मुझे तो तुम पर दया आती है कि मेरे वीतराग के शासन में जन्म लेकर ये जीव कहाँ तक कर्म बांधेंगे ? कर्मबन्ध किन कारणों से होते हैं और कहाँ तक वे होते हैं ? क्या यह तुम जानते हो ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि "जिस समय यह जीव आयुष्य कर्म बांधता है, उस समय आठ कर्म बांधता है, नहीं तो आयुष्य कर्म को छोड़कर प्रतिसमय सात कर्म बांधता है और आठ कर्म तोड़ता है ।" अत: जीव नये कर्म न बांधे तो अवश्य ही (शीघ्र) मोक्ष में जाता है । नये कर्म कौन नहीं बांधता ? चौदहवें योगी केवली

एकेन्द्रिय में फिरते-फिरते, कुछ शुभकर्म उदय आया,
तब दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय में, काल बहुत कष्ट पाया।
फिर चौरीन्द्रिय में दुःख पाया, पंचेन्द्रिय गति फिर पाई;
वहाँ नरकतिर्यंच-योनि में, कष्ट सहा अति हे भाई ! ॥

एकेन्द्रिय में निगोद के जीव को अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-काल की कायस्थिति पूरी होने पर वह निगोद का घर छोड़कर बाहर आता है। पुण्य प्रकृति बांधता है। ऐसे एकेन्द्रियपन में मनुष्यपन के योग्य कर्म बांधने बहुत कठिन हैं। सूक्ष्म निगोद में जो काय स्थिति है, उसमें मनुष्यपन के लायक पुण्योपार्जन करना बहुत ही मुश्किल है। ऐसी कायस्थितियाँ मेरे और तुम्हारे जीव ने अनन्त बार उल्लंघी हैं। एकेन्द्रिय में अकामनिर्जरा करते-करते जीव बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय में क्रमशः आया। वहाँ कुछ शुभ कर्म का उदय होने पर पंचेन्द्रिय गति प्राप्त की। पंचेन्द्रिय में भी नरक और तिर्यंच योनियों में जीव ने महान दुःख भोगे हैं। उन गतियों में से भी गुजरकर आज मनुष्यभव में आया है। मनुष्यभव में यह पहले पहल आया है, ऐसा नहीं है। संत-सती पुकार-पुकारकर वीतरागवाणी के माध्यम से कह रहे हैं - "अब अगर अनन्तकाल तक संसार-परिभ्रमण नहीं करना हो तो प्रमाद का त्याग करो; कर्मबन्धन से रुको, अविरति का घर छोड़कर विरति के घर में आओ, पुनः पुनः ऐसी भूल मत करना।" मान लो, मार्ग में चलते हुए किसी जगह तुम्हें पैर में कांटा चुभा। वह कांटा ऐसा चुभा कि एक महीने तक खाट पर सोये रहना पड़ा। बहुत पीड़ा भोगने पर ठीक हो गया। बोलो, अब दूसरी बार इस रास्ते से चलते हुए सावधानी रखोगे या नहीं ? निगोद में जीव ने अनन्तकाल निकाला है। ज्ञानी कहते हैं - "बहुत लम्बे काल के बाद मनुष्यजीवन मिला है; अतः अब इसे हार मत जाना। पुनः निगोद में फेंका मत जाना।" इसके लिए सावधान रहना नहीं है क्या ? अनन्तकाल तक यह जीव भटका है। भटकते-भटकते बड़ी मुश्किल से यह मानवभव मिला है। वह बार-बार नहीं मिलेगा।

जीव अज्ञानता से बहुत बार मनुष्यपन हार गया है : मानवजन्म कर्म-रिपुओं को नष्ट करने के लिए तलवार के समान है। किसी मनुष्य के हाथ में तलवार आ जाए और वह उस तलवार से तिनका काटकर माने कि मैं बहादुर हूँ, तो क्या तुम उसे बहादुर कहोगे ? नहीं। तलवार से तिनका काटने में कोई बहादुरी नहीं है। तलवार तो शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिए है। इसी प्रकार मनुष्यजन्म पाकर ऐश-आराम करने तथा सत्ता पाकर दूसरों को कुचल डालने में बहादुरी नहीं कहलाती। तलवार से शत्रु पर विजय प्राप्त करने पर मुस्काना, किन्तु मोह को हटाया नहीं, और मनुष्यभव पाकर मौजशौक की, उसमें क्या मुस्काना ? अतः अनेक कठिनाइयों से अनन्त भवों के बाद मिलनेवाला महामूल्यवान् मनुष्यभव मिला है, उसका सदुपयोग कर लो।

• • •

गुणस्थान-वाला । उससे पहले कर्मबन्ध रहित कोई आत्मा नहीं है । केवली के भी एक सातावेदनीय कर्म का बंध होता है । मोक्ष में जाते वक्त जो चौदहवाँ गुणस्थान जीव को प्राप्त होता है, वहाँ बिलकुल कर्मबंध नहीं होता । उस गुणस्थान की स्थिति पाँच ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण करने जितनी है । वहाँ से जीव सीधा मोक्ष में जाता है । कर्मबंध कौन कराता है ? आचार्य उमास्वातिजी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में कहा है -

काय-वाङ्-मन: कर्मयोग:, स आश्रव:

विचार, उच्चार और आचार की (क्रमश:) मानसिक, वाचिक और कायिक ये तीन प्रवृत्तियाँ (योग) तथा साथ में कषाय-चतुष्टय (४ प्रकार के कषाय) भी कर्मों के आस्रव (आगमन) हैं और कषाय के कारण उनसे कर्मबन्ध होता है । चौदहवें गुणस्थान में जब जीव आता है, तब कर्मबन्ध रुक जाता है, क्योंकि वह अकम्पनदशा (शैलेशी अवस्था) है । वहाँ इसे मन-वचन-कायारूप त्रियोग की कोई प्रवृत्ति नहीं है । पहले से दशवें गुणस्थान तक कषाय और योग से और ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक केवल योग (मन-वचन-काययोग) से कर्म का बन्ध होता है । जब अधिक कर्मों (के फल) को भोगता है, और थोड़े से कर्मों को बांधता है, तब आत्मा (उच्च गुणस्थान की ओर आरोहण) करता ऊँचे चढ़ता है । अनादिकाल से जीव कर्मों को बांधता आया है, उन्हें कम कौन कर सकता है ? जो आत्मा शारीरिक-मानसिक-वाचिक दु:खों का भय छोड़ देता है, और मात्र आत्मचिंतन में रहता है (आत्म-स्वभाव में स्थिर रहता है) वह कर्मों को (शीघ्र) तोड़ सकता है । यों तो हम कहते हैं कि मन-वचन-काया से और कषाय से जीव कर्म बांधता है, फिर यहाँ *'काय-वाङ् -मन: कर्मयोग:'* इस सूत्र में 'काया' का उल्लेख सर्वप्रथम किया है । जानते हो, इसका क्या कारण है ? जीव माता के गर्भ में आता है, तब सर्वप्रथम आहार-पर्याप्ति बांधता है, फिर शरीर बांधता है, तत्पश्चात् इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन:पर्याप्तियाँ (क्रमश:) बांधता है । अत: वहाँ शरीर द्वारा कर्म बांधता है । सर्वकाल में जो-जो कर्म बांधे हैं, उन सबमें शरीर प्रधान कारण है । इस कारण 'तत्वार्थ सूत्र' में कर्मों के (आस्रव और) बन्ध के लिए शरीर का सबसे पहले उल्लेख किया है । मन के पुद्‌गल ग्रहण करनेवाला भी शरीर है, और वचन के पुद्‌गलों को ग्रहण करनेवाला भी शरीर है । उन-उन वर्गणाओं के पुद्‌गलों को ग्रहण करने के बाद भाषा और मन के रूप में परिणत हो जाता है । अत: शरीर का नामोल्लेख सर्वप्रथम किया है ।

देवानुप्रियों ! तुम कर्म की थियोरी समझ लोगे तो कर्म बांधते हुए रुकोगे । अभी तक कर्म बांधने में तो जीव बेहोश रहा है, किन्तु कर्म काटने का जो साधन-धर्म है, उस (के आचरण) में बेहोश रहा है । अब धर्म (के आचरण) में बेहोश बनो और कर्म-बंधन में बेहोश बनो । तुम जो धन कमाने के लिए उखाड़-पछाड़ (धमाल) करते हो, विलास के लिए लालायित होते हो और उसके कारण कर्मबन्ध करते हो, परन्तु क्या सरकार तुम्हें सुख भोगने देती है ? कितने-कितने कायदा-कानून हैं, टेक्स लाद रखे हैं ? पहले के राजा कितने उदार थे ? अधिक तो क्या कहूँ ! श्रेणिक जैसे नरेश सामने चलकर शालिभद्र के घर उसकी सुख-

पहले हम कह आए हैं कि सूक्ष्म निगोद एकेन्द्रिय में से बेइन्द्रिय में आना भी बहुत ही कठिन है। बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी जीव त्रस कहलाते हैं। त्रसकाय के जीव अधिक से अधिक दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष तक रह सकता है। त्रसकाय की कायस्थिति दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष की है। इतने काल में वह जीव मोक्ष प्राप्त करने की साधना न करे तो वह पुनः एकेन्द्रिय में पटक दिया जाता है। हमने इस मनुष्यभव को पाया है। यदि इस जन्म को हार गये तो यह पुनः मिलना कठिन है। 'आचारांग सूत्र' - ६ में भगवान् ने कछुए का दृष्टांत देकर समझाया है -

"से बेमि से जहावि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन-पलासे उमग्गं से नो लहइ। भजंगा इव सन्निवेसं नो चयंती, एवं एगे अणेगरुवेहिं कुलेहिं जाया, रुवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, नियाणओ ते न लभंति मुक्खं।"
- आ. सू-६

जिस प्रकार शैवाल नामक वनस्पति से आच्छादित किसी जलाशय (विशाल ह्रद) में किसी कछुए ने दैवयोग से एक छिद्र में से मुँह बाहर निकाला। वह बाहर सूर्य का सुन्दर दृश्य देखकर पुनः अन्दर गया और अपने सम्बन्धियों में आसक्त होकर उन्हें वह दृश्य दिखाने के लिए लाया। इतने में वह छिद्र शैवाल से आच्छादित हो गया। अब उसे बाहर आने का मार्ग प्रायः प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार संसाररूपी जलाशय में आसक्तिरूपी शैवाल का गाढ़ आच्छादन है। उससे बाहर निकलने का मार्ग उस आसक्त जीवात्मा को प्राप्त होना कठिन है। जिस प्रकार वृक्ष शीत, उष्णता, वर्षा आदि सहन करते हुए अपने स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में नहीं जा सकते, इसी प्रकार संसारी जीव उच्च-नीच आदि विविध कुलों में उत्पन्न होकर इन्द्रियों के विविध विषयों में आसक्त बनते हैं, आसक्ति के दुष्परिणामवश विविध दुःखों से घबराकर करुण आक्रन्द एवं विलाप करते देखे जाते हैं। फलतः ऐसे विषयासक्त जीव संसारचक्र में से छूटकर सर्व कर्मक्षय करके मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। अर्थात् दुःख के निदानभूत अपने कर्मों से छूट नहीं सकते। क्योंकि ऐसी स्थिति में उन्हें मोक्षमार्ग पाने हेतु सम्यक्त्वरूप सत्यमार्ग मिलना दुष्कर हो जाता है, जिससे वे कर्म से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते।

देवानुप्रियों ! इस दृष्टांत का आशय समझकर अनन्तकाल के पश्चात् प्राप्त हुए अमूल्य मानवभव, उसमें भी वीतराग-देव-प्ररूपित जैनधर्म का महान् योग, उत्तम कुल, परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियाँ, आर्यक्षेत्र तथा सत्यासत्य का निर्णय करने जितना क्षयोपशम, सद्‌बुद्धि आदि प्राप्त हुए हैं। इस सुयोग को सफल बनाने के लिए प्रमाद को दूर कर के विषयों के प्रति वैराग्यभाव लाओ ! आरम्भ और परिग्रह इस जीव की संसार-वृद्धि करानेवाले तथा जन्म-मरण के उत्पादक जानकर अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही बनो। अगर शक्ति और रुचि हो तो संसारत्यागी संयमी बनो, किन्तु महान् पुण्योदय से प्राप्त मानवजन्म को ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की यत्किंचित् आराधना करके सफल बना लो। ऐसा सुयोग बार-बार मिलना दुर्लभ है।

सम्पत्ति देखने के लिए गये थे। अपने से अधिक सम्पत्ति शालिभद्र की थी, फिर भी शालिभद्र की ऋद्धि देखकर श्रेणिकराजा की छाती (गौरव से) गज-गज फूल गई थी - 'अहो ! मैं कैसा पुण्यवान हूँ कि मेरे राज्य में ऐसी पुण्यवान प्रजा रहती है।' श्रेणिकराजा ने सुकोमल शालिभद्र के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिये - "धन्य है पुत्र ! तुम जैसी समृद्ध प्रजा से मैं उज्ज्वल (गौरवान्वित) हूँ।" ऐसी सम्पत्ति उनके घर में थी। स्वयं महाराजा श्रेणिक की जिस पर कृपा दृष्टि थी, फिर भी शालिभद्र को यह संसार (सांसारिक सुखभोग) दुःखमय लगा। इसलिए वे यह सब त्यागकर संयममार्ग पर आरूढ हुए। जबकि तुमलोग तो (प्रातः) श्याद-सफेद करके धन एकत्र करते हो; इसके लिए कितना कष्ट सहन करते हो ? फिर भी दिल में अपार फड़फड़ाट रहता है। सुबह के टाइम में कोई दरवाजा खटखटाए तो मन में फड़फड़ाट होती है कि कहीं रेड तो नहीं आ गई है ? संसार में इतना अधिक दुःख है, फिर भी इसे छोड़ने का मन नहीं होता।

अपने चालु (शास्त्रीय) अधिकार में कल कहा गया था कि - इस जम्बूद्वीप के महाविदेहक्षेत्र में स्थित सुमेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में, निषधपर्वत की उत्तर दिशा में, महानदी शीतोदा के दक्षिण में, सुखोत्पादक वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और पश्चिम लवणसमुद्र की पूर्व दिशा में सलिलावती नामक विजय था।"

"तत्थणं सलिलावइ - विजए वीयसोगाणामं रायहाणी पन्नत्ता।
नव-जोयण-वित्थिण्णा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया ॥"

वहाँ सलिलावती-विजय में वीतशोका नाम की नगरी राजधानी थी, जो नौ योजन विस्तीर्ण थी, यावत् प्रत्यक्ष देवलोकसम थी।

यहाँ प्रश्न होता है कि नगर किसे कहा जाता है और नगरी किसे ? नगर चौरस होता है, लम्बाई और चौड़ाई में समान होता है। जबकि नगरी चौड़ाई में कम और लंबाई में अधिक होती है। (श्रोताओं में से वजुभाई - 'जैसे हमारी मुंबई नगरी) नगर और नगरी में (उनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के अनुसार '*न करो यस्मिन यस्यां वा नगरम् नगरी*') कर नहीं लिया जाता (नहीं लिया जाना चाहिए)। क्या मुंबई में कर नहीं लिये जाते ? (हँसाहँस), यहाँ तो छोटी-छोटी चीजों पर कर (टेक्स) लिया जाता है। इसे नगरी कैसे कहा जाए ? वर्तमानकालीन नगरियाँ तो मनुष्यों को टेक्सों (करों) से नग्न कर देती हैं। फिर भी मनुष्य यह मानता है कि हम मुंबई में निवास कर रहे हैं, इसलिए महासुखी हैं। इसे जरा समझो, जिसके पुण्य का उदय है, वह सुखी है; परन्तु अभिमान करना उचित नहीं है, क्योंकि अभिमान भी तो कषाय है (जो त्याज्य है)। ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "चारों कषाय आत्मा के शत्रु हैं। इन शत्रुओंने आत्मा के विकास को दबा दिया है।" मनुष्य निर्धन में से धनवान् बनता है, तब - मै कुछ हूँ, मेरे में कुछ (विशेषता) है, यों मन में विचारता हुआ छाती फूलाकर चलता है। जहाँ मान (अहंकार) है, वहाँ क्रोध भी होता है। लोभ ने तो मनुष्य (के सत्व) को मार डाला है। लोभ के वश होकर मनुष्य पाप

मोक्षगमन की ओफिस कौन-सी ? : यह मानवभव मोक्ष में जाने का कार्यालय (ऑफिस) है। इस मोक्ष के कार्यालय में आकर मानव मौज-शौक की कूचा मांगता है। आत्मा को अव्याबाध सुख प्राप्त कराए, ऐसी ओफिस में आकर क्षणिक सुख देनेवाले विषयों का कचरा मांगना क्या उचित है ? मोक्ष के कार्यालय में आकर अर्जी देनेवाला भूल करे तो क्लर्क बेचारा क्या करे ? आत्मा (मानवात्मा) मोक्ष के कार्यालय में अर्जी करने आया है। यहाँ पाँच इन्द्रियरूपी क्लर्क हैं। किन्तु इन्हें मोक्ष की अर्जी दो तो काम हो न ? इस जीव ने शौचालय साफ करने की कचरापेटी की अर्जी दी है। मगर मोक्ष जल्दी मिले, ऐसी अर्जी की है क्या ? इन्द्रियों रूपी क्लर्कों को तुम मोक्ष के कार्यों के सिवाय अन्यत्र जाने की छूट मत दो। यदि इन्द्रियरूपी क्लर्क जागृत है तो अर्जी शीघ्र करो। जो अर्जी करने में समझता हो कि अर्जी में क्या लिखा जाता है, वही सच्ची अर्जी कर पाता है। परन्तु जो नहीं समझता है, वह तो क्या लिखना है, इसके बदले कुछ का कुछ लिख डालता है। *अतः इस मानवभव के कार्यालय में आकर सच्ची अर्जी करो।*

धर्म रत्न के समान है : अनाज का दाना अच्छा हो, लेकिन खेत की जमीन जोते बिना उस जमीन में डाला जाए तो धान्य की प्राप्ति नहीं होती। वैसे ही आत्मा में धर्मरूपी बीज डाला जाए, परन्तु आत्मा का खेदान न किया हो, उसमें धर्मरूपी बीज डाली तो भी फायदा नहीं करेगा। धर्मरत्न के योग्य बनना हो तो श्रावक के २१ गुण प्राप्त (अर्जित) करने पड़ेंगे। यह (आत्म) धर्मरत्न के समान है। *धर्म को रत्न की उपमा क्यों दी है ?* रत्न अति मूल्यवान वस्तु है। परन्तु पत्थर कीमती नहीं समझे जाते, क्योंकि उनमें तेजस्विता के गुण नहीं हैं, जबकि रत्न में तेजस्विता है, इसलिए उसका मूल्य होता है। जिसके पास रत्न होता है, वह धनवान कहलाता है। लाखों का कर्ज हो, किन्तु अगर पास में एक रत्न हो तो पलभर में कर्ज चुका दिया जाता है। वैसे ही अनेक भवों में बांधे हुए कर्म धर्मरूपी रत्न क्षय कर डालता है। साथ ही धर्म रत्न अवनति के पथ पर जाते हुए आत्मा को रोककर उन्नति के पथ पर ले जाता है। जिसके जीवन में श्रावक के २१ गुण होते हैं, वह आत्मा धर्मरत्न के योग्य है।

जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त [illegible] **उसे** [illegible] **घर कैसा लगता है ? :** [illegible] आ गया है, उस आत्मा को जिसमें श्रावक के २१ गुण हो[illegible] यह शरीर किराये का घर लगता [illegible] उनके विषय तथा उनके साधन, ये सब [illegible] फ[illegible] होता है, उसका भाड़ा [illegible] ही [illegible] अ[illegible] शरीर, इन्द्रियगण, उ[illegible] और [illegible] जाता है। अपने [illegible] के फर्निचरवाला [illegible] पर [illegible] का घर घड़ीभर [illegible] तब [illegible] से

करते हुए जरा भी हिचकिचाता नहीं (पीछे मुड़कर देखता नहीं) । लोभ सर्वगुणों को खा जाता है । लोभ कषाय दसवें गुणस्थान तक होता है । लोभ ने कितने ही जीवों को मोक्ष में जाने से रोका है । अतः कषाय (चारों कषाय) कर्मबन्ध के कारण हैं । उन्हें तोड़ो और शुद्ध आत्मधर्म का आचरण करो । धर्म के बिना आत्मा का उद्धार नहीं है । भगवान् कहते हैं - "तुझे आत्मकल्याण करना हो तो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि को छोड़ेगा, तभी तेरा कल्याण होगा, तुझे शाश्वत सुख मिलेगा ।"

मुझे अभिमान और लोभ पर एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

सेठ का दृष्टांत : कच्छनिवासी एक मनुष्य मुंबई शहर में कमाने के लिए आया। इस मुंबई में अनेक मनुष्य अपने-अपने उद्देश्य से आते हैं । कोई अपनी पुत्री के लिए वर की तलाश में मुंबई आता है, कोई अपने गाँव या कस्बे में उपाश्रय बांधना हो, अथवा किसी संस्था के लिए फंडफाला करना हो तो मुंबई आता है, कोई व्यवसाय द्वारा धन कमाने के लिए भी मुंबई में आता है । उक्त भाई भी मुंबई आया था, धन कमाने के लिए । उसने सट्टे का धंधा शुरू किया । उसके पुण्य ने पलटा खाया और मुंबई में आकर खूब धन कमाया । वह बड़ा करोड़पति सेठ बन गया । मुंबई में अपना बंगला बनाया । देश में बड़ा बंगला बनाया । एक बार सेठ अपने वतन (देश) में आये । वह छोटा-सा गाँव था । इस छोटे-से गाँव में इस धनवान सेठ का बहुत ही सम्मान बढ़ गया; क्योंकि जिसके पास धन हो, सगे-सम्बन्धी एवं स्नेहीजन सामने से चलकर उन्हें सम्मानपूर्वक बुलाते और सेठजी-सेठजी कहकर प्रशंसा करते थे । ये सेठजी भी प्रतिदिन गाँव के चौराहे पर बनी चौपाल पर बैठने लगे । गाँव की पंचायत के सब लोग वहाँ जमा होने लगे । सेठ तो बहुत ही ठाठ से रहने लगे । उनके मन में पावर है कि मैं बड़ा सेठ हूँ । चौपाल पर बैठकर सेठ अपनी बड़ाई हाँकते हुए बड़ी-बड़ी बातें करने लगे । इस गाँव के एक वृद्ध मनुष्य ने सेठ से कहा - "सेठजी ! आप जब यहाँ आये हैं तो यह आपकी जमीन खाली पड़ी है । इन खेतों का काम संभालिये न !" यह सुनते ही सेठ भड़क उठे । सर्प की तरह फुफकारते हुए बोले - **"आंईव नो अजे रस्ते करो, आऊं मजुरी करीयां ?"** अपनी कच्छी भाषा में अहंकारपूर्वक सेठ ने कहा - "क्या मैं मजदूरी करूँ ? तू अपने रास्ते से चला जा ! मजदूरी करना, यह मेरा काम नहीं है, समझा न ?" मनुष्य के पास पैसा हो जाए, तब पैसे (धन) के मद में दूसरों को कुचल डालता है । सेठ का (अहंकार के साथ) क्रोध देखकर वह मनुष्य तो कांप उठा ।

देवानुप्रियों ! घर में आसुरी लक्ष्मी आती है, तब मनुष्य को मदोन्मत्त बना देती है। वह दूसरों को अपने से तुच्छ समझता है । ऐसी लक्ष्मी का उपभोग करने से पापकर्म का बन्ध होता है । ऐसी (आसुरी) लक्ष्मी का उपभोग करने की अपेक्षा गरीब रहना अच्छा है । वे सेठ दो महीने अपने वतन में रहकर वापस मुंबई आ गए । और सट्टे का धंधा करने लगे । कुदरत की लीला, इस समय सेठ के पापकर्म का उदय हुआ । इस कारण सेठ का व्यापार - धंधा ठंडा पड़ने लगा । शेयर के भाव गिरने लगे । एरंड के भाव घट

तड़क-भड़कवाला बनकर फिरता है, परन्तु उसको कभी विचार होता है कि मैं किस कमाई पर नाच रहा हूँ ?

बन्धुओं ! अपना शरीर भी बंधी मुद्दत तक महंगे किराये का मकान है। उसमें आहार, शरीर, इन्द्रियाँ, उनके विषय और उनके साधनों के विषय में प्रतिक्षण पुण्य तो क्षीण (खर्च) हो रहा है, और कर्म का कर्जा बढ़ रहा है। सज्जन आदमी को महंगे भाव का भव्य भवन भारी पड़े तो सहायक किरायेदार खड़ा करके अपने सिर से भाड़े का बोझ हलका करता है। परन्तु शरीररूपी भव्य-भवन का भाड़ा बढ़ जाये तो कौन-से सहायक किरायेदार खड़े किये जाएँ ?, क्या आप जानते हैं ?

सहायक किरायेदार कौन-से ? : जहाँ तक शरीर स्वस्थ है, वहाँ तक तप कर लो, आहार पर नियंत्रण (कन्ट्रोल) करो, जितनी हो सके (षट्कायिक जीव) दयाव्रत का पालन करो, दान करो, शील पालो, सुपात्रदान, अभयदान और ज्ञानदान में इस शरीर का उपयोग हो जाय तो समझना मैंने अनेक सहायक किरायेदार खड़े कर दिये हैं। मकानमालिक चतुर हो तो ऐसे सहायक किरायेदार खड़े करके सिर से जोखिम (बोझ) उतार देता है। इस शरीररूपी महल का भाड़ा खड़ा करने में २४ घंटे प्रयत्न करना पड़ता है। यह मानव-तनरूपी महल मिला है, उसमें प्रसन्न रहने को जिंदगी के कीमती समय का दुर्व्यय मत करो। प्रतिक्षण सावधान रहो। हीरे, माणिक, मोती या सोना खो जाता है, उसे खोजने में आप कितनी मेहनत करते हैं, फिर भी न मिले तो कितना अफसोस होता है ? किन्तु मानवजीवन का एक-एक क्षण हीरे, माणिक, मोती और सोने से भी अधिक कीमती हैं। वे अमूल्य क्षण नष्ट हो रहे हैं, इसका कोई दुःख होता है ?

पुत्र की वर्षगांठ आती है, तब माता-पिता मिष्टान्न और फरसाण बनाकर वर्षगांठ मनाते हैं। माता मानती है कि मेरा पुत्र ५ वर्ष का हो गया। मगर उसकी जिंदगी के ५ वर्ष कम हो गए हैं, उसका अफसोस है क्या ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तेरी जिंदगी में जबतक उत्साह है, साहस है, देह का महल निढाल नहीं हुआ है, वहाँ तक पहले कह गए हैं, वैसे सहायक किरायेदार खड़े (तैयार) कर लो। बाद में अंतिम समय में सहायक किरायेदार खोजने जाओगे तो नहीं मिलेंगे।" इस समय तो जब मनुष्य का अन्तिम समय आता है, तब धर्मादा करने का कहने को तैयार होता है। सारे त्याग-प्रत्याख्यान भी अन्तिम समय में होते हैं, तो क्या मरते समय अन्तिम किरायेदार मिल जाएगा ? मरते समय कौन किरायेदार (तुम्हारे पास) आएगा ? जहाँ बीमा (इन्स्योरेंस) न कराया गया हो, वहाँ ऐसी स्थिति में सहायक किरायेदार कहाँ से आएँगे ? अतः एक विचार निश्चित कर लो कि भाड़ा चढ़े तब से सहायक किरायेदार खड़े कर लो।

बन्धुओं ! अनादिकाल से आत्मा मकानों का किराया भरकर दिवालिया होता आया है; परन्तु इस मनुष्यभव का स्थान ऐसा मिला है कि उसमें साहूकार बनकर रहना चाहे तो रह सकता है। मगर दिवालिया की परम्परा में साहूकार होने की कठिनाई है। चिन्तामणि रत्न मिलना मुश्किल है, और टिकना तो इससे भी अधिक मुश्किल है। जगत् में नियम

गए। सट्टा और रेस, ये दोनों ही एक प्रकार से जुआ कहलाते हैं। इसमें क्या कभी अपना निर्धारित (सोचा हुआ) होता है ? फलतः सेठ को प्रत्येक व्यवसाय में घाटा लगा। परन्तु सेठ को आशा थी कि भविष्य में खूब कमा लूंगा और जैसा पहले था, वैसा ही धनवान बन जाऊँगा। यों मानकर **'हारा हुआ जुआरी दुगुना खेलता है।'** इस न्याय से सेठ भी आँख मूंदकर धंधा करते ही रहे। परिणाम यह हुआ कि सेठ के बंगले बिक गये। पत्नी के जेवर भी बेचने पड़े। देश में जो बंगले थे, वे भी बिक गये। अब तो घर में खाने के, अन्न के भी लाले पड़ गए। सेठ अत्यन्त दुःखी हो गये। ऐसी स्थिति में मुंबई कैसे रहा जाय ? सेठ देश में आये। वहाँ भी घर और खेत सब बिक गए। एक छोटी सी घास की झोंपड़ी बांधकर सेठ रहने लगे। पास में पैसा नहीं रहा कि वह धंधा कर सकें। नौकरी नहीं मिलती। एक टुकड़ा रोटी का भी खाने के लिए नहीं मिलता। सेठ बहुत ही उलझन में पड़ गए। भूखे रहकर दिन बीतने लगे। उनकी पत्नी ने कहा - "अब तो दैनिक मजदूरी पर जाओगे तभी गुजारा चलेगा, अन्यथा भूखे मर जाएँगे।" अब सेठ मजदूरी करने के लिए जाने को तैयार हुए। काम करने के लिए सबके सामने आजीजी करने लगे। लज्जा और क्षोभ से सेठ का मस्तक झुक गया था। अब नम्रता बताये बिना काम नहीं चल सकता था। यह सेठ लोगों के सामने काम देने के लिए गिड़गिड़ाता है। पर कोई भी व्यक्ति उसे काम नहीं देता। ऐसे समय में जिस व्यक्ति का सेठ ने (पहले) तिरस्कार कर दिया था, वह वहाँ से होकर जा रहा था। सेठ की यह दशा देखकर उस वृद्ध मनुष्य को उस पर दया आ गई। उसने इस सेठ से कहा - "अरे सेठ ! तुम्हारी यह दशा ?" सेठ की आँख में आंसू आ गये। वह वृद्ध मनुष्य बोला - "सेठ ! घबराना मत। मेरे यहाँ काम करना। परन्तु एक बात जरूर लक्ष्य में रखना कि इस संसार में समय-समय पर रंग पलटता है। मैंने तुम्हें (उस समय) खेत संभालने को कहा था, तब तुम्हें मेरी बात कड़वी लगी थी।" सेठ कुछ भी न बोल सके। किसी का अभिमान टिकता नहीं। राजा रावण का अभिमान भी उतर गया था। तब फिर आज का मानव किस बिसात में है ?

बन्धुओं ! इसका नाम संसार है। इस संसार (-समुद्र) में ज्वार और भाटा आया करता है। समुद्र में जब भरती आती है, तब पानी ही पानी दिखाई देता है। तिजोरी में पैसों की छनाछन होती है, तब स्वजन, परिजन और मित्रजन भी खम्मा-खम्मा करते हैं। उस समय मुस्काना नहीं; और जब पाप का उदय हो, तब घबराना नहीं। पुण्य और पाप के उदय के समय जो समभाव रखता है, वह सच्चा बहादुर है। संसार का सुख स्वप्नतुल्य है। जबकि आत्मिक सुख स्थिर और शाश्वत है। यदि सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो भगवान् कहते हैं -

"रंगरागनी जलावी दो होली, विषय-वासनाने नांखो चोळी।
ज्ञान-दर्शननी भरी लो झोळी, तो आत्मामां प्रगटे दिवाळी॥"

• • • • • • • • • •   •   •   •   • • • • • •

मोक्षगमन की ओफिस कौन-सी ? : यह मानवभव मोक्ष में जाने का कार्यालय (ओफिस) है । इस मोक्ष के कार्यालय में आकर मानव मौज-शौक की कूचा मांगता है। आत्मा को अव्याबाध सुख प्राप्त कराए, ऐसी ओफिस में आकर क्षणिक सुख देनेवाले विषयों का कचरा मांगना क्या उचित है ? मोक्ष के कार्यालय में आकर अर्जी देनेवाला भूल करे तो क्लर्क बेचारा क्या करे ? आत्मा (मानवात्मा) मोक्ष के कार्यालय में अर्जी करने आया है । यहाँ पाँच इन्द्रियरूपी क्लर्क हैं । किन्तु इन्हें मोक्ष की अर्जी दो तो काम हो न ? इस जीव ने शौचालय साफ करने की कचरापेटी की अर्जी दी है । मगर मोक्ष जल्दी मिले, ऐसी अर्जी की है क्या ? इन्द्रियों रूपी क्लर्कों को तुम मोक्ष के कार्यों के सिवाय अन्यत्र जाने की छूट मत दो । यदि इन्द्रियरूपी क्लर्क जागृत है तो अर्जी शीघ्र करो । जो अर्जी करने में समझता हो कि अर्जी में क्या लिखा जाता है, वही सच्ची अर्जी कर पाता है । परन्तु जो नहीं समझता है, वह तो क्या लिखना है, इसके बदले कुछ का कुछ लिख डालता है । अतः इस मानवभव के कार्यालय में आकर सच्ची अर्जी करो ।

धर्म रत्न के समान है : अनाज का दाना अच्छा हो, लेकिन खेत की जमीन जोते बिना उस जमीन में डाला जाए तो धान्य की प्राप्ति नहीं होती । वैसे ही आत्मा में धर्मरूपी बीज डाला जाए, परन्तु आत्मा का खेदान न किया हो, उसमें धर्मरूपी बीज डाली तो भी फायदा नहीं करेगा । धर्मरत्न के योग्य बनना हो तो श्रावक के २१ गुण प्राप्त (अर्जित) करने पड़ेंगे । यह (आत्म) धर्मरत्न के समान है । धर्म को रत्न की उपमा क्यों दी है ? रत्न अति मूल्यवान वस्तु है । परन्तु पत्थर कीमती नहीं समझे जाते, क्योंकि उनमें तेजस्विता के गुण नहीं हैं, जबकि रत्न में तेजस्विता है, इसलिए उसका मूल्य होता है । जिसके पास रत्न होता है, वह धनवान कहलाता है । लाखों का कर्ज हो, किन्तु अगर पास में एक रत्न हो तो पलभर में कर्ज चुका दिया जाता है । वैसे ही अनेक भवों में बांधे हुए कर्म धर्मरूपी रत्न क्षय कर डालता है । साथ ही धर्म रत्न अवनति के पथ पर जाते हुए आत्मा को रोककर उन्नति के पथ पर ले जाता है । जिसके जीवन में श्रावक के २१ गुण होते हैं, वह आत्मा धर्मरत्न के योग्य है ।

जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है, उसे शरीररूपी घर कैसा लगता है ? : जिसमें श्रावक के २१ गुण होते हैं, जिसके हाथ में धर्मरत्न आ गया है, उस आत्मा को यह शरीर किराये का घर लगता है । आहार, शरीर, इन्द्रियाँ और उनके विषय तथा उनके साधन, ये सब किराये के घर के फर्निचर हैं । घर जितना अधिक फर्निचरवाला होता है, उसका भाड़ा भी अधिक ही बैठेगा । उसी प्रकार यहाँ जितने अच्छे आहार, शरीर, इन्द्रियगण, उनके विषय और साधन होते हैं, उतना पुण्य अधिक क्षय (खर्च) हो जाता है । अपने व्यापार में जिसको अधिक कमाई नहीं होती, पर वह ऊँची क्वालिटी के फर्निचरवाला मकान किराये पर लेकर रखे, उसकी क्या दशा होती है ? वह किराये का घर घड़ीभर भले ही मन को खुश कर दे, पर उसका भाड़ा भरने का समय आए, तब कितनी मानसिक उलझन होती है ? अपनी परिस्थिति का विचार किये बिना ऊपर से

अनादिकाल से आत्मा राग के रंग में रंजित है । उस राग-रंग की होली को जला दो । यह (लौकिक) होली तो लकड़ी और छाणों (कंडों) को जलाती है; यह नहीं, पर यहाँ तो कर्मों को जला देने की होली करनी है और पाँचों इन्द्रियों के विषयों को मसल डालो, जिससे कर्मबन्धन न हो और आत्मा उज्ज्वल बने । झोली किससे भरनी है ? बोलो, रुपयों से ? रुपयों से तो अनेक वार भरी है । वह साथ में नहीं आती । परन्तु ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपरूपी शाश्वत धन से झोली भर लो ताकि भव-भव के बन्धन टूट जाएँ और ज्ञान की ज्योति जगमगा उठे । दिवाली आती है, तब लोग दीपक जलाते हैं । वह तो द्रव्य-दीपक होता है । परन्तु अपने अन्तर में सदैव ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित रहे, कभी बुझे नहीं, ऐसी करणी मनुष्यभव में कर लो । जल्दी प्रकाश पाना चाहते हो तो १२ अव्रत के बाजार के १२ द्वार जल्दी बंध करो और यथाशक्य विरति के घर में आओ ।

सलिलावती-विजय में वीतशोका नाम की नगरी है । वह १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी है । वह देवलोक जैसी रमणीय है । उस नगरी को देवलोक जैसी क्यों कही है ? उस नगरी के राजा कौन थे ? इन सबके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ७

आषाढ़ सुदी १५, रविवार — ता. ११-७-७६

चातुर्मास में सम्यक् आराधना करो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज वर्षावास = चातुर्मास - प्रारम्भ का मंगल-दिवस है । उपाश्रय में मानव-मेदिनी उमड़ी है । साथ ही तुम्हारा अति प्रिय रविवार का, तथा आषाढ़ी पूर्णिमा का दिन आ गया है । दूसरी पूर्णिमाओं की अपेक्षा आषाढ़ सुदी पूर्णिमा का विशेष महत्त्व है । आज भारतभर में विचरण करनेवाले समस्त साधु-साध्वीगण स्वयं द्वारा निश्चित किये हुए स्थान (क्षेत्र) में पहुँच जाएँगे । यद्यपि विहार संतों को बहुत प्रिय होता है, और विहार में संतों के संयम की सुरक्षा होती है, जबकि संत (हमारे क्षेत्र में) स्थिर रहें, ऐसी भावना होती है - श्रावक- श्राविकावर्ग की । उन्हें उसमें आनन्द आता है ।

स्थानक में यदि संत-सती विराजमान होते हैं, तो श्रावकवर्ग उनके दर्शन करके मांगलिक सुन सकते हैं, उनका व्याख्यान सुनकर लाभ लेते हैं । और उन्हें निर्दोष, सुज्झता (शुद्ध) आहार-पानी बहराकर हाथ पवित्र करने का लाभ मिल जाता है । इसलिए श्रावकवर्ग को आनन्द आता है, किन्तु संत को विचरण करने में लाभ है । जैसे नदी बहती है तो वह उसके आसपास के प्रदेश को हराभरा और हरितवर्ण का बना देती है,

तड़क-भड़कवाला बनकर फिरता है, परन्तु उसको कभी विचार होता है कि मैं किस कमाई पर नाच रहा हूँ ?

बन्धुओं ! अपना शरीर भी बंधी मुद्दत तक महंगे किराये का मकान है। उसमें आहार, शरीर, इन्द्रियाँ, उनके विषय और उनके साधनों के विषय में प्रतिक्षण पुण्य तो क्षीण (खर्च) हो रहा है, और कर्म का कर्जा बढ़ रहा है। सज्जन आदमी को महंगे भाव का भव्य भवन भारी पड़े तो सहायक किरायेदार खड़ा करके अपने सिर से भाड़े का बोझ हलका करता है। परन्तु शरीररूपी भव्य-भवन का भाड़ा बढ़ जाये तो कौन-से सहायक किरायेदार खड़े किये जाएँ ?, क्या आप जानते हैं ?

सहायक किरायेदार कौन-से ? : जहाँ तक शरीर स्वस्थ है, वहाँ तक तप कर लो, आहार पर नियंत्रण (कन्ट्रोल) करो, जितनी हो सके (षट्कायिक जीव) दयाव्रत का पालन करो, दान करो, शील पालो, सुपात्रदान, अभयदान और ज्ञानदान में इस शरीर का उपयोग हो जाय तो समझना मैंने अनेक सहायक किरायेदार खड़े कर दिये हैं। मकानमालिक चतुर हो तो ऐसे सहायक किरायेदार खड़े करके सिर से जोखिम (बोझ) उतार देता है। इस शरीररूपी महल का भाड़ा खड़ा करने में २४ घंटे प्रयत्न करना पड़ता है। यह मानव-तनरूपी महल मिला है, उसमें प्रसन्न रहने को जिंदगी के कीमती समय का दुर्व्यय मत करो। प्रतिक्षण सावधान रहो। हीरे, माणिक, मोती या सोना खो जाता है, उसे खोजने में आप कितनी मेहनत करते हैं, फिर भी न मिले तो कितना अफसोस होता है ? किन्तु मानवजीवन का एक-एक क्षण हीरे, माणिक, मोती और सोने से भी अधिक कीमती हैं। वे अमूल्य क्षण नष्ट हो रहे हैं, इसका कोई दुःख होता है ?

पुत्र की वर्षगांठ आती है, तब माता-पिता मिष्टान्न और फरसाण बनाकर वर्षगांठ मनाते हैं। माता मानती है कि मेरा पुत्र ५ वर्ष का हो गया। मगर उसकी जिंदगी के ५ वर्ष कम हो गए हैं, उसका अफसोस है क्या ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तेरी जिंदगी में जबतक उत्साह है, साहस है, देह का महल निढाल नहीं हुआ है, वहाँ तक पहले कह गए हैं, वैसे सहायक किरायेदार खड़े (तैयार) कर लो। बाद में अंतिम समय में सहायक किरायेदार खोजने जाओगे तो नहीं मिलेंगे।" इस समय तो जब मनुष्य का अन्तिम समय आता है, तब धर्मादा करने का कहने को तैयार होता है। सारे त्याग-प्रत्याख्यान भी अन्तिम समय में होते हैं, तो क्या मरते समय अन्तिम किरायेदार मिल जाएगा ? मरते समय कौन किरायेदार (तुम्हारे पास) आएगा ? जहाँ बीमा (इन्स्योरेंस) न कराया गया हो, वहाँ ऐसी स्थिति में सहायक किरायेदार कहाँ से आएँगे ? अत: एक विचार निश्चित कर लो कि भाड़ा चढ़े तब से सहायक किरायेदार खड़े कर लो।

बन्धुओं ! अनादिकाल से आत्मा मकानों का किराया भरकर दिवालिया होता आया है; परन्तु इस मनुष्यभव का स्थान ऐसा मिला है कि उसमें साहूकार बनकर रहना चाहे तो रह सकता है। मगर दिवालिया की परम्परा में साहूकार होने की कठिनाई है। चिन्तामणि रत्न मिलना मुश्किल है, और टिकना तो इससे भी अधिक मुश्किल है। जगत् में

हिंदी - अनुवाद के दो शब्द

भारतवर्ष विभिन्न भाषा-भाषियों का राष्ट्र है । एक भाषा के ग्रन्थ या पुस्तक का दूसरी भाषा में अनुवाद हो जाने पर दूसरी भाषावाले उसके ग्रन्थ या पुस्तक में उल्लिखित विचारों से लाभान्वित हो सकते हैं । जैनधर्म के वर्तमान में मुख्य दो सम्प्रदाय हैं - दिगम्बर और श्वेताम्बर । श्वेताम्बरों में मुख्यतया तीन उपसम्प्रदाय हैं - श्वेताम्बर मूर्ति पूजक, श्वेत-स्थानकवासी और श्वेत-तेरापंथी । श्वेताम्बर स्थानकवासी उपसम्प्रदाय में प्रान्तीय दृष्टि से अथवा आद्य महान् एवं कठोर क्रिया पात्र की दृष्टि से कई शाखाएँ हो गई । पूर्व में भी श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ऐसी कई शाखाएँ - उपशाखाएँ थी, आज भी हैं । स्थानकवासी उपसम्प्रदाय की एक शाखा है - खम्भात (स्तम्भतीर्थ सम्प्रदाय/ खम्भात-सम्प्रदाय में बालब्रह्मचारिणी प्रतिभाशाली विदुषी प्रखर वक्त्री हुई हैं - शारदाबाई महासतीजी । उनके व्याख्यान शास्त्रीय आधार को लेकर बहुत ही हृदयस्पर्शी, प्रेरणादायक, जीवन को बदल देनेवाले होते थे । गुजरात में उनके व्याख्यानों की धूम मची हुई थी । गुजरात के अलावा भी मुंबई, मद्रास, बेंगलोर, महाराष्ट्र आदि में भी उनके व्याख्यान लोकप्रिय हुए हैं । गुजराती-भाषी लोगों ने उनके व्याख्यानों की कई बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं । यथा-'शारदा शिरोमणि', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा ज्योत', 'शारदा सुकानी' इत्यादि । हिन्दीभाषी लोगों के पवित्र अनुरोध 'शारदा सिद्धि', 'शारदा शिरोमणि', 'शारदा ज्योत', 'शारदा सुकानी' आदि हिंदी भाषा में भी प्रकाशित हो चुकी है । गत वर्ष बा. ब्र. विदुषी रंजनाबाई महासतीजी का चातुर्मास बेंगलोर था । बेंगलोर के कतिपय हिंदीभाषी लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि 'शारदा शिखर' का भी हिंदी भाषा में अनुवाद हो जाए तो हम सब हिंदींभाषी लाभ ले के पवित्र हो सकते हैं । बेंगलोर में विराजित पं. रत्न मधुरभाषी श्री विमलमुनिजी एवं प्रखरवक्ता श्री वीरेन्द्रमुनिजी से महासती रंजनाबाई ने हिन्दी अनुवाद के विषय में बातचीत की । श्री विमलमुनिजी ने मेरा नाम सुझाया । फलतः मुझे उन्होंने पत्र द्वारा सूचित किया और संग्रह अनुरोध किया कि आप 'शारदा शिखर' का हिंदी में अनुवाद कर दें । व्याख्यान के विषय के अनुरूप मुख्य शीर्षक भी लगा दें । यद्यपि मेरी उम्र का ८३वाँ वर्ष चल रहा है । शरीर में पहले जैसी शक्ति और स्फूर्ति नहीं रही । फिर भी शारदाबाई महासतीजी के शास्त्रीय आधार पर व्याख्यान से बहुत कुछ नये-नये विचार और भाव जानने को मिलेंगे, ज्ञानवृद्धि भी होगी, शब्द सम्बद्ध होने से शास्त्र-स्वाध्याय के एक अंग-धर्मकथा का भी लाभ मिलेगा और श्रुत-सेवा, एवं महासतीजी के विशिष्ट भावनापूर्ण अनुरोध के कारण मैंने अपनी स्वीकृति दे दी । साथ ही यह भी निवेदन कर दिया कि आप जल्दी न करें । मैं अपनी सुविधा के अनुसार जितना-जितना अनुवाद होता जाएगा, आप को ठाणे सूचित पते से भिजवाता रहूँगा । उन्होंने स्वीकार किया, मैंने अनुवाद-कार्य प्रारम्भ किया । कुछ व्याख्यानों का अनुवाद हुआ ही था कि मुंबई से श्री कृष्णकांत भाई पटेल आए, उन्होंने सौंप दिया, उन्होंने महासतीजी को अनुवाद किये हुए व्याख्यान दिखाये । महासतीजी द्वारा बा. ब्र. विदुषी महासती श्री वसुबाई महासतीजी तथा बा.ब्र. विदुषी श्री रंजनाबाई महासतीजी दोनों को मेरे द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद पसंद आया । किन्तु इतने में ही हमारे गुरुभ्रात का स्वास्थ्य अस्वस्थ हो गया है । उसके कारण बीच

है कि प्राप्त करना मिनट में, और सुरक्षित रखना है जिंदगी तक । जैसे - तुमने बाजार में से पाँच लाख का हीरा खरीदा । घर लाकर तुमने अपनी पत्नी को दिया । वह हीरा तुमने प्राप्त किया एक मिनट में, परन्तु उसे सुरक्षित (संभालकर) रखना तो जिंदगी तक है न ? इस प्रकार इस संसार में अनन्तकाल से भटकते हुए जीव को एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपन में धर्म का विचार नहीं आता । परन्तु आर्यक्षेत्र, पचेन्द्रियपन और मानवभव मिला तब धर्मरत्न प्राप्त करने की शक्ति आई । मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल और वीतरागवाणी का श्रवण, यह सब उत्तरोत्तर मिलना कठिन है ।

चिन्तामणिरत्न प्राप्त करने के लिए मनुष्य जितनी मेहनत करता है, उससे अनन्तगुणी मेहनत मनुष्यपन में धर्मश्रद्धा प्राप्त करने हेतु करनी चाहिए । इन्द्र की या चक्रवर्ती की पदवी मिलनी आसान है, परन्तु जिनेश्वर-प्रभु का शासन और वीतरागवाणी का श्रवण कठिन है । कितनी घाटियाँ पार करने की, तब यह मनुष्यभव मिला है । बहुत विचार करोगे तो समझ में आएगा कि हम मनुष्यभव में कितने ऊँचे ओहदे पर हैं । जितने ऊँचे चढ़े हैं, उतनी साधवानी नहीं रखेंगे तो जोर से पछाड़ खायेंगे । महान् उत्तम मानवभव मिला है, तो अब भाग्य में लिखा होगा तो धर्म (धर्माचरण) होगा; यों भाग्य के भरोसे बैठे मत रहना । माँ रसोई बनाकर तुम्हारी थाली में परोस दे, पर उसे चबाकर गले से नीचे तो स्वयं को ही उतारना पड़ता है । बड़े भाग्य से मानवभव मिला है, पर अब आगे बढ़ने के लिए खुद को पुरुषार्थ करना पड़ेगा । मैं इसके लिए एक दृष्टांत देकर समझाती हूँ ।

एक मनुष्य जामुन के पेड़ के नीचे सोया है । वहाँ ऊपर से एक जामुन गिर कर उसकी छाती पर पड़ा । उस समय खेत के दूसरी ओर एक ऊंटवाला जा रहा था, उसने उसे चिल्लाकर बुलाया । तब ऊंटवाला पास में आकर पूछता है - "क्यों भाई ! क्या काम है ?" इस पर वह कहता है - "मेरी छाती पर जो जामुन पड़ा है, उसे उठाकर मेरे मुँह में रख दो ।" इन पर वह ऊंटवाला कहता है - "अरे आलसी के पीर ! तुझे इसे मुँह में रखने में जोर आता है क्या ? मुझे ऊंट पर से उतरना पड़ा ! ऊंट को बिना भरोसे वहाँ रखना पड़ा !" तब वह कहता है - "भाई ! मेरे हाथों और पैरों पर मेंहदी लगाई हुई है ।" भगवान् कहते हैं - "जहाँ तक हम स्वयं उद्यम कर सकते हैं, वहाँ तक *भाग्य का भरोसा* क्यों रखना ?" अतः भाग्य के भरोसे न रहकर धर्मरत्न की प्राप्ति के लिए उद्यम करो ।

देवानुप्रियों ! धर्म से सुख मिलता है और पाप से दुःख । जो व्यक्ति पहले धर्म करके आए हैं, वे सुखी हैं, और जिन्होंने पहले धर्म की कमाई नहीं की, वे बेचारे कर्म के उदय से दुःखी हैं । आज तुम थोड़ा-सा श्रम करके लीला-लहर करते हो, और कोई बेचारे सारे दिन कठोर परिश्रम (मजदूरी) करते हैं, फिर भी उन्हें पेट भरने जितना भी नहीं मिलता । तुम्हारा बच्चा जो मांगता है, उसके लिए तुरंत वह चीज हाजिर हो जाती है, जबकि गरीब का बेटा एक छोटी-सी चीज के लिए कितना रोता है, वह उन्हे नहीं मिलती । यह सब किसका प्रभाव है ? इस पर विचार करो ।

मुझे चरोतर की एक सत्य घटना याद आ रही है ।

श्रीमंतों की श्रीमंताई और उद्धत्तता : चरोतर के एक गाँव में एक धनिक पटेल का बड़ा बंगला था । उसके बगल में एक गरीब का घर था । वह गरीब आदमी कारकून (क्लर्क) की सर्विस करता था । पति, पत्नी और एक बालक, यों तीन मनुष्यों का कुटुम्ब था । वे प्रतिमास ५० रुपये के वेतन से गुजारा चलाते थे । पड़ोस में सेठ के यहाँ पचास रुपयों का कोई हिसाब नहीं था । उस धनिक का लड़का और इस गरीब का लड़का दोनों लगभग समवयस्क थे । वे दोनों साथ में खेलते-रमते थे । धनिक के घर में मेवा, मिठाई और फ्रूट की कोई गिनती न थी । एक दिन धनिक का पुत्र सुरेश सफरजन (सेव) लेकर चौक में खड़ा-खड़ा लिज्जत से खा रहा था । उस समय वह गरीब का लड़का बोला - "भाई सुरेश ! तू यह क्या खा रहा है ?" वह बोला - "मैं सफरजन खा रहा हूँ ।" तब गरीब का लड़का कहने लगा - "सुरेश ! मुझे भी इसकी एक फांक दे न ?" बन्धुओं ! बालक का मन पवित्र होता है, उसे रमेश को एक फांक देने का मन हुआ । मगर उसकी माँ ने यह देख लिया । अतः उसने सुरेश से कहा - "खबरदार ! इसे सफरजन दिया तो ! तू एक दिन इसे दे देगा, तो यह रोज-रोज मांगने आएगा ।" देखो ! धन की कितनी गर्मी है ? सुरेश ने हाथ में रहे हुए सफरजन का टुकड़ा मुँह में रख लिया । बेचारा रमेश टुकर-टुकर देखता रह गया ।

पुत्र द्वारा पिता से की गई सफरजन की मांग : रमेश घर आकर पिता से कहता है - "पिताजी ! मुझे सफरजन खाने का बहुत मन हुआ है, तो मुझे एक सफरजन लाकर देंगे न ?" पिताजी बोले - "अच्छा, बेटा ! लाऊँगा ।" यों कहकर पिता अपनी सर्विस पर जाने को रवाना हुए । उक्त निर्दोष बालक के मन में हर्ष है कि मेरे पिताजी मेरे लिए सफरजन लानेवाले हैं । शाम हुई । गाड़ी आने का टाइम हुआ कि रमेश स्टेशन पर पहुँच गया । उसके पिता गाड़ी से उतरे कि तुरंत हाथ पकड़कर रमेश ने पूछा - "पिताजी ! मेरे लिए सफरजन लाये क्या ?" उसके पिताजी बोले - "बेटा ! आज तो मैं सफरजन लाना भूल गया ।" छोटे-से फूल-से कोमल बच्चे का मुँह कुम्हला गया । वह निःश्वास छोड़कर बोला - "ठीक ! कल जरूर लाना, भूल मत जाना !" उसके पिता ओफिस से छूटकर घर आते हुए रास्ते में फ्रूट की दुकान के पास से निकल रहे थे, तभी रमेश की मांग याद आ गई । पर अब 'भूल गया' यह बात चल नहीं सकती थी । सफरजन तो याद था, परन्तु जेब में एक भी पैसा नहीं था । सफरजन कहाँ से लाए ? एक ओर अपने प्रिय पुत्र की यह पहली मांग थी । सफरजन एक आने में मिलता था, परन्तु जहाँ पास में एक पैसा भी नहीं हो, वहाँ एक आना कहाँ से लाए ? परन्तु बालक की मांग पूरी करने के लिए चपरासी से २५ पैसे उधार मांगे ! मगर चपरासी ने उधार पैसे देने से इन्कार कर दिया । कल स्वयं पच्चीस पैसे कहाँ से लाएगा ? उसका भी पता नहीं था । परन्तु निराश हुए बच्चे का दयापूर्ण मुँह के सामने देखकर उसे आश्वासन देते हुए कहा - "बेटा ! आज भी मैं भूल गया । कल लेकर आऊँगा ।" दूसरे दिन - "आज मेरे पिताजी सफरजन

निवेदन

नम्र निवेदन है कि महान् विद्वान बा. ब्र. गुजरात सिंहनी **श्री शारदाबाई महासतीजी** के १६ पुस्तक गुजराती में प्रकाशित हुए हैं, उनमें ६ का हिन्दी में अनुवाद हुआ है । उसमें 'शारदा शिरोमणि' 'सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न' 'शारदा ज्योत' यह सब दो भागों में हमने प्रकाशित करवाया हैं । 'दीवादांडी' भी अभी प्रकाशित हो चुकी है । उसमें 'शारदा शिरोमणि', 'सफल सुकानी' आदि पुस्तक आप तक पहुँचा ही होगा और यही **'शारदा शिखर'** भी आप तक पहुँच रही है । अब आपसे निवेदन है की इसकी मूल किमत से २०% में ही हम आप तक यह पुस्तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे आप जान सकते हैं कि किसी दानी के सहयोग से ही यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सकता है, तो हमारा आपसे अनुरोध है कि इस पुस्तक के पढ़ने के वण आपकी श्रद्धा हो तो आप भी इसमें सहयोगी बने और दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरणा दें, जिससे हम ज्यादा से ज्यादा पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करवा कर आप तक पहुँचाने की कोशिश कर सके । आपसे इसलिए निवेदन कर रहे हैं कि यह बहुत ही बड़ा अर्थ का मामला है, हम व्यक्तिगत संपर्क कर नहीं सकते, मगर इस पुस्तक द्वारा निवेदन कर रहे हैं । यदि आपकी आत्मा संपूर्ण जगे तो ज़रूर इस महान कार्य में यथा-योग्य सहयोग प्रदान करावे, तो हमारा अगला कार्य सरल बनेगा । हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है, आपके आत्मा में छूपी दान-भावना तीव्र बने । इस आशा और विश्वास के साथ ।

पू. नेमिचंद्रजी म.सा. के बहुत एहसानमंद है । आपने इतनी बड़ी उम्र में भी बहुत मेहनत करके शासन-सेवा का और ज्ञानप्रचार-प्रसार का काम ठीक समय पर कर दिया । गुजराती का हिन्दी में अनुवाद करके इतना बड़ा काम बहुत अच्छी तरह से कर दिया, इसके लिए हमारी समिति आप का बहुत शुक्रिया अदा करते है । आपके हम बहुत शुक्रगुजार है ।

आपके

शारदा प्रवचन संग्रह समिति - सुरत

लायेंगे; इस आशा में दिन बिताया। शाम पड़ते ही यह पोल के दरवाजे के पास आशा लिए खड़ा था। दूर से पिता को आते देख दौड़कर सामने गया और सफरजन के लिए हाथ फैलाकर खड़ा रहा। पिता के दिल में दुःख हुआ। परन्तु पुत्र को आश्वासन देने हेतु जेब में हाथ डालकर कहने लगा - "बेटा ! सफरजन तो लाया था, पर जेब में से गिर गया लगता है।" इस प्रकार झूठ बोले बिना पुत्र को समझाया नहीं जा सकता था। यों निर्दोष बालक को ज्यों-त्यों करके समझा तो दिया, परन्तु आँख में आंसू आ गए - 'ओह ! मैं कैसा अभागा हूँ कि अपने इकलौते लड़के को एक आने का सफरजन लाकर दे नहीं सकता।'

देवानुप्रियों ! विचार करना। गरीबी कैसी वस्तु है ? जिन्हें प्रचुर धन मिला है, उनके लिए एक आने का कोई हिसाब नहीं है। जिसे नहीं मिला है, उसे एक आने के लिए कितने डोल करने पड़ते हैं ? आज धनवानों के कपड़े वोशिंग मशीन में धोये जाते हैं। उसका जितना खर्च आता है, उतने खर्च में से तो गरीब का गुजारा चल सकता है। धनिकों के नाटक-सिनेमा-होटल के खर्च कितना होता है तथा उनकी गाड़ी खराब हो जाती है, तब उसके रिपेरिंग में कितने पैसे स्वाहा होते हैं ? इसका हिसाब लगाओ। इतने पैसों में गरीब आनन्द से अपना जीवन-निर्वाह कर सकता है। जहाँ धनवानों का हास्य है, वहाँ गरीबों की हाय है ! तुम्हारे पुण्योदय से तुम्हें भरपूर सामग्री मिलती है, तो गरीबों के आंसू पोछना। मेरा कौन स्वधर्मी बन्धु कहाँ-कहाँ दुःखी है ? इसकी जांच-पड़ताल करना और मुक्त रूप से उन्हें मदद करना। रमेश अपने पिताजी से कहता है - "पिताजी ! आज सफरजन जेब में से गिर गया है, तो कल तो जरूर लाएँगे न ? कल सफरजन जेब में न रखकर थैली में रखकर लाना।" उसे कहाँ पता है कि मेरे पिताजी की कैसी स्थिति है ? उसका पिता कहता है - "बेटा ! अब कल नहीं लाऊँगा ! कल रविवार है, अतः छुट्टी का दिन है। परसों सोमवार है, वेतन पाने का दिवस है। अतः उस दिन मैं तुझे एक के बदले दो सफरजन लाकर दूंगा।" रमेश के हर्ष का पार न रहा। वह अपनी माँ के पास जाकर बोला - "माँ ! सोमवार को मेरे पिताजी मेरे लिए दो सफरजन लाकर देनेवाले हैं। फिर उन्हें खाने में कितना आनन्द आएगा ?" रमेश की माता अपने पति के सामने देखकर कहती है - "इसका हर्ष तो देखो ! अभी तक सफरजन हाथ में नहीं आए। तुमने इसे ला देने को कहा है, उसे सुनकर तो हर्ष में यह पागल हो उठा है, तो सफरजन मिल जाएगा, तब तो इसे कितना हर्ष होगा ?" सोमवार को रमेश के पिता ओफिस जाने के लिए घर से रवाना हुए। रास्ते में फ्रूटवाले की दुकान आई। दुकान में जाकर सफरजन के ढेर में से दो बड़े सफरजन छाँटकर निकाले। उसकी कीमत तय करके दुकानदार से कहा - "ये दो सफरजन अलग रख छोड़ना। मैं ओफिस से लौटूंगा, तब लेता जाऊँगा !" दुकानदार बोला - "भाई ! अभी ले जाओ न ?" इस पर उसने कहा - "अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं। आज मुझे वेतन मिलनेवाला है। इसलिए पैसे देकर शाम

मुनि को देखकर सुनार के हृदय में हर्ष उमड़ा - 'आज धन्य घड़ी, धन्य भाग्य है कि मेरे आंगन में ऐसे तथारूप मुनिवर के चरण पड़े हैं । आज मेरा आंगन पवित्र हो गया ।' उस समय सुनार श्रेणिकराजा के (घड़ने के लिए) सोने के जौ घड़ रहा था । श्रेणिकराजा मगधदेश के स्वामी थे । उनके सिर पर कितनी जिम्मेदारी थी, राज्य संचालन की ? फिर भी जब भगवान् (महावीर) या कोई भी श्रमण-श्रमणी पधारते, तब व्याख्यान-वाणी सुनने और उनके दर्शन करने का अवश्य लाभ लेते थे । उसमें एक दिन भी चूकते नहीं थे । क्या तुममें इतनी जिम्मेदारी है ? श्रेणिक नृप अनेक राज्यों का स्वामी था । तुम तो एक बंगले के भी पूरे धनी नहीं हो, फिर भी कहते हो कि क्या करें ? हमारे पास टाइम नहीं है । तुम्हे जरा-सी तकलीफ पड़ती है, धर्म को पहला धक्का मारते हो ! बिना कठिनाई के धर्म हो जाय तो तुम करने को तैयार होते हो ! तुम धर्म की कीमत कैसी और कितनी समझे हो, कहूँ क्या ? तुम्हारा संसार है, तुम्हारे उदर से जन्मा पुत्र और धर्म को सौतेले पुत्र के समान समझते हो । सौतेले पुत्र का पालन दुनियादारी व्यवहार की दृष्टि से करना पड़ता है, इस रीति से करते हो । वह भी प्रसंग न आए, वहाँ तक । उसका जरा-सा भी अपराध हो जाए तो बेचारे पर डंडे पड़े ! इस प्रकार तुम धर्म तो करते हो, पर जरा-सी मुश्किली आए तो तुरंत करते हो, धर्म का बहिष्कार ! बुखार आ जाए तो भी ओफिस में जाना ही जाता है, परन्तु सामायिक नहीं होती है । संत-दर्शन या व्याख्यान-श्रवण करने नहीं आना होता ! मगर श्रेणिकराजा उपाधि के समय भी धर्म को धक्का नहीं मारते थे । ऐसी उनकी अटूट श्रद्धा थी, धर्म पर । अब हम मूल बात पर आएँ ।

मैतार्यमुनि पर सुनार के मन में उत्पन्न शंका : सुनार श्रेणिकराजा के दिये हुए सोने के जौ घड़ रहा था । जौ लगभग तैयार हो चुके थे । उस समय मैतार्यमुनि गौचरी के लिए पधारे । संत को देखते ही सुनार जौ को छोड़कर संत को आहार बहराने (देने) के लिए उन्हें रसोई घर में ले गया । उस समय एक क्रौंचपक्षी वहाँ आया और स्वर्ण के जौ को अनाज के दाने समझकर चर गया । सुनार मुनि को आहार बहराकर बाहर आया और वहाँ एक भी जौ न देखकर मुनि के प्रति उसने शंका की । उसने मुनि से कहा - "आपने मेरे सोने के जौ चुरा लिये हैं ! अगर जौ लिये हों तो मुझे जल्दी दे दो, क्योंकि राजा से मैंने समय पर जौ घड़कर देने का वादा किया है । अतः राजा का आदमी अभी जौ लेने के लिए आएगा तब मैं क्या जवाब दूंगा ?" यद्यपि मुनि ने वे जौ नहीं लिये थे, परन्तु क्रौंचपक्षी को जौ चुगते (चरते) देखा था । अतः वे बोले नहीं, क्योंकि जिस बात के कहने से किसी जीव की हिंसा होने की संभावना हो, ऐसी सावध भाषा मुनि नहीं बोलते । अतः इस समय पाप (हिंसादि) के डर से मुनि मौन रहे । तुम्हें किसी आदमी पर चोरी की शंका हो, उस समय तुम उसे पूछो, उस समय वह मौन रहे तो तुम यों मान बैठते हो कि इसने चोरी की है, इसलिए मौन बैठा है । चोरी की शंका के बाद का मौन, चोरी की स्वीकृति जैसा माना जाता है । (पूछने पर) मुनि मौन रहे, इस लिए सुनार के मन में यह बात जम गई कि मुनि ने अवश्य ही जौ लिये हैं, किन्तु मुझे वापस देते नहीं हैं । न जाने कहाँ रखे होंगे ?

को लेता जाऊँगा।" वहुत दिनों से सफरजन-सफरजन चाहते पुत्र के हाथ पर इन्हें रखते ही वह कितना खुश हो जायेगा और नाचने-कूदने लग जाएगा ? इन विचारों की कल्पना करते हुए रमेश के पिता के मुख पर हास्य का तेज चमकने लगा।

आशा से वेतन लेने जाते हुए हुआ आशा का भंग : तीन बजे वेतन लेने का समय होते ही वह हस्ताक्षर करने हेतु मैनेजर के रूम में गया। मैनेजर ने इसके नाम के वाउचर पर इसके नाम के साथ रिमार्क किया - "यह अपना काम पूरा न करे, वहाँ तक इसे वेतन नहीं चुकाना।" लाल पैंसिल से लिखे हुए अक्षर इसके हृदय पर मानो हथौड़े के जबर्दस्त प्रहार करके उसकी छाती की हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर कर डालने लगे। मैनेजर ने कहा - "तुमने तीन दिन काम कम किया है, उसे पूरा करोगे, तब वेतन मिलेगा।" थोड़ी देर तक सहमते-सहमते धीमे स्वर में वह बोला - "मैनेजर साहब ! दया करो।" मैनेजर साहब ने कहा - "भाई ! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता। सेठ कैसे तेज मिजाज के हैं, यह तुम जानते हो न ? अगर तुम्हें वेतन चाहिए तो उनके पास जाकर उनसे विनती करो।" हाथ में वाउचर लेकर मन में अनेक प्रकार के विचार करता हुआ वह बड़े सेठ की ओफिस के द्वार पर जाकर खड़ा रहा। चपरासी ने सेठ को सूचना दी। अन्दर से आदेश छूटा - "Come in - अन्दर आ जाओ।" उस कारकून ने अन्दर जाकर नीचे झुककर सेठ को प्रणाम करके कहा - "साहब ! मुझे वेतन दें।" यों बोलते-बोलते उसकी आँख में अश्रु छलछला उठे। सेठ ने कहा -"यह नहीं हो सकता। अपने काम में हरामी करनेवाले मनुष्यों को मैं कदापि माफ नहीं करता।" नटवर ने रोते-रोते कहा - "साहब ! मैं कल सारी रात जागकर बाकी रहा हुआ काम पूरा कर दूगां। पर साहब ! मुझे आज वेतन दे दो।" सेठ ने कहा - "तो परसों वेतन मिलेगा।" उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा - "सेठ साहब ! मुझे अधिक नहीं तो, कम से कम एक रुपया तो दीजिए। एक रुपया न दें तो कम से कम आठ आना तो दे ही दें।" सेठ ने 'Get out' कहकर उसे निकाल दिया। एक गहरा निःश्वास लेकर कारकून रूम से बाहर आया और वाउचर मैनेजर के हाथ में सौंपते हुए बोला - "साहब ! कुछ भी नहीं बना !" फिर उसने सोचा - 'मैनेजर से मैं एक रुपया उधार मांगू।' परन्तु फिर मन मसोसकर रह गया कि मैं मांगू और वह नहीं दे तो ? दुनिया पर उसके मन में एक प्रकार का तिरस्कार व्याप्त हो गया कि धनवानों को गरीबों की परिस्थिति का ख्याल कहाँ से हो ? ओफिस से वह खाली हाथ वापस लौटा ! रास्ते में रह-रहकर मन में विचार आता रहा कि रमेश को आज क्या जवाब दूंगा ? कल उसने सफरजन ले आने के लिए भलामण की थी। आज वह सारे दिन आँखे तरसकर मेरी प्रतीक्षा करता हुआ, आशा से बैठा होगा। मैं उसे क्या दूंगा ? यों विचार करता हुआ वह उस फ्रूटवाले की दुकान पर आ पहुँचा।

पुत्र की संवेदना के पीछे झूरता पिता जेल के सींखचों में : सुबह अलग छांटकर रखाये हुए दो सफरजन उसकी नजर में आए। उन्हें देखते ही रमेश का दयार्द्र चेहरा उसकी

सुनार ने मुनि के प्राण लिये : सुनार मुनि को वाड़े में ले गया। उसके पास गीले चमड़े के चामर की पट्टी थी। गीला भीगा हुआ चमड़ा तो कोमल होता है न? सुनार ने मुनि को धूप में खड़ा करके उनके मस्तक पर गीले चमड़े के चामर की पट्टी बांधी। ज्यों-ज्यों धूप बढ़ती गई, त्यों त्यों चमड़े की पट्टी सूखने लगी। मुनि की चमड़ी और नसें खिचन से तड़-तड़ टूटने लगीं, खोपड़ी भी फट गई। इस कारण मुनि के प्राण निकलने से वे एकदम धरती पर गिर पड़े। दूसरी ओर, किसी ने लकड़ी का भारा धड़ाक से नीचे गिराया। उसकी आवाज से जो क्रौंचपक्षी जौ चरकर वहाँ बैठा था उसके मन में दहशत होने से वह एकदम चरक गया। उसके चरकने से जौ निकल पड़े। (जब सोनी को मालूम पड़ा कि जौ तो क्रौंचपक्षी चर गया था, किन्तु हत्या हुई मैतार्यमुनि की। मुनि (गृहस्थ पक्ष में) राजा श्रेणिक के दामाद हैं। सोनी गंभीर विचार में पड़ गया। अभी राजा श्रेणिक के मनुष्य आएँगे, वे इस मुनि को मरे हुए देखेंगे तो मेरा तो आ बनेगा। मुझे गिरफ्तार करके भयंकर सजा दी जाएगी। अब इससे बचने का एक ही रास्ता है। राजा श्रेणिक शुद्ध सम्यक्त्वी हैं। इन्हें देव, गुरु और शुद्ध (आत्मा) धर्म प्राण से भी अधिक प्यारे हैं। ये साधु के कभी अंगुली भी नहीं ऊठायेंगे। साथ ही, कोई संत के अंगुली ऊठाये, या संत को सताए, तो उसे जिंदा नहीं छोड़ते। अतः मैं तात्कालिक तो साधु के वस्त्र पहन लूं। बाद में उतार डालूंगा। श्रेणिक राजा स्वयं आएगा, तो मैं बच जाऊँगा और यदि उनके नौकर आएँगे तो मुझे मार डालेंगे।

मरण के भय से सोनी ने पहना साधु वेष : बन्धुओं! सुनार को मुनि हत्या करने का कोई डर नहीं है, किन्तु अपनी मृत्यु का भय लगा है। अतः साधु का वेप पहनकर दरवाजे बंद करके बैठ गया। इतने में ही राजा का सिपाही सोने के जौ लेने के लिए आया। उसने आवाज दी - "सोनी! दरवाजा खोल। मैं जौ लेने के लिए आया हूँ।" इस पर सोनी बोला - "धर्मलाभ!" मगर दरवाजा नहीं खोलता। सोनी 'धर्मलाभ' देता है, तब सिपाही कहता है - 'जौ दे।' तो वह पुनः कहता है 'धर्मलाभ'। सिपाही ने कहा - "जौ जल्दी दे, नहीं तो मैं राजा से तेरी शिकायत कर दूंगा। अभी राजा आकर तेरी खबर ले लेंगे।" फिर भी प्रत्युत्तर में सोनी कहता है - "धर्मलाभ।" देखो, धर्मलाभ की महिमा कैसी है?

'धर्मलाभ' शब्द की धुन के पीछे राजा श्रेणिक का आगमन : सिपाही तो दरवाजे खटखटा कर थक गया। दरवाजे नहीं खुले। सिपाही को लगा कि अपने महाराजा जिस साधु को वन्दन करते हैं, तब वह साधु 'धर्मलाभ' कहता है। 'तो यह साधु है क्या?' सिपाही वहाँ से सीधा राजा के पास आया और उनसे कहा - "मैं सुनार के घर सोने के जौ लेने गया था। उसके घर का दरवाजा बंद था। मैं दरवाजा खटखटाया और सोनी से कहा - 'जौ दे दे।' तो अंदर से जवाब मिला - 'धर्मलाभ!' मैंने दो - तीन बार दरवाजा खटखटाया और उसे खोलने के लिए कहा। मगर अंदर से 'धर्मलाभ...'

आँखों के सामने सिनेमा के चलचित्र की तरह उभर उठा। उसको ऐसा लगा, मानो रमेश हाथ लम्बे करके कह रहा हो –'पिताजी ! सफरजन... ।' इसी उधेड़बुन में उसने अपने दिमाग पर नियंत्रण खो दिया। पागल की तरह उन दोनों सफरजनों को उठाकर चलने लगा। वहाँ पीछे से जोर से आवाज आई - 'चोर-चोर, पकड़ो इसे।' फलतः चोरी का आरोप लगाकर उसे पकड़कर जेल में डाल दिया। थोड़ी देर तक वह बेसुध हो गया। जब होश में आया, तब देखा कि स्वयं पुलिस चौकी की एक अंधेरी कोठली में लोहे के सलाखों के पीछे बैठा है।

इस ओर शाम के ५ बजे रमेश स्टेशन पर आकर खड़ा रहा। साढ़े पाँच बजे गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, तब उसके आनन्द का पार न रहा कि अभी मेरे पिताजी सफरजन लेकर आएँगे। गाड़ी में से पैसेंजर एक के बाद एक उतरने लगे। सभी यात्री उतर गए। सभी अपनी-अपनी राह चल दिये। रमेश प्रत्येक व्यक्ति के सामने ताक-ताककर देखता रहा। परन्तु उसके पिताजी आए नहीं, तब उसके धैर्य ने जवाब दे दिया। स्टेशन पर कोई भी आदमी नहीं रहा, तब वह निराश होकर उदास चेहरे से घर वापस आया और बोला - "माँ ! गाड़ी तो आ गई। पर मेरे पिताजी नहीं आए।" इस पर माँ ने कहा - "बेटा ! अब वे ९ बजे की गाड़ी में आएँगे। आज वेतन का दिवस है। इसलिए शायद तेरे पिताजी कोई चीज वस्तु खरीदने के लिए रुक गये होंगे। तू अभी सो जा। तेरे पिताजी आएँगे, तब मैं तुझे जगा दूंगी।" यों रमेश को समझा-बुझाकर उसकी माँ ने उसे सुला दिया।

इस तरफ रमेश के पिता जेलर को विनती करते हैं - "भाई ! मैं चोर नहीं हूँ। मेरी यह दशा हुई है। भले ही मुझे जेल में डाला है। पर मुझे एक घंटे के लिए छुट्टी दो, ताकि मैं अपने प्रिय बच्चे को सफरजन देकर आ जाऊँ।" उसकी करुण कहानी सुनकर जेलर का हृदय पिघल गया। वह कहने लगा - "अगर आपको मेरी बात पर विश्वास न आता हो तो मेरे घर जाकर प्रतीति कर आओ।" अपने घर का ठिकाना-पता बता दिया। जेलर रात को उसके घर पर सफरजन लेकर गया। उस समय लड़का अपनी माँ से कहता है - "माँ ! अभी तक मेरे पिताजी सफरजन लेकर नहीं आए। कहाँ गए होंगे ?" माता पुत्र से कहती है - "बेटा ! अभी आएँगे।" यह वार्तालाप सुनकर जेलर को विश्वास हो गया कि यह चोर नहीं है। सच्चा मनुष्य मारा जाता है। उसने द्वार खटखटाया। रमेश को लगा कि मेरे पिताजी आ गए हैं। जेलर ने रमेश की माता से सारी बात खोलकर कही कि रमेश के लिए सफरजन लेने जाते उनकी यह दशा हुई है। यह सुनते ही माता-पुत्र दोनों धड़ाम से धरती पर गिर पड़े। फिर वे दोनों जेलर के साथ वहाँ आए। जेल के सलाखों के पीछे बैठे हुए पति को देखकर पत्नी और रमेश फफक-फफक कर रोने लगे। "अरेरे ! पिताजी ! मेरे लिए सफरजन लेने जाते हुए आपको जेल में जाना पड़ा।" यों रमेश हृदयद्रावक विलाप करने लगा। अन्त में, तीन दिवस के करुण कल्पान्त के अन्त में, यथार्थ प्रमाण प्राप्त करके रमेश के पिता को कारागार से मुक्त किया

'धर्मलाभ !' यह मात्र एक ही अवाज आती है।" इस पर राजा श्रेणिक मन में सोचा कि साधु के सिवाय और कोई 'धर्मलाभ' शब्द नहीं कहता। अतः क्या माजरा है ? मैं स्वयं वहाँ जाऊँ। श्रेणिक महाराजा तुरंत वहाँ से उठकर सोनी के घर पहुँचे और कहा - "दरवाजा खोलो।" तब अंदर से सोनी बोला - "धर्मलाभ।" श्रेणिक ने कहा - "मैं श्रेणिकराजा हूँ।" अतः सोनी ने तुरंत दरवाजा खोला। राजा घर के भीतर गए, देखा तो - सुनार साधु के वेश में बैठा है।

मुनि का शव देखते ही श्रेणिकराजा का हृदय रो पड़ा : एक ओर सोने के जौ पड़े हैं, और दूसरी ओर मैतार्यमुनि का शव पड़ा है। राजा ने सोनी से पूछा - "यह सब क्या है ?" सोनी बोला - "गुम हुए जौ के लिए मुझे साधुजी पर वहम हुआ। पूछा तो वे कुछ बोले नहीं। फलतः मैंने उन्हें मार डाला।" यह सुनकर राजा सोचते हैं - 'एक ओर मैतार्य (मुनि) मेरे (गृहस्थ पक्ष) दामाद हैं तथा संत हैं। दूसरी ओर मुझे साधु-मात्र के प्रति प्रेम (आदर) है, यों समझकर इस सुनार ने साधु का वेष पहना है। परन्तु अब इसे छटकने नहीं दूंगा।'

श्रेणिकराजा ने बनावटी साधु को ललकारा : वह बोले - "अरे ढोंगी ! मृत्यु के भय से तूने साधुवेश पहन लिया है। साधुवेश में होने के कारण मैं तुझे कोई सजा नहीं देता। इस समय तुझे जीवित जाने देता हूँ। परन्तु यदि तूने अब साधुवेश छोड़ा तो तुझे कड़कड़ाती तेल की कड़ाही में तल डालूंगा।" राजा श्रेणिक ने सुनार को झूठा वैरागी समझा था। इसलिए ये उद्‌गार निकाले। किन्तु सच्चे वैरागी को वह ऐसे शब्द नहीं कहते। सच्चे वैरागी को देखते ही उनका हृदय हर्षित हो उठता है और उसके चरणों में मस्तक झुक जाता है।

जीव को तीन प्रकार से वैराग्य उत्पन्न होता है - ज्ञान से, दुःख से और मोह से। वैराग्य का अर्थ - विषयों और कषायों से विरक्ति-अरुचि। फिर वह अरुचि तीन प्रकार से होती है। यदि वह अरुचि ज्ञान से हुई हो तो वह ज्ञानगर्भित वैराग्य कहलाता है। दुःख के कारण विरक्ति उत्पन्न हुई हो तो उसे दुःखगर्भित वैराग्य कहा जाता है और जिसे मोह के कारण विरक्ति उत्पन्न हो तो उसे मोहगर्भित वैराग्य कहा जाता है। जिसे जीव और कर्म, दानों के प्रति श्रद्धा है तथा जिसे ऐसी समझ है कि कर्म से यह जीव बंधा हुआ है। संसार कर्मबन्धन के कारण है। अतः अगर मैं संसार (जन्म-मरणादि रूप) से छूटूं तो नये कर्मबंधन से रुक जाएँ और तपश्चरण द्वारा पुराने (पूर्वकृत) कर्मों का क्षय हो जाएँ। ऐसी भावना से जो संसार के प्रति घृणा-अरुचि की दृष्टि से देखता है, उसका वह वैराग्य ज्ञानगर्भित कहलाता है। आज कोई सामान्य स्थिति का व्यक्ति दीक्षा लेता है तो लोग (प्रायः) कहते है - 'इसे (जीवन में) दुःख था, इसलिए इसने दीक्षा ग्रहण कर ली। अतः इसका यह वैराग्य दुःखगर्भित है। मगर ऐसा कहनेवाले को यह पता नहीं है कि वास्तव में दुःखगर्भित किसे कहा जाता है ? ज्ञानी कहते हैं - "जैसे किसी महिला

गया । रमेश अपने पिता से लिपटकर बोला - "पिताजी ! मेरे पाप से आपको जेल में जाना पड़ा । अब मैं कभी सफरजन नहीं मांगूंगा ।" अपने पिता की ऐसी स्थिति देखकर बालक का हृदय-परिवर्तन हो गया ।

बन्धुओं ! एक बालक भी दुःख देखकर सफरजन छोड़ देता है । बोलो ! तुमने संसार में कितने दुःख देखे ? फिर भी सफरजनरूपी संसार का मोह छोड़ने का विचार होता है क्या ?

संक्षेप में, समय काफी हो गया है । आज आषाढ़ी चौमासी पक्खी का पवित्र दिवस है । जैसे वर्षा होते ही धरती हरीभरी हो जाती है, वैसे आप भी अपना जीवन दान-शील-तप-भाव की, एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करके हराभरा बनाएँ । पुण्य के प्रभाव से तुम्हें धन-सम्पत्ति मिली हो तो परिग्रह पर से ममत्व का त्याग करके दीन-हीन-दुःखी एवं अभावपीड़ितों की सेवा करना । साथ ही रात्रिभोजन का त्याग, नाटक-सिनेमा-टी.वी. का तथा होटल के गंदे खान-पान का त्याग करना, सत्कार्यों में अपने धन का सद्व्यय करना । चातुर्मास काल में जितना अधिक हो सके, उतना अधिकाधिक धर्माराधना का लाभ लेना । व्याख्यान में जितना समय मिले उतना धर्मश्रवण का लाभ लेना । सामायिक, प्रतिक्रमण, त्याग, प्रत्याख्यान, साधु-साध्वियों की सेवा, सार्धमिक भक्ति आदि करना । ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता । 'आचारंग सूत्र' में उक्त कछुए को पुनः सूर्यदर्शन नहीं हुआ, वैसे ही आप भी अवसर चूके तो संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा । अतः जागृत, अप्रमत्त एवं सावधान रहकर समय का सदुपयोग अधिकाधिक जप, तप, धर्माराधना, मौन, संयम आदि में करो । विशेष भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ८

आषाढ़ वदी १, सोमवार | ता. १२-७-७६

स्व-भाव में डटो, विभाव से हटो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आगम के व्याख्याता, विश्वविख्यात और परमतत्त्व के प्रणेता ऐसे विश्ववन्दनीय परम पिता प्रभु के मुख में से निकली हुई शाश्वतवाणी, जिसका नाम सिद्धान्त है । (तीर्थंकर-प्रतिपादित) 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' के आठवें अध्ययन में अलौकिक भाव भरे हुए हैं । चार ज्ञान और चतुर्दशपूर्व (शास्त्र) के ज्ञाता पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी अपने विनयवान शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं - "उस काल और उस समय में सलिलावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन थी ।"

का इकलौता जवान पुत्र गुजर जाय; उस वक्त, उसकी माँ को खाने-पीने, पहनने-ओढने या चलने- फिरने में जरा भी मन नहीं होता, इन सबसे विरक्ति हो जाती है, यह हुआ वैराग्य।" यह कौन-सा वैराग्य है ? उसका पुत्र मर गया, उसके दुःख से यह उत्पन्न हुआ है ! इसी प्रकार किसी युवती का पति अकस्मात् चल बसता है तो उसका मन भी संसार पर से उठ जाता है। ऐसा वैराग्य दुःखगर्भित वैराग्य कहलाता है। पहले भले ही वह वैराग्य दुःखगर्भित या मोहगर्भित हो, किन्तु बाद में वह जीव (तात्त्विक दृष्टि से) समझ के घर में आ जाता है, तब वह वैराग्य ज्ञानगर्भित हो जाता है।

मौत सामने देखकर नकली साधु में से असली साधु बन गया : सोनी का वैराग्य भय-जनित था। उसने सोचा था - 'भय से मुक्त हो जाने पर वेष छोड़ दूंगा।' परन्तु श्रेणिकराजा की ललकार से वह सच्चा साधु बन गया। श्रेणिकराजा ने उसे जिंदा छोड़ दिया। उस समय श्रेणिकराजा को भी बहुत सहन करना पड़ा है। लोग कहने लगे - "ओहो ! एक पवित्र मुनि की जो हत्या करके साधु का ढोंग करके बैठा है, उसे यों जीवित छोड़ा जा सकता है ?" प्रजा राजा पर टूट पड़ी। मैतार्यमुनि राजा के दामाद थे। उनकी इस प्रकार हत्या करनेवाले व्यक्ति को जीवित छोड़ देने से पुत्री तथा उनके कुटुम्बीजन राजा पर टूट पड़े। परन्तु सम्यक्त्वी जीव धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा के कारण जगत् की, राजनीति की, कुटुम्ब की या पुत्र-पुत्री आदि किसी की भी परवाह नहीं करता। ऐसी परिस्थिति कब आती है ? यद्यपि राजा ने उसे ढोंगी समझकर दरगुजर नहीं किया, अपितु कठोर शब्दों में उसे कह दिया था - 'यदि तूने साधुत्व का त्याग कर दिया तो कड़कड़ाते तेल की कड़ाही में तल डालूंगा।' संक्षेप में जिसे सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, वह कुटुम्ब -स्नेह और राजनीति आदि सबका त्याग कर सकता है और ऐसा निष्पक्ष न्याय पर दृढ़ रह सकता है। ऐसा सम्यक्त्वी आत्मा होता है, वह अन्तरात्मा बन सकता है। ऐसा अन्तरात्मा आगे बढ़ता-बढ़ता अन्त में कर्मों के बन्धन तोड़कर परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेता है। श्रेणिकराजा ने (साधुवेष पहने हुए) सुनार को जीवित छोड़ दिया, उसका मुख्य कारण साधुपन था, साथ ही साधुपन कायम रखने की शर्त भी थी।

'ज्ञाता धर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का प्रसंग चल रहा था कि सलिलावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी थी। वह नगरी कितनी लम्बी चौड़ी थी ? यह बात भी पहले कही जा चुकी है। वह नगरी देवलोक-सरीखी थी। देवलोक के देव जैसे सुखी होते हैं, वैसे ही वीतशोका नगरी के लोग देवों के समान सुखोपभोग करते थे। वर्तमान समय की तरह, वहाँ सरकार का कोई त्रास नहीं था। उस नगरी में कोई दुःखी मनुष्य दिखाई नहीं देता था। उस समय राजा उदार और विशाल हृदय होते थे। अपनी प्रजा कैसे सुखी रहे, वे यह देखना चाहते थे। वे (राजा) प्रजा के सुख में सुखी और प्रजा के दुःख में दुःखी होते थे। विक्रमराजा के राज्य में ऐसा कानून था कि कोई नया मनुष्य वहाँ रहने (वसने) के लिए आता, उसे प्रजा में से प्रत्येक व्यक्ति एक-एक स्वर्ण-मोहर और एक-एक ईंट दे। इस कारण उस नगरी की जनता में कोई दुःखी दिखाई नहीं

नगरी की महत्ता राजा को आभारी है। राजा अगर न्याय-नीतिमान, प्रामाणिक और जागृत होता है तो उसके द्वारा शासित नगरी भी आबाद रहती है। भगवान् ने (आध्यात्मिक दृष्टि से) कहा - "हमारी देह भी एक नगरी है। देहरूपी नगरी का राजा आत्मा (चेतनदेव) है। नगरी का (यह) राजा अगर भान भूलता है तो (वह) नगरी खैदान-मैदान हो जाती है। उसी प्रकार यदि यह चेतनराजा भान भूले तो देह नगरी भी खैदान-मैदान हो जाती है।

आत्मा अपने स्व-भाव में कैसा है ? कैसे रहे ? : ज्ञानीजन कहते हैं - "अगर आत्मा स्व-भाव में स्थिर रहे तो इस संसारसागर को पार करने में देर नहीं लगती।" आत्मा का वास्तविक मूल्य उसके शुद्ध स्वभाव में है। यदि आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव में स्थिर न रहे (छोड़ दे) तो उसकी कुछ भी कीमत नहीं है। जैसे शक्कर में मिठास हो तो उसकी कीमत है। अगर शक्कर में से मिठास निकल जाए तो शक्कर की कोई कीमत नहीं होती। शक्कर में से मिठास कभी अलग नहीं होता, क्योंकि मिठास शक्कर का गुण है। *यह तो एक रूपक है, केवल समझने के लिए। शक्कर की बोरियाँ भरी हुई* हों, परन्तु उनमें मिठास न हो और तुम्हें वे बोरियाँ कोई मुफ्त में भी दे तो ले लोगे क्या ? नहीं लोगे। उसी प्रकार आत्मा का स्व-भाव ज्ञान-दर्शनमय है, वह उससे अलग नहीं होता। चाहे जितना लम्बाकाल व्यतीत हो गया, या हो जाएगा; फिर भी आत्मा का स्व-भाव आत्मा में भी रहता है, रहेगा। परन्तु वर्तमान स्थिति में अपने स्वभाव के सरोवर को भूलकर विभाव के प्रवाह में बह रहा है -

स्व-भावनुं सरोवर भूलीने, विभाव वहेणे तणायो (२)
मोती नहिं ओ भूल्यो हंसा, गोबर कां न जणायो (२)
दोडी दोडी ने दोड्यो तोये, क्षीर नहि पामनारो रे....
एक जाग्यो न आतम तारो, तो निष्फल छे जन्मारो।
अनन्तशक्तिनो स्वामी थईने, बनी गयो बिचारो रे॥ एक जाग्यो ना...

अपना आत्मा अनन्तशक्ति का अधिपति है, परन्तु आज वह अनन्तशक्ति का धनी आत्मा गोबर में गोते खा रहा है। (यों तो) आत्मा महान् वैभावशाली है। अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शन का गुणपुंज है। ज्ञान-दर्शन आत्मा के असाधारण गुण हैं। जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ ज्ञान और दर्शन है और जहाँ-जहाँ ज्ञान और दर्शन है, वहाँ-वहाँ आत्मा है। निगोद के जीव में भी अक्षर के अनन्त भाग ज्ञान का नित्य उघाड़ (खुला) रहता है। ज्ञानादि गुण आत्मा के सिवाय अन्य किसी पदार्थ में नहीं रहते। आत्मा चेतन (चैतन्य गुणात्मक) है। उसके सिवाय तमाम (चेतनेतर) वस्तुएँ जड़ हैं। वस्तुतः जड़ के संयोग के कारण आत्मा वर्तमान में अपने स्वभाव को भूल गया है। इसी कारण वह चौरासी लाख जीवयोनियों में भटक रहा है; तथैव नरक-निगोद आदि चारों गतियों में कर्मानुसार उसने भ्रमण किया है।

बन्धुओं ! इस मानवभव में हमें ऐसा अमूल्य अवसर मिला है कि हम अपने स्व-भाव को सम्पूर्ण रूप से प्रकट कर सकते हैं। अतः वर्तमानकाल अपने लिए बहुत ही

देता था । उस समय के राजा उदार और विशाल दिल के होते थे । एक-एक स्वर्णमोहर से उसका व्यवसाय चल पड़ता और प्रत्येक घर की एक-एक ईंट से उसका मकान बन जाता । आज (किसी नगर में) एक नया मनुष्य रहने (बसने) हेतु आए, तो उसे प्रायः लूटने की ही वृत्ति है । इस कारण बेचारा वह मनुष्य ऊँचा कहाँ से आए ? जिनकी वृत्ति दूसरों को देने की होती है, वह दैवी वृत्ति कहलाती है । ऐसे मनुष्य मनुष्य के रूप में देव है । इसके विपरीत जिनकी वृत्ति दूसरों से छीनने - शोषण करने की है, वह राक्षसी वृत्ति है । ऐसे मनुष्य मनुष्य रूप में राक्षस जैसे हैं ।

इस (उक्त) नगरी का नाम वीतशोका था । इसलिए इसमें शोक का तो नामोनिशान नहीं था । सभी मानव आनन्द में रहते थे । नगरी में एक उद्यान था, वह कैसा था ? नगरी का राजा कौन था, कैसा था ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ९

आषाढ़ वदी २, मंगलवार ता. १३-७-७६

जीवन की सार्थकता : संयम से

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि, त्रैलोक-प्रकाशक शासन-सम्राट, वीर प्रभु की शाश्वतीवाणी, उसका नाम सिद्धान्त-वचन । 'ज्ञाता धर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है । इस अध्ययन में मल्लिनाथ भगवान् का अधिकार है । परन्तु वह भगवती कहाँ जन्मी थीं ? उस नगरी का नाम क्या था ? वह नगरी कैसी पवित्र थी । इत्यादि पूर्व भूमिका का वर्णन करना चाहिए । सलिलावती नामक विजय में वीतशोका नाम की पवित्र नगरी थी । वह नगरी प्रत्यक्ष देवलोक-सरीखी थी । देवलोक-सरीखी का मतलब है - वहाँ देवलोक नहीं था, परन्तु देवलोक की उपमा दी है । तुम कोई चीज किसी चीज जैसी हो तो उसकी उपमा देते हो न ? तुम छाछ पी रहे हो और वह छाछ मीठी हो तो, तुम कह देते हो, यह छाछ दूध जैसी है । तो क्या वह छाछ दूध बन जाती है ? अथवा यह गुड़ शक्कर जैसा है ? तो क्या गुड़ शक्कर बन जाता है ? नहीं । किसी वस्तु में अमुक अंश में समानता हो तो उपमा दी जाती है । इसी प्रकार वीतशोका नगरी के प्रजाजन देवलोक के समान सुखी थे । नगरी किससे सुशोभित होती है ? देखिए लोकवाणी -

अच्छा और उपयोगी है। ऐसा अमूल्य समय पुनः-पुनः नहीं मिलेगा। परमात्म पद को प्राप्त करने का परवाना यहीं (इसी भव) से मिलता है।

(आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से) तीन प्रकार का आत्मा : ज्ञानीपुरुषों ने तीन प्रकार का आत्मा बताया है - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। आत्मा स्वरूप की दृष्टि से तो एक है, (एगे आया)। परन्तु जैसे पानी स्वरूप की दृष्टि से एक है, किन्तु पृथक्-पृथक् रंग (रंगवाली मिट्टी) में मिला हुआ (मिश्रित) पानी अलग-अलग रंग का दिखाई देता है। कोई पानी में लाल रंग डालता है, तो पानी लाल रंग का हो जाता है। कोई पानी में नीला रंग डालता है, तो वह पानी नीले रंग का दिखाई देगा, वैसे ही उसमें हरा रंग डालो तो वह हरे रंग का दिखाई देगा। इस प्रकार अलग-अलग रंग में मिला हुआ पानी अलग-अलग रूप में दिखाई देता है। परन्तु पानी के स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। अन्तर सिर्फ अलग-अलग रंगमिश्रित होने का है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के आत्मा के आत्मपन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। जैसा बहिरात्मा है, वैसा ही अन्तरात्मा है और वैसा ही परमात्मा का आत्मा है। उन तीनों में कोई अन्तर नहीं है (निश्चय दृष्टि से या स्वरूप दृष्टि से) इनमें अन्तर (फर्क) है तो सिर्फ साथ की उपाधि का है। वस्तुतः पानी के साथ अलग-अलग कलर मिल जाने से वह पानी अलग-अलग रूप का प्रतीत होता है। उसी प्रकार इन तीनों प्रकार के आत्मा में आत्मस्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। फर्क है तो सिर्फ उपाधि का है। उपाधि कौन-सी ? मिथ्यात्व, राग-द्वेष, मोह, कषाय इत्यादि उपाधि के कारण आत्मा उपाधि में पड़ा हुआ है। जो आत्मा इस प्रकार की उपाधि में अटक जाता है, फंस जाता है, आकुलताग्रस्त हो जाता है, उसका नाम बहिरात्मा है। जैसे कोई व्यक्ति नाटक में राजा का पार्ट अदा करता है और अपने आपको राजा मान लेता है, उसी प्रकार कर्मो के वश होकर आत्मा एक भव में ही पृथक्-पृथक् अवस्थाओं का उपभोग करता है। कभी धनवान् बनता है, तो कभी निर्धन, तथैव कभी राजा बनता है, तो कभी प्रजा। प्राणी जन्म लेता है तब बालक होता है, फिर (क्रमशः) युवक और वृद्ध होता है। इन सब स्थितियों को यदि आत्मा की मूल स्थिति मान लेना है तो वह बहिरात्मा और मिथ्यात्वी (मिथ्या दृष्टि) है, क्योंकि बचपन, जवानी और बुढ़ापा, ये सब पर्यायें (अवस्थाएँ) हैं। जो जीव सम्यक्त्वरत्न (सम्यग्दर्शन या सम्यग्दृष्टि) को प्राप्त कर लेता है, उसका बहिरात्मभाव छूट जाता है (और उसमें अन्तरात्म-भाव आ जाता है।) आप विचार करें कि मैं बहिरात्मा हूँ या अन्तरात्मा ? इस संसार की किसी भी क्रिया (प्रवृत्ति) में जीव अहंपन (मैं और मेरेपन-अहंत्व-ममत्व) का अभिमान करे तो उस समय अन्तरात्मपन कहाँ रहा ?

जीवन में चाहे जितनी मुसीबतें, आफतें या कष्ट आयें, फिर भी जो जीव अपने आत्म-स्वरूप को नहीं छोड़ता तथा यह जानता है कि कर्मराजा की आज्ञानुसार यह जीव अलग-अलग नाटक करता है; ऐसा जो जानता और समझता है, वह अन्तरात्मा दृष्टिवाला होता है। उसे अनुकूलता में हर्ष और प्रतिकूलता में शोक (अफसोस) नहीं होता। वह उपाधि

नगरी सोहंती जल-वृक्ष-नगा; राजा सोहंता चतुरंगी सेना ।
नारी सोहंती पर-पुरुष-त्यागी; साधु सोहंता निरवद्य वाणी ॥

अर्थात् - जिस नगरी में बहुत-से बाग-बगीचें हों, जहाँ बावड़ी, कुआ और नदी हो; तथा पर्वत हो; आम, इमली, नीम, आदि अनेक प्रकार के वृक्ष हों, दूसरे गाँव से आनेवाले यात्रियों को ठहरने के लिए धर्मशाला हो, अनेक प्रकार के फल-फूल हों, जगह-जगह विश्राम के स्थान हों, यह सब नगरी का सौन्दर्य है । जिस नगरी में कुआँ, बाग, बावडी, धर्मशाला, उपाश्रय आदि कुछ भी नहीं होते, तो वह नगरी शोभायमान नहीं होती, वीत शोका नगरी अत्यन्त सौन्दर्यवती थी, सुशोभित थी । आगे कहा है -

'तीसेणं वीतसोगाए रायहाणीए उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए इद कुंभे नामं उज्जाणे ।'

उस वीतशोका नामक राजधानी (नगरी) के उत्तरपश्चिम दिशा (ईशान कोण) में इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था । वह उद्यान बहुत ही रमणीय और मनोहर था । आजकल बगीचा कहते हैं, उस समय में उद्यान कहते थे । बगीचे में वृक्ष होते हैं और जंगल में भी वृक्ष होते हैं, फिर बगीचे और जंगल में क्या अन्तर है ? बगीचे में वृक्ष व्यवस्थित और कलात्मक ढंग से लगाये हुए होते हैं । माली बगीचे के अमुक-अमुक भाग में फूल झाड़, अमुक विभाग में लताओं वगैरह के पौधें को रोपता है, तथा अमुक हिस्से में बेल को रोपकर उसे सुशोभित करता है । मेंहदी के पौधे लगाकर उनके बड़े होने पर उन्हें व्यवस्थित ढंग से काट-छांटकर व अनेक प्रकार की आकृतियाँ बनाकर बगीचे की शोभा बढ़ाता है । साथ ही पानी के हौज बनाकर उसमें फव्वारा लगाता है । लताओं का मंडप बनाता है । बैठने के लिए बेंचें स्थान-स्थान पर रखाता है । इस प्रकार माली बगीचे का वातावरण एकदम आनन्दप्रद बनाता है । ऐसे बगीचे में थका हुआ मानव दो घड़ी बैठे तो उसकी थकान उतर जाती है ।

बन्धुओं ! यह तो हुई तुम्हारे शरीर की थकान उतारनेवाले बगीचे की बात । परन्तु तुम्हारी जीवनरूपी बाग कैसा है ? उसका विचार करना । बगीचे में सब चीजें यथास्थान व्यवस्थित हों तो वह बगीचा सबको अच्छा लगता है । लकड़ी के टुकड़े में से सुथार (बढई) सुन्दर फर्निचर बनाता है, वह सबको अच्छा लगता है । माली पुष्पों को तोड़कर सुन्दर फूलदानी में सजाता है और वह फूलदानी तुम्हारे दीवानखाने में कितना शोभा पाता है ? इसी प्रकार अपने जीवन में निहित शक्तियों को एकत्र करके जीवन का सुन्दर निर्माण करना है । उक्त बगीचा तो शरीर की थकान उतारेगा, किन्तु अनन्तकाल से यह आत्मा कई भवों में भटककर थक गया है । उसकी थकान उतारने के लिए किस बगीचे में जाना पड़ेगा ? यह जानते हो क्या ? 'उत्तराध्ययन सूत्र' में सुन्दर समाधान दिया है -

धम्मा रामे चरे भिक्खू, धिईमं धम्म-सारही ।
धम्मा रामे रए दंते, बंभेचेर-समाहिए ॥

– उत्तराध्ययन सू., अ.-१६, गाथा-१५

में अकुलाता और मुर्झाता नहीं । अपितु यों मानता है कि मेरे द्वारा किये हुए कर्मों को मैं भोगता हूँ, उसे अन्तरात्मा कहते हैं । ऐसे अन्तरात्मा के सिर पर चाहे जैसा धर्मसंकट आए, वह वीतराग-वचनों के प्रति श्रद्धा को नहीं छोड़ता । अन्तरात्मा रत्नत्रयी को बाधा नहीं आने देता । श्रेणिकराजा, कृष्ण वासुदेव आदि सब अविरति सम्यग्दृष्टि थे । फिर भी वे जब-जब भगवान् की वाणी सुनने जाते, दर्शन करने जाते, तब-तब भगवान् और भगवान के संतों को देखकर उनकी आँखों में आंसू आ जाते । अहो प्रभो ! हम आरम्भ से आसक्त और विषयासक्त के भँवर में बह रहे हैं । कुटुम्ब के दलदल में गले तक फंसे हुए हैं । हम जैसे पामरों का कब और कैसे उद्धार होगा ? हम अविरति का बन्धन तोड़कर विरति की वरमाला कब पहनेंगे ? धन्य है, इन छोटे-छोटे श्रमणों को, जिन्होंने यौवन के सोपान पर पैर रखते ही संसार छोड़ दिया । जिन्होंने विषयों का वमन कर दिया, इन्हें हमारे त्रिकाल नमन हैं ।

बन्धुओं ! देखो, ये जीव संसार में गले तक फंसे हुए थे, फिर भी उनके अन्तरात्म दृष्टि के द्वार कैसे खुल गये थे ? अविरति सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत-प्रत्याख्यान नहीं कर सकता । वे कषायों से रहित भी नहीं बन पाते, आरम्भ के घर में बैठे हैं, फिर भी उनका लक्ष्य देव, गुरु और धर्म इन आराध्य तत्त्वों की ओर होता है । जैसे – कोई मनुष्य सच्चे मोतियों की पोटली साथ में लेकर भोजन करने बैठा हो, तब भले ही वह भोजन करता हो, मगर उसका लक्ष्य तो वहीं (मोतियों की पोटली की रक्षा में) होता है । उस समय वह खाने में रसों को नहीं चखता हो, ऐसा नहीं होता । वह खट्टा, मीठा, कड़वा आदि रस जिस रूप में होते हैं, उन्हें उसी रूप में मानते हैं, किन्तु उस मोतियों की पोटली रूप लक्ष्य चूकता नहीं । क्या उसे सच्चे मोतियों की पोटली की रक्षा करने में उपेक्षा हो सकती है ? 'नहीं ।' उसी प्रकार दुनियादारी में प्रवर्तमान मानव भले राज्य-संचालन करता हो, तथापि देव, गुरु और धर्म की रक्षा के लिए राज्य जाता हो, तो भले ही जाए, कुटुम्ब विरोध करे तो भले ही करे, परन्तु मोती की पोटली की तरह देव, गुरु और धर्म, इन तीन तत्त्वों को कदापि बाधा नहीं आने दे । श्रेणिकराजा को देव, गुरु और धर्म के प्रति कैसी प्रीति थी, इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है –

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा : हमारे जैनशासन में मैतार्य नामक एक मुनि हो गए हैं । यह तो आप जानते हैं न ! ये मैतार्यमुनि गृहस्थाश्रम में थे, तब श्रेणिकराजा ने अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया । इसलिए मैतार्यमुनि श्रेणिकराजा के दामाद थे । वह मुनि मैतार्य एक दिन एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा के लिए पधारे ।

मासखमणने पारणे पधार्या देखी, सोनीने भाव उभराया ।
जवला घडता त्यां उठीने आवे, भाव-सहित मोदक वहोरावे ॥
धन्य भाग्य फल्या, पुनीत आंगण थया ।
आव्या तथारूप अणगार रे....क्षमाभाव धरी...

भिक्षाजीवी वीतरागपथिक श्रमण धर्मरूपी बगीचे में विचरण करे । धर्मरूप बाग में रमण करनेवाले धर्म-रथ के सारथी, धैर्यवान्, इन्द्रियों का दमन करनेवाले, समाधि-धारक साधु सदैव धर्मरूपी बगीचे में विचरण करे । ऐसा उत्कृष्ट वीतराग-प्ररूपित (आत्मा) धर्मरूपी बगीचा है । इसी बगीचे में सैर करने के लिए तुम आआगे तो तुम्हारे जीवन का निर्माण इतना सुन्दर होगा कि तुम्हें आत्मभाव में स्थिर रहने/होने का मन हो जाएगा । फिर किसी की निन्दा-चुगली करने का, या किसी के दुर्गुण देखने का तुम्हें मन ही नहीं होगा । क्योंकि आत्मा सीधे मार्ग पर आ गया है, वह (ऐसा आत्मा) सर्वत्र गुण ही देखता है, दुःख में से सुख खोजता है, जबकि उलटे रास्ते पर चढ़ा हुआ आत्मा गुण में से भी अवगुण देखता/ढूंढता फिरता है ।

एक बार एक किसान कुंए के कांठे पर कोश द्वारा पानी निकालकर अपने बैल को पानी पिलाकर थोड़ी देर विश्राम लेने के लिए बैठा था । उसके साथ उसका जवान बेटा भी बैठा था । उस समय एक मनुष्य हाँफता-हाँफता दौड़कर वहाँ आया । वह उस किसान से कहता है - "भाई ! मैं बहुत ही प्यासा हूँ, मुझे पानी पिलाओ न !" किसान ने उसे पानी पिलाया । अतः वह मनुष्य पूछता है - "भाई ! तुम्हारा गाँव कैसा है ?" तब किसान कहता है - "तुम किस आशय से पूछ रहे हो और इतने उतावले होकर कहाँ जा रहे हो ?" आगन्तुक मनुष्य कहता है - "भाई ! क्या बात कहूँ ? मेरे गाँव में एक भी मनुष्य अच्छा नहीं है । सारे गाँव के मनुष्य खराब हैं । इसलिए उनका संग छोड़कर मैं भाग आया हूँ । इसी कारण पूछता हूँ कि तुम्हारा गाँव कैसा है ? यदि अच्छा हो तो रहने के लिए पूछता हूँ ।" यह सुनकर किसान कहता है - "भाई ! हमारा गाँव तुम्हारे गाँव से भी अधिक बुरा है । अरे भाई ! यह गाँव तुम्हे पसंद नहीं आएगा ।" यह सुनकर वह उठकर चल दिया । किन्तु पिता के ऐसे जवाब से पास में बैठे हुए जवान लड़के का रक्त उबल पड़ा । 'अहो ! मेरे पिताजी कैसे हैं ? हमारा गाँव कितना पवित्र है । गाँव में कोई चोर नहीं है, व्यभिचारी नहीं है । कोई किसी की निन्दा नहीं करता, कोई ठगी या धूर्तता नहीं करता, कोई जुआरी नहीं है, कोई शराब नहीं पीता, सभी एक-दूसरे के साथ भाई-भाई की तरह हिल-मिलकर रहते हैं । फिर भी क्यों ये गाँव के ऐसे अवगुण बोलते हैं ? मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि दरांती लाकर बाप को मार डालूं !' इतने में तो एक दूसरा आदमी आया । उसने पीने के लिए पानी मांगा । उसकी तरह उसे भी किसान ने पानी पिलाया । पानी पिलाकर किसान ने पूछा - "भाई ! तुम कहाँ जा रहे हो ?" वह कहता है - "भाई ! हमारा गाँव बहुत पवित्र है । गाँव में कोई चोर नहीं है, गाँव में सभी सज्जन और सद्गुणी आत्मा रहते हैं । सारे गाँव में एकमात्र मैं ही अकेला क्रोधी हूँ, अपवित्र हूँ । यदि मैं वहाँ रहूँ तो दूसरे को मेरा संग (चेप) लगे, गाँव अपवित्र हो जाए, इसलिए मैं गाँव छोड़कर निकल गया हूँ । कहीं वन में जाकर रहूँगा ।" इस पर वह किसान बोला - "भाई ! तुम्हें जंगल में जाकर रहने की जरूरत नहीं है । तुम हमारे गाँव में सुखपूर्वक रहो ।"

मुनि को देखकर सुनार के हृदय में हर्ष उमड़ा – 'आज धन्य घड़ी, धन्य भाग्य है कि मेरे आंगन में ऐसे तथारूप मुनिवर के चरण पड़े हैं । आज मेरा आंगन पवित्र हो गया ।' उस समय सुनार श्रेणिकराजा के (घड़ने के लिए) सोने के जौ घड़ रहा था । श्रेणिकराजा मगधदेश के स्वामी थे । उनके सिर पर कितनी जिम्मेदारी थी, राज्य संचालन की ? फिर भी जब भगवान् (महावीर) या कोई भी श्रमण-श्रमणी पधारते, तब व्याख्यान-वाणी सुनने और उनके दर्शन करने का अवश्य लाभ लेते थे । उसमें एक दिन भी चूकते नहीं थे । क्या तुममें इतनी जिम्मेदारी है ? श्रेणिक नृप अनेक राज्यों का स्वामी था । तुम तो एक बंगले के भी पूरे धनी नहीं हो, फिर भी कहते हो कि क्या करें ? हमारे पास टाइम नहीं है । तुम्हे जरा-सी तकलीफ पड़ती है, धर्म को पहला धक्का मारते हो ! बिना कठिनाई के धर्म हो जाय तो तुम करने को तैयार होते हो ! तुम धर्म की कीमत कैसी और कितनी समझे हो, कहूँ क्या ? तुम्हारा संसार है, तुम्हारे उदर से जन्मा पुत्र और धर्म को सौतेले पुत्र के समान समझते हो । सौतेले पुत्र का पालन दुनियादारी व्यवहार की दृष्टि से करना पड़ता है, इस रीति से करते हो । वह भी प्रसंग न आए, वहाँ तक । उसका जरा-सा भी अपराध हो जाए तो बेचारे पर डंडे पड़े ! इस प्रकार तुम धर्म तो करते हो, पर जरा-सी मुश्किली आए तो तुरंत करते हो, धर्म का बहिष्कार ! बुखार आ जाए तो भी ऑफिस में जाना ही जाता है, परन्तु सामायिक नहीं होती है । संत-दर्शन या व्याख्यान-श्रवण करने नहीं आना होता ! मगर श्रेणिकराजा उपाधि के समय भी धर्म को धक्का नहीं मारते थे । ऐसी उनकी अटूट श्रद्धा थी, धर्म पर । अब हम मूल बात पर आएँ ।

मैतार्यमुनि पर सुनार के मन में उत्पन्न शंका : सुनार श्रेणिकराजा के दिये हुए सोने के जौ घड़ रहा था । जौ लगभग तैयार हो चुके थे । उस समय मैतार्यमुनि गोचरी के लिए पधारे । संत को देखते ही सुनार जौ को छोड़कर संत को आहार बहराने (देने) के लिए उन्हें रसोई घर में ले गया । उस समय एक क्रौंचपक्षी वहाँ आया और स्वर्ण के जौ को अनाज के दाने समझकर चर गया । सुनार मुनि को आहार बहराकर बाहर आया और वहाँ एक भी जौ न देखकर मुनि के प्रति उसने शंका की । उसने मुनि से कहा – "आपने मेरे सोने के जौ चुरा लिये हैं ! अगर जौ लिये हों तो मुझे जल्दी दे दो, क्योंकि राजा से मैंने समय पर जौ घड़कर देने का वादा किया है । अतः राजा का आदमी अभी जौ लेने के लिए आएगा तब मैं क्या जवाब दूंगा ?" यद्यपि मुनि ने वे जौ नहीं लिये थे, परन्तु क्रौंचपक्षी को जौ चुगते (चरते) देखा था । अतः वे बोले नहीं, क्योंकि जिस बात के कहने से किसी जीव की हिंसा होने की संभावना हो, ऐसी सावध भाषा मुनि नहीं बोलते । अतः इस समय पाप (हिंसादि) के डर से मुनि मौन रहे । तुम्हें किसी आदमी पर चोरी की शंका हो, उस समय तुम उसे पूछो, उस समय वह मौन रहे तो तुम यों मान बैठते हो कि इसने चोरी की है, इसलिए मौन बैठा है । चोरी की शंका के बाद का मौन, चोरी की स्वीकृति जैसा माना जाता है । (पूछने पर) मुनि मौन रहे, इस लिए सुनार के मन में यह बात जम गई कि मुनि ने अवश्य ही जौ लिये हैं, किन्तु मुझे वापस देते नहीं हैं । न जाने कहाँ रखे होंगे ?

वह लड़का मन ही मन सोचने लगा - 'पहले आया, वह अच्छा था, उसे मेरे पिताजी ने कहा - 'हमारा गाँव खराब है ।' यों कहकर उसे भेज दिया और यह व्यक्ति कहता है, 'मैं स्वयं खराब हूँ,' फिर भी उसे गाँव में रहने का ये आग्रह कर रहे हैं । यों क्यों करते हैं, पिताजी ?' अन्त में उसने पूछ ही लिया - "पिताजी ! आपने ऐसा क्यों किया ? मुझे तो आपके दिये हुए जवाब से आप पर क्रोध आता है ।" इस पर पिता कहता है - "बेटा ! सुन ! पहले जो आदमी आया था, वह बिलकुल नीच था । उसकी दृष्टि में सारे अवगुण भरे थे । इसी कारण गाँव के सभी मनुष्य उसे अवगुणी नजर आए । ऐसा दुर्गुणी मनुष्य अपने गाँव में रहता/बसता तो सारे गाँव को बिगाड़ डालता । जबकि यह दूसरा मनुष्य आया, वह अकेला सद्गुणी है, उसे सारे गाँव के मनुष्यों में सद्गुण ही नजर आए । अपने अंदर ही अवगुण दिखाई दिये । अतः यह मनुष्य पवित्र है । ऐसा सज्जन मनुष्य गाँव में रहे/बसे तो गाँव में सद्गुण बढ़ेगा । इस आशय से मैंने दोनों को पृथक्-पृथक् जवाब दिये ।"

बन्धुओं ! जो मनुष्य उलटे रास्ते पर चढ़ा हुआ था, उसे सभी दुर्जन ही नजर आए और जो सीधे रास्ते पर चढ़ा हुआ था, वह स्व-दोष का दर्शन करनेवाला था, उसे सभी सद्गुणी ही दिखाई दिये । इस प्रकार जिस आत्मा को पर (आत्म बाह्य पदार्थ) का संग लगा है, जो परायों के साथ प्रीति करता है, वह स्व-गृह को भूलकर पर की पंचायत में पड़ता है । परन्तु ज्ञानी कहते हैं - "पर के साथ प्रीति करनेवाला आत्मा अज्ञानी है । उसे पता नहीं है कि पराया पदार्थ कदापि अपना नहीं होता । स्व में जो सुख है, वह पर में नहीं है ।" देखो ! आपके संसार में भी नासमझ मनुष्य को पराये जितने अच्छे लगते हैं, उतने अपने अच्छे नहीं लगते ।

शरीर पड़ोसी जैसा है : छोटे बच्चों को घर के मनुष्य अत्यन्त प्रेम से रखते हैं । माता घर में उसे खाने की अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर देती हैं, फिर भी उसे बाहर से खाने की वस्तु लेकर खाना बहुत अच्छा लगता है । अगर पड़ोसी उसे एक मामूली चीज दे देता है, उसे बहुत ही अच्छी लगती है । यह तो छोटा बालक है, उसकी बात एक तरफ रखो ! मान लो, पुत्रवधू नई-नई शादी करके आई है, उसे उसकी सास, जेठानी, ननद और पति की अपेक्षा भी पड़ोसी बहुत ही प्रेम से बुलाते हैं । फिर भी घरवालों के साथ प्रेम से नहीं बोलती । उसे सास, ननद, जेठानी और पति की अपेक्षा भी पड़ोसी के साथ बहुत प्रीति हो गई है । इस कारण वह घर का कामकाज करती है, किन्तु बार-बार पड़ोसी के पास जाकर उनसे बात करती है, कहती है - "आप मेरे बहुत हितैषी हैं, आप मेरे सर्वस्व हैं । आप मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ।" ऐसे नासमझ मनुष्य को घरवालों की अपेक्षा पराये अच्छे लगते हैं । वह परायों के साथ प्रीति करती है । इसी प्रकार अपना चैतन्य स्वरूप आत्मा भी अज्ञानावस्था के कारण चैतन्य के साथ प्रीति न करके पुद्गल रूपी पड़ोसी के साथ प्रीति करता है ।

में अकुलाता और मुर्झाता नहीं । अपितु यों मानता है कि मेरे द्वारा किये हुए कर्मों को मैं भोगता हूँ, उसे अन्तरात्मा कहते हैं । ऐसे अन्तरात्मा के सिर पर चाहे जैसा धर्मसंकट आए, वह वीतराग-वचनों के प्रति श्रद्धा को नहीं छोड़ता । अन्तरात्मा रत्नत्रयी को बाधा नहीं आने देता । श्रेणिकराजा, कृष्ण वासुदेव आदि सब अविरति सम्यग्दृष्टि थे । फिर भी वे जब-जब भगवान् की वाणी सुनने जाते, दर्शन करने जाते, तब-तब भगवान् और भगवान के संतों को देखकर उनकी आँखों में आंसू आ जाते । अहो प्रभो ! हम आरम्भ से आसक्त और विषयासक्त के भँवर में बह रहे हैं । कुटुम्ब के दलदल में गले तक फंसे हुए हैं । हम जैसे पामरों का कब और कैसे उद्धार होगा ? हम अविरति का बन्धन तोड़कर विरति की वरमाला कब पहनेंगे ? धन्य है, इन छोटे-छोटे श्रमणों को, जिन्होंने यौवन के सोपान पर पैर रखते ही संसार छोड़ दिया । जिन्होंने विषयों का वमन कर दिया, इन्हें हमारे त्रिकाल नमन हैं ।

बन्धुओं ! देखो, ये जीव संसार में गले तक फंसे हुए थे, फिर भी उनके अन्तरात्म दृष्टि के द्वार कैसे खुल गये थे ? अविरति सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत-प्रत्याख्यान नहीं कर सकता । वे कषायों से रहित भी नहीं बन पाते, आरम्भ के घर में बैठे हैं, फिर भी उनका लक्ष्य देव, गुरु और धर्म इन आराध्य तत्त्वों की ओर होता है । जैसे - कोई मनुष्य सच्चे मोतियों की पोटली साथ में लेकर भोजन करने बैठा हो, तब भले ही वह भोजन करता हो, मगर उसका लक्ष्य तो वहीं (मोतियों की पोटली की रक्षा में) होता है । उस समय वह खाने में रसों को नहीं चखता हो, ऐसा नहीं होता । वह खट्टा, मीठा, कड़वा आदि रस जिस रूप में होते हैं, उन्हें उसी रूप में मानते हैं, किन्तु उस मोतियों की पोटली रूप लक्ष्य चूकता नहीं । क्या उसे सच्चे मोतियों की पोटली की रक्षा करने में उपेक्षा हो सकती है ? 'नहीं ।' उसी प्रकार दुनियादारी में प्रवर्तमान मानव भले राज्य-संचालन करता हो, तथापि देव, गुरु और धर्म की रक्षा के लिए राज्य जाता हो, तो भले ही जाए, कुटुम्ब विरोध करे तो भले ही करे, परन्तु मोती की पोटली की तरह देव, गुरु और धर्म, इन तीन तत्त्वों को कदापि बाधा नहीं आने दे । श्रेणिकराजा को देव, गुरु और धर्म के प्रति कैसी प्रीति थी, इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है -

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा : हमारे जैनशासन में मैतार्य नामक एक मुनि हो गए हैं । यह तो आप जानते हैं न ! ये मैतार्यमुनि गृहस्थाश्रम में थे, तब श्रेणिकराजा ने अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया । इसलिए मैतार्यमुनि श्रेणिकराजा के दामाद थे । वह मुनि मैतार्य एक दिन एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा के लिए पधारे ।

मासखमणने पारणे पधार्या देखी, सोनीने भाव उभराया ।
जवला घडता त्यां उठीने आवे, भाव-सहित मोदक वहोरावे ॥
धन्य भाग्य फल्या, पुनीत आंगण थया ।
आव्या तथारूप अणगार रे....क्षमाभाव धरी...

जैसे वह नई बहू पड़ोसी महिला को विश्रामस्थान मानती है, वैसे ही आत्मा भी देहरूपी पड़ोसी को विश्रामस्थान मान बैठा है। उक्त बहू को पुत्र हुआ। कुछ समय व्यतीत हुआ, उस पड़ोसिन के आंगन में शौच आदि करके वह लड़का गंदगी कर आता है। पानी ढोल देता है। तब देखो, वह पड़ोसिन कैसे झगड़ा करती है ? जो मन में आए, वह अंटसंट बोलती है। वह पडोसिन को सासु की अपेक्षा भी अधिक मानती थी, उस पड़ोसिन के पुत्र ने उसके ओटले पर पानी ढोल दिया। इस पर वह झगडा करने लगी। तब उस बहू को भान होता है कि घर के हैं, वे घर के हैं, पड़ोसी हैं, वे पड़ोसी! अब उसने घर के लोगों की कीमत समझी। अभी तक घर की कीमत समझी नहीं थी। छोटे-छोटे बच्चे माता-पिता के द्वारा इन्कार करने पर भी पड़ोसी के घर दौड़ जाते थे और वे ही बालक बड़े होने पर एक अंगुल जमीन के लिए पड़ोसी के साथ लकड़ी लेकर लड़ते हैं, क्योंकि अब वे समझदारी के घर में आ गए हैं। यह अपना घर है, यों वे समझने लगे हैं। वैसे ही यह आत्मा भी नासमझ दशा में हो, तब यह पुद्गल, धन, कुटुम्ब, इन्द्रियाँ और शरीर आदि को अपना मानकर उनके साथ प्रीति करता है। उस समय उसे ज्ञान नहीं होता कि इनके साथ प्रीति (आसक्ति) करके इस (आत्मा) के लिए पापकर्म का बंध करता हूँ, किन्तु उसका फल भोगने के लिए मुझे नरक, तिर्यंच आदि दुर्गतियों में जाना पड़ेगा। मगर जब यह आत्मा अपने शुद्ध चिदानंद स्वरूप को पहचान लेता है, तब उसे यों समझ में आ जाता है कि *यह शरीर पड़ोसी है। यह शरीर मैं (आत्मा) नहीं हूँ।* इसलिए मुझे (आत्मा को) इस (शरीर और शरीर सम्बद्ध वस्तुओं - परभावों) के साथ एकमेक (अभिन्न) होना नहीं है। अज्ञानी आत्मा शरीरमय बन जाता है। जैसे-लोहे को अग्नि में तपाया जाता है, तब वह अग्नि के साथ एक बन जाता है। वह एकदम लालसूर्ख बन जाता है, मानो वह अग्नि ही है। परन्तु अग्नि में से उस लोहे को बाहर निकालने के बाद यह पता लग जाता है कि वह लोहा है। वैसे ही आत्मा अज्ञान दशा में पुद्गल भाव में ऐसा जुड़ जाता है, एकमेक हो जाता है कि मैं शरीर हूँ और शरीर मैं हूँ। परन्तु समझ के घर में आता है, तब उसे यह मालूम हो जाता है कि मैं और शरीर भिन्न-भिन्न है। मेरा शरीर के साथ कोई लेना-देना नहीं है। कर्म के कारण मुझे शरीररूपी जेल में बंद होना पड़ा है। इसलिए शरीर के साथ पड़ोसी जैसा व्यवहार है। आत्मा अगर आनन्द में होता है, तो शरीर पर लालिमा दिखाई देती है और आत्मा जब चिन्ता में मग्न होता है, तब शरीर शुष्क एवं निस्तेज हो जाता है। अतः यह शरीर आत्मा का सज्जन पड़ोसी है, पड़ोसी जैसा व्यवहार रखनेवाला है। परन्तु यह व्यवहार कहाँ तक रखा जाता है ? घर को नुकसान न हो, वहाँ तक। पूर्वोक्त नई बहू को पड़ोसी के साथ जब आपत्ति होने लगी, तब उसकी शान ठिकाने आ गई कि स्व स्व है, पर पर है। वैसे ही आत्मा को समझ लेना चाहिए कि शरीर पड़ोसी है। पड़ोसी के रूप में व्यवहार करके रहने का मतलब उसके साथ तन्मय (एकमेक) बन जाना नहीं है।

स्वप्न साकार

'शारदा-शिखर' शारदा प्रवचन हिन्दी आवृत्ति

खंभात संप्रदाय के शासन शिरोमणि व्याख्यान वाचस्पति गुजरात सिंहनी बा. ब्र. पू. श्रीगुरुणी मैया श्री शारदाबाई महासतीजी की सुशिष्यारत्ना प्रखर व्याख्याता बा. ब्र. पू. श्री वसुबाई महासतीजी आदि ठा. २४ का मुंबई आगमन हुआ । उस समय हिन्दीभाषी धर्म-प्रेमीयों से बातचीत होने पर उनकी इच्छा सन्मुख आई कि (पू. शारदाबाई महासतीजी के ग्रन्थो की हिन्दीभाषी क्षेत्रों में बड़ी माँग है, परन्तु अब तक मात्र 'शारदा शिरोमणि' और 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', 'दीवादांडी' हिन्दी में प्रकाशित हुई है । अतः यदि उनकी नई पुस्तक **'शारदा-शिखर'** हिन्दी में अनुवादित करवा कर प्रकाशित करने के योजना बनाई जाये तो असंख्य हिन्दीभाषी को उनकी अमूल्य वाणी का लाभ मिल सकता है । ज्ञानप्रचार कि इस योजना को पू. महासतीजी के समक्ष रखते ही यह काम श्री मांगीलालजी नंगावत और नरेन्द्रभाई साड़ीवाला ने यह कार्य करने कि तैयारी बताई क्योंकि इससे पहले मांगीलालभाई और नानाभाई ने 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह का प्रकाशक बन कर अनुभव लिया हुआ था । उनके साथ रोशनलालजी कोठारी, नरेन्द्रभाई साड़ीवाला व बाबुलालजी सिंघवी ने भी अपना पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया । इन पाँचो भाईओं ने एक समिति का गठन किया और 'शारदा प्रवचन संग्रह समिति' नाम रखा और काम बराबर तेजी से होने लगा ।

हम आपको यह विदित करना चाहते है कि हमारा 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' का जो अनुभव था उस आधार पर उस वक्त कि जो भूले हुई उसको ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक के प्रकाशन में ऐसी कोई भूल न हो ऐसी कोशिश कि फिर भी मानव मात्र भूल के पात्र है । भूल होना स्वाभाविक है उसके लिए क्षमा चाहते है ।

हमे आनंद तो इस बात का है कि अगला पुस्तक 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', दीवादांडी, 'शारदा शिखर' जन जन तक पहुँचाया, साधु-साध्वीओं व छोटे गाँवों के उपाश्रय, साधनाभवन, स्वाध्यायी भाईओं को बिना शुल्क वितरण किया । आज काश्मीर से कन्याकुमारी तक की माँग है । हररोज़ पत्र आया करते है मगर हम उन सबकी माँग पूरी नहीं कर पा रहे है क्योंकि 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि' ६००० (छ हजार) प्रत छपवाई थी, जो पूरी हो गई इसके बाद शारदा रत्न, शारदा ज्योत, दीवादांडी, शारदा शिखर ३००० प्रत भी छपवाई जो बहुत बीक रही है, उसका कारण

शरीर पुलिस-दादा जैसा है : बन्धुओं ! यह शरीर प्रत्येक गति में बलवान् पड़ोसी है, क्योंकि जीव जिस-जिस गति में जाता है, वहाँ-वहाँ उसे तदनुरूप (तद्-योग्य) शरीर मिलता है। परन्तु (उसकी मृत्यु होने पर) यह शरीर उसके साथ नहीं आता, यह वहीं का वहीं रह जाता है। तुम जब रहने का स्थान (निवासस्थान) बदलते हो, तब तुम्हारे पुत्र-पत्नी वगैरह साथ में आते हैं। किन्तु पड़ोसी साथ में नहीं आता। इसी प्रकार शरीर क्या (मरने के बाद) किसी के साथ जाता है ? नहीं। वह यहीं रह जाता है। परलोक में यह शरीर पुलिस-दादा भी है। अनेक धनाढ्य लोग पुलिस को प्रतिवर्ष कुछ न कुछ दक्षिणा देते हैं। यह तो तुम भी जानते हो न ? इसका तो तुम्हें बराबर अनुभव है न ? पुलिस को दक्षिणा (भेंट-पूजा) देने में तुम्हें व्यापार में अथवा अन्य किसी बात में फायदा होता है क्या ? फायदा तो कुछ भी नहीं है, किन्तु उसे भेंट-पूजा न करे तो, वह हैरान करता है। पुलिस-दादा को तुमने बीस वर्ष तक भेंट-पूजा दी, परन्तु दो वर्ष नहीं दी तो वह हैरान-परेशान कर देता है; वैसे ही इस शरीररूपी पुलिस-दादा को २५-३०-४०-५० वर्ष तक तुमने पोसा, परन्तु लगातार चार दिनतक खाने को नहीं दिया तो यह निर्बल हो जाता है। फिर इतने वर्षों तक शरीर को सब प्रकार से पोसा, वह व्यर्थ गया। फिर यह गले पड़ने में देर नहीं लगाता। ऐसा यह पुलिस-दादा है। उसे तुम ५० वर्ष तक तीन-तीन टाइम थाली में खाना भरकर पोसते हो, फिर भी आपत्ति के समय अलग हो जाता है। जो धनाढ्य सावधान और विवेकी है, वह भेंट-पूजा देने से पहले इससे (तप, त्याग आदि के रूप में) बारह गुना काम निकलवा लेता है। वैसे ही इस पुद्गलरूपी पुलिस-दादा को तुम तीन-तीन टाइम पोसते हो तो उससे जो काम निकलवाना हो, वह निकलवा लेना। बोलो, इस (शरीर) से कौन-सा काम निकलवाना है ?

देवानुप्रियों ! यह उत्तम मानवभव मिला है। संसार आधि-व्याधि-उपाधि और विषय-कषायों का उकरड़ा (गंदकी का ढेर) है। उसमें हीराकणी के समान धर्म रहा हुआ है। यह शरीररूपी पुलिस-दादा बैठा-बैठा इतने वर्षों से (प्रतिदिन) तीन-टाइम (भोजनादि उपभोग रूप) भेंट-पूजा का उपभोग कर रहा है। अब उससे कहो कि इस उकरड़े में से धर्मरूपी हीराकणी को प्राप्त करने में मदद करे। यह (शरीररूपी) पुलिस-दादा सहयोग कर सकता है। फिर भी इसे उकरड़े में से हीरामणी प्राप्त करने की अकल नहीं आती। इसे विषय-कषाय का उकरड़ा उठाना बहुत अच्छा लगता है। भगवान् कहते हैं - "ऐसा दुर्लभ और उत्तम मानवभव मिलने पर भी अज्ञानी आत्माएँ धर्म का रसास्वाद ले नहीं सकती। उसका कारण है - पशुतुल्य वृत्ति। पशु को रत्नों के ढेर पर खड़े रखो तो वे रत्न के ढेर पर मलमूत्र करेंगे। उसमें से अन्न के कण बीनेंगे, किन्तु रत्न नहीं लेंगे। मुर्गा उकरड़े को बिखेर कर उसमें से जूठन के दाने खायेगा, पर हीराकणी आएगी तो उसे फेंक देगा। उसी प्रकार यह जीव महान् पुण्योदय से प्राप्त मानवभवरूपी रत्न के क्षेत्र में आया, परन्तु उस पशु की तरह विषय-कषायरूपी कणिका को देखता है। पशु में रत्न को पहचानने, लेने की या रत्न को लेने के लिए सहयोग देने की बुद्धि नहीं होती। उसमें

जूठन के दानों के ढेर में सींग मारने का मन होता है। यदि बीच में कुत्ता खाने के लिए आ जाए तो सींग मारने जाता है। जूठन के लिए वह सब कुछ करने को तैयार है, पर रत्न के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं है। इसी प्रकार यह जीव भी विषय-कषाय की जूठन के लिए भरसक करने को तैयार है, परन्तु धर्मरत्न के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं है। पशु को तो रत्न की परख नहीं है, इसलिए वह उसे जाने देता है। पर तुम तो होशियार मानव हो न ? तुम रत्न को परख सकते हो, फिर किसलिए लापरवाह रहते हो ? दीपक जैसे अंधकार को दूर कर देता है, वैसे धर्मरूपी रत्न के प्रभाव से पापरूपी अंधकार दूर हो जाता है।

यह मानवभव जैसे-तैसे नहीं मिल गया। इसकी कीमत समझो। उसमें भी अमूल्य जैनधर्म मिला है, इसकी महत्ता समझो। यहाँ जीव समझे तो क्षण-क्षण में कर्म की निर्जरा कर सकता है। गौतमस्वामीजी ने भगवान् से पृच्छा की - "भगवन् ! एक नवकारसी तप करे तो उसे क्या फल मिलता है ?" भगवान् ने फरमाया - "हे गौतम ! २९ लाख, ६३ हजार, दो सौ सड़सठ ऊपर एक पल्योपम का चौथा भाग शुभ देवायुष्य का बंध करता है। शुद्ध सम्यक्त्व सहित सामायिक करे तो ९२ करोड़, ५९ लाख, २५ हजार ९२५ पल्योपम और १ पल्योपम के ७ भाग करके उसमें से तीन भाग झाझेरा (अधिक) शुभ देवायु का बन्ध करता है। ऊनोदरी तप करे तो क्या लाभ होता है ? सौ वर्ष के पाप दूर होते हैं। एक उपवास करे तो एक हजार वर्ष के नारकी का पाप दूर होता है। इतनी करणी करने में इतना महान् लाभ रहा हुआ है, तो धर्म की जो खूब आराधना करता है, उसे कितना लाभ होता है ? अरे ! जो संसार छोड़कर संयमी साधु बने हैं, उन्हें तो कितना लाभ है ? प्रतिक्षण कर्मनिर्जरा का लाभ होता है, घाटा तो होता ही नहीं। परन्तु कब ? क्या साधुवेश पहनकर बैठ गये; तुम्हें उपदेश दे दिया, इतने मात्र से कल्याण हो गया ? नहीं। तो फिर कल्याण कब होता है ? यह वीतराग-प्रभु का वेश पहना है, तो वेश के प्रति वफादार रहें तो कल्याण होता है। किन्तु चारित्र को नष्ट-भ्रष्ट करके मात्र दूसरों का कल्याण करने-कराने में रात-दिन लगे रहें तो घाटे का सौदा कर रहे हैं।

आज आप संतों को वन्दन करते हैं। अपने से उन्हें तीन फीट ऊपर बिठाये हैं, यह भगवत् प्ररूपित सम्यक्चारित्र-मार्ग का सम्मान है। कोई व्यक्ति सकल चारित्र का त्याग करके आए तो आप उपाश्रय में उसे ठहरायेंगे क्या ? बोलो न हीराभाई, वजुभाई ! जिसने चारित्र (मुनिदीक्षा) छोड़ दिया, उसे श्रावकवर्ग स्वयं ही कह देगा - 'आप यहाँ से पधार जाओ, यहाँ अब आपके लिए स्थान नहीं है ! यहाँ तो संयम (चारित्र) के प्रति वफादार रहे, उसका काम है।'

पुलिस और सेठ का दृष्टांत : मान लो, किसी धनाढ्य सेठ की पुत्रवधू नई-नई शादी करके आई है। उसे मालूम नहीं है कि यहाँ पानी ढोलने की मनाही है। उसने वहाँ पानी डाला। इस पर म्युनिसिपालिटी के सफाईखाते का चपरासी जांच करने आया। उसने उक्त वहू को (गुनाहगार समझकर) पकड़ी। इस पर उसके ससरा ने उससे कहा -

पुस्तक की कीमत हमने खरीद कीमत से सिर्फ २५ प्रतिशत ही रखी थी। यह काम आप उदार दान-दाताओं की सहायता से ही बना है, हमारा उसमें कोई योगदान नहीं है। उसी अनुभव के आधार पर हमने यह तिसरा काम हाथ पर लिया है। इस पुस्तक कि कीमत भी हमने २०% - बीस प्रतिशत ही रखी, इसमें दाताओं का अच्छा सहयोग मिला और दाताओं की लाईन लग गई। हम उन सभी दाताओं के खूब खूब ऋणी हैं। जिन्हों ने खुद तो दान दिया और दूसरों से भी दिलवाया। इसी पुस्तक में हमारे सहयोगी दाताओं कि अलग से नामावली है, उन्होंने किसी प्रकार कि अपेक्षा के बिना दान भी दिया और दूसरों से दान भी लाये। हम उन महानुभावों का किन शब्दों में आभार प्रदर्शित करें! उनकी प्रशंसा के लिए कोई शब्द नहीं है। इस काम मे हमें निःशुल्क - निःस्वार्थ भाव से 'सस्तुं पुस्तक भंडार' ने भी अपना खुद का काम समझकर ही समय समय हाजर रहकर इस पुस्तक प्रकाशन में बहुत ही अच्छा सहयोग दिया। विशेष हम आप से यह बात भी कह देना चाहते है कि महासतीजी ने शुद्ध शास्त्र वाणी में व्याख्यान गुजराती में दिया है, उसका अनुवाद हमने करवाया है। यदि अनुवादक कि शब्दरचना में परिवर्तन होता हो तो वह भाव भूल अनुवादक व प्रेस कि है, उसमें महासतीजी के उच्चारणों में कोई भूल नहीं है।

अंत में हमारी समिति के अथाग प्रयत्नों से इस हिन्दी पुस्तक 'शारदा-शिखर' को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया, उसमें दान दाताओं का बहुत ही बड़ा सिंह-भाग है। हम उनके तो आभारी है ही, मगर समिति के सभ्यों ने भी एक-राग से काम किया, तभी यह भगीरथ कार्य पूर्ण हो सका और साथ साथ हम उन दान-दाताओं को भी कैसे भूल सकते, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशक तथा विमोचक बनने का भार उठाया। अब पुस्तक आप तक पहुँचने कि तैयारी में है, तो आप से हमारा अनुरोध है। आप इस पुस्तक से खूब ज्ञान-ध्यान प्राप्त करें और आपकी आत्मा का कल्याण करें और दानवीर बने, शीलवान बने।

हमने इस पुस्तक के चन्दे मे आप सब दाताओं से संपर्क किया। उसमें आपके साथ हमारी समिति का व्यवहार बराबर न हुआ हो व आपके हृदय को ठेस पहुँचाई हो तो हम सब आपसे क्षमा-याचना करते हैं, क्षमा करें।

शाह मांगीलाल उदेराम नंगावत *(प्रमुख)*
शाह रोशनलाल चम्पालाल कोठारी *(उपाध्यक्ष)*
शाह नानालाल कोठारी *(मंत्री)*
शाह बाबुलाल सिंघवी *(सहमंत्री)*
शाह नरेन्द्रभाई साड़ीवाला *(कोषाध्यक्ष)*

"भाई ! यहाँ पानी डालने की मनाही है, किन्तु पानी डाल दिया, यह हमारा अपराध है। हम अपनी भूल कबूल करते हैं । बात यह है कि यह बहू नई ही विवाह करके आई है। उसे इस कायदे का पता नहीं था । लड़की है । इससे भूल हो गई है । मैं इस पर धूल डलवा कर साफ करा देता हूँ । तुम अब चुप रहो ।" परन्तु वह पुलिस तो बकवास करना बंद ही नहीं करता । यह सेठ भी बहुत धनवान् है । किसी के दबाव में आ जाए, ऐसा नहीं है । अतः कहता है - "मैं अभी तुझे चार तमाचे मार सकता हूँ । मैं कमजोर नहीं हूँ। परन्तु तूने सरकारी पट्टा धारण किया है, इसलिए कुछ कह नहीं सकता ।" इस पर तो वह पुलिसकर्मी भड़क उठा - "क्या मेरा कोई वर्चस्व ही नहीं ? अगर पुलिस के पट्टे का ही वर्चस्व है तो ले यह पट्टा फेंक देता हूँ ।" यों कहकर उसने पुलिस का पट्टा निकालकर फेंक दिया । उसने ज्यों ही पट्टा फेंका, त्यों ही सेठ ने पकड़कर उसके गाल पर चार तमाचे जड़ दिये । वह बोला - "मैं पुलिस हूँ । तुम मुझे मारनेवाले कौन ?" पुलिस ने सेठ के खिलाफ शिकायत की । कोर्ट में सेठ को बुलाकर पूछा - "पुलिस को तुमने किसलिए चाँटे मारे ?' सेठ ने कहा - मैंने पुलिस को नहीं मारा, मैंने एक सामान्य मनुष्य को मारा है । इससे पूछ लो, इसने पुलिस का पट्टा उतारकर फेंक दिया, उसके बाद मारा है ।" तदनन्तर सब पूछताछ की गई । सेठ ने सारी घटना सच कह दी । यह सुनकर सरकार ने सेठ की पीठ थपथपाकर कहा - "शाबाश !" इस प्रकार सरकार ने सेठ को शाबाशी दी और पुलिस को रिटायर किया । तुम्हें और हमें, सबको शाबाशी चाहिए पर वह कब मिलती है ? तुम श्रावकपन के प्रति वफादार रहो और हम साधुपन के प्रति वफादार रहें तो । अन्यथा, तुम्हारी या हमारी कौड़ी की कीमत नहीं रहती । उस पुलिस की तरह रिटायर होना पड़ेगा । साधु को साधुपन का मूल्य चुकाना पड़ेगा । गुण होगा, तो कीमत होगी । अन्यथा कोई नहीं पूछेगा ।

ब्राह्मण और बीरबल का दृष्टांत : एक बार एक ब्राह्मण बीरबल के पास आकर रोने लगा । बीरबल ने पूछा - "क्यों रोते हो ?" वह बोला - "मैंने इतने शास्त्र पढ़े, फिर भी मुझे कोई पण्डित नहीं कहता ।" बीरबल की बुद्धि तो आप जानते ही हैं न ? बीरबल ने हंसकर कहा - "तुम्हें सारा गाँव पण्डितजी-पण्डितजी कहकर पुकारे, ऐसा कर दूं । पर तुम मुझे क्या दोगे ?" पण्डित ने कहा - "मैं आपको ५०० रुपये दूंगा ।" बीरबल ने पाँच सौ रुपये लेकर कहा - "अगर एक महीने में तुम्हें लोग पण्डितजी न कहें तो तुम कहोगे वह सजा मैं भोग लूंगा ।" बीरबल ने मीठी गोलियाँ खरीदीं और कुछ बच्चे एवं किशोरों को इकट्ठे किये । उन्हें गोलियाँ देकर कहा कि 'यह आदमी बाहर निकले तो तुम्हें - ओ पण्डितजी, ओ पण्डितजी कहना ।' अब तो ज्योंही पण्डित बाहर निकला, त्योंही बालको की टोली उसके पीछे पड़ गया और जोर-जोर से 'ओ पण्डितजी ! ओ पण्डितजी' कहकर उसके पीछे चलने लगे । तीन-चार दिनों में तो सब जान गए कि यह पण्डित है । इसलिए दूसरे लोग भी पण्डितजी-पण्डितजी कहने लगे । इससे ब्राह्मण घबरा गया और सबको गालियाँ देने लगा । क्या इसे पण्डित कहा

जानार तो जाता रह्या, सद्‌गुण एना सांभरे ।
लाखो लुंटावो तो भले, मरनार पाछा ना मळे ।
जानार आग विषे बले, मरनार पाछा ना मळे ।
वैभव मळे, कीर्ति मळे, लक्ष्मी गयेली सांपडे ।
ए सौ मळे आ जगतमां, मरनार पाछा ना मळे ॥

वास्तव में, विकराल काल ने गजब किया ! वात्सल्य की बेलड़ी, विनय की बावड़ी और सेवा के सौरभयुक्त सुमन समा हमारी ताराबाई महासतीजी को क्रूर कालराजा लेकर चल पड़ा । संघ ने प्रत्येक संघ को सूचना दी । अन्तिम दर्शन के लिए मुंबई की मानव-मेदिनी उमड़ पड़ी । उनकी श्मसानयात्रा में लगभग २५ हजार मानव थे । उनका दाह संस्कार चन्दन के काष्ठ से किया गया । सकल संघ में भारी शोक छा गया । वे स्वयं उत्तम आदर्श जीवन जीकर सबको आदर्श जीवन जीने की ज्वलन्त प्रेरणा दे गई हैं । फूल मुर्झा जाता है, पर उसकी सुगन्ध रह जाती है । वैसे ही ऐसी उत्तम आत्मा नश्वर देह छोड़कर चली जाती है । किन्तु गुण की सुवास छोड़ जाती है । संयमपथ में प्रेम के पुष्प बिछानेवाले, ऐसे पू. ताराबाई महासतीजी के गुणरत्नों से परिपूर्ण जीवन में निहित गुणरूपी रत्नों की माला में से एकाध गुणरत्न लेकर अपना जीवन उनके किरणों से चमकाकर कल्याण की पगडंडी पर कदम बढाएँगे, तो हमारे द्वारा उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण की कहलाएगी ।

उज्ज्वल जीवन जीवी जनारा, वात्सल्य वहेणोनी वहावता धारा ।
नयनोना तारा ने हैयाना हारा, गूंथी में गुणपुष्पोनी माला ॥

आज उनकी पुण्यतिथि के निमित्त से ८० अट्ठम (तेले) हुए हैं, तथा ५० पौषध और सामायिक की १०० पचरंगी हुई हैं । श्री संघ ने पू. ताराबाई महासती को अश्रुपूरित आँखों से श्रद्धांजलि अर्पित की थी । समय काफी हो गया है । अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १०

आषाढ़ वदी ३, बुधवार | ता. १४-७-७६

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं एवं बहनों !

अनन्त करुणानिधि, विश्ववत्सल और परमतत्त्व-प्रणेता भगवान् तीर्थंकर ने केवलज्ञान-केवलदर्शन होने के पश्चात् आगमवाणी प्रतिपादित की । आत्मा जब केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे केवलज्ञान से लोकालोक का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता

जा सकता है । जो पण्डित हो, वह 'मैं पण्डित हूँ,' यों कहलाने के लिए क्या वह मेहनत करता है ? हीरे की कीमत लाखों की हो, फिर भी वह ऐसे नहीं कहता कि मेरी इतनी कीमत है । कहा भी है - 'हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल ।' इसी प्रकार सच्चा पण्डित स्वयं पण्डित है, ऐसे नहीं कहता । सच्चा साधु या सच्चा श्रावक, यों नहीं कहता कि हम सच्चे साधु या श्रावक हैं । इनके गुणों पर से ही इतका मूल्यांकन हो जाता है । साधु का साधुता के गुण से और श्रावक का श्रावकत्व के गुण से मूल्यांकन हो जाता है ।

एक श्रावक प्रतिदिन सामायिक लेकर व्याख्यान श्रवण करने बैठ जाता था । जिस रोज वह नहीं आता था, उसका ध्यान भी एक साधुजी रखते थे । वह श्रावक लगातार दो दिन तक उपाश्रय में नहीं आया । तीसरे दिन जब आया तो साधुजी ने पूछा - "श्रावकजी ! दो दिन तक आपकी गैरहाजरी क्यों रही ?" यह सुनकर श्रावक ने कहा - "महाराजश्री ! एक काम था ।" महाराज साहब ने कहा - "चाहे जितना काम हो, फिर भी आपकी गैरहाजरी नहीं होती ।" महाराजश्री ने जब बहुत पूछा तो श्रावक ने कहा - "महाराज साहब ! सच कहूँ तो हम गृहस्थ कहलाते हैं । मेरा एक पुत्र १८ वर्ष का है । उसने मुझसे कहा - 'लोग यों कह रहे हैं कि एक बहुत विद्वान् महाराज पधारे हैं । उनके व्याख्यान बहुत ही अच्छे और युक्तिसंगत होते हैं । उपाश्रय श्रोताओं से खचाखच भर जाता है । आप तो रोज ही जाते हैं, एक दिन मुझे भी व्याख्यान सुनने के लिए जाने दें ।' यों उस लड़के ने हठ पकड़ ली कि 'आज तो मुझे उपाश्रय अवश्य जाना है ।' परन्तु आप तो अपने व्याख्यान में प्रतिदिन लोगों को फटकारते हो कि कूड़ा तोल, कूड़ा माप (तौलने-नापने में गड़बड़ी रखोगे) तो तिर्यच गति में जाना पड़ेगा । हमारी दुकान में तो लेने के लिए सवा पाँच शेरी और देने के लिए पौने पाँच सेरी बाट होते हैं । अगर वह लड़का व्याख्यान सुनने के लिए आए और यह बात सुन ले तो हमारा धंधा ही बंद हो जाए न ?" (इसलिए दो दिन तक मैं लड़के को समझाने में लगा रहा) । (हँसाहँस) मैं आपसे पूछती हूँ (क्या ऐसे व्यक्ति को श्रावक कहा जाए ?) ऐसे श्रावक तो बहुत सी दफा बन गए । इससे कल्याण नहीं होता । अब तो सच्चे श्रावक बनो तो कल्याण हो ।

सलिलावती विजय में वीतशोका नामक नगरी है । उस नगरी में बाग-बगीचे, बावड़ी, कुंए, धर्मशालाएँ आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ हैं । इसलिए वह नगरी देवलोक-तुल्य सुशोभित थी । नगरी के योग्य यह सब सामग्री हो तो वह नगरी शोभायमान होती है । राजा चतुरंगिणी सेना से सुशोभित होता है और नारी की शोभा सतीत्व में है । चाहे जितनी रूपवती स्त्री हो, सौन्दर्य से शरीर शोभायमान हो, किन्तु उसका चारित्र अच्छा न हो तो (ज्ञानियों की दृष्टि में) उसकी कोई कीमत नहीं है । शील तो सती स्त्री का श्रृंगार है । साधु सावद्य भाषा कभी नहीं बोलता । तुम ५ वर्ष की दीक्षा-पर्यायवाले साधु के पास बैठो या ५ दिवस की दीक्षा-पर्यायवाले साधु के पास जाकर

है ?" उस राजा ने कहा - "तुम एक काम करो । यह सामने मेरा बगीचा है, उसमें एक अत्यन्त सघन और हराभरा बड़ का पेड़ है । वह सारा का सारा सूख जाए, तब मेरे पास चले आना । हम दीर्घायुष्य क्यों है और तुम्हारे राजा दीर्घायु क्यों नहीं हैं ? इस प्रश्न का जवाब मिल जाएगा ।" मंत्री के मन में विचार आया कि यह विशालकाय सघन हराभरा एवं नीला है - बटवृक्ष । यह कब सूखेगा और कब मुझे छुट्टी मिलेगी ? वह प्रतिदिन बड़ के नीचे जाता है और निःश्वास छोड़ता हुआ कहता है -"हे बड़ के पेड़! अब तू जल्दी से जल्दी सूख जा, जिससे मुझे अपना प्रश्न का उत्तर मिल जाय ।" वह मंत्री रोज इस प्रकार बड़ के नीचे जाकर निःश्वास छोड़ते हुए इसी प्रकार कहने लगा। फलतः वह बटवृक्ष सूख गया । उसका क्या कारण था ? वनस्पति में भी जीव है। हाँ तो, वृक्ष भी वनस्पतिकाधिक जीव है । वनस्पति पर भी अपने जैसा प्रभाव पड़ता है । 'आचारांग सूत्र' के प्रथम श्रुत स्कन्ध के प्रथम अध्ययन के पंचम उद्देशक में मनुष्य और वनस्पतिकाय की तुलना करते हुए भगवान् ने कहा है - "*से बेमि इमंपि जाइ धम्मयं, एयंपि जाइ धम्मयं, इमं, इमंपि वुड्ढि धम्मयं एयंपि वुड्ढि धम्मयं, इमंपि चित्तमंतयं, एयंपि चित्तमंतयं, इमंपि छिन्न मिलाति, एयंपि छिन्न मिलाति, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिच्चयं, एयंपि अणिच्चयं, इमंपि असासयं, एयंपि असासयं, इमंपि चओवचइयं, एयंपि चओवचइयं, इमंपि विपरिणाम धम्मयं, एयंपि विपरिणाम धम्मयं...॥*"

मैं कहता हूँ - जैसे मनुष्य का शरीर उत्पन्न होने के स्वभाववाला है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने के स्वभाववाला है । जैसे मनुष्य का शरीर वृद्धि पाता है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी वृद्धि पाता है । जैसे मनुष्य के शरीर में चैतन्य है, वैसे ही वनस्पति के शरीर में भी चैतन्य है । जैसे मनुष्य को शरीर का छेद न होने से सूख (मुर्झा) जाता है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी छेदन होने से सूख (मुर्झा) जाता है । जैसे मनुष्य को आहार की जरूरत होती है, वैसे ही वनस्पति को भी आहार की जरूरत होती है । जैसे मनुष्य का शरीर अनित्य है, वैसे वनस्पति का शरीर भी अनित्य है । मनुष्य का शरीर अशाश्वत है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी अशाश्वत है । जैसे मनुष्य के शरीर की हानि-वृद्धि होती है, वैसे ही वनस्पति के शरीर की भी हानि-वृद्धि होती है । जैसे मनुष्य के शरीर विपरिणमन-धर्म (अनेक विकार उत्पन्न होने के स्वभाव) वाला है; वैसे वनस्पति का शरीर भी विपरिणमन धर्म के (अनेक विकार उत्पन्न होने के) स्वभाववाला है । इस प्रकार वनस्पति भी मनुष्य के स्वभाव से लगभग मिलती है । इस कारण वनस्पति भी सचेतन है, अर्थात् उसमें भी जीव (आत्मा) है ।

मनुष्य पर जिस प्रकार असर होता है, वैसे [illegible] पर भी होता है । उक्त प्रधान बटवृक्ष के नीचे प्रतिदिन जाकर यों [illegible] ! तू सूख जा ।" इस कारण [illegible] में वह गहर-गम्भीर बड़ सूख गया [illegible] [illegible] चनों से बुलाने

बैठो, परन्तु वह तुम्हारे सामने संसार की बातें नहीं करेगा । जैन साधु की बातों में भी वैराग भरा होता है । जहाँ पाप का आवागमन होता हो, किसी को दुःख होता हो, तो वैसी भाषा जैन साधु कदापि नहीं बोलता । वह निर्दोष और पवित्र भाषा बोलता है । अतः साधु की कीमत निरवद्य भाषा से है । वीतशोका नगरी के बाहर ईशान कोण में इन्द्रकुम्भ नाम का उद्यान था । उस नगरी का राजा कौन था ? कैसा था ? अब इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

स्व. ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि

आज हमारे तारे जैसी जगमगाती स्व. पूज्य ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि है । यों तो उनकी पुण्यतिथि माघ वदी २ की है । परन्तु खंभात-संघ ने उनकी पुण्यतिथि आषाढ़ वदी २ के दिन मनाने का निश्चय किया है । क्योंकि देश में चातुर्मास सिवाय के दिवसों में संत-सतियों का योग कम होता है, इस कारण धर्मकरणी कम होती है । इस प्रयोजनवश खंभात-संप्रदाय के प्रत्येक क्षेत्र में पूज्य ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि आज ही मनाई जाती है । यद्यपि समय काफी हो गया है, इसलिए संक्षेप में ही मैं कहूँगी ।

स्व. महावैराग्य सम्पन्ना पू. ताराभाई महासतीजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

जिनका जीवन धूपबत्ती के समान सौरभ फैला गया है, तथा गुलाब के फूल के समान महकता था, शिष्या-मंडली में जिनका जीवन तारे के समान चमकता था, ऐसे स्व. महावैराग्य सम्पन्ना ताराबाई महासतीजी की आज स्वर्गारोहण तिथि है । आप सब समझ सकते हैं कि उनका जीवन कितना उज्ज्वल और चारित्र सम्पन्न होगा ? उनमें कितना विनय, विवेक और वैराग्य आदि सद्गुणों की सुवास होगी कि जो शिष्या थीं, फिर भी जिनकी पुण्यतिथि उनकी पूज्य गुरुणीजी मना रही हैं । उनमें रहे हुए अखूट गुणों का वर्णन करने के लिए तो अपने पास समय थोड़ा है, मगर उनके जीवन का बहुत ही संक्षिप्त परिचय आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ ।

उन महासतीश्री का जन्म अहमदाबाद शहर में हुआ था । उनके पिता उगरचंदभाई थे और माता समरतबहन थी । उनका विवाह १४ वर्ष की उम्र में हो गया था । उनके पति का नाम केशवलालभाई था । वे बहुत बड़े व्यापारी थे । उनका संसार खूब सुखी था । उस सुखी संसार में दुःख किसे कहा जाए, इसका भी ख्याल नहीं था । ऐसा महान् वैभव, सम्पत्ति, सुख-साधन आदि से सम्पन्न गृहस्थ-संसार सब प्रकार से खूब सुखी था । परन्तु कुदरत मनुष्य को कब कहाँ से कहाँ पटक देती है, इसकी किसी को कोई खबर नहीं है । इस प्रकार से २४ वर्ष की वय में उन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़े, ऐसी घटना बनी । इनके पति का अचानक हार्ट फैल होने से दुःखद अवसान हुआ । इस कारण उनके सिर पर घर-संसार की सारी जिम्मेदारी आ पड़ी । आपके चार पुत्र थे । ऐसे अवसर पर उन्हें हमारा (पू. शारदाबाई महासतीजी का) सम्पर्क हुआ । ज्यों-ज्यों वे हमारे

पर वह प्रसन्न हो जाता है, और कोई उसे गाली दे तो खिन्न हो जाता है, वैसे ही भगवान् कहते हैं - "वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है। वह मनुष्य की तरह बाहर (ऊपर) से दिखाई नहीं देता, परन्तु उसपर भी (अच्छे-बुरे भावों, बचनों और व्यवहार का) असर तो अवश्य ही होता है।" प्रधान राजा के समीप जाकर कहता है कि "साहब ! वड़ सूख गया है। अतः अब मुझे मेरे प्रश्न का जवाव दें।" इस पर राजा कहता है - "जैसे तूने रोज निःश्वास डालकर मेरा बड़ सुखा डाला, वैसे ही अब वह बड़ एकदम हराभरा हो जाय, तब मेरे पास आना।" प्रधान विचार करने लगा कि अव वह वड़ वापस कब हराभरा होगा ? अतः मन ही मन बहुत ही आकुल-व्याकुल हुआ, किन्तु राजा की आज्ञा है, इसलिए धैर्य से सहन करना ही पड़ेगा। आप वाचन करते हो, और उस समय किसी विषय में शंका पड़े तो किसी ज्ञानी संत से पूछने आते हो, उस समय वे संत कहें कि इस समय मुझे अवकाश नहीं है, आप कल आना। दूसरे दिन उनके पास गये और वे कहें कि आज मेरी तवियत ठीक नहीं है। दो दिन के बाद आना। यों अगर वे तुम्हें सात चक्कर खिलायें तो तुम जाओगे क्या ? नहीं जाओगे। बल्कि उस साधु के विरुद्ध बोलने लगोगे। परन्तु जिसके पास से तुम्हें पैसे लेने हैं, उससे उघरानी वसूल करने के लिए जाओ, और उससे पैसे मांगने पर वह सात के बदले दस चक्कर खिलाये, तो भी जाओगे या नहीं ? (हँसाहँस), वहाँ तो चाहे जितने चक्कर खाने पड़े, तुम्हारे पैर नहीं थकेंगे। मगर यहाँ आने में थक जाते हो !

हाँ तो, वह प्रधान मन ही मन बहुत उलझन में पड़ गया, परन्तु वहाँ रुके बिना कोई चारा नहीं था। अतः वह प्रतिदिन उस वड़ के नीचे जाकर बोलने लगा - "हे बड़ ! तू पहले जैसा था, वैसा हरियाला हो जा।" फलतः प्रतिदिन इस प्रकार बोलने से (और उसके प्रति सद्भावना करने से) वह बटवृक्ष छह महीने में एकदम हराभरा हो गया। अतएव प्रधान ने राजा के पास जाकर कहा - "आपका बड़ का पेड़ हराभरा हो गया है। अव मुझे मेरे प्रश्न का जवाव दें।" राजा ने कहा - "तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें मिल गया है।" प्रधान बोला - "आपने तो मुझे कोई भी जवाव नहीं दिया, फिर कैसे कहते हैं कि तुम्हें अपने प्रश्न का जवाब मिल गया है ?" राजा ने कहा - "सुनो ! तुमने (लगातार छह महीने तक) वड़ के नीचे जाकर ऐसा चिन्तन किया कि हे बड़ ! तू सूख जा, तो वह सूख गया। पुनः तुमने ऐसा चिन्तन किया कि हे बड़ ! तू हराभरा हो जा, तो वह हराभरा हो गया। इसी प्रकार तुम्हारे राज्य में जो राजा बनता है, वह बहुत अन्यायी होता है। वह प्रजा का शोषण करके त्रास देता है। फलस्वरूप प्रजा ऐसा चिन्तन करती है कि यह राजा कव मरे और कव नया राजा आए ! दूसरा नया राजा जो राजगद्दी पर बैठता है, वह भी पहलेवाले राजा जैसा ही आता है। अतः प्रजा भी पुनः उस नये राजा के विषय में भी वैसा ही (अनिष्ट) चिन्तन करती है। इस कारण (पीढ़ी दर पीढ़ी) वे राजा दीर्घायु नहीं होते। इसके विपरीत हम प्रजा के प्रति सद्भावनापूर्ण चिन्तन करते हैं कि 'कैसे प्रजा का हित हो ? प्रजा कैसे सन्तुष्ट हो ? प्रजा को किसी प्रकार का दुःख न

परिचय में आते गए, त्यों-त्यों उन्हें संसार की असारता समझ में आ गई और उनकी आत्मा वैराग्य के रंग में रंजित होता गया। पुत्र (उस समय) छोटे होने से तथा सारे घर-परिवार की जिम्मेदारी उनके सिर पर होने से वैराग्य रंग से आसक्त ताराबहन को अनासक्त भाव से १२ वर्ष संसार में गुजारने पड़े। अन्त में एक पुत्र का विवाह करने के पश्चात् घर की जिम्मेदारी संभाल सके, ऐसा पुत्र तैयार होने के बाद उन्होंने पुत्रों से संयम ग्रहण करने की आज्ञा मांगी। ये शब्द सुनते ही माता की प्रेमभरी गोद में खेले हुए चारों पुत्र फफक-फफक कर अश्रुपात करते हुए रोने लगे। वे बोले - ''माँ ! संसार में रहकर तू साधुजीवन जी, परन्तु हम तुम्हें (हमें बिलखते छोड़कर) दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं देंगे।''

संयम लेने के लिए कठोर कसौटी में खड़ी उतरी : ताराबहन ने अपने पुत्रों से कहा - ''पुत्रों ! तुम चाहे जो करो, फिर भी एक क्षण भी मैं संसार में रहना नहीं चाहती। मैंने अपनी जिम्मेदारी पूरी-पूरी निभाई है। अतः अब मुझे गृहस्थ-संसार से मुक्त करो। तुम्हारे पीछे मैंने १२ वर्ष बिताये हैं। अब मैं घड़ी भर भी रह नहीं सकती। अतः तुम मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दो।'' चारों पुत्रों को बहुत कुछ समझाने पर भी जब किसी भी तरह से वे मातृप्रेम छोड़ नहीं सके, साथ ही उन्होंने (पुत्रों ने) जब दृढ़ता बताई कि 'हम किसी भी हालत में दीक्षा की आज्ञा नहीं देंगे,' तब ताराबहन ने अन्त में निर्णय किया कि इन पुत्रों का मेरे प्रति जो स्नेह (मोहासक्त) है, उसे छुड़ाने के लिए मुझे कठोर कसौटी में प्रवेश करके भी दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करनी है। अतः उन्होंने चौविहार उपवास करने शुरू किये। आग बरसाते जेठ महीने के सख्त ताप में चौविहार उपवास के कारण माता के मुख पर म्लानता देखकर पुत्रों के हृदय हिल उठे। दूसरी ओर कुटुम्बीजनों और स्नेही - सम्बन्धियों ने उनसे उपवास छोड़ देने के लिए बहुत आग्रह किया। इस पर उन्होंने अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर दिया - ''अब मैं संयम (साध्वी दीक्षा) ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करने के बाद ही पारणा करूँगी, अन्यथा नहीं।'' जिसे संयम की लगन लगी हो और जिसका एक ही ध्येय हो कि संसार से मुक्ति लेकर - कब आत्मा की मुक्ति मैं प्राप्त करूँ, ऐसा दृढ़ वैराग्य देखकर अन्त में पुत्रों ने कहा - ''माँ ! तूने हमारे लिए बहुत किया है, तुम्हारे इस अनन्त उपकार के ऋण से मुक्त होने के लिए, हमारी इच्छा है कि तू संसार में रहकर साध्वी जैसा जीवन जी, ताकि हम तेरी सेवा करके तेरे ऋण से उऋण हो सके।'' इतने पर भी जब ताराबहन अपने नियम और वैराग्य से जरा भी विचलित नहीं हुई, तब गदगद् कण्ठ से अश्रुपात करती हुई आँखों से पुत्रों ने माता को दीक्षा की आज्ञा दी : ''हे हमारी परम-उपकारिणी वात्सल्यमूर्ति माता ! जाओ, आप सुखपूर्वक स्व-पर-कल्याण की साधना करो।'' इस प्रकार दीक्षा की आज्ञा मिलते ही ताराबहन के रोम-रोम में आनन्द के फूल खिल उठे और वि. संवत् २०१४ के आषाढ़ सुदी २ को दीक्षा ग्रहन करने का मंगल दिवस आ पहुँचा।

संयम लेने की उम्मीदवार वैराग्यवती ताराबहन जब आषाढ़ सुदी २ के दिन घर छोड़-कर दीक्षामण्डप में आने के लिए तत्पर हुई उस समय का उनके पुत्रों का करुण रुदन, माता के प्रति स्नेह और पुत्रों के हृदय में मातृविरह का आघात ऐसा था कि दर्शकों

हो !' इस प्रकार का ध्यान रखकर हम राज्य करते हैं, इस कारण प्रजा हमारे प्रति प्रसन्न रहती है और अन्तर से उद्गार निकालती है – 'हमारे राजा दीर्घायु हों ।' इस कारण हमारे राजा दीर्घायुष रहते हैं ।" यह तो एक कवि की कल्पना है । सिद्धान्तानुसार तो सभी जीव अपने-अपने (बँधे हुए) आयुष्य कर्म के अनुसार जीते हैं । किन्तु संसार कैसा विचित्र है ? स्वयं को जिस प्रकार की सुख-सुविधा चाहिए जीव वैसा ही चिन्तन करता है ।

अन्न के और चमड़े के व्यापारी का चिन्तन : एक बार एक अनाज का और दूसरा चमड़े का, यों दोनों व्यापारी दूसरे गाँव जा रहे थे । उस समय एक तीसरा मनुष्य भी इनके साथ जाने को तैयार हो गया । उस मनुष्य ने जाते समय अनाज के व्यापारी के साथ मित्रता की और वापस लौटते समय चमड़े के व्यापारी के साथ मैत्री कर ली । इसका क्या कारण था ? क्या इसका रहस्य तुम समझते हो ? यदि उस मनुष्य ने वापस लौटते वक्त अनाज के व्यापारी के साथ मित्रता की होती तो गाँव में शोहरत हो जाती कि यह बड़ा व्यापारी इसका मित्र है । यह बाह्य दृष्टि है ! परन्तु अगर हम आन्तर दृष्टि से विचार करेंगे तो समझ में आ जाएगा कि इसके अन्तर की विचारणा कैसी है ? जाते समय अनाज के व्यापारी मन में ऐसा विचार करता था कि 'सुकाल हो तो अच्छा, अनाज सस्ता मिलेगा ।' जबकि चमड़े का व्यापारी यों विचारता था कि 'दुष्काल पड़े तो पशु मर जाएँगे और मुझे अच्छा चमड़ा सस्ते भाव में मिलेगा ।' इसलिए जाते समय अनाज के व्यापारी के विचार उत्तम थे, जबकि चमड़े के व्यापारी के मनोभाव अधम थे ! परन्तु वापस लौटे, तब अनाज के व्यापारी की मनोभावना ऐसी थी कि 'अब वर्षा की तान रहे, तो अच्छा, क्योंकि बरसात नहीं होगी तो अनाज के भाव में तेजी होगी, मुझे बहुत मुनाफा रहेगा ।' जबकि चमड़े के व्यापारी के मनोभाव ऐसे थे कि 'अब बरसात खूब वर्षे, सुकाल हो और पशु मरते बंद हों तो चमड़े के भाव में तेजी आएगी, मुझे खूब मुनाफा मिलेगा ।' इसलिए जाते समय तो अनाज के व्यापारी के भाव उत्तम थे और लौटते समय चमड़े के व्यापारी के भाव उत्तम थे । परन्तु इसमें उनकी कोई धर्मदृष्टि नहीं थी । प्रत्युत अपने होनेवाले लाभ-अलाभ की स्वार्थ प्रधान दृष्टि थी । स्वयं को जिसमें लाभ हो, उसे व्यक्ति अच्छा मानता है, और स्वयं को जिसमें हानि हो, उस अच्छे को भी वह खराब मानता है, यह है संसारी जीवों की भावना । जब साधु गौचरी जाता है, तब आहार -पानी मिल जाए तो यों मानता है कि 'इस आहार का सेवन करके ज्ञान-ध्यान बढ़ाने में उद्यम करूँगा' और अगर गौचरी नहीं मिलती है तो मानता है कि 'मुझे अनायास ही तप की वृद्धि का अवसर मिला ।' यह (आत्म दृष्टिवाले) आत्मा की विचारणा है, किन्तु अगर शरीर के प्रति दृष्टि जाती है तो यों विचार हो[illegible] ज तो[illegible] रुकी नहीं, इस कारण गौचरी नहीं मिली । भूख लगी है, इस [illegible] शरीर जहरीला कीड़ा है । जहर के कीड़े को शक्कर में [illegible] आनन्द आता है । उसी प्रकार यह जीव भी [illegible] में [illegible]

पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाय। प्रत्येक व्यक्ति के मुख से एक ही तरह के उद्गार निकल रहे थे – 'अहो ! कैसा है ताराबहन का दृढ़ वैराग्य ! साथ ही पुत्रों का माता के प्रति कितना अगाध प्रेम !' परन्तु विरक्त मन दृढ़ वैरागी ताराबहन प्रेम के बन्धन तोड़कर, स्नेह के सम्बन्ध को छिटकाकर, माया के बन्धन को बिखेरकर, मोहपाश के बन्धन रूप संसार का त्याग करके दीक्षा लेने हेतु दीक्षामण्डप में आई। उस समय का दृश्य इतना करुण हो गया कि सभी की आँखें आंसुओं से छलक उठीं। कहने लगे – 'धन्य है वैराग्यवासिनी ताराबहन को कि रागभाव का पाश तोड़कर वैराग्यवाटिका में विचरण करने हेतु इस विरक्तात्मा ने प्रयाण किया है।' पुत्रों का करुण रुदन देखकर सभी की आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। दीक्षाएँ तो बहुत होती हैं, परन्तु पुत्रों का मोह छोड़कर अभिनिष्क्रमण करनेवाली आत्मा तो बहुत विरल होती है। दीक्षा लेकर ताराबहन ताराबाई महासतीजी बनी। दीक्षा लेकर वे ज्ञान-ध्यान, त्याग-तप और संयम में, चारित्राराधना में अत्यन्त दृढ़ हो गई। दीक्षा में छोटी होती हुई भी वे बड़ी सतीजी जैसी कर्तव्य अदा करती थीं, वैरागी बहनों को पढ़ाने और सिखाने का कार्य वे स्वयं करती थीं। उनका अपना एक ही ध्येय था – मुझे कोई पण्डित या विदुषी नहीं बनना है, अपितु मुझे सभी साध्वीजी की सेवा करके कर्मक्षय करने हैं। उन्हें सिद्धान्त और तत्त्वों के अध्ययन, थोकड़े और प्रश्नों का अच्छा ज्ञान था। वे अपने से छोटी साध्वियों तथा वैरागिनों को यही कहा करती थीं कि 'अपनी साधना ऐसी होनी चाहिए कि हम शीघ्र मोक्ष (सर्व कर्ममुक्ति) प्राप्त कर सकें।'

वि. सं. २०१८ में मुंबई – कांदावाड़ी चातुर्मास के लिए आना हुआ। क्रमशः कांदावाड़ी, माटुंगा और दादर चातुर्मास करने के बाद संवत २०२१ में विलेपार्ले चातुर्मास हुआ। वहाँ उन्हें असोज महीने में ज्ञात हुआ कि गर्भाशय में कैन्सर हो गया है। इस बात की जानकारी होने पर भी उनके मन में जरा भी उद्वेग नहीं हुआ। पूछने पर प्रसन्नता से कहती थी – "इस शरीर के कैन्सर के साथ कर्म का कैन्सर हो जाए तो कितना उत्तम !"

कर्म से लड़ने हेतु केसरिया किया : अहो ! कैन्सर से क्या घबराना ? यह तो शीघ्रातिशीघ्र कर्मों को क्षय करने का, आत्म-साधना में रमण करने का और पण्डित-मरण से मरने का सिग्नल है। अपनी आत्मा को सम्बोधन करके वे कहतीं – "देखना, चेतनराजा ! इससे (कर्म के साथ युद्ध में) पीछे हटना मत।"

"देहदर्शी दुःख भोगवे, करे सुखनो उपाय।
आत्मदर्शी आत्मा, सुखमां रहे सदाय॥"

संक्षेप में, उनकी आत्मा अत्यन्त जागृत थी। इसलिए वे शूरवीर और धीर बनकर केसरिया करने के लिए सुसज्ज (तत्पर) हुई। अपनी संयम-साधना में जरा भी खामी नहीं आने देती थीं। ट्रीटमेंट अच्छा मिलने से उनका रोग सर्वथा मिट गया। संवत् २०२२ में आपने घाटकोपर चातुर्मास किया। चातुर्मास पूर्ण होते ही, अन्त में कार्तिकी पूर्णिमा

बन्धुओं ! सोचो-समझो ! इस जीव को कर्मबन्धन कराकर या करवाकर चतुर्गति में भटकाते रहनेवाला हो तो वह है - इस जीव का शरीर के प्रति राग । राग से अनेक प्रकार के पाप का बन्ध करते हो । अन्त में, वह भव-भ्रमण करता है । चाहे जितने पाप के पोटले बांधोगे और इकट्ठे करोगे, परन्तु साथ में क्या आएगा और तुम कहाँ जाओगे ? क्या इसका विचार किया है ? कहा भी है -

अमूल्य जिंदगी गुमावी, जाशो क्यां तमे ?
पापनां पोटलां बांधी, जाशो क्यां तमे ?
साधु संतने जोई मनडुं नाचे नहि; तप-त्यागनी वाते दिलडुं राचे नहि ।
मायानी (२) जालमां फसाईने जाशो क्यां तमें ? अमूल्य जिंदगी...

अमूल्य मानवजीवन में धर्माराधना नहीं करो, संत-समागम नहीं करो, केवल धन इकट्ठा करके पाप के पोटले बांधोगे तो तुम्हारा क्या होगा ? तुम्हें ऐसा विचार नहीं आता होगा, परन्तु मुझे तो तुम्हारी दया आती है । वर्तमान सरकार घी, शक्कर और अनाज आदि समस्त वस्तुओं का निर्यात करती है और दूसरी ओर गरीब को मदद करके गरीबी हटाने की बातें करती हैं । प्रश्न होता है - गरीबी कैसे मिटेगी ? भारतवर्ष में जो वस्तुएँ पैदा होती हैं, भारत की जनता उनका सुखपूर्वक उपभोग नहीं कर सकती । यहाँ जिन चीजों की तंगी बताई जाती है, इन्हीं चीजों का परदेश में निर्यात होता है । अब मैं तुम से पूछती हूँ कि तुमने पाप करके सोना, चांदी, हीरे-मोती और रुपये इकट्ठे किये, क्या उनका परलोक में निर्यात कर सकते हो ? बोलो, (साथ में) कुछ भी ले जा सकोगे ? वहाँ तो एक दमड़ी भी साथ नहीं आएगी । तुम्हारे पिताजी और पिताजी के पिताजी आदि में से कोई (परलोक में) साथ ले गया है ? नहीं । सब कुछ यहीं रह जानेवाला है ! जिसे इतना पालते-पोसते हो, वह शरीर भी यहीं रह जाएगा, फिर भी काया की माया तुम्हारे दिल से छूटती नहीं । अतः जबतक यह काया स्वस्थ और सशक्त है, तबतक उसके द्वारा पाप न करो, किन्तु धर्म कर लो । यह महंगा मानवभव व्यर्थ मत खोओ । यह मानवभव एक प्लोट जैसा है । प्लोट खरीदते हो, तब खरीदते समय कितनी शर्तें मंजूर करते हो ? मैं एक दृष्टान्त द्वारा इस तथ्य को समझाती हूँ ।

प्लोट देने से पहले शर्तें : किसी भूमि पर एक राजा को नगर बसाना था । कितने विस्तृत क्षेत्र में नगर बसाना है, यह निश्चित करके उसने जमीन के प्लोट काटे और जाहिरात की । जो इतनी शर्तें मंजूर करे, वह प्लोट ले सकता है । परन्तु ये शर्तें ऐसी थी कि इसके द्वारा प्लोट लिया नहीं जा सकता था । मान लो, एक प्लोट के नीचे ऐसी शर्त लिखी हुई हो कि प्लोट जितने वर्ष रखना हो, उतने वर्ष तक का सारा किराया पहले से भर देना है । एक वर्ष का किराया २०० रु. निश्चित किया हो और प्लोट सौ वर्ष तक रखना हो तो बीस हजार (२००००), रुपये पहले से भर देना और नीचे बताये हुए नकशे के अनुसार मकान बनाना । इस मकान में मिल्कियत हो, चाहे न हो, उसकी वृद्धि करनी

के दिन उनके मस्तक में असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई । वह पीड़ा दो दिन रहने के बाद मिट गई और फिर माघ महीने में माटुंगा पधारीं, तब वहाँ पुनः वैसी ही पीड़ा उत्पन्न हुई ।

सतीजी की सहनशीलता देखकर डोक्टरों के मस्तक भी झुक गए : जिसने रोग को दफना देने की शक्ति प्राप्त की है और असह्य पीड़ा में भी समता के सरोवर में जिनकी आत्मा रमण कर रही है, ऐसे ताराबाई महासतीजी को देखकर डोक्टरों के मुख से उद्‌गार निकल पड़े - "धन्य है, महासतीजी आपको ! आप जैसे रोगियों को इस पीड़ा के आगे पकड़ के रखना पड़ता है । क्योंकि सिरदर्द ऐसा भयंकर होता है कि अच्छे-अच्छे मनुष्य भी सहन नहीं कर सकते । इस रोग में दिमाग की नसें सिकुड़ जाती हैं और खून का संचार कम हो जाता है, तब ऐसी असह्य वेदना उठती है । फिर भी आपकी अलौकिक समता और सहनशीलता को देखकर हमारे मस्तक सहसा झुक जाते हैं ।" इस प्रकार के शब्द डोक्टर के मुख से बरबस निकल पड़ते और कोई भी डोक्टर आता तो चार्ज (फीस वगैरह) भी नहीं लेते थे ।

माघ सुदी ८, शनिवार को मंदाकिनीबाई का भव्य दीक्षा महोत्सव मनाया गया । उसके पश्चात् अपनी मृत्यु के तीन दिन पहले से मुझे कहा - "महासतीजी ! यह जीवन क्षणभंगुर है । नश्वर देह का मोह त्याज्य है । मैं बड़ी दीक्षा देखूंगी ।" ऐसे उनके गूढ संकेत को मैं समझ नहीं सकी । मैंने कहा कि "बड़ी दीक्षा तो सायन में है, आपकी तबियत अच्छी नहीं है, वहाँ तक आप कैसे आ सकोगी ?" इस पर मुझे कहा - "मैं वहाँ आनेवाली नहीं, परन्तु देखनेवाली हूँ । मुझे अब अंतिम आलोचना कराओ । मैं अब सिर्फ ढाई दिवस की मेहमान हूँ ।" दूसरे दिन मैं बड़ी दीक्षा देने के लिए जा रही थी, तब मुझे कहा - "महासतीजी ! आप जल्दी पधारना ।" उस दिन उन्होंने १०-१० मिनट पर धुन बोलनी शुरू की **"देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर-अमर-पद म्हारूं रे ।**

हृदय के रणकार के साथ वे यह धुन बोलने लगीं, तब सभी महासतीजी आँख में आंसू लाकर पूछने लगीं - "आप यह क्या बोल रही हो ?" तब उन्होंने कहा - "महासतीजी ! रुदन मत करो ! आँख में आंसू मत लाओ ।

चिन्ता करो शा काज, कोईनुं फेरवे फरतुं नथी ।
निर्माण जेहनुं जे थयुं, कोई अन्यथा करतुं नथी ॥

"मृत्यु तो जीवनरूपी झरने का अवरोधक-स्थान है । आत्मा तो अजर-अमर अविनाशी है । यह नश्वर देह एक दिन छूटनेवाला है ।" इतना कहकर पुनः अपनी धुन में मस्त हो गए । दूसरे दिन ता. २५ की सुबह को मुझे कहा - "महासतीजी ! आज दो घड़े पानी लाना । पहले काल की गौचरी पहर आने से पहले निपटा देना । कुछ भी रखना नहीं । पहनने के लिए तीन कपड़े सिले हुए तैयार हैं न ? न हों तो अभी के अभी सिला लो ।" यह सब कहने के पीछे उनका आशय यह था कि अभी मैं जानेवाली हूँ । मेरे गुरुणीजी घबरा जाएँगी, इसलिए उन्होंने सब संकेत किये ।

चाहिए। यानी प्रतिवर्ष मकान इतना-इतना बढ़ाना चाहिए। उसके रक्षण के लिए अमुक व्यवस्था करनी चाहिए। अगर इस सम्बन्ध में कोई भूल हुई तो पहले भरे हुए किराये में से दण्ड करके उसकी वसूल कर लेना। यह दण्ड कितना करना ? यह हमारी इच्छानुसार हम करेंगे। उस दण्ड की सूचना तुम्हें नहीं दी जाएगी। जिस वक्त रकम पूरी जो जाएगी, उस वक्त तुम्हारे यहाँ आएगा। उस वक्त उस घर में से तुम्हें कोई भी मिल्कियत नहीं लेना, तथैव पत्नी, पुत्र या भाई-बहन को भी याद न करना। सिपाही सीटी बजाये कि तुरंत घर छोड़कर निकल जाना पड़ेगा और ताजा कलम नीचे लिखे अनुसार है - हमारा सिपाही आए, उस समय तुम चाहे जितना (कम) किराया दोगे, यह नहीं चलेगा। वह मकान हमारी मालिकी का है। उसमें जो कुछ भी मिल्कियत होगी या कुटुम्बीजन होंगे, उस पर तुम्हारी मालिकी नहीं रहेगी। बोलो, ऐसी शर्तें मंजूर करके तुम कोई प्लोट लेने के लिए तैयार होओगे ?" (श्रोताओं में से आवाज) "नहीं, एक भी प्लोट लेने के लिए कोई तैयार नहीं होगा।" अब इस दृष्टान्त को हम मनुष्यभव पर घटित करते हैं -

कर्मराजा ने मनुष्य भवरूपी प्लोट दिया है। उसमें पहली शर्त यह है कि प्लोट जितने वर्ष रखना हो, उसका किराया पहले भर दो। पुण्योपार्जन करके मनुष्यभव का आयुष्य बांधा। उस वक्त पुण्य के रूप में किराया भर दिया। प्लोट कब्जे में लेने से पहले किराया दे दिया, इसलिए मानव का शरीर मिला। उसके साथ ही आयुष्य कर्म तथा शुभ नामकर्म, यह सब पुण्य से प्राप्त हुआ। माता के गर्भ में आकर दिनानुदिन शरीर बढ़ने लगा। सर्वप्रथम वह अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते जब जन्म होता है, तब इसमें वृद्धि होने से बड़ा हुआ। उसके रक्षण करने हेतु प्रयत्न करना होता है। उस विषय में अगर प्रमाद किया, उन्माद किया तो बाहर ही बाहर (परोक्षरूप से) जमा कर देता है, उसका पता भी नहीं पड़ता। कितने वर्ष का (उसका) आयुष्य है, उसका पता भी हमें नहीं पड़ने देता। अन्त में, जब आयुष्य पूरा होता है, तब कालरूपी सिपाही आकर सीटी बजाकर सूचित करता है कि अब (शरीररूपी) घर में से बाहर निकलो। उस मकान को बांधते समय जो कुछ कर्ज किया हो, वैर-विरोध उठाये हों, उसके साथ कुछ लेना-देना नहीं है। चाहे जितना महान् कौटुम्बिक बल हो, जगत् में (चाहे जितनी) प्रतिष्ठा जमाई हो, या अपार सम्पत्ति अर्जित की हो, मगर कोई भी पदार्थ या किसी भी मनुष्य को साथ में लिये बिना अकेले ही जाना होता है। ऐसी शर्तवाला मकान, अपना शरीर है। उस पर क्यों मोह-प्राप्त कर रहे हो ? ऐसा प्लोट कोई धर्मादे में या मुफ्त में भी दे तो भी क्या कोई लेने को तैयार होता है ? जिसमें भविष्य की मिल्कियत भी खो जाती है और मालिकी भी चली जाती है ! ऐसी कठोर शर्तें कबूल करके खरीदा हुआ शरीर कैसा अशुचिमय है ?

म्युनिसिपालिटी की कचरा भरने की मोटर जैसा यह शरीर है : म्युनिसिपालिटी की मोटर ऊपर से तो कैसी लाल चटकदार होती है ? परन्तु उसका ढक्कन खोलो तो

अन्तिम उद्‌गार - 'अब मैं खंभात नहीं आऊँगी' : "अब हम देश में जानेवाले हैं; तो चन्द्रिका की दीक्षा वैशाख महीने में अच्छी तरह देना । मैं अब खंभात आनेवाली नहीं हूँ ।" फिर कहने लगी - "मुझे अब कपड़े दो, मैं बदल लूं । फिर तुम्हें मेहनत करनी पड़ेगी ।" मैंने पूछा - "किसलिए ?" मैंने कपड़े नहीं दिये, फिर भी उन्होंने अंदर के वस्त्र तो स्वयं पहन लिये । मुझे गोलमोल भाषा में समझा दिया, पर मैं समझ नहीं सकी । यों तो तीन दिन पहले से मुझे कहा था कि "मैं अब ढाई दिन हूँ ।" मुझे अगले दिन कहा - "मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी गुरुजी की गोद में मस्तक रखकर अपने गुरुदेव पूज्य रत्नचन्द्रजी महाराज के पास जाऊँगी ।" ठीक वैसा ही हुआ ।

व्याख्यान का समय हो गया, इसलिए मैंने साध्वी वसुबाई को व्याख्यान शुरू करने के लिए भेजा । मैं ९ बजे तैयार होकर पगथियों तक गई कि मुझे कोई अदृश्य दैवी आवाज आई - 'तुझे मैंने कहा था कि मैं ढाई दिन हूँ, फिर तू कहाँ जा रही है ?' मुझे तीन-तीन बार ऐसी आवाज आई, इसलिए मैं व्याख्यान में न जाकर वहीं से लौटकर उनके मस्तक के आगे बैठी । उन्होंने कहा - "आप वापस क्यों आई ?" मैंने कहा - "मुझे ऐसी अदृश्य आवाज आई !" वे बोली - "अच्छा हुआ ।" उन्होंने मेरी गोद में अपना मस्तक रखा और मुझे कहा - "महासतीजी ! मैं नहीं मर रही हूँ, मेरा शरीर मर रहा है ? आप मेरे प्रति रागभाव मत रखना, मेरा मोह छोड़ दो । यह देह तो नश्वर है । आप हिंमत रखना ।" यों कहकर हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ रखकर बोली - "हे आदीश्वर दादा ! मुझे भव-भव में आपकी शरण होजो ।" तब मैं चौंकी, मुझे स्पष्ट ज्ञान हो गया कि मेरी ताराबाई सतीजी मुझे छोड़कर चली । अत: मैंने उन्हें नौ बजकर पैंतालीस मिनट पर या पौने दस बजे सागारी संथारा कराया । संथारे के प्रत्याख्यान लेते समय उनके मुख पर इतना अधिक हर्ष था कि बस, अब मेरी भावना पूर्ण हुई । यों तो उन्होंने ३ दिन पहले ही 'मुझे संथारा कराओ' ऐसी प्रबल भावना व्यक्त की थी, परन्तु मैं उनकी इस भावना को पूर्ण न कर सकी । जब मैंने सागारी संथारा कराने के साथ यों कहा कि - "काल आए तो यावज्जीव संथारा है", यह सुनकर उनकी अन्तरात्मा बोल उठी कि 'मैं आज भाग्यशाली बनी । मेरी गुरुणीजी ने मुझे पावन बना दी । कंटकाकीर्ण मार्ग से पीछे हटाकर मोक्ष के मार्ग पर मोड़ी । धन्य हैं, मेरे गुरुणी देव ! मैं आपसे क्षमायाचना करती हूँ । अब मुझे नवकार मंत्र सुनाओ !' इस पर से हम सब उन्हें नवकार मंत्र का शरण देने लगीं । परन्तु स्वयं तो अन्तिम श्वास तक - 'देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर अमर पद मारूँ ।' यह धून चालू रही । ता. २५ शनिवार के दिन सबेरे १० बजकर १० मिनट पर अपने आप धून बोलती-बोलती माघ वदी २ के दिन ४८ वर्ष की वय में साढ़े आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय पालकर सकल संघ की हाजरी में नश्वर शरीर का त्याग किया । जबसे दीक्षा ली थी, तभी से वे कहती थी - 'भले कम जीना हो, परन्तु पण्डित-मरण से मेरी मृत्यु हो ।' उनकी यह शुद्ध भावना साकार हुई । अल्प समय में ही उन्होंने आत्मसाधना सिद्ध कर ली ।

देखते ही घृणा हो जाती है, दुर्गन्ध आती है, इसलिए हम उस मोटर को देखते ही उससे दूर भागते हैं। इस मोटर की शोभा ऊपर से रंगे हुए पतरों से होती है, वैसे ही अपने शरीर पर चमड़ीरूपी पतरा ढका हुआ है, इससे यह सुन्दर दिखाई देता है। उस म्युनिसिपालिटी की मोटर का ढक्कन खोलते ही दुर्गन्ध आती है, मस्तक में चक्कर आने लगता है, वमन भी हो जाता है, वैसे ही इस देह में भी रक्त-मांस-पस आदि दुर्गन्धित माल भरा हुआ है, फिर भी उस पर कितना ममत्व है ? उसके लिए कितना पाप करते हो और धर्म से भी विमुख हो जाते हो ? अतः सोचो कि यह शरीर कैसा है ? 'भगवती सूत्र' के शतक ९, उद्देशक ३३ में जमालिकुमार अपनी माता के समक्ष शरीर का वर्णन करते हुए कहते हैं -

"एवं खलु अम्मयाओ माणुस्सगं सरीरं दुखाययणं, विविहवाहि सुयसंनिकेयं अट्ठि-कट्ठुट्ठियं छिराएहारु-जाल-उवणद्धसंपिणद्धं मट्टिय-भंडं व दुब्बलं, असुइ-संकिलिट्ठं अणिट्ठविय-सव्वकाल-संठप्पयं, जरा-कुणिम-जज्जर-घरं च सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मं पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सं विप्पजहियव्वं भविस्सइ।"

ऐसा है कि हे माता-पिता ! मनुष्य का शरीर दुःखों का आयतन (स्थान) है। विविध व्याधियों की उत्पत्ति की भूमि है। हड्डी-रूपी काष्ठ के आधार पर टिका हुआ है। नाड़ियों और नसों के जाल से लिपटा हुआ है, मिट्टी के कच्चे बर्तन जैसा कमजोर है, अशुचिमय-अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ है। सदा अनावस्थित है। जरा और मृत्यु का जर्जरित घट है। इसका स्वभाव है - सड़ना, पड़ना और विध्वंस होने का। यह पहले या पापी है अवश्य ही एक दिन छूटनेवाला है। निःसार तुच्छ एवं अपवित्र पदार्थों से भरे हुए इस शरीर में कस्तूरी, केसर या चन्दन जैसे सुगन्धित पदार्थ नहीं हैं, तथैव स्वर्ण, मोती, माणिक, नीलम और पन्ना जैसे दर्शनीय सुन्दर पदार्थ नहीं हैं। अपितु हड्डी, मांस, रक्त वगैरह असार पदार्थ भरे हैं। 'आचारंग सूत्र' (अ.-२, उद्दे.-५) में भी भगवान् ने कहा है -

"जहा अंतो तहा बाहिं; जहा बाहिं तहा अंतो; अंतो पूइ-देहंतराणि पासति, पुढोवी संवति पडिए पडिलेहिए।"

यह शरीर अंदर से जैसा असार है, वैसा बाहर से भी असार है; और बाहर से जैसा असार है, वैसा ही अंदर से भी असार है। बुद्धिमान् पण्डित शरीर के अंदर-अंदर की अशुचि (अशुद्धि) तथा शरीर के अंदर की स्थितियों को देखता है कि ये हमेशा अशुभ-मलादिक पदार्थ शरीर के द्वारों के बाहर निकालते रहते हैं। यह देखकर पण्डित पुरुष इसके सच्चें स्वरूप को समझकर इस शरीर पर मोह न रखे।

आशय यह है कि जैसे अशुचि से भरा हुआ घड़ा अंदर से भी अशुचिमय है और ऊपर से भी वह अशुचिमय कहलाता है, क्योंकि उसके अंदर अशुचि भरी हुई है, भले ही उसके बाहर अशुचि न हो, तो भी अंदर भरी हुई अशुचि के ... वह ... है। इसी प्रकार यह शरीर अंदर से अशुचिमय होने से असार है, ... सार है।

जानार तो जाता रह्या, सद्गुण एना सांभरे ।
लाखो लुंटावो तो मळे, मरनार पाछा ना मळे ।
जानार आग विषे नले, मरनार पाछा ना मळे ।
वैभव मळे, कीर्ति मळे, लक्ष्मी गयेली सांपडे ।
ए सौ मळे आ जगतमां, मरनार पाछा ना मळे ॥

वास्तव में, विकराल काल ने गजब किया ! वात्सल्य की वेलड़ी, विनय की बावड़ी और सेवा के सौरभयुक्त सुमन समा हमारी ताराबाई महासतीजी को क्रूर कालराजा लेकर चल पड़ा । संघ ने प्रत्येक संघ को सूचना दी । अन्तिम दर्शन के लिए मुंबई की मानव-मेदिनी उमड़ पड़ी । उनकी श्मसानयात्रा में लगभग २५ हजार मानव थे । उनका दाह संस्कार चन्दन के काष्ठ से किया गया । सकल संघ में भारी शोक छा गया । वे स्वयं उत्तम आदर्श जीवन जीकर सबको आदर्श जीवन जीने की ज्वलन्त प्रेरणा दे गई हैं । फूल मुर्झा जाता है, पर उसकी सुगन्ध रह जाती है । वैसे ही ऐसी उत्तम आत्मा नश्वर देह छोड़कर चली जाती है । किन्तु गुण की सुवास छोड़ जाती है । संयमपथ में प्रेम के पुष्प बिछानेवाले, ऐसे पू. ताराबाई महासतीजी के गुणरत्नों से परिपूर्ण जीवन में निहित गुणरूपी रत्नों की माला में से एकाध गुणरत्न लेकर अपना जीवन उनके किरणों से चमकाकर कल्याण की पगडंडी पर कदम बढ़ाएँगे, तो हमारे द्वारा उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण की कहलाएगी ।

उज्ज्वल जीवन जीवी जनारा, वात्सल्य वहेणोनी वहावता धारा ।
नयनोना तारा ने हैयाना हारा, गूंथी में गुणपुष्पोनी माला ॥

आज उनकी पुण्यतिथि के निमित्त से ८० अट्ठम (तेले) हुए हैं, तथा ५० पौषध और सामायिक की १०० पचरंगी हुई हैं । श्री संघ ने पू. ताराबाई महासती को अश्रुपूरित आँखों से श्रद्धांजलि अर्पित की थी । समय काफी हो गया है । अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १०

आषाढ़ वदी ३, बुधवार | ता. १४-७-७६

यादशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं एवं बहनों !

अनन्त करुणानिधि, विश्ववत्सल और परमतत्त्व-प्रणेता भगवान् तीर्थकर ने केवलज्ञान-केवलदर्शन होने के पश्चात् आगमवाणी प्रतिपादित की । आत्मा जब केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे केवलज्ञान से लोकालोक का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता

इसकी असारता का इससे बढ़कर क्या प्रमाण चाहिए कि इस पर लगाये हुए सुन्दर से भी सुन्दर पदार्थ भी खराब हो जाते हैं। चन्दन, केसर आदि सुगन्धित पदार्थ इस पर लगाये जाएँ तो शरीर के संसर्ग से अल्पकाल में वे भी विकृत हो जाते हैं। शरीर में डाले हुए सुन्दर से सुन्दर पकवानों की कैसी खराब परिणति होती है और कैसी विकृत वस्तु बाहर (निकलकर) आती है ? शरीर पर पहने हुए वस्त्र भी अल्पकाल में उसके संयोग से मैले हो जाते हैं। कितना असार है यह शरीर ? फिर भी कितना है इसके प्रति मोह ? अतः बुद्धिमान् इस शरीर में रहे हुए दुर्गन्धित पदार्थों तथा शरीर के अंदर की अवस्थाओं को देखकर, इसके सत्य स्वरूप को समझकर इस शरीर पर मोह न रखें और जहाँ तक शक्ति है, स्वस्थता है, वहाँ तक इस शरीर से तप, संयम, त्याग आदि (धर्माराधना) कार्य निकलवालें।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

वीतशोका नगरी में बल नामक न्याय नीतिमान् राजा राज्य करते हैं। जैसे राजा का प्रजा के प्रति प्रेम है, वैसे प्रजा का भी राजा के प्रति प्रेम है। राजा की कीर्ति अत्यन्त दूर-दूर तक व्याप्त है। *"तस्स धारणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्था।"* उस बलराजा के अन्तःपुर में (धारणी-प्रमुख) एक हजार रानियाँ थीं। राजा आदर्श और गुणवान् था, तो रानियाँ भी गुणवती थीं। उन एक हजार रानियों में धारणी मुख्य रानी थी।

बन्धुओं ! स्त्री घर का श्रृंगार है। घर चाहे जितना सुंदर हो, पुरुष चाहे करोड़ों रुपये कमाता हो, परन्तु घर में स्त्री (गुणवती और दक्ष) न हो तो घर की कोई व्यवस्था नहीं होती। (गुणवती) स्त्री घर को सुव्यवस्थित रखती है। घर में कुछ भी (आवश्यक वस्तुएँ) न हो, तो भी सुशील गृहिणी घर को अच्छा दिखाती है। पुण्य का उदय हो तो पत्नी सुघड़ और अच्छी मिलती है और पापकर्म का उदय हो तो खराब मिलती है। पुण्योदय हो तो कैसी पत्नी मिलती है ? इसके लिए कहा है –

"कार्येसु मंत्री, करणेषु दासी, धर्मेसु पत्नी क्षमया च धात्री।
भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा, रंगे सखी लक्ष्मण ! सा प्रिया मे॥"

जब भी पति के किसी कार्य में उलझन आए, तब पतिव्रता स्त्री उस कार्य में मित्रवत् परामर्श देती है, गृहकार्य में भी मंत्री की भूमिका निभाती है। अर्थात् पति के किसी कार्य में कोई उलझन आए उस समय पतिव्रता स्त्री गुप्तमंत्रणा करके उचित हल बताती है। कोई भी गृहकार्य करने में वह नहीं हिचकिचाती। छोटे-से छोटा कर्म करने में वह आगे रहती है। वह पति को धर्ममार्ग में प्रेरित करती है। धर्ममाता के समान वह क्षमाशील, कष्ट सहिष्णु और सहनशील होती है। पति को भोजन कराते समय वह माता की भूमिका निभाती है। वह भोजन के समय इधर-उधर की गृहकलह की या अपनी शिकायत की

अन्तिम उद्गार - 'अब मैं खंभात नहीं आऊँगी' : "अब हम देश में जानेवाले हैं; तो चन्द्रिका की दीक्षा वैशाख महीने में अच्छी तरह देना । मैं अब खंभात आनेवाली नहीं हूँ ।" फिर कहने लगी - "मुझे अब कपड़े दो, मैं बदल लूं । फिर तुम्हें मेहनत करनी पड़ेगी ।" मैंने पूछा - "किसलिए ?" मैंने कपड़े नहीं दिये, फिर भी उन्होंने अंदर के वस्त्र तो स्वयं पहन लिये । मुझे गोलमोल भाषा में समझा दिया, पर मैं समझ नहीं सकी । यों तो तीन दिन पहले से मुझे कहा था कि "मैं अब ढाई दिन हूँ ।" मुझे अगले दिन कहा - "मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी गुरुजी की गोद में मस्तक रखकर अपने गुरुदेव पूज्य रत्नचन्द्रजी महाराज के पास जाऊँगी ।" ठीक वैसा ही हुआ ।

व्याख्यान का समय हो गया, इसलिए मैंने साध्वी वसुबाई को व्याख्यान शुरू करने के लिए भेजा । मैं ९ बजे तैयार होकर पगथियों तक गई कि मुझे कोई अदृश्य दैवी आवाज आई - 'तुझे मैंने कहा था कि मैं ढाई दिन हूँ, फिर तू कहाँ जा रही है ?' मुझे तीन-तीन बार ऐसी आवाज आई, इसलिए मैं व्याख्यान में न जाकर वहीं से लौटकर उनके मस्तक के आगे बैठी । उन्होंने कहा - "आप वापस क्यों आई ?" मैंने कहा - "मुझे ऐसी अदृश्य आवाज आई !" वे बोली - "अच्छा हुआ ।" उन्होंने मेरी गोद में अपना मस्तक रखा और मुझे कहा - "महासतीजी ! मैं नहीं मर रही हूँ, मेरा शरीर मर रहा है ? आप मेरे प्रति रागभाव मत रखना, मेरा मोह छोड़ दो । यह देह तो नश्वर है । आप हिंमत रखना ।" यों कहकर हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ रखकर बोली - "हे आदीश्वर दादा ! मुझे भव-भव में आपकी शरण होजो ।" तब मैं चौंकी, मुझे स्पष्ट ज्ञान हो गया कि मेरी ताराबाई सतीजी मुझे छोड़कर चली । अतः मैंने उन्हें नौ बजकर पैंतालीस मिनट पर या पौने दस बजे सागारी संथारा कराया । संथारे के प्रत्याख्यान लेते समय उनके मुख पर इतना अधिक हर्ष था कि बस, अब मेरी भावना पूर्ण हुई । यों तो उन्होंने ३ दिन पहले ही 'मुझे संथारा कराओ' ऐसी प्रबल भावना व्यक्त की थी, परन्तु मैं उनकी इस भावना को पूर्ण न कर सकी । जब मैंने सागारी संथारा कराने के साथ यों कहा कि - "काल आए तो यावज्जीव संथारा है", यह सुनकर उनकी अन्तरात्मा बोल उठी कि 'मैं आज भाग्यशाली बनी । मेरी गुरुणीजी ने मुझे पावन बना दी । कंटकाकीर्ण मार्ग से पीछे हटाकर मोक्ष के मार्ग पर मोड़ी । धन्य हैं, मेरे गुरुणी देव ! मैं आपसे क्षमायाचना करती हूँ । अब मुझे नवकार मंत्र सुनाओ !' इस पर से हम सब उन्हें नवकार मंत्र का शरण देने लगीं । परन्तु स्वयं तो अन्तिम श्वास तक - 'देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर अमर पद मारूँ ।' यह धून चालू रही । ता. २५ शनिवार के दिन सबेरे १० बजकर १० मिनट पर अपने आप धून बोलती-बोलती माघ वदी २ के दिन ४८ वर्ष की वय में साढ़े आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय पालकर सकल संघ की हाजरी में नश्वर शरीर का त्याग किया । जबसे दीक्षा ली थी, तभी से वे कहती थी - 'भले कम जीना हो, परन्तु पण्डित-मरण से मेरी मृत्यु हो ।' उनकी यह शुद्ध भावना साकार हुई । अल्प समय में ही उन्होंने आत्मसाधना सिद्ध कर ली ।

बातें नहीं करती । शान्त, स्वस्थ, एवं वात्सल्यभाव से प्रेरित होकर वह पति को भोजन कराती है । शयन के समय वह रम्भा की भूमिका अदा करती है । पुण्योदय के फलस्वरूप ऐसी धर्मपत्नी मिलती है । इसके विपरीत जब पाप का उदय हो तो इन गुणों से विपरीत आचरणवाली पत्नी मिलती है । इसके लिए एक विचारक ने कहा है - *"कार्येषु कुत्री, भुक्तेषु डवक्रा, शयनेषु भवका ।"* इसका आशय यह है कि जब पति दुकान या फैक्ट्री आदि व्यवसायिक कार्यों से घबराया, उलझन में पड़ा या थका हुआ आए, ऐसी स्थिति में घर आते ही पत्नी कुतिया की तरह भौंकने लगती है । पति के कार्य में हिस्सेदार न बने, पति के भोजन करने से पहले ही दिन अभी काफी हो तो भी स्वयं भोजन कर ले । पति रात्रि में शयन करने जाए, उस समय इधर-उधर की शिकायत करने लगे, ज्यों-त्यों अंटशंट बोले, 'तुम्हारी माँ ने आज ऐसा कहा, वैसा कहा' - वह बड़-बड़ करती रहे, उसका रेडियो बंद ही न हो । साथ ही पति पर आये हुए दुःख में स्वयं हिस्सेदार न बने, अपितु पति को हैरान-परेशान किया करे, आर्थिक संकट में डाले । यह है पाप का उदय । जहाँ पुण्य का उदय हो, वहाँ पत्नी घर के सब कार्य सुधारकर पति का गौरव बढ़ाती है । बलराजा अत्यन्त पुण्यवान थे । उनकी एक हजार रानियाँ बहुत ही विनयवती और आदर्श गृहिणी के समस्त गुणों से युक्त थीं । जिसकी पत्नी अच्छी होती है, उसका संसार स्वर्गतुल्य बन जाता है । इसके विपरीत पत्नी कर्कशा व कलहकारिणी हो तो उसका संसार नरकसम बन जाता है । एक दृष्टान्त द्वारा इसे समझाती हूँ ।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

पुण्यवती और पापिनी स्त्री कैसी-कैसी होती है ? : एक गाँव में पति, पत्नी और एक पुत्री, यों तीन व्यक्तियों का परिवार था । ये सब अत्यन्त प्रेम से रहते थे । पत्नी बहुत ही धर्मसंस्कारी एवं धर्मिष्ठ थी । इस कारण अपनी पुत्री के जीवन में अच्छे धर्मसंस्कारों का सिंचन करती थी । पुत्री भी अतीव रूपवती और गुणवती थी । प्रायः देखा जाता है कि किसी व्यक्ति में रूप तो होता है, पर गुण नहीं होते, जबकि कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिनमें गुण तो होते हैं, पर रूप नहीं होता । इस लड़की में रूप और गुण दोनों का सुमेल था । इस लड़की का नाम था दयादेवी । वास्तव में, इसका जैसा नाम था, तदनुरूप दया की देवी थी । इसके नाम का महत्त्व तो इसके काम से मालूम होगा, यह बात आगे आएगी । दयादेवी जब ८ वर्ष की हुई, तभी अचानक इसकी माता बीमार पड़ी और सिर्फ दो दिनों में ही वह मृत्यु को प्राप्त हुई । दयादेवी छोटी थी, परन्तु बहुत होशियार थी । माता की अकस्मात् मृत्यु से इसे बहुत आघात पहुँचा और उसके पिताजी को भी खूब आघात लगा । दयादेवी छाती मजबूत करके पिताजी को बहुत आश्वासन देती थी, हिंमत बंधाती थी, घर का समस्त कार्य वह स्वयं करती थी । सुबह का कामकाज निपटाकर वह जंगल में गायें चराने जाती थी । दोपहर में वहाँ से लौटकर रसोई बनाती थी । पिताजी को भोजन कराकर, वह स्वयं भोजन करती थी । शाम को फिर वह गायें चराने जाती थी । इस प्रकार सुबह से लेकर देर रात तक घर का तमाम

श्री शारदा रत्न विविधलक्षी चेरीटेबल ट्रस्ट

श्री शारदा प्रवचन संग्रह समिति सं. २०४८ में स्थापना हुई तब से बहुत पुरुषार्थ करके पू. गुरुणीमैया श्री शारदाबाई म. के गुजराती किताबों का एक के बाद एक हिन्दी में प्रकाशित करके जिन शासन का गौरव बढ़या है । 'शारदा शिरोमणी' कांदावाडी संघने प्रकाशित किया, बाद में 'सफल सुकानी', 'शारदा सिद्धि', 'शारदा रत्न', 'शारदा ज्योत', 'दीवादांडी' और 'शारदा-शिखर' यह सात किताबें हिन्दी में प्रकाशित होकर समाज को मिली है । जो किताबों की माँग दिन ब दिन बढ़ती ही रहती है और ये किताबे कश्मीर से कन्याकुमारी तक पहुँची है । ये ज्ञान प्रचार और प्रसार का भगीरथ कार्य बहुत ही बढिया है । उसके लिए हमारा ट्रस्ट हर्ष महसूस करता है । मांगीलालजी, नरेन्द्रभाई रोशनलालजी, नानालालजी बाबुलालजी आदि समिति में काम करके जो योगदान दे रहे है उसके लिए आप सब का बहुत शुक्रिया मानते है । ऐसे सुकार्य करने के लिए शासनदेवं गुरुवर्यो आपको शक्ति प्रदान करे वहीं अंतर की भावना ।

ट्रस्टी

विनयचंद्र एम. देसाई

कृष्णकांत एम. पटेल

जयंतिलाल के. पटेल

अशोकभाई वी. पटेल

कामकाज स्वयं अकेली करती थी। पिताजी की भी खूब सेवा करती थी। ऐसी गुणवान् पुत्री के प्रति पिता के दिल में अपार वात्सल्य हो, यह स्वाभाविक है। वह बहुत ही कामकाज करती थी। आखिर तो वह बालिका ही थी न ? रात्रि में बहुत थक जाती थी, कभी-कभी तो अकेली होने से घबरा जाती थी।

अपर माता की चाह करती पुत्री : एक दिन दयादेवी ने अपने पिता से कहा - "पिताजी ! आप पुनर्विवाह करिए, तो मेरी माँ आएगी। मैं गायें चराने जाऊँगी तो वह रसोई बना लेगी और मुझे माँ का लाड़प्यार मिलेगा।" पिताजी पुनर्विवाह करेंगे और नई माँ आएगी, वह इसे प्रेम देगी या त्रास देगी, इसकी इस फूल-सी कोमल दयादेवी को क्या पता ? उसके पिता ने कहा - "बेटी ! नई माँ आएगी तो तुझे बहुत दुःख होगा। मुझे लग्न (विवाह) नहीं करना है।" परन्तु (भोलीभाली) दया कहती है - "आपको (पुनः) विवाह करना ही पड़ेगा।" लड़की ने बहुत जिद की, तब उसके पिता के मन में विचार हुआ - 'बेचारी अकेली लड़की को कितना काम करना पड़ता है ? इस अपेक्षा से मैं पुनः विवाह करूँ तो इसे सहारा मिले।' यों सोचकर पिता ने पुनः लग्न करने का निर्णय किया।

अपर माता ने दया को भयंकर त्रास दिया : बन्धुओं ! जगत् में प्रत्येक मानव सुख के लिए विविध प्रवृत्तियाँ करता है, परन्तु ये प्रवृत्तियाँ प्रायः दुःखरूप और उपाधिरूप होती हैं, इसीका नाम संसार है। दयादेवी के पिता ने पुनर्विवाह किया। घर में दयादेवी की सौतेली माँ आई। दया के मन में अपार हर्ष है कि अब मुझे शान्ति मिलेगी। परन्तु सौतेली माँ दयादेवी के लिए सहायरूप होती है या त्रासरूप यह देखिए ! उसका नाम ही है सौतेली माँ। ओरमन का अर्थ है - जिसका मन और वानी अलग हो। यह नई माता सहायरूप होती तो दूर रही, उलटे वह कैसे-कैसे नये-नये (कठोर) आदेश देने लगी। शादी करके इस घर में आने के बाद एक सप्ताह तक तो ठीक चला। दयादेवी यों समझती थी कि अब मेरी नई माता मेरे काम में सहायक बनेगी, परन्तु उसकी यह धारणा गलत निकली। उलटे, अब वह दयादेवी पर ओर्डर करने लगी। एक मिनट भी उसे शान्ति से नहीं बैठने देती थी। काम करने में थोड़ी-सी देर हो जाती तो उसे धमकाती और मारपीट करती। खाना-पीना भी पेटभर नहीं देती थी। फूल-सी कोमल दयादेवी अत्यन्त उलझन में पड़ गई। परन्तु अब क्या हो ? वह चुपचाप रोने लगी, परन्तु पिताजी के समक्ष इस विषय में कुछ भी बात नहीं करती थी। उसका हृदय (दुःख से) भर आता, तब एकान्त में बैठकर विचार करती कि 'अपने सुख के लिए मैंने ही (चलकर) पिताजी को दूसरी शादी करने के लिए विनंती की। पिताजी ने मेरे आग्रहवश शादी की, परन्तु मुझे तो सुख के बदले दुःख मिला। मगर इसमें दूसरे का क्या दोष ? मेरे ही अशुभ कर्म उदय में आए हैं, तो मुझे शान्ति से भोगना चाहिए। भोगे बिना कोई छुटकारा नहीं है। दूसरे तो निमित्त मात्र हैं।'

बालिका की नागदेव ने परीक्षा की : दयादेवी प्रतिदिन गायें चराने जाती थी। दोपहर में थकी-मांदी घर आती तो सौतेली माँ उसे सूखी रोटी का टुकड़ा और छाछ खाने

को देती, उसे वह खा लेती । यों करते - करते वह १२ वर्ष की हो गई । एक दिन दया गाय चराने गई । मध्याह्न का समय था । जंगल में एक भी पेड़ नहीं था । वह घास पर बैठी थी, आसपास गायें चर रही थीं । इतने में एक बड़ा भारी सर्प उसके पास आया । उसकी लाल-लाल आँखें थीं । वह जीभ बाहर निकालकर फुफकार रहा था । उसकी फुफकार से अच्छे-अच्छे लोग दूर भाग जाते हैं, फिर इस बारह वर्ष की बालिका की क्या सामर्थ्य थी ? (परन्तु वह दूर भागने के लिए उद्यत हुई तभी) नागराज मनुष्य भाषा में बोला - "बेटी ! इस समय मैं तेरी शरण में आया हूँ । तू मेरा रक्षण कर ।" सर्प को देखकर दयादेवी घबरा गई । नागराज ने कहा - "बेटी ! तू मेरे से जरा भी मत डर । मैं नागकुमार देवाधिष्ठित हूँ । परन्तु मदारी और मंत्रदारी मेरे पीछे पड़े हैं । उसके मंत्र के अधिष्ठायक देव की आज्ञा का भंग करने में असमर्थ हूँ । अतः तू मेरी रक्षा कर । मुझे जल्दी से कहीं छिपा दे । अभी वे लोग (मुझे पकड़ने के लिए) आ पहुँचेंगे । इसलिए विलम्ब मत कर ।"

दयादेवी को एक तरफ तो नाग का डर लगा, दूसरी ओर उसके दिल में दया का झरना फूट पड़ा । मन ही मन सोचा - वैसे ही मुझे अपने जीवन में क्या सुख है ? जीती हुई भी मैं मृतवत् हूँ । अतः अच्छा है, मैं एक जीव को जीवनदान देने का लाभ ले लूं । तुरंत ही दयादेवी ने अपनी साड़ी का पल्ला आगे रखकर कहा - "नागबापा ! आ जाओ इस पर ।" नाग ने कहा - "बेटी ! तेरी गोद में (छिपाने से) तो वे लोग मुझे देख लेंगे । योंकर, तू अपने केशों में (जूड़े में) मुझे लपट ले । गोद (खोले) में नाग लेना अच्छा, किन्तु जूड़े में लेना अच्छा नहीं । फिर भी दयादेवी ने जूड़े को नागदेव के सामने कर दिया । नागदेव उससे जूड़े से (सूक्ष्मरूप धारण करके) लिपट गये । अब जूड़े से लिपटे सर्प को छिपाने हेतु मस्तक पर साड़ी ओढ़कर दयादेवी बैठी । अब वे मंत्रवादी आयेंगे और क्या होगा ? यह भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ११

आषाढ़ वदी ४, गुरुवार | ता. १५-७-७६

स्वभाव में डटो, वि आचरण में लाओ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शास्त्रकार भगवान् जगत् के जीवों के उद्धार के लिए ढिंढोरा पीट कर कहते हैं - "हे भव्यजीवों ! अगर तुम्हें इस पंचमकाल में सुख चाहिए तो धर्म करो ।" *"दुःखं पापात्, सुखं धर्मात्"* - पाप से दुःख मिलता है और धर्म से सुख । ऐसी सुन्दर और युक्तिसंगत बात समझाने पर भी कितने ही जीवों में धर्माचरण

अद्‌भुत शासन दीपावक, प्रवचन प्रभावक, मोक्षमार्ग के अखंड उपदेशक, शासन का छत्र, स्नेह का शिवालय, जैनशासन का पीठ रहबर, स्थंभनपुरी का स्थंभ, शासन-गगन का चमकता चाँद, वीर के वारसदार, जीवन-नैया के नाविक, आह्लादकारी स्मृतिओं के सर्जक, कुशल कारीगर, जैनों की जवाहीर, धर्मशासन की शान, धर्म के पथदर्शक, सर्वहित-चिंतक, सौम्यता के शिखर, खंभात की ख्याति बढ़ानेवाले, प्रेरणा की प्याऊ, धर्ममार्ग के देशक और दर्शक, गुणरत्न रत्नाकर, कलिकाल में साक्षात् सरस्वती का अवतार, शासन का स्तंभ समान और संघ के सूत्रधार, श्रुतज्ञान की गंगोत्री के वाहक, गुजरात-सौराष्ट्र के वल्लभवाणी के जादुगर, शासन का शणगार, नितनया का अणगार, प्रवचन के पारसमणि, शासन शिरोमणि, ज्ञान के गुणमणि, दर्शन के दिनमणि, चारित्र चूडामणि, प्रतिभाशाली, अनुभव के लब्धि, तपत्याग की तरवरती संयम मूर्ति, हजारो के हितस्वी, करोडें के कल्याणकामी, वात्सल्य वारिधि, करुणा और अहिंसा के अवतारी, सात्त्विकता और सरलता की मूर्ति, इस युग के एक भाग्यवान विभुति, लोकप्रिय सतीजो, जिनशासन की ज्वलंत ज्योति, वात्सल्य की वीरडी, जीवनबाग का बागवान, जीवनकला के कुशल शिल्पी, महावीर के सच्चे अनुयायी, गुजरात-सौराष्ट्र के मरकत-मणि, प्रशांत मूर्ति, यशस्वी और यशनामी, निराभिमानता की निधि, सम्यक्त्व, रत्नझवेरी, अद्वितीय पुण्य प्रभावी, सहनशीलता के स्वामी, स्वाध्याय की सेज पर मुनिजीवन की मौज उडाते, लाखों के लाडले, तेजस्वी तारिका, गुणों की गंगा, विश्रांति का पेड़, परोपकार की प्रतिमा, भव्यजीवों के तारणहार, कल्याण के रस्ते को बनानेवाले, शासन के हीरा, कुथीर को कंचन करनेवाले, वीरल व्यक्तित्व को पानेवाला, वीरल वीरांगना, कांतिवंत कोहीनूर हीरा, बेरिस्टर जैसे बुद्धिमान धर्मदाता, मोक्षमार्ग के फरिस्ता, पावनकारी प्रतिमा, वचनसिद्धि को पानेवाला, दया के दीपक, निखालसता का अजोड़ नमूना, भारत के भानु, ज्ञानगंगा का पवित्र झरना, कलियुग का कल्पवृक्ष, अनंतानंत उपकारी, ममतालु मैया, गौरवशाली गुरुणीदेव - ये विराट गुण-वैभव के स्वामी, विरल विशेष गुणों के सुभग संगम, ख्यातनाम सतीजी यानी महाश्रमणी बा.ब्र. विदुषी

पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी

करने की रुचि जागृत नहीं होती। जबकि उत्तम जीव अपने आप समझकर धर्माचरण करते हैं। मध्यम जीव प्रेरणा करने से धर्म करते हैं और अधमजीव प्रेरणा करने पर भी धर्म नहीं करते। धर्म के प्रति सहज प्रेमभाव से धर्म हो सकता है, वह धर्म आत्मा को भवसागर से पार उतारता है और जो (पुण्यात्मक) धर्म सांसारिक सुख-सुविधाओं के प्रति रागभाव से होता है, वह आत्मा को भवाटवी में भ्रमण कराता है। वह भवों का विसर्जन करने के बदले नये-नये भवों का सर्जन करता है।

बन्धुओं! कनक, कामिनी और कीर्ति के प्रति रागभाव से तो मेरे और तुम्हारे जीव ने अनन्तवार धर्म किया, मगर मोक्ष के प्रति प्रेमभाव से इस जीव ने एकाधवार भी धर्म किया हो, ऐसा अपनी आत्मा की वर्तमान दशा पर से मालूम नहीं होता। धर्म (आत्म धर्माचरण) करे और आत्मा की दशा पलटे नहीं, क्या उसे वास्तविक धर्म किया कहा जा सकता है? धर्माचरण करें और आपका विचार, वाणी और व्यवहार सुधरे नहीं, तो उसे धर्म किया कैसे कहा जा सकता है? भोजन करें और भूख मिटे नहीं तो, यह भोजन किया किस काम का? दवा सेवन करें और रोग न मिटे तो दवा लेने का प्रयोजन क्या? पानी पीयें और प्यास न बुझे तो पानी पीना किस काम का? इसी प्रकार धर्म तो बहुत करें, किन्तु स्वभाव न सुधरे, विचार और जीवन न सुधरे तो धर्म करने का क्या अर्थ?

सत्य समझ कर धर्म करो : जब तुम्हें यह प्रतीत होगा कि धर्म मोक्ष-सुख देनेवाला है, धर्म परम हितकर है, धर्म मेरा सच्चा और शाश्वत धन है, यह परम आदरणीय और उपादेय है, यह अचिन्त्य-चिन्तामणि है, धर्म कामधेनु, कल्पवृक्ष और कामकुम्भ समान है। वह माता है, पिता है, बान्धव है, धर्म के प्रति ऐसा सद्भाव रखकर धर्म किया जाए तो मानवजीवन धन्य-धन्य और सार्थक हो जाय। अतः किसी भी प्रकार के बदले की आशा न रखकर निष्काम, निःस्पृहभाव से धर्म करो। ऐसा उत्तम मानवभव (मनुष्य जन्म) पाकर धर्म मेरा परम और अनिवार्य कर्तव्य है, ऐसा मानकर धर्म करो। जैसे मछली को पानी के बिना अन्यत्र कहीं भी चैन नहीं पड़ता, वैसे ही सच्चे धर्मप्रेमी को धर्म के सिवाय कहीं भी चैन नहीं पड़ता। इसीलिए उत्तम पुरुष धर्म के प्रति सहज प्रेम से अपने आप ही धर्माचरण करते हैं, मध्यम पुरुषों को कोई प्रेरणा करे तो वे धर्म करते हैं और अधम पुरुषों को कोई धर्म करने की बार-बार प्रेरणा करे तो भी धर्म नहीं करते। अतः धर्म आपके जीवन में चन्दन के साथ उसकी सौरभ के समान ओतप्रोत हो जाना चाहिए। जैसे चन्दन की सुगन्ध चन्दन से पृथक् नहीं होती, वैसे ही धर्मी से धर्म अलग नहीं होना चाहिए। शरीर की छाया, शरीर से अलग नहीं होती, वैसे ही धर्म धर्मात्मा से अलग नहीं पड़ना चाहिए। जीवन में धर्म अस्थि-मज्जावत् बन जाना चाहिए। जीवन में चाहे जितनी कठिनाइयाँ, विपदाएँ आएँ, परन्तु धर्म (जीवन से) छूटना नहीं चाहिए। भले ही संसार का समस्त सुख चला जाए और तो और यह शरीर भी प्रज्वलित हो उठे, तो भी धर्म (जीवन से) छूटना नहीं चाहिए। अगर धर्म पास में है, तो मरने के बाद भी उत्तम सुख के स्थान उसके लिए तैयार रहते हैं।

अब प्रतिदिन वह गायें चराने जंगल में जाती और शाम होते ही वापस आती, तब बगीचा भी उसके साथ ही साथ रहता था। वह घर में जाती तो बगीचा भी घर पर छत्र की तरह अधर रहता था। ऐसा मालूम होता था, मानो मकान पर छत्र धारण करके रखा हो।

इस प्रकार प्रतिदिन बगीचा उसके साथ ही साथ रहने लगा। उसके घर पर भी बगीचा (अधर स्थित हुआ) दिखाई देता था। यह देखकर लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न होता था कि यह क्या है? लोग कहने लगे - "यह लड़की कोई पुण्यवान या भाग्यशाली मालूम होती है।" स्वाभाविक रूप से लोग दयादेवी की खूब प्रशंसा करने लगे। उसकी प्रशंसा सुनकर उसकी सौतेली माँ ईर्ष्या की आग से जलने लगी। एक दिन पूछ बैठी - "छोकरी! यह सब क्या नाटक कर रही है तू?" इस पर दयादेवी कहती - "माँ! मैं कुछ नहीं करती! मुझे कुछ भी पता नहीं है, ऐसा क्यों होता है?"

एक दिन दयादेवी गायें चराने गई थी। बगीचे में एक तरफ हरा घास खूब पैदा होता था, इस कारण गायों को हरा घास चरने के लिए अधिक दूर नहीं जाना पड़ता था। फलतः गायें नजदीक ही चर रही थीं। यह देखकर दयादेवी बगीचे में मौजूद एक बेंच पर निश्चित होकर सो गई। उसे गाढ़ निद्रा आ गई। उस समय पाटलीपुत्र का राजा जितशत्रु किसी शत्रु (राज्य) पर विजय प्राप्त करके अपने नगर की ओर जा रहा था। वह हाथी, घोड़े, पैदल और रथ आदि से युक्त विशाल सेना लेकर इस रास्ते से निकला। रास्ते में यह सुन्दर बगीचा देखकर उसने मन में सोचा - 'हम इस रास्ते से गये, तब ऐसा सुन्दर बगीचा यहाँ नहीं था। एक भी वृक्ष नहीं था। फिर इस बगीचे को किसने बनाया होगा? कितना सुन्दर, मनोरम्य है यह?' बगीचे की शोभा देखकर उसकी छाया में विश्राम लेने के लिए राजा ने वहाँ पड़ाव डाला। हाथी, घोड़े, बैल आदि सबको बगीचे के वृक्षों के साथ बांध दिये।

बगीचे में राजा की सेना के ठहरने से बहुत ही शोर होने लगा। अतः दयादेवी एकदम हड़बड़ा कर जाग उठी। चारों ओर हाथी, घोड़े, बैल आदि के होने से उसे अपनी गायें वहाँ पर दिखाई नहीं दीं। इस कारण वह घबरा गई। हाथी, घोड़े आदि को देखकर गायें डर कर दूर चली गई थीं। अतएव दयादेवी एकदम खड़ी होकर दूर चली गई अपनी गायों को वापस लाने के लिए दौड़ी। इस कारण बगीचा भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। वृक्षों से बांधे हुए हाथी, घोड़े, बैल भी दौड़ने लगे। राजा को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यह क्या हुआ? ऐसा तो मैंने अपनी जिंदगी में कभी देखा नहीं! मंत्री भी आश्चर्यचकित हो गया। राजा ने मंत्री से कहा - "प्रधानजी! यह सब क्या आश्चर्यजनक घटना है? इसकी तलाश करो कि ऐसा किस कारण हो रहा है?" प्रधान बुद्धिमान था। उसने कहा - "राजन्! हमलोग यहाँ आये थे, तब वह लड़की बेंच पर सोई हुई थी, इस समय वह दौड़ रही है। इसलिए मेरा अनुमान है कि इस लड़की के पीछे-पीछे यह सब दौड़ रहे हैं।" राजा ने कहा - "तो फिर इस लड़की को बुलाकर पूछो।" अतः प्रधान ने जोर से आवाज देकर उससे कहा - "बहन! तू खड़ी रह।" अब वह खड़ी रहेगी या नहीं? आगे क्या घटना घटित होगी? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।"

आप अत्यन्त धर्माचरण कर रहे हैं, उस दौरान कदाचित् कष्ट आ पड़े, तो उससे जरा भी घबराना नहीं, क्योंकि पूर्वभव में आपने जो पाप (अशुभ कर्म) किये हैं, वे समय आने (अवाधा काल पूरा होने) पर उदय में आते हैं, ऐसा समझकर उक्त दुःख से जरा भी घवराये विना धर्म के साथ वरावर चिपके रहना चाहिए। धर्म की पूंजी पास में है, तो अन्त में सवकुछ अच्छा ही होनेवाला है, ऐसी दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए। केवल उपाश्रय में आने से ही धर्म हो सकता है, ऐसी (एकान्त) वात नहीं है, उपाश्रय के वाहर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की सुवास व्याप्त रहनी चाहिए। खाते-पीते, उठते-वैठते, सोते-जागते, व्यापार-धंधा करते, जीवन् के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म साथ में रहना चाहिए। एक क्षण भी धर्म आपसे अलग नहीं पड़ना चाहिए। किन्तु धर्म करनेवाले को धर्म का वास्तविक स्वरूप समझ लेना चाहिए। साथ ही, धर्म करने के साधनों को भी पहचानना चाहिए। अपना मेलजोल, या संग भी धर्मी मनुष्य के साथ रखना चाहिए। धर्म के सम्वन्ध में वाचन और उसका अभ्यास भी करते रहना चाहिए। किसी भी प्रकार के प्रलोभन और भय के विना धर्माचरण हो तो आत्मा का शीघ्र उत्थान होता है। अतः भौतिक सुख के लिए नहीं, किन्तु आत्मिक सुख के लिए धर्म करने की आवश्यकता है।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। वीतशोका नगरी में वलराजा राज्य करते हैं। उसके अधीन अनेक छोटे-वड़े गाँव है। अनेक वड़े-वड़े नगर भी हैं। वलराजा को इतने राज्य से संतोष है। उनको दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करके अपना राज्य वढ़ाने की, या दूसरे राज्यों को हथियाने की किसी प्रकार की लालसा या तृष्णा नहीं है। उनके अन्तःपुर में रूप के अम्वार-सम तथा अप्सरा तुल्य एक हजार रानियाँ हैं। वे भी अत्यन्त विनीत, सुशील और संस्कारी हैं, शीलवती और गुणवती हैं। रूप हो, किन्तु गुण न हो तो उस व्यक्ति की कोई कीमत नहीं होती। संस्कृत के एक श्लोक द्वारा नीतिकार इसी तथ्य को उजागर करते हैं -

अगुणस्य हतं रूपथशीलस्य हतं कुलम् ।
असिद्धेपु हता विद्या, अभोगस्य हतं धनम् ॥

"जिसके पास गुण नहीं है, उसका स्वरूप नष्ट हो जाता है, जिसके पास शील-सदाचार नहीं है, उसका कुल नष्ट हो जाता है, जिसके पास सिद्धियाँ नहीं हैं, उसकी विद्या का नाश हो जाता है, और जो (आवश्यकतानुसार) उपभोग नहीं करता, उसका धन नष्ट हो जाता है।"

वलराजा की सभी रानियाँ रूप और गुण से सम्पन्न थीं। उनकी एक हजार रानियों में धारिणी रानी प्रमुख थी। उसकी दृष्टि विशाल और हृदय उदार था। वहनों को यों लगता होगा कि धारणी रानी मुख्य पट्टरानी थी, वह ९९९ रानियों में हेड थी, तो उसे कितना सुख होगा ? मेरी वहनों ! दुनिया में वड़ा वनना सरल है, परन्तु वड़प्पन के कर्तव्यों का

व्याख्यान - १२

आषाढ़ वदी ५, शुक्रवार | ता. १६-७-७६

आत्मशक्ति का उपयोग : स्वभाव में या विभाव में ?

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, समता के साधक, विषयों के निवारक, ममता के मारक और स्याद्वाद के सर्जक भगवान् महावीर ने 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' के आठवें अध्ययन में गूढ़ भावों की प्ररूपणा की है। ये गूढ़ भाव हमें कब समझ में आ सकते हैं ? जब आत्मा विभावों का विस्मरण करके स्वभाव के घर में आएगी तभी। आत्मा जब स्वभाव में आती है, तब इसे अपना भान होता है। देवों को भी दुर्लभ मानवभव प्राप्त करके मानव को आत्मा का विचार करना है। आत्मा के विचार का अर्थ है - आत्मा के स्व-भाव का विचार। ज्ञान और दर्शन *(अव्याबाध सुख और आत्मशक्ति)* ये आत्मा के स्वभाव हैं। आत्मा की सुरक्षा स्व-भाव में रहने में है। विभाव में जाने से जीव को विपत्तियों का पार नहीं रहता। जो आत्मा सदा स्व-भाव में रहता है, वह महासुखी हो जाता है। इसके विपरीत विभाव में जाता है, उसपर दुःखों के बादल मंडराते रहते हैं। कहा भी है -

"अवधू ! सदा मगन में रहना।"

सदैव स्वभाव में मग्न रहना, आत्मा के लिए मंगलकारी है। और विषय-कषायादि भावों में जाना अमंगलकारी है। अतः बन्धुओं ! प्रतिदिन सुबह उठकर आत्मस्वरूप की भावना करनी चाहिए कि अहो ! मैं ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय अनन्तशक्ति का स्वामी आत्मा हूँ। मेरा पुद्गलों के साथ संग कैसा ? मुझे इस पुद्गल का संग क्यों करना चाहिए ? चेतन के पूजारी को क्या अचेतन की पूजा करना उचित है ? क्या उसके पीछे वह (चेतन) पागल हो जाए ? यदि मैं इस जड़ की शरणागति स्वीकार कर लूंगा तो मैं जीव मिट कर शिव कब और किस प्रकार बन सकूंगा ? (अभी तो) मैं विषय-कषायों में मग्न होकर जड़ का दास हो गया हूँ। जड़ की दासता छोड़े बिना आत्मा का उत्थान कैसे हो सकेगा ?

देवानुप्रियों ! बोलो, तुम्हें २४ घंटे में से सिर्फ पाव घंटे भी ऐसी चिन्ता होती है क्या ? नहीं, परन्तु जड़ की चिन्ता कितनी होती है ? क्या आप २४ घंटे में से एक घंटे भी कषाय से अलिप्त रहते हैं ? ऐसे पवित्र वीतराग-भवन में आकर भी कषाय का त्याग होता है क्या ? आप उपाश्रय में आए और संत ने आपके सामने भी न देखा, 'जी' भी नहीं कहा तो मन में कैसा भाव आएगा ? मैं कितनी दूर से दौड़कर दर्शन करने के लिए आया, परन्तु महासतीजी ने मेरे सामने भी नहीं देखा ! क्या उपाश्रय में जाना उचित है ? कषाय से बचाने वाले धर्मस्थानक में आकर भी कषायरूपी कसाई से बचने का प्रयत्न नहीं

पालन बहुत कठिन है। जो जितना बड़ा होता है, उसे उतनी अधिक सहनशीलता रखनी पड़ती है। तुम कहती हो न धरण (छत का टेका) को खीले सहन करने पड़ते हैं। मकान बांधते हैं, तब सर्वप्रथम लकड़ी के धरण को ऊँचाई पर रखना पड़ता है, उस समय शुभ मुहूर्त देखकर धरण को नाड़ाछड़ी बांध कुंकुम् का तिलक करके फूल का हार बांध कर ऊँचा रखते थे। इतना सब करने का क्या कारण था ? मकान का सारा आधार धरण पर है। परिवार का बड़ा बुजुर्ग झेलता है। घर का सारा भार धरण झेलता है। इसलिए उसका इतना महत्त्व है। घर में जो बुजुर्ग होता है, उस पर घर की सारी जिम्मेवारी होती है। उसे सहन भी अधिक करना पड़ता है। कोई उसे जरा-सा कुछ कहे और वह तुरंत वाद-विवाद या कलह करने पर आमादा हो जाए तो वह जिम्मेदारी का भार वहन नहीं कर सकता। जो सहन करता है, वही भार वहन कर सकता है। जो बुजुर्ग होता है, उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। घर में सासु हो, और बहू नई साड़ियाँ बाजार से ले आए, पर सासु से छिपाकर रखे तो सासु का हृदय भी संकीर्ण हो जाता है। इसी प्रकार सासु भी बहू से छिपाये तो बहू का दिल भी संकुचित् हो जाता है। इसके विपरीत बहू यों कहे कि - "मम्मी ! मैं ये नई साड़ियाँ लाई हूँ, आप पहले पहनना, बाद में मैं पहनूँगी।" इस पर सासु कहेगी - "ना, बेटी ! ऐसी साड़ियाँ मुझे नहीं शोभती, तुम पहनना।" परन्तु बहू अत्यन्त आग्रह करके कहे कि - "नहीं मम्मी ! पहले आप पहनोगी, बाद में मैं पहनूंगी।" यह सुनकर सासु का मन ऐसा उदार हो जाता है कि अपने पास जो साड़ियाँ थीं, उन्हें देती हुई बहू से कहती है - "बहू बेटी ! तुम ये मेरी साड़ियाँ पहनो।" परिवार में प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रकार उदारता और विशालता रखे, तो मुझे विश्वास है कि यह (गृहस्थ) - संसार स्वर्ग तुल्य हो जाए ! यों नौकरों के लिए सेठ-सेठानी विशाल दृष्टि रखें तो उन नौकरों का मन भी उनके प्रति विशाल रहता है।

धारणी रानी भी ऐसी उदार और विशाल हृदय थी। वह **'यथा नाम तथा गुण'** की उक्ति को चरितार्थ कर रही थी। आजकल तो परिवारों में बच्चे-बच्ची के नाम भी ऐसे रखते हैं, कि उनमें वे गुण होते नहीं। रहना है भारत में, पर नाम फोरेन के ढूंढकर लाते हैं। रहना है इस देश में, किन्तु रीति-नीति वहाँ (विदेश की) रखते हैं। फिर भला भारत कहाँ से ऊँचा उठे ? धारणी रानी, विशाल, प्रेमल और उदार थी। वह ९९९ रानियों के दिल में बस गई थी। प्रत्येक रानी का धारणी रानी पर अत्यन्त प्रेम था। उसे देखते ही वे प्रेम में पागल बन जाती थीं। वह जो कुछ कहती, सभी रानियाँ उसे स्वीकार कर लेती थीं और उसकी आज्ञानुसार चलती थीं। धारणी रानी के प्रति प्रत्येक रानी का इतना अधिक प्रेम था, उसका क्या कारण था ? उसका कारण था, उनमें कूट-कूटकर भरी सहनशीलता। अच्छा-बुरा सबको पचाने की शक्ति थी। वह राजा की पटरानी थी, इस कारण राजा उसके लिए कोई नवीन वस्तु लाए तो उसके मन में ऐसा नहीं होता था, कि मैं बड़ी हूँ, इसलिए मुझे (अकेली को) ही इसका उपयोग करना है। वह अपनी छोटी बहनों

करते, तो समझ लेना कि जहाँ नाममात्र भी कषाय नहीं है, ऐसा अकषायी स्थान मोक्ष तो आपसे बहुत दूर है। धर्मस्थान में आकर भी क्षमादि गुणों का कितना पालन होता है? सच कहूँ तो अभी तक तुम्हें कषाय का डर नहीं लगा। इस कारण कषाय का जरा-सा निमित्त मिलते ही कषाय का नाटक करने लगते हैं। केवल मोक्ष की बातें करने से, मोक्ष की माला फेरने से मोक्ष नहीं मिलेगा, अपितु मोक्ष के साधनभूत क्षमा-भावादि धर्मो के पालन से मोक्ष मिलेगा। मामूली कारण को लेकर कषाय आ जाता है, तो निर्वाण तुम्हारे निकट नहीं आयेगा। भेड़िया, बाघ, सिंह, सर्प, बिच्छू इत्यादि जंगली हिंसक और जहरीले पशुओं के भय की उपेक्षा भी विषय-कषाय रूपी जंगली और जहरीले पशुओं का हमें अधिक भय होना चाहिए। सम्यक्त्वी आत्मा कषाय भीरू होता है। वह विषय-कषायरूपी शत्रुओं से सदा सावधान रहता है। उसे विषय-कषाय का सेवन खटकता है। वह सदैव यह चाहता है कि अब मैं विषय-कषाय से मुक्त हो जाऊँ तो अच्छा। जो विषय-कषायों से सर्वथा मुक्त हो गए हों, उनका यह सच्चा सेवक बनकर रहता है। जो विषय-कषाय का त्याग करने का उपदेश देते हैं, वे सम्यक्त्वी आत्मा को बहुत अच्छे लगते हैं। जिन शास्त्रों से विषय-कषाय से छूटने-बचने का उपदेश मिलता है, उन शास्त्रों पर उसे अत्यन्त बहुमान होता है। ऐसे शास्त्रों को वह सुनता है, पढ़ता है और शास्त्रवचनों को आचरण में उतारता है, परन्तु विषय-कषायों को पुष्ट करनेवाले शास्त्रों को सुनता या पढ़ता नहीं है। विषय-कषायों में वृद्धि हो, ऐसे कुमित्रों से सदा दूर रहने का प्रयत्न करता है, ताकि विषय-कषाय मंद हो जाएँ।

बन्धुओं! मित्रता उसके साथ करनी चाहिए, जिसके विषय-कषाय मन्द हों। परन्तु तुमने तो ऐसों के साथ मित्रता की है, जिनके साथ तुम्हारा मोह मरता नहीं, अपितु तुम पर नित्य उस मोह की मार पड़ती रहती है। मोह को मारने का अर्थ है - विषय-कषायों को मारना। आत्मा को अकषायी बनाने और उसे अपने वास्तविक स्वभाव में लाने के लिए इस मानवभव को पाकर तुम्हें जोरदार पुरुषार्थ करना पड़ेगा और भगवान के वचनों पर श्रद्धा रखनी पड़ेगी। इन विषय-कषाय रूपी शत्रुओं को जीतने के लिए आत्मा में अनन्तशक्ति पड़ी है, परन्तु आत्मा ने अपनी शक्ति का विचार नहीं किया और पांचों इन्द्रियों के वशीभूत होकर, ऐसा पराधीन हो गया है कि अनन्तशक्ति होते हुए भी इन्द्रियों के आदेश के आधीन हो गया है, और उनकी गुलामी करता रहता है। जैसे, कोई व्यक्ति करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी, बड़ा धनाढ्य सेठ है। किसी दुःसाध्य रोग के कारण उसकी शारीरिक शक्ति मंद हो गई, स्मरणशक्ति भी कम हो गई। अतः अब हिसाब में लेन-देन की बात उसे याद नहीं रहती। फलतः उसके लड़के फर्म के मालिक बन बैठे। उन्होंने सारे हिसाब-किताब की बहियाँ और तिजोरी (सारी पूंजी) हस्तगत कर ली। पिता के कब्जे में कोई मिल्कियत नहीं रही। अब पिता को कुछ खाने-पीने का मन हुआ या किसी धर्मकार्य में दान देने का मन हुआ, उसने लड़कों से धन की मांग की, मगर लड़के एक दमड़ी भी उन्हें नहीं देते। पिता पैसों के लिए आजीजी करता है, पर लड़के नहीं देते।

को पहले दे देती थी। यह वस्तु मेरी है, ऐसा वह मानती ही नहीं थी। इसलिए किसी भी रानी को उसके (पटरानी के) प्रति ईर्ष्या नहीं होती थी। मनुष्य के गुणों पर से उसका मूल्यांकन होता है। देखिए, दुनिया में लकड़ियाँ तो अनेक प्रकार की होती हैं, परन्तु सबसे अधिक कीमत किस लकड़ी की होती है ? चन्दन की लकड़ी की। क्यों ? क्योंकि कोई उसे काटे, घिसे या जला डाले तो भी वह सुगन्ध देती है, इस कारण इसका मूल्य अधिक आंका जाता है। चंदन क्या कहता है ? कवि के शब्दों में -

बधुं दुःख जगतनुं खमवुं छे, प्रभु ! चंदन मारे बनवुं छे।
कोई लाभ उठावे घसी-घसी, हुं सहन करुं छुं हसी - हसी।
परनी शक्तिमां शमवुं छे, प्रभु ! चन्दन मारे बनवुं छे ॥१॥
कोई अग्निमां मने बाले, नथी फरियादो करवी मारे।
आनंदथी मारे बळवुं छे, प्रभु ! चन्दन मारे बनवुं छे ॥२॥

तुम कैसे श्रोता हो ? : जो दूसरों के लिए अपना बलिदान देता है, जगत् में उसका अधिक मूल्य आंका जाता है। अगर तुम्हें मानवजीवन को मूल्यवान बनाना है तो चंदन जैसे बनो। चंदन को कोई घिस डाले तो वह सुगन्ध देता है। उसे शरीर पर लेप करे तो शीतलता प्रदान करता है। तुम्हें कोई कटु शब्द कहे तो क्या करोगे ? समता की सौरभ दोगे या गालियाँ दोगे ? यहाँ व्याख्यान पूर्ण हुआ, सामायिक पार ली, मुखवस्त्रिका खोलकर बाहर गये, वहाँ किसी ने तुम्हारा जरा अपमान कर दिया, तुम्हें उसने दो कटु शब्द कहे, तो तुम्हारे क्रोध का पारा आसमान पर चढ़ गया ! तुम रोज वीतरागवाणी सुनते हो, सामायिक करते हो, किन्तु (तन-मन-वचन में) समभाव न आए, तो मुझे तुम्हें क्या कहना ? एक केला खाने से भूख मिट जाती है, एक ग्लास पानी पीने से तृषा शान्त हो जाती है, एनेसिन या एस्प्रो की एक टिकिया खाने से सिरदर्द मिट जाता है, तथा ए.पी.सी. की गोली सेवन करने पर बुखार उत्तर जाता है। फिर तुम एक घंटे वीतरागवाणी का पान करते हो, और उसका कोई असर नहीं होता, इसका क्या कारण है ? तुम कैसे श्रोता हो ? आपके सामने तीन पुतलियाँ हैं। एक है - संगमरमर की पुतली, दूसरी लकड़ी की पुतली और तीसरी है - रूई की पुतली। संगमरमर की पुतली दूध में डाली जाए तो वह दूध में रहती है, वहाँ तक भीगी हुई रहती है, पर बाहर निकालते ही जैसी थी वैसी ही हो जाती है, वह दूध को जरा भी नहीं चूसती। दूसरी जो लकड़ी की पुतली है, उसे दूध में डालने पर वह थोड़ा - सा दूध चूसती है। और तीसरी पुतली रूई की है, जिसे दूध में डालने पर वह दूध को चूस लेती है। बोलो, इन तीन पुतलियों में से तुम कौन-सी पुतली जैसे श्रोता हो ? (हँसाहँस), अगर तुम रूई की पुतली जैसे श्रोता न बन सको तो, खैर परन्तु लकड़ी की पुतली जैसे श्रोता बनोगे तो भी मुझे सन्तोष होगा। जिसने थोड़ी-सी वीतरागवाणी पचाई है, वे जीव (अशुभ) कर्म के उदय से दुःख आ पड़ने पर हाय-हाय नहीं करते, अपितु वे 'होता है - होता है' (हाँ - हाँ) कहते हैं।

उस समय सेठ को कितना दुःख होता है ? क्योंकि ब्लेकमार्केट से स्वयं पिता ने करोड़ों रुपये कमाये हैं, उनकी अपनी मिल्कियत (धन-सम्पत्ति) को लड़के दबाकर बैठे हैं। क्योंकि अब सत्ता बेटों के हाथ में आ गई है।

अब दूसरे प्रकार से इस पर सोचें। किसी सेठ की फर्म धड़ल्ले से चल रही है। धनाधन अपार पैसा आ रहा है। धन बढ़ा, अतः सेठ प्रमोद में पड़ गया। खाना-पीना, सैर-सपाटे करना, इन्द्रिय-विषयों के आमोद-प्रमोद में मौज करना, यों रात-दिन मौज-शौक में वह पड़ा रहता। फर्म का सब काम व हिसाब-किताब मुनीमों ने संभाल लिया। ऐसी स्थिति में सेठ की दशा कैसी होती है यह जानते हो न ? सेठ की दशा पराधीन हो जाती है। धन-सम्पत्ति सेठ की है, किन्तु हुक्म मुनीमों का चलता है। सेठ को कुछ काम हो तो स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता। उसे पहले मुनीमों की सलाह लेनी पड़ती है। पैसा खुद का है, पर पूछना है - मुनीमों से। यह कैसी पराधीन दशा है?

आपकी दशा भी पूर्वोक्त पिता और सेठ से भी बदतर है। आत्मा अनन्तशक्ति का स्वामी है। चक्रवर्ती या इन्द्र से भी (निश्चयनय से) बढ़कर महर्धिक है। पाँचों इन्द्रियाँ और मन ये सब इस (आत्मा) के नौकर हैं। आत्मा जो आदेश दे, उसका पालन इन्हें करना पड़ता है। परन्तु (इस समय) आत्मा की दशा ऐसी हो गई है कि वह स्वयं अपने स्वरूप का भान भूलकर पुद्गल की पूजा में तथा 'पर' की पंचायत में पड़ गया है। वह अपनी शक्ति का भान भूलकर प्रमाद में पड़ गया है। इसलिए पाँच इन्द्रियाँ रूपी पाँच पुत्र कहो या पाँच मुनीम कहो, उन्होंने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले ली है। इसलिए आत्मा स्वयं चक्रवर्तियों का चक्रवर्ती तथा इन्द्रों का इन्द्र होते हुए भी उसे इन्द्रियों की हुकूमत के अनुसार चलना पड़ता है। इनकी मेहरबानी हो, तभी चेतनराजा (आत्मा) अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

चेतनदेव को विचार स्फुरित हुआ कि आज मुझे व्याख्यान सुनने जाना है, परन्तु कान की मेहरबानी न हो तो नहीं जाया जा सकता। कान कहता है, मुझे रेडियो पर छायागीत सुनने हैं, वहाँ नहीं जाना है। चेतनदेव कहता है - मुझे संतदर्शन करने जाना है, परन्तु नेत्र कहता है - मुझे टी.वी. पर पिक्चर देखना है। चेतनराज कहता है - मुझे आज उपवास करना है, या आयम्बिल करना है, परन्तु रसनेन्द्रिय कहती है - ना, ना; उपवास करेगा तो अशक्ति आएगी। आयम्बिल का रूखा-सूखा भोजन अच्छा नहीं लगता। आज तो सरस-स्वादिष्ट चटपटा भोजन करना है। अतः इन (इन्द्रियों) का हुक्म होते ही चेतनराज (मन मसोसकर) बैठ गए। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय आत्मा पर हुकूमत चलाती है। बोलो, शक्ति होते हुए भी, आत्मा के पास सत्ता है क्या ? उसने अपना स्वामित्व खो दिया है न ? कितने अफसोस की बात है ? क्या आपको इसका कोई दुःख है ? आत्मा अपनी शक्ति का स्वयं सत्कार्य में सदुपयोग न कर सके, कितनी अधिक पराधीनता है ?

पाँच इन्द्रियरूपी पाँच ट्रस्टी : कई बार मनुष्य अपनी सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाता है। मान लो, किसी मनुष्य के पास २५ लाख की पूंजी है। उसने ट्रस्ट बनाया। पाँच

क्योंकि (वह सम्यग्दृष्टि पूर्वक सोचता है) पूर्वभव में मैंने ही ये (अशुभ) कर्म बांधे हैं, उन कर्मों के उदय में आने के कारण यह दुःख आता है, इसमें हाय-हाय क्यों करना ? प्रत्युत होता है, होता है (हाँ - हाँ), ऐसे करना है यों समझता है। वह (दुःख आने पर) दूसरों को दोष नहीं देता। जो (सम्यग्दृष्टि पूर्वक) ऐसा (मनः) समाधान कर लेता है, समभाव रखता है, उसके वे पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यहाँ धारणी रानी बहुत ही चतुर, गम्भीर और धैर्यवती थी। वह राज्यकार्य में (समय-समय पर) सलाह देती थी। समय आने पर राज्यतंत्र चला सके, ऐसा उसमें खमीर था। साथ ही, वह धारणी रानी दूसरी ९९९ रानियों के साथ दूध-शक्कर की तरह परस्पर प्रेम भाव से हिल-मिल कर रहती थी। जहाँ रानियों में परस्पर ऐसा *शुद्ध प्रेमभाव होता* है, वहाँ उनके पति (राजा) को भी कितना आनन्द होता है ? कदापि क्लेश का नामोनिशान भी नहीं था। इस प्रकार बलराजा धारणी आदि १००० रानियों के साथ स्वर्ग जैसे सुखों का उपभोग करते थे।

बन्धुओं ! यह बलराजा कितना पुण्यवान् है कि उनकी रानियाँ तो आज्ञाकारी थी ही, उनका मंत्रिमण्डल भी अनुकूल था। शरीर में किसी प्रकार व्याधियों ने हमला नहीं किया था। दूसरे राज्यों की ओर से युद्धों का भय नहीं था। उनकी हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल, यों चतुरंगिनी सेना अपार थी। सेवक खम्मा-खम्मा करते थे। उनके पास अपार सम्पत्ति थी। सभी राज-कर्मचारी उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। उनके भौतिक सुख में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। न ही उनको अधिक प्राप्त करने की आशा या अभिलाषा थी। जो कुछ था, उसी में सन्तुष्ट थे। बिलकुल आनन्द, आमोद-प्रमोद और विनोद में दिवस व्यतीत हो रहे थे। बोलो, बलराजा कितने सुखी थे, था उन्हें किसी प्रकार का दुःख ? परन्तु ज्ञानीपुरुष कहते हैं – राजा को चाहे जितना सुख हो, अन्त में तो वह क्षणिक और विनाशी सुख था न ? ऐसे सुखी राजा की अपेक्षा मोक्ष में गये हुए सिद्ध भगवन्तों को समय समय में अनन्तगुन सुख होता है और वह भी शाश्वत और अव्याबाध और वह कभी विनष्ट होनेवाला नहीं होता। आपको और हमको ऐसा शाश्वत और अव्याबाध एवं अविनाशी सुख प्राप्त करना हो तो धर्माचरण-धर्माराधना करना चाहिए।

हाँ, तो बलराजा धारणी-प्रमुख एक हजार रानियों के साथ (भौतिक) सुखोपभोग करते हैं, आनन्द करते हैं। इसी दौरान *"तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइं सिंहे सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा।"* एक समय धारिणी रानी सुन्दर पलंग पर सोई हुई थी, तभी कुछ सोती कुछ जागती हुई, ऐसी अवस्था में, रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने स्वप्न में एक सिंह को देखा। इस स्वप्न को देखते ही रानी जागृत हुई। स्वप्न कुछ जागृत और कुछ निद्रित ऐसी अवस्था में आता है। एकान्त जागृत या एकान्त निद्रित अवस्था में स्वप्न नहीं आता। स्वप्न शास्त्र में कुल ७२ स्वप्नों का वर्णन है, जिनमें से ३० स्वप्न शुभ हैं और ४२ स्वप्न अशुभ हैं। उनमें से जब तीर्थंकर भगवान् माता के गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता १४ स्वप्न देखती है और चक्रवर्ती की माता भी

ट्रस्टी नियुक्त किये । स्वयं जीऊं, वहाँ तक सम्पत्ति मेरी है, और मेरे मरने के बाद सम्पत्ति का स्वामित्व मेरी पत्नी का, इस शर्त पर उसने सम्पत्ति ट्रस्टियों को सौंप दी । सम्पत्ति की मालिकी अपनी होते हुए भी उसमें से आवश्यकतानुसार रकम लेनी हो तो ट्रस्टियों के हस्ताक्षर चाहिए । उस सम्पत्ति के मालिक के मरने पर सम्पत्ति की मालिकी पत्नी की है न ? मगर पति के मर जाने पर ट्रस्टियों की नियत बिगड़ गई, वे स्वयं मालिक वनकर बैठ गए । उस सेठ की पत्नी को आवश्यकतानुसार रकम की जरूरत होती है, वह ट्रस्टियों के पास जाकर रकम मांगती है, पर वे देते नहीं, टालमटोल करते हैं । ऐसा भी हो जाता है न ? ट्रस्टीगण अच्छे हों तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु ट्रस्टी भष्टाचारी (खानेवाले) हों तो उक्त महिला की वुरी दशा हो जाती है । पैसा होते हुए भी भीख मांगने का वक्त आ जाता है । उसके पति की कमाई हुई सम्पत्ति है, मालिकी उसकी है, परन्तु स्वयं (वह महिला) भीख मांगती है और ट्रस्टी मौज करते हैं । वैसे ही ये पाँचों इन्द्रियाँरूपी पाँच ट्रस्टी आत्मा की अनन्तशक्ति के मालिक वनकर मौज कर रहे हैं और माल उड़ा रहे हैं । और अनन्तशक्ति का स्वामी शाहंशाह आत्मदेव भौतिक सुख के टुकड़े की भीख मांग रहा है । अनन्तकाल से इन्द्रियों के गुलाम बने हुए चेतनदेव को अब जागृत करो और इस गुलामी से मुक्त करो । चेतनदेव को इस गुलामी से मुक्त वनाने के लिए कमर कस लो । आत्मा को जागृत करने का यह सुनहरा अवसर है । अगर आत्मा जागृत नहीं होगी, सजग नहीं होगी, तो कर्मरूपी लश्कर इसे घेर लेगा । कर्म की सेना कितनी वड़ी है, यह तो तुम जानते ही हो ।

क्या प्रजा की अपेक्षा सेना वढ़कर हो सकती है ? : आपसे पूछती हूँ, क्या प्रजा की अपेक्षा सेना वढ़कर हो सकती है ? (श्रोताओं में से आवाज – नहीं, प्रजा की अपेक्षा सेना वढ़कर नहीं हो सकती ।) इस जगत् में ऐसा एक भी राज्य नहीं है, जिसमें प्रजा की अपेक्षा सेना बढ़कर हो । परन्तु यहाँ कर्मराजा का राज्य इतना जबर्दस्त है कि प्रजा की अपेक्षा कर्मराजा की सेना वढ़कर होती है । कैसे होती है ? सुनो । आत्मा के प्रदेश असंख्यात हैं और एक-एक आत्मप्रदेश पर अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणा के पुद्गल हैं । बोलो, कर्मराजा का लश्कर कितना वड़ा है ? किसी राज्य में प्रजा के एक-एक मनुष्य की देखभाल के लिए एक-एक सिपाही रखा जाए तो भी प्रजा सिर ऊँचा नहीं कर सकती है, तो यहाँ तो अपनी एक आत्मा के एक प्रदेश पर अनन्त कर्मवर्गणारूप कर्मराजा के अनन्त सिपाही अड्डा जमाकर वैठे हैं, ऐसी स्थिति में आत्मा मस्तक ऊँचा कर सकती है क्या ? अतः आत्मा यदि समझ ले कि इतनी बड़ी कर्म की सेना मेरे पीछे पड़ी है, तो मैं क्या समझकर इस संसार में मौज मानकर बैठा हुआ हूँ ?

देवानुप्रियों ! अव तुम्हें मेरी बात समझ में आ गई होगी कि कर्मशत्रु को हटाने के लिए कटिवद्ध होना पड़ेगा । इतनी बड़ी कर्मराजा की फौज अपने पीछे पड़ी है, अव भी नहीं चेते तो यह सैन्य वढ़ता जायेगा । कर्मबन्ध करके धन प्राप्त कर रहे हो और मौज कर रहे हो, परन्तु क्या तुम्हें विश्वास है कि घरवार, धन-सम्पत्ति आदि ये सब सदा स्थायी

इन्हीं १४ स्वप्नों को देखती है। परन्तु दोनों के स्वप्न वृत्ति में अन्तर यह है कि तीर्थंकर प्रभु की माता इन चौदह स्वप्नों को स्पष्ट देखती है, जबकि चक्रवर्ती की माता इन्हें अस्पष्ट देखती हैं। वासुदेव की माता इनमें से सात स्वप्न देखती है, बलदेव की माता को चार स्वप्न आते हैं और माण्डलिक की माता को एक स्वप्न आता है।

इस धारिणी रानी को चौदह स्वप्नों में से एक स्वप्न आया। स्वप्न को धारण करनेवाले व्यक्ति को धैर्यवान् होना चाहिए। कोई अच्छा स्वप्न आए तो उसके पश्चात् सोना नहीं चाहिए, अपितु धर्माराधना करनी चाहिए। और ऐसी स्वप्न देखकर किसी ऐसे-वैसे मनुष्य के समक्ष प्रगट नहीं करनी चाहिए। प्रभात होते ही, गाँव में कोई पवित्र संत विराजमान हों तो उनके पास जाकर स्वप्न का वृत्तान्त कहना चाहिए। संत न हों तो घर में किसी बुजुर्ग को कहना चाहिए। वह भी न हो तो अपना पति अगर धैर्यवान हो तो उसके समक्ष कहना। अगर सगे-सम्बन्धियों या स्नेहियों में कोई सज्जन हो तो वहीं जाकर उसे कहना चाहिए। परन्तु किसी (योग्य व्यक्ति) को कहे बिना अन्य कार्य में नहीं जुटना चाहिए। चाहे जिस (अयोग्य या दुर्जन) व्यक्ति को स्वप्न वृत्तान्त कहने से या शुभ स्वप्न आने के बाद सो जाने से उस स्वप्न का फल नष्ट हो जाता है। जैसे-तैसे (अयोग्य) व्यक्ति को कहने से क्या होता है ? इस सम्बन्ध में मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत करती हूँ -

स्वप्न एक होते हुए भी फल पृथक्-पृथक् मिले : दो मित्र थे। उनमें से एक वणिकपुत्र था और दूसरा था - पटेल का पुत्र। दोनों अत्यन्त निर्धन थे। एक बार किसी काम से दोनों एक गाँव में गए। वापस लौटते हुए मार्ग में रात पड़ गई। अतः दोनों एक वृक्ष के नीचे सो गए। दोनों को एक सरीखा स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने 'एक घी से - चुपड़ी हुई, और उस पर गुड़ रखी हुई रोटी देखी, जिसे वे सारी की सारी खा गए।' स्वप्न देखकर दोनों जाग गए। भोर होनेवाली थी और दोनों का अपना गाँव नजदीक था। इसलिए दोनों चल पड़े। उस पटेल के लड़के ने एक संन्यासी से कहा - "मुझे ऐसा स्वप्न आया है।" उसे सुनकर सन्यासी ने कहा- "तुझे ऐसा स्वप्न आया है तो जा, आज तुझे घी से - चुपड़ी हुई रोटी और गुड़ खाने को मिलेगा।" दूसरा वणिकपुत्र गरीब होते हुए भी संस्कारी था। वह सीधा उपाश्रय में पहुँचा और गुरुदेव को वन्दन करके उनके समक्ष स्वप्न की बात कही। अतः गुरु ने कहा - "आज से सातवें दिन तुझे राज्य मिलेगा।" वह लड़का बहुत गंभीर था। उसने मन में ऐसा भी नहीं सोचा कि मैं ऐसा गरीब व्यक्ति हूँ, मुझे राज्य कहाँ से मिलेगा ? गुरुवचन को तादृष्टि (वैसा ही है) कहकर वह उनसे मंगलपाठ सुनकर घर गया। वहाँ दो दिन रहकर पुनः किसी कार्यवश दूसरे गाँव गया। संत ने जो स्वप्नफल कहा था, उसे ६ दिन हो गए, लेकिन राज्य मिलने का जरा भी कोई आसार नहीं दिखाई दे रहा है, मन में भी नहीं आया कि संत ने कहा था, मगर कुछ हुआ नहीं। वह लड़का ऐसे गंभीर था। वह घुमता-घामता एक गाँव के बाहरी प्रदेश में आ गया। वह बहुत थक गया था। अतः नदी के किनारे रेत पर सो गया, गाढ़ निद्रा आ गई। संयोगवश उस गाँव के राजा का देहान्त हो गया था। राजा के कोई पुत्र नहीं था। अतः राज्य किसे देना ? इस मुद्दे पर

रहेंगे ? याद रखो, यह धन अन्त में तुम्हारा नहीं रहनेवाला है। देखिए 'आचारांग सूत्र' (सु-१, अ-२ उ-४) में क्या कहा है -

"तओ से एगया (विविहं) विप्परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ; तं पि से एगया दायायाविभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वासे विलुंपंति, णस्सातिवा से, विणस्सतिवा से, अगार-दाहेण वा सेडज्झइ।"

इसका भावार्थ यह है कि गृहस्थ के पास लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से धन प्रचुरमात्रा में हो जाता है। वह भोग के लिए उस धन की रक्षा करता है। भोग के बाद बची हुई विपुल सम्पत्ति के कारण वह महान् वैभववाला बन जाता है। उस धन से वह भोग-विलास के विविध साधन (उपकरण) प्रचुरमात्रा में एकत्रित कर लेता है। उन्हें देख-देखकर वह बहुत हर्षित होता है कि मैंने कितने सुन्दर भोगोपभोग के साधन बसा लिये हैं ? मेरा बंगला कितना सुन्दर व विशाल है ? ऐसा फर्निचर मेरे सिवाय किसी के यहाँ नहीं होगा। परन्तु ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि जीवन में कभी ऐसा समय आता है, जब दामाद (स्वजन) अपना हिस्सा बंटा लेते हैं, चोर उस सम्पत्ति आदि को चुरा लेते हैं, अथवा राजा (शासनकर्ता) उसे छीन लेते हैं, अथवा व्यवस्था में नुकसान होने से वह सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, या (दुर्व्यसनों या आतंकप्रयोग आदि से) वह विनष्ट हो जाती है। मकान में आग लगने से वह जलकर भस्म हो जाती है। अथवा नदी में बाढ़ आने पर वहाँ आसपास के सभी घर-सामग्री सहित बह जाते हैं।"

दो-तीन वर्ष पहले साबरमती नदी में बाढ़ आ गई थी। उस समय साबरमती नदी के किनारे निर्मित सभी बंगले उस बाढ़ में बह गए थे। मेहनत करके संचित किया हुआ धन, सोना, आभूषण, वस्त्र आदि सब उस बाढ़ में बह गए थे, अनेक मनुष्य बेघरबार हो गए थे। भूख-प्यास सहकर, काल-अकाल की परवाह किये बिना संचित किया हुआ धन इस प्रकार चले जाने से वे लोग रोने, विलाप करने और पश्चात्ताप करने लगे। बन्धुओं ! यह सब तो तुम आए दिन आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखते हो। ऐसा जान-देखकर तुम्हें अपना भविष्य सुधारना हो तो वर्तमानकाल को सुधारो। अन्यथा, सम्पत्ति तो इस या अन्य प्रकार से चली जाएगी, परन्तु उसे प्राप्त करने में बांधे हुए कर्म तो तुम्हें स्वयं भोगने पड़ेंगे। अतः ऐसा समझ मोह-ममत्व का स्वेच्छा से त्याग कर दो, घरबार, धन-सम्पत्ति तथा समस्त भोगोपभोग के साधनों के प्रति ममत्व का विसर्जन करके सोचो कि मैं एक यात्री हूँ। जीवन पावन करने के लिए इस धर्मशाला में ठहरा हूँ। ऐसा मानकर (ज्ञाता-द्रष्टा बनकर) चलोगे, यानी आत्मस्थ होकर चलोगे तो आधि-व्याधि-उपाधि से दूर रहकर समाधि में स्थिर हो जाओगे।

मेरा यह घर नहीं, किन्तु धर्मशाला है, ऐसा समझ कर रहो : एक बादशाह का महल था। एक फ़कीर ने आकर उस महल में पड़ाव डाला। सिपाही ने आकर उसे कहा - "सांई ! यहाँ आपने क्यों डेरा डाला है ? यह तो बादशाह का महल है, यहाँ से

विचार - विमर्श करने हेतु राजा के प्रधानों तथा गाँव के बड़े-बड़े मनुष्यों ने एकत्रित होकर निर्णय किया कि 'एक हथिनी को श्रृंगारित करके, उसकी सूंढ में एक पानी भरा कलश रखना । हथिनी जिस पर कलश ढोले, उसे ही राजा बना देना ।' वह घोषणा सुनकर आसपास के गाँवों के राजा भी आ गए थे । गाँव के लोग भी सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा बनने की आशा से तैयार होकर राजमार्ग पर खड़े थे । सबके मन में ऐसी आशा थी कि 'हथिनी हमारे पर कलश ढोलेगी ।'

समय होते ही हथिनी को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके उसकी सूंड में कलश रखकर उसे खुली छोड़ दी । राजा के मनुष्य हथिनी के पीछे-पीछे चलने लगे । हथिनी सारे गाँव में घूम ली, परन्तु किसी पर भी कलश नहीं ढोला । फिर वह फिरती-फिरती नदी के किनारे आई । वह गरीब वणिकपुत्र गाढ़ निद्रा में जहाँ सोया था, वहाँ आई । उसे सूंघकर हथिनी ने उस पर कलश ढोला । लोग कहने लगे कि 'हथिनी भूल गई है। भूल गई है कि उसने ऐसे एक रास्ते पर भटकते भिखारी पर कलश ढोला ।' राजा लोग परस्पर लड़ने को तैयार हो गए । किन्तु प्रधान ने कहा - "हमने निश्चित किया है कि हथिनी जिस पर कलश ढोलेगी, वही गाँव का राजा बनेगा । अतः इस विषय में किसी को लड़ने-झगड़ने की जरूरत नहीं है ।" वह लड़का तो एकदम हड़बड़ा कर नींद से जग गया । उसके आसपास राज्य कर्मचारी खड़े हैं, हथिनी खड़ी है । वह सोचने लगा - यह सब क्या माजरा है ? क्षणभर के लिए तो वह चौंका । राजा के मनुष्यों ने उसे स्नान कराकर राजसी पोशाक पहनाया और श्रृंगारित करके गाजे-बाजे के साथ गाँव में लाकर शुभ मुहूर्त में उसका राज्याभिषेक किया । राजसिंहासन पर बिठाया । बन्धुओं ! कर्मराजा कैसा काम करता है ? वह एक घड़ी में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है । यह गरीब वणिकपुत्र राजा बन गया । गुरुदेव के कथनानुसार सातवें दिन उसे राज्य मिल गया । राजगद्दी पर बैठने से पहले जिन गुरुदेव ने उसके स्वप्न का फल बताया था, उनके पास जाकर उन्हें वंदन किया । गुरु ने उसे कहा - "भले ही तू राजा बना, परन्तु धर्म को कभी भूलना मत ।" वह जैन का लड़का था । वह राजा बना, उसी दिन उसने गाँव में डंका बजवाकर घोषणा करवाई कि - "जबतक मेरी आन (आज्ञा) प्रवर्तित है, वहाँ तक कोई भी व्यक्ति (मेरे राज्य में) जीव-हिंसा न करे । जो जीव-हिंसा करेगा, उसे दण्डित किया जाएगा ।" राजा बहुत ही धर्मिष्ठ था । वह न्याय-नीतिपूर्वक राज्य-संचालन करता रहा । प्रजा को उससे अत्यन्त संतोष हुआ । गाँव में संतों का बार-बार आवागमन होता रहता । स्वयं राजा संतों के दर्शन करने और व्याख्यान-वाणी सुनने जाता था, इसलिए प्रजाजन भी संतों के दर्शन-वन्दन-श्रवण के लिए बहुत जाते थे । जिस गाँव का राजा धर्मिष्ठ होता है, उस गाँव की प्रजा भी धार्मिक होती है । राजा का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है । जिस धर्मसंघ का प्रमुख धर्मिष्ठ होता है, प्रतिदिन सामायिक करता है, उस गाँव के मनुष्यों पर उसका अचूक प्रभाव पड़ता है । किन्हीं संघों के प्रमुख प्रतिदिन उपाश्रय में नहीं आते । यहाँ तो वजुभाई, सेवंतीभाई, बचुभाई आदि संघ के कार्यकर्ता अत्यन्त जागृत हैं । ये स्वयं धर्माराधना करते हैं और दूसरों को कराते हैं । संघ की सेवा

किसी सराय में जाकर डेरा जमाओ ।" फकीर ने कहा - "हम तो यहीं डेरा जमाएँगे ।" सिपाही ने जाकर बादशाह से निवेदन किया कि - "एक फकीर आया है, उसने आपके महल में डेरा जमा लिया है, वह वहाँ से जाता नहीं है ।" बादशाह ने स्वयं आकर उस फकीर को (अपमानित करके) वहाँ से निकाल दिया । अगर वह फकीर सिपाही के कहते ही स्वयं समझ कर वहाँ से निकल गया होता तो राजा उसे दो-चार दिन के लिए रहने देता, निकालता नहीं । संक्षेप में, इस पर से हमें यह समझना है कि एक यात्री यात्रा करने के लिए निकला । वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ धर्मशाला में उतरा । पर वह धर्मशाला को एक कमरा मानकर बैठ गया, पर कहाँ तक ? जहाँ तक वह उसमें रह रहा है, वहाँ तक । धर्मशाला छोड़ने के बाद क्या उस पर तुम्हारा स्वामित्व रह सकता है ? नहीं, बिलकुल नहीं । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - यह जीव भी एक यात्री है । एक गति से दूसरी गति में जाता है । वहाँ अपना घरबार आदि सब बसाता है, और यह सब मेरा है, ऐसा मानकर ममत्व करके बैठ जाता है । पर कब तक ? जब तक आयुष्य पूर्ण नहीं हुआ तब तक ही । आयुष्य पूर्ण होने पर पूर्वोक्त फकीर की तरह एक क्षण भी वहाँ नहीं रहने देगा (कर्मराजा) । फकीर को तो बादशाह के महल में बहुत अर्से तक रहना था, परन्तु वहाँ से डेरा उठाकर जाना पड़ा न ? जीव की भी यही दशा है । आयुष्य पूर्ण होने पर यहाँ रहना होगा, तो भी एक क्षण भी नहीं रहने दिया जायेगा। तथैव साथ में कुछ भी ले जाने भी नहीं दिया जाएगा । जीव के साथ फिर उसके शुभ-अशुभ कर्म ही आते हैं । शरीर के लिए, तथा धन और कुटुम्ब के लिए १८ पापस्थानों का सेवन किया, कषाय और राग-द्वेष-मोह किये, मिथ्यात्व का सेवन किया । इन सब पापकर्मो का फल किसे भोगना पड़ेगा ? कर्म तो कर्ता को ही भोगना पड़ता है । माल खाने के लिए तो सभी आएँगे, पर (कर्मो की) मार खाने के लिए कोई नहीं आएगा ।

एक घर में दस मनुष्य हैं । उनमें से एक मनुष्य साग सुधार रहा है । असावधानी से चाकू अंगुली पर लग जाने से उसकी अंगुली कट गई । खून निकलने लगा । अत्यन्त पीड़ा होने लगी । वह पीड़ा किसे भोगनी पड़ेगी ? साग तो घर के सभी सदस्य खाते हैं, परन्तु पीड़ा तो अकेले उस साग सुधारनेवाले को ही भोगनी पड़ती है । परन्तु उस साग को खानेवाले घर के अन्य सदस्यों को वह वेदना भोगनी नहीं पड़ती । अतः याद रखो, कुटुम्ब-पोषण के लिए तुमने चोरी की, और पकड़े गए तो जेल में तुम्हें अकेले को ही जाना पड़ेगा । चुराई वस्तु का उपयोग करनेवाले परिवार के अन्य सदस्यों को जाना नहीं पड़ता । तुम आए दिन ऐसा प्रत्यक्ष देखते और अनुभव करते हो कि बुरा कर्म करनेवाला दुःख भोगता है, दूसरों को (चिन्ता आदि के सिवाय अन्य दुःख) नहीं भोगना पड़ता । उनके सिर पर कोई खतरा भी नहीं रहता । विचार करो, ऐसी जोखम उठाकर धन, साधन आदि प्राप्त किये, फिर उन्हें यहीं छोड़कर परलोक जाना और वहाँ भी (पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म के फलस्वरूप) मार खाना । यदि जीव शान्त चित्त से इस पर गहराई से विचार करे तो उसकी (परभावों और विभावों पर से) आसक्ति छूटेगी, अनासक्त भाव आएगा । इससे कर्मबन्धन कम होगा, ऐसा विचार सम्यग्दृष्टि जीव को आता है ।

उत्तम सेवा है । सैकड़ों सांसारिक काम करोगे, उनसे उतना लाभ नहीं होगा, मगर संघ की सेवा करने से महान् लाभ होता है ।

संक्षेप में हमारी बात चल रही थी स्वप्न की । देखिए, उक्त दोनों लड़कों को एक सरीखा स्वप्न आया था, किन्तु स्वप्न का फल कहनेवालों में अन्तर था । फलतः एक को घी से चुपड़ी हुई रोटी मिली, जबकि दूसरे को राज्य मिला । अतः स्वप्न को कहने और (उसका फल) सुननेवाला, दोनों धैर्यवान् होने चाहिए । धारिणी रानी को पिछली रात में एक स्वप्न आया । उन्होंने स्वप्न में एक बलवान् सिंह को रूमझूम करते हुए ऊपर से आता हुआ देखा । रानी स्वप्न देखकर जागृत हुई । मन में चिन्तन करने लगी कि ज्ञानी महापुरुषों ने चौदह उत्तम स्वप्न बताए हैं । उनमें का यह एक स्वप्न है । यह उत्तम स्वप्न है । इसके फलस्वरूप मैं किसी उत्तम पुरुष की माता बनूंगी । अतः वह जागृत होकर धर्माराधना करती रही । प्रभात होते ही रानी अपने रूम में से उठकर जिस रूप में बलराजा सोये हुए थे, वहाँ आई । धारणी रानी ने बलराजा को नमस्कार करके स्वयं को आए हुए स्वप्न की बात कही । राजा ने कहा – "महारानी ! तुम एक पवित्र और सिंह जैसे शूरवीर पुत्र की माता बनोगी । तुम भाग्यशाली हो । राजा स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछेंगे, परन्तु राजा से स्वप्न का फल सुनकर रानी अतीव प्रसन्न हुई । धारिणी रानी गर्भवती हो गई । अब राजा स्वप्नपाठक को बुलाकर स्वप्न का फल पूछेंगे ।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

कल हमने आपके समक्ष एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया था, एक ब्राह्मण की पुत्री दया-देवी का । वह बहुत ही संस्कारी है, निर्भय भी है । बारह वर्ष की लड़की सर्प को जूड़े में लपेट कर यों निर्भयतापूर्वक बैठ जाए, यह क्या जैसी-तैसी हिंमत कही जा सकती है ? जो अपने जीवन का मोह छोड़ देती है, वह ऐसी दया कर सकती है । कुछ ही देर के बाद सपेरे उस नाग को पकड़ने के लिए दौड़कर आए । दयादेवी से उन्होंने पूछा – "अरी छोकरी ! यहाँ कहीं (इस क्षेत्र में) तूने कहीं एक नाग देखा है ?" तब दयादेवी ने कहा – "मैं तो इन कंकरों से खेलती हूँ । मुझे भला यहाँ नाग कहाँ से दिखाई देता ?" तभी दूसरा सपेरा बोला – "इस लड़की ने सांप देखा होता तो यह यहाँ खड़ी ही नहीं रहती, भयभीत होकर भाग जाती !"

लड़की की हिंमत देखकर नागदेव प्रसन्न हुए : "इस ओर नाग आया हो, ऐसा नहीं लगता । चलो, दूसरी ओर चलकर तलाश करें ।" यों वे सपेरे नाग न मिलने से क्रोध से धमधमाते हुए दूसरी ओर चले गए । सपेरों के चले जाने पर दया देवी ने कहा – "नागराज ! तुम्हारे शत्रु तो चले गए, अब तुम्हें जहाँ जाना हो, वहाँ खुशी से जा सकते हो ।" यह सुनकर नाग धीरे से जूड़े से नीचे उतरे और (वैक्रिय शक्ति से) अपना दिव्यरूप धारण करके दयादेवी से कहा – "बेटी ! मैं तेरी हिम्मत और ऐसी दयावृत्ति देखकर तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ । मैं नाग का अधिष्ठाता हूँ । अतः इच्छा हो,

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

गर्भ पर से जीव की परीक्षा हो जाती है : 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है । उसमें बताया गया है कि धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। जागृत होकर उसने राजा के आगे स्वप्न का वृत्तान्त कहा, यह कल कहा गया था । सुबह होते ही बलराजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछा । स्वप्न पाठकों ने भी कहा कि - "महारानी ने सिंह का स्वप्न देखा है, इसलिए गर्भस्थ जीव सिंह जैसा पराक्रमी, प्रभावशाली और तेजस्वी पुत्र होगा ।" स्वप्न का फल सुनकर धारिणी रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई । रानी सावधानीपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी । रानी जब से गर्भवती हुई, तब से उसके मन में पवित्र विचार आने लगे । मैं साधु-साध्विओं का दर्शन करूँ, दान दूं, सामायिक करूँ, ये और ऐसे धार्मिक विचार आने लगे । गर्भ में पवित्र जीव आता है, तो माता को भी ऐसे पवित्र विचार आते हैं । गर्भ में पुण्यवान जीव आता है तो घर में धन बढ़ता है, प्रेम बढ़ता है, कुटुम्ब में कुसम्प (फूट) हो तो सम्प (मेलजोल) हो जाता है, विघ्न हो तो नष्ट हो जाता है और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की लहर आ जाती है । अगर गर्भ में कोई पापी जीव आ जाए तो वहाँ सम्प (मेलजोल) मिटकर झगड़ा और क्लेश हो जाता है । एक दूसरे का दिल फट जाता है । कई बार गर्भवती बहनें गेहूँ बीनते समय कंकर को (बाहर फेंकने के बदले) मुँह में डाल लेती हैं । यह मिट्टी खाने का उसका मन क्यों हुआ ? इसमें उसका दोष नहीं है । गर्भस्थ जीव ऐसा ही है, जिससे उस गर्भिणी को मिट्टी खाने का मन हो जाता है ।

श्रेणिक राजा की महारानी चेल्लणा पवित्र महिला थी, वह चेडा राजा की पुत्री थी । चेडा राजा के एक भी पुत्र नहीं था, सात पुत्रियाँ थी । भगवान् महावीर ने चेडा राजा से कहा था - "राजन् ! तुम्हारी सातों ही पुत्रियाँ सती हैं । तुम्हारे यहाँ पुत्रियों से दीपक (की ज्योति) रहेगी । प्रतिदिन मनुष्यों के मुख में से तुम्हारी पुत्रियों का गुणगान होगा ।" ऐसी पवित्र चेल्लना रानी के गर्भ में कोणिक आया, तब उसे श्रेणिक राजा के कलेजे का मांस खाने का विचार (दोहद) उत्पन्न हुआ । इसमें चेल्लणा रानी का कोई दोष नहीं था । गर्भस्थ जीव का ऐसा दूषित भाव था । कोणिक को श्रेणिक राजा (पिता) के कलेजे का मांस खाने का मन क्यों हुआ, यह जानते हो ? उसे श्रेणिक राजा के साथ पूर्वभव का वैरभाव था । पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार है -

कोणिक का जीव (पूर्वभव में) तापस था । वह मासखमण (एक मासिक उपवास) के पारणे मासखमण करता था । उसकी तपश्चर्या को देखकर अच्छे-अच्छे लोगों के सिर झुक जाते थे । उस समय श्रेणिक का जीव राजा था । वह इस तापस का दर्शन करने जाता था । उस तापस के प्रति राजा का अत्यन्त भक्तिभाव था । राजा ने तापस को अपने यहाँ (मासखमण का) पारणा करने का आमंत्रण दिया । तापस का ऐसा नियम था कि जिसके यहाँ पारणा करना निश्चित हुआ है, वहीं करना । अगर वहाँ (किसी कारण से) नहीं हुआ तो अन्यत्र किसी के यहाँ पारणा नहीं करना और तुरंत दूसरा मासखमण तप शुरू कर देना । यह राजा तापस को पारणे का आमंत्रण देता था, किन्तु उसके पारणे

उसे खुशी से मांग ले। इस पर दयादेवी मन में सोचने लगी - 'क्या मांगू ? मुझे शरीर ढकने के लिए वस्त्र मिलते हैं। घर जाती हूँ तो माता रूखी-सूखी रोटी और ऐंठे-झूठे भात एवं खिचड़ी खाने को देती है। सोने के लिए मुझे फटी-टूटी गुदड़ी मिलती है। फिर मुझे क्या चाहिए ?'

नागरूप में देव ने कहा - मांग-मांग !: बन्धुओं ! दयादेवी सिर्फ १२ वर्ष की छोटी-सी बालिका है, फिर भी उसमें कितनी समझ है, कितनी समता है ? उसने नागदेव से कहा - "देव ! अगर आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो (मेरी एक छोटी-सी मांग है) - इस जंगल में एक भी पेड़ नहीं है। मैं रोज गायें चराने आती हूँ। पर कहीं छाया नहीं मिलती। अगर एकाध पेड़ हो तो मैं उसकी छाया में शान्ति से बैठ सकूं, साथ ही मेरे गायें भी आसपास चरकर छाया में बैठ सकें।" देखो, मांग-मांगकर इसने क्या मांगा ? उसे देव से मांगना होता तो बहुत-सी वस्तुएँ मांग सकती थी। उसकी सौतेली माँ उसे इतना दुःख देती है, अतः उसने इस दुःख-निवारण की मांग की होती तो उसे सुख मिल सकता था। किन्तु उसने यह नहीं मांगा। उसके दिल में दया थी, अतः वह और उसकी गायें छाया में बैठ सकें, इसके लिए उसने एक वृक्ष हो जाने की मांग की। कदाचित् तुम पर देव प्रसन्न हो जाए तो तुम क्या मांगो ? तुम तो मांगने में कोई कसर नहीं रखोगे, ठीक है न ? (हँसाहँस) नागदेव भी विचार में पड़ गए ! अहो ! यह बालिका कितनी भोली है ? यह छोटी है, इसलिए इसमें अधिक मांगने की समझ-बूझ नहीं है। अच्छा, इसकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण कर दूं। अतः नागदेव ने 'तथाऽस्तु' कहकर वहाँ फल-फूलों से सुशोभित एक सुन्दर बगीचा बना दिया, और कहा - "बेटी ! तू जहाँ जाएगी, वहाँ यह बगीचा तेरे साथ-साथ चलेगा और तुझे खूब सुन्दर छाया देगा। यह छोटी जगह में छोटा होकर और बड़ी (विशाल) जगह में बड़ा होकर रहेगा।" इस प्रकार वरदान देकर नागदेव अदृश्य हो गए।

बन्धुओं ! जीवदया पालने में कितना महान् लाभ है ? अब देखना, दयादेवी के पुण्य का कैसा उदय होता है ? प्रारम्भ में मैं कह गई थी कि धर्म आत्मा के लिए निःस्वार्थ - निःस्पृह भाव से करना चाहिए, किसी प्रकार की आकांक्षा से नहीं। हम तुम्हें धर्माचरण करने का कहते हैं तो तुम कहते हो बाद में करेंगे। धर्म करते हुए तुम्हें आलस्य होता है, प्रमाद होता है, विकथाओं में, गप्पों में, टी.वी. देखने आदि में समय खो देते हो, परन्तु धर्म से, पुण्योपार्जन से मधुर सुखद फल मिलते हैं, तब कितना आनन्द आता है ? मनोज्ञ - अभीष्ट वस्तुएँ मांगने की अपेक्षा भी उससे बढ़कर अधिक वस्तुएँ (बिना मांगे ही) सामने से आकर मिलती हैं। यह सब प्रायः पूर्वभव में की गई धर्माराधना तथा पुण्योपार्जन का फल है। अब दयादेवी तो बगीचे में बैठी है, मानो वनदेवी हो ! इस प्रकार सुशोभित हो रही थी ! उसे जब कड़ाके की भूख लगी तो उस बगीचे में आम, सीताफल, चीकू, अंगूर, सेव (सफरजन), मौसम्बी, संतरा आदि अनेक मधुर फल बगीचे में थे, उसने वे फल खाये, पानी पीया और भूख-प्यास मिटाकर शाम होते ही गायें चराकर घर आई।

दिन किसी न किसी तकलीफ (झंझट) में पड़ जाता था। पहले मासखमण के पारणे के दिन राजा के मस्तक में वेदना उत्पन्न हो गई। दूसरे पारणे के दिन राजा को युद्ध में जाना पड़ा। तीसरे पारणे के दिन रानी ने पुत्र को जन्म दिया, उसके पुत्र जन्मोत्सव में राजा व्यस्त था। जैसे गुणसेन और अग्निशर्मा की घटना बनी, वैसा ही यहाँ हुआ। तापस के पारणे का समय बीत जाता और तापस अगला (दूसरा) मासखमण शुरू कर देता। राजा को जब यह याद आता, तब उसके मन में अत्यन्त खेद होता, वह तापस के पास जाकर विनम्रभाव से क्षमायाचना करता। यों लगातार तीन बार इस प्रकार बना। तीसरी बार भी पारणा नहीं हुआ, तब तापस को क्रोध आया। क्रोध ही क्रोध में उसने जीवनभर के लिए आहार का त्याग कर दिया और नियाणा (निदान) कर लिया कि राजा ने तीन-तीन बार अपने यहाँ पारणा करने का आमंत्रण दिया, मगर पारणा नहीं कराया। अतः मैं (अपनी तपस्या के फलस्वरूप) इस वैर का बदला लूंगा। वह तापस मरकर श्रेणिक राजा का पुत्र कोणिक हुआ। बड़ा होने पर उसने श्रेणिक राजा को पींजरे में डाला और उनकी नंगी पीठ पर कोड़े फटकारे। श्रेणिक (के जीव) ने (पूर्वभव में) तापस से बहुत क्षमा मांगी, किन्तु तापस माना नहीं। वैर का विपाक (कर्मफल) जीव को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। तुम लोगों में एक कहावत है न - **'पुत्र का लक्षण पालने में, और बहू का लक्षण बारणे में (प्रवेशद्वार पर)।'** नई बहू शादी करके श्वसुर गृह में प्रवेश करती है, तब उसके नयन, वचन और चरण पर से उसकी परख हो जाती है कि यह कैसी है? चतुर मानव मनुष्य की आँख देखकर समझ जाता है कि यह मनुष्य ऐसा होगा। तथा उसके बोलने पर से सारी प्रतीति हो जाती है, और उसकी चालढाल पर से भी मनुष्य की परख हो जाती है। वैसे ही कई जीव गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता को जो विचार आता है, उस पर से उस गर्भस्थ जीव की परख हो जाती है तथा कुछ बातें जन्म होने के बाद परखी जाती हैं।

प्रस्तुत कथानक में धारिणी रानी के गर्भ में जो जीव आकर उत्पन्न हुआ, तब से उसे पवित्र विचार आने लगे। धारिणी रानी गर्भवती हुई, उससे दूसरी ९९९ रानियों को बहुत आनन्द हुआ। गर्भ का पालन करते हुए सवा नौ महीने सुखपूर्वक पूर्ण हुए। तत्पश्चात् रानी ने पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र अत्यन्त तेजस्वी था। कारण यह था कि माता ने स्वप्न में बलवान् सिंह देखा था। और उसके पिता का नाम बलराजा था। उस पर से पुत्र का नाम रखा गया - महाबल कुमार। किसी परिवार में माता के नाम पर से पुत्र का नाम रखा जाता है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के १९वें (मृगापुत्रीय) अध्ययन में मृगापुत्र का नाम उसकी माता (मृगादेवी) के नाम पर से रखा गया था। चूँकि उसकी माता का नाम मृगादेवी था। उस पर से मृगापुत्र नाम रखा गया। यहाँ पिता (बलराजा) के नाम पर से पुत्र का नाम महाबल कुमार रखा गया। उसके जन्म से वीतशोका नगरी में आनन्द-आनन्द छा गया। पुत्र का लालन पालन करने के लिए अलग-अलग देशों की दासियाँ रखी गई। बहुत ही लाड़प्यार से महाबल कुमार बड़ा हुआ। उसे देखकर राजा-रानी को अपार आनन्द हुआ। अब महाबल कुमार के बड़े होने पर आगे क्या घटना घटित होती है? उसके भाव आगे यथावसर विचारेंगे।

उत्कृष्ट वैरागी बालकुमारी शारदाबेन (उम्र वर्ष : १६)
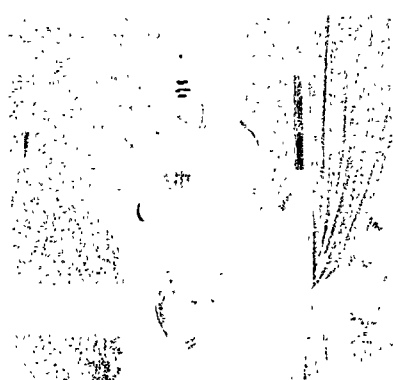
जन्म :
सं. १९८१
[म]ार्गशीर्ष वदी नवमी
[त]ा. १-१-१९२४
मंगलवार
साणंद

दीक्षा :
सं. १९९६
वैशाख शुक्ल षष्ठ[ी]
ता.१३-५-१९४[०]
सोमवार
साणंद

जिन्होंने मात्र सोलह वर्ष की नाजुक वय में संयम लेकर रत्नयत्र की रोशनी झलका दी, वीरवाणी का शेष देशोदेश में गुँजित कर दी, शासन की शान बढायी हैं । ऐसे पुस्तक प्रवचन कर्ता, प्रवचन प्रभाविका, शासनदीपिका महान विदुषी बा.ब्र. पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी के चरण कमल में हम सबका कोटि-कोटि वंदन

छोड़कर पोंची ले ली तो महावीर के मेरे श्रावकों को महावीर के वचन पर कब विश्वास बैठेगा ? *'विषयान् विषवत् त्यज'* - विषयों को विष जानकर छोड़ दो, इस उक्ति के अनुसार उन्हें छोड़ देना चाहिए । विषयों को विष सम जानते हुए भी, छोड़ते नहीं, इसका एक कारण यह है कि तुम्हें अभी तक वीतराग प्रभु के वचनों पर श्रद्धा-निष्ठा-विश्वास नहीं है, तथैव मोक्ष की रुचि जागी नहीं है । जब मोक्ष की रुचि जागेगी, तब तुम्हारी यह दशा नहीं होगी । ज्ञानीपुरुषों के वचन पर श्रद्धा जागेगी, तब उनके गुणों को, उनकी पवित्रता को और उनके उपकारों को नहीं भूलेंगे ।

बन्धुओं ! 'मुझे मोक्ष मिले,' अर्थात् 'मुझे मोक्ष में जाना है' ऐसा विचार किसे सूझता है ? ज्ञानी कहते हैं - संसार-परिभ्रमण जब अर्द्ध -पुद्गल-परावर्तन-काल-परिमित हो जाय, तब ऐसा विचार आता है । अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक संसार-भ्रमण हो तो 'मुझे मोक्ष मिले,' ऐसी इच्छा नहीं होती । इसके विपरीत जिसे मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है, उसे अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक संसार में भ्रमण करना नहीं होता । किन्तु 'मुझे मोक्ष में जाना है', 'मुझे जल्दी मोक्ष मिले' इन शब्दों का उच्चारण केवल जीभ से बोलने तक ही सीमित न हो । तुम यों मत समझना कि महासतीजी यों कहती थीं ' कि मोक्ष में जाने का विचार आए, इसलिए अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल में मोक्ष में अवश्य जाना ही है । यह आशय नहीं है, मेरे कथन का मोक्ष में जाने की रुचिवाले जीव के रग-रग में संसार असार है, त्याज्य है, ऐसी प्रतीति होना चाहिए । मोक्ष का अभिलाषी जीव चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से संसार में रहता है, परन्तु संसार में रमण नहीं करता, लिप्त या आसक्त नहीं होता । किसी मनुष्य को बुखार आया, अतः वह क्विनाईन की कड़वी गोली लेता है, कोई होम्योपैथिक की अथवा बायोकैमिक की मीठी दवा लेता है या कोई मीठा शर्बत पीता है । उसे कोई पूछे कि "तू क्या पी रहा है ?' तो वह कहेगा - 'मैं दवा पी रहा हूँ,' परन्तु ऐसे नहीं कहेगा कि 'मैं शर्बत पीता हूँ ?' दवा कड़वी हो चाहे मीठी हो, पर दवा दवा ही होती है । उसी प्रकार संसार में भले ही तुम्हें स्वर्ग से सुख मिले हों, या मिल रहे हों, पर संसार तो संसार ही है, जिसमें कोई सार नहीं है । सच पूछो तो संसार जीव को चतुर्गति की जेल में डालनेवाला पिंजरा है । मोक्षाभिलाषी जीव को कर्म के उदयवश संसार में रहना पड़े तो रहे, पर खूब अलिप्त रहे ।

भगवान् महावीर जब आर्हती दीक्षा लेने को तैयार हुए, तब उनके बड़े भाई ने कहा - "भाई ! माता-पिता तो हमें छोड़कर चले गए, तू भी क्या मुझे छोड़कर चला जाएगा ?" बड़े भाई के अत्यन्त आग्रह से उन्हें आश्वासन देने के लिए प्रभु महावीर दो वर्ष तक संसार में रहे । पर वे किस प्रकार रहे ? जलकमलवत् वे निर्लिप्त रहे । इस सम्बन्ध में तुम ऐसा विवाद मत करना कि भगवान् महावीर अपने बड़े भाई के आग्रह के कारण दो वर्ष संसार में रहे, तो हम संसार में क्यों न रहें ? बन्धुओं ! उन्हें विशिष्ट अतीन्द्रिय ज्ञान था' तुम्हें और हमें वैसा ज्ञान है क्या ? वे तीर्थंकर पद प्राप्त करनेवाले थे, मोक्ष में जाने-वाले थे, फिर भी उन्होंने संयम ग्रहण किया और करेमि भंते ! सामाइयं, इस पाठ से सामायिक चारित्र अंगीकार किया । दीक्षा लेते ही उन्हें चौथा मनःपर्याय ज्ञान हो गया।

साढ़े बारह वर्ष - पन्द्रह दिन की उग्र (तप) साधना की तब केवलज्ञान हुआ । इस पर से तुम समझ गये होगे कि (सर्वविरति) चारित्र ग्रहण किये बिना तीन काल में संसार से छुटकारा नहीं हो सकता, यह निश्चित समझ लेना । संसार दुर्गन्ध से भरी गटर है, ऐसा लगना चाहिए । बहुत-सी दफा जब गटर खुलती है, तब कैसी दुर्गन्ध फैलती है ? कोई व्यक्ति यों कहे कि अगर तुम गटर में रहो तो मैं तुम्हें रोजाना २५ रुपये दूंगा, भला क्या कोई उस गटर में रहने को तैयार होगा ? जिस गटर के पास से होकर निकलते हुए भी घृणा पैदा होती है, जिसकी दुर्गन्ध से जीव घबरा जाता है; उसमें रहने हेतु चाहे जितना धन देने का कोई प्रलोभन दे, तो भी क्या कोई उसमें रहने के लिए तैयार होगा ? कदापि नहीं । तुम भोजन करने बैठे हो, उस समय कोई तुम्हारे सामने बिष्टा का टोकरा रख जाए, तो तुम्हें कैसी नफरत होगी ? कदाचित् तुम नाक में कपड़ा ठूँस दोगे, या आँख भी बंद कर दोगे, फिर भी वमन हो जाएगी । गटर से जैसी यह सूग चढ़ती है, उससे भी अधिक सूग, तुम्हें इस आस्रवरूपी संसार की दुर्गन्धयुक्त गटर में रहकर पाप का सेवन करने की चढ़नी चाहिए। चतुर्गति में परिभ्रमण का त्रास होना चाहिए । संसार में रमण करने (आसक्त-लिप्त रहने) वाला जीव संसार के मनमाने सुख मिलें तो निःशंक होकर खुले दिल से भोगता है, उसीमें नाचता-कूदता और आनन्द मानता है । उसके फलस्वरूप वह नरक और तिर्यचगति का आमंत्रण स्वीकार करके वहाँ का मेहमान बनता है । तथैव संसार में रहनेवाले जीव का संसार में पाप-कार्य करते हुए उसी तरह मुँह बिगड़ जाता है, जिस तरह क्विनाईन की गोली खाने से मुँह बिगड़ जाता है । भगवान् कहते हैं - "मेरा श्रावक पाप भीरु अर्थात् पाप से घृणा करनेवाला होना चाहिए ।" श्रावक के २१ गुणों में 'पाप भीरू' नामक श्रावक का एक गुण है । अतः श्रावक पाप-कार्य करते हुए सावधान रहे । किसी मनुष्य को किसी चीज के खाने से एलर्जी हो जाती है, तो वह उसका त्याग कर देता है न ? उसी प्रकार किसी भी (अनिष्ट अशुभ पाप) कर्म को करने से आत्मा को एलर्जी हो जाए, तो उसका त्याग करोगे न ? ऐसा करने पर फिर मोक्ष अपने से दूर नहीं है ।

"मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति, न ग्रामान्तर्मेव वा ।
अज्ञान-हृदय-ग्रन्थि-नाशो, मोक्ष इति स्मृतः ॥"

किसी स्थान-विशेष में निवास मोक्ष नहीं है, अथवा मोक्ष को ढूंढने के लिए किसी दूसरे ग्राम में जाने की आवश्यकता नहीं है । हृदयस्थ अज्ञान की ग्रन्थी को नष्ट करना ही सर्वकर्म क्षय रूप मोक्ष कहा गया है । संक्षेप में, मोक्ष कोई बाहर खोजने की चीज नहीं है, यह तो तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि किसी बर्तन पर जंग लग जाए तो उसे बहुत घिसकर मांजा जाता है, तो वह चमकने लगता है । मैं पूछती हूँ - बर्तन में वह चमक कहीं बाहर से आती है ? नहीं, वह चमक बर्तन में ही थी, किन्तु उस पर काट लग गया था, बस, इसी तरह आत्मा पर चढ़ी हुई कर्म की कालिमा को तप और संयम द्वारा पूर्णतया दूर की जाय तो आत्मा शुद्ध ज्योतिर्मयी बन जाती है । और आत्मा की सर्वथा शुद्ध अवस्था ही मोक्ष है ।

(भ. मल्लिनाथ का अधिकार)

अपना चालू अधिकार है - धारिणी रानी का । धारिणी रानी ने एक पुत्र को ज
दिया है । उसका नाम रखा गया है - महाबल कुमार । अब वह बहुत ही लाड़-प्यार
बड़ा हो रहा है । समय बीतते देर नहीं लगती । शास्त्र में कहा गया है -

"महब्बले नामं दारए जाए; उम्मुक्क जाव भोग-समत्थे ।"

महाबल कुमार का जन्म होने के पश्चात् समय व्यतीत होने के साथ महाबल कुम
ने बाल्यावस्था पार करके युवावस्था में पदार्पण किया । युवक महाबल कुमार ब
होशियार था । अल्पकाल में ही उसने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था । वह समस्त कला
में कुशल, बुद्धिमान् और पंचेन्द्रिय सुख-भोग के लिए समर्थ (योग्य) हो गया ।

महाबल कुमार चतुर और पराक्रमी था । वह अत्यन्त रूपवान् और विनयवा
था । ऐसे गुणवान् पुत्र को देख-देखकर माता-पिता की आँखें थकती ही नहीं (स्थिर
जाती) थीं । पुत्र पढ़-लिखकर बचपन बिताकर जब जवान हो जाता है, तब माता-पि
उसका विवाह करने को उद्यत होते हैं । क्या कोई माता-पिता पुत्र के बड़े या युवक
जाने पर (ऐसा सोचते हैं कि) यदि इसे वैराग्य उत्पन्न हो तो दीक्षा दिला दें ? (हँसाहँस
बल्कि वह विरक्त (वैराग्य वासित) हो जाए तो उसे (संसार में) रोकने का प्रयत्न कर
हैं । हाँ तो, तुम्हारी तरह माता-पिता भी महाबल कुमार का विवाह करने के लिए तैय
हुए - *"तए णं तं महब्बलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमल- सिर
पागोक्खाणं पंचण्हं रायवर-कन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिंगेण्हावेंति*
तत्पश्चात् महाबल कुमार को सिर्फ एक ही दिन में समान कुल और समान वयवाल
कमलश्री आदि पाँच सौ उत्तम राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण (विवाह) कर देते हैं

बन्धुओं ! आपको ऐसा लगता होगा कि हमारे तो एक ही पत्नी है, और उनके ५०
रानियाँ ! विचार करिए, उनके ५०० पत्नियाँ अवश्य थीं, वे भोगावली कर्म के उदय
भोग भोगते थे, लेकिन वे उनमें आसक्त नहीं थे । उनके एक-एक से बढ़कर सुन्दर ५०
पत्नियाँ थीं । किन्तु समय आने पर वे एक साथ, एक ही झटके में पाँच सौ ही पत्निय
का त्याग कर देते थे, यही उनकी अनासक्ति का सबसे प्रबल सबूत है । मगर आपक
जिंदगी भर तक एक पत्नी का भी मोह छूटता नहीं । शास्त्रकार आगे कहते हैं - *'पं
पासायसया पंचसयदाओ जाव विहरइ ।'* बलराजा ने ५०० पुत्रवधुओं के रह
के लिए ५०० राजप्रासाद बनवा दिए । साथ ही महाबल कुमार की ५०० पत्नियों
से प्रत्येक पत्नी पांच सौ प्रकार का दहेज (दाज) लाई थी । इस प्रकार महाबलकुमा
यावत् सभी राजमहलों में यथेच्छ निवास करके मनुष्यभव के सभी सुखभोगों क
उपभोग करने लगे ।

इधर बलराजा और धारिणी रानी प्रमुख हजार रानियाँ बहुत ही आनन्दपूर्वक रह र
थे । उस समय वहाँ क्या हुआ ? शास्त्र में कहा गया - *"तेणं कालेणं तेणं समएण*

बनाना चाहता है। अध्यापक विद्यार्थी को विद्वान् बनाना चाहता है। गार्ड रेलगाड़ी को क्षेम कुशल-पूर्वक स्टेशन पहुँचाना चाहता है। नाविक नौका को नदी या समुद्र के किनारे ले जाना चाहता है, इसी प्रकार गुरु की भावना शिष्य का शीघ्र कल्याण कराने की होती है। गुरु को अन्य कोई स्वार्थ नहीं होता।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

स्व-पर-कल्याण के कामी सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को शास्त्र-सुधारस का पान कराते हैं और विनयवान् जम्बूस्वामी खूब प्रेम से (शास्त्र रस की) घूँट का पान कर रहे हैं। कल हमने यह बात कही थी कि बलराजा अत्यन्त उत्साहपूर्वक इन्द्रकुम्भ उद्यान में धर्मघोष अनगार की वाणी सुनने के लिए गए। धर्मघोष अनगार को वन्दन करके वे उनकी वाणी का पान करने हेतु बैठ गए। वीतरागवाणी सुनते समय यदि हृदय में माया, कपट, ईर्ष्या आदि दुर्गुण भरे होंगे तो वह वाणी अन्तर में नहीं उतरेगी। जैसे नरम जमीन पर वर्षा बरसती है तो वह (पानी) जमीन के अंदर उतर जाता है, किन्तु पाषाण पर बरसे तो पानी वहाँ टिकता नहीं, शीघ्र (चला) बह जाता है, इसी प्रकार जिसका हृदय सरल और पवित्र होता है, उसके हृदय में जिनवाणी का शीघ्र असर हो जाता है।

बन्धुओं ! यदि आप संसार के कार्य में उत्साहपूर्वक लग जाते हैं, तो कर्म का बन्धन होता है, किन्तु यदि आप उत्साहपूर्वक सन्तदर्शन करने घर से निकले, मन में ऐसे भाव आएँ कि अहो आज मैं संत के दर्शन करूंगा, उनके मुख से धर्म के दो शब्द सुनूंगा और पावन बनूंगा। आज मेरा जीवन धन्य हो जाएगा, किन्तु आप अभी तक उपाश्रय नहीं पहुँचे हैं, वाणी भी नहीं सुनी है, फिर भी कदम-कदम पर आपके कर्मों की निर्जरा होने लगती है। 'भगवती सूत्र' के प्रथम शतक, प्रथम उद्देशक और प्रथम सूत्र में भगवान् का कथन है - *'चलमाणे चलिए'* - चलने लगे, तब से चला कहलाता है। किस प्रकार ? जैसे - सत्ता में आठों ही आठ कर्म पड़े हैं, वे कर्म अभी तक उदय में नहीं आए हैं, परन्तु वे विपाकोदय में आने के लिए सत्ता में से चलित हुए हैं, तब कहा जाएगा कि वे कर्म विपाकोदय में आए हैं। इसी प्रकार धर्म का कार्य हो, या पाप का कार्य, करने लगे तो वह किया कहलाएगा। अन्तर इतना ही है कि धर्म के कार्य में कदम-कदम पर कर्म की निर्जरा होती है, जबकि पाप के कार्य में कदम-कदम पर कर्म का बन्ध होता है।

बलराजा अपने विशाल परिवार सहित धर्मघोष अनगार के दर्शन करने गए। दर्शन करके अत्यन्त उल्लासपूर्वक उनकी वाणी सुनी। धर्मघोष अनगार धर्म का उपदेश देते हुए समझाते हैं - "यह जीव अनन्तकाल से संसार में किस कारण भटकता है ? अनादिकाल से आत्म-घर में पर-पुद्गलों का प्रवेश हुआ है। कहा है - *'परः प्रविष्टः कुरुते विनाशः'* पराया प्रविष्ट होने पर वह विनाश करता है।" बन्धुओं ! मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके घर में कोई दुर्जन मनुष्य घुस जाए तो वह नुकसान करता है या नहीं ?

धम्मघोस-णामे थेरा पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुवि चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणे इंदकुंभेणामं उज्जाणे, तेणेव समोसढे, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावे माणे विहरंति ।।"

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर ५०० अनगारों के साथ अनुक्र से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सुखपूर्वक वीतशोका नगरी के बाहर इन्द्रकुम्भ नाम उद्यान में मुनि-परम्परा के अनुसार अवग्रह प्राप्त करके वनपालक की अनुज्ञा लेकर उ उद्यान में ठहरे। वहाँ उनका समवसरण लगा, धर्म सभा जुड़ी। वीतशोका नगरी की जन को मालूम हुआ कि नगरी के बाहर उद्यान में स्थविर भगवन्त अपने शिष्य समुदाय सहि पधारे हैं। यह सुनकर नगरजन अपने-अपने घर से निकलकर मुनिवरों के दर्शनवन्दन पर्युपासन करने एवं उनके प्रवचन सुनने के लिए उद्यान में आने लगे। स्थविर भगव ने बलराजा को तथा उस धर्मपरिषद को उपदेश दिया। तत्पश्चात् -

परिसा णिग्गया, बलो वि राया णिग्गओ ।

उपदेश श्रवण करके परिषद् भी अपने-अपने स्थान को चली, राजा भी अप राजमहल की ओर चल पड़ा।

बन्धुओं ! एक कहावत है, 'साधु तो रमता भला' - साधु विचरण करता रहे, व अच्छा-निर्मल रहता है। तात्पर्य यह है कि साधु-साध्वी जहाँ-जहाँ विचरण करते हैं, व धर्मप्रेमी जनता को धर्मोपदेश देते हैं। संसार-सागर से तरने का मार्ग बताते हैं। कि वे सशक्त होते हुए भी अगर एक ही जगह स्थिर होकर रह जाते हैं, तो उनके चारित्र शिथिलता आने की संभावना रहती है। इसलिए भगवान् ने कहा - *'विहारचरिय इसिणं पसत्था'* ऋषि-मुनियों के लिए विहार (विचरण) चर्या ही प्रशंसनीय है इसलिए भगवान् द्वारा यह कानून कितना अच्छा है ? वे कहते हैं - "हे सन्त ! तू (विभि क्षेत्रों में) जितना अधिक विचरण करेगा, उतना ही तेरा चारित्र अधिकाधिक निर्मल रहेग और (स्व-पर कल्याणरूप) धर्म का लाभ भी मिलेगा।" एक जगह जमकर रहने से रा भाव बढ़ता है। इसलिए कार्तिक सुदी पूनम के दिन चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मागस वदी (गुजराती कार्तिक वदी) एकम या दूज को, अपने-अपने सम्प्रदाय की परम्परानुसा (सशक्त) साधु-साध्वी विहार करते हैं। भगवान् का आदेश उत्सर्ग परम्परानुसार यहाँ तव है कि चातुर्मास समाप्ति के एक-दो दिन के बाद बिना कारण के उस क्षेत्र में रहना य वहाँ पानी तक पीना कल्पनीय नहीं है।

वीतशोका नगरी में पवित्र स्थविर संत पधारे हैं। बलराजा को उनके पदार्पण की सूचना मिलते ही, वे अपने राज परिवार सहित उनके दर्शन-वंदन-श्रवण करने के लि तैयार हुए। नगरी में भी राजा ने घोषणा करवाई कि 'नगरी-नरेश संतों के दर्शन कर जा रहे हैं, जिन्हें आना हो वे शीघ्र तैयार होकर चलें।' जहाँ नगरी के राजा संतों के दर्शन

हाँ, करता है । इसी प्रकार ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि - "अनादिकाल से आत्मगृह में पर-पुद्गलों का प्रवेश हो चुका है, वे आत्मा के ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपी धन का विनाश करते हैं ।" आत्मगृह में पराया घुस गया है, इतना ही नहीं, वह वहाँ अड्डा जमा कर बैठने में अभ्यास्त हो गया है । आत्मा के गुणों को (आत्म) घर से बाहर फेंककर स्वयं घर का मालिक हो कर बैठा है और मालिक को बाहर निकाल दिया है । आत्मा अज्ञानदशावश परायों को अपने मानकर उनका पोषण और प्रशंसा करती है, तथैव पर पुद्गलों का रागी-द्वेषी बनकर आत्मा समय-समय पर उन्हें घर में घुसाता है और घुसाये हुए वे कर्मपुद्गल आत्मा को बार-बार दुःख देते हैं । जबतक आत्मगृह में कर्म-पुद्गलों की उपस्थिति है, तबतक आत्मा को भय, दुःख, त्रास आदि सब रहेंगे । कर्मपुद्गल जब आत्मगृह में से निकल जाएँगे, तभी आत्मा सच्चे माने में सुखी होगा ।

"देवानुप्रियों ! इस उत्तम मनुष्यभव को पाकर ऐसा पुरुषार्थ करो कि आत्मगृह में जो पर-पुद्गल प्रविष्ट हो रहे हैं, वे रुकें और जिन पर-पुद्गलों का प्रवेश हो चुका है, उनका शीघ्र निष्कासन हो । यदि आत्मा को अपने स्वरूप का भान हो जाए, तो वह पर-पदार्थों के साथ परिचय कम करने लग सकता है । क्योंकि पर-संयोग के कारण सुख का नाश और दुःख का आगमन होता है । कहा भी है -

'संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्ख-परंपरा'

"पर-संयोग के कारण जीव (आत्मा) ने दुःखों की परम्परा प्राप्त (खड़ी) की है ।" जहाँ 'पर' का संयोग हुआ, समझलो वहाँ दुःख आ गया । आत्मा पर के साथ हिलमिल जाता है, उसीके कारण जन्म-मरण के दुःख उत्पन्न होते हैं । असंयोगी आत्मा को कोई आपत्ति या भय नहीं है । आत्मा का शुद्ध स्वरूप समस्त जड़-पदार्थों से भिन्न है । आत्मा (शुद्ध आत्मा) का अस्तित्व स्वतंत्र है । उसे सुख के लिए दूसरों की अपेक्षा रखने की आवश्यकता नहीं होती । वह स्वयं अनन्त - (अव्याबाध) सुखरूप है । स्वयं सुखरूप आत्मा को सुख के लिए किसी से भीख मांगने की जरूरत नहीं होती । अपने पास अनन्तसुख का खजाना होने पर भी अज्ञानी जीव पर (दूसरे सजीव-निर्जीव) पदार्थों से सुख के लिए प्रार्थना करता है । आत्मा को अपने में निहित अनन्तसुख का खजाना प्राप्त करने के लिए आत्मगृह में घुसे हुए कर्म-पुद्गलों को भगाने की जरूरत है ।

बलराजा धर्मघोषमुनि की वाणी सुनकर वैराग्य रंग से रंग गए । अभी तक तो वे स्वयं पाप पंक में पड़े थे, किन्तु स्व-स्वरूप का भान होते ही निश्चय किया कि 'पर' के संग चढ़कर अनन्तकाल से संसार में भ्रमण किया । 'पर' के प्रपंच में फँसकर अनेक पापकर्म किए । बहुत दुःख सहे, अब इस पर-प्रपंच का पींजरा मुझे नहीं चाहिए । अब तो अपने स्व-गृह में स्थिर होना है । स्व में जो सुख है, वह पर में तीन काल में मिलनेवाला नहीं है । चारा चरने के लिए जंगल में गया हुआ पशु शाम होने पर मालिक के द्वारा उसको बांधने के खीले पर आकर खड़ा रहता है । तब उसका मालिक उसे प्रेम से पपो-

वन्दन करते हेतु जा रहे हों, वहाँ जनता पर भी उसका अपूर्व प्रभाव पड़ता है। फलतः प्रजाजन भी उल्लासपूर्वक संत-दर्शन करने के लिए जाने को उद्यत हुए।

देवानुप्रियों ! तुम्हारे गाँव या नगर में संत-सती का पदार्पण हो, तब तुम (प्रमादी बनकर) घर में बैठे मत रहना ! कम से कम एक घंटा तो संत-समागम अवश्य करना। धंधे - व्यवसाय आदि की ममता छोड़ देना। कुटुम्ब-परिवार के लिए षड्यंत्र करके अधिकांश लोग प्रचुर धन एकत्रित कर लेते हैं, किन्तु आज तो उन अनैतिक धनलोलुपों को मीसा के कानून के अनुसार गिरफ्तार करके जेल में बिठा देते हैं। किसको किस जेल में डाल देते हैं, उसका भी कोई पता नहीं है। खानेवाले को जेल में नहीं जाना पड़ता। लेकिन तुम्हें (चोरबाजारी करनेवाले को) जेल में जाना पड़ेगा। इस मीसा में पकड़े जाने पर किसी प्रकार की अपील या दलील नहीं सुनी जाती। फिर भी इस मीसा से तो कदाचित् दो-तीन वर्ष में छुटकारा मिल जाएगा, किन्तु कर्मसत्ता की मीसा तुम्हें ऐसी पकड़ेगी कि (कितने हजार वर्षों तक) किस दुर्गति की जेल में ठूंस देगी, उसका कोई पता नहीं है। अतः *भगवद्वाणी से कर्मों के बंध होने और उससे मुक्त होने के कारणों को भलीभाँति समझकर पर-भावों (शरीर और शरीर से सम्बन्धित सजीव-निर्जीव पदार्थों) पर से ममता-अहंता छोड़कर शुद्ध धर्म का आचरण करोगे, उतना ही तुम्हारी आत्मा को लाभ होगा।*

बलराजा भी विशाल जनसमूह के साथ स्थविरमुनि भगवंतों के दर्शन-वन्दन-श्रवण करने के लिए पहुँचा। मुनियों के दर्शन-वन्दन करके वह बैठे। स्थविर भगवन्त ने धर्म देशना सुनाई। उनकी अमृतभरी वाणी सुनकर बलराजा को संसार की अस्थिरता-क्षणिकता का भान हुआ। वह ज्यों-ज्यों जिनवचन गुरुदेव स्थविरमुनि से सुनते गए, त्यों-त्यों उनकी आत्मा में अपूर्व आनन्द की अनुभूति होने लगी। उनके मुख से उद्गार निकले - *"अहो ! कितनी कल्याणकारिणी आपकी वाणी है ?"* धर्मघोष स्थविर की वाणी सुनकर बलराजा प्रतिबुद्ध हुए, वे वैराग्य-रंग में रंजित हो गए। सचमुच, वे कितने पवित्र और लघुकर्मी आत्मा थे ?

'स्थानांग-सूत्र' के चतुर्थ स्थान में चार प्रकार के मेघ (बादल) बताए हैं। एक मेघ ऐसा होता है, जो एक बार बरसता है, तो उससे दस हजार वर्ष तक अन्न उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार का मेघ एक बार बरसता है, तो उससे एक हजार वर्ष तक अनाज पैदा होता रहता है। तीसरे प्रकार का मेघ एक बार बरसता है तो उससे दस वर्ष तक अन्न उत्पन्न होता रहता है और चौथे प्रकार का मेघ ऐसा है कि वह अनेक बार बरसता है, तब जा कर एक बार धान्य पैदा होता है। यह मेघ पंचम आरे का है।

बन्धुओं ! बलराजा पहले प्रकार के मेघ जैसे थे। उन्होंने धर्मघोष अनगार की पहली बार धर्मदेशना सुनते ही कहा - "गुरुदेव ! आपकी वाणी सुनकर मुझे संसार असार प्रतीत हो गया है।" बलराजा ने तो पहली बार धर्मोपदेश सुनते ही इस प्रकार कहा, परन्तु मेरे घाटकोपर के भावुक श्रावकवर्ग कब कहेंगे कि हमें भगवद्वाणी सुनकर संसार असार

लता है तथा उसके खाने के लिए घास-चारा डालता है और जो ढोर मालिक की आज्ञा में नहीं रहता, उसे लकड़ी की मार खानी पड़ती है। स्कूल में पढ़ने गया हुआ बालक जब घंटी बजती है, तब उसके मन में विचार फिरता है कि अब शीघ्र घर जाना चाहिए। तुम ओफिस या घर जाते हो, वहाँ पंखे या एयरकंडीशन रूम में कुर्सी पर बैठे हो। वहाँ सभी तुम्हे साहब-साहब कहते हों, लेकिन शाम होते ही तुम्हें घर आने का मन होता है। यहाँ उपाश्रय में आकर बैठे हो, तब भी ऐसा होता है कि कब महासतीजी व्याख्यान बंद करें और हम घर जाएँ। यहाँ बैठे हो फिर भी घर की याद आती है। यहाँ तो कितनी शान्ति है ? जबकि घर में कितनी उपाधि है ? रविवार की छुट्टी के दिन शान्ति होती है, परन्तु घरवाली कहेगी - "आज घी समाप्त हो गया है।" दूसरे रविवार को कहेगी कि तेल और रेशनिंग के पैसे दो। फिर तीसरे रविवार को कहेगी - इस लड़के के कपड़े फट गए हैं। वे (खरीद कर बाजार से) लाइए, फीस भरने के लिए रकम दो। यों घंटी बजती रहती है - फरमाइस की। इतनी उपाधि होने पर भी घर याद आता है, किन्तु क्या उपाश्रय या धर्मगुरु याद आते हैं ? एक भक्त ने अपनी मस्ती में गाया है -

हुं तने भजुं छुं रविवारे, नाकी क्यां छे समय प्रभु म्हारे ?
आम तो हमेशा स्थानके आवुं, आवुं तेवो पाछो सीधावुं।
ने घड़ी नेसुं छुं रविवारे, नाकी क्यां छे, समय प्रभु म्हारे ? ॥

आज रविवार है, इसलिए यहाँ बैठे हुओं में से कितने ही लोगों ने प्रोग्राम निश्चित कर रखा होगा कि आज गार्डन में घूमने जाना है, पिक्चर देखने जाना है, सगे-सम्बन्धियों से मिलने जाना है, या विवाह अथवा सगाई में जाना है। परन्तु क्या आत्मा के लिए कोई प्रोग्राम निश्चित किया है क्या ? अनन्तकाल से आत्मा पाप करता आया है, परन्तु क्या आपके मन में कभी यह विचार आता है कि इस पाप को पश्चात्ताप की भट्टी में डालकर जला डालूं ? एक दिन भी पाप के विषय में पश्चात्ताप किया है क्या ? शरीर को स्वच्छ रखने के लिए प्रतिदिन स्नान करते हो, परन्तु आत्मा को स्वच्छ बनाने के लिए रोज प्रतिक्रमण करते हो क्या ? इस समय वर्तमान चातुर्मास के पवित्र दिन चल रहे हैं, तो अष्टमी या पंचमी को, या सुबह अथवा शाम को, एक टाइम भी मुझे प्रतिक्रमण करना है, ऐसा प्रोग्राम निश्चित करते हो क्या ?

बन्धुओं ! पाप का पश्चात्ताप नहीं करोगे, और नये कर्म करते हुए रुकोगे नहीं, वहाँ तक आत्मा को कर्म की गुलामी से मुक्ति नहीं मिलेगी। तुम्हें सबकुछ स्वतंत्र अच्छा लगता है न ? मकान स्वतंत्र पसंद है, व्यापार भी स्वतंत्र अच्छा लगता है, परन्तु अभी तक कर्म की गुलामी से आत्मा को मुक्त करके स्वतंत्र बनाने की लगन नहीं लगी। अगर तुम्हारा मन धर्म में लीन होगा, सामायिक-प्रतिक्रमण आता होगा, तो बुढ़ापे में भी कोई आपत्ति नहीं आएगी। बुढ़ापा आएगा, तब काम नहीं हो सकेगा, तब बेटा कहेगा "पिताजी ! अब आपकी हमें जरूरत नहीं है। उपाश्रय में जाकर बैठो।" (उस **समय**)

लगा है। बोलो ! किसी के हृदय में ऐसा विरक्ति का भाव है क्या ? खैर, इतनी तैयारी न हो तो कम से कम आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा तो लो ! ब्रह्मचर्य के पालन में तुम्हें पत्नी-पुत्र आदि परिवार छोड़ना नहीं पड़ेगा, न ही आहार का और न घर का त्याग करना पड़ेगा। फिर भी इससे महान् लाभ मिलेगा। अतः विषयों को विषवत् समझकर त्यागो यों कर्मबन्धन तोड़कर मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करने में अपनी शक्ति का सदुपयोग करो। बलराजा ने धर्मघोष मुनिवर के समक्ष कहा - "भगवत् ! मुझे आपके पास सर्वविरति संयम ग्रहण करना है। मैं घर जाकर महाबल कुमार को राजगद्दी पर बिठाकर, उसे राज्यभार सौंपकर आपश्री के पास मुनिदीक्षा अंगीकार करूंगा।" इस पर स्थविर भगवंत ने कहा - *"जहा सुहं देवाणुप्पिया !, मा पडिबंधं करेह !'* - "हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस महान् सत्कार्य में विलम्ब, ढील या टालमटोल मत करो।" इस प्रकार स्थविर भगवत ने उनसे कहा। अब बलराजा अपने महल में पहुँचकर किस प्रकार दीक्षा की तैयारी करता है ? उसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

पाटलीपुत्र में प्रवेश और पटरानी का पद : जितशत्रु राजा की दूसरी रानियों को भी विद्युत्प्रभा को देखकर आनन्द हुआ। विद्युत्प्रभा भी अपनी बड़ी बहनों (रानियों) के चरणों में पड़ी। उसके विनयादि गुणों को देखकर बड़ी पटरानी जितशत्रु राजा से कहती है - "स्वामीनाथ ! विद्युत्प्रभा बहुत ही गुणवती है, पवित्र है। इसमें महारानी के पद को सुशोभित करने की योग्यता है। अतः इसे पटरानी का पद प्रदान करें।" यह सुन विद्युत्प्रभा बोली - "अरी बहनजी, यह आप क्या कह रही हैं। मैं तो छोटी हूँ। मुझे ऐसा पद देने के लिए कदापि मत कहना।" किन्तु सभी रानियों ने अत्यन्त आग्रह करके विद्युत्प्रभा को पटरानी पद दिला दिया।

विद्युत्प्रभा के विवाह के कुछ ही वर्षों बाद, सौतेली माँ के एक पुत्री हुई। वह धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। सौतेली माता की पुत्री ज्यों ज्यों बड़ी होती गई, त्यों-त्यों वह (विमाता) विद्युत्प्रभा के सुख को देखकर ईर्ष्या की आग में जलने लगी। यह (विद्युत्प्रभा) बड़ी महारानी बन बैठी है, अतः किसी भी तरह से उसे मार डालकर राजा के साथ मेरी पुत्री का विवाह कर दूं। इस ओर विवाह के १५ वर्ष बाद विद्युत्प्रभा गर्भवती हुई। राजा के मन में अपार आनन्द और उत्साह था। विद्युत्प्रभा का (राजपरिवार) में बहुत मान-सम्मान बढ़ने लगा। सारे गाँव में उसके सद्गुणों की सुवास फैल गई हैं, अतः उसकी खूब प्रशंसा होती है।

विद्युत्प्रभा का सुख देखकर विमाता के दिल में लगी ईर्ष्या की आग : दूसरी ओर सौतेली माता पुण्यशालिनी पुत्री को मार डालने का उपाय खोजने लगी। बहुत विचार करने के बाद उसने अपने पति से कहा - "अपनी पुत्री विद्युत्प्रभा का विवाह हुए

अगर आपको कुछ आता नहीं होगा, तो अपार दुःख होगा। अगर आपको सामायिक-प्रतिक्रमण आते होंगे तो आप उपाश्रय में जाकर सामायिक-प्रतिक्रमण कर लोगे। मगर आज तो बहुत-से जैनों को सामायिक - प्रतिक्रमण नहीं आते। जैनकुल में जन्मे हुए लोगों को सामायिक - प्रतिक्रमण, छह काय के बोल, नव तत्त्व, पचीस बोल, इतना तो अवश्य ही आना चाहिए। ब्राह्मण के बेटे को जैसे जनेऊ (यज्ञोपवीत) के बिना नहीं चलता, वैसे ही जैनकुल में जन्मे हुए व्यक्तियों का इतना (सैद्धान्तिक) ज्ञान तो अवश्य होना चाहिए। इतना भी नहीं आए तो जीव-अजीव को कैसे जान पाओगे ? 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है -

"जो जीवे वि न याणाइ, अजीवे वि न याणाइ।
जीवा जीवे अयाणंतो, कहं सो नाहिउ संजमं ॥"

जो जीव को नहीं जानता, अजीव को भी नहीं जानता, यों जीव-अजीव को जो नहीं जानता, वह उनकी दया कैसे पालेगा, उनका संयम कैसे रखेगा ? परन्तु आज तो सामायिक-प्रतिक्रमण सीखने का किसी को कहा जाता है तो वह यह कहेगा - "क्या करें, हमें ज्ञान चढ़ता ही नहीं है।" अनन्तशक्ति और अनन्तज्ञान का अधिपति होते हुए भी जीव की कितनी कायरता है ? कितना प्रमाद है ? पर-पुद्गलों के संग में चढ़कर आत्मा अपनी (वास्तविक) शक्ति का भान भूल गया है। उस सिंह के बच्चे जैसी आत्मा की दशा हो गई है। जैसे वह सिंह का बच्चा बचपन से ही भेड़ों के टोले के साथ मिलकर अपनी शक्ति का भान भूल गया था (कहा भी है -

सोनेरी पिंजरमां पुरायो, सिंह बनी केशरियो
गाडरना टोळामां भळियो, विवेक कां वीसरियो.... (२);
दोड़ी दोड़ीने दोड्यो, तो ये आव्यो न भवनो आरो रे ॥ एक जाग्यो न...

सिंह का बच्चा (अबतक) मानता था कि मैं इसके जैसा ही भेड़ का बच्चा हूँ। किन्तु एक बार नदी के किनारे भेड़ों की टोली इकट्ठा होकर पानी पीने गया। एक सिंहनी ने इस (शेर के) बच्चे को भेड़ों के टोले में देखा तो उसने गर्जना की। सिंहनी की गर्जना सुनकर भेड़ों का टोला भाग गया। किन्तु उस सिंह शिशु को ऐसा लगा कि हमसे कोई जबरदस्त यह प्राणी है, जिसकी गर्जना से सब उठकर भाग गए। उसने सिंहनी के सामने देखा। पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा। उसे लगा कि मेरे में और इसमें कोई अन्तर नहीं है, तो क्या मुझमें इसके जैसी शक्ति नहीं है ? मैं भी ऐसा गर्जना करूँ। सिंह शिशु ने भी वैसी गर्जना की, तो उसे अपनी शक्ति का भान हुआ।

बन्धुओं ! सिंहनी ने सिंह शिशु को उसकी शक्ति का भान कराया; उसी प्रकार भगवान् के सन्त भी वीरवाणी द्वारा सिंहनाद करके तुम्हें जागृत कर रहे हैं कि हे आत्माओं ! अपने में अनन्तशक्ति रही हुई है। परन्तु कर्म के वशीभूत होकर अनन्तशक्ति का स्वामी होते हुए भी अपना आत्मा शरीररूपी स्वर्ण-पिंजर में बंद है और विषय-भोग

इतना लम्बा समय हो गया, वह अभी तक अपने यहाँ (पीहर) नहीं आई। अतः मैंने उसके लिए खूब प्रेम से यह बर्फी बनाई है, अतः आप बर्फी का यह डब्बा लेकर जाइए और बेटी से मिलकर उसे यह डब्बा दे आइए।" अपरमाता ने बर्फी में भरपूर जहर डाल दिया था। ब्राह्मण (उसके पति) को इस षड्यंत्र का बिलकुल पता नहीं था। इसलिए वह बर्फी का डिब्बा लेकर चल पड़ा। उस समय पैदल मुसाफिरी होती थी। अत्यन्त थक जाने से ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे सो गया। सोते ही उसे गहरी नींद आ गई। उस दौरान विद्युत्प्रभा का सहायक नागकुमार देव वहाँ क्रीड़ा करने आया। इस ब्राह्मण को वृक्ष के नीचे सोया हुआ देखकर अवधिज्ञान से उपयोग लगाकर उसने सारी हकीकत जान ली। सौतेली माँ की दुष्ट भावना को विद्युत्प्रभा को मार डालने के षड्यंत्र की तथा ब्राह्मण को इसकी बिलकुल जानकारी न होने की, सारी बात जानकर देव को सौतेली माता पर बहुत गुस्सा आया। उसने सौतेली माँ की खबर लेने (सबक सिखाने) जाने का सोचा। परन्तु ऐसा करने से माँ दुःखी होगी तो विद्युत्प्रभा को बहुत दुःख होगा, यों जानकर उस बात की उपेक्षा की। किन्तु विद्युत्प्रभा को बचाने के लिए उसने बर्फी में से विष को निकाल दिया और उसके बदले अमृत भर दिया। इस कारण वह जहरीली बर्फी अब अमृतमयी, बहुत सुगन्धित और स्वादिष्ट बन गई।

ब्राह्मण इस बर्फी का डिब्बा लेकर जितशत्रु राजा के महल में पहुँच गया। राजा ने उसे तुरंत पहचान लिया। उसने अपने ससुर का बहुत आदर-सत्कार किया और उसी समय विद्युत्प्रभा को बुलाया। पिताजी को आये देख वह बहुत ही प्रसन्न हुई और उनके चरणों में प्रणाम किया। फिर उसने माँ के कुशल-समाचार पूछे। इस पर ब्राह्मण ने कहा - "बेटी ! हम तुम्हारे राज्य की होड़ तो नहीं कर सकते, किन्तु तेरी माँ ने प्रेमपूर्वक यह बर्फी बना कर भेजी है।" विद्युत्प्रभा बोली - "पिताजी ! ऐसा मत कहिए। आप अपने मन में जरा भी हीन भावना मत लाइए। पीहर की छोटी-से छोटी चीज भी मुझे प्रिय लगती है।" राजा यह सुनकर बोला - "तेरी माता ने तेरे लिए बर्फी भेजी है, तो क्या मैं नहीं खा सकता ? लाओ, मैं पहले खाऊँ।" राजा ने स्वयं बर्फी का डिब्बा खोला। डिब्बा खोलते ही चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध महकने लगी। राजा ने बर्फी का टुकड़ा मुँह में रखा और कहा - "क्या ही अच्छा स्वाद है ? ऐसी बर्फी तो मैंने कभी खाई नहीं।" विद्युत्प्रभा ने भी खाई फिर अपनी सब बहनों (रानियों) को देने हेतु अपने पीहर से आई हुई बर्फी भेज दी। बर्फी खाकर सभी विद्युत्प्रभा की माता की प्रशंसा करने लगे - "वाह ! क्या कमाल की चतुराई है !" ब्राह्मण एक-दो दिन रुककर अपने गाँव जाने को तैयार हुआ। राजा ने उसे बहुत-सा इनाम दिया। ब्राह्मण बहुत खुश होकर अपने घर पहुँचा और सारी बात अपनी पत्नी से कही। ब्राह्मणी ने पूछा - "विद्युत्प्रभा ने मेरी बनाई हुई बर्फी खाई या नहीं ?" इस पर ब्राह्मण ने कहा - "अरी ! विद्युत्प्रभा ने अकेली नहीं, किन्तु महाराजा ने, तथा अन्य सभी रानियों ने वह बर्फी खाई और सभी उस बर्फी को खाकर बहुत ही खुश हुए। सभी ने तेरी खूब प्रशंसा की।" तब उसने पूछा

व्याख्यान वाचस्पति बालब्रह्मचारी विदुषी

'पूज्य शारदाबाई महासतीजी की जीवन रेखा'

'प्रेरणादायी वैराग्यमय जीवन'

सृष्टि की सुन्दर फूलवारी में अनेक पुष्प खिलते हैं और मुर्झा जाते हैं, लेकिन पुष्प की विशेषता और महत्ता इसीमें होती है कि वह अपने सौरभ से दूर-दूर तक सुगन्ध फैलाता है तथा लोगों को ताजगी और प्रफुल्लता से भर देता है। संसार में अनेक जीव जन्म लेते हैं, लेकिन उसीका जीवन सार्थक होता है, जिसका आकर्षक व्यक्तित्व सदैव दूसरों के जीवन को नयी और सही राह दिखाता है। जो सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार जैसे उच्चतम संस्कारों का खजाना जगत के समक्षु रखते हुए मुमुक्षु जीवों को यह विरासत सौंपने के लिए प्रचण्ड पुरुषार्थ करते हैं, प्रमाद की गाढ़ी निद्रा से जागृत करके कर्तव्य की राह पर आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हैं और जीवन जीने की कला का अपूर्व बोध प्रदान करते हैं। जो अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के साथ दूसरों का जीवन भी उज्ज्वल करते हैं - ऐसे शासन रत्नों में जैनशासन की साध्वी के रूप में, जिनशासन का डंका देश-विदेश में जिन्होंने गूँजाया, वे गौरववंत गुजरात की भूमि में जन्मी, प्रखर व्याख्याता, अप्रतिम उदारता की मूर्ति, क्षमा, तप, त्याग और संयम मार्ग की दृढ़ उपासिका, आर्जवता तथा मार्दवता से मुमुक्षों का मन मोह लेने वाली बाल ब्रह्मचारी विदुषी पूज्य श्री शारदाबाई महासतीजी हैं।

"सुमनोहर भूमि साणंद की, गूँजती ध्वनि जहाँ सदा आनन्द की,
मस्ती मनाने निजानंद की, जन्मी विरल विभूति शारदा गुरुणी।"

पूज्य शारदाबाई महासतीजी का जन्म अहमदाबाद के नजदीक साणंद शहर में संवत १९८१ की मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी, तदनुसार मंगलवार दिनांक : १-१-१९२४ की मध्यरात्रि के पश्चात् अढ़ाई बजे हुआ था। धन्य है वह भूमि ! किसे ज्ञात था कि साणंद सहर में खिला यह पुष्प, अपने सद्‌गुणों की सौरभ जगत के कोने-कोने तक बिखरा कर, आत्मा का अपूर्व आनन्द प्राप्त करेगा। शासन प्रेमी, धर्मानुरागी पिता वाडीभाई और सद्‌गुणों से सुशोभित रत्नकुक्षि माता शकरीबहन भी धन्यवाद के पात्र है कि जिन्होंने जिनशासन को उज्ज्वल करने वाली, संप्रदाय की शान बढ़ानेवाली शारदाबहन के जीवन में सुंदर संस्कारों के ऐसा बीज बोए कि आज वह बीज विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल कर चारों दिशा में अपनी महक फैला रहा है। सचमुच ही, जब शारदाबहन का जन्म हुआ तब किसने सोचा था कि यह नन्हीं बालिका भविष्य में जैनशासन में धर्म की धुरी ग्रहण करके माता-पिता का नाम दुनिया में रोशन करेगी ! गौरववंती माता शकरीबहन ने पाँच पुत्रियों और दो पुत्रों को जन्म दिया। जैनशासन की शान बढ़ाने वाली, प्रव्रज्या का परिमल प्रसारित करने वाली, रत्नत्रयी की रोशनी फैलाने वाली महान विदुषी बा. ब्र. पूज्य शारदाबाई महासतीजी के तेजस्वी जीवन की यहाँ संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश है।

- "आप तुरंत निकल गये या दूसरे दिन निकले ?" ब्राह्मण ने कहा - "मैं वहाँ दो दिन रुका था ।" यह सुनकर ब्राह्मणी के दिल में यकायक घबराहट हुई और वह मन ही मन अधिक जलने लगी - 'हाय ! मैंने तो बर्फी में जहर डाल दिया था । सबने उसे खाई, लेकिन किसी को कुछ भी नहीं हुआ । अतः इस बार लड्डूओं में तीव्र जहर डालकर भेजूं ताकि उसकी जिंदगी का फैसला हो जाए ।'

यों सौतेली माँ ने ऊपर से तो खुशी जाहिर की, लेकिन अंदर तो कपट भरा था । कपटी मानव अपना कपट जाहिर होने नहीं देते । वे अपनी मलिन वृत्ति को छोड़ते नहीं । इस कपट, दम्भ और मलिन भावना के अशुभ फल जब भविष्य में भोगने पड़ेंगे, तब उसकी नानी याद आ जाएगी, वह हायतोबा मचाएगा, किन्तु कोई उसे बचाने नहीं आएगा । किये हुए अशुभ कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ेगा । अगर दुःख अच्छा नहीं लगता हो तो ऐसे दुष्कृत्य नहीं करने चाहिए ।

माता ने लड्डूओं में जहर डाला : विद्युत्प्रभा की सौतेली माँ ने इस बार लड्डू बनाये । विद्युत्प्रभा गर्भवती है, इसलिए उसके खाने के लिए काटला के लड्डू बनाये । उनमें से भी एक बहुत बड़ा लड्डू बनाया । उसमें जहर मिलाया और ब्राह्मण से कहा - "ये लड्डू लेकर जाओ और यह बड़ा लड्डू तो विद्युत्प्रभा को ही खिलाना । ये लड्डू दूसरे किसी के लिए नहीं, मेरी विद्युत्प्रभा के लिए ही बनाये हैं । अतः दूसरे कोई इन लड्डूओं को न खायें, ऐसा सबको कह देना और वह गर्भवती है, अतः राजा से विनती करना कि पहला प्रसव तो पीहर में ही होना चाहिए । ऐसा कहकर आप उसे साथ में लेकर आना ।" ब्राह्मण लड्डूओं का डिब्बा लेकर चल पड़ा । बीच में आराम करने के लिए उसी (पूर्वोक्त) वृक्ष के नीचे सो गया । दैव योग से पहले की तरह वह नागकुमारदेव भी वहाँ आ गया और अवधिज्ञान से सारी बात जान गया । अतः उसने उन लड्डूओं में से जहर खींचकर उनमें डबल अमृत डाल दिया । फलतः वे लड्डू सुगन्धित और स्वादिष्ट बन गए । ब्राह्मण ने राजमहल में जाकर लड्डूओं का डिब्बा देते हुए कहा - "महाराजा ! ये लड्डू तो केवल विद्युत्प्रभा के खाने के लिए ही उसकी माता ने भेजे हैं ।" राजा ने कहा - "ऐसे नहीं, मुझे तो आप लाते हैं, वे लड्डू बहुत अच्छे लगते हैं । अतः मैं इनमें से कुछ लड्डू तो खाऊँगा ही ।" ब्राह्मण बोला - "किन्तु यह बड़ा लड्डू तो मेरी पुत्री खाएगी ।" यों कहकर उसने बड़ा लड्डू विद्युत्प्रभा को खिलाया और दूसरे लड्डू तो सबने खाये । लड्डू खाते ही विद्युत्प्रभा का रूप अधिक चमकने लगा । सब कहने लगे - "विद्युत्प्रभा की माँ बहुत चतुर है । ऐसे स्वादिष्ट और सुगन्धित लड्डू बनाती है ।" माता ने कैसे स्वादिष्ट लड्डू बनाये हैं, यह तो ज्ञानी जानते हैं । बेचारा ब्राह्मण तो इस बात से बिलकुल अनजान है । लड्डूओं में यह तो दैवी अमृत का स्वाद है । जहरीला मानव दूसरे को मारने के लिए चाहे जो कुछ करे, परन्तु जिसके पुण्य प्रबल होते हैं वहाँ किसी की ताकत है कि उसका बाल भी बाँका कर सके ? नीतिकार कहते हैं - *'रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि'* पूर्वकृत (शुभ) कर्म उस व्यक्ति की रक्षा करते हैं ।

रत्न समान रत्न गुरुदेव का समागम : जो आत्मा आध्यात्मिक भाव में रमण करती रहती है और उच्च भावनाओं का सेवन करती रहती है, उसकी भावना को साकार करने के लिए कोई न कोई सहायक मिल ही जाता है । इसीके अनुसार शारदाबहन के दृढ़ वैराग्य को चुम्बक से आकर्षित होकर खंभात संप्रदाय के गच्छाधिपति कोहिनूर रत्न के समान तेजस्वी, अध्यात्मयोगी, महायशस्वी बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब का साणंद की पवित्र भूमि में पुनित पदार्पण हुआ । उनका वैराग्य और दृढ़ बना । गुरुदेव ने कुमारी शारदाबहन से कहा, "बहन ! तुम्हारी संयम की भावना अति उत्तम और श्रेष्ठ है; परन्तु क्या तुम्हें पता है कि आत्मकल्याण की राह बड़ी कठिन है । इस किशोर वय में माता-पिता की शीतल छाया और संसार का रंग-राग छोड़ कर कष्टों और कंटकों से भरपूर संयम मार्ग को स्वीकारना कोई सामान्य या आसान काम नहीं है । इस संयम मार्ग के संकटों का तुम सहर्ष सामना कर पाओगी ? क्या तुम्हारे माता-पिता तुम्हें आज्ञा प्रदान करेंगे ?" शारदाबहन ने उत्तर दिया, "गुरुदेव ! मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ । इस विषम संसार में, जहाँ छः काय के जीवों की हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, जहाँ राग-द्वेष की होली सतत जलती हो, जहाँ पुण्य बेचकर पाप की कमायी होती हो, ऐसा संसार रहने योग्य है क्या ? इसलिए ऐसा संसार का त्याग कर आत्म-प्रकाश प्राप्त करने के लिए संयम अंगीकार करने की मेरी उत्कृष्ट भावना है ।" देखिए, उम्र छोटी होने पर भी उनका उत्तर वैराग्य की कैसी अद्‌भुत छटा फैला रहा है !

गुरुदेव की दृष्टि में शारदाबहन का उज्ज्वल भविष्य : बाल्यकाल के प्रांगण में क्रीड़ा करती बालिका को संयम पंथ पर प्रयाण करने की कितनी तीव्र उत्कंठा है ! उनका अंतर संयमी जीवन का आनन्द पाने के लिए लालायित हो रहा था । इसी कारण अब संसार में व्यतीत होते क्षण उन्हें युगों जैसे महसूस होने लगे । पूज्य गुरुदेव को उनकी दृढ़ भावना से यह निश्चय होने लगा कि 'यह कन्यारत्न दीक्षा लेकर जैनशासन को उज्ज्वल बनायेगी, संप्रदाय की शान बढ़ायेगी और भविष्य में खंभात संप्रदाय में जब कठिन समय आयेगा तब यही संप्रदाय की नैया पार लगायेगी तथा शासन को रोशन करेगी ।' उस चातुर्मास में वैरागी शारदाबहन ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में अल्पकाल में ही 'दशवैकालिक सूत्र', 'उत्तराध्ययन सूत्र' तथा 'थोकड़े' कंठस्थ कर लिए । उन्होंने तभी, मात्र तेरह वर्ष की उम्र में कभी ट्रेन में सफर न करने तथा बस से अहमदाबाद से आगे न जाने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली । ये बातें उनके उच्च कोटि के वैराग्य को सूचित करती हैं ।

वैराग्य की कसौटी में शारदाबहन की दृढ़ता : शारदाबहन के माता-पिता, भाई, मामा आदि सगे-सम्बन्धियों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, बहुत डराया-धमकाया, परन्तु शारदाबहन अपने निश्चय से तिल-मात्र भी विचलित न हुई । माता-पिता बहुत दुःखी हुए और उन्होंने कहा कि "हम अन्न-जल का त्याग करेंगे ।" परन्तु जिसके रग-रग में वैराग्य का स्रोत बह रहा हो, जिसके चित्त को

ब्राह्मण की मांग - मेरी पुत्री को मेरे यहाँ भेजो : अब ब्राह्मण ने राजा से कहा - "राजन् ! मेरी पुत्री विवाह करने के बाद मेरे घर नहीं आई । परन्तु यह उसके प्रथम गर्भावस्था (सीमंत) का प्रसंग है । इसका पहला प्रसव तो पीहर में होना चाहिए । इसकी माता भी इससे मिलने के लिए बहुत आतुर है । अतः इसे मेरे साथ भेजो ।" इस पर राजा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया - "यह बात नहीं बन सकती । मैं विद्युत्प्रभा का वियोग एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता ।" यह सुनकर ब्राह्मण उदास मुख होकर वापस लौट गया । इतने पर भी तीसरी बार ब्राह्मणी ने कहा - "चाहे जिस तरह से विद्युत्प्रभा को ले आओ । राजा नहीं माने तो तुम्हारा ब्राह्मणपन दिखाकर भी उसे ले आना ।" तीसरी बार अपरमाता ने फीणी की टोकरी भरकर विद्युत्प्रभा के लिए भेजी । इस बार भी नागदेव ने फीणियों का जहर चूसकर उनमें अमृत भर दिया । इससे वे स्वादिष्ट और सुगन्धित हो गईं ।

बन्धुओं ! सौतेली माँ की दुष्टता की अब हद होई गई है । किसी भी तरह से वह विद्युत्प्रभा को मार डालना चाहती है । इसके लिए वह भिन्न-भिन्न षड्यंत्र रच रही है, परन्तु सफलता नहीं मिल रही है । ब्राह्मण तीसरी बार गया और फीणी से भरी टोकरी राजा को दिया । राजपरिवार के सब लोगों ने फीणियाँ खाईं, सभी खुश हो गए । तदनन्तर ब्राह्मण ने राजा से कहा - "विद्युत्प्रभा को मेरे यहाँ भेजो ।" राजा ने जब साफ इन्कार कर दिया तो ब्राह्मण ने कहा - "क्या हम गरीब हैं, कि हमारे यहाँ हमारी पुत्री नहीं आती ? उसका विवाह होने के बाद एक दिन भी आपने मेरी पुत्री को नहीं भेजी; यह तो ठीक, परन्तु ऐसे अवसर पर भी इसे नहीं भेजते हैं तो समाज में हमारा खराब दिखता है । दुनिया भी हमें चूंट खायेगी कि तुम अपनी पुत्री को कभी बुलाते नहीं । इसलिए एक बार तो आप इसे मेरे साथ भेज दो ।"

ब्राह्मण ने राजा के प्रति अपना देखावा किया : राजा ने विद्युत्प्रभा पर अगाध स्नेह के कारण ब्राह्मण को उसे भेजने के लिए जब इन्कार किया, तब ब्राह्मण ने अपनी पत्नी द्वारा पढ़ाये हुए पाठ के अनुसार अपना चारित्र दिखाने का प्रयास किया - उसने अपनी जेब में पड़ी हुई छुरी बाहर निकाली और अपने पेट में भोंकने को तैयार हुआ तथा कहने लगा - "महाराजा ! मेरी पुत्री को नहीं भेजोगे तो मैं आत्महत्या करके मर जाऊँगा ।" राजा उसके हाथ में छुरी देखकर घबराया । अगर विद्युत्प्रभा को नहीं भेजूंगा तो इसका पिता इस प्रकार मर जाए, तो विद्युत्प्रभा को दुःख होगा । अतः राजा ने कहा - "मेरी तो इसे भेजने की बिलकुल मर्जी नहीं है, किन्तु आप आत्महत्या करने को तैयार हुए हो, इसलिए भेज दूंगा ।" अब राजा विद्युत्प्रभा को उसके पिता के साथ भेजेगा, वह अपने पीहर जाएगी । वहाँ सौतेली माँ उसके साथ कैसा छलकपट करेगी, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

में ही प्रतिभाशाली और प्रखर व्याख्याता तथा विदुषी के रूप में पूज्य महासतीजी की ख्याति चारों ओर फैल गयी ।

सम्मोहनकारी वीरवाणी की वीणा बजाने की अनोखी शक्ति : पूज्य महासतीजी के व्याख्यान में मात्र विद्वत्ता नहीं वरन आत्मा की चैतन्य विशुद्धि का स्वर उनके अंतर की गहराई से उभरता था । धर्म के तत्त्व का शब्दार्थ, भावार्थ तथा गूढ़ार्थ ऐसी गम्भीर और प्रभावक शैली में विविध न्याय, दृष्टांत द्वारा समझाती कि श्रोतावृंद उसमें तन्मय होकर अपूर्व शांति से शारदा सुधा का रसपान करते । उनकी वाणी में आत्मा के स्वर गूँजते थे तथा उस ध्वनि ने अनेक जीवों को प्रतिबोध प्राप्त करवाया है । सुषुप्त आत्माओं को झिझोड़ कर संयम मार्ग की ओर प्रेरित किया है । पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तक ने तो लोगों पर ऐसा जादू किया है कि पुस्तक पढ़ कर जैन-जैनेतर अनेक (हजार से अधिक) भाई-बहनों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया है । अनेकों ने व्यसनों का त्याग किया । नास्तिक आस्तिक बने, पापी पुनित बने और भोगी योगी बने ऐसे तो अनेक उदाहरण हैं। ज्यादा क्या लिखूँ ? ये पुस्तकें मीसा के तहत, कारावास भोगते जैन भाई तक पहुँची तो इसे पढ़ कर वे आर्तध्यान छोड़, धर्मध्यान में जुड़ने लगे, और कर्म का दर्शन (फिलोसोफी) समजने लगे। पूज्य महासतीजी की अंतर वाणी का नाद उनके दिल तक पहुँचने पर जेल धर्मस्थानक जैसा बन गया और वहाँ रहने वाले कैदी भाईयों ने तप, त्याग तथा धर्माराधना की मंगल शुरूआत की । जेल से मुक्त होने पर पूज्य महासतीजी के पास आकर रो पड़े और अनेकों व्रत, नियम धारण किये। संक्षेप में इस उदाहरण से पूज्य महासतीजी के प्रवचनों की पुस्तकों का प्रभाव स्पष्ट होता है, जिसने मानवों के जीवन को परिवर्तित कर दिया ।

गुण रूपी गुलाब से महकता जीवन बाग : पूज्य महासतीजी परम विदुषी ही नहीं अन्य अनेक अमूल्य गुणों से सजी हुई थीं । उनके असीम गुणों का वर्णन करना हमारी शक्ति से बाहर की बात है । फिर भी गुरुभक्ति सरलता, निराभिमानता, नम्रता, लघुता, अपूर्व क्षमा, स्नेह गुणानुराग तथा करुणा आदि गुण तो उनके जीवन में रचे-बसे थे । अपने इन गुणों के प्रभाव से उन्होंने अनेक जीवों को धर्म-मार्ग की ओर मोड़ा । उनकी आत्मा में निरन्तर यही भाव रहता कि सर्व जीव शासन के स्नेही कैसे बने, वीर की संतना वीर के मार्ग पर कैसे चलें ? **"दुःख में अजब समाधि साधी, सुख में रहे समभावी, तेजस्वी, यशस्वी गुरुणीदेव भी आत्मभावी ।"** अस्वस्थ होने पर भी प्रवचन की प्रभावना करने में वे कभी न चूकती थी । पूज्य महासतीजी ने सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, गुजरात आदि क्षेत्रों में विहार करके, अमूल्य लाभ प्रदान किया है, परन्तु उनकी पुस्तकें तो देश, विदेश तक पहुँची हैं ।

पूज्य महासतीजी के प्रतिबोध से ३६ (छत्तीस) बहनों ने वैराग्य प्राप्त करके, उनसे दीक्षा अंगीकार की और जैनशासन की शोभा में अभिवृद्धि कर रही है । पूज्य महासतीजी एक जैन साध्वी के रूप में रह कर पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म.सा.

व्याख्यान - १४

आषाढ़ सुदी ७, रविवार | ता. १८-७-७६

धर्मी और पापी की पहचान : विनय और पश्चात्ताप से

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर सर्वज्ञ भवन्तों ने अपने श्रेय के लिए सिद्धान्त की वाणी का प्ररूपण किया । सिद्धान्त की वाणी को समझकर हृदय में उतारने के लिए सर्वप्रथम जीवन में विनय होना चाहिए । विनयवान् जीव शीघ्र श्रेय को सिद्ध कर सकता है । जम्बूस्वामी अत्यन्त विनयवान् थे । वे सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते हैं - "प्रभो ! भगवान् ने 'ज्ञाता सूत्र' के आठवें अध्ययन में क्या भाव फरमाये हैं ? यद्यपि जम्बूस्वामी को सिद्धान्तों का वहुत ज्ञान था । परन्तु उनके जैसे विनयी शिष्यों से गुरु का हृदय वात्सल्यविभोर हो उठता है । विनयवान् शिष्य *'इंगियागार संपन्ने'* गुरु के मुख के भाव देखकर तथा इशारे से समझ जाता है । शिल्प को वहुत ज्ञान हो, उसमें वहुत होशियारी हो, फिर भी उसे ऐसा विचार कदापि नहीं करना चाहिए कि मुझे अपनी वुद्धि से, अपने क्षयोपशम से सव कुछ आता है, अपितु यह समझना चाहिए कि यह सव प्रताप गुरुदेव का है । सारी मुंवई नगरी रोशनी से जगमगाती है, यह पावरहाउस को आभारी है, इसी प्रकार शिष्य भी ऐसा ही विचार करता है कि मुझमें जो कुछ (विशेयता) है, वह सब मेरे गुरु की देन है, उनकी कृपा से है । ऐसे विनयवान् शिष्य को गुरु जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसे तहत्ति (तथाऽस्तु) करके स्वीकार करता है, वह गुरु की आज्ञा का जरा भी अनादर नहीं करता । वह तो यही समझता है - *'आज्ञा गुरुणाम विचारणीया'* गुरु की आज्ञा पर कदापि अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए । अर्थात् - आनाकानी किए वगैर उसका पालन करना चाहिए । कहा भी है - *'सताम्लंध्या गुर्वाज्ञा'* सज्जनों के लिए गुरु की आज्ञा अनुल्लंघनीय है । भगवान् कहते हैं - "गुरु की आज्ञा को कदापि उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।" जैसे - सेना का नायक जव तालीम देता है, तव सैनिकों को कहता है - "मैं जवतक सूचना नहीं करूँ, तवतक तुम्हें सीधे सीधा चले जाना है, मुड़ना नहीं है तथा एक साथ पैर उठाना है । पैर जरा भी वजना नहीं चाहिए । अतः सैनिक सेनानायक की आज्ञानुसार सीधा चलता जाता है । रास्ते में कुँआ आए तो भी का आदेश है कि मोड़ लेना नहीं, सीधे चले जाना । अव क्या करना ? वजाकर खड़ा रहने का न कहे, वहाँ तक खड़े रहना नहीं है, मुड़ना नहीं है ।

मलाड़ की ओर प्रयाण : 'शारदा शिरोमणि' के उद्घाटन के पश्चात् आयंबिल की ओली तथा वर्षीतप के पारणा के प्रसंग पर मलाड़ में पदार्पण किया । तब किसे मालूम था कि पूज्य महासतीजी का यही अंतिम प्रयाण है! पूज्य महासतीजी की रग-रग में शासन के प्रति खुमारी, शासन के प्रति अड़िग श्रद्धा तथा शासन के लिए कुछ कर गुजरने की अदम्य इच्छा और उत्साह था । **"शासन के लिए मरना मंजूर लेकिन शासन के लिए कुछ करके जाना ।"** यही उनका जीवनमंत्र था, इसीके लिए उनका रोम-रोम उत्साहित हो उठता था । ओली और वर्षीतप के निमित्त से उनकी जोरदार प्रवचन प्रभावना ने अपना विशिष्ट रूप दिखाया । अनेक आयंबिल तथा नये वर्षीतप प्रारम्भ किये गये। वर्षीतप का पारणा भी बड़ी धूमधाम से हुआ । अंत में वैशाख षष्ठी के दिन, उनकी दीक्षा जयंती का दिवस था, जब वे सुवर्ण संयम साधना के ४६ वर्ष पूर्ण कर ४७ वें वर्ष में प्रवेश करेंगी । मलाड़ संघ इस सुनहरे अवसर का लाभ प्राप्त कर बड़ा उत्साह और अनोखे आनन्द में झूम उठा था । ता. १५-५-८६ बुधवार को दीक्षा जयंती के दिन उन्होंने एक घंटा प्रवचन दिया। व्याख्यान के पश्चात् १३५ जीवों को अभयदान, ५१ अखण्ड़ अट्ठम (तेला) के प्रत्याख्यान आदि विभिन्न व्रत-प्रत्याख्यान करवाये । दोपहर में १०८ लोगस्स का कायोत्सर्ग, नवकार मंत्र का जाप आदि आराधना की तथा करवाई । पूर्ण दिवस आराधना के कार्यक्रम चले । अंत में संध्या समय ५-१० मिनट पर अत्यंन्त उत्साह से मांगलिक का पाठ सबको सुनाया । दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में अनेक भावक भक्तों का आना-जाना बना हुआ था । लगभग सभी को स्वयंही मांगलिक सुनाते थे । थोड़ी देर बाद ही छाती में दर्द उठा । उस समय सभी शिष्या-वृंद उनके पास थे, कितने ही भाई-बहनों ने पौषध किया था, वे तथा अनेक दर्शनार्थी भी वहाँ उपस्थित थे । सबकी उपस्थिति में उन्होंने स्वयं जावजीव का संथारा ग्रहण किया। प्रसन्न चित्त से आलोचना की, सबसे खमत-खामना किया तथा अरिहंत, सिद्ध, ऋषभदेव, भगवान महावीर का शरण स्वीकार किया । ४६ वर्ष के संयमपर्याय में जाने-अनजाने लगे दोषों की शुद्धि के लिए स्वयं छः महीने दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त किया । तीन बार 'बोसरामि...' शब्द का उच्चारण किया । अंत में "जीव जा रहा है, नवकार बोलो" कहा । देखने वाले तो देखते रह गये कि अंतिम समय में भी कितनी चित्त प्रसन्नता, आह्लाद-भाव, सौम्यता और शांत मुख-मुद्रा! ऐसा देख कर विश्वास न होता था कि ये जो कह रही हैं वह सच है ! परन्तु उन्होंने तो अपना साध्य पा लिया था । आत्मा अन्तरात्मा बन कर नवकार मंत्र का स्मरण करते और कराते अपूर्व समाधिपूर्वक दुनिया को अलविदा कह कर अनन्त की यात्रा पर बढ़ गया । मृत्युंजयी बन गये । **"साणंद शहर में जन्म हुआ, मलाड़ में देह छोड़ा, दीक्षा-निर्वाण एक दिन, वैशाख सुदि छठ्ठ बुधवार"** सुबह किसे कल्पना थी कि आज का दीक्षा जयंती का शुभ-दिन, संध्या होने तक पुण्यतिथि बन जायेगा !

"कल्याणकारी है आपका च्यवन, मंगलकारी है आपका जन्म,
पावनकारी है आपकी प्रव्रज्या, प्रेरणादायी है आपका निर्वाण ।"

की आज्ञा के विना (सैनिक) मोड़ लेने जाए तो नायक शूट कर देता है। आगे कुँआ आए तो कुँए में पड़ जाना, किन्तु नायक के हुक्म का अनादर नहीं करना है। बोलो, सेना का सैनिक भी उसके नायक की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता, तो जहाँ कर्मशत्रुओं का सामना करना है, जिनकी कृपा से कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है, ऐसे भवसागर से तारनेवाले तीर्थंकर भगवन्तों की और गुरु की आज्ञा का पालन करने में कितना सजग रहना चाहिए ? कदाचित् गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो तुम्हें वे मधुर उपालंभ देंगे, किन्तु शूट नहीं करेंगे। जबकि सेनानायक की आज्ञा मानने में भूल करे तो वह शूट कर देता है। गुरु और बड़ों का विनय करने से ज्ञान का उघाड़ होता है। ऐसा सम्यग्ज्ञान परलोक में भी साथ में आता है। किन्तु अग्नितपन से प्राप्त किया हुआ ज्ञान लम्बे समय तक नहीं टिकता। जहाँ विनय है, वहाँ दूध और शक्कर की तरह एक दूसरे में समा (घुलमिल) जाते हैं, शिष्य गुरु में, शिष्या गुरुणी में, पत्नी पति में, पुत्र पिता में और बहू सासु में समा (घुलमिल) जाती है। फिर कषाय का कहीं नाम-निशान नहीं रहता और इस पृथ्वी पर स्वर्ग का वास हो जाता है तथा स्व-पर (उभय) का कल्याण हो जाता है। गुलाब के आसपास कंटीली बाड़ होती है और गुलाब के पौधे के भी चारों ओर कांटे होते हैं, तथापि सभी गुलाब को चाहते हैं। कांटे चुभते हैं, हाथ आदि अंगों पर खरौंच आ जाती है, फिर भी सबलोग कांटों को सहकर गुलाब को लेने जाते हैं। किस लिए ? गुलाब में सुगन्ध है, गुलाब स्वयं सुगन्धित है और दूसरों को भी सुगन्धित कर देता है। उसी प्रकार जिसमें विनय, नम्रता, क्षमा, सन्तोष आदि गुण हैं, वह स्वयं तो गुण रूपी पुष्पों के पराग से सुगन्धित है और अपने पास आनेवाले को भी गुणवान् बनाता है। एक विनय गुण में अनेक गुण समाये हुए हैं। 'दशवैकालिक सूत्र' के नौवें अध्ययन में कहा गया है -

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो ।
जेण कित्तिं सुअं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ ॥

- दशवैकालिक सूत्र अ-९ उ-२, गा-२

धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल विनय है। वह मोक्षरूपी उत्कृष्ट फल का रस है, क्योंकि विनय से यश, कीर्ति प्राप्त होती है। उससे व्यक्ति श्रुतविद्या में पारंगत हो जाता है। शीघ्र ही निःश्रेयस (मोक्ष) के सम्मुख पहुँच जाता है। जो मनुष्य कभी किसी की प्रशंसा नहीं करता, वह मानव भी विनयी आत्मा की प्रशंसा करता है। इसलिए *'गुरुवचन मनुल्लंघनीयम्'* - यानी विनीत शिष्य को गुरु के वचन (आज्ञा) का कदापि उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

शास्त्र औषधालय है, गुरु वैद्य है, वह जैसा रोग देखता है, तदनुसार (रोग निवारणार्थ) वैसी दवा - शास्त्र का निचोड़ निकालकर देता है। उस विषय में तर्कवितर्क नहीं करना चाहिए। रोगी को वैद्य पर शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि वैद्य रोगी को नीरोगी (स्वस्थ)

卐 शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो 卐

शा □ शासन सितारा युग-युग चमके ।

र □ रत्न गुरुदेव की तेजस्वी शिष्या ने ज्ञान तेज प्रसारा ।

दा □ दान दिया अंत तक दिव्य देशना और अभयदान का ।

बा □ बाल ब्रह्मचारी के रूप में संप्रदाय में सर्वप्रथम प्रवज्या पंथ पर।

ई □ इन्द्रिय विजेता बनी, जिन शासन नेता ।

म □ मनीषा थी जिनका मंगलकारी मोक्ष प्राप्त करने की ।

हा □ हार थी हृदय की सबको तारने वालों ।

स □ समता, सरलता, सौम्यता सहिष्णुता की अजोड़ मूर्ति ।

ती □ तीतीक्षा थी उन्हें तरने और तारने की ।

जी □ जीवन था जिनका जवाहर-सा जगमगाता ।

अ □ अमरपंथ की पथिक बन जीवन अज्ज्वल कर गई ।

म □ ममता मारी, समता साधी, अहिंसा आराधी ।

र □ रत्नत्रय की पुकार कर, जागृति की झंकार और चारित्र की चाँदनी चमका गई ।

र □ रक्षक बन कर छकाय के आत्मरमणता में रही ।

हो □ हो कोटि-कोटि वंदन तारक शारदा गुरुणीमैया के पवित्र चरण कमल में ।

卐 शा र दा बा ई म हा स ती जी अ म र र हो 卐

हनी बाल ब्र. विदुषी पू. श्री शारदाबाई महासतीजी का

संक्षिप्त जीवन परिचय

जन्म	: विक्रम सं. १९८१ मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी मंगलवार, वीर सं. २४५१, ई. सन् १९२४, दिनांक : १-१-१९२४ मध्यरात्री में अढ़ाई बजे ।
जन्म स्थान	: साणंद ।
माता-पिता	: धर्मस्नेही श्रीमती शकरीबहन और धर्मप्रेमी श्रीमान वाडीभाई ।
भाई-भाभी, बहन	: [illegible]र्वश्री नटवरभाई प्राणलाल भाई अ.सौ. नारंगीबहन, अ.सौ. इन्दिराबहन, [illegible] सौ. गंगाबहन, अ.सौ. विमलाबहन, अ.सौ. शान्ताबहन, अ.सौ. ह[illegible]पतिबहन।
वंश और गोत्र	: शा[illegible] ।
शिक्षा	: गुज[illegible]नी ६ श्रेणी साणंद में ।
दीक्षा	: विक्र[illegible] सं. १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, सोमवार तदनुसार दिनांक : १३-५-१९४० प्रातः ८-३० बजे ।
दीक्षा स्थल	: [illegible] अहमदाबाद से २२ कि.मी., गुजरात ।
दीक्षादाता गुरु	: [illegible] तेर्धर, ज्ञानदिवाकर बा. ब्र. पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब ।
दीक्षादात्री गुरुणी	: वात्सल्यमूर्ति, पारसमणि समान पूज्य गुरुणीदेव श्री पार्वतीबाई महासतीजी ।
संप्रदाय	: खंभात ।
भाषाज्ञान	: गुजराती, हि[illegible]दी, संस्कृत, प्राकृत ।
शास्त्रीय ज्ञान	: जैन आगम [illegible]त्तीस शास्त्र तथा सिद्धांत, थोकड़ा ।
शिष्या समुदाय	: पूज्य सुभद्राबा[illegible] महासतीजी, बा.ब्र.वसुबाई महासतीजी आदि ठाणा ३१।
विशिष्ट चारीत्रिक गुण	: सरल, गम्भीर, नि[illegible]र, वक्ता, अद्भुत, जागृति, यशस्वी, समतामूर्ति, विशाल दृष्टि, परमपुण्यप्रभावक, संप्रदायक की खेवैया, संतो की दीक्षादात्री, मात्र दो वर्ष के [illegible]यमपर्याय से प्रारम्भ करके अंतिम दिवस तक प्रवचन प्रभावना की एक[illegible]ार अमृतवर्षा की तथा अंतिम समय में स्वमुख से मांगलिक, नवकार मंत्र सुनाकर लगातार गुरुदेव का अजपाजाप किया।
प्रवचन प्रकाशन	: शारदा सुधा, शारदा संजीवनी, शारदा माधुरी, शारदा परिमल, शारदा सौरभ, शारदा सरिता, शारदा ज्योत, शारदा सागर, शारदा शिखर, शारदा दर्शन, शारदा सुवास, शारदा सिद्धि, शारदा रत्न, शारदा शिरोमणि आदि लगभग सवा लाख प्रतियाँ उनकी उपस्थिति में प्रकाशित हुई तथा उनकी चिर विदाय के पश्चात् 'शारदा शिरोमणि' की दूसरी आवृत्ति तथा हिन्दी आवृत्ति प्रकाश में आयी तथा 'सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह' की दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। और हिन्दी में ६ हजार 'सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह । और अंग्रेजी में ३ हजार प्रकाशित हुई है।
विहार-यात्रा	: गुजरात, सौराष्ट्र, काठियावाड़, महाराष्ट्र आदि ।
अंतिम प्रयाण	: विक्रम सं. २०४२, वैशाख शुक्ल षष्ठी, बुधवार तदनुसार १४-५-१९८६ को संध्याकाल छः बजे मलाड़-बम्बई में । (अपनी दीक्षा जयंती के दिन) ।

श्री खंभात संप्रदाय के शासनरत्न महान संतो की नामावली

क्रम	नाम जन्मस्थल - दीक्षास्थल	संवत	मास	तिथि
१.	स्व. आ. गुरुदेव पू. श्री कान्तिऋषिजी म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
२.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री सूर्यमुनि म.सा. खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
	निर्वाण-सुरत	२०३८	चैत्र शुक्ल	३
३.	वर्तमान आचार्य बा.ब्र.पू.श्री अरविंदमुनि.म.सा.खंभात	२०१७	वैशाख वदि	१३
४.	बा. ब्र. पू. नवीनमुनि म.सा. खंभात	२०१८	मार्गशीर्ष शुक्ल	३
५.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री कमलेशमुनि म.सा. खंभात	२०२२	मार्गशीर्ष वदि	२
६.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री प्रकाशमुनि म.सा. दादर, मुंबई	२०२३	श्रावण शुक्ल	५
	दीक्षा-भावनगर			
७.	बा. ब्र. पू. श्री चेतनमुनि म.सा. बेगमपुरा	२०२३	श्रावण वदि	२
	दीक्षा-भावनगर			
८.	स्व. बा. ब्र. पू. श्री महेन्द्रमुनि म.सा. पीज, खंभात	२०२७	वैशाख शुक्ल	११
	निर्वाण-अहमदावाद	२०४४	वैशाख वदि	
९.	स्व. तपस्वी पू. श्री दर्शनमुनि म.सा. वसो	२०२१	वैशाख वदि	११
	दीक्षा-बोडेली			
१०.	बा. ब्र. पू. श्री मृगेन्द्रमुनि म.सा. खंभात	२०३४	माघ शुक्ल	१५
११.	बा. ब्र. पू. श्री जितेन्द्रमुनि म.सा. अंधेरी-मुंबई	२०३०	मार्गशीर्ष शुक्ल	५
	दीक्षा-कोईम्बतूर			
१२.	स्व. शांत स्वभावी पू. श्री देवजीमुनि म.सा. कच्छ-कोडागण	२०४३	कार्तिक वदि	९
	दीक्षा-माटुंगा-मुंबई			

जिनका जीवन शक्कर जैसा मधुर तथा गुणरूपी पुष्पों की सुवास से महकता हुआ था, ऐसे माता-पिता ने अपनी लाड़ली पुत्री शारदाबहन को बाल्यावस्था में पहुँचते ही शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाठशाला भेजा । साथ ही धार्मिक ज्ञान अर्जित करने के लिए जैन-शाला में भी भेजते रहे । संस्कारी माता-पिता के सुसंस्कारों के सिंचन तथा पूर्व के संस्कारो की किरणों का प्रकाश पुरुषार्थ द्वारा फैलता गया । यह प्रकाश उनके अंतर में ऐसा आलोक बन कर बिखरा कि बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ते हुए, सखियों के साथ क्रीड़ा करते हुए, गरबा गाते हुए भी उनका चित्त कहीं रमता नहीं था । उस समय भला किसे यह कल्पना तक न थी कि इस संसार से विरक्त बालिका के हृदय - समुद्र में आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना भरा है । वे भविष्य में अपने जीवन के हर सुनहरे क्षण को आत्म-साधना की मस्ती में, प्रवचन-प्रभावना में, जैनशासन की बेजोड़ सेवा करने में सदुपयोग करने वाली हैं और अपनी उत्कृष्ट प्रज्ञा की तेजस्विता से जेन तथा जैनेतर समाज को दान, दया, शील, तप, अहिंसा, सत्य, नीति, सदाचार और सद्गुणों का पाठ पढ़ाकर, श्रेष्ठतम जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं ।

बाल्यावस्था में ही वैराग्यमूलक विचारधारा : शारदाबहन जैन-पाठशाला में सीखते हुए जब महान वीर पुरुषों की तथा चंदनबाला, राजेमती, मृगावती, दमयंती आदि महान सतियों की कथा सुनती तो उनका मन किसी अगम्य प्रदेश में खो जाता और विचार करने लगती कि 'क्या हम भी इन सतियों जैसा जीवन नहीं जी सकते ?' इसी विचार को अपनी सखियों के सम्मुख रखते हुए वे कहती, "सखियों ! यह संसार दुःख का दावानल है और संयम सुख का सागर है । चलो, हम दीक्षा ले लें ।" उनकी इस बात से हम कल्पना कर सकते हैं कि जिसके विचार इस नन्हीं उम्र में इतने उत्तम हो उसका भावी जीवन कितना उज्ज्वल बनेगा ? शारदाबहन की विचारधारा वैराग्य से भरपूर तो थी ही, उनकी वैराग्य ज्योति को और अधिक उज्ज्वल बनाने और गहराने वाला एक प्रसंग सामने आया । उनकी बड़ी बहन विमलाबहन का प्रसूति के पश्चात्, अत्यन्त छोटी उम्र में देहान्त हो गया। इस घटना ने बालकुमारी शारदाबहन पर जीवन की क्षणिकता और संसार की असारता की छाप गहरी कर दी । उनके अंतर में हलचल मच गई कि क्या जीवन इतना क्षणिक है ? ऐसे क्षणिक जीवन में नश्वर का मोह छोड़ अविनाशी की आराधना करने के लिए प्रव्रज्या के पंथ पर प्रयाण करना ही श्रेयष्कर है, हितकारी है । इस प्रसंग ने शारदाबहन के हृदय में संयमी जीवन का आनन्द लूटने की मस्ती पैदा की और वैराग्य दृढ़ होता गया।

शारदाबहन के वैराग्यपूर्ण विचार, वाणी और व्यवहार से माता-पिता को आभास होने लगा कि उनकी प्यारी, लाड़ली पुत्री संसार को सुलगता दावानल मान कर, आत्मिक आनन्द की अनुभूति करने महावीर मेडिकल कोलेज में दाखिल होकर पाँच महाव्रत रूपी दिव्य अलंकारों से विभूषित होने के सुनहरे सपनों में खो रही है ।

क्रम	महासतीजी का नाम जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
२०.	बा. ब्र. पू. प्रफुल्लाबाई महासतीजी विरमगाम दीक्षा-मलाड़	२०३३	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	शुक्रवार
२१.	बा. ब्र. पू. सुजाताबाई महासतीजी - दादर-मुंबई	२०३३	वैशाख शुक्ल	१३	रविवार
२२.	बा. ब्र. पू. पूर्वीपाबाई महासतीजी माटुंगा-मुंबई दीक्षा-साणंद	२०३७	फाल्गुन वदि	२	रविवार
२३.	बा. ब्र. पू. मनीषाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२४.	बा. ब्र. पू. उर्वीशाबाई महासतीजी खंभात	२०३७	वैशाख शुक्ल	५	शुक्रवार
२५.	बा. ब्र. पू. सुरेखाबाई महासतीजी मुंबई दीक्षा-अहमदाबाद	२०३८	वैशाख शुक्ल	६	गुरुवार
२६.	बा. ब्र. पू. श्वेताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२७.	बा. ब्र. पू. नम्रताबाई महासतीजी विरमगाम	२०३९	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
२८.	बा. ब्र. पू. विरतिबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
२९.	बा. ब्र. पू. रक्षिताबाई महासतीजी धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३०.	बा. ब्र. पू. हेतलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-धानेरा	२०४१	मार्गशीर्ष वदि	३	मंगलवार
३१.	बा. ब्र. पू. रोशनीबाई महासतीजी नार	२०४१	माघ शुक्ल	११	शुक्रवार
३२.	बा. ब्र. पू. चाँदनीबाई महासतीजी खंभात	२०४१	माघ वद	३	शुक्रवार
३३.	बा. ब्र. पू. अर्पिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३४.	बा. ब्र. पू. पूर्णिताबाई महासतीजी खेड़ा	२०४१	फाल्गुन शुक्ल	२	गुरुवार
३५.	बा. ब्र. पू. सुज्ञाबाई महासतीजी जोरावरनगर	२०४२	फाल्गुन शुक्ल	३	शुक्रवार
३६.	बा. ब्र. पू. प्रेक्षाबाई महासतीजी खंभात दीक्षा-नार	२०४३	वैशाख शुक्ल	११	शनिवार
३७.	बा. ब्र. पू. सेजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३८.	बा. ब्र. पू. वीजलबाई महासतीजी अहमदाबाद दीक्षा-कांदीवली-मुंबई	२०४५	फाल्गुन शुक्ल	७	सोमवार
३९.	बा. ब्र. पू. हर्षज्ञाबाई महासतीजी धंधुका दीक्षा खंभात	२०४७	मागसर वदि	५	गुरुवार
४०.	बा. ब्र. पू. श्रेयाबाई महासतीजी-धानेरा	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४१.	बा. ब्र. पू. श्रुतिबाई महासतीजी-धानेरा	२०४९	महा शुक्ल	७	शनिवार
४२.	बा. ब्र. पू. माधुरीबाई महासतीजी-सुरत बर्मा-दीक्षा-सुरत	२०४९	वैशाख शुक्ल	१०	शनिवार
४३.	बा. ब्र. पू. चेतनाबाई महासतीजी-रापर	२०५२	महा शुक्ल	१३	शुक्रवार
४४.	बा. ब्र. पू. समीक्षाबाई महासतीजी अहमदाबाद	२०५७	महा शुक्ल	११	रविवार
४५.	बा. ब्र. पू. शितलबाई महासतीजी खंभात दिक्षा - विलेपारला	२०५९	महा शुक्ल	५	शुक्रवार

चारित्र की चटक लगी हो और संसार रूपी ज्वालामुखी से सुरक्षित बचने के लिए जिसने मेरुपर्वत जैसी अड़िग और अड़ोल आस्था और श्रद्धा को धारण कर रखा हो, वह क्या वैराग्य भाव से जरा भी चलित होगी भला ? विविध प्रकार की कसौटियों के पश्चात् भी उनकी भावना में अड़िग निष्कंपन देख कर माता-पिता ने कहा कि "अभी इस सोलह वर्ष की अवस्था में तो नहीं पर इक्कीस वर्ष की उम्र में तुम्हें दीक्षा लेने की आज्ञा देंगे ।" परन्तु शारदावहन तो उसी समय दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी । अतः उन्होंने पूछा कि "सत्रह वर्ष की विमलावहन की मृत्यु को कोई रोक न सका तो मेरी इस जिंदगी का क्या भरोसा ?" अंत में शारदावहन की विजय हुई और माता-पिता ने राजी-खुशी से दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान की।

भाग्यवान शारदावहन भागवती दीक्षा के पंथ पर : संवत १९९६ वैशाख शुक्ल षष्ठी, तदनुसार दिनांक १३-५-१९४०, सोमवार को साणंद में अत्यन्त भव्यता से शारदावहन का दीक्षा महोत्सव सम्पन्न हुआ । खंभात संप्रदाय में, साणंद ग्राम से, मन्दिर- मार्गी या स्थानकमार्गी या स्थानकवासी समाज से, बाल कुमारी के रूप में सर्वप्रथमदीक्षा शारदावहन की हुई । अतएव समस्त ग्राम हर्ष की हिलोर में मग्न हो रहा था । दीक्षाविधि पूज्य गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी महाराज साहब के मुखारविन्द द्वारा सम्पन्न हुई । गुरुणी पूज्य पार्वतीवाई महासतीजी की शिष्या बनी । इनके साथ ही साणंद की एक अन्य बहन जीवीबहन भी दीक्षित हुई थी । जीवीबहन का नाम पूज्य जसुबाई महासतीजी तथा शारदाबहन का नाम पूज्य शारदावाई महासतीजी रखा गया । इस प्रकार वैरागी विजेता बनी ।

उनके पूज्य पिता श्री वाडीलालभाई और मातुश्री शकरीवहन, भाई श्री नटवरभाई तथा प्राणलालभाई, भाभी अ. सौ. नारंगीवहन, अ. सौ. इन्दिराबहन, बहनें अ. सौ. गंगावहन, अ. सौ. शान्तावहन, अ. सौ. हसुमतीवहन सभी धर्मप्रेमी तथा सुसंस्कारी हैं । साणंद में उनका कपड़े का व्यापार है । जिस परिवार से ऐसा अनमोल रत्नशासन को प्राप्त हुआ हो उस परिवार के सदस्यों का धर्म, दान, दया, अनुकंपा आदि से ओतप्रोत होना स्वाभाविक है ।

गुरु चरण व शरण में समर्पणता : इस विशाल संसारसागर में जीवननैया के कुशल खेवैया मात्र गुरुदेव ही है । पूज्य शारदाबाई महासतीजी ने इसी तथ्य के अनुरूप अपनी जीवन नैया को पूज्य पार्वतीवाई महासतीजी की शरण में सर्वदा के लिए तैरता रख दिया तथा अपना जीवन उनकी आज्ञा में अर्पित कर दिया । पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव से संयमी जीवन की सभी कलाएँ सीखीं । अल्पायु में दीक्षा लेकर भी पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य गुरुणीदेव की आज्ञा में ऐसे समर्पित हो गयीं कि अपने जीवन में कभी भी गुरुआज्ञा का उल्लंघन तो क्या किसी तरह की कोई दलील या अपील तक नहीं की । पूज्य गुरु-गुरुणी की शीतल छत्रछाया में पूज्य महासतीजी का धार्मिक अभ्यास और पुरुषार्थ अत्यन्त प्रबल बना और सुन्दर आत्मज्ञान प्राप्त किया । शास्त्रों का पठन किया । संस्कृत, प्राकृत भाषा सीखी । अपने ज्ञान का लाभ दूसरों को प्रदान करने के प्रयत्न में, अति अल्प काल

गुरु गुण स्तुति

श्री रत्नगुरु... शरणं मम (२)
श्री शारदाबाई स्वामी शरणं मम (२)
नवकार नादे बोलीओ रत्नगुरु...
चौद पूर्वना सारे बोलीओ शारदाबाई
श्वासे श्वासे बोलीओ रत्नगुरु...
नाडीना धबकारे बोलीओ शारदाबाई
आत्मप्रदेशे बोलीओ रत्नगुरु...
रोमे रोमे बोलीओ शारदाबाई
नाभिनादे बोलीओ रत्नगुरु...
ओकी अवाजे बोलीओ शारदाबाई
हालतां चालतां बोलीओ रत्नगुरु...
खाता पीता बोलीओ शारदाबाई
रातदिवस बोलीओ रत्नगुरु...
सूतां जागतां बोलीओ शारदाबाई
व्याख्यान वांचणीमां बोलीओ रत्नगुरु...
स्वाध्याय करता बोलीओ शारदाबाई
जैनशासनना सितारा रत्नगुरु...
शासनना कोहीनूर हीरा शारदाबाई
शासनना शिरोमणि रत्नगुरु...
व्याख्यानना वाचस्पति शारदाबाई
संप्रदायना शिरताज रत्नगुरु...
शिष्याओना रखेवाल शारदाबाई
अवनिना अणगार रत्नगुरु...
शासनना शणगार शारदाबाई
संसारसागरना तैरया रत्नगुरु...
संयमनावना खवैया शारदाबाई
क्षमा ध्याननी मूर्ति हता रत्नगुरु...
गुरुभक्तिना अजोड नमूना शारदाबाई
वचनसिद्धि ने यशनामी रत्नगुरु...
बेरिस्टरनी बुद्धि जेनी शारदाबाई
आशीर्वाददाता रत्नगुरु...
कृपाकिरण वरसावतां शारदाबाई
श्री रत्नगुरु...शरणं मम (२)
श्री शारदाबाई स्वामी शरणं मम (२)

तथा पूज्य गुरुदेव श्री गुलाबचन्दजी महाराज साहब के काल-धर्म प्राप्त करने के पश्चात् खंभात संप्रदाय की नैया कुशल खेवैया बनी, जो जिनशासन में विरल है। इतना ही नहीं वरन खंभात संघ के संघपति श्री कांतिभाई की दीक्षा भी पूज्य महासतीजी के पुनित हस्तों द्वारा हुई तथा दीक्षा मंत्र भी उन्होंने ही दिया । आज जिनकी ख्याति महान वैरागी पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. के रूप में है । पूज्य कांति ऋषिजी म.सा. ठाणा-१३ में से प्रथम चार संतों को दीक्षा की प्रेरणा प्रदान करने का श्रेय भी पूज्य महासतीजी की अद्भुत वाणी को है ।

पूज्य महासतीजी की वाणी ने बम्बई की जनता को इतना आकर्षित कर लिया था कि जब वे अन्य स्थानों पर होती तब भी बम्बई की जनता उनके चातुर्मास के लिए लालायित रहती । कांदावाड़ी आदि अनेक संघ लगातार अपनी विनती लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होते रहते थे । अतः कांदावाडी श्रीसंघ की आग्रह भरी विनती को मान देकर पूज्य महासतीजी तीसरी बार बम्बई में चातुर्मास करना स्वीकार किया । इसीसे ज्ञात हो जाता है कि बम्बई की जनता में उन्होंने कैसे स्नेह और आकर्षण की वर्षा की ।

केसरवाड़ी में केसर की क्यारी के समान महकता चरम चातुर्मास : सं. २०४१ में कांदावाड़ी श्रीसंघ की अत्यन्त आग्रहभरी विनती का मान रख कर पूज्य महासतीजी कांदावाड़ी पधारें । पूज्य महासतीजी के वैराग्य भरे, आत्मस्पर्शी, ओजस्वी और प्रभावशाली प्रवचनों ने जनता के हृदय में ऐसा अनोखा आकर्षण उत्पन्न किया कि चातुर्मास दरमियान व्याख्यान कक्ष हंमेशा जिज्ञासुओं से भरी रहती और उनकी दिव्य, तेजस्वी वाणी की प्रेरणा से तप, त्याग और व्रत-नियमों का एक धारा - प्रवाह बहता रहा । कांदावाड़ी श्रीसंघ में सोलह मासखमण और दो उपवास के सिद्धितप हुए । छ उपवास से लेकर इकतीस (३१) उपवास तक की तपश्चर्या करने वालों की संख्या २०० को पार कर गई । इसी प्रकार उनके हर चातुर्मास में दान, शील, तप और भावना का ज्वार उठता । इस सब का श्रेय पूज्य महासतीजी को ही है । उनका प्रत्येक चातुर्मास ऐसा रहा है जो श्रीसंघ के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से अंकित होने की योग्यता रखता है । परन्तु कांदावाड़ी का चातुर्मास हंमेशा के लिए एक यादगार और चरम चातुर्मास बन गया । इस चातुर्मास को कांदावाड़ी संघ कभी विस्मृत नहीं कर सकता ।

विशेष आनन्द का विषय तो यह है कि आज तक पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों की पुस्तकें दस-दस हज़ार की संख्या में प्रकाशित हुई, परन्तु आज एक भी प्रत उपलब्ध नहीं है । मात्र यही बात इस बात को प्रमाणित कर देता है कि पूज्य महासतीजी के व्याख्यानों का आकर्षण कैसा है ? पूज्य महासतीजी के सं. २०४१ के कांदावाड़ी चातुर्मास के व्याख्यान 'शारदा शिरोमणि' नाम से १२००० (बारह हज़ार) प्रतियाँ प्रकाशित हुई । सौभाग्य हमारा कि बम्बई में 'शारदा शिरोमणि' का भव्य उद्घाटन पूज्य महासतीजी के सान्निध्य में ता. ६-४-८६ रविवार को कांदावाड़ी में हुआ । एक महीने में समस्त प्रतियाँ बिक गई - यह है पूज्य महासतीजी की वाणी का प्रभाव !

जिनशासन का अनमोल कोहिनूर रत्न कालराजा ने छीन लिया । सोलह कलाओं में खिला हुआ चाँद जगत को अंधेरा करके विलीन हो गया । यह समाचार वायुवेग से प्रसरित हुआ, पर लोग सुन कर अचंभित रह गये कि 'क्या यह सत्य है ?' पूर्ण बम्बई तथा समस्त देश के कोने-कोने में हाहाकार मच गया । इस दुःखद समाचार के मिलते ही श्रद्धालुओं की भीड़ दर्शनार्थ उमड़ पड़ी । उनका पार्थिव शरीर देख सबके मन में आता कि कैसा अद्भुत है इस तेजस्वी मूर्ति का अलौकिक तेज ! ता. १५-५-८६ की दोपहर को उनकी भव्य पालकी निकली तब तीस से पैंतीस हजार भक्तों की विशाल मेदिनी साथ थी। थोड़े से समय में पाँच लाख रुपयों का दान एकत्रित हो गया और आज भी यह प्रवाह जारी है । पूज्य महासतीजी को गये तीन वर्ष ही हुए थे कि तब-तक में मलाड़, खंभात, अहमदाबाद, जोरावरनगर, साणंद, पाटडी, पोपटपुरा आदि गाँवों में एकान्त कर्मनिर्जरा करने, संवर करणी तथा गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए उनके नाम से स्मारक, उपाश्रय आदि गुरुणीमैया का नाम रोशन कर रहे हैं । तीनों वार्षिक पुण्यतिथियों पर भी अनेक प्रकार के तप, जाप, कार्योत्सर्ग, संवर करणी, अभयदान आदि आराधनाओं का भव्य आयोजन हुआ । यह सब गुरुणीमैया का पुण्य प्रभाव है ।

पूज्य महासतीजी की पुण्य प्रभावकता : पूज्य म.सा. तो सबको छोड़ कर चली गई, परन्तु उनके पुण्य का प्रभाव ऐसा है कि उनके प्रवचन का ग्रंथ 'शारदा शिरोमणि' की बारह हज़ार प्रतियाँ अति अल्प समय में बिक गई, पर उनकी माँग फिर भी इतनी अधिक थी कि श्री कांदावाड़ी संघ ने द्वितीय संस्करण में ६ हजार प्रतियों का प्रकाशन करवाया । राजस्थान, मारवाड़, मेवाड़ आदि स्थानों पर भी इस पुस्तक की बहुत माँग थी, अतः दस हजार प्रतियाँ हिन्दी के संस्करण की निकाली । मलाड़ संघ ने पूज्य महासतीजी का स्मृति ग्रंथ **'दीवादांडी शारदा स्मृति ग्रंथ'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ छपवाई जो आज अनुपलब्ध है, पूज्य महासतीजी की गैरहाजिरी में इसीको ध्यान में रख कर कांदावाड़ी श्रीसंघ ने **'सफल सुकानी - शारदा प्रवचन संग्रह'** के नाम से दस हज़ार प्रतियाँ प्रस्तुत की । पूज्य महासतीजी की वाणी का ऐसा अलौकिक जादू और ऐसा प्रचण्ड पुण्य प्रभाव कि व्यक्ति के न रहने पर भी उसकी पुस्तकों के लिए इतनी माँग ! ऐसा तो विरल ही होता है । **"दिव्य देशना का गजाया नाद, देश-देश में पहुँचा साद; करते हैं सभी आपको याद, नहीं भूलती आपकी आवाज़ ।"** ऐसी विरल विभूति, शासन की सेनानी, वीर प्रभु की आज्ञा में डूबी योद्धा और

"कृति जिनकी कल्याणकारी, आकृति जिनकी आह्लादकारी,
प्रकृति जिनकी प्रेम-क्यारी, जिनाज्ञा थी जिन्हें प्राण से प्यारी,
ऐसे अनन्त गुणों के धारी, स्वीकारों गुरुणी वन्दना हमारी ।"
"दीप बुझा प्रकाश अर्पित कर, फूल मुरझाया सुवास समर्पित कर,
टूटे तार पर सुर बहा कर, गुरुणी चले पर नूर फैला कर ।"

अनन्तज्ञानी भगवान् ने घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् उस ज्ञान-ज्योति में जगत् के जीवों को दुःखग्रस्त देखने के बाद उनके श्रीमुख से वाणी फूट निकली । "हे भव्यजीवों ! तुम अनन्त पुद्‌गल-परावर्तनकाल से सुख की शोध में हो, फिर भी अभी तक सुख प्राप्त नहीं कर सके । उसका कारण यह है कि तुम्हें सुख चाहिए, मगर सुख का मूल क्या है ? उसको अभी तक तुमने नहीं खोजा । सुख प्राप्त करना हो तो सर्वप्रथम सुख के मूल को खोजो ।" प्रत्येक सांसारिक कार्य में तुम उस कार्य का मूल खोजते हो । मान लो, तुम्हें कोई रोग हुआ, और तुमने वैद्य अथवा डोक्टर से दवा ली । अब यदि रोग में कुछ आराम नहीं हुआ, तो तुम उसके मूल कारण को ढूंढते हो न ? मैं ऐसी कीमती दवा का सेवन करता हूँ, पथ्य का भी बराबर पालन करता हूँ, फिर भी मेरा रोग मिटता नहीं, इसका क्या कारण है ? क्या दवाई में, डोक्टर में या पथ्यपालन में कुछ कमी है ? तुम व्यापार में बहुत परिश्रम करते हो, परन्तु उसमें मुनाफा न मिले तो उसका कारण खोजते हो न ? मैं इतनी सख्त मेहनत करता हूँ, फिर भी मुझे इस व्यवसाय में मुनाफा क्यों नहीं मिलता ? वहाँ तो एक पैसा भी अधिक नहीं जाने देते, इतने होशियार हो तुम ! इसी प्रकार जमीन पर हल चलाकर, उसे मुलायम बनाकर उसमें अच्छा बीज बोकर उसके पीछे बहुत परिश्रम करता है, परन्तु समय पर उसमें से निर्धारित फसल न मिले, तो वह उसका मूल कारण खोजेगा न ? चौमासे भर खूब मेहनत की, फिर भी उसका फल इतना ही मिला ? इसी प्रकार भगवान् फरमाते हैं कि अनन्तकाल से चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव सुख की खोज कर रहा है, तथापि सुख नहीं मिला, तो उसका मूल कारण क्या है ? यह जानना चाहिए न ? 'आचारांग सूत्र' में भगवान् महावीर ने फरमाया है -

"लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं"

"इस लोक में दुःख का कारण अज्ञान या मोह है, इसे जानो, और यह आत्मा का अहित करनेवाला है ।"

वृक्ष को तुम कितना ही पानी पिलाओ, पर यदि उसकी जड़ सड़ी हुई हो तो उसके फल-फूल कहाँ से लगेंगे ? इसी तरह तुम बाहर से सुख की शोध चाहे जितनी करो, परन्तु अंदर यदि अज्ञान और मोह ने अड्डा जमा रखा है तो वह दूर न हो, तबतक दुःख टलनेवाला नहीं, और न सच्चा सुख मिलनेवाला है । संस्कृत भाषा के एक श्लोक में भी कहा है -

"सर्वत्र सर्वस्य सदा प्रवृत्तिः, दुःखस्य नाशाय सुखस्य हेतोः ।
तथाऽपि दुःखं न विनाशमेति, सुखं न कस्यापि भजेत् स्थिरत्वम् ।।"

"संसार में चींटी से लेकर इन्द्र महाराज तक सर्व जीवों की सदैव सर्वत्र लगातार यही प्रवृत्ति रही है कि दुःख कैसे मिटे और सुख कैसे मिले ? तथापि न तो दुःख मिटता है और न सुख ही स्थिर रहता है ।" मैं आपसे पूछती हूँ कि (धर्मसभा में बैठे

शासन रत्ना महान विदुषी बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी के पुनीत पदार्पण से पवित्र हुए यशस्वी चातुर्मासों की चमकती सूचि ।

अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष	अनु.	संवत	गाँव का नाम	इ.स.उ.	वर्ष
१.	१९९६	अहमदावाद	१९४०	१६	२४.	२०१९	माटुंगा-मुंबई	१९६३	३९
२.	१९९७	खंभात	१९४१	१७	२५.	२०२०	दादर-मुंबई	१९६४	४०
३.	१९९८	खेड़ा	१९४२	१८	२६.	२०२१	विलेपार्ला-मुंबई	१९६५	४१
४.	१९९९	साणंद	१९४३	१९	२७.	२०२२	घाटकोपर-मुंबई	१९६६	४२
५.	२०००	खंभात	१९४४	२०	२८.	२०२३	खंभात	१९६७	४३
६.	२००१	साणंद	१९४५	२१	२९.	२०२४	अहमदावाद	१९६८	४४
७.	२००२	अहमदावाद	१९४६	२२	३०.	२०२५	भावनगर	१९६९	४५
८.	२००३	साणंद	१९४७	२३	३१.	२०२६	राजकोट	१९७०	४६
९.	२००४	अहमदावाद	१९४८	२४	३२.	२०२७	ध्रांगध्रा	१९७१	४७
१०.	२००५	साणंद	१९४९	२५	३३.	२०२८	अहमदावाद	१९७२	४८
११.	२००६	खंभात	१९५०	२६	३४.	२०२९	कांदावाड़ी-मुंबई	१९७३	४९
१२.	२००७	सुरत	१९५१	२७	३५.	२०३०	माटुंगा	१९७४	५०
१३.	२००८	अहमदावाद	१९५२	२८	३६.	२०३१	वालकेश्वर	१९७५	५१
१४.	२००९	जोरावरनगर	१९५३	२९	३७.	२०३२	घाटकोपर	१९७६	५२
१५.	२०१०	लखतर	१९५४	३०	३८.	२०३३	बोरीवली	१९७७	५३
१६.	२०११	खंभात	१९५५	३१	३९.	२०३४	मलाड़	१९७८	५४
१७.	२०१२	साणंद	१९५६	३२	४०.	२०३५	सुरत	१९७९	५५
१८.	२०१३	सुरत	१९५७	३३	४१.	२०३६	साणंद	१९८०	५६
१९.	२०१४	अहमदावाद	१९५८	३४	४२.	२०३७	अहमदावाद	१९८१	५७
२०.	२०१५	विरमगाम	१९५९	३५	४३.	२०३८	नारणपुरा-अ'वाद	१९८२	५८
२१.	२०१६	साबरमती	१९६०	३६	४४.	२०३९	खंभात	१९८३	५९
२२.	२०१७	खंभात	१९६१	३७	४५.	२०४०	नवरंगपुरा-अ'वाद	१९८४	६०
२३.	२०१८	कांदावाड़ी-मुं.	१९६२	३८	४६.	२०४१	कांदावाड़ी-मुंबई	१९८५	६१

कोई महाराजा भव्य राजमहल में मौज करता हो, वैभव की तरगें हिलोरें लेती आसमान को छूती हों, उसे जनता महासुखी मानती है । पर उस जनता को पता नहीं है कि चिन्तारूपी दुःख का कीड़ा महाराजा के दिल को कुतरकर खा रहा है । परन्तु महाराजा का ठाठवाठ देखकर जनता को घड़ीभर लगता है, महाराजा कितने सुखी हैं ? कितने भाग्यशाली हैं ? परन्तु उस राजा के मन में तो लाखों संकल्प-विकल्पों की जाल भरी होती है । किसी राजा ने किसी राजा का एक छोटा-सा गाँव जीत लिया हो तो उसे भोजन अच्छा नहीं लगता । अरे ! राज्य में कुछ नुकसान हो जाए तो चिन्ता का कोई पार नहीं रहता ।

वन्धुओं ! ऐसा होने का कारण आपको समझ में आता है ? इसका कारण यह है कि जीव ने वाह्य पदार्थों में सुख मान रखा है, परन्तु सुख वाह्य पदार्थो में नहीं है, फिर भी अज्ञान के कारण जीव मोह छोड़ता नहीं है । एक मानव जिस पदार्थ से सुख का अनुभव करता है, दूसरा मानव उसी पदार्थ से दुःख महसूस करता है । यह तो आपको अनुभव है न ! लक्ष्मी, सत्ता और अधिकार के योग से व्यक्ति सुखोपभोग करता है, परन्तु जैसे मृगमरीचिका का जल दूर से पानी के रूप में दिखाई देता है, परन्तु वह वास्तविक पानी नहीं होता; वह ही भौतिक पदार्थो में सच्चा सुख न होते हुए भी इसमें से सुख मिलता है, यों मानकर इसी आशा ही आशा में जीव उसे प्राप्त करने हेतु उसके पीछे दौड़ रहा है, मगर अन्त तक उसका दुःख मिटता नहीं और सुख टिकता नहीं; फिर भी यह भ्रान्ति टूटती नहीं, और परिणामस्वरूप कर्मवन्धन होता रहता है।

अज्ञानदशा से जीव दुःख के कारणों में सुख मानकर रचापचा रहता है । कोई वहन गले में हीरे का हार पहनकर मुस्कराती है कि मैं कैसी सुन्दर दिखाई देती हूँ । मारवाड़ की वहनें हाथ में सोने की वंगड़ियाँ पहनती हैं और हाथीदांत का चूड़ा पहनती हैं । उनका हाथ आभूषणों से पूरा का पूरा भरा रहता है । हाथ को साफ करने की जगह भी वहाँ नहीं होती । अरे ! इनसे हाथ पर कितना अधिक वजन हो जाता है ? फिर भी उसे ऐसा नहीं लगता कि मुझे वजन लगता है । एक हाथीदांत का चूड़ा वनाने में कितना पाप होता है ? (इसका विचार करो) सर्वप्रथम एक खड्ढा खोदकर उसमें कागज की हथिनी बनाकर खड़ी रखी जाती है। हथिनी को देखकर उसके प्रति आकर्पित होकर हाथी खड्ढे में पड़ता है । फिर इस प्रकार से हाथी के दांत गिराये जाते हैं । फलतः उस हाथी की मृत्यु हो जाती है । फिर भी हाथीदांत का चूड़ा पहनने-वाली वहन हर्पित होती है कि मैंने हाथीदांत का चूड़ा पहना है । मारवाड़ी वहन एक थान जितने कपड़े का घाघरा पहनती है । कम कपड़े का घाघरा उसे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि उसे इसका शौक है । दस वर्ष की वालिका अपने भाई को कंधे पर विठाकर पर्वत पर चढ़ रही हो, उस समय थकान से वह आकुल-व्याकुल होती हो, घबरा जाती हो, उसे देखकर कोई उससे पूछे – "वहन ! तुझे इसका वोझ नहीं लगता ?" तव वह वालिका कह देगी – "आप मुझे यह क्यों पूछते हो ? यह तो मेरा सहोदर प्रिय लाड़ला

आचार्य जैन ज्योतिर्धर १००८ बा. ब्र. पू. गुरुदेव श्री रत्नचन्द्रजी म. सा. के सुशिष्यारत्ना बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी (शारदमण्डल) की नामावली

क्रम	महासतीजी का नाम	जन्मस्थल दीक्षास्थल	दीक्षा संवत	मास	तिथि	वार
१.	बा. ब्र. विदुषी पू. शारदाबाई महा.	साणंद	१९९६	वैशाख शुक्ल	६	सोमवार
		निर्वाण-मलाड़-मुंबई	२०४२	वैशाख शुक्ल	६	बुधवार
२.	स्व. पू. सुभद्राबाई महासतीजी	खंभात	२००८	चैत्र शुक्ल	१०	शुक्रवार
३.	स्व. पू. इन्दुबाई महासतीजी	सुरत				
		दीक्षा-नार	२०११	अषाढ़ शुक्ल	५	गुरुवार
४.	बा. ब्र. पू. वसुबाई महासतीजी	विरमगाम	२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	५	शुक्रवार
५.	स्व. पू. कान्ताबाई महासतीजी		२०१३	मार्गशीर्ष शुक्ल	१०	गुरुवार
६.	स्व. पू. सद्गुणाबाई महासतीजी	लखतर	२०१३	माघ शुक्ल	६	बुधवार
७.	बा. ब्र. पू. इन्दिराबाई महासतीजी	सुरत	२०१४	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	बुधवार
८.	स्व. पू. शान्ताबाई महासतीजी	मोडासर				
		दीक्षा-नार	२०१४	माघ वदि	७	सोमवार
९.	पू. कमलाबाई महासतीजी	खंभात	२०१४	वैशाख शुक्ल	६	शुक्रवार
१०.	स्व. पू. ताराबाई महासतीजी	साबरमती	२०१४	अषाढ़ शुक्ल	२	गुरुवार
		निर्वाण-माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ वदि	२	शनिवार
११.	बा. ब्र. पू. चंदनबाई महासतीजी	लखतर	२०१७	मार्गशीर्ष शुक्ल	६	गुरुवार
१२.	बा. ब्र. पू. रंजनबाई महासतीजी	साबरमती				
		दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१३.	बा. ब्र. पू. निर्मलाबाई महासतीजी	खंभात				
		दीक्षा-दादर-मुंबई	२०२१	माघ शुक्ल	१३	रविवार
१४.	बा. ब्र. पू. शोभनाबाई महासतीजी	लींबड़ी				
		दीक्षा-मलाड़	२०२२	वैशाख शुक्ल	११	रविवार
१५.	पू. मंदाकिनीबाई महासतीजी	माटुंगा-मुंबई	२०२३	माघ शुक्ल	८	रविवार
१६.	बा. ब्र. पू. संगीताबाई महासतीजी	खंभात	२०२६	वैशाख वदि	५	रविवार
१७.	बा. ब्र. पू. हर्षिदाबाई महासतीजी	घाटकोपर-मुंबई				
		दीक्षा-भावनगर	२०२६	वैशाख वदि	११	रविवार
१८.	बा. ब्र. पू. साधनाबाई महासतीजी	खंभात	२०२९	मार्गशीर्ष शुक्ल	२	गुरुवार
१९.	बा. ब्र. पू. भावनाबाई महासतीजी	माटुंगा-मुंबई	२०२९	वैशाख शुक्ल	५	सोमवार

विषयों का करना है वमन, कषायों का करना है शमन ।
इन्द्रियों का करना है दमन, त्रिकाल ज्ञानी को करना है नमन ।।

मोह को मारने के लिए सर्वप्रथम विषयों का वमन करना पड़ेगा । पुत्र ने जहर पी लिया है, इसका पता लगते ही तुरंत उसे दवाखाने में एडमिट कर देते हो । उस समय ऐसा विचार नहीं करते कि मैं समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति हूँ, समाज में मेरी अपकीर्ति होगी कि अमुक के पुत्र ने जहर पी लिया है । उस समय तो बस एक ही भावना होती है कि पुत्र के शरीर से जल्दी जहर निकल जाए और वह किसी भी तरह से बच जाए । जहर शरीर में जितने अधिक समय तक रहेगा, उतना ही अधिक नुकसान होगा । वैसे ही ज्ञानी कहते हैं - "विषयों का विष जितना अधिक होगा, उतना ही अधिक नुकसान आत्मा को होगा ।" अत: जल्दी से जल्दी इन्द्रिय-विषयों के विष का वमन कर डालो । भगवान् फरमाते हैं - "इन्द्रियाँ खराब नहीं हैं, किन्तु इन्द्रियों के विषयों के प्रति उत्पन्न होनेवाला विकार खराब है ।" इन्द्रियाँ तो महान् पुण्य के उदय से मिलती हैं । कहा भी है -

मनुष्य योनि में भी दुर्लभ है, आर्य देश उत्तम कुलयोग,
बड़े पुण्य से मिलता है यह, मानव को अति शुभ योग ।
उससे अधिक पुण्य से पाया, सुन्दर तन विचार गम्भीर,
इन्द्रिय-शक्ति, स्वस्थ मन का बल, दीर्घ आयु आरोग्य शरीर ।।

आर्यदेश, उत्तमकुल और पाँच इन्द्रियाँ महान् पुण्य से मिलती हैं । आँखें हों तो संत के दर्शन हो सकते हैं, सद्ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है । कान मिलें तो भगवान् की वाणी संतों के मुख से सुनी जा सकती है । इसका अर्थ यह नहीं है कि आँखें मिली हैं तो चाहे जैसे चित्र देखे जाय, और कान द्वारा किसी की निन्दा सुनी जाए । और जीभ मिली है, तो मुँह से मधुर बोलना, किन्तु अंतर में (कपटरूपी) जहर रखना । बहुत-से लोग कहते हैं कि मयूर का केकारव (टहुकार) मधुर होता है, तो मयूर जैसे बनो । पर मैं तो यह कहती हूँ कि मयूर जैसे नहीं बनना । मयूर मुँह से तो मधुर केकारव (टहुकार) करता है, परन्तु सारे के सारे सांप को निगल जाता है । अत: ऐसे मत बनना । अरे ! वाणी बोलो तो भी मीठी बोलना, कड़वी मत बोलना । यद्यपि शब्द के हाथ या पैर नहीं होते, परन्तु शब्द में ऐसी शक्ति है कि वह जीवित मनुष्य को मार डालती है । हमें साधु-प्रतिक्रमण में बताया गया है कि सोलह प्रकार की सावद्य भाषा साधु-साध्वी को नहीं बोलनी चाहिए । भगवान् फरमाते हैं - "ओ मेरे साधक ! किसी भी जीव को दुःख हो, ऐसी सावद्य भाषा मत बोलना । अय ! मेरे साधक ! किसी भी जीव के दुःख (देने) में निमित्त मत बनना ।" पाँच इन्द्रियों के विषय विकार को जीतकर आत्मा की तरफ मुड़ना (आत्मलक्षी बनना) । विषयों में आरक्त (आसक्त) मत बनना । दूध दुग्धरूप में रहे तो पुष्टिकारक होता है, परन्तु अगर वह दूध विकृत बन गया हो तब भी पीया जाए तो अतिहानि करता है । इसलिए ज्ञानी-

प्रभावक प्रवचनकार महान विदुषी बा.ब्र.पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

२.	शारदा संजीवनी 'भगवती सूत्र' का तामलीतापस-धनचरित्र	दादर-मुंबई	२०२०	६०००
३.	शारदा माधुरी 'भगवती सूत्र' का गोशालक-गुणश्रीचरित्र	घाटकोपर	२०२२	६०००
४.	शारदा परिमल 'उत्तराध्ययन सूत्र' का १४वाँ अध्य.-छः जीव.	राजकोट	२०२६	२०००
५.	शारदा सौरभ 'ज्ञाताजी सूत्र' थावर्चापुत्र, महाबल-मलयाचरित्र	अहमदाबाद	२०२७	६०००
६.	शारदा सरिता 'भगवती सूत्र' जमालिककुमार अग्निशर्मा को गुणसेन (समरादित्य केवली) चरित्र	कांदावाडी-मुं.	२०२९	५५००
७.	शारदा ज्योत 'ज्ञाताजी सूत्र' द्रौपदी-ऋषिदत्ता चरित्र	माटुंगा	२०३०	३०००
८.	शारदा सागर 'उत्तराध्ययन सूत्र' २०वाँ अध्ययन अनाथी मुनि अंजना चरित्र	वालकेश्वर	२०३१	१७,०००
९.	शारदा शिखर 'ज्ञाताजी सूत्र' मल्लिनाथ भगवान-पाद्युम्नचरित्र	घाटकोपर	२०३२	१०,०००
१०.	शारदा दर्शन 'अंतगड सूत्र' गजसुकुमाल-पांडव चरित्र	बोरीवली	२०३३	८०००
११.	शारदा सुवास 'उत्तराध्ययन सूत्र' २२वाँ अध्य. नेम राजेमति, जिनसेन रामसेन चरित्र	मलाड़	२०३४	८०००
१२.	शारदा सिद्धि 'उत्तराध्ययन सूत्र' १३वाँ अध्य. चित्तसंभूति, भीमसेन हरिसेन चरित्र	सुरत	२०३५	८,०००
१३.	शारदा रत्न 'उत्तराध्ययन सूत्र' ९वाँ अध्य. नमिप्रव्रज्या, सागरदत्त चरित्र	अहमदावाद	२०३७	६०००
१४.	शारदा शिरोमणि 'उपासक दशांग सूत्र' आनंदश्रावक, पुण्यसागर चरित्र	कांदावाड़ी-मुं.	२०४१	१२,०००

ता. क. आश्चर्य की बात यह है कि बा. ब्र. महाउपकारी पू. गुरुणीमैयाश्री शारदाबाई महासतीजी के देह की उपस्थिति न होने के बाद भी वह हमारे सामने हाजिर हो इस तरह हर साल पुस्तक प्रकाशित होते रहे हैं, वह भी हजार पन्ने के ग्रंथ जैसा । यह है ज्ञान का प्रभाव ।

शारदा शिरोमणि प्रथम आवृत्ति का उद्घाटन ता. ६-४-८६	कांदावाड़ी-मुं.	२०४२	१२,०००
शारदा शिरोमणि दूसरी आवृत्ति का उद्घाटन ता. २४-५-८७	कांदावाड़ी-मुं.	२०४३	६०००
दीवादांडी-शारदा स्मृति ग्रंथ का उद्घाटन ता. १९-६-८८	मलाड़-मुंबई	२०४५	१०,०००
शारदा शिरोमणि हिन्दी अनुवाद का उद्घाटन ता. २२-१-८९	कांदावाड़ी-मुं.	२०४५	३०००
सफल सुकानी-शारदा प्रवचन संग्रह का उद्घाटन ता. २५-३-९०	कांदावाड़ी-मुं.	२०४६	१०,०००
द्वितीय संवत्सर पुण्यतिथि का रत्नझनकार तूटया तार शारदा सितार का अथवा श्रद्धा सुमन श्रद्धांजलि गीत आदि	चींचपोकली मुंबई	२०४४	४०००
तृतीय वार्षिक पुण्यतिथि पर रत्नप्रकाश अथवा शारदाजीवन पराग	अंधेरी वे.-मुं.	२०४५	४०००
चतुर्थ वार्षिक पुण्यतिथि पर शारदाप्रेरक प्रसंगो की गुणों की गीता	कांदावाड़ी-मुं.	२०४६	४०००

हिन्दी संस्करण

शारदा शिरोमणी - भाग-१	कांदावाड़ी-मुं.	२०४५	३०००
सफल सुकानी शारदा प्रवचन संग्रह हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०४९	६०००
शारदा सिद्धि हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५८	५०००
शारदा रत्न हिन्दी भाग-१-२	सुरत	२०५८	३०००
शारदा ज्योत हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०५९	३०००
शारदा शिखर हिन्दी भाग १-२	सुरत	२०६१	३०००
दीवादांडी हिन्दी	सुरत	२०६१	३०००

और अंग्रेजी में सामायिक प्रतिक्रमण पुस्तक सुरत

सफल सुकानी' शारदा प्रवचन संग्रह अंग्रेजी अनुवाद पुस्तक भाग-१,२,३ खंभात में उपलब्ध है।

लेते हैं) । वे पक्षी कहते हैं – "वीरा ! तू जिस आर्यभूमि में जन्मा हुआ है, उसी आर्यभूमि में हम रहते हैं । हमें भी अपनी आर्यभूमि का गौरव है । हम वचन देते हैं कि हम अपने बच्चों से मिलकर तुरंत वापस लौट आएँगे ।" पक्षी अपने बच्चों के पास गये, उन्हें अन्नकण खिलाये, प्यार किया और उन्हें अंतिम हित-शिक्षा देते हुए कहा – "प्यारे बच्चों ! अब तुम संभलकर रहना और स्वयं अन्न के दाने बीनना सीखना और तुम अब अपने पैरों पर खड़े रहना सीखना । अब हम जा रहे हैं ।" बच्चे पूछते हैं –"हे माता-पिता ? आप हमें (निराधार) छोड़कर कहाँ जा रहे हैं ?" तब वे बोले – "अब हम सदा के लिए (तुमसे बिछुड़कर) जा रहे हैं ।" इतना कहकर बच्चों को तड़पते छोड़कर वे पक्षी दिये हुए वचन का पालन करने के लिए शिकारी के पास आकर खड़े हो गए । यह देख शिकारी आश्चर्य में पड़ गया । दोनों पक्षी कहने लगे – "वीरा ! अब तुझे जो करना हो, तू कर सकता है । परन्तु तू हमें मारे उससे पहले एक प्रश्न हमें तुमसे पूछना है, क्या तू उसका जवाब हमें देगा ?" शिकारी ने कहा – "पूछो ! मैं स्वयं आर्यदेश का मानव हूँ, तुम्हें जवाब नहीं दूं तो किसे दूंगा ?" पक्षी कहते हैं – "मेरे प्रश्न के उत्तर में मुझे तुम्हें सच्ची सलाह देनी पड़ेगी ।" शिकारी बोला – "मैं अवश्य ही तुम्हें सच्ची सलाह दूंगा । तुम्हें जो कुछ पूछना हो, निःसंकोच पूछ सकते हो ।" पक्षी बोले – "शिकारी शिकार करने हेतु तीर छोड़े, उस समय (पक्षी) किस दिशा में उड़े तो वह बच सकता है ?" यह सुनकर शिकारी विचार करने लगा – 'ओहो ! इन्होंने तो अपने बचने का मार्ग ढूंढ लिया ।' इस प्रश्न के जवाब में अगर मैं सच्ची सलाह दूं तो मेरा धंधा ही चौपट हो जाए । फिर यह दूसरे सबको (शिकार से) बचने का उपाय बता सकता है ।

देवानुप्रियों ! अगर तुम्हारे पास कोई सलाह लेने आए कि कौन-सा धंधा (व्यवसाय) करूँ, जिससे सुखी हो जाऊँ ? तो तुम उसे सच्ची सलाह दे दोगे न ? क्योंकि तुम भी आर्यदेश में जन्मे हो ! (हँसाहँस) शिकारी ने सोचा कि मेरा जो होना हो सो हो, पर मुझे तो इन्हें सच्ची सलाह देनी चाहिए । अगर सच्ची सलाह न दूं तो मेरी आर्यभूमि लज्जित हो (बदनाम हो) जाएगी । शिकारी कहता है – "शिकारी जिस दिशा में तीर छोड़े उससे विरुद्ध दिशा में उड़े तो उसके प्राण बच सकते हैं ।" इस प्रकार शिकारी ने अपना शिकार छोड़कर उसे बचने का मार्ग बता दिया और पक्षियों ने अपने प्राण बचा लिये । ऐसा था आर्यभूमि का गौरव ! वह तो शिकारी था, आप तो श्रावक हैं, आपके मन में भी आर्यभूमि का गौरव होना चाहिए ।

अन्तरात्मा में ज्ञान का दीपक प्रकाशित करने हेतु तथा सच्चा सुख प्राप्त करने हेतु विषयों का वमन और कषायों का शमन करना चाहिए । विषयों का वमन करने के बाद कषायों का शमन किस प्रकार होता है ? इस तथ्य का भाव यथा अवसर कहा जाएगा ।

खंभात संप्रदाय की महान रत्ना विदुषी वाणीभूषण शासन प्रभाविक

स्व. बा. ब्र. पू. श्री शारदाबाई महासतीजी

जन्म :
सं. १९८१
मार्गशीर्ष वदी नवमी
ता. १-१-१९२४
मंगलवार
साणंद

दीक्षा :
सं. १९९६
वैशाख शुक्ल ष
ता. १३-५-१९
सोमवार
साणंद

निर्वाण सं. २०४२ वैशाख शुक्ल षष्ठी
ता. १४-५-१९८६ बुधवार, मलाड, बम्बई

शारदागुरुणी सरस्वती, ज्ञान गुणों की ही है खान ।
अनेक जीव प्रबुद्ध हुए उनका अमृत सुन व्याख्यान ॥
रत्न गुरु के शुभाशीष से, जिन शासन विकसाया था ।
गौरव बढाकर नारी जाति का शासन शिरोमणि हरि पदपाया था ॥

की आसक्ति में मूढ वना, विषयों का संग होने से रागादि मलिन भाववाला बना। और फिर वह विषयों (की प्राप्ति) के लिए आरम्भ-समारम्भादि पापाचरण करनेवाला वना। इस कारण वहुत कर्मों का उपार्जन करके उसकी विडम्बनाओं को आमंत्रण दिया। फिर आत्मा दु:खी वनता है न ? उसका मूल कारण क्या है ? यह समझ में आया ? (मूल कारण है-) पर का संग। अतः वीतरागवाणी रूपी दवा कहती है - हे आत्मन् ! पर का संग और राग छोड़। किन्तु दूसरों की बात तो क्या करें, मगर जो कायम तेरे साथ रहता है, उस शरीर का भी राग छूटे तो यह रोग मिट जाय। जब शरीर का राग सर्वथा छूट जाता है, तब निरागी अवस्था आ जाती है। कहा भी है -

देह छतां, जेनी दशा वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीना चरणमां, वन्दन हो अगणित॥

जहाँ तक कर्म रहेंगे, वहाँ तक देह रहेगा। कर्मों से पूर्ण मुक्त नहीं वनता है, तब-तक उसे देह धारण करना पड़ता है। जब परद्रव्य का राग छूट जाता है तब आत्मा वीतराग दशा प्राप्त कर लेता है। तभी उसका रोग दूर हो जाता है। मस्तक दु:खता है, तब 'एस्प्रो' या 'एनेसिन' की गोली खाने पर थोड़ी देर के लिए आराम मिलता है। डोक्टर इंजेक्शन देता है, तब भी कुछ समय तक आराम मिलता है। यहाँ यह सोचना जरूरी है कि मस्तक की वेदना मंद पड़ने की हो और गोली ले ली तो सिरदर्द मिट जाता है। यह तो सिर्फ इस भव की वेदना है। परन्तु सदा के लिए भव-भव (भ्रमण) का रोग मिटाना हो तो सत्संग करो। यह सत्संग भी रूखा-सूखा नहीं, परन्तु जो संत वीतरागवाणी का मन्थन-मनन करके, वीतराग संत वनकर, जो औषध दें, उसका पान करने से रोग समूल नष्ट हुए विना नहीं रहता।

परद्रव्य के प्रति राग ही आत्मा का रोग है। जैसे किसी की पुत्रवधू (घर से) बाहर भटकने लग जाय तो उसकी कोई कीमत नहीं रहती। चैतन्य आत्मा अनन्तशक्ति का स्वामी है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने स्वभाव में परिणत होती है। शरीर को अच्छा (पुष्ट) रखने के लिए इसे चाहे जैसे सुंदर मेवा-मिष्टान्न खिलाओ, फिर भी उसका स्वभाव सड़न-गलन-विध्वंसन का है। भले ही राजा का पुत्र हो, श्रेष्ठी पुत्र हो या महान् संत हो, फिर भी शरीर का स्वभाव तो जैसा है, वैसा ही रहनेवाला है। औदारिक शरीर का स्वभाव है - क्षीण होना, विनष्ट होना। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय आदि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में परिणमित होता है। अज्ञान-अवस्था में जीव स्वद्रव्य को छोड़कर परद्रव्य में पड़ता है, और विवेक भूल जाने से उसे ध्यान नहीं रहता कि मेरा असली स्वभाव क्या है ? मुझे तो जन्म-मरण का चक्कर मिटाकर मेरे अपने स्थान (मोक्ष) में पहुँचना है। जैसे किसी अपराधी को अपराध करने से आजीवन कारागार की सजा मिली है। वहाँ उसे सख्त मेहनत-मजदूरी करनी पड़ती है, फिर भी

व्याख्यान - १

आषाढ़ सुदी ९, सोमवार | दिनांक : ५-७-७६

विषयों का वमन : सच्चे सुख में रमण

ज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं एवं बहनों !

समस्त जगत् के जीवों का शाश्वत स्वधाम प्राप्त करने के लिए अमृतरस - वाहिनी अनन्तज्ञानी भगवन्तों की वाणी है । भगवन्त शास्त्रों में फरमाते हैं कि अनन्तकाल से आत्मा ने सम्यग्दर्शनरूपी तेजस्वी रत्न के अभाव में स्व-भाव को भूल कर परद्रव्य के पागलपन में मिथ्यात्व-अन्धकार में दौड़-धूप की है । परन्तु पुण्योदय के फलस्वरूप बोधि बीज के कारणभूत मनुष्य भव की प्राप्ति हुई है ।" सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के अभाव में सारी दौड़-धूप व्यर्थ है । भगवान् ने लोकोत्तर मार्ग बताया है । लौकिक मार्ग पर चलनेवाले और इन्द्रिय-विषयों के अधीन हुए अज्ञानी आत्मा शारीरिक अनुकूलता में सुख ढूंढते हैं ।

बन्धुओं ! लौकिक मार्ग तो कर्माधीन है, जबतक उसमें आनन्द मानकर उसका अनुसरण करेंगे, तबतक लोकोत्तर मार्ग में प्रवेश करना कठिन है और तबतक आधि-व्याधि-उपाधि और दुःख-दारिद्र्य दूर नहीं हो सकेंगे । परन्तु वर्तमान मानव भौतिकवाद की आंधी में सुख की खोज करके उसमें मौज मान रहा है । परन्तु उसे पता नहीं है कि इस मौज के पीछे दुःख की कितनी बड़ी फौज खड़ी है ?

नाम भीष्म पितामह क्यों पड़ा ? पूर्ण यौवन अवस्था में पिता के लिए पुत्र (भीष्म) ने भोग का त्याग किया। भोग धधकती आग है। जिस कन्या के साथ भीष्म विवाह करनेवाले थे, उस कन्या के साथ विवाह करने का पिता का मन हुआ। अन्त में, पिता के लिए भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले ली। और उस कन्या का विवाह पिता के साथ करा दिया। इस कारण उनका नाम पड़ा - भीष्म पितामह। भीष्म पितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं - "आज आपके मुख पर उदासीनता और ग्लानि क्यों दिखाई दे रही है ? आपका मुख आज खिन्न क्यों है ?" यह प्रश्न सुनकर भीष्म पितामह की आँख में आंसू आ गए। वे बोले - "मैं अपनी की हुई भूल का पश्चात्ताप कर रहा हूँ।" धर्मराज ने कहा - "आप तो महान हैं, आपने कौन-सी भूल की ?" "पुत्र ! तुम्हें इस बात का शायद पता नहीं होगा, पर भूल करनेवाले को तो अपनी भूल का ख्याल होता है न ? जिस समय भरी सभा में द्रौपदी का चीर खींचा जा रहा था उस समय मैं वहाँ बैठा हुआ था। सभी मुझे भीष्म पितामह के रूप में मस्तक नमाते हों, मेरी आज्ञा सदैव शिरोमान्य करते हों, ऐसा मैं वहाँ बैठा था, फिर मेरी आँख के समक्ष द्रौपदी को निर्वस्त्र करके अपनी जांघ पर (बिठाने) का षड्यंत्र दुर्योधन रच रहा हो, फिर भी उस समय मैं एक शब्द भी नहीं बोला। मैंने कितनी गंभीर भूल की ! मैंने जीवन में बहुत पाप किया है।" इस प्रकार भीष्म पितामह ने भूल को भूल के रूप में मानकर जगत के समक्ष प्रस्तुत की है। जो साधक आत्मा भी अज्ञान दशा से की हुई भूल को प्रगट न करे तो समझो, उसने अपनी साधुता लुटा दी है। श्रावक भी अपनी भूल प्रगट न करे तो उसे श्रावकपन का लोप कर दिया।

सांप की अपेक्षा पाप का भय अधिक लगना चाहिए : बन्धुओं ! क्या तुम्हें वास्तव में सांप की अपेक्षा पाप अधिक भयंकर लगा है ? व्यवहार में जैसे पर्व के दिन पहनने की, बहुत दिनों से सुरक्षित रखी हुई कीमती से कीमती मूल्यवान पगड़ी पहनकर तुम जा रहे हो, और उस समय कोई उच्च स्वर से बोलकर तुम्हें चेताए कि 'तुम्हारी पगड़ी में सांप है !' तो तुम (उसे सुनकर) क्या करोगे ? पगड़ी उतारकर फेंक दोगे। क्योंकि सांप का अर्थ है - जीवननाशक जंतु ! तुम अपनी पगड़ी फेंक देने के बाद घर जाकर सोचोगे की पगड़ी गई तो गई, पर जीते जी घर आ गया, बस इतनी गनीमत है। तुम्हें सांप जितना भय पाप से लगता है क्या ? तुम्हें सांप का और तीखे कांटे का जितना भय लगा है, उतना पाप का नहीं लगता ! सच तो यह है सांप का और कांटे का भय लगा है, उतना पाप का भय नहीं लगा ! पग में कांटा चुभ गया हो तो तुरंत सुई से उसे निकाल लिया जाता है ! क्या कांटे पैर में रहने दिया जाता है ? उसका कारण यह है कि कांटा अगर अंदर रह जाए तो वह सड़ जाता है, वहाँ रस्सी पड़ जाती है। इसी प्रकार कोई (दु:साध्य) रोग हो जाता है तो तुरंत डोक्टर या वैद्य के यहाँ जाते हो। शरीर के लिए जितनी चिन्ता है, क्या उतनी चिन्ता पाप न हो, इसकी है ? सांप ज्यादा हैरान करता है या पाप ? जहाँ तक आत्मा पाप से डरता नहीं,

हुए) इतने भाईयों में से प्रतिदिन कौन-कौन सामायिक करता है ? जो भाई सामायिक करते हों, वे अंगुली ऊँची करें, तो ऐसे लोग कम ही निकलेंगे । आषाढ़ सुदी पूनम का दिवस आ रहा है, उस दिन उपवास किसे करना है ? तो वे भी थोड़े ही निकलेंगे । इसके विपरीत मैं अभी यह कहूँ कि दुःख किसे मिटाना है और सुख किसे चाहिए ? तो सभी तुरंत अंगुली ऊँची करेंगे । इच्छा सुख प्राप्त करने की है, पर उसे पता नहीं है कि सुख पाप से मिलता है अथवा पुण्य या धर्म से मिलता है, और वह सुख कैसे टिका रहता है ?

संसार-सुख के सुनहरे सुहावने स्वप्न देखता हुआ मानव शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और कौटुम्बिक आदि सैंकड़ों प्रकार के उपद्रवों से घिरा हुआ है । फिर भी वह यों मानता है कि अगर मेरे पास बहुत धन होता तो मैं सुखी हो जाता । इस जगत् में जो कुछ भी दुःख है, वह धन के अभाव के कारण है । ऐसा कुछ (आज का) मानव मानता है । अब दूसरा प्रकार - मान लो, कोई मनुष्य बड़ा करोड़पति है । उसके आंगन में चार-चार कारें खड़ी हैं । एयरकण्डीशन रूम हैं । संसार में कहे जानेवाले भौतिक सुख की सम्पूर्ण सामग्री उसके घर में मौजूद है । ऐसे लक्ष्मीनन्दन से पूछो कि "भाई ! तू सूखी है न ?" इतने विपुल सुख के साधन होने पर भी वह (प्रायः) यही कहेगा कि मैं सुखी नहीं हूँ । अंदर से चिन्ता रूपी दीपक का कीड़ा उसे कुतरकर खा रहा है । मार्ग में एक भिखारिन बाई चार बालकों को अंगुली से पकड़कर चली जा रही हो, 'दो माँ-बाप ! दो माँ-बाप !' यों बोलती हुई भीख मांग रही हो, उसे देखकर वह अरबपति सेठ रो पड़ता है, क्योंकि उसके संतान नहीं है । जबकि भिखारिन बाई अरबपति सेठ को देखकर रो पड़ती है - 'अहो ! यह कितना सुखी है ? मुझे भी ऐसा सुख मिले तो कितना अच्छा !' देखो, कितनी विपरीत बात है यह ? सेठ के पास धन का संग्रह है, पर वह पुत्र के अभाव में विलाप करता है ! भिखारिन के संतान है तो उसे (उनके व अपने) पेट भरने की चिन्ता है ! कदाचित् (सेठ को) पुत्र हो जाए, मगर वह अल्पकालीन बीमारी भोगकर आयुष्यपूर्ण करके गुजर जाए तो भी उसे दुःख होता है । इस जगत् में जीवों को कोई न कोई दुःख लगा ही रहता है -

कोई धन से रहित दुःखी है, है कोई महारोग - पीड़ित ।
पाता कोई कष्ट मानसिक, पुत्र-विरह से हुआ दुःखित ।
कोई किसी दुःख में रत है, कोई किसी कष्ट में मग्न ।
हा ! इस जग में कोई जन भी नहीं, पूर्ण सुख में संलग्न ॥

इस प्रकार चारों ओर से मानव दुःखों से घिरा हुआ होता है । किसी को पूर्ण सुख नहीं है । 'सात सांधे, वहाँ तेरह टूटे,' ऐसी दशा वह भोगता रहता है । कदाचित् उसका पुण्य उदय हो तो वह यथेच्छ सुख प्राप्त करता है, फिर भी वह सच्चा सुख नहीं है, क्योंकि वह सुख शाश्वत नहीं है, अपितु अशाश्वत है ।

पापों का फल भोगने के लिए (जन्म-मरण करने हेतु अन्यत्र योनि में) जाना पड़त
अर्जुनमाली भगवान से आज्ञा लेकर अपने द्वारा किये हुए पापों को नष्ट करने हेतु न
के बाहर के दरवाजे के पास जाकर खड़े रहे। आने-जानेवाले लोग पत्थरों से त
कटु वचनों के प्रहार करने लगे। फिर भी अर्जुनमुनि ने उन सब यातनाओं (उपसर्ग
को समभाव से सहन किया और कर्मों को नष्ट करके शाश्वत सुख पाया।

भीष्म पितामह ने धर्मराज के समक्ष आँख से अश्रुपात करते हुए कहा - "भ
सभा में द्रौपदी के चीर खींचे गए, यह आँख से प्रत्यक्ष देखते हुए भी मैं एक श
भी न बोला! मेरी बुद्धि उस समय कुण्ठित हो गई। कोई पुत्र भी ऐसा निष्ठुर न
होता कि अपनी मां-बहन को जगत् के समक्ष कोई निर्वस्त्र करे, तथापि एक शब्द भ
न बोले। मैंने यह क्या किया? परन्तु आज मुझे विचार आता है कि मेरी बुद्धि उ
समय कुण्ठित क्यों बन गई? उस समय मैंने दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न नहीं किया
उसका कारण था मेरे पेट में दुर्योधन के घर का अशुद्ध आहार पड़ा था।" 'जैसा आहा
वैसी डकार' (यह कहावत प्रसिद्ध है) भगवान ने साधु-साध्वी के लिए भी फरमाया
- तु *औद्देशिक* - अर्थात् खास तेरे लिए बनाया हुआ, *कीयगड* - अर्थात् - खरी
कर लाया हुआ, *अभिहडाणीय* - अर्थात् - सामने लाया हुआ आहार ग्रहण न करना
तू ४२ दोष तथा (भेद-प्रभेदों सहित) ९६ दोष टालकर निर्दोष गौचरी करना
अगर गौचरी निर्दोष नहीं होगी तो तेरा संयम लुट जाएगा। भीष्म पितामह ने अन्ति
आलोचना की और कहा - "धर्मराज! इसी कारण मेरे मुख पर उदासीनता है और आँख
में आंसू है। (निष्कर्ष यह है कि) आहार भी जबर्दस्त काम करता है।

प्रदेशी राजा को सूरिकन्ता रानी मारने गई, उस समय उसके अध्यवसाय कैसे
होंगे? अनेक जीवों के प्राण लेकर जो आहार पेट में गया हो, उससे उसके अध्यवसाय
भी वैसे अशुभ ही होंगे न? खटाईवाले बर्तन में दूध भरा हो तो दूध बिगड़ (फट)
जाता है। हाँ तो खटाईवाले बर्तन के संग से दूध बिगड़ गया, वैसे ही जीवन की बात
समझें। परद्रव्य का संग होने से आत्मा अपना बिगाड़ कर लेता है। खानपान कैसा
होना चाहिए? भगवान ने संतों को कहा - "तुम निर्दोष गौचरी करना।" तुम इतने
घर में गौचरी के लिए फिरना, ऐसा नहीं कहा। अपितु निर्दोष गौचरी की
गवेषणा करने को कहा है। 'दशवैकालिक सूत्र' में बताया गया है कि गौचरी कैसे
करनी चाहिए -

जहा दुमस्स पुप्फस्स, भमरो आवियइ रसं।
न य पुप्फं किलामेइ सो य पीणेइ अप्पयं॥

- दशवैकालिक सूत्र, अ-१, गा.-२

भ्रमर कमल में से रस पीता है, परन्तु उसे क्षति नहीं पहुँचाता, भ्रमर कमल की
आज्ञा नहीं लेता, जबकि संत तो गौचरी जाता है, तब गृहस्थ आहार दे तो लेता है।

भाई है !" इस पर से स्पष्ट समझ में आता है कि जिस जीव की जिसके प्रति जितनी रुचि (उत्कण्ठा) होती है, उसे वह दुःखरूप वस्तु भी सुखरूप लगती है । इतनी रुचि अगर धर्म के प्रति जग जाए तो व्यक्ति का कल्याण हो जाय ।

देवानुप्रियों ! यह सब जीव की अज्ञानदशा है और अज्ञान ही दुःख का मूल है । उस मूल में सुख की आशा रखना व्यर्थ है, केवल लालसा है । परन्तु जीव को इसका भान नहीं है । पतंगिया दीपक के प्रकाश से प्रभावित होकर उसमें अपने आपको होम देता है । यदि उसे ज्ञान होता कि मैं इससे आकर्षित होकर इस पर गिरूँगा तो जल मरूँगा, तो वह ऐसा न करता । एक मन खीर से भरे हुए तपेले में एक बूंद जहर पड़ा है, इसका पता लगे तो वह उसे फेंक देता है, किन्तु यदि उसे पता न लगे तो वह उसे खुशी-खुशी पी लेता है और मौत का आलिंगन कर लेता है । इस प्रकार जीव 'सम्यक् ज्ञान' के अभाव में सुख प्राप्त करने जाते हुए दुःख को न्यौता दे देता है। अतः विचार करो ! सच्ची समझ से सुख प्राप्त होता है, जबकि दुःख अज्ञान का नाश होने से मिटता है । आज तो सम्यक्ज्ञान प्राप्त करने का दिवाला है । आज के मानव को विकथा करने में, पिक्चर देखने में और रेडियो के गीत सुनने में जितना रस है, उतना धर्म (आत्मधर्म) के प्रति नहीं है । यहाँ घाटकोपर में बहुत-सी बहनें प्रतिक्रमण करने के लिए आती हैं । परन्तु बहुत-सी जगह तो रविवार और गुरुवार को भी बहनें प्रतिक्रमण में कम आती हैं । और जैनशाला में धार्मिक सीखने-पढ़ने के लिए बालक आते नहीं । मुझे लगा कि इसके पीछे क्या कारण है ? पूछने पर पता लगा कि गुरुवार को (टी.वी. पर) छायागीत आते हैं, और रविवार को पिक्चर तथा नाटक आते हैं, इसका मतलब हुआ धर्म को तो देश-निकाला दे दिया । किन्तु इसी दिन और इसी टाइम में पुत्र विदेश से आ रहा हो, तो एयरपोर्ट पर उसे लेने के लिए जाएँगे या नहीं ? (श्रोताओं में से आवाज : अवश्य जाते हैं) । आपको संतति जितनी प्रिय लगती है, उतने प्रिय अभी तक संत नहीं लगे हैं । तुम्हें लगता है कि विज्ञान ने प्रगति की है, परन्तु विज्ञान ने धर्म को धक्का मार दिया है । टी. वी. ने धर्म को भुला दिया है और मोह को जगा दिया है ।

हमारे जैनागमों में आत्मा का ऊर्ध्वारोहण करने (ऊँचे चढ़ने) के लिए चौदह गुणस्थान रूपी चौदह सोपान (सीढ़ियाँ) बताए हैं । उनमें से दसवें गुणस्थान तक मोह - महाराजा का साम्राज्य व्याप्त है । यह मोह ही आत्मा का कट्टर दुश्मन है । इस शत्रु पर जबतक विजय प्राप्त नहीं की जाती, तबतक सच्चा सुख मिलनेवाला नहीं है । जीव इस मोहशत्रु को हटाकर बारहवें गुणस्थान पर पहुँच जाए तो फिर गिरने का चांस नहीं रहता । जीव बारहवें गुणस्थान में पहुँच गया, उसका अर्थ है, उसका मोक्ष-गमन रजिस्टर्ड (या रिजर्व) हो गया । फिर तो केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जाना निश्चित है । अगर हमें मोक्ष में जाना हो तो मोह पर विजय प्राप्त करना पड़ेगा । यह मोह ही जीव को संसार में मोहित करता है, मूढ बनाता है । अगर यह बात समझ में आती है तो निम्नोक्त बातें निश्चित करो -

व्याख्यान - ३

आषाढ़ सुदी ११, बुधवार | ता. ७-७-७६

धर्मश्रवणपूर्वक श्रेयमार्ग में सच्चा सुख है

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जगत् के समस्त जीवों को आत्मोन्नति और आत्मकल्याण का सत्यपथ बतानेवाले परमकृपानिधि वीतराग - प्रभु ने विश्व के समक्ष अध्यात्म का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया और स्याद्वाद शैली से आगमवाणी का प्रकाश किया। आगम आत्मदर्शन करने का दर्पण है। आत्मनिरीक्षण करने हेतु आगम में दृष्टिपात करना पड़ेगा। आप मुख पर रहे हुए दाग देखने के लिए दर्पण रखते हैं, जैसा आपका मुख होगा, वैसा ही दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ेगा। वैसे ही आगमरूपी दर्पण भी आत्मा पर पड़े हुए दाग (दोष) बताएगा।

भगवद्वाणी के रूप में वर्तमान काल में ३२ आगम हैं। उनमें से ११ अंगसूत्रों में छट्ठा अंगशास्त्र है - ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र। जिसे धर्मकथानुयोग में परिगणित किया गया है। उसमें महान् पुरुषों के जीवन का वर्णन है। जीव को स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा और देशकथा, इन चार विकथाओं में जितनी दिलचस्पी है, उतनी धर्मकथा में (प्रायः) नहीं है। भगवान् फरमाते हैं - "हे जीवों ! तुम कथा करो तो ऐसी करो, जिससे कर्मो का बन्धन कटे।" विकथा या कर्मकथा जन्म मरणादि रूप संसार की वृद्धि करती है; जबकि धर्मकथा संसार के बन्धन को काटती है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन (सू. २३) में गणधर गौतम स्वामी ने धर्मकथा के सम्बन्ध में भगवान से पूछा -

"धम्मकहाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? (उ.) धम्मकहाएणं निज्जरं जणयइ। धम्मकहाएणं पवयणं पभावेइ। पवयणपभावेणं जीवे आगमिसस्स भद्दत्ताए कम्मं निबंधइ।"

अर्थात् "भंते ! धर्मकथा करने से जीव को क्या लाभ होता है ?" (उ.) "गौतम ! धर्मकथा करने से कर्मों की निर्जरा होती है, धर्मकथा से प्रवचन की प्रभावना होती है। प्रवचन की प्रभावना करने से जीव भविष्य में शुभफल देनेवाले कर्मों का बन्ध करता है।"

'ज्ञाता सूत्र' में कछुए का दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि कछुए को कोई पकड़ने के लिए आता है, तब वह अपनी इन्द्रियों का गोपन करके बैठ जाता है; इस कारण वह बच जाता है। यही न्याय अपने पर घटित करना है। जो मनुष्य अपनी

पुरुष कहते हैं - "इन्द्रिय-विषयों का वमन करके आत्म-साधना कर लो । प्रतिदिन सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, व्याख्यान सुनो, संतदर्शन करो, फिर जीवन में परिवर्तन क्यों नहीं होगा ?"

बन्धुओं ! जब जीवन में परिवर्तन आएगा, तब उसकी दशा कोई और ही हो जाएगी । अन्तर से विषयों का विष निकल जाएगा, तब कोई तुम्हारे प्रति चाहे जैसे शब्द निकालेगा तो तुम्हें जरा भी दुःख नहीं होगा । किन्तु अन्तर में विषयों के विष भरे होंगे तो कोई तुम्हारे लिए अच्छा कहेगा तो तुम्हें अच्छा लगेगा, (कोई तुम्हारे लिए बुरा कहेगा तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा) । अनादिकाल से जीव को क्या अच्छा लगता है ? कोई तुम्हें पत्र में लिखे - 'श्रीमान्', 'सेठ' या 'शाह' तो तुम्हें प्रिय लगता है, परन्तु कोई कहे - 'क्यों शैतान !' तो तुम्हें कैसा लगता है ? तुरंत बाहर जाकर वक्रता से बोलोगे - "क्या मैं शैतान ? मैं तो श्रावक हूँ श्रावक !" परन्तु (अन्तर की गहराई में उतरकर) विचार करना कि मैं श्रावक हूँ या शैतान हूँ ? श्रावक-कुल में जन्म लेकर मैं काम शैतान का करता हूँ या श्रावक का ? जीव (आत्मा) को स्वयं विचार करना है कि मुझमें श्रावक के गुण हैं या शैतान के ? यह बात अपने आपसे पूछो ! जिस आर्यदेश में तुम्हारा जन्म हुआ है, उसका तुम्हारे मन में कितना गौरव होना चाहिए ? (प्राचीनकाल में) आर्यदेश में जन्मे हुए शिकारी के मन में भी आर्यभूमि का कितना गौरव था ?

एक बार एक शिकारी शिकार करने के लिए जंगल में गया । एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे-बैठे बात कर रहे थे । इतने में शिकारी शिकार करने हेतु तैयार हुआ । उसे देखकर दोनो पक्षी बोले - "वीरा ! तू हमारी एक बात सुन ले, फिर तुझे जो करना हो सो करना ।" पक्षियों की बात सुनकर शिकारी बोला - "पक्षियों ! मैं भले ही शिकारी हूँ, पर आर्यदेश में जन्मा हूँ । मुझे अपने आर्यदेश का गौरव है । अतः कहो, तुम्हारी बात सुनने के लिए मैं तैयार हूँ ।" पक्षी बोले - "वीरा ! हमारे छोटे-छोटे दो बच्चे हैं । वे अभी तक उड़ना नहीं सीखे । उनके लिए हम अन्नकण प्राप्त करने हेतु आए हैं । अगर हम ठीक समय पर नहीं पहुँचे तो वे भूखे रहकर तड़पेंगे । अतः हमें थोड़ी देर के लिए (उनके पास) जाने दो । हम अपने बच्चों को अन्न के दाने खिलाकर, उनसे प्यार करके और अन्तिम हित-शिक्षा देकर तुरंत वापस लौट आएँगे ।" शिकारी ने कहा - "अच्छा ! मैं तुम्हें जाने देता हूँ । परन्तु तुम वापस लौट आओगे, इसकी क्या प्रतीति ?"

बन्धुओं ! इस शिकारी के मन में आर्यभूमि का कितना गौरव है ? शिकारी क्रूर होते हुए भी हाथ में आया हुआ शिकार जाने देता है । बोलो, तुम्हें कोई ग्राहक रूपी शिकार मिल जाए तो उसे छोड़ दोगे या अपना काम निकाल लोगे ? क्या करोगे ? बोलो तो सही : (हँसाहँस) (श्रोताओं में से आवाज - हम तो उसका पूरा शिकार कर

रांका और वांका के दृष्टान्त से इस तथ्य को समझें । पंढरपुर में रांका नाम के एक सेठ रहते थे । उनकी पत्नी का नाम था - वांका । वे दोनों पति-पत्नी बहुत धर्मिष्ठ थे । धर्म को समझे हुए थे, इसलिए उनके जीवन में खूब सन्तोष था । उनकी सन्तोष वृत्ति और निर्लोभता की प्रशंसा सुनकर एक देव को उनकी परीक्षा करने का विचार हुआ । एक दिन सेठ-सेठानी दोनों घूमने जा रहे थे । उस समय देव ने स्वर्णमुद्राओं से भरी हुई एक थैली रास्ते में डाल दी । (मार्ग में पड़ी हुई) इस थैली को देखकर रांका सेठ ने सोचा - 'पीछे सेठानी आ रही है । इस थैली में भरी हुई सोने की मोहरें देखकर कदाचित् उसका मन ललचा जाए तो ?' अतः वे सोने की मोहरों पर धूल डालकर उसे ढकने लगे । पीछे-पीछे चली आ रही सेठानी ने अपने पति को सोना-मोहरों पर धूल ढकते देख पूछा - "स्वामीनाथ ! यह क्या कर रहे हैं आप ?" इस पर रांका सेठ ने कहा - "तुम्हें क्या दिखाई देता है ?" "मुझे तो आप धूल पर धूल ढकते दिखाई दे रहे हो । धूल पर धूल डालकर ढकने की क्या आवश्यकता है ?" देव ने दोनों की सन्तोषवृत्ति और निर्लोभता देखकर उनकी बहुत प्रशंसा की और चरणों में नमस्कार करके वह चला गया ।

देवानुप्रियों ! रांका सेठ को सोना मिट्टी जैसा लगा । परन्तु अगर आप चले जा रहे हों और रास्ते में सोना-मोहरों से भरी हुई थैली दिखाई दे तो आप क्या करेंगे ? उसे धूल से ढक दोगे, या उठा लोगे ? (हँसाहँस), भगवान का श्रावक परिग्रह में गले तक डूब जाए, इतना परिग्रह इकट्ठा करे, या परिग्रह की मर्यादा करे ? जैसे रांका-वांका को सोना पीली मिट्टी जैसा लगा, वैसे तुम्हें वह पीली मिट्टी जैसा लगे या प्यारा लगे ? बराबर विचार करके अन्तर्हृदय से जवाब देना । मुझे ओठों से (दिया हुआ) जवाब नहीं चाहिए, आपके हृदय से (उठा हुआ जवाब) चाहिए । आपको सोना मिट्टी जैसा प्रतीत होता हो तो बोलना और यदि मिट्टी-सा नहीं लगता हो तो समझना । मिट्टी तो मिट्टी है ही, सोना, हीरा, चांदी, ये सब भी मिट्टी (के प्रकार) ही हैं न ? मिट्टी और सोना आदि सब पृथ्वीकाय के ही भेद हैं । (अन्तर इतना ही है कि) हीरा, पन्ना, माणिक और सोना, इन सबमें आनेवाले (उत्पन्न होनेवाले) जीव की पुण्यवानी अधिक है । जीवन में जब (सच्ची) समझ आएगी तब सोना और मिट्टी दोनों एक सरीखे प्रतीत होंगे । कहा भी है -

'रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी; सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो ।'

"जब आत्मा (उच्च गुणस्थान पर पहुँचकर) जागृत हो जाएगा, तब उसे वैमानिक देव की समृद्धि और धूल (मिट्टी) दोनों समान प्रतीत होंगे । फिर (संसार की) किसी वस्तु पर ममत्वभाव नहीं रहता । आत्मा स्वयं स्वर्णपात्र बन जाएगा और उसे स्वयं को समझ में आ जाएगा कि मैं हीरे, माणिक, मोती, सोना तथा धन चाहे जितना इकट्ठा (संग्रह) करूँ, मगर मेरे साथ (परलोक में) कुछ भी आनेवाला नहीं है, ये सब यहीं रहनेवाले हैं । बन्धुओं ! आपके बाप-दादा चले गए, वे अपने साथ कुछ ले गए हैं क्या ? यदि ले गए हों तो कहना ! (हँसाहँस), साथ में कुछ भी ले जाया नहीं

व्याख्यान - २

आषाढ़ सुदी १०, मंगलवार | ता. ६-७-७६

परभाव में व्याधि : स्व-भाव में समाधि

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त उपकारी, वात्सल्य का प्रवाह प्रवाहित करनेवाले, परम कृपानिधि, जगत् के समस्त जीवों को आत्मोन्नति और कल्याण की सच्ची राह बतानेवाले, महान् करुणासागर, वीतराग भगवान् ने जगत् के समस्त जीवों का कल्याण करने की भावना से आगम की अमूल्यवाणी का स्रोत बहाया। तीर्थकर भगवन्तों के मुखकमल में से वाणी वर्षी, गणधरों ने उसे झेली, आचार्यो ने उसे लिपिबद्ध की। भगवान का कथन है - "जिस आत्मा को (जन्म-मरणादि दुःख रूप) संसार खटकेगा, उसका कर्मो से छुटकारा होगा।" संसार का अर्थ क्या ? जहाँ जन्म-मरण, संयोग-वियोग आदि हैं, उसका नाम संसार है। जहाँ ये सब द्वन्द्व नहीं हैं, उसका नाम है - मोक्ष ! जो आत्माएँ सिद्धस्वरूप को प्राप्त कर चुकी हैं, उनके जन्म-जरा-मरण, संयोग-वियोग, रोग-शोक आदि कुछ भी नहीं हैं। जहाँ तक कर्मो की वर्गणा मौजूद है, वहाँ तक जन्म-मरणादि का अस्तित्व है। जहाँ तक भव-परम्परा खड़ी है, वहाँ तक ये दुःख सर्वथा दूर होनेवाले नहीं हैं। संसार में दुःख बहुत हैं। कदाचित् किसी जीव के पुण्योदय से दूसरे दुःख वर्तमान में विद्यमान न हों, परन्तु जन्म-जरा-रोग-मरण, ये चार प्रकार के दुःख तो (सिद्ध परमात्मा के सिवाय) तमाम संसारी जीवों के मौजूद हैं। ये दुःख सिर्फ सिद्धगति में नहीं हैं। जन्म-जरा-मरण-रोगादि दुःखों से मुक्ति पानी हो तो मोक्ष (सर्व कर्म मुक्ति) की साधना करनी चाहिए।

बन्धुओं ! आपके संसार-व्यवहार में भी कोई वस्तु प्राप्त करनी हो तो वह वस्तु जहाँ मिलती है, वहीं से ही प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं। तब फिर मोक्ष प्राप्त करने के लिए तो कितना पुरुषार्थ करना चाहिए ? महान पुरुषों ने कहा - (पहले यह सोचो) "रोग कौन-सा है, और उसके लिए औषध कौन-सा है ?" रोग है - परगृह और औषध है - स्वगृह। तात्पर्य यह है कि परद्रव्य का राग यह रोग है और इसकी दवा है - सत्संग (महान पुरुषों की उपासना), वीतरागवाणी का पान और शास्त्रों का वाचन। पर का संग बीमारी है, इसे मिटाने की दवा है - साधु-साध्वियों, सज्जन पुरुषों का सत्संग, महान आत्माओं की उपासना। आज जीव क्यों दुःखी है ? कर्म की विडम्बना से। कर्म की विडम्बना कहाँ से आई ? पर के संगरूपी रोग से। जीव जगत के विषयों

तुम पर इस संसार की कितनी चोटें लगीं ? फिर भी अभी तक इस संसार से का मन होता है ? गन्ना कोल्हू में पेरा जाता है, अन्त में उसके छिलकों को फेंक जाता है, ऐसी दशा (आज) तुम्हारी हो गई है । फिर भी (अभी तक) संसार व छूटा नहीं । अन्तिम समय तक - संसार का रस नहीं छूटेगा तो चतुर्गतिरूपी में पेरना पड़ेगा । अतः इसे समझकर संसार का रस (आसक्ति) कम करो ।

चातुर्मास में साधु-साध्वीजी शास्त्र (सिद्धान्त) में से किसी एक अधिकार पर व्या वांचते हैं । उसमें से श्रोताजन किसी प्रेरणा का पीयूष प्राप्त करके अपना जीवन उ बनाते हैं । हमें 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का वाचन करना है, मल्लिनाथ भगवान् का अधिकार है । मल्लिनाथ भगवान् की बात तो बाद में आ उससे पूर्व उसकी पूर्वभूमिका का वर्णन होना चाहिए न ? चित्रकार को एक चित्र ब हो तो वह सीधा ही चित्र नहीं खींचता । पहले वह प्लान निश्चित करता है । फिर खींचता है । चित्र का रेखांकन करने के बाद वह निर्णय करता है कि इसमें कैसे रंग जिससे चित्र का सुन्दर उठाव आए ! दीवार पर चित्र बनाना हो तो पहले उस दीवा स्वच्छ-समतल बनानी पड़ती है । किसान को खेत में (अनाज) बीज बोना हो तो वह उस जमीन में कांटे-कंकर आदि निकालकर उसे साफ, समतल और मुलायम ब पड़ती है । प्रतिक्रमण करते समय पहले आत्मारूपी क्षेत्र को शुद्ध करने हेतु क्षेत्र वि करनी पड़ती है । इसी प्रकार सिद्धान्त (शास्त्र) का वाचन व श्रवण करने से पूर्व को विशुद्ध एवं निर्मल (पूर्वाग्रहादि रहित) बना लेना चाहिए । ऐसी स्थिति में वीतराग का श्रवण, मनन और चिन्तन करने से सत्य-मार्ग को समझा-जाना जा सकता 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा गया है -

"सोच्चा जाणाइ कल्लाणं, सोच्चा जाणाइ पावगं ।
उभयंपि जाणाइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥"

- दशवैकालिक सूत्र, अ.-४, गा.

वीतरागवाणी का श्रवण करने से जीव कल्याण के मार्ग को, और पापकारी को जान लेता है । दोनों मार्गों को सुनकर जान लेता है, तत्पश्चात् दोनों में से श्रेयस्कर मार्ग है, उसका सम्यक् आचरण करे ।

बन्धुओं ! तुम स्वयं अनुभव करना ! जब तुम्हारे सिर पर बड़ी आफत के बा मंडरा रहे हों, किसी बड़े आघात का कोई कारण बना हो, उस समय तुमने सुख के साधन माने हैं, वे हीरे, पन्ने, माणिक, मोती, सोना, सम्पत्ति रेडियो, टी. मोटर, पुत्र-परिवार या मित्र कोई भी क्या तुम्हें शान्ति प्रदान कर सकता है ? न उस समय कोई संतपुरुष आकर तुम्हें धर्म के दो शब्द सुनाए तो कैसी अलौकि शान्ति होती है ?

धर्मकथानुयोग के रूप में परिगणित 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' गहराई से समझपू सुना-समझा जाए तो वह मोक्ष का स्थान और धाम (प्राप्त करने में सफल हो सक

चौकीदार की हाजरी में उसे कम्पाउंड में घूमने-फिरने की छूट मिलती है। अगर वह ठीक काम करता रहे तो सरकार उसकी आजीवन कारावास की सजा में कटौती करके अमुक वर्ष के बाद उसे रिहा कर देती है। परन्तु कर्म राजा ने तो जीव को ऐसी जेल की सजा दी है, कि वह एक क्षणभर भी बाहर फिरने नहीं देता। जब जीव मोक्ष में जाता है, तभी कर्म से सर्वथा रहित हो जाता है। रोग किसे होता है ? शरीर हो उसको ही। जिसके कर्म लगे हैं, उसके शरीर है। सिद्ध परमात्मा कर्म से सर्वथा रहित हो गए, इस कारण उनके शरीर नहीं हैं, वे अशरीरी हैं। उनके शरीर नहीं हैं तो रोग भी (किसी प्रकार का) नहीं है। जहाँ शरीर है, वहाँ आधि, व्याधि और उपाधि है।

साधक जीवन में भगवान ने २२ परिषह बताये हैं। उसमें वध नामक एक परिषह भी बताया है। भगवान फरमाते हैं - "हे संत ! संयमी जीवन में कर्मयोग से कदाचित् कोई तुम्हारा वध करनेवाला मिल जाए, तब तू कषाय और राग-द्वेष से युक्त तो नहीं होगा न ?" किसी के यहाँ गौचरी-पानी के लिए जाओ, तब कोई तुम्हारा तिरस्कार भी कर सकता है। तिरस्कार की अपेक्षा वध का परिषह विशेष है। फिर भी २२ परिषहों में वध के परिषह को पहले नंबर में नहीं रखकर सर्वप्रथम क्षुधा परिषह को रखा। (इसके पीछे रहस्य यह है) मासखमण, सोलहभत्त, तप करो या वर्षीतप करो, तो कवलाहार बंद होता है, रोज-आहार तो चालू ही रहता है। जीव माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में ओज-आहार लेता है। वह आहार तो जीव जब इस शरीर को छोड़कर जाता है, तब छोड़ता है। यहाँ से छूटने के बाद जीव तीसरे या चौथे समय में तो (अगली गति में) उत्पन्न हो जाता है और वहाँ आहार करना शुरू कर देता है। भूख मिटाने के लिए जीव प्रयत्न करता आया है। शरीर है, वहाँ भूख-प्यास वगैरह सबकुछ है। जिस आत्मा की दशा देह में रहते हुए भी देहातीत रहती है, उसे परद्रव्य का संग अथवा खानपान वगैरह पुद्गलों का संग, यह सब आत्मा को बीमारी लगती है। उसके हृदय में रात-दिन यह बात खटकती रहती है कि यह बीमारी कैसे घटे, कैसे मिटे ? इस बात की चिंता रहा करती है, इसमें अगर खाने की बात आती है, तो उसे व्यर्थ की झंझट लगती है।

बन्धुओं ! विचार करना - परद्रव्य का संग और राग, ये आत्मा की बीमारी हैं। यह बात एकदम हृदय में नहीं बैठती। परन्तु बुद्धिपूर्वक विचार करना कि ज्ञानियों ने इसे बीमारी क्यों कही है ? उदाहरणार्थ - तुम्हें बुखार आया हो, तब क्या होता है ? शरीर को चैन नहीं पड़ता, खाने-पीने की रुचि नहीं होती; और संसार के कामकाज, व्यापार-धंधा और कमाई वगैरह ठप्प हो जाती है। इसी प्रकार जीव को 'पर' का संग आत्मा की दृष्टि से रोग है, क्योंकि उससे आत्मा के हित के अनेक काम बिगड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ - रात को अपने धंधे के आय-व्यय का हिसाब करना हो, अथवा

सुधर्मास्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी भी बहुत उत्साही, जिज्ञासु एवं विनयवान् थे। इसलिए उनका भी गुणग्राही विचारक आचार्यों ने खूब बखान किया है -

मात-पिता कुल जात निर्मल, रूप अनुप वखाणीए।
देवताने वल्लभ लागे, एहवा श्री जम्बूस्वामी जाणीए ॥

जम्बूस्वामी अत्यन्त रूपवान थे। उनके मात-पिता के दोनों कुल पवित्र थे। उनका रूप देवकुमार जैसा था। देवों को भी प्रिय लगें, ऐसे थे - जम्बूस्वामी। उनमें विनयभाव तो इतना अधिक था कि जब-जब वे सुधर्मास्वामी से प्रश्न पूछते थे, तब-तब विनयपूर्वक वन्दन करके पूछते थे। विनयपूर्वक ग्रहण हुआ ज्ञान जीवन के अन्त तक टिक सकता है। उसके विपरीत गुरु का विनय किये बिना लिया हुआ ज्ञान तात्कालिक याद रहेगा, परन्तु बाद में वह उसे भूल जाएगा। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करना हो तो अभिमान को और कषाय को दूर करके नम्र बनो। डोरे को सुई के नाक में से पार होना हो तो डोरे को पतला बनना पड़ता है। इसीलिए आत्मारूपी डोरे को सम्यक्त्वरूपी सुई में पिरोना हो तो कषायों को पतले (दुर्बल) करने पड़ेंगे।

दो दिनों से अपनी बात चल रही है - **"विषयों का करना वमन, कषायों का करना शमन'** पर। अगर मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करना हो तो विषयों का वमन और कषायों का शमन करना पड़ेगा। कारण यह है कि अनादिकाल से आत्मा का अहित करनेवाला कोई शत्रु हो तो वह कषाय है। शास्त्रों में यत्र-तत्र कषायों की निन्दा की गई है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २३वें अध्ययन में कहा गया है - *"कसाया अग्गिणा वुत्ता।"* अर्थात् - कषायों को अग्नि की उपमा दी गई है। कषाय एक प्रकार से अग्नि है। अग्नि जहाँ उत्पन्न होती है, वह सर्वप्रथम उस स्थान को जला देती है। दिया सलाई जलती है तो सबसे पहले वह स्वयं को जलाती है, बाद में दूसरी वस्तु को जलाती है। इसी प्रकार जिसमें कषाय उत्पन्न होती है, वह पहले अपनी आत्मा का पतन करता है, और आत्मिक गुणों को उसमें जला डालता है। फिर कषाय द्वारा वह दूसरों को भी जलाता है।

कषाय को चाण्डाल की उपमा भी दी गई है। प्राचीनकाल में चाण्डाल जाति सबसे नीच मानी जाती थी। भूल से भी अगर चाण्डाल का स्पर्श हो जाता तो तुरंत स्नान कर लेते थे। इसी प्रकार कषाय भी सबसे नीच (दुर्गुण) है। आत्मा को कषाय का स्पर्श हो जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और (आत्मा के) क्षमा आदि गुण मलिन हो जाते हैं। कहीं-कहीं कषाय को राक्षस की उपमा दी गई है। राक्षस दिखने में भी भयंकर होता है, वह निर्दय और क्रूर होता है। मनुष्यों का भक्षण करता है। इसी प्रकार जब कषाय का उदय होता है, तब आत्मा रौद्ररूप धारण कर लेती है। वह लज्जा, क्षमा आदि गुणों को नष्ट कर देता है तथा सत्य, शील आदि गुणों का भक्षण कर लेता है। अतएव कषायों का त्याग करना आवश्यक है।

वहाँ तक उसके हाथ से किसी का वास्तविक रूप में भला हो, ऐसी आशा रखना असंभव है ।

पापभीरु बने हुए आत्मा को अनीति करते हुए सैकड़ों विचार आएँगे । परन्तु जो इन्द्रियों के मोह में पड़ा है, उसे यह पता नहीं है कि पाप किसलिए करना पड़ता है ? सुन्दर प्रकार के शब्द, रूप, रंग, गन्ध और स्पर्श इन विषयों को प्राप्त करने के लिए ही न ? आँख को सुन्दर देखना अच्छा लगता है, कान को सुन्दर आवाज सुनना है; नाक को सुन्दर गन्ध चाहिए; जीभ को सुन्दर रस चाहिए, और स्पर्शेन्द्रियों को सुन्दर स्पर्श चाहिए । पाप करनेवाला इन पाँचों इन्द्रियों के आधीन (गुलाम) बना हुआ है । सभी इन्द्रियों की पोषक रसनेन्द्रिय है । सभी इन्द्रियों को मजबूत करके बहकानेवाली जीभ है । जीभ खानपान और भक्ष्य-अभक्ष्य के विवेक को भुला देती है ! उन (इन्द्रियों) को सामग्री दे दी तो समझो, वे सब इन्द्रियाँ हैवान बन जाती हैं । ये इन्द्रियाँ जितनी खुल्ली छूटी कि उतनी ही पाप-परायणता अधिक ! सभी इन्द्रियाँ अपनी-अपनी मनोज्ञ (मनपसंद) वस्तुओं पर टूट पड़ने लगीं, वहाँ फिर पाप की भीति नहीं रहती । और जहाँ पाप की भीति नहीं रहती, वहाँ नीति भी नहीं रहती । इन्द्रियाँ जितना मांगे, उतना दे दो तो क्या जीवन सुखरूप बन जाता है ? नहीं ! उदाहरणार्थ - तुम्हें सुन्दर मेवा-मिष्टान्न भोजन में मिले, तो उनका भोजन करके कौन सुख भोग सकता है ? जीभ पर काबू रख सकता है, वही जो व्यक्ति रसनेन्द्रिय पर नियंत्रण खोकर खाए, वह सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर सो नहीं सकता ! क्योंकि उसे घबराहट होती है, तथा गैस जैसे अनेक रोग हो जाते हैं । इन्द्रियों के आधीन बने, कि पाप का भय गया । पाप का भय नहीं रहा (गया) अर्थात् - नीति नहीं रही । नीति के चले जाने का अर्थ हुआ - वह आकृति से मनुष्य रहता है, परन्तु प्रकृति से मानव नहीं रहता । फिर ऐसे व्यक्ति में स्व-पर का, अच्छे-बुरे का, हित-अहित का विचार नष्ट हो जाता है । यह सुविचार नष्ट हो जाने पर जीवन में क्या रहा ? अतः समस्त पापों की जड़ है - इन्द्रियों की आधीनता !

अपनी बात चल रही थी कि भीष्म पितामह ने अपनी भूल तथा स्वयं किये हुए पाप को धर्मराज के समक्ष प्रगट कर दिया । अतः साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका अपने से जो भी भूल हो गई हो, उसे छुपाये नहीं । अपने कृत-पापों को प्रगट करने पर कदाचित् बचन के या मारपीट के प्रहार पड़े तो उन्हें समभाव से सहन करें । अर्जुनमाली प्रतिदिन सात-सात व्यक्तिओं की हत्या करता था, परन्तु सुदर्शन श्रावक का मिलन होने पर भगवान महावीर के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की । फिर उन्होंने भगवान महावीर से कहा - "ओ मेरे तारक प्रभो ! मैंने बहुत पाप किये हैं । मेरे पाप प्रबल हैं । आप मुझे उन पापों से मुक्त कराएँ ।" अर्जुनमाली के आयुष्य का बन्ध पड़ा नहीं था, इसलिए पाप से छुटकारा हो गया । अगर बन्ध पड़ गया होता तो उन

सुधर्मास्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी भी बहुत उत्साही, जिज्ञासु एवं विनयवान् थे। इसलिए उनका भी गुणग्राही विचारक आचार्यों ने खूब बखान किया है -

मात-पिता कुल जात निर्मल, रूप अनुप बखाणीए।
देवताने वल्लभ लागे, एहवा श्री जम्बूस्वामी जाणीए॥

जम्बूस्वामी अत्यन्त रूपवान थे। उनके मात-पिता के दोनों कुल पवित्र थे। उनका रूप देवकुमार जैसा था। देवों को भी प्रिय लगें, ऐसे थे - जम्बूस्वामी। उनमें विनयभाव तो इतना अधिक था कि जब-जब वे सुधर्मास्वामी से प्रश्न पूछते थे, तब-तब विनयपूर्वक वन्दन करके पूछते थे। विनयपूर्वक ग्रहण हुआ ज्ञान जीवन के अन्त तक टिक सकता है। उसके विपरीत गुरु का विनय किये बिना लिया हुआ ज्ञान तात्कालिक याद रहेगा, परन्तु बाद में वह उसे भूल जाएगा। अतः आत्मज्ञान प्राप्त करना हो तो अभिमान को और कषाय को दूर करके नम्र बनो। डोरे को सुई के नाक में से पार होना हो तो डोरे को पतला बनना पड़ता है। इसीलिए आत्मारूपी डोरे को सम्यक्त्वरूपी सुई में पिरोना हो तो कषायों को पतले (दुर्बल) करने पड़ेंगे।

दो दिनों से अपनी बात चल रही है - **"विषयों का करना वमन, कषायों का करना शमन'** पर। अगर मोक्ष का शाश्वत सुख प्राप्त करना हो तो विषयों का वमन और कषायों का शमन करना पड़ेगा। कारण यह है कि अनादिकाल से आत्मा का अहित करनेवाला कोई शत्रु हो तो वह कषाय है। शास्त्रों में यत्र-तत्र कषायों की निन्दा की गई है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २३वें अध्ययन में कहा गया है - *"कसाया अग्गिणो वुत्ता।"* अर्थात् - कषायों को अग्नि की उपमा दी गई है। कषाय एक प्रकार से अग्नि है। अग्नि जहाँ उत्पन्न होती है, वह सर्वप्रथम उस स्थान को जला देती है। दिया सलाई जलती है तो सबसे पहले वह स्वयं को जलाती है, बाद में दूसरी वस्तु को जलाती है। इसी प्रकार जिसमें कषाय उत्पन्न होती है, वह पहले अपनी आत्मा का पतन करता है, और आत्मिक गुणों को उसमें जला डालता है। फिर कषाय द्वारा वह दूसरों को भी जलाता है।

कषाय को चाण्डाल की उपमा भी दी गई है। प्राचीनकाल में चाण्डाल जाति सबसे नीच मानी जाती थी। भूल से भी अगर चाण्डाल का स्पर्श हो जाता तो तुरंत स्नान कर लेते थे। इसी प्रकार कषाय भी सबसे नीच (दुर्गुण) है। आत्मा को कषाय का स्पर्श हो जाए तो वह अपवित्र हो जाती है और (आत्मा के) क्षमा आदि गुण मलिन हो जाते हैं। कहीं-कहीं कषाय को राक्षस की उपमा दी गई है। राक्षस दिखने में भी भयंकर होता है, वह निर्दय और क्रूर होता है। मनुष्यों का भक्षण करता है। इसी प्रकार जब कषाय का उदय होता है, तब आत्मा रौद्ररूप धारण कर लेती है। वह लज्जा, क्षमा आदि गुणों को नष्ट कर देता है तथा सत्य, शील आदि गुणों का भक्षण कर लेता है। अतएव कषायों का त्याग करना आवश्यक है।

दांत कुरेदने की सली भी गृहस्थ की आज्ञा लेकर ले सकता है। यदि वह गृहस्थ की आज्ञा के बिना कोई चीज लेता है तो तीसरे महाव्रत का भंग होता है। अतः साधु को अपने महाव्रतों के प्रति और श्रावकों को अपने अणुव्रतादि बारह व्रतों के प्रति वफादार रहना चाहिए।

कल हमने यह चर्चा की थी कि त्रिकालज्ञानी बनने के लिए विषयों का वमन करना चाहिए (विषयोनुं करवुं वमन) फिर कषायों का शमन करना चाहिए (कषायोनुं करवुं शमन)। चाहे जितने वर्षों तक महान तप करो, पर अगर विषयों का वमन और कषायों का शमन नहीं किया, वहाँ तक चाहिए जितना लाभ नहीं मिलता। क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार कषाय हैं। आज जगत में मान (अहंकार) और लोभ के कारण बड़ी-बड़ी लड़ाईयाँ और झगड़े होते हैं। मान एक प्रकार का मीठा जहर है। जैसे सोमल कड़वा जहर है, वैसे धोया हुआ घी मीठा जहर है। समझिए - जैसे चोर और सर्प एक भव बिगाड़ते हैं, परन्तु कषाय तो हमारे प्रत्येक भव को बिगाड़ते हैं। तप तो खूब करें, किन्तु कषाय और ममत्व नहीं छोड़े तो आत्मा विशुद्ध कहाँ से हो सकती है। आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए **विषयों का वमन, कषायों का शमन** और **इन्द्रियों का दमन** करना है। इन्द्रियों का दमन करने हेतु चातुर्मास के पवित्र दिवस आ रहे हैं।

इस चातुर्मास में हमें कौन-सा अधिकार व्याख्यान में वांचना (कहना) है, यह आपको बताती हूँ। 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' का आठवाँ अध्ययन महाबलकुमार का है। वे महाबलकुमार मल्लिनाथ (तीर्थंकर) भगवान् किस प्रकार बने ? उस तथ्य के कथन का मंगल प्रारम्भ कल से होगा। सूत्र का वाचन करने से तथा उसके अर्थ और परमार्थ का श्रवण करने से अनन्त कर्मों की निर्जरा होती है। सिद्धान्त का एक शब्द (रुचिपूर्वक) सुनें और उसे जीवन में अपनाएँ तो बेड़ापार हो जाता है। कर्म की ग्रन्थियाँ *(गांठें) टूट जाती हैं। भगवान् महावीर ने चण्डकौशिक सर्पराज को 'बुज्झ-बुज्झ'* यह एक ही शब्द कहा था; इतने से शब्द को (रुचिपूर्वक सुनने से) वह सर्प मिटकर देव बन गया। अतः भगवद्वाणी सुनने के लिए यथासमय पहुँचने का प्रयास करना। कल से भगवती मल्लि का अधिकार चालू होगा। कुछ जीवों को आत्मतत्त्व की बातें अच्छी लगती हैं, कुछ जीवों को धर्मकथा रुचिकर लगती है। जैसे दरवाजे में कील और कब्जा दोनों की जरूरत होती है, वैसे ही दृष्टान्त ताले हैं, तत्त्व द्वार है, इस दृष्टि से आत्मतत्त्व की बातें अत्यन्त सुन्दर उदाहरणों और तर्कों द्वारा समझाई जाएँ तो जीव आसानी से समझ सकता है। अतः कल से इस अधिकार का मंगल प्रारम्भ होगा। आप सभी वीरवाणी का भलीभांति लाभ लेंगे।

अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा। आज इतना ही।

प्रत्याख्यान भी करा देते हैं। परन्तु अगर रोगी का आयुष्य बलवान् हो तो असातावेदनीय कर्म मन्द हो जाता है और वह बच जाता है। उस वक्त वह व्यक्ति कहता है - "साहब ! धर्म के प्रताप से बच गया।" उस समय संत कहते हैं - "भाई ! तुम धर्म के प्रताप से बच गए, तो अब क्या करोगे ?" तब वह कहता है - "अब व्यापार जोर-शोर से करना है।" (हम कहते हैं) "भला ! धर्म के प्रताप से बच गया तो अब काम-भोग तो छोड़ दे।" मृत्यु के मुख से बच कर धर्म करना नहीं है , परन्तु पत्नी, पुत्र, परिवार के लिए धन कमाना है। परन्तु विचार करना, यह (दुर्वृत्ति) तुम्हें परलोक में तुम्हारे प्राणों को शरण देनेवाली नहीं होगी।

जम्बूस्वामी ने विचार किया कि 'अगर मैं इस मकान के जरा-सा और नजदीक होता, तो मैं इसके छज्जे के नीचे दब जाता। मैं अपने आयुष्य बल के कारण बच पाया हूँ, तो अब (जल्दी से) कुछ (धर्माचरण) कर लूं।' काल का किसे पता है ? अतः सुधर्मास्वामी के पास जाकर आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा अंगीकार कर लूं। विषयों का वमन, तथा कषायों का शमन करके इन्द्रियों का दमन करना है। इन्द्रियों का दमन किए बिना तीन काल में छुटकारा नहीं है। जम्बूस्वामी (यह सोचकर) पीछे मुड़े। सुधर्मास्वामी के पास जाकर उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले ली। वे मात-पिता की (इस विषय में) सलाह लेने नहीं गये। उन्होंने यह विचार किया कि 'इन्द्रियों का दमन करके मुझे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है। इसमें मात-पिता की आज्ञा की क्या जरूरत है ?' आठ-आठ कन्याओं के साथ जिनकी सगाई हुई है, विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं। ऐसे समय से ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञाबद्ध होकर इन्द्रिय-विजेता बन गए।

बन्धुओं ! ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "इन्द्रियों का दमन करो।" जिसकी एक इन्द्रिय स्वच्छन्द हो जाती है, वह (इन्द्रिय विषयासक्त होकर) मरण-शरण हो जाता है। फिर जिसकी पांचों इन्द्रियाँ स्वच्छन्द हो जाए, उसकी क्या दशा (दुर्दशा) होती है ? अगर आत्मा का अहित न करना हो तो इन्द्रियों का दमन करो और आत्मसाधना सफल करने हेतु कटिबद्ध बनो। जम्बूस्वामी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर घर आए। जिन्हें अपने पुत्र की धूमधाम से शादी करने की उमंग है, उन माता-पिता को इस बात का पता लगते ही अत्यन्त दुःख हुआ। आँखों से अश्रुधारा बहाते हुए माता-पिता ने उन्हें खूब समझाया, परन्तु जम्बूस्वामी अपने प्रतिज्ञा पर अडिग रहे। जम्बूस्वामी के माता-पिता ने अपने सम्बन्धियों को इस बात की जानकारी दी। इस पर कन्याओं ने कहा - "जो पति का मार्ग वही हमारा मार्ग !" अन्त में विवाह हुआ। विवाह के दूसरे ही दिन जम्बूस्वामी संयम पथ पर चल पड़े। ऐसे स्वर्णपात्र-समान जम्बूस्वामी थे। ऐसे जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से क्या पूछेंगे ? ये सुन्दर भाव आठवें अध्ययन में आएँगे। उन्हें समझने के लिए विषयों का वमन, कषायों का शमन और इन्द्रियों का दमन करके अन्तर को पवित्र बनाना पड़ेगा। सभी भाव यथावसर कहे जाएँगे।

इन्द्रियों पर कंट्रोल (नियंत्रण) रखता है, वह (अपनी इन्द्रियों को उन्मार्ग से बचाकर) महान् सुख प्राप्त करता है और परम पवित्र रहता है ।

श्रीसुधर्मास्वामी से उनके सुशिष्य श्रीजम्बूस्वामी विनयपूर्वक पूछते हैं - "भंते ! 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में भगवान ने किन भावों का निरूपण किया है ?" यहाँ वीतरागवाणी का अमृतमय भोजन परोसनेवाले भी उत्तम थे, और उसे (रुचिपूर्वक) झेलने (लेने) वाले भी उत्तम थे । ये दोनों महान् पुरुष थे । सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही टिक सकता है । वह मिट्टी के, पीतल के, स्टील के या चांदी के बर्तन में टिक नहीं सकता । प्रथम तो, सिंहनी का दूध प्राप्त होना भी मुश्किल है, अगर मिल भी जाए तो ऐसे-वैसे पात्र में वह टिकता नहीं । इसी प्रकार, बन्धुओं ! अव्वल तो, वीतरागवाणी का श्रवण मिलना मुश्किल है । कदाचित् तुम्हें ऐसा लगता होगा कि हमें तो प्रतिदिन वीतरागवाणी सुनने को मिलती है । फिर कहाँ मुश्किल है ? उपाश्रय जाएँ तो हमें महासतीजी वीतरागवाणी सुनाती हैं । परन्तु ध्यान रखो, तुम्हारे प्रबल पुण्य का उदय हो, तभी यह वाणी सुनने को मिलती है । मान लो, घर से तुम व्याख्यान सुनने के लिए चल पड़े, अभी उपाश्रय के जीने पर पैर रखा कि पीछे से पुत्र दौड़ता-दौड़ता तुमको बुलाने आया - "पिताजी ! जल्दी घर चलिए । माताजी गिर पड़ी हैं, उनको बहुत चोट लगी है ।" ऐसी स्थिति में तुम्हें तुरंत घर जाना पड़ता है न? कदाचित् तुम व्याख्यान सुनने के लिए आकर बैठे और नींद का झोंका आ जाए तो एक शब्द भी सुना जा सकता है क्या ? इसीलिए मैं कहती हूँ कि वीतरागवाणी के श्रवण का योग मिलना कठिन है । कदाचित् वाणी सुनने का मिल भी जाए, तो उसका अन्तर में उतरना या टिकना, जीव की पात्रता-योग्यता पर निर्भर है ।

बन्धुओं ! आपको करोड़ों की सम्पत्ति मिल गई, परन्तु यदि आपके जीवन में धर्म (धर्माचरण) नहीं है, वीतरागवाणी अन्तर में उतरी नहीं है, तो उस जीवन की कोई कीमत (सार्थकता) नहीं है । कोई व्यक्ति धनवान है, पर धर्मवान नहीं है, तो वह जीव दया का पात्र है । प्रचुर सम्पत्ति होने पर भी (विदेशों में) आत्महत्या के किस्से बहुत बनते हैं, ऐसा क्यों ? इसके पीछे कारण है - धर्म का अभाव ! वहाँ सम्पत्ति है, पर संत नहीं हैं, धन है, पर धर्म नहीं है । जबकि भारत में ऐसे किस्से वहाँ की अपेक्षा बहुत ही कम बनते हैं, क्योंकि यहाँ (की जनता में) धर्म है और धर्म को समझानेवाले संत भी हैं । जैन-धर्मगुरु कितने निःस्वार्थी होते हैं । अन्य धर्मो के धर्मगुरुओं में तो कोई न कोई स्वार्थ होता है, जबकि जैनधर्म के संतों को कोई स्वार्थ नहीं होता । उनके दिल में एक मात्र यही भावना होती है कि भव्यजीव सत्य को (सद्धर्म को). समझे (प्राप्त करे); इसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के प्रति ममत्व भाव हट जाए । जब संत के सत्संग का सच्चा रंग लगेगा, तब तुम्हें करोड़ों की सम्पत्ति भी धूल जैसी लगेगी । ऐसा सत्य समझाने की शक्ति वीतरागवाणी में है ।

भगवान् ने जिनका त्याग किया, हम उन वस्तुओं पर राग करते हैं और उ
मांगते हैं। किन्तु मांगना ही हो तो रत्नत्रयी मांगना योग्य है।

हमारे त्रिकालज्ञ वीतराग भगवन्तों ने भूतकाल में अनन्त आत्माओं को रत्न
का पथ बताया है, वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी प्रमुख बीस विहर
तीर्थंकर करोड़ों मानवों को रत्नत्रयी प्राप्त करने का मार्ग बता रहे हैं। (अतः) तीर्थ
भगवन्तों से रत्नत्रयी की मांग की जा सकती है। पर आपलोग क्या मांग रहे
आप तो गाड़ी (कार), बाड़ी (बंगला) और लाड़ी (सुन्दरी) की और धन, ये सब मां
हो न ? बोलो तो सही ! परन्तु इन सबको पाकर आत्मा (पापकर्मों से) हलका
होता। पास में धन न हो तो तुम्हें संसार-सुख में कमी मालूम होती है। परन्तु ज्ञा
पुरुष कहते हैं – "हे आत्मन् ! रत्नत्रयी के बिना तुम्हें (मानवजीवन) में बहुत कमी प्र
होनी चाहिए।" पास में चाहे जितना वैभव हो, परन्तु रत्नत्रयी न हो तो सम्यग्
आत्मा उसे तिनके के तुल्य समझती है। रत्नत्रयी के बिना सम्यक्त्वी आत्मा को जी
बेकार लगता है। रत्नत्रयी की आराधना भगवान् द्वारा शास्त्र-कथित विधि से नि
होनी चाहिए। रत्नत्रयी की रक्षा के लिए काम-क्रोधादि शत्रुओं से सदा सावधान र
पड़ता है। जिनेन्द्र जिनेश्वर प्रभु के वचनों के प्रति पूर्ण वफादार रहकर शास्त्र-स्वाध्
में रत रहना चाहिए। पाँच समिति और तीन गुप्ति को जीवन के साथ ओतप्रोत
लेना चाहिए। इसके लिए विकथा, वासना, विकार और विलास को जीवन से वि
कर देना पड़ेगा। सद्गुरु के चरणों में जीवन समर्पित कर देना पड़ेगा। कष्टों से
भी घबराना नहीं चाहिए।

देवानुप्रियों ! कष्ट कर्म का कांटा निकालने का श्रेष्ठ साधन है समझपूर्वक सम
से कष्टों को सहन करने से कर्मों की निर्जरा होती है। कष्ट के बिना कर्मनिर्जरा की क
नहीं होती। ज्ञानीपुरुष कहते हैं – **"कष्ट से घबराए वह कंगाल है, आये हुए
को कुमकुम का तिलक करके जो स्वागत करता है, वह कष्टमय संसार को श
पार कर जाता है। कष्ट से कसा हुआ आत्मा कर्मसत्ता से टक्कर ले सक
है।"** जब कर्म का उदय हो, तब समभाव से सहन करने से जो कर्मनिर्जरा का ल
होता है, वह दूसरी साधना में नहीं होता। कर्मनिर्जरा के बड़े साधन के प्रति घबरा
लाना, साधक की सबसे बड़ी खामी है। पास में पैसा हो, सुख की सामग्री हो, त
मोक्ष की आराधना हो सकती है, यह मान्यता गलत है। मोक्ष की आराधना सुख में
दुःख में दोनों स्थितियों में हो सकती है। दुनिया जिसे खराब मानती है, उसे मोक्ष
पथिक सम्यक्त्वी आत्मा अच्छा मानती है। वस्तुतः मोक्ष का मुमुक्षु लोकोत्तर दृष्टिवा
होता है। उसका दृष्टिबिन्दु दुनिया के दृष्टिबिन्दु से पृथक् ही होता है।

जिन्होंने रत्नत्रयी की आराधना की है, वे जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी के पास पहुँचे
तीन बार सविनय वन्दना करके विवेकपूर्वक मधुर भाषा में बोले – "भगवन् ! आप ज्ञ

जाता, फिर भी आपका इन पर इतना ममत्व है, यदि (परलोक में) साथ में ले जाया जा सकता तो कितना ममत्व होता ? मुझे तो उन लोगों पर दया आती है, यदि (संग्रह किये हुए) धन पर ममत्व रह जाएगा, तो मरकर विषधर बनकर (कुंडली मारकर) उस पर बैठ जाएँगे क्या ? तीन - चार पीढ़ी उपभोग करे, इतना इकट्ठा कर लिया, फिर भी जीवन में सन्तोष दिखाई नहीं देता । सुबह से शाम तक उनकी दौड़ पुद्गल के पीछे होती है । अरे ! बहुत से लोग तो यों कहते हैं - "महासतीजी ! क्या करें, इस संसार में जरा भी सुख नहीं है ।" हम कहते हैं कि (गृहस्थी में) सुख न हो तो आ जाओ हमारे घर (हमारी लाइन) में (हँसाहँस) । हम तुम्हारे जैसे संकुचित वृत्तिवाले नहीं हैं, उदार हैं । तुम तो अपने सगे भाई को भी बिजनेस (व्यवसाय के सम्बन्ध में) बताये नहीं, जबकि हम खुले दिल से कहते हैं कि (सच्चा) सुख चाहिए तो आ जाओ (यहाँ) । (सच्चा) सुख तो वीतराग-मार्ग में है । कहा भी है -

"नवि सुही देवता देवलोए, नवि सुही पुढवी पईराया ।
नवि सुही सेठि - सेणावई य, एगंत सुही मुणी वीतरागी ।।"

देवलोक में प्रचुर ऋद्धि के स्वामी देव भी सुखी नहीं हैं, पृथ्वीपति राजा हो, सेनापति हो, या अरबपति, करोड़पति, लखपति धनिक हो या श्रीमान् सेठ हो, परन्तु कोई भी सुखी नहीं है । इस दुःखभरे संसार में अगर कोई सुखी है तो वीतरागी संत सच्चे माने में सुखी हैं । यह वेषधारी साधु की बात नहीं है, किन्तु वीतराग-प्रभु की आज्ञानुसार चलते हैं, वैसे साधु की यह बात है । जिसे संसार विष के कटोरे जैसा लगता है, वह जरा-सा निमित्त मिलते ही इसे (इस दुःखबहुल संसार को) छोड़कर चल पड़ते हैं संयम पथ पर ।

गौतम बुद्ध जब गृहस्थ जीवन में थे, तब की बात है । एक बार बहुत से मनुष्य एक मुर्दे को लेकर रोते-रोते जा रहे थे । किसी के जवान पुत्र की मृत्यु होने से उसके सगे-सम्बन्धी करुण विलाप कर रहे थे, साथ ही छाती-माथा भी कूट रहे थे । यह देखकर सिद्धार्थकुमार (बुद्ध का गृहस्थ जीवन का नाम) ने पूछा - "ये सब इतने क्यों रो रहे हैं ?" इस पर उसके आदमी कहते हैं - "जवान पुत्र मर गया है, इस कारण ये सब रो रहे हैं ?" यह सुनकर सिद्धार्थकुमार ने पूछा - "मर गया, इसका क्या मतलब ?" "शरीर में से जीव (आत्मा) निकल गया, इसे ही कहते हैं - मर गया ।" इस पर कुमार ने पूछा - "क्या मैं भी इस तरह मर जाऊँगा ?" उन्होंने कहा - "हाँ, जो जन्मा है, उसे अवश्य ही मरना है । हमें और तुम्हें, सबको एक दिन इस तरह मर जाना है ।" यह सुनकर कुमार बोला - "अहो ! ऐसा दुःख है (मृत्यु का) ? तब तो मुझे इस (जन्म-मरणादि) दुखों से परिपूर्ण संसार में नहीं रहना है ।" एक मनुष्य के शव को ले जाते देखकर, उन्हें संसार की असारता का भान हुआ और वे इसे छोड़कर साधु बन गए ।

बन्धुओं ! मृत्यु की एक घटना प्रत्यक्ष देखकर सिद्धार्थकुमार संसार से विरक्त होकर त्यागी साधु बन गए । मैं तुम्हें पूछती हूँ कि तुमने ऐसे कितने किस्से देखे ?

सामनेवाला व्यक्ति भी बुद्धिशाली है, उसके सामने अगर कपट करूँगा, तो पकड़ा जाऊँगा। इसलिए वहाँ सीधे और सरल बन जाते हो। बाकी अंतर से कपट नहीं गया!

देवानुप्रियों! लोभ को भी पतला करना पड़ेगा। लक्ष्मी तीन प्रकार से चली जाती है - **'दानं भोगो नाशः'** लक्ष्मी का दान में उपयोग होता है, भोग में उपयोग होता है, इन दो में उपयोग न हो तो अन्त में उसका नाश होता है। तुमने किसी के यहाँ दस हजार रुपये ब्याज पर रखे। उसका व्यापार जोर-शोर से चल रहा है, वहाँ तक तो वह ब्याज बराबर देता रहता है। परन्तु उसका व्यापार ठंडा पड़ गया, और उसकी नियत बिगड़ी तो तुम्हारी रकम पचा जाए, उस समय क्या होगा? तुमने अपने हाथ से (अच्छे कार्य में) रुपये खर्चे नहीं तो उसने वे रुपये हजम कर लिये न? तुमने मिल के शेयर खरीदे, राज्य सरकार की लोनें ली, उनमें पाँच हजार के पाँच सौ हो गए, तो कितना दुःख होता है? वही रकम तुमने दान में दी होती तो कितना लाभ होता? उतना धन तुमने अपने भोगोपभोग में खर्चा होता तो पापकर्म बांधते। यह तो तुमने दान में या भोग में स्वयं (धन का) उपयोग नहीं किया, (इसके बदले) दूसरे ने उस रकम का उपयोग किया, पर तुम्हारा धन तो गया न? दान और भोग के बाद नाश का नंबर है। अगर धन का (किसी तरह) नाश न हो तो, उतना धन कहाँ समाता? दुनिया में जितने व्यवसायिक प्रतिष्ठान हैं, उन प्रतिष्ठानों के धन का नाश न होता तो आज उनके पास करोड़ों-अरबों रुपये होते। बहुत-सी दफा मनुष्य डबल ब्याज के लोभ में लाखों रुपये उधार देता है। परन्तु अन्त में ब्याज के लोभ में मूल धन डूब जाता है। यह जानकर अनेक डबल ब्याज मिले तो भी (चतुर मनुष्य) ब्याज पर धन किसी में नहीं रखते। अतः ब्याज का लोभ जीता न? मुझे ब्याज नहीं चाहिए। क्यों? (मूल) धन का नाश होने के भय से? धन नाश के भय से लोभ जीता, परन्तु इससे लोभ पतला पड़ गया नहीं कहलाता। उससे मनुष्यपन नहीं मिलता। हमने कषाय पर विजय प्राप्त किया हो, प्रकृति के भद्र बनकर, माया-कपटरहित सरल बने हों, दान देकर अहंकार न किया हो इत्यादि चार बोलों से जो मनुष्यपन मिला है, उस मनुष्यपन में, समझ (विवेक) पूर्वक कषाय पतले करें, तो समझना कि अपनी मूलपूंजी सुरक्षित रखी है। तुम अपने पुत्र को लाख-दो लाख रुपये देते हो, उससे वह तुम्हारा उपकार नहीं मानता, अपितु अपना हक मानता है। परन्तु जो इतना धन दान में दो तो लाभ होता है। जिसे देते ही, वह तुम्हारा उपकार मानता है। तुम्हारी लक्ष्मी का उपयोग अच्छे क्षेत्र में हो और लज्जा आदि मध्यम गुण जीवन में विकसित हो तो मनुष्यभव मिलता है। इन गुणों का विकास करके मानव से महामानव और महामानव से परमात्मा बना जा सकता है।

देवानुप्रियों! जिसे मानवभव प्राप्त करके परमात्मा बनने की लगन लगी है, वैसे जम्बूस्वामी श्री सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते हैं -

है ।) धर्मकथानुयोग जीव ने अनेक बार वांचा (पढ़ा) और सुना है, परन्तु उसमें समागत महापुरुषों का कीर्तन, अन्तःकरण से उनके गुणों का बहुमान, अनुमोदन और उन गुणों की प्राप्ति की उत्कण्ठा होनी चाहिए, वह हुई नहीं । उनकी भक्ति, सम्मान और उनके चरित्र के प्रति बहुमान से मोक्ष की प्राप्ति होती है । धर्मकथानुयोग भगवद्वाणी है । कतिपय जीव धर्मकथा से भी महान् लाभ प्राप्त कर लेते हैं । भगवान् की वाणी तो अर्थरूप होती है । कहा है -

"अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गुंत्थति गणहरा निउणा ।।"

तीर्थकर अर्थरूप में सिद्धान्त का कथन करते हैं, निपुण गणधर भगवन्त उस अर्थरूप में कथित वाणी को गूंथते हैं और फिर आचार्य भगवन्तों ने उन शास्त्रों को लिपिबद्ध किया (लिखा) है । भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर थे । उनमें प्रथम गणधर थे - इन्द्रभूति गौतमस्वामी । फिर पाटानुपाट पंचम गणधर हुए सुधर्मा-स्वामी । तुम्हारे मन में प्रश्न उठेगा कि प्रथम गणधर गौतमस्वामी थे, तो उसके बाद सीधे पंचम गणधर सुधर्मास्वामी का नाम क्यों आया ? सुधर्मास्वामी से पूर्व चार गणधर हो गए । उनमें गौतमस्वामी को केवलज्ञान हुआ और वे तुरंत मोक्ष पधारे । सिद्धान्तानुसार तीर्थंकर हों, गणधर हों या सामान्य केवली हों, उनके केवलज्ञान में कोई अन्तर नहीं होता । तीर्थकर भगवान् की सेवा में ६४ इन्द्र रहते हैं । वे चौतीस अतिशय और पैंतीस प्रकार की सत्यवाणी के अतिशय से अलंकृत होते हैं । बाकी केवलज्ञान तो सब में एक सरीखा होता है । गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, अतः वे उस पाट पर बैठकर यों नहीं कह सकते कि भगवान् जो कह गए हैं, उसीको मैं कहता हूँ । क्योंकि उनका ज्ञान भगवान् के सदृश था । गौतमस्वामी के बाद के तीन गणधर तो भगवान् की मौजूदगी में ही मोक्ष पधार गए थे, और सुधर्मास्वामी छद्मस्थ थे । इस कारण गौतमस्वामी के पाट पर वे शीघ्र आ गए । वे पाट पर बैठकर अपने शिष्य जम्बूस्वामी को कहते थे - "हे आयुष्यन् जम्बू ! भगवान् ऐसा कह गए हैं, मैंने भगवान् के श्रीमुख से इस प्रकार सुना है ।" वे सुधर्मास्वामी कैसे थे ? इस विषय में कहा है -

चौदह पूरवधार कहिये, ज्ञान चार वखाणीए ।
जिन नहीं पण जिन सरीखा, एहवा सुधर्मास्वामी जाणीए ॥

सुधर्मास्वामी छद्मस्थ जरूर थे, परन्तु उनका श्रुतज्ञान इतना अधिक विशुद्ध और विशाल था कि जिन (वीतराग अर्हन्त) न होते हुए भी उन्हें जिन सदृश कहा गया है । ऐसे श्री सुधर्मास्वामी को जम्बूस्वामी विनयपूर्वक वन्दन करके जब प्रश्न पूछते थे, तो वे उसका समाधान करते थे । प्रश्न चर्चा करने का आनन्द तभी आता है, जब एक-एक प्रश्न पर खूब बारीकी से विश्लेषण एवं छानबीन हो, तभी श्रोता का ठीक समाधान होता है, उसकी समझ में आ जाता है । ऐसी छान-बीन करते समय श्रोता में भी ज्ञान होना चाहिए ।

बेड़ा पार हो जाएगा। तुम चन्द्रमा को तो देखते हो न ? चन्द्रमा के जीवन में होनेवाले उतार और चढ़ाव से बोध ग्रहण करो। चन्द्रमा के जीवन में कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष, यों दो पक्ष आते हैं। शुक्लपक्ष में प्रकाश होता है और कृष्णपक्ष में होता है - अन्धकार। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह जीवन में दिन-प्रतिदिन गुणों की वृद्धि करते जाओ और कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह दुर्गुणों को दिन-प्रतिदिन दूर करते रहो तो तुम्हारा जीवन उज्ज्वल और तेजस्वी बन जाएगा।

गुण का कलर (रंग) श्वेत है और अवगुण का कलर काला है। वीतरागी संतों के वस्त्र का कलर भी श्वेत होता है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के श्वेतवस्त्र होते थे। बीच के २२ तीर्थंकरों के संत भले ही रंगीन वस्त्र पहनते थे, पर उनके परिणामों में उज्ज्वलता थी, सरलता थी। सरल हृदयवाले मानव श्वेत कलर के समान गुण को ग्रहण करते हैं और अवगुण को छोड़ देते हैं। अपनी आत्मा स्वयं तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में गया, किन्तु वहाँ भी उसने अवगुण ग्रहण किये और अपना पकड़ा हुआ पूंछड़ा छोड़ा नहीं, इसी कारण चतुर्गतिक संसार में भटका है।

इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य रहे हुए हैं। एक हैं - पक्षी जैसे और दूसरे हैं - बंदर जैसे। वृक्ष की एक डाली पर बंदर बैठा है और दूसरी डाली पर पक्षी बैठा है। जब खूब जोर का तूफान आता है, वृक्ष की डाली टूटने के सिरे पर होती है, तब पक्षी समयसूचकता का उपयोग करके वृक्ष की डाली पर से उड़ जाता है, जबकि बंदर गिर जाने के भय से उस डाली से चिपट जाता है, जोर से पकड़े रखता है। अतः वृक्ष के गिरने के साथ ही बंदर उसके नीचे दबकर मर जाता है और पक्षी खतरा आया जानकर (पहले ही) अपना स्थान बदल कर सुरक्षित स्थान का आश्रय ले लेता है। इस प्रकार जिन मनुष्यों की प्रकृति बंदर जैसी है, वे मेरे धन-वैभव और भोग चले जाएँगे, इस भय से उन्हें छोड़ने के समय अधिकाधिक चिपटते जाते हैं और जो मनुष्य पक्षी की प्रकृति जैसे हैं, वे देर-सबेर एक दिन यह सब छोड़ता ही है, मैं इन्हें नहीं छोड़ूं, तो ये मुझे छोड़कर चले जायेंगे, यों समझकर स्वयमेव भोगों का त्याग कर देते हैं और (आत्म) धर्म की शरण स्वीकार कर लेते हैं।

जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी से पूछते हैं - "भगवान् ने किन भावों का प्रकाशन किया है ? उन भावों को मुझे बताइए (समझाइए)।" शिष्य विनयवान और जिज्ञासु हो तो गुरु के दिल में उसे ज्ञान देने का उत्साह होता है, सहजभाव से गुरु के मानस में भी नये-नये भावों की स्फुरण होती है। इसी प्रकार श्रोताजन जिसासु हों तो वक्ता के दिल में भी वीतरागवाणी सुनाते समय नये-नये भाव जागृत होते हैं। तुम्हें अपना पुत्र अच्छा और विनयी हो तो आनन्द होता है न ? पुत्र विदेश (फोरेन) रहता हो और बार-बार पत्र लिखता हो कि 'पिताजी ! मैं आनन्द में हूँ। मेरी चिन्ता मत करना।' तब पिताजी पत्र लिखें कि - 'बेटा ! तुझे विदेश गये पाँच वर्ष हो गए। अच्छे घराने

मैं मेरी बहनों से कहती हूँ, तुम्हें अपने पुण्योदय से गुणवती बहू मिली हो, वह (घर की) सारी व्यवस्था संभालती हो, तो तुम अपने सासुपन का मोह छोड़ देना । तुम सासु हो तो सासु ही रहनेवाली हो । मान लो, तुम उपाश्रय में आई और पीछे से बहू तुमसे पूछे बिना बाजार से कोई नई चीज खरीद लाई, तो तुम उसे यों मत कहना कि 'मैं सासु बेठी हूँ, तुम मुझे तो कुछ पूछती ही नहीं ।' परन्तु मान कषाय को छोड़कर यही समझ लेना कि मैं संसार के पाप से छूटी ।

हाँ तो, हमारी जम्बूस्वामी की बात चल रही थी । जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी के गुणसम्पन्न और ज्ञानी शिष्य थे । परन्तु जम्बूस्वामी कौन थे ? यह हमें जानना चाहिए । एक बार जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी की देशना (उपदेश) सुनने गए थे । उनकी देशना सुनकर जम्बूस्वामी का अन्तर वैराग्य रंग से रंजित हो गया । घर जाकर मात-पिता की आज्ञा प्राप्त करके उनके दीक्षा लेने के भाव थे । वे देशना सुनकर घर की ओर जा रहे थे कि मार्ग में अचानक एक मकान का छज्जा गिर पड़ा । जम्बूस्वामी उससे सिर्फ दो वीता दूर रह गये । अगर वे दो बीता नजदीक होते तो उसके नीचे दब जाते ।

देवानुप्रियों ! तुम (प्राय:) कहा करते हो कि निश्चिंतता होने पर धर्मध्यान करेंगे । परन्तु एक घड़ी के बाद क्या होगा ? उसका (ज्ञानी के सिवाय) किसी को पता है क्या ?

"कोने खबर छे कालनी, आ देह तणी दीवालनी ।"

यह देहरूपी दीवार कब टूट पड़ेगी, इसका क्या विश्वास ? हमलोग अपनी आँखों से क्या प्रत्यक्ष नहीं देखते कि किसी व्यक्ति का ट्रेन में, किसी का प्लेन में, किसी का आग में कब काल आ धमकता है ? कोई मनुष्य (नदी-तलाब आदि में) तिरने जाता है और वहीं डूब जाता है । अचानक (मकान में) आग लग जाती है और मनुष्य जल जाता है । अचानक कोई मकान टूट पड़ता है और मनुष्य उसमें दब जाते हैं । कल के समाचार पत्र में था कि विलेपार्ले से बड़ौदा जाते समय हसमुखभाई के घर के पति-पत्नी, नौकर आदि ६ व्यक्ति एक्सीडेंट में खत्म हो गए । दूसरे ६ व्यक्तियों को गंभीर चोट लगी है । विलेपार्ले से निकले थे, तब क्या इन्हें मालूम था कि हम वापस (जीवित) नहीं आएँगे ? ऐसी घटनाएँ पढ़कर भी विचार करो कि इस जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है । कल क्या होगा ? इसका कोई पता नहीं है । अत: हो सके जितनी धर्माराधना कर लो । आज बहुत से लोगों को हार्ट-एटेक हो जाता है । उस समय ऐसी गंभीर परिस्थिति हो जाती है, मानो अब रोगी बचेगा नहीं । उस समय उसके घर के लोग दौड़कर हमारे पास हमें बुलाने के लिए आते हैं । कहते हैं - "महासतीजी ! आप जल्दी मांगलिक सुनाने के लिए पधारें ।" हम कहते हैं - "बहुत सख्त धूप है । जमीन पर पैर नहीं रखा जा सकता । अत: दो घंटे बाद हम आएँ तो चलेगा ?" तब कहेंगे - "नहीं, महासतीजी शीघ्र पधारो ।" यों सख्त धूप में हमें ले जाते हैं । वहाँ पहुँचकर हम मांगलिक सुनाते हैं । मर्यादित व्रत-

गाऊ का देहमान और दो पल्योपम का आयुष्य, तथैव तीसरे आरे में जुगलियों को १ गाऊ का देहमान और एक पल्योपम का आयुष्य होता है। तुम्हारे पास अरबों की सम्पत्ति हो, पर वह जुगलियों की सम्पत्ति के आगे कुछ नहीं है। ऐसे महान् वैभव का वे उपभोग करते हैं। उन्हें तुम्हारी तरह कमाने की कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें प्रतिदिन आहार करने की इच्छा नहीं होती। पहले आरे में अट्ठमभक्ते (तीन दिन से), दूसरे आरे में छट्ठभक्ते (दो दिन से) और तीसरे आरे में चउत्थभक्ते (एक दिन के अनन्तर) आहार की इच्छा होती है, तब वे आहार करते हैं। उन्हें रसोई बनानी नहीं पड़ती। दश प्रकार के कल्पवृक्ष उन्हें मनोवांछित सुख (फल) देते हैं। इन तीनों आरों में (मनुष्यों के) वज्रऋषभनाराच संघयण होता है। उनका शरीर इतना मजबूत (सुदृढ़) होता है कि उनके ऊपर से हाथी चला जाए तो भी हड्डी नहीं टूटती। अभी तो जरा-सा पैर लपसा कि हड्डी टूट जाती है। जुगलियों के दांतों की बत्तीसी भी बहुत सुन्दर और सुदृढ़ होती है। उन्हें वृद्धावस्था या बीमारी नहीं आती। जुगलिया जोड़े से (युगलरूप में) जन्म लेते हैं और एक को छींक और दूसरे को उबासी आती है, वे एक साथ ही मर जाते हैं। युगलियों के एक-दूसरे का वियोग नहीं होता। मृत्यु के ६ महीने बाकी रहते हैं, तब वे परभव (आगामी जन्म) का आयुष्य बांध लेते हैं। उस समय जुगलिया दम्पत्ति एक जोड़े को जन्म देते हैं। पहले आरे में वे युगल शिशु की ४९ दिन तक, दूसरे आरे में ६४ दिन तक और तीसरे आरे में ७९ दिन तक प्रतिपालन करते हैं। भाई-बहन दोनों साथ-साथ ही जन्म लेते हैं और वे ही पति-पत्नी बन जाते हैं। उन्हें एक दूसरे के साथ किसी प्रकार का वैर-विरोध, ईर्ष्या या द्वेष नहीं होते। वे अपने शुभ परिणामों से मरकर देवलोक में जाते हैं।

बन्धुओं! युगलियों की इतनी पुण्यवाणी होते हुए भी वे वहाँ से मोक्ष नहीं जा सकते। उसका क्या कारण है, समझे? (कारण यह है कि) युगलियों में धर्म (धर्माचरण) नहीं है। वहाँ अकर्मभूमि है। यहाँ इस समय (कर्मभूमि होते हुए भी) तीर्थंकर भगवन्त नहीं हैं, किन्तु उनकी वाणी मौजूद है। वीतरागवाणी खारे समुद्र में भी पानी के छोटे कुंए के समान है। (वीतरागवाणी के) श्रवण और (उसपर) श्रद्धा करके चाहे इस समय मनुष्य सीधा (यहाँ से) मोक्ष में न जा सके, किन्तु एकभवावतारी तो जरूर बन सकता है। (इस काल के) पहले के तीन और जुगलियों के जानना। तीसरे आरे के ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहे, तब भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) का जन्म हुआ। उनका ५०० धनुष्य का देहमान और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था। उनकी माता मरुदेवी का आयुष्य करोड़पूर्व का था। ऋषभदेव भगवान् के १०० पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। भगवान् के सभी सौ पुत्रों ने और दोनों पुत्रियों ने दीक्षा ली और उसी भव में वे मोक्ष में गए। भगवान् तो भगवान् थे, पर उनका सारा परिवार भी कितना उज्ज्वल और आदर्श था?

भगवान् ऋषभदेव के दीक्षा लेने ... मरुदेवी ... लिए बहुत ही चिन्ता करती रहती थीं। वे (अपने पौत्र)

मैं मेरी बहनों से कहती हूँ, तुम्हें अपने पुण्योदय से गुणवती बहू मिली हो, वह (घर की) सारी व्यवस्था संभालती हो, तो तुम अपने सासुपन का मोह छोड़ देना । तुम सासु हो तो सासु ही रहनेवाली हो । मान लो, तुम उपाश्रय में आई और पीछे से बहू तुमसे पूछे बिना बाजार से कोई नई चीज खरीद लाई, तो तुम उसे यों मत कहना कि 'मैं सासु बेठी हूँ, तुम मुझे तो कुछ पूछती ही नहीं ।' परन्तु मान कषाय को छोड़कर यही समझ लेना कि मैं संसार के पाप से छूटी ।

हाँ तो, हमारी जम्बूस्वामी की बात चल रही थी । जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी के गुणसम्पन्न और ज्ञानी शिष्य थे । परन्तु जम्बूस्वामी कौन थे ? यह हमें जानना चाहिए । एक वार जम्बूस्वामी सुधर्मास्वामी की देशना (उपदेश) सुनने गए थे । उनकी देशना सुनकर जम्बूस्वामी का अन्तर वैराग्य रंग से रंजित हो गया । घर जाकर मात-पिता की आज्ञा प्राप्त करके उनके दीक्षा लेने के भाव थे । वे देशना सुनकर घर की ओर जा रहे थे कि मार्ग में अचानक एक मकान का छज्जा गिर पड़ा । जम्बूस्वामी उससे सिर्फ दो बीता दूर रह गये । अगर वे दो बीता नजदीक होते तो उसके नीचे दव जाते ।

देवानुप्रियों ! तुम (प्रायः) कहा करते हो कि निश्चिंतता होने पर धर्मध्यान करेंगे । परन्तु एक घड़ी के वाद क्या होगा ? उसका (ज्ञानी के सिवाय) किसी को पता है क्या ?

"कोने खबर छे कालनी, आ देह तणी दीवालनी ।"

यह देहरूपी दीवार कव टूट पड़ेगी, इसका क्या विश्वास ? हमलोग अपनी आँखों से क्या प्रत्यक्ष नहीं देखते कि किसी व्यक्ति का ट्रेन में, किसी का प्लेन में, किसी का आग में कव काल आ धमकता है ? कोई मनुष्य (नदी-तलाब आदि में) तिरने जाता है और वहीं डूब जाता है । अचानक (मकान में) आग लग जाती है और मनुष्य जल जाता है । अचानक कोई मकान टूट पड़ता है और मनुष्य उसमें दव जाते हैं । कल के समाचार पत्र में था कि विलेपार्ले से वड़ौदा जाते समय हसमुखभाई के घर के पति-पत्नी, नौकर आदि ६ व्यक्ति एक्सीडेंट में खत्म हो गए । दूसरे ६ व्यक्तियों को गंभीर चोट लगी है । विलेपार्ले से निकले थे, तव क्या इन्हें मालूम था कि हम वापस (जीवित) नहीं आएँगे ? ऐसी घटनाएँ पढ़कर भी विचार करो कि इस जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है । कल क्या होगा ? इसका कोई पता नहीं है । अतः हो सके जितनी धर्माराधना कर लो । आज बहुत से लोगों को हार्ट-एटेक हो जाता है । उस समय ऐसी गंभीर परिस्थिति हो जाती है, मानो अब रोगी बचेगा नहीं । उस समय उसके घर के लोग दौड़कर हमारे पास हमें बुलाने के लिए आते हैं । कहते हैं - "महासतीजी ! आप जल्दी मांगलिक सुनाने के लिए पधारें ।" हम कहते हैं - "बहुत सख्त धूप है । जमीन पर पैर नहीं रखा जा सकता । अतः दो घंटे वाद हम आएँ तो चलेगा ?" तव कहेंगे - "नहीं, महासतीजी शीघ्र पधारो ।" यों सख्त धूप में हमें ले जाते हैं । वहाँ पहुँचकर हम मांगलिक सुनाते हैं । मर्यादित व्रत-

गाऊ का देहमान और दो पल्योपम का आयुष्य, तथैव तीसरे आरे में जुगलियों को १ गाऊ का देहमान और एक पल्योपम का आयुष्य होता है। तुम्हारे पास अरबों की सम्पत्ति हो, पर वह जुगलियों की सम्पत्ति के आगे कुछ नहीं है। ऐसे महान् वैभव का वे उपभोग करते हैं। उन्हें तुम्हारी तरह कमाने की कोई चिन्ता नहीं है। उन्हें प्रतिदिन आहार करने की इच्छा नहीं होती। पहले आरे में अट्ठमभक्ते (तीन दिन से), दूसरे आरे में छट्ठभक्ते (दो दिन से) और तीसरे आरे में चउत्थभक्ते (एक दिन के अनन्तर) आहार की इच्छा होती है, तब वे आहार करते हैं। उन्हें रसोई बनानी नहीं पड़ती। दश प्रकार के कल्पवृक्ष उन्हें मनोवांछित सुख (फल) देते हैं। इन तीनों आरों में (मनुष्यों के) वज्रऋषभनाराच संघयण होता है। उनका शरीर इतना मजबूत (सुदृढ़) होता है कि उनके ऊपर से हाथी चला जाए तो भी हड्डी नहीं टूटती। अभी तो जरा-सा पैर लपसा कि हड्डी टूट जाती है। जुगलियों के दांतों की बत्तीसी भी बहुत सुन्दर और सुदृढ़ होती है। उन्हें वृद्धावस्था या बीमारी नहीं आती। जुगलिया जोड़े से (युगलरूप में) जन्म लेते हैं और एक को छींक और दूसरे को उबासी आती है, वे एक साथ ही मर जाते हैं। युगलियों के एक-दूसरे का वियोग नहीं होता। मृत्यु के ६ महीने बाकी रहते हैं, तब वे परभव (आगामी जन्म) का आयुष्य बांध लेते हैं। उस समय जुगलिया दम्पत्ति एक जोड़े को जन्म देते हैं। पहले आरे में वे युगल शिशु की ४९ दिन तक, दूसरे आरे में ६४ दिन तक और तीसरे आरे में ७९ दिन तक प्रतिपालन करते हैं। भाई-बहन दोनों साथ-साथ ही जन्म लेते हैं और वे ही पति-पत्नी बन जाते हैं। उन्हें एक दूसरे के साथ किसी प्रकार का वैर-विरोध, ईर्ष्या या द्वेष नहीं होते। वे अपने शुभ परिणामों से मरकर देवलोक में जाते हैं।

बन्धुओं ! युगलियों की इतनी पुण्यवाणी होते हुए भी वे वहाँ से मोक्ष नहीं जा सकते। उसका क्या कारण है, समझे ? (कारण यह है कि) युगलियों में धर्म (धर्माचरण) नहीं है। वहाँ अकर्मभूमि है। यहाँ इस समय (कर्मभूमि होते हुए भी) तीर्थंकर भगवन्त नहीं हैं, किन्तु उनकी वाणी मौजूद है। वीतरागवाणी खारे समुद्र में भी पानी के छोटे कुंए के समान है। (वीतरागवाणी के) श्रवण और (उसपर) श्रद्धा करके चाहे इस समय मनुष्य सीधा (यहाँ से) मोक्ष में न जा सके, किन्तु एकभवावतारी तो जरूर बन सकता है। (इस काल के) पहले के तीन और जुगलियों के जानना। तीसरे आरे के ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहे, तब भगवान् ऋषभदेव (आदिनाथ) का जन्म हुआ। उनका ५०० धनुष्य का देहमान और ८४ लाख पूर्व का आयुष्य था। उनकी माता मरुदेवी का आयुष्य करोड़पूर्व का था। ऋषभदेव भगवान् के १०० पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। भगवान् के सभी सौ पुत्रों ने और दोनों पुत्रियों ने दीक्षा ली और उसी भव में वे मोक्ष में गए। भगवान् तो भगवान् थे, पर उनका सारा परिवार भी कितना उज्ज्वल और आदर्श था ?

भगवान् ऋषभदेव के दीक्षा लेने के बाद मरुदेवी माता उनके लिए बहुत ही चिन्ता करती रहती थीं। वे (अपने पौत्र) भरत को उपालम्भ देती हुई कहती थीं –

व्याख्यान - ४

आषाढ़ सुदी १२, गुरुवार | ता. ८-७-७६

जीवन की सार्थकता : रत्नत्रयी की आराधना से

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

इस विषमकाल में विरल मार्ग बतानेवाले, जगत की विरल विभूति वीर भगवान् और वीतराग-वाटिका में विचरण करानेवाले सद्गुरुदेवों को वन्दन-नमस्कार करती हूँ। भगवान् ने जगत के जीवों को उपदेश देते हुए कहा है - ''हे भव्यजीवों ! अनन्त पुण्योदय से जीव मानव भवरूपी रत्नद्वीप में आया है । प्रबल पुण्योदय से आत्म-साधना करने हेतु उत्तम सामग्री भी मिल गई है । इस मानवभवरूपी रत्नद्वीप पाकर रत्नत्रयी (सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय) का शाश्वत धन का संग्रह कर लेना है । जिसे रत्नत्रयी का शाश्वत धन मिल गया, समझ लो उसका द्रव्य और भाव-दारिद्र्य दूर हो गया । रत्नत्रयी अमूल्य और अपूर्व चिन्तामणि है ।

देवानुप्रियों ! तुम किस धन को प्राप्त करने के लिए रात-दिन धमाल कर रहे हो, शाश्वत धन के लिए या अशाश्वत के लिए ? शाश्वत धन प्राप्त करोगे तो शाश्वत सुख मिलेगा और नाशवान् धन प्राप्त करोगे तो नाशवान् सुख मिलेगा । अब विचार करना कि तुम्हें कौन-सा धन प्राप्त करना है ? अनादिकाल से अर्थ और काम की वृत्तियों ने आत्मा पर अड्डा जमाया है । उन (अनिष्ट वृत्तियों को) को जिनवाणी श्रवण से हटाकर आत्मा को परगृह से स्वगृह में लाना है । मोह के घर में से महावीर के (मोक्ष के) घर में लाना है । जो सदैव रत्नत्रयी में रमणता करता है, वह शिव-सुन्दरी (मुक्ति) के साथ रमणता करता है । रत्नत्रयी का अर्थ क्या है ? यह तो तुम जानते हो न ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - इन तीन तत्त्वों को रत्नत्रयी कहा जाता है।

तुम एकाग्रचित होकर भगवान् से जब प्रार्थना करो, तब उनसे तुम्हें कुछ मांगने का मन हो, तो रत्नत्रयी की मांग करना और कुछ न मांगना । क्योंकि जिसके पास जो पदार्थ होता है, वही मिलता है । (सामान्य स्थूल दृष्टिवाला लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं ।-

देवाधिदेव ! तमे मोक्ष केरा दानी, अमे मांगनारा करीए नादानी ।
पारसनी पासे अमे पथराओ मागीए ।
तमे जेनो त्याग कर्यो, ए ज अमे मांगीए ।।

में मोक्ष जा सकता है, किन्तु पाँचवें आरे में जन्म हुआ व्यक्ति मोक्ष नहीं जा सकता। गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी, ये सब चौथे आरे में जन्म लिये हुए थे और पाँचवें आरे में मोक्ष गये हैं । हम चाहे जितना पुरुषार्थ करें, किन्तु यहाँ से मोक्ष में नहीं जा सकते । किन्तु एकभवावतारी होकर महाविदेहक्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जा सकते हैं । महाविदेहक्षेत्र में सदैव तीर्थंकर का योग मिलता है । वहाँ सदा चौथे आरे का समय बरतता रहता है । इसलिए वहाँ से मोक्ष में जाया जा सकता है । यहाँ कोई सुखी मनुष्य हो तो उसे देखकर कह देते हैं कि यह चौथे आरे का जीव है। फिर भले ही वह सिगारेट पीता हो, गुटका खाता हो, शराब की बोतल गटगटाता हो । (यह एक भ्रान्ति है) । चौथे आरे का धन के साथ कोई निस्बत नहीं है, अपितु धर्म (आत्म-धर्म) के साथ सम्बन्ध है । अतः इस मनुष्यभव में ऐसी आराधना कर लो कि एक-भवावतारी होकर मोक्ष में जा सको । इस चातुर्मास के पवित्र दिवसों में दान, शील, तप और भाव की आराधना-साधना करो, रत्नत्रयी का साधना करो । फिर ऐसा अवसर नहीं मिलेगा ।

अब सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को 'उस काल और उस समय' की बात कह रहे हैं । आगे क्या कहेंगे ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ५

आषाढ़ सुदी १३, शुक्रवार — ता. ९-७-७६

धर्म ढूंढो निज चेतन में

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शास्त्रकार भगवन्त फरमा गये हैं कि "हे भव्यजीवों ! आत्मा को कर्मबन्ध से मुक्त बनाकर शाश्वत सुख का स्वामी बनाने के लिए धर्माचरण करना आवश्यक है । धर्म कोई बाह्य वस्तु नहीं है, परन्तु वह (धर्म) आत्मा के स्वामित्व की वस्तु है । किन्तु जो मनुष्य धर्म को नहीं समझता, वह कस्तूरी मृग की तरह भटका करता है। कस्तूरी का मृग की नाभि (डूंटी) में कस्तूरी होती है, श्वास द्वारा उसकी सुगन्ध नाक में आती है । उस सुगन्ध को वह कस्तूरी की सुगन्ध के रूप में सच्ची समझता हैं । ऐसा समझने के बाद कस्तूरी कहाँ है ? यह ढूंढने निकलता है । वह छहों दिशाओं में घूमता है, और वापस जहाँ था, वहाँ आ जाता है; क्योंकि अपनी नाभि (डूंटी) में कस्तूरी है, ऐसा ज्ञान कस्तूरी का मृग को स्वयं नहीं होने से, बेचारा बाहर ही बाहर सुगन्ध लेने को दौड़ता

के भण्डार हैं। मेरी आपश्री से ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा है।'' देखिए, श्री जम्बूस्वामी को ज्ञान प्राप्त करने की कैसी तीव्र जिज्ञासा जागी है ? जबतक जीव को योग्यता नहीं होती, तबतक आत्मगुण की प्राप्ति नहीं होती । आँवे में पकाये बिना कच्चे घड़े में पानी भरा जाएगा तो वह तुरंत फूट जाएगा । क्योंकि उसमें पानी टिकाये रखने यानी भरे जाने की योग्यता नहीं है। वैसे ही कच्चे घड़े की तरह योग्यता-रहित मानव को यदि ज्ञान दिया जाएगा तो उसमें टिक नहीं सकेगा । जगत् में विद्वान् वक्ता तो बहुत हैं, पर यदि वे ज्ञान के अनुसार आचरण नहीं करते, इन्द्रियों का निग्रह नहीं करते, तो वे सच्चे विद्वान् नहीं हैं। भगवान् की आज्ञा के अनुसार जिनका आचरण है, वे ही सच्चे ज्ञानी हैं। ऐसे सच्चे ज्ञानी के पास जाने से कल्याण होता है । केवल वाणी के वक्तृत्व से लोकरंजन करने स्वयं तो तिर नहीं सकते, फिर दूसरों को तारने की बात तो बहुत दूर है । कोई आत्मा यों माने कि मैं व्याख्यान देकर लोकरंजन कर दूं तो मेरी वाहवाही हो जाएगी । परन्तु भगवान् कहते हैं - ''लोकरंजन तो तूने अनेकबार किया, परन्तु उससे तेरा या दूसरों का कल्याण नहीं हो सकेगा ।'' तेरी वाहवाही की हवा हवा बनकर उड़ जाएगी । संत की भावना एकमात्र यही होना चाहिए कि मैं श्रावक-श्राविकाओं को वीतराग-शासन के रसिक बनाऊँ और जल्दी स्व-पर-कल्याण हो वैसा करूँ ।

तुम्हें कोई बीमारी हो जाए तब होस्पिटल में जाते हो । उस होस्पिटल में शरीर की बीमारियाँ दूर होती हैं, जबकि इस वीतराग शासन की होस्पिटल में आत्मा की बीमारी - जन्म-जरा-मृत्यु के रोग-समूल नष्ट किये जाते हैं । होस्पिटल में रोग का निदान करनेवाले डोक्टर होशियार होने चाहिए । अगर डोक्टर गँवार हो तो बीमार का रोग नहीं मिटता । किसी को दस्त लगते हों और किसी को कब्ज हो तो दोनों बीमारों को एक ही दवा दे । रोगी जल्दी खत्म हो जाता है । जिसको जो रोग है, वैसे दवा दी जाए और उससे रोग मिट जाए तो (समझना) वह सच्चा डोक्टर है। वैसे ही भगवान् के संतरूपी डोक्टर के पास अलग-अलग किस्म के मानव आते हैं । किसको किस प्रकार से समझाया जाए, जिससे उसके हृदय में धर्म का स्थापन हो । उसके मस्तिष्क में उतरे, इस प्रकार से धर्म समझाया जाए तो स्व-पर का कल्याण हो ।

जम्बूस्वामी एक ही बार सुधर्मास्वामी की देशना सुनकर वैराग्य रंग में रंग गए । उनका वैराग्य कैसा था ? (उस वैराग्य के प्रभाव से) जम्बूस्वामी सहित ५२७ व्यक्तियों ने (एक साथ) दीक्षा ग्रहण की । स्वयं ने दीक्षा ग्रहण की, उसके साथ अपनी ८ पत्नियों, ८ कन्याओं के माता-पिता तथा अपने माता-पिता एवं रात्रि को अपने घर में चोरी करने हेतु आए हुए प्रभव आदि ५०० चोरों को वैराग्य रंग में रंगा । इन सबने जम्बूस्वामी के साथ दीक्षा ली । कैसी होगी यह वैराग्य की झलक ? घाटकोपर में ५ भाईयों की दीक्षा होती है, तब वजुभाई की दौड़धूप का कोई पार नहीं रहा । यहाँ तो एक साथ ५२७ दीक्षाएँ हुई, कैसा भव्य होगा वह दृश्य ! जो व्यक्ति धन

जे पूर्वे कर्यां कर्मों ते, आ भवे उदयमां आव्यां छे !
ज्यां बावळिया वाव्या'ता, एने कांटा उगवा लाग्या छे... एने कांटा (२)
अंगे - अंगे भोंकाया छे पोताना आज पराया छे,
आ बधी करमनी माया छे !
पाप करेलां प्रगटे ज्यारे, त्यारे रोवुं शा माटे... जे वाव्युं ते...

अज्ञान-अवस्था में कर्म तो बंध चुके, पर अब वीतराग-शासन मिला, वीतरागवाणी सुनने को मिली, उसे सुनकर स्वरूप में स्थिरता करो। कर्म प्रत्येक प्राणी के उदय में आते हैं, परन्तु उसे भोगते समय समझ में अन्तर होता है।

भले होय ज्ञानी के अज्ञानी जन, कर्मरहित न कोई।
ज्ञानी वेदे धैर्यथी अज्ञानी वेदे रोई ॥

राजा हो या रंक, साधु हो या गृहस्थ, प्रत्येक जीव के कर्म उदय में आता है। परन्तु ज्ञानी प्रतिक्षण यह विचार करता है कि तेरे द्वारा बांधे हुए कर्म तेरे उदय में आए हैं, उन्हें भोगने में इतना अधिक शोक क्यों करता है ? समभाव से सह लेगा तो ये (कर्म) फल देकर चले जाएँगे। तीर्थंकर भगवान् को भी कर्म ने नहीं छोड़ा। प्रभु महावीर को संगमदेव ने कैसे-कैसे उपसर्ग दिये ? हम कहते हैं कि संगम ने भगवान् को कष्ट दिये। परन्तु अन्तर्दृष्टि से विचार करें तो जरूर समझ में आ जाएगा कि संगम को भगवान को कष्ट देने की बुद्धि कब हुई ? भगवान् के द्वारा पूर्वबद्ध कर्म थे, तभी न ? भगवान् गोचरी जाते, तब संगम सुज्झते आहार को असुज्झता कर डालता; भगवान् विहार करते, तब जहाँ कम रेती होती, वहाँ (उस रास्ते पर) घुटने-घुटने तक रेती के ढेर बना देता, जिनपर चलने में पैर न उठें। फिर भी भगवान् ने ऐसा विचार नहीं किया कि संगम ! तू यों क्यों करता है ? उन्होंने तो एक ही विचार किया कि मेरे द्वारा पूर्वकृत कर्मों को मैं भोग रहा हूँ। कर्म का कर्ज चुकता हो रहा है। मैं प्रसन्न मुख से कर्म का कर्ज चुका दूं, ऐसा विचार वे करते थे।

कर्मबन्ध तोड़ने का अमूल्य अवसर : बन्धुओं ! हममें शक्ति है, वहाँ तक कर्म का कर्ज चुका देना है। इस मानवभव में जो कर्ज चुकाया जा सकता है, वह दूसरे किसी भव में नहीं चुकाया जा सकता। इसका खास तौर से ध्यान रखना। देखो, मैं एक दृष्टान्त देकर समझाती हूँ। जैसे किसी सेठ का प्रतिष्ठान जोर-शोर से चल रहा हो, उस समय कोई ऋणदाता (साहूकार) दस हजार रुपये मांगने आए तो वह तुरंत दे सकता है। परन्तु यदि वह प्रतिष्ठान कमजोर हो जाए उस वक्त साहूकार (लेनदार) रुपये लेने आए तो क्या होगा ? कई बार माल होते हुए भी तख्ती बदलनी पड़ती है। पाँच लाख का हीरा पास में पड़ा है, परन्तु उसे खरीदनेवाला ग्राहक मिलना चाहिए न ? ग्राहक हो और मिल्कियत बराबर हो, उस समय लेनदार (साहूकार) रकम लेने आए तो उसे निपटाना आसान होता है। परन्तु अगर इससे विपरीत बात हो तो दिवाला निकालना पड़ता है न ? तुम विचार

"जइणं भंते ! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं, सत्तमस्स णायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, अट्ठमस्सणं भंते के अट्ठे पण्णते ?"

"भगवन् ! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने 'ज्ञाता सूत्र' के सातवें अध्ययन में पूर्वोक्त रूप से अर्थ का प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! उन्होंने आठवें अध्ययन में क्या अर्थ (भाव) प्ररूपित किया है ? भगवान् ने उसके क्या गूढ रहस्य फरमाये हैं ? उसके भाव मुझे जानने हैं ।"

जम्बूस्वामी को (भगवत प्रतिपादित भावों को) जानने की कितनी तीव्र तमन्ना है ? अगर ग्रहण करनेवाला पात्र सुयोग्य हो तो देनेवाला नहीं थकता । काली मिट्टी पर एक इंच पानी पड़े तो भी वह उसे चूस लेती है, जबकि पत्थर पर पाँच इंच पानी पड़े तो भी वह ऊपर-ऊपर से बह जाता है । एक बूंद पानी भी उसके अंदर नहीं उतरता । अगर अपना हृदय काली मिट्टी जैसा बन जाएगा, तो वीतरागवाणी के थोड़े-से वचन अंतर में उतर जायेंगे । उसके प्रति रुचि जगेगी और श्रद्धा पैदा होगी तो वह मोक्ष जाने योग्य बन जाएगा ।

इस दुनिया में उज्ज्वल की कीमत है, काले की नहीं । एक रूपक द्वारा समझाती हूँ - एक बार हीरे और कोयले का परस्पर संवाद हुआ । कोयला रोने लगा, तब हीरे ने कहा - "भाई ! तू क्यों रो रहा है ?" तब कोयला रोता-रोता बोला - "भाई ! मैं और तू हम दोनों एक ही माता की संतान हैं । हम दोनों पृथ्वी के पेट से उत्पन्न हुए, फिर भी तुम इतने अधिक उज्ज्वल हो, तुम्हारा बहुत सम्मान होता है और तुम्हारा मूल्य भी बहुत है । मेरे और तुम्हारे वर्ण, मूल्य और तेज में जमीन-आसमान जितना अंतर है । तुम्हें महिलाएँ कान के कर्णफूल में, हार में और अंगूठी में जड़ती हैं । तिजोरी में सुरक्षित रखती हैं । जबकि मुझे तो कोई छूना भी नहीं चाहता । कदाचित् कोई मुझे छू ले, तो मानो उसकी माँ मर गई हो, एवं अस्पृश्य (हाथ में) आ गया हो, वैसे जान कर साबुन से हाथ धो डालता है । मुझे एक बोरे में भरकर एक तरफ पटक देते हैं, और सिगड़ी में डालकर जलाते हैं, मुझे लालसूर्ख बना देते हैं, मुझे मार डालते हैं ।" यों कहकर कोयला खूब रोने लगा, तब हीरे ने कहा - "भाई ! रो मत ! मेरी बात सुन । स्थान और माता एक होने से क्या होता है ? योग्यता तो अपनी-अपनी होती है । तूने जिन अणुओं में निस्तेजता और कालिमा ग्रहण की, जबकि मैंने उन्हीं अणुओं में से उज्ज्वलता और तेजस्विता प्राप्त की, इसी कारण से तुझे जलाया जाता है और मुझे (विविध अंगों में) धारण किया (पहना) जाता है ।" बन्धुओं ! बोलो, तुम्हें हीरे जैसा बनना है या कोयले जैसा ? यदि तुम्हें हीरे जैसा बनना हो तो कोई (तुम्हारे बारे में) चाहे जितनी बातें करे, कोई निन्दा करें, तो उसमें पड़ना नहीं । परन्तु जहाँ-जहाँ जाओ, जो-जो देखो, उसमें से गुण ग्रहण करना, और अवगुणों को छोड़ देना । यों विचार करना कि गुण मेरे हैं और मेरे से पर हैं । गुणानुराग जीवन में आ जाएगा तो

नहीं है। जैन के जीवन में पद-पद पर ऐसा विचार (ज्ञानदीपक) होना चाहिए। किसी दूसरे के किये हुए कर्मों (फल) को दूसरा कोई जीव नहीं भोगता। कर्म करे कोई और (उसका फल) भोगे कोई दूसरा, अगर ऐसा होता तो कोई भी जीव दुःखी नहीं होता और न नरक-तिर्यंच आदि दुर्गतियों में जाता। तुम प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखते हो कि जो अपराध करता है, उसे ही सजा भोगनी पड़ती है।

किसी मनुष्य ने चोरी की, और वह पकड़ा गया। उसे सजा भोगने के लिए जेल में बंद कर दिया गया। सजा तो चोरी करनेवाला भोगता है। परन्तु (साथ में) उसके माता, पिता और पत्नी आदि सबको दुःख तो होता है न ? परन्तु जो जेल में बंद है, उसका जो दो वर्ष का बेटा है, उसे दुःख नहीं होता, क्योंकि बच्चा छोटा है, और उसे ज्ञान नहीं है, इसी कारण दुःख नहीं होता, परन्तु माँ-बाप को दुःख होता है कि वह हमारा पुत्र है। पत्नी को दुःख होता है कि मेरा पति जेल में है। यह सम्बन्ध लक्ष में रहा, इस कारण दुःख (महसूस) हुआ। अगर यह सगाई का सम्बन्ध नहीं रहा होता तो दुःख नहीं होता। मान लो, तुमने कोई कीमती चीज तुम्हारे मित्र को (उसके किसी काम के लिए) दी, अगर वह चीज उसके पास से खो जाए तो दुःख किसे होगा ? कौन उसकी शोध करेगा ? जिसने उस चीज को अपनी मानी, उसे दुःख होगा, और वही उसकी शोध करेगा। दूसरे को दुःख नहीं होता, और न ही वह उसकी शोध करता है। इस दृष्टि से ज्ञानीपुरुष फरमाते हैं कि "आत्मा में अंधेरा न रखो, चौबीसों घंटे ज्ञानदीपक जलता रखो।" जिन कर्मों (फल) को मैं भोग रहा हूँ, वे मेरे ही किये हुए हैं। ऐसी धारणा सतत बनी रहे तो उसे आर्तध्यान या रौद्रध्यान करने का अवसर ही नहीं आता। ऐसी समझ (ज्ञान) का दीपक (अंतर में) जलता रहे तो आर्त-रौद्रध्यान रूपी चोर अंदर प्रविष्ट नहीं हो सकते। इस ज्ञान का प्रकाश न हो तो आर्त-रौद्रध्यानरूपी चोर आत्मगृह में प्रविष्ट होकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप आदि गुणरूपी माल चुरा ले जाता है। इन कर्मरूपी चोरों से बचना हो तो जिनेश्वर भगवान् के बचन में जो शंका-कांक्षादि दोष लगा रहे हो, उनसे बचो, इन दोषों को दूर करो।

जिन मनुष्यों ने जिनशासन पाया है, जिनेश्वर भगवान् के वचनों पर जिन्हें यथार्थ श्रद्धा है, और तदनुसार आचरण करते हैं, उन्हें दोष नहीं लगता। परन्तु जो जिनशासन की महिमा नहीं समझे, उन्हें सावधान रहने की आवश्यकता है। बहुत-से लोग छोटी-छोटी बातों में सावधान रहते हैं, परन्तु बड़ी बातों में लापरवाह रहते हैं। मान लो, कोई व्यक्ति बड़ी दुकान का मालिक है, दुकान में बहुत ग्राहक आते हैं। माल के ढेर पड़े हैं। ग्राहक कोई चीज उठाकर न ले जाए, इसके लिए बहुत ही सावधानी रखता है। परन्तु उसकी दुकान में बहुत-से मुनीम और नौकर काम करते हैं। उनके प्रति सावधानी न रखी तो ? ग्राहक कदाचित् ले जायेगा तो अधिक नहीं ले जाएगा, परन्तु मुनीमों और नोकरों की नियत बिगड़ी तो बड़ा भारी घोटाला करेंगे। उसकी मार जैसी-तैसी नहीं

की कन्याओं का (तेरे साथ सगाई के लिए) ओफर आ रहा है । अतः तू अब देश में आए तो तेरा विवाह करें ।' इस पर पुत्र लिखता है - 'पिताजी ! आप मुझे बुला रहे हैं, यह बहुत खुशी की बात है । परन्तु मेरे पास टिकट के पैसे नहीं हैं । आप पैसा भेजें तो मैं आऊँ ।' अब बोलो ! पुत्र आए तो आनन्द हो या आनन्द उड़ जाय ? ऐसी स्थिति में (पिता को) चिन्ता होती है कि काफी खर्च करके पुत्र को विदेश भेजा, पर (वहाँ रहकर) कुछ भी कमाया नहीं । ऐसी चिन्ता होती है । परन्तु आपको ५० वर्ष हो गए, फिर भी आत्मा का कुछ भी (हित) नहीं किया । (भविष्य में) मेरा क्या होगा ? इसकी लेशमात्र चिन्ता होती है ? पुत्र बहुत कमाई करके विदेश से आता है, तब तुम्हारा हृदय हर्ष से नाच उठता है । जैसे मेघगर्जना होते ही मोर नाचने लगता है, वैसे ही वीतरागवाणी श्रवण करते हुए तुम्हारा हृदय हर्ष से नाच उठना चाहिए ।

जम्बूस्वामी का हृदय हर्ष से नाच उठता है । गुरु भी ऐसे (गुणवान) और शिष्य भी ऐसे । जम्बूस्वामी ने पूछा - "भगवन् ! आठवें अध्ययन में (भगवान ने) क्या भाव फरमाये हैं ?" इस पर पंचम गणधर सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जम्बूस्वामी से कहते हैं - *"एवं खलु जंबु !..."* - हे आयुष्यमान् जम्बू ! तेरी प्रबल इच्छा है तो सुन ! सुधर्मास्वामी कैसी मधुर मिष्ट भाषा बोले ? एक पिता अपने पुत्र को प्यार से कहे - "बेटा !" तो कैसा प्रेम उमड़ता है ? बहू सासु से कहे - "माँ ! गर्म-गर्म रोटी बना दूं । आप भोजन कर लें और उपाश्रय जांय !" और सासु बहू से कहे - "बहू बेटी !" तो कैसा वात्सल्यभरा शब्द मालूम हो । इस प्रकार धनवान्, निर्धन, मध्यमवर्ग और उच्चवर्ग आदि का प्रत्येक मनुष्य-एक दूसरे के साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करें तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतर जाय ! सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से वात्सल्यभाव से कहते हैं - "हे जम्बू ! भगवान् ने 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में जिन भावों को प्रगट किया है, उन्हें तू एकाग्रचित्र होकर सुन - *'तेणं कालेणं तेणं समएणं'* - अर्थात् - उस काल और उस समय में (प्रश्न होता है-) यहाँ उस काल और उस समय ऐसा क्यों कहा ? काल दो प्रकार का है - एक उत्सर्पिणी काल और दूसरा अवसर्पिणी काल ! उत्सर्पिणी यानी चढ़ता काल और अवसर्पिणी यानी उतरता काल ! इस समय कौन-सा काल चल रहा है ? यह तुम जानते हो न ? इस समय अवसर्पिणी काल चल रहा है । इस अवसर्पिणी काल के उस काल और उस समय की बात है यहाँ । अवसर्पिणी काल के ६ आरे हैं - (१) सुषम-सुषम, (२) सुषम, (३) सुषम-दुःषम, (४) दुःषम-सुषम, (५) दुःषम और (६) दुःषम-दुःषम । इन ६ आरों के भाव शास्त्र में बताये गए हैं ।

पहले तीन आरे जुगलियों (यौगलिकों) के होते हैं । पहले आरे में जुगलियों का ३ गाऊ का देहमान और ३ पल्योपम का आयुष्य है । दूसरे आरे में जुगलियों का २

उस (देव से आनेवाले) जीव को इलेक्ट्रिक सोर्ट (बीजली के करेंट) जैसा लगता है। उसे यों लगता है कि मुझे ऐसा (अशुचिमय) आहार करना है ? जीव सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति बांधता है। जहाँ (जिस गति व योनि में) जाएगा, वहाँ पहले उसे आहार करना अनिवार्य है। साधु के लिए २२ प्रकार के परिषह बताये हैं। उनमे सबसे पहले क्षुधा परिषह है। देव को मानवदेह की इस दुर्गन्धभरी कोटड़ी में आना अच्छा नहीं लगता। संक्षेप में, मेरे कहने का आशय यह है कि अगर बार-बार ऐसे (विभिन्न गतियों-योनियों में) जन्म-मरण नहीं करने हों तो वीतराग-प्रभु की आज्ञा का पालन करो।

हाँ तो, उस मुनीम ने ३० हजार रुपयों का नफा कमाया है। उसके मन में तो यही विचार है कि सेठ मुझे शाबाशी देंगे और खुश होकर बड़ा भारी ईनाम देंगे। उसने सेठ को पत्र लिखकर सारी हकीकत बताई। इस पर सेठ ने उत्तर में इतना ही लिखा कि 'मैं वहाँ आने के बाद सब देखूंगा (सोचूंगा)।' समय पाकर सेठ स्वदेश आए। मुनीम के मन में आनंद का पार नहीं है। सेठ दुकान में आए। उन्होंने मुनीम से कहा - "वे तीस हजार रुपये लाओ !" मुनीम के मन में यह था कि अभी सेठ मेरी पीठ ठोकेंगे और मेरी प्रशंसा करेंगे। सेठ ने ३० हजार रुपये हाथ में लेकर कहा - "मुनीमजी ! ये ले लो ! मैं तुम्हें राजी-खुशी से देता हूँ।" तब मुनीम ने कहा - "सेठजी ! मैंने तो आपके नाम से रुई खरीदी थी। इसमें मेरा कुछ नहीं है। यह सब आपका है।" मुनीम वह रकम नहीं लेता, सेठ जबरन मुनीम को वे ३० हजार रुपये देते हैं। उसके साथ ही एक चिट्ठी लिखकर दे दी - "अब इस फर्म से तुम्हें सदा के लिए रिटायर किया जाता है।" चिट्ठी पढ़ते ही मुनीम को बहुत झटका लगा। उसने सेठ से पूछा - "मेरा क्या गुनाह है कि आप मुझे रिटायर कर रहे हैं ?"

सेठ कहते हैं - "तुम्हारा और कोई गुनाह नहीं है, परन्तु तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया, इसलिए तुम्हें रिटायर किया जाता है।"

आज्ञाभंग करने से जीवन में हुई महाहानि : देवानुप्रियों ! समझ में आया न ? आज्ञा का उल्लंघन करने में कितना नुकसान है ? मुनीम सदा के लिए बेकार हो गया। चाहे जितना लाभ होता हो, फिर भी बुजुर्ग की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना है। कोई साधु यों मानता है की अमुक देश में जाएँ तो वहाँ के लोग धर्म प्राप्त करेंगे, अतः गाड़ी में बैठकर जाएँ तो क्या आपत्ति है ? चाहे जितना लाभ होता हो, पर जहाँ वाहन में बैठने की भगवान् की आज्ञा नहीं है, वहाँ उस आज्ञा का उल्लंघन करके जाने में बड़ा पाप है। लाखों जीव तिर जाते हों, परन्तु भगवान् कहते हैं कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया, इसलिए मेरी फर्म (धर्मतीर्थ) से तू रिटायर है।

अब सुनो, मन-वचन-काया से गुरु के प्रति अर्पित होकर गुरु की आज्ञा का पालन करने से कितना लाभ है ? इस काल में ऐसे गुरु और शिष्य मिलने मुश्किल हैं। गुरु की आज्ञा चाहे जितनी कठोर हो तो भी (विनीत) शिष्य प्रसन्न मुख से उसे शिरोधार्य करता है।

"तुं तो रंगमहलमां मोज करे छे, मारो ऋषभ तो वनमां फरे छे।
कोई लावो (२) तेना समाचार, मरुदेवी माता पूछे क्यां छे मारो लाल ?
आदि जिणंद (२), बतावो भरतराय...., मरुदेवी माता पूछे..."

ऋषभदेव भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपनी नगरी (अयोध्या) में पधारे, तब भरत चक्रवर्ती दादीमाँ (मरुदेवी) को दर्शन कराने ले गए। उन्होंने दूर से ही भगवान् का समवसरण देखा। ऋषभदेव प्रभु के दर्शन किये। माता के अपने पुत्र के प्रति राग (मोह) था, परन्तु भगवान् तो वीतराग थे। वे मरुदेवी माता के समक्ष दृष्टि भी नहीं करते थे। ऐसी स्थिति में माता विचार करने लगीं - 'अहो ! मैं तो ऋषभ, ऋषभ कहकर भरत का उपालम्भ देती हूँ, किन्तु यह (ऋषभ) तो मेरे सामने (नजर उठाकर) भी नहीं देखता। कैसा इसका ठाठबाठ है ?' यों हाथी पर बैठे-बैठे ही माता का (ऋषभदेव पर) रागभाव छूट गया और हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तुम कहते हो न कि मरुदेवी माता को हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया, हमें क्यों नहीं होता ? परन्तु विचार करो, कहाँ तुम और कहाँ वे ? उनकी आराधना कितने भवों की थी। कैसी रत्नकुक्षधारिणी माता थी ? अपने पुत्र और सौ पुत्र सब ने दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष में गए। माता भी मोक्ष में गई। उनके तो सभी १०० पुत्रों ने दीक्षा ले ली, तुम्हारे कितने पुत्र हैं ? बोलो ! (श्रोताओं में से कोई बोला कि मेरे ६ पुत्र हैं) तो बोलो, कितने पुत्रों को दीक्षा देनी है-? बोलते क्यों नहीं ? बोलो-बोलो। (हँसाहँस)। जैनशासन को जयवन्त रखने के लिए संतों की बहुत आवश्यकता है। पुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार भी हो जाए, तो मातापिता उसे संसार में जकड़ने (बांधने) का प्रयत्न करते हैं। संसार की गाड़ी में उसे राजी खुशी से जोतते हैं। परन्तु अगर आप सच्चे (हितैषी) माता-पिता हों तो उसका संसार (जन्म-मरण) कम हो, ऐसे संस्कार दीजिए। आज का बाहर का (भौतिक) ज्ञान खूब दिया जाता है, परन्तु संतान को पास में बिठाकर पाव या आधा घंटा धार्मिक शिक्षण देने का टाइम मा-बाप के पास नहीं है। यदि आप संतानों के हितैषी हों तो आपको चाहिए कि उन्हें चतुर्गतिक संसार में भटकना न पड़े, ऐसे संस्कार दें।

भगवान् ऋषभदेव के १०० पुत्र और ब्राह्मी-सुन्दरी, ये दो पुत्रियाँ, ये सभी मोक्ष में गये। धर्माराधना का वह कैसा स्वर्णिय समय था ! ऋषभदेव भगवान् का शासन पचास लाख क्रोड़ सागर तक चला। उसके पश्चात् दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ प्रभु हुए। उस समय १५ कर्मभूमियों में कुल मिलाकर १७० तीर्थंकर थे। उनमें ९ हजार करोड़ साधु और नौ करोड़ केवली थे। अजितनाथ भगवान् के समय में उत्कृष्ट धर्मकाल प्रवृत्त था। चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभदेव भगवान् तीसरे आरे में हुए, बाकी के २३ तीर्थंकर चौथे आरे में हुए। चौथे आरे में दुःख अधिक और सुख कम था। इस समय पंचम आरा चल रहा है। चौथे आरे में जन्म लिया हुआ व्यक्ति पंचम आरे

जम्बूस्वामी भी ऐसे विनयी शिष्य थे । उन्होंने श्रीसुधर्मास्वामी के चरणों में जीवन समर्पित कर दिया था । ऐसे जम्बूस्वामी को सुधर्मास्वामी कहते हैं -

"हे जम्बू ! उस काल और उस समय में - *"इहेव जंबुदीवे दीवे महाविदेहे वासे मंदर-पव्वयस्य"*- इस जम्बूद्वीप में स्थित महाविदेहक्षेत्र में रहे हुए सुमेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में, निषिध-पर्वत की उत्तर दिशा में, महानदी शीतोदा के दक्षिण में, सुखोत्पादक वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और पश्चिम लवणसमुद्र के पूर्व (दिशा) में *'सलिलावइ नाम विजए पण्णते'* सलिलावती नामक विजय (बताया गया) है ।" अर्थात् - पश्चिम समुद्र में मिलनेवाली महानदी की दक्षिण दिशा में सलिलावती नामक एक विजय-क्षेत्र खंड है । जिसे चक्रवर्ती सम्राट जीतते आए हैं, इस कारण उसका नाम सलिलावती विजय है । उस सलिलावती विजय की कौन-सी राजधानी थी ? और वहाँ का राजा कौन था ? यह बात सुधर्मास्वामी जंबूस्वामी से कहेंगे, उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ६

आषाढ़ सुदी १४, शनिवार | **ता. १०-७-७६**

मानवशरीर को भोगायतन नहीं, योगायतन बनाओ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त उपकारी, शासनपति प्रभु के मुख में से प्रवाहित होती शाश्वत वाणी, जिसका नाम सिद्धान्त है । भगवान की वाणी सुनने से श्रोता के भवरोग और द्रव्यरोग नष्ट हो जाते हैं । तथैव वह मिथ्यात्व के गाढ़ तिमिर को भेदकर सहस्त्ररश्मि (सूर्य) सम (सम्यग्ज्ञान का) प्रकाश फैलाती है । भगवान की वाणी अनन्त भावों के भेद से भरी हुई है । भगवान् फरमाते हैं - "हे मानव ! तुझे यह महामूल्यवान् मानवशरीर महान् पुण्य के उदय से मिला है, उसे तू भोगायतन न बनाकर योगायतन बनाना ।" यह शरीर इन्द्रियविषयों को पुष्ट करने के लिए नहीं, किन्तु इन्द्रिय-विजेता बनने के लिए मिला है । यह जन्म-मरण की श्रृंखला (सांकल) तोड़ने के लिए है । अनन्तकाल से आत्मा भवाटवी में मार्ग भूलकर भटक रहा है । इस प्रकार भ्रमण करते हुए अनन्त पुद्गल-परावर्तनकाल बीत गया । ऐसा मनुष्यजन्म भी अनेक बार पाया, फिर भी भव-भ्रमण क्यों नहीं रुका ? उसका कारण समझ में आता है क्या ? जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया । सम्यक्त्व से रहित क्रिया करने से पुण्यबन्ध होता है, परन्तु कर्मनिर्जरा नहीं होती । सम्यक्त्व पाये बिना की गई क्रिया एक के बिना कोरे शून्य जैसी है । 'भावनाशतक' में भी कहा है -

"तुं तो रंगमहलमां मोज करे छे, मारो ऋषभ तो वनमां फरे छे ।
कोई लावो (२) तेना समाचार, मरुदेवी माता पूछे क्यां छे मारो लाल ?
आदि जिणंद (२), जतावो भरतराय...., मरुदेवी माता पूछे..."

ऋषभदेव भगवान् ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए अपनी नगरी (अयोध्या) में पधारे, तब भरत चक्रवर्ती दादीमाँ (मरुदेवी) को दर्शन कराने ले गए । उन्होंने दूर से ही भगवान् का समवसरण देखा । ऋषभदेव प्रभु के दर्शन किये । माता के अपने पुत्र के प्रति राग (मोह) था, परन्तु भगवान् तो वीतराग थे । वे मरुदेवी माता के समक्ष दृष्टि भी नहीं करते थे । ऐसी स्थिति में माता विचार करने लगीं - 'अहो ! मैं तो ऋषभ, ऋषभ कहकर भरत का उपालम्भ देती हूँ, किन्तु यह (ऋषभ) तो मेरे सामने (नजर उठाकर) भी नहीं देखता । कैसा इसका ठाठबाठ है ?' यों हाथी पर बैठे-बैठे ही माता का (ऋषभदेव पर) रागभाव छूट गया और हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । तुम कहते हो न कि मरुदेवी माता को हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया, हमें क्यों नहीं होता ? परन्तु विचार करो, कहाँ तुम और कहाँ वे ? उनकी आराधना कितने भवों की थी । कैसी रत्नकुक्षधारिणी माता थी ? अपने पुत्र और सौ पुत्र सब ने दीक्षा ग्रहण की और मोक्ष में गए । माता भी मोक्ष में गईं । उनके तो सभी १०० पुत्रों ने दीक्षा ले ली, तुम्हारे कितने पुत्र हैं ? बोलो ! (श्रोताओं में से कोई बोला कि मेरे ६ पुत्र हैं) तो बोलो, कितने पुत्रों को दीक्षा देनी है-? बोलते क्यों नहीं ? बोलो-बोलो । (हँसाहँस) । जैनशासन को जयवन्त रखने के लिए संतों की बहुत आवश्यकता है । पुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार भी हो जाए, तो मातापिता उसे संसार में जकड़ने (बांधने) का प्रयत्न करते हैं । संसार की गाड़ी में उसे राजी खुशी से जोतते हैं । परन्तु अगर आप सच्चे (हितैषी) माता-पिता हों तो उसका संसार (जन्म-मरण) कम हो, ऐसे संस्कार दीजिए । आज का बाहर का (भौतिक) ज्ञान खूब दिया जाता है, परन्तु संतान को पास में बिठाकर पाव या आधा घंटा धार्मिक शिक्षण देने का टाइम मा-बाप के पास नहीं है । यदि आप संतानों के हितैषी हों तो आपको चाहिए कि उन्हें चतुर्गतिक संसार में भटकना न पड़े, ऐसे संस्कार दें ।

भगवान् ऋषभदेव के १०० पुत्र और ब्राह्मी-सुन्दरी, ये दो पुत्रियाँ, ये सभी मोक्ष में गये । धर्माराधना का वह कैसा स्वर्णिय समय था ! ऋषभदेव भगवान् का शासन पचास लाख क्रोड़ सागर तक चला । उसके पश्चात् दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ प्रभु हुए । उस समय १५ कर्मभूमियों में कुल मिलाकर १७० तीर्थंकर थे । उनमें ९ हजार करोड़ साधु और नौ करोड़ केवली थे । अजितनाथ भगवान् के समय में उत्कृष्ट धर्मकाल प्रवृत्त था । चौबीस तीर्थंकरों में ऋषभदेव भगवान् तीसरे आरे में हुए, बाकी के २३ तीर्थंकर चौथे आरे में हुए । चौथे आरे में दुःख अधिक और सुख कम था । इस समय पंचम आरा चल रहा है । चौथे आरे में जन्म लिया हुआ व्यक्ति पंचम आरे

बाजार बंद किया है ? जो अविरति सम्यग्दृष्टि है, उसकी १२ ही बाजारों में बैठक है। और जो देशविरति है, उसके सिर्फ एक बाजार बंद हुआ है। शेष ११ पाप के बाजार खुले हैं। सिर्फ त्रसकाय के बाजार की बारी बंद की है। परन्तु जालियाँ तो खुली रखी हैं न ? क्योंकि तुम विकलेन्द्रिय के सिवाय अन्य त्रसजीवों का जानबूझकर (आकुट्टी की बुद्धि से) हनन न करना, इस प्रकार प्रत्याख्यान लेते हो न ? इस तथ्य पर तुम विचार करोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि तुम चाहे जितना धर्माचरण (धर्मक्रिया) करो, परन्तु जहाँ तक ११ अव्रतों की कमिटी में से इस्तीफा नहीं दे दोगे, वहाँ तक अविरति के पाप से नहीं छूट सकोगे।

देवानुप्रियों ! तुम तो व्यापारी हो न ? तुम्हें तो सब कुछ अनुभव है। तुमने किसी व्यापारी के साथ पार्टनरशिप में व्यापार करने हेतु दस्तावेज की रजिस्ट्री कराई। फिर अगर तुम व्यवसाय करने के लिए फर्म पर न जाओ, घर में ही बैठे रहो, तो भी फर्म में नुकसान के जिम्मेदार होओगे कि नहीं ? एक बार तुमने फर्म में हिस्सेदारी (पार्टनरशिप) की, फिर जहाँ तक तुम उसमें से फारकती नहीं करो, वहाँ तक तुम उस फर्म के (हानि-लाभ में) जिम्मेवार हो। अगर उस फर्म में लाभ हो तो तुम दौड़ते हुए लाभ लेने जाते हो और यदि नुकसान हो तो उसकी भरपाई करने (देने) जाते हो क्या ? नहीं। अगर पार्टनर नुकसान करे तो तुम उसे कह देते हो - "उतर जा मेरी फर्म से। तू नागों का सरदार है।" इस विषय में तो तुम बहुत होशियार हो। तब फिर यहाँ बारह अव्रत के बाजार में तुम जो प्रतिक्षण नुकसान भोग रहे हो। पाप का प्रवाह आ रहा है। तो इस पाप की हिस्सेदारी में से छुटकारा पाने का मन होता है कि नहीं ? पाप के घर में कहाँ तक बैठे रहोगे ? सम्पूर्ण अव्रत में से साधुवर्ग के सिवाय अन्य कोई त्यागपत्र दे नहीं सकता। तुम तो अव्रत के सिरे पर खड़े हो।

एक बार दस्तावेज (Bond) करके तुमने जिसके साथ हिस्सेदारी (पार्टनरशिप) की, फिर भले ही उसमें तुम्हारे मन-वचन-काया का योग न हो, फिर भी जबतक उस फर्म से पृथक् नहीं हुए, मेरा अब इस कंपनी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, इस आशय का स्पष्ट लिखित त्यागपत्र नहीं दे देते, तबतक उस फर्म से छूट नहीं सकते। इसी तरह तुमने अविरति के बाजार की कमिटी में ५ इन्द्रियों, षट्काय और मन मर्कट (बंदर) के बाजार में मेम्बरगीरी (सदस्यता) की है। साथ ही इससे त्यागपत्र न देकर देशाटन करने हेतु निकले हो। इतने मात्र से तुम जवाबदारी से मुक्त नहीं हो सकते। तुमने तो सिर्फ त्रसकाय की हिंसा नहीं करूँगा, इस एक से त्यागपत्र दिया है, वह भी पोला है, ठोस नहीं है। जान-बूझकर हिंसा करने का प्रसंग आये तो (वह हिंसा) बंद रखूँगा। (व्यवसायादि या गृहजीवन के) कार्य करने में हिंसा का प्रसंग आए, अर्थात् किसी ने अपराध किया हो, तो अपराधी त्रस जीव को मारना-पीटना-सताना व सामना करना पड़े, यहाँ तक कि उसे प्राणरहित भी करना पड़े, इससे मेरा त्यागपत्र नहीं है। एक बाजार से त्यागपत्र देते हो, उसमें भी कितनी छूट रखते हो ? अब कहाँ तक अव्रत के घर में रमण करना है ? अब व्रत में रमणता करो।

रहता है। बन्धुओं ! इसी प्रकार विचार करो; धर्म अपनी आत्मा में ही निहित (रहा हुआ) है, और धर्म बाहर की क्रिया रूप में नहीं है। यद्यपि बाहर की क्रिया छोड़ नहीं देनी है, परन्तु उसके द्वारा आत्मधर्म प्रगट करना है।

सुगन्ध कस्तूरी की है, हवा की नहीं। पर वह (सुगन्ध) हवा में कब आती है ? जब हवा (सुगन्ध के) सम्मुख हो, तब नाभि में रही हुई सुगन्ध का पता भी श्वास न निकलता हो उसे नहीं लगता। सुगन्ध कस्तूरी की है, पर हवा उस सुगन्ध को लाने का मुख्य साधन है। सुगन्ध हवा में नहीं है, कस्तूरी में है। फिर भी अगर हवा न हो, उसके ऊपर का पड़ जरा-सा खिसका हुआ न हो तो कस्तूरी की सुगन्ध नहीं आ सकती। कस्तूरीया मृग को स्वयं को भी सुगन्ध आती है, परन्तु उसे पता नहीं है कि यह सुगन्ध मेरे में से (मेरी डूंटी में से) आ रही है। वह मृग तो अज्ञानी है, परन्तु आप तो समझते हैं कि धर्म आत्मा के गुण में है। उसे सम्यक्‌रूप से समझने के लिए वीतरागवाणी पर श्रद्धा करेंगे, तो अवश्य समझ में आ जाएगा।

देवानुप्रियों ! कस्तूरीया मृग की अपनी नाभि (डूंटी) में सुगन्ध होने पर भी अज्ञान के कारण वह सुगन्ध ढूंढने हेतु वन-वन में भटकता है। वैसे ही अपनी आत्मा भी अज्ञान के कारण अनन्तकाल से भव-वन में परिभ्रमण कर रहा है। कर्म जीव को संसार में परिभ्रमण कराता है। कर्म के कारण ज्ञान का प्रकाश आच्छादित हो गया है। इस प्रकाश को पुनः प्राप्त करना हो तो कर्म के आवरणों को दूर करने पड़ेंगे। मकान में उजाला करना हो तो किवाड़ बंद हो उन्हें खोलने पड़ते हैं। किवाड़ खुलते ही उजाला आना स्वाभाविक है। इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप नया नहीं बनाना है। सिद्ध भगवन्तों की आत्मा का जैसा स्वरूप है, वैसा ही निगोद की आत्मा का स्वरूप है। सोने का कण जैसा आभूषण में है, वैसा ही खान में था और जैसा वह खान में था, वैसा ही आभूषण में है। इनमें अन्तर है तो इतना ही है कि खान में रहा हुआ सोने का कण मिट्टी से लिपटा हुआ है, और आभूषण का स्वर्णकण शुद्ध (साफ) हुआ है। वैसे ही सिद्ध भगवान् की आत्मा कर्मरूपी मिट्टी के लेप से रहित है, और एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के समस्त संसारी जीवों की आत्मा कर्मरूपी कचरेवाली हैं। इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "कर्म का कचरा साफ करके मोक्ष में जाना हो तो धर्म की आराधना कर लो।"

जैनशासन में (सबका) साध्य बिन्दु एक ही है - शीघ्र कर्मक्षय करो। कर्म का क्षय कब हो ? जब-जब बांधे हुए कर्म उदय में आएँ, तब-तब किसी भी निमित्त पर रोष न करते हुए ऐसा विचार करना कि इसमें किसका क्या दोष है ? मेरे ही किये हुए कर्म मुझे ही भोगने हैं, मैं स्वकृत कर्मो को ही भोग रहा हूँ। कर्म भोगने का समय आए, कहा भी है - तब सावधान रहो।

दुःख आवे मनवा ज्यारे, त्यारे रोवुं शा माटे ?
जे बान्धुं ते आवे छे, एनो शोक शा माटे ?

गुणस्थान-वाला । उससे पहले कर्मबन्ध रहित कोई आत्मा नहीं है । केवली के भी एक सातावेदनीय कर्म का बंध होता है । मोक्ष में जाते वक्त जो चौदहवाँ गुणस्थान जीव को प्राप्त होता है, वहाँ बिलकुल कर्मबंध नहीं होता । उस गुणस्थान की स्थिति पाँच ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण करने जितनी है । वहाँ से जीव सीधा मोक्ष में जाता है । कर्मबंध कौन कराता है ? आचार्य उमास्वातिजी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में कहा है -

काय-वाङ्-मन: कर्मयोग:, स आश्रव:

विचार, उच्चार और आचार की (क्रमश:) मानसिक, वाचिक और कायिक ये तीन प्रवृत्तियाँ (योग) तथा साथ में कषाय-चतुष्टय (४ प्रकार के कषाय) भी कर्मों के आस्रव (आगमन) हैं और कषाय के कारण उनसे कर्मबन्ध होता है । चौदहवें गुणस्थान में जब जीव आता है, तब कर्मबन्ध रुक जाता है, क्योंकि वह अकम्पनदशा (शैलेशी अवस्था) है । वहाँ इसे मन-वचन-कायारूप त्रियोग की कोई प्रवृत्ति नहीं है । पहले से दशवें गुणस्थान तक कषाय और योग से और ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक केवल योग (मन-वचन-काययोग) से कर्म का बन्ध होता है । जब अधिक कर्मों (के फल) को भोगता है, और थोड़े से कर्मों को बांधता है, तब आत्मा (उच्च गुणस्थान की ओर आरोहण) करता ऊँचे चढ़ता है । अनादिकाल से जीव कर्मों को बांधता आया है, उन्हें कम कौन कर सकता है ? जो आत्मा शारीरिक-मानसिक-वाचिक दु:खों का भय छोड़ देता है, और मात्र आत्मचिंतन में रहता है (आत्म-स्वभाव में स्थिर रहता है) वह कर्मों को (शीघ्र) तोड़ सकता है । यों तो हम कहते हैं कि मन-वचन-काया से और कषाय से जीव कर्म बांधता है, फिर यहाँ '*काय-वाङ् -मन: कर्मयोग:*' इस सूत्र में 'काया' का उल्लेख सर्वप्रथम किया है । जानते हो, इसका क्या कारण है ? जीव माता के गर्भ में आता है, तब सर्वप्रथम आहार-पर्याप्ति बांधता है, फिर शरीर बांधता है, तत्पश्चात् इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन:पर्याप्तियाँ (क्रमश:) बांधता है । अत: वहाँ शरीर द्वारा कर्म बांधता है । सर्वकाल में जो-जो कर्म बांधे हैं, उन सबमें शरीर प्रधान कारण है । इस कारण 'तत्वार्थ सूत्र' में कर्मो के (आस्रव और) बन्ध के लिए शरीर का सबसे पहले उल्लेख किया है । मन के पुद्गल ग्रहण करनेवाला भी शरीर है, और वचन के पुद्गलों को ग्रहण करनेवाला भी शरीर है । उन-उन वर्गणाओं के पुद्गलों को ग्रहण करने के बाद भाषा और मन के रूप में परिणत हो जाता है । अत: शरीर का नामोल्लेख सर्वप्रथम किया है ।

देवानुप्रियों ! तुम कर्म की थियोरी समझ लोगे तो कर्म बांधते हुए रुकोगे । अभी तक कर्म बांधने में तो जीव बेहोश रहा है, किन्तु कर्म काटने का जो साधन-धर्म है, उस (के आचरण) में बेहोश रहा है । अब धर्म (के आचरण) में बेहोश बनो और कर्म-बंधन में बेहोश बनो । तुम जो धन कमाने के लिए उखाड़-पछाड़ (धमाल) करते हो, विलास के लिए लालायित होते हो और उसके कारण कर्मबन्ध करते हो, परन्तु क्या सरकार तुम्हें सुख भोगने देती है ? कितने-कितने कायदा-कानून हैं, टेक्स लाद रखे हैं ? पहले के राजा कितने उदार थे ? अधिक तो क्या कहूँ ! श्रेणिक जैसे नरेश सामने चलकर शालिभद्र के घर उसकी सुख-

करो - अपनी आत्मा नरकगति, तिर्यचगति या देवगति में गयी, वहाँ कैसी दशा थी ? पास में माल नहीं था, पैसे भी नहीं थे, परन्तु कर्मराजा का कर्ज किया हुआ था, यह बात स्पष्ट है। उस वक्त संवर, तप आदि धर्मक्रियाएँ करके कर्मनिर्जरा करने का क्या कोई साधन पास में था ? नहीं । जहाँ साधन-सामग्री या समझ न हो, वहाँ पुराने कर्मो का फल भोगते हुए नये कर्मो का बंध हो जाता है। इस समय (मनुष्यभव में) कर्मो का कर्ज चुकाने के लिए परिपूर्ण सामग्री मिली है, इसलिए समझपूर्वक (विवेकपूर्वक) सहन कर लो ।

जैनशासन पाया है तो कुछ प्राप्त कर लो : महान् पुण्य योग से हमें वीतराग - शासन मिला है । इस शासन में जिस प्रकार कर्म की फिलोसोफी समझाई गई है, वैसी दूसरे दर्शनों या धर्मो में कहीं नहीं है। जैनशासन को पाकर जो मनुष्य कर्म के उदय के समय समभाव से दुःखों को सहन कर लेता है, वह निष्फल नहीं जाता । पहले जो असातावेदनीय कर्म बंध हुआ है, वह उदय में आया, इस कारण दुःख आया । उस वक्त आर्त-रौद्रध्यान हुआ । इस प्रकार दुःख सहन करने से कर्मनिर्जरा तो होती है, किन्तु नये कर्म तीव्र रूप से बंधते हैं । किसी भी गति या जाति का जीव उदय में आये हुए कर्म से मिलनेवाला दुःख सहन तो करता है, किन्तु आर्तध्यान या रौद्रध्यान से जुड़ता है, इस कारण जो कर्मनिर्जरा का लाभ मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता । मान लो, कोई बहन अच्छे कपड़े पहनकर बाहर जाने के लिए निकली । उस समय किसी ने राख के छींटे उछाले । उस समय राख के छींटे धोने के लिए बर्तन धोये हुए गंदे पानी से भरी हुई कुण्डी में कपड़े झकोल दे तो कपड़े साफ होंगे या थे उनसे भी ज्यादा खराब हो जाएँगे ? इसी प्रकार कर्म के विषय में समझना । पहले के बांधे हुए कर्मो के कारण दुःख आया । उस दुःख को भोगा, इससे उन कर्मो की निर्जरा तो हुई, परन्तु उन्हें (कर्मफल) भोगते समय आर्तध्यान-रौद्रध्यान रूपी गंदे पानी की कुण्डी में डुबकी मारी, जिससे जो कर्म पहले थे, उनसे अधिक नये कर्म बांध लिये । चारों गतियों में इस प्रकार जीव पुराने कर्म भोगते हुए (यों) नये कर्म बांधता रहता है और चतुर्गतिक संसार में भटकता रहता है । अतएव तीर्थकर भगवान् फरमा गये हैं कि "हे जीव ! तुझ पर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक या सांयोगिक किसी भी प्रकार से अपने द्वारा या दूसरे के द्वारा दुःख आ पड़े, उस समय एक बात ध्यान में रखना - 'मैं अपने द्वारा किये हुए कर्मों (के फल) को भोग रहा हूँ ।'"

आत्मा में ज्ञानदीपक प्रगट होगा तो कर्मरूपी चोर प्रविष्ट नहीं हो सकेंगे : सुनो, किसी मकान में दीपक जल रहा होगा तो उस घर में चोर घुसने से विचार करेंगे। वैसे ही हमारे आत्म-गृह में यदि ज्ञानरूपी दीपक जल रहा होगा तो कर्मरूपी चोर प्रवेश करने में विचार करेगा । बताइए, आप कौन-सा दीपक रखेंगे ? मैं अपने द्वारा किये हुए कर्मों (फल) को भोग रहा हूँ । दूसरा कोई भी **मुझे दुःख** देनेवाला

करते हुए जरा भी हिचकिचाता नहीं (पीछे मुड़कर देखता नहीं) । लोभ सर्वगुणों को खा जाता है । लोभ कषाय दसवें गुणस्थान तक होता है । लोभ ने कितने ही जीवों को मोक्ष में जाने से रोका है । अतः कषाय (चारों कषाय) कर्मबन्ध के कारण हैं । उन्हें तोड़ो और शुद्ध आत्मधर्म का आचरण करो । धर्म के बिना आत्मा का उद्धार नहीं है । भगवान् कहते हैं - "तुझे आत्मकल्याण करना हो तो क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि को छोड़ेगा, तभी तेरा कल्याण होगा, तुझे शाश्वत सुख मिलेगा ।"

मुझे अभिमान और लोभ पर एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

सेठ का दृष्टांत : कच्छनिवासी एक मनुष्य मुंबई शहर में कमाने के लिए आया। इस मुंबई में अनेक मनुष्य अपने-अपने उद्देश्य से आते हैं । कोई अपनी पुत्री के लिए वर की तलाश में मुंबई आता है, कोई अपने गाँव या कस्बे में उपाश्रय बांधना हो, अथवा किसी संस्था के लिए फंडफाला करना हो तो मुंबई आता है, कोई व्यवसाय द्वारा धन कमाने के लिए भी मुंबई में आता है । उक्त भाई भी मुंबई आया था, धन कमाने के लिए । उसने सट्टे का धंधा शुरू किया । उसके पुण्य ने पलटा खाया और मुंबई में आकर खूब धन कमाया । वह बड़ा करोड़पति सेठ बन गया । मुंबई में अपना बंगला बनाया । देश में बड़ा बंगला बनाया । एक बार सेठ अपने वतन (देश) में आये । वह छोटा-सा गाँव था । इस छोटे-से गाँव में इस धनवान सेठ का बहुत ही सम्मान बढ़ गया; क्योंकि जिसके पास धन हो, सगे-सम्बन्धी एवं स्नेहीजन सामने से चलकर उन्हें सम्मानपूर्वक बुलाते और सेठजी-सेठजी कहकर प्रशंसा करते थे । ये सेठजी भी प्रतिदिन गाँव के चौराहे पर बनी चौपाल पर बैठने लगे । गाँव की पंचायत के सब लोग वहाँ जमा होने लगे । सेठ तो बहुत ही ठाठ से रहने लगे । उनके मन में पावर है कि मैं बड़ा सेठ हूँ । चौपाल पर बैठकर सेठ अपनी बड़ाई हाँकते हुए बड़ी-बड़ी बातें करने लगे । इस गाँव के एक वृद्ध मनुष्य ने सेठ से कहा - "सेठजी ! आप जब यहाँ आये हैं तो यह आपकी जमीन खाली पड़ी है । इन खेतों का काम संभालिये न !" यह सुनते ही सेठ भड़क उठे । सर्प की तरह फुफकारते हुए बोले - **"आंईव नो अजे रस्ते करो, आऊं मजुरी करीयां ?"** अपनी कच्छी भाषा में अहंकारपूर्वक सेठ ने कहा - "क्या मैं मजदूरी करूँ ? तू अपने रास्ते से चला जा ! मजदूरी करना, यह मेरा काम नहीं है, समझा न ?" मनुष्य के पास पैसा हो जाए, तब पैसे (धन) के मद में दूसरों को कुचल डालता है । सेठ का (अहंकार के साथ) क्रोध देखकर वह मनुष्य तो कांप उठा ।

देवानुप्रियों ! घर में आसुरी लक्ष्मी आती है, तब मनुष्य को मदोन्मत्त बना देती है। वह दूसरों को अपने से तुच्छ समझता है । ऐसी लक्ष्मी का उपभोग करने से पापकर्म का बन्ध होता है । ऐसी (आसुरी) लक्ष्मी का उपभोग करने की अपेक्षा गरीब रहना अच्छा है । वे सेठ दो महीने अपने वतन में रहकर वापस मुंबई आ गए । और सट्टे का धंधा करने लगे । कुदरत की लीला, इस समय सेठ के पापकर्म का उदय हुआ । इस कारण सेठ का व्यापार - धंधा ठंडा पड़ने लगा । शेयर के भाव गिरने लगे । एरंड के भाव घट

पड़ेगी। तुम्हारे घर में रहकर वे तुम्हारा माल ले जाएँगे। इसलिए ग्राहक की अपेक्षा मुनीमों (आदि) के प्रति अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता होती है। (अन्यथा) जिनशासन प्राप्त होने पर भी सत्य-मार्ग का स्वीकार नहीं करोगे और असत्य में रहोगे तो ग्राहक को ठगकर लूट लोगे, मगर घर में मुनीम और नौकर खा जायेंगे, नुकसान करेंगे। तुम्हारी ऐसी स्थिति न हो जाए, इसका ध्यान रखो।

जिसे जिनेश्वर भगवान् के वचन पर अटल श्रद्धा है, उस पर चाहे जैसे दुःख आ पड़े, तो भी वह जीव परभाव में नहीं जाता। अर्हन्नक श्रावक की कसौटी समुद्र में एक देव की, फिर भी उसका एक रोम भी विचलित नहीं हुआ। उसकी गर्दन पकड़कर देव ने उसे ऊपर (आकाश में) उछाला, किन्तु उसकी एकमात्र यही श्रद्धा थी कि अगर मेरा आयुष्य बलवान है, तो यह देव चाहे जो करे तो भी मैं मरनेवाला नहीं; और यदि आयुष्य पूरा होनेवाला होगा तो हो जाएगा; किन्तु मेरा धर्म झूठा है, यह तो मैं कदापि नहीं कहूँगा। यह शुद्ध श्रद्धा का प्रभाव था। एक बार जो जीव सम्यक्त्व को पा लेता है, वह जीव नरक में नहीं जाता। हाँ, एक बात है, सम्यक्त्व-प्राप्ति से पहले अगर नरक के आयुष्य का बंध पड़ गया तो नरक में अवश्य जाना पड़ता है। बाकी सम्यक्त्वी जीव नरक, तिर्यंच, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, इन ७ बोलों में आयुष्य बंध नहीं करता। वह मरकर वैमानिक देवों में जाता है, और अर्ध-पुद्गल-परावर्तनकाल में मोक्ष चला जाता है। सम्यक्त्व की महिमा तो देखो, सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय तो मोक्षगमन की मुहर छाप लग जाती है। क्या तुम्हारी सम्पत्ति में इतनी शक्ति है कि अरब रुपये कमाए, तब भी अधोगति में नहीं जाती? अथवा करोड़पति बन जाए, उसे कैन्सर, टी.बी. या डायाबिटिज रोग नहीं होगा? (श्रोताओं में से आवाज - नहीं) तुम्हारी (भौतिक) सम्पत्ति में इतनी भी शक्ति नहीं है। (क्योंकि) जहाँ तुम्हारी वाहवाही होती है; नामबरी हो, वहाँ तुम उत्साहपूर्वक सम्पत्ति का उपयोग करते हो, और धर्मकार्य में नामबरी के बिना सम्पत्ति का उपयोग करने में तुम्हारे पेट में दुःखता है! जहाँ अपनी वाहवाही के लिए लाखों रुपये (किसी काम में) लगाओ तो उससे जो लाभ नहीं होता, वहाँ धर्मबुद्धि से *परिग्रह पर से ममत्व का त्याग करके थोड़ा-सा भी दान दोगे, तो उससे महान लाभ* प्राप्त कर लोगे।

सम्यक्त्वी जीव पुण्य से मिलनेवाली लक्ष्मी और लक्ष्मी से मिलनेवाले सुखों में आसक्त नहीं होता, अपितु उससे अलिप्त रहता है। कदाचित् पाप के उदय से लक्ष्मी प्राप्त न हो तो भी (मन में) दुःख नहीं लाता; बल्कि वह दुःख में सुख निकाल लेता, ढूंढ लेता है। सुख में से सुख तो सभी ढूंढते हैं, किन्तु जो दुःख में से सुख को खोज लेता है, वही सच्चा मानव है। उस सरल-सरस बनी हुई आत्मा को कोई गाली दे तो भी वह उस गाली में से गुण-ग्रहण कर लेगा। उसे कोई उपालम्भ देगा, तो भी उसे वह मीठा लगेगा।

अनादिकाल से आत्मा राग के रंग में रंजित है। उस राग-रंग की होली को जला दो। यह (लौकिक) होली तो लकड़ी और छाणों (कंडों) को जलाती है; यह नहीं, पर यहाँ तो कर्मों को जला देने की होली करनी है और पाँचों इन्द्रियों के विषयों को मसल डालो, जिससे कर्मबन्धन न हो और आत्मा उज्ज्वल बने। झोली किससे भरनी है? बोलो, रुपयों से? रुपयों से तो अनेक वार भरी है। वह साथ में नहीं आती। परन्तु ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपरूपी शाश्वत धन से झोली भर लो ताकि भव-भव के बन्धन टूट जाएँ और ज्ञान की ज्योति जगमगा उठे। दिवाली आती है, तब लोग दीपक जलाते हैं। वह तो द्रव्य-दीपक होता है। परन्तु अपने अन्तर में सदैव ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित रहे, कभी बुझे नहीं, ऐसी करणी मनुष्यभव में कर लो। जल्दी प्रकाश पाना चाहते हो तो १२ अव्रत के बाजार के १२ द्वार जल्दी बंध करो और यथाशक्य विरति के घर में आओ।

सलिलावती-विजय में बीतशोका नाम की नगरी है। वह १२ योजन लम्बी और ९ योजन चौड़ी है। वह देवलोक जैसी रमणीय है। उस नगरी को देवलोक जैसी क्यों कही है? उस नगरी के राजा कौन थे? इन सबके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ७

आषाढ़ सुदी १५, रविवार | ता. ११-७-७६

चातुर्मास में सम्यक् आराधना करो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों!

आज वर्षावास = चातुर्मास - प्रारम्भ का मंगल-दिवस है। उपाश्रय में मानव-मेदिनी उमड़ी है। साथ ही तुम्हारा अति प्रिय रविवार का, तथा आषाढ़ी पूर्णिमा का दिन आ गया है। दूसरी पूर्णिमाओं की अपेक्षा आषाढ़ सुदी पूर्णिमा का विशेष महत्त्व है। आज भारतभर में विचरण करनेवाले समस्त साधु-साध्वीगण स्वयं द्वारा निश्चित किये हुए स्थान (क्षेत्र) में पहुँच जाएँगे। यद्यपि विहार संतों को बहुत प्रिय होता है, और विहार में संतों के संयम की सुरक्षा होती है, जबकि संत (हमारे क्षेत्र में) स्थिर रहें, ऐसी भावना होती है - श्रावक- श्राविकावर्ग की। उन्हें उसमें आनन्द आता है।

स्थानक में यदि संत-सती विराजमान होते हैं, तो श्रावकवर्ग उनके दर्शन करके मांगलिक सुन सकते हैं, उनका व्याख्यान सुनकर लाभ लेते हैं। और उन्हें निर्दोष, सुज्झता (शुद्ध) आहार-पानी बहराकर हाथ पवित्र करने का लाभ मिल जाता है। इसलिए श्रावकवर्ग को आनन्द आता है, किन्तु संत को विचरण करने में लाभ है। जैसे नदी बहती है तो वह उसके आसपास के प्रदेश को हराभरा और हरितवर्ण का बना देती है,

गुरु उभो सुकावै, तो उभो सूकै, ओ पिण अवसर नहीं चूकै ।
गुरु करावै शिष्यने संथारो, तै पिण आज्ञा न लोपे लिगारो ॥

कदाचित् गुरु शिष्य को सख्त धूप में खड़े रहने की आज्ञा दे, अथवा संथारा करने की आज्ञा दे, तो भी गुरु-आज्ञा का पालन करने का सुअवसर न चूके, और न ही गुरु की आज्ञा का लोप करे ।

एक गुरु के शिष्य को कोई चेपी (संक्रामक) रोग हो गया । उसके शरीर से लोही और पस निकलते थे, और बहुत ही दुर्गन्ध आती थी । गुरु उसे समझा-बुझाकर समत्वभाव में स्थिर रखते थे । एक बार एक बड़ा सर्प निकला । शिष्य ने कहा - "गुरुदेव ! सांप आया है ।" गुरु ने कहा - "भले आया । तू इस सर्प के पास जाकर इसके मुँह में हाथ डाल कर आ ।" शिष्य बहुत ही विनयी था । उसने एक ही विचार किया कि गुरु जो भी कहते हैं - *'मम लाभोति पेहाए'* मेरे हित (लाभ) की दृष्टि से कहते हैं । गुरुदेव मेरे परम उपकारी हैं, मेरे हितैषी हैं । गुरु एक चींटी को भी दुःख नहीं देते । एक सचित्त (वृक्ष के) पत्ते का स्पर्श (संघट्टा) हो जाए, तो भी एक उपवास का प्रायश्चित्त लेते हैं । वे ऐसे षट्कायिक जीवों के प्रति दयालु हैं, छकाय के पीहर (माता-पिता) समान हैं । जैन मुनियों का जीवन कैसा होता है । एक भजन प्रस्तुत है, इस विषय में -

ना पंखो वींझे गरमीमां, ना ठंडीमां कदी तापे,
ना काचा जलनो स्पर्श करे, ना लीलोतरीने चांपे ।
नानामां नाना जीव तणुं पण ए संरक्षण करनारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥
जेना रोम-रोमथी, त्याग अने संयमनी विलसे धारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥
दुनियामां जेनी जोड़ जड़े ना, एवुं जीवन जीवनारा । ... आ छे अणगार अमारा ॥

क्या ऐसे पवित्र गुरु मुझे मृत्यु के मुख में भेज सकते हैं ? नहीं, ये तो मेरा कल्याण कराना चाहते हैं । शिष्य कैसा पवित्र (हृदय का) होगा ? वह शिष्य सर्प के पास गया और उसके मुँह में हाथ डाला तो सर्प ने डस लिया । गुरु की आज्ञा का पालन करके शिष्य गुरु के पास आया । गुरु ने पूछा - "सर्प ने क्या किया ?" तब शिष्य ने कहा - "मैंने सर्प के मुख में हाथ डाला तो सर्प ने मुझे डस लिया (दंश दिया) ।" गुरु ने कहा - "कोई हर्ज नहीं ।" सर्प के डस लेने के आधा घंटा हुआ कि शिष्य का रोग मिट गया। शिष्य के शरीर में विष फैल गया था । *'विषस्य विषमौषधम्'* इस न्याय से कई बार जहर जहर को मार देता है । इस दृष्टि से शिष्य के शरीर में (पोइजन) जहर था, और सर्प का जहर उसमें मिलने से वह जहर मर (नष्ट हो) गया और शिष्य रोगरहित हो गया । पर वह स्वस्थ कब हुआ ? जब उसने गुरु की आज्ञा का पालन किया तब । अगर गुरु की आज्ञा का लोप किया होता तो ऐसा लाभ न मिलता ।

पूर्व के पाठक साधक भी भान भूले तो पतित हो जाता है। मोक्ष के आंगन में प्रविष्ट वीतरागत्व पानेवाले भी प्रतिपाती हो जाते हैं न ? वीतरागी गुणस्थान कितने हैं ? ११वाँ, १२वाँ, १३वाँ और १४वाँ, ये चार वीतरागी गुणस्थान कहलाते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुँचा हुआ भी नीचे गिर जाता है। किसलिए ? जरा विचार करो।

कषाय की उपशान्तता : ग्यारहवें गुणस्थान में कषाय की उपशान्तता होती है। वहाँ बुझी हुई आग जैसी कषायें उपशान्त होती हैं। प्रश्न होता है, वहाँ (११वें गुणस्थान में) हीयमान परिणाम नहीं है, फिर वहाँ से नीचे (गुणस्थान में) क्यों आ जाता है ? उसका कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान में रहने का जो काल है, उस स्थिति के पूर्ण होने पर स्वाभाविक रूप से वह ग्यारहवें गुणस्थान से दशवें गुणस्थान में आ जाता है। वहाँ हीयमान परिणाम तो है नहीं; इसलिए नीचे आने के कारण रूप में उसे माना नहीं जा सकता। इस तथ्य को समझने के लिए एक व्यवहारिक उदाहरण लें।

एक न्यायाधीश कुछ दिनों की छुट्टी लेकर गए, उनके स्थान पर उतने (छुट्टी के) दिनों तक के लिए एक दूसरे न्यायाधीश आए। पहले के न्यायाधीश जो छुट्टी पर थे, अपने छुट्टी के दिन पूरे होने पर वापस आ गए। इसलिए उनके स्थान पर जो न्यायाधीश नियुक्त थे, वे अब उतर गए। विचार करो कि जो न्यायाधीश उतर गए, क्या वे अपने किसी दोष के कारण उतरे थे ? नहीं। उन्हें उतने दिन के लिए ही (पूर्व न्यायाधीश के स्थान पर) नियुक्त किया गया था। अब इस उदाहरण का सातवें गुणस्थान से छठ्ठे गुणस्थान में आने तथा ग्यारवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान में आने के विषय में विचार करो। इनमें इनके हीयमान परिणाम का दोष नहीं है, किन्तु उस स्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, यह निश्चित हुआ।

तीर्थंकर देव भी सातवें से छठ्ठे गुणस्थान में आते हैं, उनके लिए भी उपर्युक्त नियम समझना है। जैसे कि छद्मस्थ तीर्थंकर जब प्रव्रज्या अंगीकार करते हैं, तब उनके नियम सातवाँ गुणस्थान होता है। और अन्तर्मुहूर्त के पश्चात सातवें गुणस्थान की स्थितिपूर्ण हो जाने पर छठ्ठे गुणस्थान में आ जाते हैं। तीर्थंकर देवों में हीयमान परिणाम नहीं होते, फिर भी नीचे के गुणस्थान में आते हैं। निष्कर्ष यह है कि सातवें गुणस्थान से छठ्ठे में आने में, और ग्यारहवाँ गुणस्थान से दसवें में आने में सिर्फ स्थिति की परिपाकता का प्रभाव है, मगर हीयमान परिणाम का प्रभाव नहीं है। ग्यारहवें गुणस्थान में अगर कालधर्म पाए तो अनुत्तर-विमान में जाता है। फिर मनुष्यभव पाकर उसी भव में या कुछ ही भवों में मोक्ष में जाता है। पर यदि वह दसवें गुणस्थान से नीचे ठेठ पहले गुणस्थान में चला जाए तो वह फेंका जाता है। उपशम श्रेणीवाला तथा चौदह पूर्वधर ज्ञानी एवं चार ज्ञानवाले ऐसे जीव भी जब यों नीचे उतर (पतित हो) जाते हैं; तो हम जैसे लोगों की क्या दशा होगी ?

बन्धुओं ! यह बात आत्मा के उत्साह को भंग करने के लिए नहीं कही है। राजा की तिजोरी लूटी जा रही है, यह सुनकर क्या प्रजा अपनी तिजोरी का धन-माल बाहर

अंकरहित सब शून्य व्यर्थ ज्यों, नेत्रहीन को व्यर्थ प्रकाश,
वर्षा बिना भूमि में बोया, बीज व्यर्थ पाता है नाश ।
उसी भांति सम्यक्त्व-बिना है; जप, तप, कष्ट, क्रिया बेकार;
कभी न उत्तम फल देती है, मिलता कभी न आत्म-प्रकाश ॥

किसी अंधे आदमी के पास सैकड़ों ट्युवलाइटों का प्रकाश किया जाए तो वह व्यर्थ हैं, क्योंकि अंधा मनुष्य प्रकाश को देख नहीं सकता । वर्षा के बिना जमीन में चाहे जितना अच्छा बीज बोया जाय तो वह बेकार हो जाता है । उसी प्रकार सम्यक्त्व-रत्न को प्राप्त किये बिना की गई तमाम क्रियाओं से कर्मनिर्जरा नहीं होती, आत्मा का प्रकाश प्रगट नहीं होता । सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया तो मोक्ष में जाने की लोटरी लग चुकी । कोई जीव उसी भव में, कोई तीसरे भव में और कोई पन्द्रहवें भव में मोक्ष में जाता है, और अधिक से अधिक विलम्ब हो तो अर्ध-पुद्गल-परावर्तनकाल में तो अवश्यमेव मोक्ष जाता है । एक बात समझ लेना कि कोई यों माने कि सम्यक्त्व पा लिया, इसलिए मेरा मोक्ष में जाना निश्चित है, अब मुझे कोई व्रत-प्रत्याख्यान करने की आवश्यकता नहीं है, तो उसकी यह मान्यता खोटी है । जीव को संसार में परिभ्रमण करानेवाले पाँच (आस्रव) कारण हैं । उनके नाम तो जानते हो न ?

आत्मा के प्रदेश सब ही जो, असंख्यात ही होते हैं,
कर्मों के अनन्त अणुओं से, बंधे हुए सब रहते हैं ।
उनके बन्धन के कारण हैं, पाँचों आसव शत्रु महान्,
योग, प्रमाद, अव्रत, मिथ्यात्व, कषाय, ये अति ही दुःख खान ॥

एक-एक आत्मा के प्रदेश असंख्यात होते हैं और प्रत्येक प्रदेश पर कर्म की अनन्त वर्गणाएँ होती हैं । इस कर्मबन्ध के यदि कोई कारण हैं तो वे हैं पाँच बड़े-बड़े शत्रु (आस्रव) – मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग । इन पाँच कारणों में से सिर्फ एक मिथ्यात्व के चले जाने मात्र से, मोक्ष मिल जाए, ऐसा नहीं है ।

चौथा गुणस्थान अविरति सम्यग्दृष्टि का है । अविरति सम्यग्दृष्टि जीव चाहे मर्त्यलोक का मानव हो, चाहे देवलोक का देव हो, परन्तु उसके अव्रत के (अभी तक) १२ द्वार खुले हैं । उसके अव्रत के १२ बाजार भरे हुए हैं । तुम चौथे गुणस्थान में हो तो तुम्हारे अव्रत के १२ ही द्वार खुले हैं । बारह अव्रत के १२ बाजार कौन-कौन-से हैं ? यह तो तुम जानती हो न, बहनों ! बोलो – (जवाब : ५ इन्द्रिय, षट्काय और एक मन) ये बारह बाजार हैं अव्रत के । तुम अभी ५ इन्द्रियों और छट्ठे मन से निवृत्त नहीं हुए । षट्कायों में से एक भी काय के बाजार में से बाहर निकले नहीं । यानि ५ इन्द्रियों की तथा षट्कायिक जीव-हिंसा की दुकानों से मन को निवृत्त नहीं किया । मनरूपी वानर को भटकता ही रखा है ।

बन्धुओं ! बारह व्रत अंगीकार कर लो । इससे यों मत समझ लेना कि मेरी १२ की अविरति गई । अब तुम यह विचार करो कि इन १२ बाजारों में से तुमने

एकेन्द्रिय में फिरते-फिरते, कुछ शुभकर्म उदय आया,
तब दोइन्द्रिय तेइन्द्रिय में, काल बहुत कष्ट पाया ।
फिर चौरीन्द्रिय में दुःख पाया, पंचेन्द्रिय गति फिर पाई;
वहाँ नरकतिर्यंच-योनि में, कष्ट सहा अति हे भाई ! ॥

एकेन्द्रिय में निगोद के जीव को अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-काल की कायस्थिति पूरी होने पर वह निगोद का घर छोड़कर बाहर आता है । पुण्य प्रकृति बांधता है । ऐसे एकेन्द्रियपन में मनुष्यपन के योग्य कर्म बांधने बहुत कठिन हैं । सूक्ष्म निगोद में जो काय स्थिति है, उसमें मनुष्यपन के लायक पुण्योपार्जन करना बहुत ही मुश्किल है । ऐसी कायस्थितियाँ मेरे और तुम्हारे जीव ने अनन्त बार उलंघी हैं । एकेन्द्रिय में अकामनिर्जरा करते-करते जीव बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय में क्रमशः आया । वहाँ कुछ शुभ कर्म का उदय होने पर पंचेन्द्रिय गति प्राप्त की । पंचेन्द्रिय में भी नरक और तिर्यच योनियों में जीव ने महान दुःख भोगे हैं । उन गतियों में से भी गुजरकर आज मनुष्यभव में आया है । मनुष्यभव में यह पहले पहल आया है, ऐसा नहीं है । संत-सती पुकार-पुकारकर वीतरागवाणी के माध्यम से कह रहे हैं - "अब अगर अनन्तकाल तक संसार-परिभ्रमण नहीं करना हो तो प्रमाद का त्याग करो; कर्मबन्धन से रुको, अविरति का घर छोड़कर विरति के घर में आओ, पुनः पुनः ऐसी भूल मत करना ।" मान लो, मार्ग में चलते हुए किसी जगह तुम्हें पैर में कांटा चुभा । वह कांटा ऐसा चुभा कि एक महीने तक खाट पर सोये रहना पड़ा । बहुत पीड़ा भोगने पर ठीक हो गया । बोलो, अब दूसरी बार इस रास्ते से चलते हुए सावधानी रखोगे या नहीं ? निगोद में जीव ने अनन्तकाल निकाला है । ज्ञानी कहते हैं - "बहुत लम्बे काल के बाद मनुष्यजीवन मिला है; अतः अब इसे हार मत जाना । पुनः निगोद में फेंका मत जाना ।" इसके लिए सावधान रहना नहीं है क्या ? अनन्तकाल तक यह जीव भटका है । भटकते-भटकते बड़ी मुश्किल से यह मानवभव मिला है । वह बार-बार नहीं मिलेगा ।

जीव अज्ञानता से बहुत बार मनुष्यपन हार गया है : मानवजन्म कर्म-रिपुओं को नष्ट करने के लिए तलवार के समान है । किसी मनुष्य के हाथ में तलवार आ जाए और वह उस तलवार से तिनका काटकर माने कि मैं बहादुर हूँ, तो क्या तुम उसे बहादुर कहोगे ? नहीं । तलवार से तिनका काटने में कोई बहादुरी नहीं है । तलवार तो शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिए है । इसी प्रकार मनुष्यजन्म पाकर ऐश-आराम करने तथा सत्ता पाकर दूसरों को कुचल डालने में बहादुरी नहीं कहलाती । तलवार से शत्रु पर विजय प्राप्त करने पर मुस्काना, किन्तु मोह को हटाया नहीं, और मनुष्यभव पाकर मौजशौक की, उसमें क्या मुस्काना ? अतः अनेक कठिनाइयों से अनन्त भवों के बाद मिलनेवाला महामूल्यवान् मनुष्यभव मिला है, उसका सदुपयोग कर लो ।

भरत चक्रवर्ती अव्रत के घर में बैठे थे, किन्तु शीशमहल में गए, वहाँ एक अंगूठी अंगुली में से निकल पड़ी, तब ऐसा लगा कि - अहो ! मेरी अंगुली (अंगूठी के कारण सुंदर लगती थी, किन्तु अंगूठी निकल जाने से) असुन्दर लगती है। दूसरे ही क्षण (उहापोह करते-करते) उस अंगूठी का मोह उतर गया । अहो ! यह कौन है और मैं कोन हूँ ? यह जड़ है, मैं चेतन हूँ । इस प्रकार खूब मन्थन चला । गृहस्थ वेश में अव्रत के द्वार बंद कर के आस्त्रव का घर छोड़कर संवर के घर में आ गए । फिर वहीं के वहीं भाव-चारित्र में रमणता करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । इसीका नाम सच्चावीर ! कोरी बातें करके बैठे रहना, यह तो कायर का काम है ।

देवानुप्रियों ! तुम कर्म की थियोरी समझो । जैनदर्शन में जिस प्रकार कर्म की थियोरी (सिद्धान्त) समझाई गई है, उस प्रकार से अन्यत्र (अन्य दर्शनों या धर्मों में) समझाई गई नहीं है । जैनदर्शन में यों कहा गया है कि किसी वस्तु का तुम उपभोग नहीं करते हो, किन्तु जहाँ तक उस वस्तु का प्रत्याख्यान (त्याग) नहीं करते, वहाँ तक उसकी दावी आती है, जबकि अन्य दर्शनों में ऐसा नहीं कहा गया है । वहाँ तो बारह ही बाजार खुले हैं, क्योंकि अविरति कर्मबन्ध का कारण है । जो यह मानता है कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग (मन-वचन-काया का व्यापार) ये सब कर्मबन्ध के कारण हैं, वह कर्मों को तोड़ने का प्रयत्न करेगा, पर जो यह कहता है कि प्रत्याख्यान क्यों किया जाए ? प्रत्याख्यान करने से क्या विशेष लाभ है ? हम (वैसे भी) कन्दमूल नहीं खाते, रात्रिभोजन नहीं करते । प्रत्येक बात में हमारा मन दृढ है । फिर प्रत्याख्यान की क्या आवश्यकता है ? ऐसा कहनेवाला जैन नहीं है । मैं रात्रि को भोजन नहीं करता, किन्तु उसके प्रत्याख्यान नहीं लेता तो पापों का आस्त्रव (आगमन) आता रहेगा । यह जैनदर्शन की मान्यता है ।

अनादिकाल से जीव (जन्म-मरणादि रूप संसार में) क्यों भटका है ? मिथ्यात्व के कारण । मिथ्यात्व तो छूट गया, परन्तु (अभी तक) विरति में नहीं आया, वहाँ तक पाप रुका नहीं, और नये कर्म बंधते गए । विरति के बिना कर्मबन्ध होता रहता है । इसीलिए हम कहते हैं - "प्रत्याख्यान करोगे तो पाप से बचोगे ।" आज बहुत-से लोगों को हम प्रत्याख्यान लेने का कहते हैं, तब यों कहते हैं - "उपाश्रय में क्या जाएँ ? वहाँ महासतीजी हमें पच्चक्खाण के बन्धन में बांध देती हैं ।" (हँसाहँस) अगर तुम गहराई से सोचो तो साधु-साध्वी तुम्हें बांधते नहीं बल्कि कर्मबन्धन से छुड़ाते हैं । ऐसी श्रद्धा हो, थोड़े-से दुःख में उसके बहुत-से कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

बन्धुओं ! मुझे तो तुम पर दया आती है कि मेरे वीतराग के शासन में जन्म लेकर ये जीव कहाँ तक कर्म बांधेंगे ? कर्मबन्ध किन कारणों से होते हैं और कहाँ तक वे होते हैं ? क्या यह तुम जानते हो ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि "जिस समय यह जीव आयुष्य कर्म बांधता है, उस समय आठ कर्म बांधता है, नहीं तो आयुष्य कर्म को छोड़कर प्रतिसमय सात कर्म बांधता है और आठ कर्म तोड़ता है ।" अत: जीव नये कर्म न बांधे तो अवश्य ही (शीघ्र) मोक्ष में जाता है । नये कर्म कौन नहीं बांधता ? चौदहवें योगी केवली

मोक्षगमन की ऑफिस कौन-सी ? : यह मानवभव मोक्ष में जाने का कार्यालय (ऑफिस) है । इस मोक्ष के कार्यालय में आकर मानव मौज-शौक की कूचा मांगता है। आत्मा को अव्याबाध सुख प्राप्त कराए, ऐसी ऑफिस में आकर क्षणिक सुख देनेवाले विषयों का कचरा मांगना क्या उचित है ? मोक्ष के कार्यालय में आकर अर्जी देनेवाला भूल करे तो क्लर्क बेचारा क्या करे ? आत्मा (मानवात्मा) मोक्ष के कार्यालय में अर्जी करने आया है । यहाँ पाँच इन्द्रियरूपी क्लर्क हैं । किन्तु इन्हें मोक्ष की अर्जी दो तो काम हो न ? इस जीव ने शौचालय साफ करने की कचरापेटी की अर्जी दी है । मगर मोक्ष जल्दी मिले, ऐसी अर्जी की है क्या ? इन्द्रियों रूपी क्लर्कों को तुम मोक्ष के कार्यों के सिवाय अन्यत्र जाने की छूट मत दो । यदि इन्द्रियरूपी क्लर्क जागृत है तो अर्जी शीघ्र करो । जो अर्जी करने में समझता हो कि अर्जी में क्या लिखा जाता है, वही सच्ची अर्जी कर पाता है । परन्तु जो नहीं समझता है, वह तो क्या लिखना है, इसके बदले कुछ का कुछ लिख डालता है । *अतः इस मानवभव के कार्यालय में आकर सच्ची अर्जी करो ।*

धर्म रत्न के समान है : अनाज का दाना अच्छा हो, लेकिन खेत की जमीन जोते बिना उस जमीन में डाला जाए तो धान्य की प्राप्ति नहीं होती । वैसे ही आत्मा में धर्मरूपी बीज डाला जाए, परन्तु आत्मा का खेदान न किया हो, उसमें धर्मरूपी बीज डाली तो भी फायदा नहीं करेगा । धर्मरत्न के योग्य बनना हो तो श्रावक के २१ गुण प्राप्त (अर्जित) करने पड़ेंगे । *यह (आत्म) धर्मरत्न के समान है । धर्म को रत्न की उपमा क्यों दी है ?* रत्न अति मूल्यवान वस्तु है । परन्तु पत्थर कीमती नहीं समझे जाते, क्योंकि उनमें तेजस्विता के गुण नहीं हैं, जबकि रत्न में तेजस्विता है, इसलिए उसका मूल्य होता है । जिसके पास रत्न होता है, वह धनवान कहलाता है । लाखों का कर्ज हो, किन्तु अगर पास में एक रत्न हो तो पलभर में कर्ज चुका दिया जाता है । वैसे ही अनेक भवों में बांधे हुए कर्म धर्मरूपी रत्न क्षय कर डालता है । साथ ही धर्म रत्न अवनति के पथ पर जाते हुए आत्मा को रोककर उन्नति के पथ पर ले जाता है । जिसके जीवन में श्रावक के २१ गुण होते हैं, वह आत्मा धर्मरत्न के योग्य है ।

जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त ... उसे ... घर कैसा लगता है ? : जिसमें श्रावक के २१ गुण हो[illegible] ... आ गया है, उस आत्मा को यह शरीर किराये का घर लगता ... उनके विषय तथा उनके साधन, ये सब [illegible] के ... [illegible] होता है, उसका भाड़ा [illegible] ही ... [illegible] शरीर, इन्द्रियगण, उ[illegible] और ... [illegible] जाता है । अपने ... [illegible] के फर्निचरवाला ... पर ... [illegible] का घर घड़ीभर ... [illegible] तब ... [illegible] से

सम्पत्ति देखने के लिए गये थे । अपने से अधिक सम्पत्ति शालिभद्र की थी, फिर भी शालिभद्र की ऋद्धि देखकर श्रेणिकराजा की छाती (गौरव से) गज-गज फूल गई थी - 'अहो ! मैं कैसा पुण्यवान हूँ कि मेरे राज्य में ऐसी पुण्यवान प्रजा रहती है ।' श्रेणिकराजा ने सुकोमल शालिभद्र के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिये - "धन्य है पुत्र ! तुम जैसी समृद्ध प्रजा से मैं उज्ज्वल (गौरवान्वित) हूँ ।" ऐसी सम्पत्ति उनके घर में थी । स्वयं महाराजा श्रेणिक की जिस पर कृपा दृष्टि थी, फिर भी शालिभद्र को यह संसार (सांसारिक सुखभोग) दुःखमय लगा । इसलिए वे यह सब त्यागकर संयममार्ग पर आरूढ हुए । जबकि तुमलोग तो (प्रातः) श्याद-सफेद करके धन एकत्र करते हो; इसके लिए कितना कष्ट सहन करते हो ? फिर भी दिल में अपार फड़फड़ाट रहता है । सुबह के टाइम में कोई दरवाजा खटखटाए तो मन में फड़फड़ाट होती है कि कहीं रेड तो नहीं आ गई है ? संसार में इतना अधिक दुःख है, फिर भी इसे छोड़ने का मन नहीं होता ।

अपने चालु (शास्त्रीय) अधिकार में कल कहा गया था कि - इस जम्बूद्वीप के महाविदेहक्षेत्र में स्थित सुमेरुपर्वत की पश्चिम दिशा में, निषधपर्वत की उत्तर दिशा में, महानदी शीतोदा के दक्षिण में, सुखोत्पादक वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम में और पश्चिम लवणसमुद्र की पूर्व दिशा में सलिलावती नामक विजय था ।"

"तत्थणं सलिलावइ - विजए वीयसोगाणामं रायहाणी पन्नत्ता ।
नव-जोयण-वित्थिण्णा जाव पच्चक्खं देवलोगभूया ।।"

वहाँ सलिलावती-विजय में वीतशोका नाम की नगरी राजधानी थी, जो नौ योजन विस्तीर्ण थी, यावत् प्रत्यक्ष देवलोकसम थी ।

यहाँ प्रश्न होता है कि नगर किसे कहा जाता है और नगरी किसे ? नगर चौरस होता है, लम्बाई और चौड़ाई में समान होता है । जबकि नगरी चौड़ाई में कम और लंबाई में अधिक होती है । (श्रोताओं में से वजुभाई - 'जैसे हमारी मुंबई नगरी) नगर और नगरी में (उनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ के अनुसार '*न करो यस्मिन यस्यां वा नगरम् नगरी*') कर नहीं लिया जाता (नहीं लिया जाना चाहिए) । क्या मुंबई में कर नहीं लिये जाते ? (हँसाहँस), यहाँ तो छोटी-छोटी चीजों पर कर (टेक्स) लिया जाता है । इसे नगरी कैसे कहा जाए ? वर्तमानकालीन नगरियाँ तो मनुष्यों को टेक्सों (करों) से नग्न कर देती हैं । फिर भी मनुष्य यह मानता है कि हम मुंबई में निवास कर रहे हैं, इसलिए महासुखी हैं । इसे जरा समझो, जिसके पुण्य का उदय है, वह सुखी है; परन्तु अभिमान करना उचित नहीं है, क्योंकि अभिमान भी तो कषाय है (जो त्याज्य है) । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "चारों कषाय आत्मा के शत्रु हैं । इन शत्रुओंने आत्मा के विकास को दबा दिया है ।" मनुष्य निर्धन में से धनवान् बनता है, तब - मैं कुछ हूँ, मेरे में कुछ (विशेषता) है, यों मन में विचारता हुआ छाती फूलाकर चलता है । जहाँ मान (अहंकार) है, वहाँ क्रोध भी होता है । लोभ ने तो मनुष्य (के सत्व) को मार डाला है । लोभ के वश होकर मनुष्य पाप

मोक्षगमन की ओफिस कौन-सी ? : यह मानवभव मोक्ष में जाने का कार्यालय (ओफिस) है । इस मोक्ष के कार्यालय में आकर मानव मौज-शौक की कूचा मांगता है । आत्मा को अव्याबाध सुख प्राप्त कराए, ऐसी ओफिस में आकर क्षणिक सुख देनेवाले विषयों का कचरा मांगना क्या उचित है ? मोक्ष के कार्यालय में आकर अर्जी देनेवाला भूल करे तो क्लर्क बेचारा क्या करे ? आत्मा (मानवात्मा) मोक्ष के कार्यालय में अर्जी करने आया है । यहाँ पाँच इन्द्रियरूपी क्लर्क हैं । किन्तु इन्हें मोक्ष की अर्जी दो तो काम हो न ? इस जीव ने शौचालय साफ करने की कचरापेटी की अर्जी दी है । मगर मोक्ष जल्दी मिले, ऐसी अर्जी की है क्या ? इन्द्रियों रूपी क्लर्कों को तुम मोक्ष के कार्यों के सिवाय अन्यत्र जाने की छूट मत दो । यदि इन्द्रियरूपी क्लर्क जागृत है तो अर्जी शीघ्र करो । जो अर्जी करने में समझता हो कि अर्जी में क्या लिखा जाता है, वही सच्ची अर्जी कर पाता है । परन्तु जो नहीं समझता है, वह तो क्या लिखना है, इसके बदले कुछ का कुछ लिख डालता है । *अतः इस मानवभव के कार्यालय में आकर सच्ची अर्जी करो ।*

धर्म रत्न के समान है : अनाज का दाना अच्छा हो, लेकिन खेत की जमीन जोते विना उस जमीन में डाला जाए तो धान्य की प्राप्ति नहीं होती । वैसे ही आत्मा में धर्मरूपी बीज डाला जाए, परन्तु आत्मा का खेदान न किया हो; उसमें धर्मरूपी बीज डाली तो भी फायदा नहीं करेगा । धर्मरत्न के योग्य बनना हो तो श्रावक के २१ गुण प्राप्त (अर्जित) करने पड़ेंगे । यह (आत्म) *धर्मरत्न के समान है । धर्म को रत्न की उपमा क्यों दी है ?* रत्न अति मूल्यवान वस्तु है । परन्तु पत्थर कीमती नहीं समझे जाते, क्योंकि उनमें तेजस्विता के गुण नहीं हैं, जबकि रत्न में तेजस्विता है, इसलिए उसका मूल्य होता है । जिसके पास रत्न होता है, वह धनवान कहलाता है । लाखों का कर्ज हो, किन्तु अगर पास में एक रत्न हो तो पलभर में कर्ज चुका दिया जाता है । वैसे ही अनेक भवों में बांधे हुए कर्म धर्मरूपी रत्न क्षय कर डालता है । साथ ही धर्म रत्न अवनति के पथ पर जाते हुए आत्मा को रोककर उन्नति के पथ पर ले जाता है । जिसके जीवन में श्रावक के २१ गुण होते हैं, वह आत्मा धर्मरत्न के योग्य है ।

जो जीव सम्यकृत्व प्राप्त करता है, उसे शरीररूपी घर कैसा लगता है ? : जिसमें श्रावक के २१ गुण होते हैं, जिसके हाथ में धर्मरत्न आ गया है, उस आत्मा को यह शरीर किराये का घर लगता है । आहार, शरीर, इन्द्रियाँ और उनके विषय तथा उनके साधन, ये सब किराये के घर के फर्निचर हैं । घर जितना अधिक फर्निचरवाला होता है, उसका भाड़ा भी अधिक ही बैठेगा । उसी प्रकार यहाँ जितने अच्छे आहार, शरीर, इन्द्रियगण, उनके विषय और साधन होते हैं, उतना पुण्य अधिक क्षय *(खर्च)* हो जाता है । अपने व्यापार में जिसको अधिक कमाई नहीं होती, पर वह ऊँची क्वालिटी के फर्निचरवाला मकान किराये पर लेकर रखे, उसकी क्या दशा होती है ? वह किराये का घर घड़ीभर भले ही मन को खुश कर दे, पर उसका भाड़ा भरने का समय आए, तब कितनी मानसिक उलझन होती है ? अपनी परिस्थिति का विचार किये विना ऊपर से

गए । सट्टा और रेस, ये दोनों ही एक प्रकार से जुआ कहलाते हैं । इसमें क्या कभी अपना निर्धारित (सोचा हुआ) होता है ? फलतः सेठ को प्रत्येक व्यवसाय में घाटा लगा । परन्तु सेठ को आशा थी कि भविष्य में खूब कमा लूंगा और जैसा पहले था, वैसा ही धनवान बन जाऊँगा । यों मानकर **'हारा हुआ जुआरी दुगुना खेलता है ।'** इस न्याय से सेठ भी आँख मूंदकर धंधा करते ही रहे । परिणाम यह हुआ कि सेठ के बंगले बिक गये । पत्नी के जेवर भी बेचने पड़े । देश में जो बंगले थे, वे भी बिक गये । अब तो घर में खाने के, अन्न के भी लाले पड़ गए । सेठ अत्यन्त दुःखी हो गये । ऐसी स्थिति में मुंबई कैसे रहा जाय ? सेठ देश में आये । वहाँ भी घर और खेत सब बिक गए । एक छोटी सी घास की झोंपड़ी बांधकर सेठ रहने लगे । पास में पैसा नहीं रहा कि वह धंधा कर सकें । नौकरी नहीं मिलती । एक टुकड़ा रोटी का भी खाने के लिए नहीं मिलता । सेठ बहुत ही उलझन में पड़ गए । भूखे रहकर दिन बीतने लगे । उनकी पत्नी ने कहा - "अब तो दैनिक मजदूरी पर जाओगे तभी गुजारा चलेगा, अन्यथा भूखे मर जाएँगे ।" अब सेठ मजदूरी करने के लिए जाने को तैयार हुए । काम करने के लिए सबके सामने आजीजी करने लगे । लज्जा और क्षोभ से सेठ का मस्तक झुक गया था । अब नम्रता बताये बिना काम नहीं चल सकता था । यह सेठ लोगों के सामने काम देने के लिए गिड़गिड़ाता है । पर कोई भी व्यक्ति उसे काम नहीं देता । ऐसे समय में जिस व्यक्ति का सेठ ने (पहले) तिरस्कार कर दिया था, वह वहाँ से होकर जा रहा था । सेठ की यह दशा देखकर उस वृद्ध मनुष्य को उस पर दया आ गई । उसने इस सेठ से कहा - "अरे सेठ ! तुम्हारी यह दशा ?" सेठ की आँख में आंसू आ गये । वह वृद्ध मनुष्य बोला - "सेठ ! घबराना मत । मेरे यहाँ काम करना । परन्तु एक बात जरूर लक्ष्य में रखना कि इस संसार में समय-समय पर रंग पलटता है । मैंने तुम्हें (उस समय) खेत संभालने को कहा था, तब तुम्हें मेरी बात कड़वी लगी थी ।" सेठ कुछ भी न बोल सके । किसी का अभिमान टिकता नहीं । राजा रावण का अभिमान भी उतर गया था । तब फिर आज का मानव किस बिसात में है ?

बन्धुओं ! इसका नाम संसार है । इस संसार (-समुद्र) में ज्वार और भाटा आया करता है । समुद्र में जब भरती आती है, तब पानी ही पानी दिखाई देता है । तिजोरी में पैसों की छनाछन होती है, तब स्वजन, परिजन और मित्रजन भी खम्मा-खम्मा करते हैं । उस समय मुस्काना नहीं; और जब पाप का उदय हो, तब घबराना नहीं । पुण्य और पाप के उदय के समय जो समभाव रखता है, वह सच्चा बहादुर है । संसार का सुख स्वप्नतुल्य है । जबकि आत्मिक सुख स्थिर और शाश्वत है । यदि सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो भगवान् कहते हैं -

"रंगरागनी जलावी दो होली, विषय-वासनाने नांखो चोळी ।
ज्ञान-दर्शननी भरी लो झोळी, तो आत्मामां प्रगटे दिवाळी ॥"

है कि प्राप्त करना मिनट में, और सुरक्षित रखना है जिंदगी तक। जैसे - तुमने बाजा
से पाँच लाख का हीरा खरीदा। घर लाकर तुमने अपनी पत्नी को दिया। वह हीरा तु
प्राप्त किया एक मिनट में, परन्तु उसे सुरक्षित (संभालकर) रखना तो जिंदगी तक है।
इस प्रकार इस संसार में अनन्तकाल से भटकते हुए जीव को एकेन्द्रिय, दोइन्द्रि
त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रियपन में धर्म का विचार नहीं आता। परन्तु आर्यक्षेत्र, पचेन्द्रियपन
मानवभव मिला तब धर्मरत्न प्राप्त करने की शक्ति आई। मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, उत्तमक
और वीतरागवाणी का श्रवण, यह सब उत्तरोत्तर मिलना कठिन है।

चिन्तामणिरत्न प्राप्त करने के लिए मनुष्य जितनी मेहनत करता है, उससे अनन्तगु
मेहनत मनुष्यपन में धर्मश्रद्धा प्राप्त करने हेतु करनी चाहिए। इन्द्र की या चक्रवर्ती
पदवी मिलनी आसान है, परन्तु जिनेश्वर-प्रभु का शासन और वीतरागवाणी का श्रव
कठिन है। कितनी घाटियाँ पार करने की, तब यह मनुष्यभव मिला है। ब
विचार करोगे तो समझ में आएगा कि हम मनुष्यभव में कितने ऊँचे ओहदे पर
जितने ऊँचे चढ़े हैं, उतनी साधवानी नहीं रखेंगे तो जोर से पछाड़ खायेंगे। महान् उ
मानवभव मिला है, तो अब भाग्य में लिखा होगा तो धर्म (धर्माचरण) होगा; यों भा
के भरोसे बैठे मत रहना। माँ रसोई बनाकर तुम्हारी थाली में परोस दे, पर उसे चबा
गले से नीचे तो स्वयं को ही उतारना पड़ता है। बड़े भाग्य से मानवभव मिला
पर अब आगे बढ़ने के लिए खुद को पुरुषार्थ करना पड़ेगा। मैं इसके लिए ए
दृष्टांत देकर समझाती हूँ।

एक मनुष्य जामुन के पेड़ के नीचे सोया है। वहाँ ऊपर से एक जामुन गिर क
उसकी छाती पर पड़ा। उस समय खेत के दूसरी ओर एक ऊंटवाला जा रहा था, उसने उ
चिल्लाकर बुलाया। तब ऊंटवाला पास में आकर पूछता है - "क्यों भाई ! क्या का
है ?" इस पर वह कहता है - "मेरी छाती पर जो जामुन पड़ा है, उसे उठाकर मेरे मुँह
रख दो।" इन पर वह ऊंटवाला कहता है - "अरे आलसी के पीर ! तुझे इसे मुँह
रखने में जोर आता है क्या ? मुझे ऊंट पर से उतरना पड़ा ! ऊंट को बिना भरोसे व
रखना पड़ा !" तब वह कहता है - "भाई ! मेरे हाथों और पैरों पर मेंहदी लगाई हुई है।
भगवान् कहते हैं - "जहाँ तक हम स्वयं उद्यम कर सकते हैं, वहाँ तक भाग्य का भरोस
क्यों रखना ?" अतः भाग्य के भरोसे न रहकर धर्मरत्न की प्राप्ति के लिए उद्यम करो।

देवानुप्रियों ! धर्म से सुख मिलता है और पाप से दुःख। जो व्यक्ति पहले धर्म करके
आए हैं, वे सुखी हैं, और जिन्होंने पहले धर्म की कमाई नहीं की, वे बेचारे कर्म के उद
से दुःखी हैं। आज तुम थोड़ा-सा श्रम करके लीला-लहर करते हो, और कोई बेचारे स
दिन कठोर परिश्रम (मजदूरी) करते हैं, फिर भी उन्हें पेट भरने जितना भी न
मिलता। तुम्हारा बच्चा जो मांगता है, उसके लिए तुरंत वह चीज हाजिर हो जाती है
जबकि गरीब का बेटा एक छोटी-सी चीज के लिए कितना रोता है, वह उन्हे न
मिलती। यह सब किसका प्रभाव है ? इस पर विचार करो।

वैसे ही संत-संतियों का जहाँ-जहाँ पुनीत पदार्पण होता है, वे उस-उस प्रदेश को धर्माराधना से हराभरा बना देते हैं।

बन्धुओं ! बहुत-से लोग यों मानते हैं कि महासतीजी चातुर्मास करने के लिए घाटकोपर पधारे, इसलिए चार महीने के लिए बंध गए। अब हम उपाश्रय जाएँ या न जाएँ, पर महासतीजी तो चार महीने उपाश्रय छोड़कर कहीं जानेवाली नहीं हैं। भाई हम तुम्हारे बंध से बंधे हुए नहीं हैं। परन्तु कर्म के बन्धन से मुक्त होने के लिए वीतराग-प्रभुजी की आज्ञा के बंध से बंधे हुए हैं। क्योंकि चातुर्मास के दिनों में जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है। इस कारण विचरण करने में छहकाया के जीवों की हिंसा होती है। इसलिए चातुर्मास में एक स्थान में रहकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करने और कराने की वीतराग-प्रभु की आज्ञा है। उन प्रभु की आज्ञा का पालन करने में हमें आनन्द है।

जब वर्षा होती है, तब वह सड़कों, मार्गों और गटरों में जो कचरा इकट्ठा हो जाता है, उसे धोकर साफ कर डालते हैं। वैसे ही वीतरागवाणी की वर्षा होती है, तब मनुष्य के मनरूपी गटर में क्रोध-मान-माया-लोभ और स्वार्थ के कूड़ाकर्कट जमे होते हैं, उन्हें धोकर स्वच्छ बना देते हैं। बन्धुओं ! जब वीतरागवाणी की बरसात हो रही हो, तब तुम अपने मन की गटरों को खोल डालना, ताकि उनमें कुवासना का जो कचरा जम गया हो, वह धुल जाए, और मन स्वच्छ बन जाए। मेघ गर्जन करता है, तो मयूर नाचते हैं, उसी प्रकार संतों के मुख से वीतरागवाणी रूपी मेघ की गर्जना होती है, तब श्रावक वर्ग का मन-मयूर नाच उठना चाहिए। वर्षा होते ही ग्रीष्मऋतु में तपी हुई जमीन शीतल हो जाती है, वैसे ही वीतरागवाणी की वर्षा होते ही संसार की आधि, व्याधि और उपाधि से संतप्त हुए मानवों के अन्तर में शीतलता व्याप्त हो जाती है।

एक वर्ष में तीन चातुर्मासिक द्वार होते हैं - शियाला (शीतऋतु), ऊन्हाला (ग्रीष्मऋतु) और चौमासा (वर्षाऋतु)। इन तीनों में अधिक महत्त्व चौमासे का है। यदि शीतऋतु में अधिक ठंढ न पड़े तो मनुष्य को अधिक नुकसान नहीं होता। अत्यधिक गर्मी न पड़े तो भी इतना नुकसान नहीं होता। परन्तु अगर बरसात न पड़े तो मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्रत्येक जीव का बुरा हाल हो जाता है। भूख-प्यास की जोरदार पुकार सुनाई देती है। वैसे ही जहाँ धर्म नहीं है, संतों का आगमन नहीं है, उस प्रदेश के मनुष्यों के कैसे बुरे हाल होते हैं ? विषय, कषाय और वासना के कचरे से उनका जीवन मलिन बना रहता है। तुम कैसे पुण्यवान हो कि तुम्हें संतों का सान्निध्य मिला है। संत-सतीवर्ग वीतरागवाणी की वीणा बजाकर तुम्हें धर्माराधना करने हेतु जागृत करते हैं। इस मंगलकारी दिवसों में जितनी हो सके उतनी धर्माराधना करके लाभ ले लो; और प्रतिक्षण आत्मा को जागृत रखो। यदि आत्मजागृति नहीं रखोगे तो प्रतिपाती होते देर नहीं लगेगी।

बन्धुओं ! कितने ज्ञान के धारक प्रतिपाती होते हैं, यह जानते हो न ? मति-श्रुत-अवधि और मनःपर्यवज्ञान में ऋतुमति मनःपर्यवज्ञानवाला प्रतिपाती हो जाता है। चौदह

लायेंगे; इस आशा में दिन बिताया। शाम पड़ते ही यह पोल के दरवाजे के पास आशा लिए खड़ा था। दूर से पिता को आते देख दौड़कर सामने गया और सफरजन के लिए हाथ फैलाकर खड़ा रहा। पिता के दिल में दुःख हुआ। परन्तु पुत्र को आश्वासन देने हेतु जेब में हाथ डालकर कहने लगा - "बेटा ! सफरजन तो लाया था, पर जेब में से गिर गया लगता है।" इस प्रकार झूठ बोले बिना पुत्र को समझाया नहीं जा सकता था। यों निर्दोष बालक को ज्यों-त्यों करके समझा तो दिया, परन्तु आँख में आंसू आ गए - 'ओह ! मैं कैसा अभागा हूँ कि अपने इकलौते लड़के को एक आने का सफरजन लाकर दे नहीं सकता।'

देवानुप्रियों ! विचार करना। गरीबी कैसी वस्तु है ? जिन्हें प्रचुर धन मिला है, उनके लिए एक आने का कोई हिसाब नहीं है। जिसे नहीं मिला है, उसे एक आने के लिए कितने डोल करने पड़ते हैं ? आज धनवानों के कपड़े वोशिंग मशीन में धोये जाते हैं। उसका जितना खर्च आता है, उतने खर्च में से तो गरीब का गुजारा चल सकता है। धनिकों के नाटक-सिनेमा-होटल के खर्च कितना होता है तथा उनकी गाड़ी खराब हो जाती है, तब उसके रिपेरिंग में कितने पैसे स्वाहा होते हैं ? इसका हिसाब लगाओ। इतने पैसों में गरीब आनन्द से अपना जीवन-निर्वाह कर सकता है। जहाँ धनवानों का हास्य है, वहाँ गरीबों की हाय है ! तुम्हारे पुण्योदय से तुम्हें भरपूर सामग्री मिलती है, तो गरीबों के आंसू पोछना। मेरा कौन स्वधर्मी बन्धु कहाँ-कहाँ दुःखी है ? इसकी जांच-पड़ताल करना और मुक्त रूप से उन्हें मदद करना। रमेश अपने पिताजी से कहता है - "पिताजी ! आज सफरजन जेब में से गिर गया है, तो कल तो जरूर लाएँगे न ? कल सफरजन जेब में न रखकर थैली में रखकर लाना।" उसे कहाँ पता है कि मेरे पिताजी की कैसी स्थिति है ? उसका पिता कहता है - "बेटा ! अब कल नहीं लाऊँगा ! कल रविवार है, अतः छुट्टी का दिन है। परसों सोमवार है, वेतन पाने का दिवस है। अतः उस दिन मैं तुझे एक के बदले दो सफरजन लाकर दूंगा।" रमेश के हर्ष का पार न रहा। वह अपनी माँ के पास जाकर बोला - "माँ ! सोमवार को मेरे पिताजी मेरे लिए दो सफरजन लाकर देनेवाले हैं। फिर उन्हें खाने में कितना आनन्द आएगा ?" रमेश की माता अपने पति के सामने देखकर कहती है - "इसका हर्ष तो देखो ! अभी तक सफरजन हाथ में नहीं आए। तुमने इसे ला देने को कहा है, उसे सुनकर तो हर्ष में यह पागल हो उठा है, तो सफरजन मिल जाएगा, तब तो इसे कितना हर्ष होगा ?" सोमवार को रमेश के पिता ओफिस जाने के लिए घर से रवाना हुए। रास्ते में फ्रूटवाले की दुकान आई। दुकान में जाकर सफरजन के ढेर में से दो बड़े सफरजन छाँटकर निकाले। उसकी कीमत तय करके दुकानदार से कहा - "ये दो सफरजन अलग रख छोड़ना। मैं ओफिस से लौटूंगा, तब लेता जाऊँगा !" दुकानदार बोला - "भाई ! अभी ले जाओ न ?" इस पर उसने कहा - "अभी मेरे पास पैसे नहीं हैं। आज मुझे वेतन मिलनेवाला है। इसलिए पैसे देकर शाम

फेंक देती है ? नहीं । राजा की तिजोरी लूटी जा रही है, यह सुनकर प्रजा अधिक सावधान हो जाती है । भूमि खोदकर उसमें अपनी सम्पत्ति गाड़कर प्रजा अपनी मिल्कियत की अधिक सुरक्षा करती है । वह किसलिए इतनी सावधानी रखती है ? क्या उसका कारण तुम समझे ? राजा के यहाँ इतनी पहरेदारी होने पर भी तिजोरी लूटी गई, तब हमारी सम्पत्ति क्यों नहीं लूटी जा सकती है ? यों समझकर प्रजा अधिक सावधानी रखती है, परन्तु पस्तहिम्मत नहीं होती । इसी प्रकार चार ज्ञान के धारक चौदह पूर्वधर, आहारकशरीरी और उपशमश्रेणीवाले साधक अगर पतित हो जाते हैं, यह सुनकर हमें भी अधिक सावधान रहने की जरूरत है या नहीं ? यह कर्मराजा जीव को चार गतियों में नाच नचाता है ।

कर्मराजा का पराक्रम कैसा है ? यह वीतरागवाणी द्वारा सुन-समझकर हमें ज्ञानी-पुरुषों ने सावधान रहने को कहा है, परन्तु डरपोक बने रहना नहीं है । बस, यही विचार करना है कि जब ऐसे जीव भी पतित हो जाते हैं, हमें कितना सावधान रहना चाहिए ? एकेन्द्रियपन में भटकते-भटकते अनन्तकाल में मनुष्यपन मिला है । सुनो, महावीर-प्रभु के जीव ने मरीचि के भव में (सर्व विरति) चारित्र ग्रहण किया, किन्तु इस चारित्र के कष्ट सहन न होने से श्रमण दीक्षा छोड़कर त्रिदण्डी साधु बन गए । तीर्थंकर बनने से पहले के उनके २७ भव तो बड़े-बड़े गिनाये हैं, किन्तु बीच-बीच में स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों को असंख्य भव करने पड़े हैं । यदि छोटे-छोटे भवों (एकेन्द्रियादि जीवों में जन्म) सहित २७ भव हों तो मरीचि और महावीर के भव का अन्तर कोटाकोटि सागरोपम हो जाता है । पूर्वोक्त २७ भवों में एक-एक भव के आयुष्य का कालमान कैसे गिनेंगे ? यदि प्रत्येक भव का कालमान ३३ सागरोपम कदाचित् गिना जाए तो - तो ८००-९०० सागरोपम काल हो जाए । परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से सोचें तो ३३ सागरोपम की स्थिति-वाला जीव ४ अनुत्तर विमान में जन्म की अपेक्षा से दूसरे भव में पुनः ३३ सागरोपम की स्थिति पा सकता है । मगर तीसरे भव में फिर ३३ सागरोपम की स्थिति नहीं पा सकता । इसी तरह नारकी मरकर पुनः नारकी नहीं होते । श्रमण भगवान् महावीर के (सम्यक्त्व प्राप्ति से लेकर तीर्थकरत्व प्राप्ति तक) २७ भव (कल्प सूत्र में) गिनाये गए हैं, वे प्रायः त्रसपन में रहने के बताए हैं । जीव त्रसपन में रहे तो वह दो हजार सागरोपम व संख्यात वर्ष से अधिक नहीं रहता । अतः सवाल उठता है कि बाकी काल किन भवों में बिताया ? क्योंकि मरीचि के भव से लेकर भ. महावीर के भव के बीच का अन्तर लगभग एक कोटाकोटि सागरोपम का आंका गया है । उसमें त्रसपन में रहने का काल तो बहुत ही अल्प है । इससे स्पष्ट है कि बीच-बीच में भ. महावीर के जीव ने संख्यात-असंख्यात भव स्थावर जीव के रूप में किये हैं; ऐसी स्थिति में अपनी तो बात ही क्या करनी ? अतः इस चतुर्गतिक रूप संसार में भटकन को कम करने हेतु कर्मबन्ध को रोकने की खूब सावधानी रखो ।

जीव कितने काल के अन्तर से मनुष्यभव प्राप्त करता है ? : बन्धुओं ! एकेन्द्रिय से दोइन्द्रिय में आना भी बहुत कठिन है । 'भावनाशतक' में कहा है -

आँखों के सामने सिनेमा के चलचित्र की तरह उभर उठा । उसको ऐसा लगा, मानो रमेश हाथ लम्बे करके कह रहा हो - 'पिताजी ! सफरजन... ।' इसी उधेड़बुन में उसने अपने दिमाग पर नियंत्रण खो दिया । पागल की तरह उन दोनों सफरजनों को उठाकर चलने लगा । वहाँ पीछे से जोर से आवाज आई - 'चोर-चोर, पकड़ो इसे ।' फलतः चोरी का आरोप लगाकर उसे पकड़कर जेल में डाल दिया । थोड़ी देर तक वह बेसुध हो गया । जब होश में आया, तब देखा कि स्वयं पुलिस चौकी की एक अंधेरी कोठली में लोहे के सलाखों के पीछे बैठा है ।

इस ओर शाम के ५ बजे रमेश स्टेशन पर आकर खड़ा रहा । साढ़े पाँच बजे गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, तब उसके आनन्द का पार न रहा कि अभी मेरे पिताजी सफरजन लेकर आएँगे । गाड़ी में से पैसेंजर एक के बाद एक उतरने लगे । सभी यात्री उतर गए । सभी अपनी-अपनी राह चल दिये । रमेश प्रत्येक व्यक्ति के सामने ताक-ताककर देखता रहा । परन्तु उसके पिताजी आए नहीं, तब उसके धैर्य ने जवाब दे दिया । स्टेशन पर कोई भी आदमी नहीं रहा, तब वह निराश होकर उदास चेहरे से घर वापस आया और बोला - "माँ ! गाड़ी तो आ गई । पर मेरे पिताजी नहीं आए ।" इस पर माँ ने कहा - "बेटा ! अब वे ९ बजे की गाड़ी में आएँगे । आज वेतन का दिवस है । इसलिए शायद तेरे पिताजी कोई चीज वस्तु खरीदने के लिए रुक गये होंगे । तू अभी सो जा । तेरे पिताजी आएँगे, तब मैं तुझे जगा दूंगी ।" यों रमेश को समझा-बुझाकर उसकी माँ ने उसे सुला दिया ।

इस तरफ रमेश के पिता जेलर को विनती करते हैं - "भाई ! मैं चोर नहीं हूँ । मेरी यह दशा हुई है । भले ही मुझे जेल में डाला है । पर मुझे एक घंटे के लिए छुट्टी दो, ताकि मैं अपने प्रिय बच्चे को सफरजन देकर आ जाऊँ ।" उसकी करुण कहानी सुनकर जेलर का हृदय पिघल गया । वह कहने लगा - "अगर आपको मेरी बात पर विश्वास न आता हो तो मेरे घर जाकर प्रतीति कर आओ ।" अपने घर का ठिकाना-पता बता दिया । जेलर रात को उसके घर पर सफरजन लेकर गया । उस समय लड़का अपनी माँ से कहता है - "माँ ! अभी तक मेरे पिताजी सफरजन लेकर नहीं आए । कहाँ गए होंगे ?" माता पुत्र से कहती है - "बेटा ! अभी आएँगे ।" यह वार्तालाप सुनकर जेलर को विश्वास हो गया कि यह चोर नहीं है । सच्चा मनुष्य मारा जाता है । उसने द्वार खटखटाया । रमेश को लगा कि मेरे पिताजी आ गए हैं । जेलर ने रमेश की माता से सारी बात खोलकर कही कि रमेश के लिए सफरजन लेने जाते उनकी यह दशा हुई है । यह सुनते ही माता-पुत्र दोनों धड़ाम से धरती पर गिर पड़े । फिर वे दोनों जेलर के साथ वहाँ आए । जेल के सलाखों के पीछे बैठे हुए पति को देखकर पत्नी और रमेश फफक-फफक कर रोने लगे । "अरेरे ! पिताजी ! मेरे लिए सफरजन लेने जाते हुए आपको जेल में जाना पड़ा ।" यों रमेश हृदयद्रावक विलाप करने लगा । अन्त में, तीन दिवस के करुण कल्पान्त के अन्त में, यथार्थ प्रमाण प्राप्त करके रमेश के पिता को कारागार से मुक्त किया

पहले हम कह आए हैं कि सूक्ष्म निगोद एकेन्द्रिय में से बेइन्द्रिय में आना भी बहु ही कठिन है । बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी जीव त्रस कहलाते हैं । त्रसकाय के जी अधिक से अधिक दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष तक रह सकता है । त्रसका की कायस्थिति दो हजार सागरोपम और संख्यात वर्ष की है । इतने काल में वह जी मोक्ष प्राप्त करने की साधना न करे तो वह पुनः एकेन्द्रिय में पटक दिया जाता है हमने इस मनुष्यभव को पाया है । यदि इस जन्म को हार गये तो यह पुनः मिलना कठि है । 'आचारांग सूत्र' - ६ में भगवान् ने कछुए का दृष्टांत देकर समझाया है -

"से बेमि से जहावि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन-पलासे उमग्ग से नो लहइ । भजंगा इव सन्निवेसं नो चयंती, एवं एगे अणेगरुवेहि कुलेहिं जाया, रुवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, नियाणओ ते न लभंति मुक्खं ।"

- आ. सू-

जिस प्रकार शैवाल नामक वनस्पति से आच्छादित किसी जलाशय (विशाल ह्रद) किसी कछुए ने दैवयोग से एक छिद्र में से मुँह बाहर निकाला । वह बाहर सूर्य का सुन्द दृश्य देखकर पुनः अन्दर गया और अपने सम्बन्धियों में आसक्त होकर उन्हें वह दृश दिखाने के लिए लाया । इतने में वह छिद्र शैवाल से आच्छादित हो गया । अब उसे बाह आने का मार्ग प्रायः प्राप्त नहीं होता । इसी प्रकार संसाररूपी जलाशय में आसक्तिरूप शैवाल का गाढ़ आच्छादन है । उससे बाहर निकलने का मार्ग उस आसक्त जीवात्मा क प्राप्त होना कठिन है । जिस प्रकार वृक्ष शीत, उष्णता, वर्षा आदि सहन करते हुए अप स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में नहीं जा सकते, इसी प्रकार संसारी जीव उच्च-नी आदि विविध कुलों में उत्पन्न होकर इन्द्रियों के विविध विषयों में आसक्त बनते हैं आसक्ति के दुष्परिणामवश विविध दुःखों से घबराकर करुण आक्रन्द एवं विलाप कर देखे जाते हैं । फलतः ऐसे विषयासक्त जीव संसारचक्र में से छूटकर सर्व कर्मक्ष करके मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते । अर्थात् दुःख के निदानभूत अपने कर्मों से छू नहीं सकते । क्योंकि ऐसी स्थिति में उन्हें मोक्षमार्ग पाने हेतु सम्यक्त्वरूप सत्यमा मिलना दुष्कर हो जाता है, जिससे वे कर्म से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते ।

देवानुप्रियों ! इस दृष्टांत का आशय समझकर अनन्तकाल के पश्चात् प्राप्त हु अमूल्य मानवभव, उसमें भी वीतराग-देव-प्ररूपित जैनधर्म का महान् योग, उत्तम कुल परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियाँ, आर्यक्षेत्र तथा सत्यासत्य का निर्णय करने जितना क्षयोपशम सद्बुद्धि आदि प्राप्त हुए हैं । इस सुयोग को सफल बनाने के लिए प्रमाद को दूर क के विषयों के प्रति वैराग्यभाव लाओ ! आरम्भ और परिग्रह इस जीव की संसार-वृद्धि करानेवाले तथा जन्म-मरण के उत्पादक जानकर अल्पारम्भी और अल्पपरिग्रही बनो अगर शक्ति और रुचि हो तो संसारत्यागी संयमी बनो, किन्तु महान् पुण्योदय से प्राप्त मानवजन्म को ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की यत्किंचित् आराधना करके सफल बन लो । ऐसा सुयोग बार-बार मिलना दुर्लभ है ।

नगरी की महत्ता राजा को आभारी है। राजा अगर न्याय-नीतिमान, प्रामाणिक और जागृत होता है तो उसके द्वारा शासित नगरी भी आबाद रहती है। भगवान् ने (आध्यात्मिक दृष्टि से) कहा - "हमारी देह भी एक नगरी है। देहरूपी नगरी का राजा आत्मा (चेतनदेव) है। नगरी का (यह) राजा अगर भान भूलता है तो (वह) नगरी खैदान-मैदान हो जाती है। उसी प्रकार यदि यह चेतनराजा भान भूले तो देह नगरी भी खैदान-मैदान हो जाती है।

आत्मा अपने स्व-भाव में कैसा है ? कैसे रहे ? : ज्ञानीजन कहते हैं - "अगर आत्मा स्व-भाव में स्थिर रहे तो इस संसारसागर को पार करने में देर नहीं लगती।" आत्मा का वास्तविक मूल्य उसके शुद्ध स्वभाव में है। यदि आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव में स्थिर न रहे (छोड़ दे) तो उसकी कुछ भी कीमत नहीं है। जैसे शक्कर में मिठास हो तो उसकी कीमत है। अगर शक्कर में से मिठास निकल जाए तो शक्कर की कोई कीमत नहीं होती। शक्कर में से मिठास कभी अलग नहीं होता, क्योंकि मिठास शक्कर का गुण है। *यह तो एक रूपक है, केवल समझने के लिए। शक्कर की बोरियाँ भरी हुई* हों, परन्तु उनमें मिठास न हो और तुम्हें वे बोरियाँ कोई मुफ्त में भी दे तो ले लोगे क्या ? नहीं लोगे। उसी प्रकार आत्मा का स्व-भाव ज्ञान-दर्शनमय है, वह उससे अलग नहीं होता। चाहे जितना लम्बाकाल व्यतीत हो गया, या हो जाएगा; फिर भी आत्मा का स्व-भाव आत्मा में भी रहता है, रहेगा। परन्तु वर्तमान स्थिति में अपने स्वभाव के सरोवर को भूलकर विभाव के प्रवाह में बह रहा है -

स्व-भावनुं सरोवर भूलीने, विभाव वहेणे तणायो (२)
मोती नहि ओ भूल्यो हंसा, गोबर कां न जणायो (२)
दोड़ी दोड़ी ने दोड्यो तोये, क्षीर नहि पामनारो रे....
एक जाग्यो न आतम तारो, तो निष्फल छे जन्मारो।
अनन्तशक्तिनो स्वामी थईने, बनी गयो बिचारो रे ॥ एक जाग्यो ना...

अपना आत्मा अनन्तशक्ति का अधिपति है, परन्तु आज वह अनन्तशक्ति का धनी आत्मा गोबर में गोते खा रहा है। (यों तो) आत्मा महान् वैभवशाली है। अनन्तज्ञान और अनन्तदर्शन का गुणपुंज है। ज्ञान-दर्शन आत्मा के असाधारण गुण हैं। जहाँ-जहाँ आत्मा है, वहाँ-वहाँ ज्ञान और दर्शन है और जहाँ-जहाँ ज्ञान और दर्शन है, वहाँ-वहाँ आत्मा है। निगोद के जीव में भी अक्षर के अनन्त भाग ज्ञान का नित्य उघाड़ (खुला) रहता है। ज्ञानादि गुण आत्मा के सिवाय अन्य किसी पदार्थ में नहीं रहते। आत्मा चेतन (चैतन्य गुणात्मक) है। उसके सिवाय तमाम (चेतनेतर) वस्तुएँ जड़ हैं। वस्तुतः जड़ के संयोग के कारण आत्मा वर्तमान में अपने स्वभाव को भूल गया है। इसी कारण वह चौरासी लाख जीवयोनियों में भटक रहा है; तथैव नरक-निगोद आदि चारों गतियों में कर्मानुसार उसने भ्रमण किया है।

बन्धुओं ! इस मानवभव में हमें ऐसा अमूल्य अवसर मिला है कि हम अपने स्व-भाव को सम्पूर्ण रूप से प्रकट कर सकते हैं। अतः वर्तमानकाल अपने लिए बहुत ही

तड़क-भड़कवाला बनकर फिरता है, परन्तु उसको कभी विचार होता है कि मैं किस कमाई पर नाच रहा हूँ ?

बन्धुओं ! अपना शरीर भी बंधी मुद्दत तक महंगे किराये का मकान है। उसमें आहार, शरीर, इन्द्रियाँ, उनके विषय और उनके साधनों के विषय में प्रतिक्षण पुण्य तो क्षीण (खर्च) हो रहा है, और कर्म का कर्जा बढ़ रहा है। सज्जन आदमी को महंगे भाव का भव्य भवन भारी पड़े तो सहायक किरायेदार खड़ा करके अपने सिर से भाड़े का बोझ हलका करता है। परन्तु शरीररूपी भव्य-भवन का भाड़ा बढ़ जाये तो कौन-से सहायक किरायेदार खड़े किये जाएँ ?, क्या आप जानते हैं ?

सहायक किरायेदार कौन-से ? : जहाँ तक शरीर स्वस्थ है, वहाँ तक तप कर लो, आहार पर नियंत्रण (कन्ट्रोल) करो, जितनी हो सके (षट्कायिक जीव) दयाव्रत का पालन करो, दान करो, शील पालो, सुपात्रदान, अभयदान और ज्ञानदान में इस शरीर का उपयोग हो जाय तो समझना मैंने अनेक सहायक किरायेदार खड़े कर दिये हैं। मकानमालिक चतुर हो तो ऐसे सहायक किरायेदार खड़े करके सिर से जोखिम (बोझ) उतार देता है। इस शरीररूपी महल का भाड़ा खड़ा करने में २४ घंटे प्रयत्न करना पड़ता है। यह मानव-तनरूपी महल मिला है, उसमें प्रसन्न रहने को जिंदगी के कीमती समय का दुर्व्यय मत करो। प्रतिक्षण सावधान रहो। हीरे, माणिक, मोती या सोना खो जाता है, उसे खोजने में आप कितनी मेहनत करते हैं, फिर भी न मिले तो कितना अफसोस होता है ? किन्तु मानवजीवन का एक-एक क्षण हीरे, माणिक, मोती और सोने से भी अधिक कीमती हैं। वे अमूल्य क्षण नष्ट हो रहे हैं, इसका कोई दुःख होता है ?

पुत्र की वर्षगांठ आती है, तब माता-पिता मिष्टान्न और फरसाण बनाकर वर्षगांठ मनाते हैं। माता मानती है कि मेरा पुत्र ५ वर्ष का हो गया। मगर उसकी जिंदगी के ५ वर्ष कम हो गए हैं, उसका अफसोस है क्या ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तेरी जिंदगी में जबतक उत्साह है, साहस है, देह का महल निढाल नहीं हुआ है, वहाँ तक पहले कह गए हैं, वैसे सहायक किरायेदार खड़े (तैयार) कर लो। बाद में अंतिम समय में सहायक किरायेदार खोजने जाओगे तो नहीं मिलेंगे।" इस समय तो जब मनुष्य का अन्तिम समय आता है, तब धर्मादा करने का कहने को तैयार होता है। सारे त्याग-प्रत्याख्यान भी अन्तिम समय में होते हैं, तो क्या मरते समय अन्तिम किरायेदार मिल जाएगा ? मरते समय कौन किरायेदार (तुम्हारे पास) आएगा ? जहाँ बीमा (इन्स्योरेंस) न कराया गया हो, वहाँ ऐसी स्थिति में सहायक किरायेदार कहाँ से आएँगे ? अतः एक विचार निश्चित कर लो कि भाड़ा चढ़े तब से सहायक किरायेदार खड़े कर लो।

बन्धुओं ! अनादिकाल से आत्मा मकानों का किराया भरकर दिवालिया होता आया है; परन्तु इस मनुष्यभव का स्थान ऐसा मिला है कि उसमें साहूकार बनकर रहना चाहे तो रह सकता है। मगर दिवालिया की परम्परा में साहूकार होने की कठिनाई है। चिन्तामणि रत्न मिलना मुश्किल है, और टिकना तो इससे भी अधिक मुश्किल है। जगत् में नियम

में अकुलाता और मुर्झाता नहीं। अपितु यों मानता है कि मेरे द्वारा किये हुए कर्मों को मैं भोगता हूँ, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। ऐसे अन्तरात्मा के सिर पर चाहे जैसा धर्मसंकट आए, वह वीतराग-वचनों के प्रति श्रद्धा को नहीं छोड़ता। अन्तरात्मा रत्नत्रयी को बाधा नहीं आने देता। श्रेणिकराजा, कृष्ण वासुदेव आदि सब अविरति सम्यग्दृष्टि थे। फिर भी वे जब-जब भगवान् की वाणी सुनने जाते, दर्शन करने जाते, तब-तब भगवान् और भगवान के संतों को देखकर उनकी आँखों में आंसू आ जाते। अहो प्रभो ! हम आरम्भ से आसक्त और विषयासक्त के भँवर में बह रहे हैं। कुटुम्ब के दलदल में गले तक फंसे हुए हैं। हम जैसे पामरों का कब और कैसे उद्धार होगा ? हम अविरति का बन्धन तोड़कर विरति की वरमाला कब पहनेंगे ? धन्य है, इन छोटे-छोटे श्रमणों को, जिन्होंने यौवन के सोपान पर पैर रखते ही संसार छोड़ दिया। जिन्होंने विषयों का वमन कर दिया, इन्हें हमारे त्रिकाल नमन हैं।

बन्धुओं ! देखो, ये जीव संसार में गले तक फंसे हुए थे, फिर भी उनके अन्तरात्म दृष्टि के द्वार कैसे खुल गये थे ? अविरति सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत-प्रत्याख्यान नहीं कर सकता। वे कषायों से रहित भी नहीं बन पाते, आरम्भ के घर में बैठे हैं, फिर भी उनका लक्ष्य देव, गुरु और धर्म इन आराध्य तत्त्वों की ओर होता है। जैसे - कोई मनुष्य सच्चे मोतियों की पोटली साथ में लेकर भोजन करने बैठा हो, तब भले ही वह भोजन करता हो, मगर उसका लक्ष्य तो वहीं (मोतियों की पोटली की रक्षा में) होता है। उस समय वह खाने में रसों को नहीं चखता हो, ऐसा नहीं होता। वह खट्टा, मीठा, कड़वा आदि रस जिस रूप में होते हैं, उन्हें उसी रूप में मानते हैं, किन्तु उस मोतियों की पोटली रूप लक्ष्य चूकता नहीं। क्या उसे सच्चे मोतियों की पोटली की रक्षा करने में उपेक्षा हो सकती है ? 'नहीं।' उसी प्रकार दुनियादारी में प्रवर्तमान मानव भले राज्य-संचालन करता हो, तथापि देव, गुरु और धर्म की रक्षा के लिए राज्य जाता हो, तो भले ही जाए, कुटुम्ब विरोध करे तो भले ही करे, परन्तु मोती की पोटली की तरह देव, गुरु और धर्म, इन तीन तत्त्वों को कदापि बाधा नहीं आने दे। श्रेणिकराजा को देव, गुरु और धर्म के प्रति कैसी प्रीति थी, इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है -

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा : हमारे जैनशासन में मैतार्य नामक एक मुनि हो गए हैं। यह तो आप जानते हैं न ! ये मैतार्यमुनि गृहस्थाश्रम में थे, तब श्रेणिकराजा ने अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया। इसलिए मैतार्यमुनि श्रेणिकराजा के दामाद थे। वह मुनि मैतार्य एक दिन एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा के लिए पधारे।

मासखमणने पारणे पधार्या देखी, सोनीने भाव उभराया।
जवला घडता त्यां उठीने आवे, भाव-सहित मोदक वहोरावे ॥
धन्य भाग्य फल्या, पुनीत आंगण थया।
आव्या तथारूप अणगार रे....क्षमाभाव धरी...

तड़क-भड़कवाला बनकर फिरता है, परन्तु उसको कभी विचार होता है कि मैं किस कमाई पर नाच रहा हूँ ?

बन्धुओं ! अपना शरीर भी बंधी मुद्दत तक महंगे किराये का मकान है। उसमें आहार, शरीर, इन्द्रियाँ, उनके विषय और उनके साधनों के विषय में प्रतिक्षण पुण्य तो क्षीण (खर्च) हो रहा है, और कर्म का कर्जा बढ़ रहा है। सज्जन आदमी को महंगे भाव का भव्य भवन भारी पड़े तो सहायक किरायेदार खड़ा करके अपने सिर से भाड़े का बोझ हलका करता है। परन्तु शरीररूपी भव्य-भवन का भाड़ा बढ़ जाये तो कौन-से सहायक किरायेदार खड़े किये जाएँ ?, क्या आप जानते हैं ?

सहायक किरायेदार कौन-से ? : जहाँ तक शरीर स्वस्थ है, वहाँ तक तप कर लो, आहार पर नियंत्रण (कन्ट्रोल) करो, जितनी हो सके (षट्कायिक जीव) दयाव्रत का पालन करो, दान करो, शील पालो, सुपात्रदान, अभयदान और ज्ञानदान में इस शरीर का उपयोग हो जाय तो समझना मैंने अनेक सहायक किरायेदार खड़े कर दिये हैं। मकानमालिक चतुर हो तो ऐसे सहायक किरायेदार खड़े करके सिर से जोखिम (बोझ) उतार देता है। इस शरीररूपी महल का भाड़ा खड़ा करने में २४ घंटे प्रयत्न करना पड़ता है। यह मानव-तनरूपी महल मिला है, उसमें प्रसन्न रहने को जिंदगी के कीमती समय का दुर्व्यय मत करो। प्रतिक्षण सावधान रहो। हीरे, माणिक, मोती या सोना खो जाता है, उसे खोजने में आप कितनी मेहनत करते हैं, फिर भी न मिले तो कितना अफसोस होता है ? किन्तु मानवजीवन का एक-एक क्षण हीरे, माणिक, मोती और सोने से भी अधिक कीमती हैं। वे अमूल्य क्षण नष्ट हो रहे हैं, इसका कोई दुःख होता है ?

पुत्र की वर्षगांठ आती है, तब माता-पिता मिष्टान्न और फरसाण बनाकर वर्षगांठ मनाते हैं। माता मानती है कि मेरा पुत्र ५ वर्ष का हो गया। मगर उसकी जिंदगी के ५ वर्ष कम हो गए हैं, उसका अफसोस है क्या ? ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तेरी जिंदगी में जबतक उत्साह है, साहस है, देह का महल निढाल नहीं हुआ है, वहाँ तक पहले कह गए हैं, वैसे सहायक किरायेदार खड़े (तैयार) कर लो। बाद में अंतिम समय में सहायक किरायेदार खोजने जाओगे तो नहीं मिलेंगे।" इस समय तो जब मनुष्य का अन्तिम समय आता है, तब धर्मादा करने का कहने को तैयार होता है। सारे त्याग-प्रत्याख्यान भी अन्तिम समय में होते हैं, तो क्या मरते समय अन्तिम किरायेदार मिल जाएगा ? मरते समय कौन किरायेदार (तुम्हारे पास) आएगा ? जहाँ बीमा (इन्स्योरेंस) न कराया गया हो, वहाँ ऐसी स्थिति में सहायक किरायेदार कहाँ से आएँगे ? अतः एक विचार निश्चित कर लो कि भाड़ा चढ़े तब से सहायक किरायेदार खड़े कर लो।

बन्धुओं ! अनादिकाल से आत्मा मकानों का किराया भरकर दिवालिया होता आया है; परन्तु इस मनुष्यभव का स्थान ऐसा मिला है कि उसमें साहूकार बनकर रहना चाहे तो रह सकता है। मगर दिवालिया की परम्परा में साहूकार होने की कठिनाई है। चिन्तामणि रत्न मिलना मुश्किल है, और टिकना तो इससे भी अधिक मुश्किल है। जगत् में

में अकुलाता और मुर्झाता नहीं । अपितु यों मानता है कि मेरे द्वारा किये हुए कर्मों को मैं भोगता हूँ, उसे अन्तरात्मा कहते हैं । ऐसे अन्तरात्मा के सिर पर चाहे जैसा धर्मसंकट आए, वह वीतराग-वचनों के प्रति श्रद्धा को नहीं छोड़ता । अन्तरात्मा रत्नत्रयी को बाधा नहीं आने देता । श्रेणिकराजा, कृष्ण वासुदेव आदि सब अविरति सम्यग्दृष्टि थे । फिर भी वे जब-जब भगवान् की वाणी सुनने जाते, दर्शन करने जाते, तब-तब भगवान् और भगवान के संतों को देखकर उनकी आँखों में आंसू आ जाते । अहो प्रभो ! हम आरम्भ से आसक्त और विषयासक्त के भँवर में बह रहे हैं । कुटुम्ब के दलदल में गले तक फंसे हुए हैं । हम जैसे पामरों का कब और कैसे उद्धार होगा ? हम अविरति का बन्धन तोड़कर विरति की वरमाला कब पहनेंगे ? धन्य है, इन छोटे-छोटे श्रमणों को, जिन्होंने यौवन के सोपान पर पैर रखते ही संसार छोड़ दिया । जिन्होंने विषयों का वमन कर दिया, इन्हें हमारे त्रिकाल नमन हैं ।

बन्धुओं ! देखो, ये जीव संसार में गले तक फंसे हुए थे, फिर भी उनके अन्तरात्म दृष्टि के द्वार कैसे खुल गये थे ? अविरति सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत-प्रत्याख्यान नहीं कर सकता । वे कषायों से रहित भी नहीं बन पाते, आरम्भ के घर में बैठे हैं, फिर भी उनका लक्ष्य देव, गुरु और धर्म इन आराध्य तत्त्वों की ओर होता है । जैसे - कोई मनुष्य सच्चे मोतियों की पोटली साथ में लेकर भोजन करने बैठा हो, तब भले ही वह भोजन करता हो, मगर उसका लक्ष्य तो वहीं (मोतियों की पोटली की रक्षा में) होता है । उस समय वह खाने में रसों को नहीं चखता हो, ऐसा नहीं होता । वह खट्टा, मीठा, कड़वा आदि रस जिस रूप में होते हैं, उन्हें उसी रूप में मानते हैं, किन्तु उस मोतियों की पोटली रूप लक्ष्य चूकता नहीं । क्या उसे सच्चे मोतियों की पोटली की रक्षा करने में उपेक्षा हो सकती है ? 'नहीं ।' उसी प्रकार दुनियादारी में प्रवर्तमान मानव भले राज्य-संचालन करता हो, तथापि देव, गुरु और धर्म की रक्षा के लिए राज्य जाता हो, तो भले ही जाए, कुटुम्ब विरोध करे तो भले ही करे, परन्तु मोती की पोटली की तरह देव, गुरु और धर्म, इन तीन तत्त्वों को कदापि बाधा नहीं आने दे । श्रेणिकराजा को देव, गुरु और धर्म के प्रति कैसी प्रीति थी, इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त है -

श्रेणिक राजा की धर्मश्रद्धा : हमारे जैनशासन में मैतार्य नामक एक मुनि हो गए हैं । यह तो आप जानते हैं न ! ये मैतार्यमुनि गृहस्थाश्रम में थे, तब श्रेणिकराजा ने अपनी पुत्री का विवाह इनके साथ किया । इसलिए मैतार्यमुनि श्रेणिकराजा के दामाद थे । वह मुनि मैतार्य एक दिन एक स्वर्णकार के यहाँ भिक्षा के लिए पधारे ।

मासखमणने पारणे पधार्या देखी, सोनीने भाव उभराया ।
जवला घडता त्यां उठीने आवे, भाव-सहित मोदक वहोरावे ॥
धन्य भाग्य फल्या, पुनीत आंगण थया ।
आव्या तथारूप अणगार रे....क्षमाभाव धरी...

मुझे चरोतर की एक सत्य घटना याद आ रही है ।

श्रीमंतों की श्रीमंताई और उद्धतता : चरोतर के एक गाँव में एक धनिक पटेल का बड़ा बंगला था । उसके बगल में एक गरीब का घर था । वह गरीब आदमी कारकून (क्लर्क) की सर्विस करता था । पति, पत्नी और एक बालक, यों तीन मनुष्यों का कुटुम्ब था । वे प्रतिमास ५० रुपये के वेतन से गुजारा चलाते थे । पड़ोस में सेठ के यहाँ पचास रुपयों का कोई हिसाब नहीं था । उस धनिक का लड़का और इस गरीब का लड़का दोनों लगभग समवयस्क थे । वे दोनों साथ में खेलते-रमते थे । धनिक के घर में मेवा, मिठाई और फ्रूट की कोई गिनती न थी । एक दिन धनिक का पुत्र सुरेश सफरजन (सेव) लेकर चौक में खड़ा-खड़ा लिज्जत से खा रहा था । उस समय वह गरीब का लड़का बोला - "भाई सुरेश ! तू यह क्या खा रहा है ?" वह बोला - "मैं सफरजन खा रहा हूँ ।" तब गरीब का लड़का कहने लगा - "सुरेश ! मुझे भी इसकी एक फांक दे न ?" बन्धुओं ! बालक का मन पवित्र होता है, उसे रमेश को एक फांक देने का मन हुआ, मगर उसकी माँ ने यह देख लिया । अतः उसने सुरेश से कहा - "खबरदार ! इसे सफरजन दिया तो ! तू एक दिन इसे दे देगा, तो यह रोज-रोज मांगने आएगा ।" देखो ! धन की कितनी गर्मी है ? सुरेश ने हाथ में रहे हुए सफरजन का टुकड़ा मुँह में रख लिया । बेचारा रमेश टुकर-टुकर देखता रह गया ।

पुत्र द्वारा पिता से की गई सफरजन की मांग : रमेश घर आकर पिता से कहता है - "पिताजी ! मुझे सफरजन खाने का बहुत मन हुआ है, तो मुझे एक सफरजन लाकर देंगे न ?" पिताजी बोले - "अच्छा, बेटा ! लाऊँगा ।" यों कहकर पिता अपनी सर्विस पर जाने को रवाना हुए । उक्त निर्दोष बालक के मन में हर्ष है कि मेरे पिताजी मेरे लिए सफरजन लानेवाले हैं । शाम हुई । गाड़ी आने का टाइम हुआ कि रमेश स्टेशन पर पहुँच गया । उसके पिता गाड़ी से उतरे कि तुरंत हाथ पकड़कर रमेश ने पूछा - "पिताजी ! मेरे लिए सफरजन लाये क्या ?" उसके पिताजी बोले - "बेटा ! आज तो मैं सफरजन लाना भूल गया ।" छोटे-से फूल-से कोमल बच्चे का मुँह कुम्हला गया । वह निःश्वास छोड़कर बोला - "ठीक ! कल जरूर लाना, भूल मत जाना !" उसके पिता ओफिस से छूटकर घर आते हुए रास्ते में फ्रूट की दुकान के पास से निकल रहे थे, तभी रमेश की मांग याद आ गई । पर अब 'भूल गया' यह बात चल नहीं सकती थी । सफरजन तो याद था, परन्तु जेब में एक भी पैसा नहीं था । सफरजन कहाँ से लाए ? एक ओर अपने प्रिय पुत्र की यह पहली मांग थी । सफरजन एक आने में मिलता था, परन्तु जहाँ पास में एक पैसा भी नहीं हो, वहाँ एक आना कहाँ से लाए ? परन्तु बालक की मांग पूरी करने के लिए चपरासी से २५ पैसे उधार मांगे ! मगर चपरासी ने उधार पैसे देने से इन्कार कर दिया । कल स्वयं पच्चीस पैसे कहाँ से लाएगा ? उसका भी पता नहीं था । परन्तु निराश हुए बच्चे का दयापूर्ण मुँह के सामने देखकर उसे आश्वासन देते हुए कहा - "बेटा ! आज भी मैं भूल गया । कल लेकर आऊँगा ।" दूसरे दिन - "आज मेरे पिताजी सफरजन

सुनार ने मुनि के प्राण लिये : सुनार मुनि को वाड़े में ले गया । उसके पास गीले चमड़े के चामर की पट्टी थी । गीला भीगा हुआ चमड़ा तो कोमल होता है न ? सुनार ने मुनि को धूप में खड़ा करके उनके मस्तक पर गीले चमड़े के चामर की पट्टी बांधी। ज्यों-ज्यों धूप बढ़ती गई, त्यों त्यों चमड़े की पट्टी सूखने लगी । मुनि की चमड़ी और नसें खिचन से तड़-तड़ टूटने लगीं, खोपड़ी भी फट गई । इस कारण मुनि के प्राण निकलने से वे एकदम धरती पर गिर पड़े । दूसरी ओर, किसी ने लकड़ी का भारा धड़ाक से नीचे गिराया । उसकी आवाज से जो क्रौंचपक्षी जौ चरकर वहाँ बैठा था उसके मन में दहशत होने से वह एकदम चरक गया । उसके चरकने से जौ निकल पड़े । (जब सोनी को मालूम पड़ा कि जौ तो क्रौंचपक्षी चर गया था, किन्तु हत्या हुई मैतार्यमुनि की । मुनि (गृहस्थ पक्ष में) राजा श्रेणिक के दामाद हैं । सोनी गंभीर विचार में पड़ गया । अभी राजा श्रेणिक के मनुष्य आएँगे, वे इस मुनि को मरे हुए देखेंगे तो मेरा तो आ बनेगा । मुझे गिरफ्तार करके भयंकर सजा दी जाएगी । अब इससे बचने का एक ही रास्ता है । राजा श्रेणिक शुद्ध सम्यक्त्वी हैं । इन्हें देव, गुरु और शुद्ध (आत्मा) धर्म प्राण से भी अधिक प्यारे हैं । ये साधु के कभी अंगुली भी नहीं ऊठायेंगे । साथ ही, कोई संत के अंगुली ऊठाये, या संत को सताए, तो उसे जिंदा नहीं छोड़ते । अतः मैं तात्कालिक तो साधु के वस्त्र पहन लूं । बाद में उतार डालूंगा । श्रेणिक राजा स्वयं आएगा, तो मैं बच जाऊँगा और यदि उनके नौकर आएँगे तो मुझे मार डालेंगे ।

मरण के भय से सोनी ने पहना साधु वेष : बन्धुओं ! सुनार को मुनि हत्या करने का कोई डर नहीं है, किन्तु अपनी मृत्यु का भय लगा है । अतः साधु का वेष पहनकर दरवाजे बंद करके बैठ गया । इतने में ही राजा का सिपाही सोने के जौ लेने के लिए आया । उसने आवाज दी - "सोनी ! दरवाजा खोल । मैं जौ लेने के लिए आया हूँ ।" इस पर सोनी बोला - "धर्मलाभ !" मगर दरवाजा नहीं खोलता । सोनी 'धर्मलाभ' देता है, तब सिपाही कहता है - 'जौ दे ।' तो वह पुनः कहता है 'धर्मलाभ' । सिपाही ने कहा - "जौ जल्दी दे, नहीं तो मैं राजा से तेरी शिकायत कर दूंगा । अभी राजा आकर तेरी खबर ले लेंगे ।" फिर भी प्रत्युत्तर में सोनी कहता है - "धर्मलाभ ।" देखो, धर्मलाभ की महिमा कैसी है ?

'धर्मलाभ' शब्द की धुन के पीछे राजा श्रेणिक का आगमन : सिपाही तो दरवाजे खटखटा कर थक गया । दरवाजे नहीं खुले । सिपाही को लगा कि अपने महाराजा जिस साधु को वन्दन करते हैं, तब वह साधु 'धर्मलाभ' कहता है । 'तो यह साधु है क्या ?' सिपाही वहाँ से सीधा राजा के पास आया और उनसे कहा - "मैं सुनार के घर सोने के जौ लेने गया था । उसके घर का दरवाजा बंद था । मैं दरवाजा खटखटाया और सोनी से कहा - 'जौ दे दे ।' तो अंदर से जवाब मिला - 'धर्मलाभ !' मैंने दो - तीन बार दरवाजा खटखटाया और उसे खोलने के लिए कहा । मगर अंदर से 'धर्मलाभ...'

को लेता जाऊँगा।" वहुत दिनों से सफरजन-सफरजन चाहते पुत्र के हाथ पर इन्हें रखते ही वह कितना खुश हो जायेगा और नाचने-कूदने लग जाएगा ? इन विचारों की कल्पना करते हुए रमेश के पिता के मुख पर हास्य का तेज चमकने लगा।

आशा से वेतन लेने जाते हुए हुआ आशा का भंग : तीन वजे वेतन लेने का समय होते ही वह हस्ताक्षर करने हेतु मैनेजर के रूम में गया। मैनेजर ने इसके नाम के वाउचर पर इसके नाम के साथ रिमार्क किया - "यह अपना काम पूरा न करे, वहाँ तक इसे वेतन नहीं चुकाना।" लाल पैंसिल से लिखे हुए अक्षर इसके हृदय पर मानो हथौड़े के जवर्दस्त प्रहार करके उसकी छाती की हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर कर डालने लगे। मैनेजर ने कहा - "तुमने तीन दिन काम कम किया है, उसे पूरा करोगे, तब वेतन मिलेगा।" थोड़ी देर तक सहमते-सहमते धीमे स्वर में वह बोला - "मैनेजर साहब ! दया करो।" मैनेजर साहब ने कहा - "भाई ! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं कर सकता। सेठ कैसे तेज मिजाज के हैं, यह तुम जानते हो न ? अगर तुम्हें वेतन चाहिए तो उनके पास जाकर उनसे विनती करो।" हाथ में वाउचर लेकर मन में अनेक प्रकार के विचार करता हुआ वह बड़े सेठ की ओफिस के द्वार पर जाकर खड़ा रहा। चपरासी ने सेठ को सूचना दी। अन्दर से आदेश छूटा - "Come in - अन्दर आ जाओ।" उस कारकून ने अन्दर जाकर नीचे झुककर सेठ को प्रणाम करके कहा - "साहब ! मुझे वेतन दें।" यों बोलते-बोलते उसकी आँख में अश्रु छलछला उठे। सेठ ने कहा -"यह नहीं हो सकता। अपने काम में हरामी करनेवाले मनुष्यों को मैं कदापि माफ नहीं करता।" नटवर ने रोते-रोते कहा - "साहब ! मैं कल सारी रात जागकर वाकी रहा हुआ काम पूरा कर दूगां। पर साहब ! मुझे आज वेतन दे दो।" सेठ ने कहा - "तो परसों वेतन मिलेगा।" उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा - "सेठ साहब ! मुझे अधिक नहीं तो, कम से कम एक रुपया तो दीजिए। एक रुपया न दें तो कम से कम आठ आना तो दे ही दें।" सेठ ने 'Get out' कहकर उसे निकाल दिया। एक गहरा निःश्वास लेकर कारकून रूम से वाहर आया और वाउचर मैनेजर के हाथ में सौंपते हुए बोला - "साहव ! कुछ भी नहीं वना !" फिर उसने सोचा - 'मैनेजर से मैं एक रुपया उधार मांगू।' परन्तु फिर मन मसोसकर रह गया कि मैं मांगू और वह नहीं दे तो ? दुनिया पर उसके मन में एक प्रकार का तिरस्कार व्याप्त हो गया कि धनवानों को गरीबों की परिस्थिति का ख्याल कहाँ से हो ? ओफिस से वह खाली हाथ वापस लौटा ! रास्ते में रह-रहकर मन में विचार आता रहा कि रमेश को आज क्या जवाव दूंगा ? कल उसने सफरजन ले आने के लिए भलामण की थी। आज वह सारे दिन आँखे तरेरकर मेरी प्रतीक्षा करता हुआ, आशा से वैठा होगा। मैं उसे क्या दूंगा ? यों विचार करता हुआ वह उस फ्रूटवाले की दुकान पर आ पहुँचा।

पुत्र की संवेदना के पीछे झूरता पिता जेल के सींखचों में : सुवह अलग छांटकर रखाये हुए दो सफरजन उसकी नजर में आए। उन्हें देखते ही रमेश का दयार्द्र चेहरा उसकी

का इकलौता जवान पुत्र गुजर जाय; उस वक्त, उसकी माँ को खाने-पीने, पहनने-ओढने या चलने- फिरने में जरा भी मन नहीं होता, इन सबसे विरक्ति हो जाती है, यह हुआ वैराग्य ।" यह कौन-सा वैराग्य है ? उसका पुत्र मर गया, उसके दुःख से यह उत्पन्न हुआ है ! इसी प्रकार किसी युवती का पति अकस्मात् चल बसता है तो उसका मन भी संसार पर से उठ जाता है । ऐसा वैराग्य दुःखगर्भित वैराग्य कहलाता है। पहले भले ही वह वैराग्य दुःखगर्भित या मोहगर्भित हो, किन्तु बाद में वह जीव (तात्त्विक दृष्टि से) समझ के घर में आ जाता है, तब वह वैराग्य ज्ञानगर्भित हो जाता है ।

मौत सामने देखकर नकली साधु में से असली साधु बन गया : सोनी का वैराग्य भय-जनित था । उसने सोचा था - 'भय से मुक्त हो जाने पर वेष छोड़ दूंगा ।' परन्तु श्रेणिकराजा की ललकार से वह सच्चा साधु बन गया । श्रेणिकराजा ने उसे जिंदा छोड़ दिया । उस समय श्रेणिकराजा को भी बहुत सहन करना पड़ा है । लोग कहने लगे - "ओहो ! एक पवित्र मुनि की जो हत्या करके साधु का ढोंग करके बैठा है, उसे यों जीवित छोड़ा जा सकता है ?" प्रजा राजा पर टूट पड़ी । मैतार्यमुनि राजा के दामाद थे । उनकी इस प्रकार हत्या करनेवाले व्यक्ति को जीवित छोड़ देने से पुत्री तथा उनके कुटुम्बीजन राजा पर टूट पड़े । परन्तु सम्यक्त्वी जीव धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा के कारण जगत् की, राजनीति की, कुटुम्ब की या पुत्र-पुत्री आदि किसी की भी परवाह नहीं करता । ऐसी परिस्थिति कब आती है ? यद्यपि राजा ने उसे ढोंगी समझकर दरगुजर नहीं किया, अपितु कठोर शब्दों में उसे कह दिया था - 'यदि तूने साधुत्व का त्याग कर दिया तो कड़कड़ाते तेल की कड़ाही में तल डालूंगा ।' संक्षेप में जिसे सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, वह कुटुम्ब -स्नेह और राजनीति आदि सबका त्याग कर सकता है और ऐसा निष्पक्ष न्याय पर दृढ़ रह सकता है । ऐसा सम्यक्त्वी आत्मा होता है, वह अन्तरात्मा बन सकता है । ऐसा अन्तरात्मा आगे बढ़ता-बढ़ता अन्त में कर्मों के बन्धन तोड़कर परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेता है । श्रेणिकराजा ने (साधुवेष पहने हुए) सुनार को जीवित छोड़ दिया, उसका मुख्य कारण साधुपन था, साथ ही साधुपन कायम रखने की शर्त भी थी।

'ज्ञाता धर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का प्रसंग चल रहा था कि सलिलावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी थी । वह नगरी कितनी लम्बी चौड़ी थी ? यह बात भी पहले कही जा चुकी है । वह नगरी देवलोक-सरीखी थी । देवलोक के देव जैसे सुखी होते हैं, वैसे ही वीतशोका नगरी के लोग देवों के समान सुखोपभोग करते थे । वर्तमान समय की तरह, वहाँ सरकार का कोई त्रास नहीं था । उस नगरी में कोई दुःखी मनुष्य दिखाई नहीं देता था । उस समय राजा उदार और विशाल हृदय होते थे । अपनी प्रजा कैसे सुखी रहे, वे यह देखना चाहते थे । वे (राजा) प्रजा के सुख में सुखी और प्रजा के दुःख में दुःखी होते थे । विक्रमराजा के राज्य में ऐसा कानून था कि कोई नया मनुष्य वहाँ रहने (बसने) के लिए आता, उसे प्रजा में से प्रत्येक व्यक्ति एक-एक स्वर्ण-मोहर और एक-एक ईंट दे । इस कारण उस नगरी की जनता में कोई दुःखी दिखाई नहीं

गया । रमेश अपने पिता से लिपटकर बोला - "पिताजी ! मेरे पाप से आपको जेल में जाना पड़ा । अब मैं कभी सफरजन नहीं मांगूंगा ।" अपने पिता की ऐसी स्थिति देखकर बालक का हृदय-परिवर्तन हो गया ।

बन्धुओं ! एक बालक भी दुःख देखकर सफरजन छोड़ देता है । बोलो ! तुमने संसार में कितने दुःख देखे ? फिर भी सफरजनरूपी संसार का मोह छोड़ने का विचार होता है क्या ?

संक्षेप में, समय काफी हो गया है । आज आषाढ़ी चौमासी पक्खी का पवित्र दिवस है । जैसे वर्षा होते ही धरती हरीभरी हो जाती है, वैसे आप भी अपना जीवन दान-शील-तप-भाव की, एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करके हराभरा बनाएँ । पुण्य के प्रभाव से तुम्हें धन-सम्पत्ति मिली हो तो परिग्रह पर से ममत्व का त्याग करके दीन-हीन-दुःखी एवं अभावपीड़ितों की सेवा करना । साथ ही रात्रिभोजन का त्याग, नाटक-सिनेमा-टी.वी. का तथा होटल के गंदे खान-पान का त्याग करना, सत्कार्यों में अपने धन का सद्व्यय करना । चातुर्मास काल में जितना अधिक हो सके, उतना अधिकाधिक धर्माराधना का लाभ लेना । व्याख्यान में जितना समय मिले उतना धर्मश्रवण का लाभ लेना । सामायिक, प्रतिक्रमण, त्याग, प्रत्याख्यान, साधु-साध्वियों की सेवा, साधर्मिक भक्ति आदि करना । ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता । 'आचारंग सूत्र' में उक्त कछुए को पुनः सूर्यदर्शन नहीं हुआ, वैसे ही आप भी अवसर चूके तो संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा । अतः जागृत, अप्रमत्त एवं सावधान रहकर समय का सदुपयोग अधिकाधिक जप, तप, धर्माराधना, मौन, संयम आदि में करो । विशेष भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ८

आषाढ़ वदी १, सोमवार — ता. १२-७-७६

स्व-भाव में डटो, विभाव से हटो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आगम के व्याख्याता, विश्वविख्यात और परमतत्त्व के प्रणेता ऐसे विश्ववन्दनीय परम पिता प्रभु के मुख में से निकली हुई शाश्वतवाणी, जिसका नाम सिद्धान्त है । (तीर्थंकर-प्रतिपादित) 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' के आठवें अध्ययन में अलौकिक भाव भरे हुए हैं । चार ज्ञान और चतुर्दशपूर्व (शास्त्र) के ज्ञाता पंचम गणधर श्रीसुधर्मास्वामी अपने विनयवान शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं - "उस काल और उस समय में सलिलावती विजय में वीतशोका नाम की नगरी थी । वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन थी ।"

नगरी सोहंती जल-वृक्ष-नगा; राजा सोहंता चतुरंगी सेना ।
नारी सोहंती पर-पुरुष-त्यागी; साधु सोहंता निरवद्य वाणी ।।

अर्थात् - जिस नगरी में बहुत-से बाग-बगीचें हों, जहाँ बावड़ी, कुआ और नदी हो; तथा पर्वत हो; आम, इमली, नीम, आदि अनेक प्रकार के वृक्ष हों, दूसरे गाँव से आनेवाले यात्रियों को ठहरने के लिए धर्मशाला हो, अनेक प्रकार के फल-फूल हों, जगह-जगह विश्राम के स्थान हों, यह सब नगरी का सौन्दर्य है । जिस नगरी में कुआँ, बाग, बावडी, धर्मशाला, उपाश्रय आदि कुछ भी नहीं होते, तो वह नगरी शोभायमान नहीं होती, वीत शोका नगरी अत्यन्त सौन्दर्यवती थी, सुशोभित थी । आगे कहा है -

'तीसेणं वीतसोगाए रायहाणीए उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए इद कुंभे नामं उज्जाणे ।'

उस वीतशोका नामक राजधानी (नगरी) के उत्तरपश्चिम दिशा (ईशान कोण) में इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान था । वह उद्यान बहुत ही रमणीय और मनोहर था । आजकल बगीचा कहते हैं, उस समय में उद्यान कहते थे । बगीचे में वृक्ष होते हैं और जंगल में भी वृक्ष होते हैं, फिर बगीचे और जंगल में क्या अन्तर है ? बगीचे में वृक्ष व्यवस्थित और कलात्मक ढंग से लगाये हुए होते हैं । माली बगीचे के अमुक-अमुक भाग में फूल झाड़, अमुक विभाग में लताओं वगैरह के पौधें को रोपता है, तथा अमुक हिस्से में वेल को रोपकर उसे सुशोभित करता है । मेंहदी के पौधे लगाकर उनके बड़े होने पर उन्हें व्यवस्थित ढंग से काट-छांटकर व अनेक प्रकार की आकृतियाँ बनाकर बगीचे की शोभा बढ़ाता है । साथ ही पानी के हौज बनाकर उसमें फव्वारा लगाता है । लताओं का मंडप बनाता है । बैठने के लिए बेंचें स्थान-स्थान पर रखाता है । इस प्रकार माली बगीचे का वातावरण एकदम आनन्दप्रद बनाता है । ऐसे बगीचे में थका हुआ मानव दो घड़ी बैठे तो उसकी थकान उतर जाती है ।

बन्धुओं ! यह तो हुई तुम्हारे शरीर की थकान उतारनेवाले बगीचे की बात । परन्तु तुम्हारी जीवनरूपी बाग कैसा है ? उसका विचार करना । बगीचे में सब चीजें यथास्थान व्यवस्थित हों तो वह बगीचा सबको अच्छा लगता है । लकड़ी के टुकड़े में से सुथार (बढ़ई) सुन्दर फर्निचर बनाता है, वह सबको अच्छा लगता है । माली पुष्पों को तोड़कर सुन्दर फूलदानी में सजाता है और वह फूलदानी तुम्हारे दीवानखाने में कितना शोभा पाता है ? इसी प्रकार अपने जीवन में निहित शक्तियों को एकत्र करके जीवन का सुन्दर निर्माण करना है । उक्त बगीचा तो शरीर की थकान उतारेगा, किन्तु अनन्तकाल से यह आत्मा कई भवों में भटककर थक गया है । उसकी थकान उतारने के लिए किस बगीचे में जाना पड़ेगा ? यह जानते हो क्या ? 'उत्तराध्ययन सूत्र' में सुन्दर समाधान दिया है -

धम्मा रामे चरे भिक्खू, धिईमं धम्म-सारही ।
धम्मा रामे रए दंते, बंभेचेर-समाहिए ।।

- उत्तराध्ययन सू., अ.-१६, गाथा-१५

अच्छा और उपयोगी है। ऐसा अमूल्य समय पुनः-पुनः नहीं मिलेगा। परमात्म पद को प्राप्त करने का परवाना यहीं (इसी भव) से मिलता है।

(आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से) तीन प्रकार का आत्मा : ज्ञानीपुरुषों ने तीन प्रकार का आत्मा बताया है - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। आत्मा स्वरूप की दृष्टि से तो एक है, (एगे आया)। परन्तु जैसे पानी स्वरूप की दृष्टि से एक है, किन्तु पृथक्-पृथक् रंग (रंगवाली मिट्टी) में मिला हुआ (मिश्रित) पानी अलग-अलग रंग का दिखाई देता है। कोई पानी में लाल रंग डालता है, तो पानी लाल रंग का हो जाता है। कोई पानी में नीला रंग डालता है, तो वह पानी नीले रंग का दिखाई देगा, वैसे ही उसमें हरा रंग डालो तो वह हरे रंग का दिखाई देगा। इस प्रकार अलग-अलग रंग में मिला हुआ पानी अलग-अलग रूप में दिखाई देता है। परन्तु पानी के स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। अन्तर सिर्फ अलग-अलग रंगमिश्रित होने का है। इसी प्रकार तीनों प्रकार के आत्मा के आत्मपन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। जैसा बहिरात्मा है, वैसा ही अन्तरात्मा है और वैसा ही परमात्मा का आत्मा है। उन तीनों में कोई अन्तर नहीं है (निश्चय दृष्टि से या स्वरूप दृष्टि से) इनमें अन्तर (फर्क) है तो सिर्फ साथ की उपाधि का है। वस्तुतः पानी के साथ अलग-अलग कलर मिल जाने से वह पानी अलग-अलग रूप का प्रतीत होता है। उसी प्रकार इन तीनों प्रकार के आत्मा में आत्मस्वरूप की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। फर्क है तो सिर्फ उपाधि का है। उपाधि कौन-सी ? मिथ्यात्व, राग-द्वेष, मोह, कषाय इत्यादि उपाधि के कारण आत्मा उपाधि में पड़ा हुआ है। जो आत्मा इस प्रकार की उपाधि में अटक जाता है, फंस जाता है, आकुलताग्रस्त हो जाता है, उसका नाम बहिरात्मा है। जैसे कोई व्यक्ति नाटक में राजा का पार्ट अदा करता है और अपने आपको राजा मान लेता है, उसी प्रकार कर्मों के वश होकर आत्मा एक भव में ही पृथक्-पृथक् अवस्थाओं का उपभोग करता है। कभी धनवान् बनता है, तो कभी निर्धन, तथैव कभी राजा बनता है, तो कभी प्रजा। प्राणी जन्म लेता है तब बालक होता है, फिर (क्रमशः) युवक और वृद्ध होता है। इन सब स्थितियों को यदि आत्मा की मूल स्थिति मान लेना है तो वह बहिरात्मा और मिथ्यात्वी (मिथ्या दृष्टि) है, क्योंकि बचपन, जवानी और बुढ़ापा, ये सब पर्यायें (अवस्थाएँ) हैं। जो जीव सम्यक्त्वरत्न (सम्यग्दर्शन या सम्यग्दृष्टि) को प्राप्त कर लेता है, उसका बहिरात्मभाव छूट जाता है (और उसमें अन्तरात्म-भाव आ जाता है।) आप विचार करें कि मैं बहिरात्मा हूँ या अन्तरात्मा ? इस संसार की किसी भी क्रिया (प्रवृत्ति) में जीव अहंपन (मैं और मेरेपन-अहंत्व-ममत्व) का अभिमान करे तो उस समय अन्तरात्मपन कहाँ रहा ?

जीवन में चाहे जितनी मुसीबतें, आफतें या कष्ट आयें, फिर भी जो जीव अपने आत्म-स्वरूप को नहीं छोड़ता तथा यह जानता है कि कर्मराजा की आज्ञानुसार यह जीव अलग-अलग नाटक करता है; ऐसा जो जानता और समझता है, वह अन्तरात्मा दृष्टिवाला होता है। उसे अनुकूलता में हर्ष और प्रतिकूलता में शोक (अफसोस) नहीं होता। यह उपाधि

वह लड़का मन ही मन सोचने लगा - 'पहले आया, वह अच्छा था, उसे मेरे पिताजी ने कहा - 'हमारा गाँव खराब है।' यों कहकर उसे भेज दिया और यह व्यक्ति कहता है, 'मैं स्वयं खराब हूँ,' फिर भी उसे गाँव में रहने का ये आग्रह कर रहे हैं। यों क्यों करते हैं, पिताजी ?' अन्त में उसने पूछ ही लिया - "पिताजी ! आपने ऐसा क्यों किया ? मुझे तो आपके दिये हुए जवाब से आप पर क्रोध आता है।" इस पर पिता कहता है - "बेटा ! सुन ! पहले जो आदमी आया था, वह बिलकुल नीच था। उसकी दृष्टि में सारे अवगुण भरे थे। इसी कारण गाँव के सभी मनुष्य उसे अवगुणी नजर आए। ऐसा दुर्गुणी मनुष्य अपने गाँव में रहता/बसता तो सारे गाँव को बिगाड़ डालता। जबकि यह दूसरा मनुष्य आया, वह अकेला सद्गुणी है, उसे सारे गाँव के मनुष्यों में सद्गुण ही नजर आए। अपने अंदर ही अवगुण दिखाई दिये। अतः यह मनुष्य पवित्र है। ऐसा सज्जन मनुष्य गाँव में रहे/बसे तो गाँव में सद्गुण बढ़ेगा। इस आशय से मैंने दोनों को पृथक्-पृथक् जवाब दिये।"

बन्धुओं ! जो मनुष्य उलटे रास्ते पर चढ़ा हुआ था, उसे सभी दुर्जन ही नजर आए और जो सीधे रास्ते पर चढ़ा हुआ था, वह स्व-दोष का दर्शन करनेवाला था, उसे सभी सद्गुणी ही दिखाई दिये। इस प्रकार जिस आत्मा को पर (आत्म बाह्य पदार्थ) का संग लगा है, जो परायों के साथ प्रीति करता है, वह स्व-गृह को भूलकर पर की पंचायत में पड़ता है। परन्तु ज्ञानी कहते हैं - "पर के साथ प्रीति करनेवाला आत्मा अज्ञानी है। उसे पता नहीं है कि पराया पदार्थ कदापि अपना नहीं होता। स्व में जो सुख है, वह पर में नहीं है।" देखो ! आपके संसार में भी नासमझ मनुष्य को पराये जितने अच्छे लगते हैं, उतने अपने अच्छे नहीं लगते।

शरीर पड़ोसी जैसा है : छोटे बच्चों को घर के मनुष्य अत्यन्त प्रेम से रखते हैं। माता घर में उसे खाने की अच्छी-अच्छी चीजें बनाकर देती हैं, फिर भी उसे बाहर से खाने की वस्तु लेकर खाना बहुत अच्छा लगता है। अगर पड़ोसी उसे एक मामूली चीज दे देता है, उसे बहुत ही अच्छी लगती है। यह तो छोटा बालक है, उसकी बात एक तरफ रखो ! मान लो, पुत्रवधू नई-नई शादी करके आई है, उसे उसकी सास, जेठानी, ननद और पति की अपेक्षा भी पड़ोसी बहुत ही प्रेम से बुलाते हैं। फिर भी घरवालों के साथ प्रेम से नहीं बोलती। उसे सास, ननद, जेठानी और पति की अपेक्षा भी पड़ोसी के साथ बहुत प्रीति हो गई है। इस कारण वह घर का कामकाज करती है, किन्तु बार-बार पड़ोसी के पास जाकर उनसे बात करती है, कहती है - "आप मेरे बहुत हितैषी हैं, आप मेरे सर्वस्व हैं। आप मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।" ऐसे नासमझ मनुष्य को घरवालों की अपेक्षा पराये अच्छे लगते हैं। वह परायों के साथ प्रीति करती है। इसी प्रकार अपना चैतन्य स्वरूप आत्मा भी अज्ञानावस्था के कारण चैतन्य के साथ प्रीति न करके पुद्गल रूपी पड़ोसी के साथ प्रीति करता है।

मुनि को देखकर सुनार के हृदय में हर्ष उमड़ा - 'आज धन्य घड़ी, धन्य भाग्य है कि मेरे आंगन में ऐसे तथारूप मुनिवर के चरण पड़े हैं । आज मेरा आंगन पवित्र हो गया ।' उस समय सुनार श्रेणिकराजा के (घड़ने के लिए) सोने के जौ घड़ रहा था । श्रेणिकराजा मगधदेश के स्वामी थे । उनके सिर पर कितनी जिम्मेदारी थी, राज्य संचालन की ? फिर भी जब भगवान् (महावीर) या कोई भी श्रमण-श्रमणी पधारते, तब व्याख्यान-वाणी सुनने और उनके दर्शन करने का अवश्य लाभ लेते थे । उसमें एक दिन भी चूकते नहीं थे । क्या तुममें इतनी जिम्मेदारी हैं ? श्रेणिक नृप अनेक राज्यों का स्वामी था । तुम तो एक बंगले के भी पूरे धनी नहीं हो, फिर भी कहते हो कि क्या करें ? हमारे पास टाइम नहीं है ! तुम्हे जरा-सी तकलीफ पड़ती है, धर्म को पहला धक्का मारते हो ! बिना कठिनाई के धर्म हो जाय तो तुम करने को तैयार होते हो ! तुम धर्म की कीमत कैसी और कितनी समझे हो, कहूँ क्या ? तुम्हारा संसार है, तुम्हारे उदर से जन्मा पुत्र और धर्म को सौतेले पुत्र के समान समझते हो । सौतेले पुत्र का पालन दुनियादारी व्यवहार की दृष्टि से करना पड़ता है, इस रीति से करते हो । वह भी प्रसंग न आए, वहाँ तक । उसका जरा-सा भी अपराध हो जाए तो बेचारे पर डंडे पड़े ! इस प्रकार तुम धर्म तो करते हो, पर जरा-सी मुश्किली आए तो तुरंत करते हो, धर्म का बहिष्कार ! बुखार आ जाए तो भी ओफिस में जाना ही जाता है, परन्तु सामायिक नहीं होती है । संत-दर्शन या व्याख्यान-श्रवण करने नहीं आना होता ! मगर श्रेणिकराजा उपाधि के समय भी धर्म को धक्का नहीं मारते थे । ऐसी उनकी अटूट श्रद्धा थी, धर्म पर । अब हम मूल बात पर आएँ ।

मैतार्यमुनि पर सुनार के मन में उत्पन्न शंका : सुनार श्रेणिकराजा के दिये हुए सोने के जौ घड़ रहा था । जौ लगभग तैयार हो चुके थे । उस समय मैतार्यमुनि गौचरी के लिए पधारे । संत को देखते ही सुनार जौ को छोड़कर संत को आहार बहराने (देने) के लिए उन्हें रसोई घर में ले गया । उस समय एक क्रौंचपक्षी वहाँ आया और स्वर्ण के जौ को अनाज के दाने समझकर चर गया । सुनार मुनि को आहार बहराकर बाहर आया और वहाँ एक भी जौ न देखकर मुनि के प्रति उसने शंका की । उसने मुनि से कहा - ''आपने मेरे सोने के जौ चुरा लिये हैं ! अगर जौ लिये हों तो मुझे जल्दी दे दो, क्योंकि राजा से मैंने समय पर जौ घड़कर देने का वादा किया है । अतः राजा का आदमी अभी जौ लेने के लिए आएगा तब मैं क्या जवाब दूंगा ?'' यद्यपि मुनि ने वे जौ नहीं लिये थे, परन्तु क्रौंचपक्षी को जौ चुगते (चरते) देखा था । अतः वे बोले नहीं, क्योंकि जिस बात के कहने से किसी जीव की हिंसा होने की संभावना हो, ऐसी सावद्य भाषा मुनि नहीं बोलते । अतः इस समय पाप (हिंसादि) के डर से मुनि मौन रहे । तुम्हें किसी आदमी पर चोरी की शंका हो, उस समय तुम उसे पूछो, उस समय वह मौन रहे तो तुम यों मान बैठते हो कि इसने चोरी की है, इसलिए मौन बैठा है । चोरी की शंका के बाद का मौन, चोरी की स्वीकृति जैसा माना जाता है । (पूछने पर) मुनि मौन रहे, इस लिए सुनार के मन में यह बात जम गई कि मुनि ने अवश्य ही जौ लिये हैं, किन्तु मुझे वापस देते नहीं हैं । न जाने कहाँ रखे होंगे ?

शरीर पुलिस-दादा जैसा है : बन्धुओं ! यह शरीर प्रत्येक गति में बलवान् पड़ोसी है, क्योंकि जीव जिस-जिस गति में जाता है, वहाँ-वहाँ उसे तदनुरूप (तद्-योग्य) शरीर मिलता है। परन्तु (उसकी मृत्यु होने पर) यह शरीर उसके साथ नहीं आता, यह वहीं का वहीं रह जाता है। तुम जब रहने का स्थान (निवासस्थान) बदलते हो, तब तुम्हारे पुत्र-पत्नी वगैरह साथ में आते हैं। किन्तु पड़ोसी साथ में नहीं आता। इसी प्रकार शरीर क्या (मरने के बाद) किसी के साथ जाता है ? नहीं। वह यहीं रह जाता है। परलोक में यह शरीर पुलिस-दादा भी है। अनेक धनाढ्य लोग पुलिस को प्रतिवर्ष कुछ न कुछ दक्षिणा देते हैं। यह तो तुम भी जानते हो न ? इसका तो तुम्हें बराबर अनुभव है न ? पुलिस को दक्षिणा (भेंट-पूजा) देने में तुम्हें व्यापार में अथवा अन्य किसी बात में फायदा होता है क्या ? फायदा तो कुछ भी नहीं है, किन्तु उसे भेंट-पूजा न करे तो, वह हैरान करता है। पुलिस-दादा को तुमने बीस वर्ष तक भेंट-पूजा दी, परन्तु दो वर्ष नहीं दी तो वह हैरान-परेशान कर देता है; वैसे ही इस शरीररूपी पुलिस-दादा को २५-३०-४०-५० वर्ष तक तुमने पोसा, परन्तु लगातार चार दिनतक खाने को नहीं दिया तो यह निर्बल हो जाता है। फिर इतने वर्षों तक शरीर को सब प्रकार से पोसा, वह व्यर्थ गया। फिर यह गले पड़ने में देर नहीं लगाता। ऐसा यह पुलिस-दादा है। उसे तुम ५० वर्ष तक तीन-तीन टाइम थाली में खाना भरकर पोसते हो, फिर भी आपत्ति के समय अलग हो जाता है। जो धनाढ्य सावधान और विवेकी है, वह भेंट-पूजा देने से पहले इससे (तप, त्याग आदि के रूप में) बारह गुना काम निकलवा लेता है। वैसे ही इस पुद्गलरूपी पुलिस-दादा को तुम तीन-तीन टाइम पोसते हो तो उससे जो काम निकलवाना हो, वह निकलवा लेना। बोलो, इस (शरीर) से कौन-सा काम निकलवाना है ?

देवानुप्रियों ! यह उत्तम मानवभव मिला है। संसार आधि-व्याधि-उपाधि और विषय-कषायों का उकरड़ा (गंदकी का ढेर) है। उसमें हीराकणी के समान धर्म रहा हुआ है। यह शरीररूपी पुलिस-दादा बैठा-बैठा इतने वर्षों से (प्रतिदिन) तीन-टाइम (भोजनादि उपभोग रूप) भेंट-पूजा का उपभोग कर रहा है। अब उससे कहो कि इस उकरड़े में से धर्मरूपी हीराकणी को प्राप्त करने में मदद करे। यह (शरीररूपी) पुलिस-दादा सहयोग कर सकता है। फिर भी इसे उकरड़े में से हीरामणी प्राप्त करने की अकल नहीं आती। इसे विषय-कषाय का उकरड़ा उठाना बहुत अच्छा लगता है। भगवान् कहते हैं - "ऐसा दुर्लभ और उत्तम मानवभव मिलने पर भी अज्ञानी आत्माएँ धर्म का रसास्वाद ले नहीं सकती। उसका कारण है - पशुतुल्य वृत्ति। पशु को रत्नों के ढेर पर खड़े रखो तो वे रत्न के ढेर पर मलमूत्र करेंगे। उसमें से अन्न के कण बीनेंगे, किन्तु रत्न नहीं लेंगे। मुर्गा उकरड़े को बिखेर कर उसमें से जूठन के दाने खायेगा, पर हीराकणी आएगी तो उसे फेंक देगा। उसी प्रकार यह जीव महान् पुण्योदय से प्राप्त मानवभवरूपी रत्न के क्षेत्र में आया, परन्तु उस पशु की तरह विषय-कषायरूपी कणिका को देखता है। पशु में रत्न को पहचानने, लेने की या रत्न को लेने के लिए सहयोग देने की बुद्धि नहीं होती। उसमें

मुनि को देखकर सुनार के हृदय में हर्ष उमड़ा - 'आज धन्य घड़ी, धन्य भाग्य है कि आंगन में ऐसे तथारूप मुनिवर के चरण पड़े हैं । आज मेरा आंगन पवित्र हो ।' उस समय सुनार श्रेणिकराजा के (घड़ने के लिए) सोने के जौ घड़ रहा था । कराजा मगधदेश के स्वामी थे । उनके सिर पर कितनी जिम्मेदारी थी, राज्य संचालन ' फिर भी जब भगवान् (महावीर) या कोई भी श्रमण-श्रमणी पधारते, तब व्याख्यान- सुनने और उनके दर्शन करने का अवश्य लाभ लेते थे । उसमें एक दिन भी चूकते थे । क्या तुममें इतनी जिम्मेदारी है ? श्रेणिक नृप अनेक राज्यों का स्वामी था । तो एक बंगले के भी पूरे धनी नहीं हो, फिर भी कहते हो कि क्या करें ? हमारे पास नहीं है । तुम्हे जरा-सी तकलीफ पड़ती है, धर्म को पहला धक्का मारते हो ! बिना नाई के धर्म हो जाय तो तुम करने को तैयार होते हो ! तुम धर्म की कीमत कैसी कितनी समझे हो, कहूँ क्या ? तुम्हारा संसार है, तुम्हारे उदर से जन्मा पुत्र और धर्म सौतेले पुत्र के समान समझते हो । सौतेले पुत्र का पालन दुनियादारी व्यवहार की से करना पड़ता है, इस रीति से करते हो । वह भी प्रसंग न आए, वहाँ तक । उसका सा भी अपराध हो जाए तो बेचारे पर डंडे पड़े ! इस प्रकार तुम धर्म तो करते हो, जरा-सी मुश्किली आए तो तुरंत करते हो, धर्म का बहिष्कार ! बुखार आ जाए तो ऑफिस में जाना ही जाता है, परन्तु सामायिक नहीं होती है । संत-दर्शन या व्याख्यान- ण करने नहीं आना होता ! मगर श्रेणिकराजा उपाधि के समय भी धर्म को धक्का मारते थे । ऐसी उनकी अटूट श्रद्धा थी, धर्म पर । अब हम मूल बात पर आएँ ।

मैतार्यमुनि पर सुनार के मन में उत्पन्न शंका : सुनार श्रेणिकराजा के दिये हुए के जौ घड़ रहा था । जौ लगभग तैयार हो चुके थे । उस समय मैतार्यमुनि गौचरी लिए पधारे । संत को देखते ही सुनार जौ को छोड़कर संत को आहार बहराने (देने) लिए उन्हें रसोई घर में ले गया । उस समय एक क्रौंचपक्षी वहाँ आया और स्वर्ण के को अनाज के दाने समझकर चर गया । सुनार मुनि को आहार बहराकर बाहर आया वहाँ एक भी जौ न देखकर मुनि के प्रति उसने शंका की । उसने मुनि से कहा - पने मेरे सोने के जौ चुरा लिये हैं ! अगर जौ लिये हों तो मुझे जल्दी दे दो, क्योंकि से मैंने समय पर जौ घड़कर देने का वादा किया है । अतः राजा का आदमी अभी लेने के लिए आएगा तब मैं क्या जवाब दूंगा ?" यद्यपि मुनि ने वे जौ नहीं लिये परन्तु क्रौंचपक्षी को जौ चुगते (चरते) देखा था । अतः वे बोले नहीं, क्योंकि जिस के कहने से किसी जीव की हिंसा होने की संभावना हो, ऐसी सावध भाषा मुनि बोलते । अतः इस समय पाप (हिंसादि) के डर से मुनि मौन रहे । तुम्हें किसी आदमी चोरी की शंका हो, उस समय तुम उसे पूछो, उस समय वह मौन रहे तो तुम यों मान हो कि इसने चोरी की है, इसलिए मौन बैठा है । चोरी की शंका के बाद का मौन, की स्वीकृति जैसा माना जाता है । (पूछने पर) मुनि मौन रहे, इस लिए सुनार के में यह बात जम गई कि मुनि ने अवश्य ही जौ लिये हैं, किन्तु मुझे वापस देते नहीं न जाने कहाँ रखे होंगे ?

"भाई ! यहाँ पानी डालने की मनाही है, किन्तु पानी डाल दिया, यह हमारा अपराध है। हम अपनी भूल कबूल करते हैं। बात यह है कि यह बहू नई ही विवाह करके आई है। उसे इस कायदे का पता नहीं था। लड़की है। इससे भूल हो गई है। मैं इस पर धूल डलवा कर साफ करा देता हूँ। तुम अब चुप रहो।" परन्तु वह पुलिस तो बकवास करना बंद ही नहीं करता। यह सेठ भी बहुत धनवान् है। किसी के दबान में आ जाए, ऐसा नहीं है। अतः कहता है - "मैं अभी तुझे चार तमाचे मार सकता हूँ। मैं कमजोर नहीं हूँ। परन्तु तूने सरकारी पट्टा धारण किया है, इसलिए कुछ कह नहीं सकता।" इस पर तो वह पुलिसकर्मी भड़क उठा - "क्या मेरा कोई वर्चस्व ही नहीं ? अगर पुलिस के पट्टे का ही वर्चस्व है तो ले यह पट्टा फेंक देता हूँ।" यों कहकर उसने पुलिस का पट्टा निकालकर फेंक दिया। उसने ज्यों ही पट्टा फेंका, त्यों ही सेठ ने पकड़कर उसके गाल पर चार तमाचे जड़ दिये। वह बोला - "मैं पुलिस हूँ। तुम मुझे मारनेवाले कौन ?" पुलिस ने सेठ के खिलाफ शिकायत की। कोर्ट में सेठ को बुलाकर पूछा - "पुलिस को तुमने किसलिए चाँटे मारे ?' सेठ ने कहा - मैंने पुलिस को नहीं मारा, मैंने एक सामान्य मनुष्य को मारा है। इससे पूछ लो, इसने पुलिस का पट्टा उतारकर फेंक दिया, उसके बाद मारा है।" तदनन्तर सब पूछताछ की गई। सेठ ने सारी घटना सच कह दी। यह सुनकर सरकार ने सेठ की पीठ थपथपाकर कहा - "शाबाश !" इस प्रकार सरकार ने सेठ को शाबाशी दी और पुलिस को रिटायर किया। तुम्हें और हमें, सबको शाबाशी चाहिए पर वह कब मिलती है ? तुम श्रावकपन के प्रति वफादार रहो और हम साधुपन के प्रति वफादार रहें तो। अन्यथा, तुम्हारी या हमारी कौड़ी की कीमत नहीं रहती। उस पुलिस की तरह रिटायर होना पड़ेगा। साधु को साधुपन का मूल्य चुकाना पड़ेगा। गुण होगा, तो कीमत होगी। अन्यथा कोई नहीं पूछेगा।

ब्राह्मण और बीरबल का दृष्टांत : एक बार एक ब्राह्मण बीरबल के पास आकर रोने लगा। बीरबल ने पूछा - "क्यों रोते हो ?" वह बोला - "मैंने इतने शास्त्र पढ़े, फिर भी मुझे कोई पण्डित नहीं कहता।" बीरबल की बुद्धि तो आप जानते ही हैं न ? बीरबल ने हंसकर कहा - "तुम्हें सारा गाँव पण्डितजी-पण्डितजी कहकर पुकारे, ऐसा कर दूं। पर तुम मुझे क्या दोगे ?" पण्डित ने कहा - "मैं आपको ५०० रुपये दूंगा।" बीरबल ने पाँच सौ रुपये लेकर कहा - "अगर एक महीने में तुम्हें लोग पण्डितजी न कहें तो तुम कहोगे वह सजा मैं भोग लूंगा।" बीरबल ने मीठी गोलियाँ खरीदीं और कुछ बच्चे एवं किशोरों को इकट्ठे किये। उन्हें गोलियाँ देकर कहा कि 'यह आदमी बाहर निकले तो तुम्हें - ओ पण्डितजी, ओ पण्डितजी कहना।' अब तो ज्योंही पण्डित बाहर निकला, त्योंही बालकों की टोली उसके पीछे पड़ गया और जोर-जोर से 'ओ पण्डितजी ! ओ पण्डितजी' कहकर उसके पीछे चलने लगे। तीन-चार दिनों में तो सब जान गए कि यह पण्डित है। इसलिए दूसरे लोग भी पण्डितजी-पण्डितजी कहने लगे। इससे ब्राह्मण घबरा गया और सबको गालियाँ देने लगा। क्या इसे पण्डित कहा

ाभ !' यह मात्र एक ही अवाज आती है ।'' इस पर राजा श्रेणिक मन में सोचा
ाधु के सिवाय और कोई 'धर्मलाभ' शब्द नहीं कहता । अतः क्या माजरा है ? मैं
वहाँ जाऊँ । श्रेणिक महाराजा तुरंत वहाँ से उठकर सोनी के घर पहुँचे और कहा -
ाजा खोलो ।'' तब अंदर से सोनी बोला - ''धर्मलाभ ।'' श्रेणिक ने कहा - ''मैं
कराजा हूँ ।'' अतः सोनी ने तुरंत दरवाजा खोला । राजा घर के भीतर गए, देखा
सुनार साधु के वेश में बैठा है ।

मुनि का शव देखते ही श्रेणिकराजा का हृदय रो पड़ा : एक ओर सोने के
ड़े हैं, और दूसरी ओर मैतार्यमुनि का शव पड़ा है । राजा ने सोनी से पूछा - ''यह
क्या है ?'' सोनी बोला - ''गुम हुए जौ के लिए मुझे साधुजी पर वहम हुआ ।
तो वे कुछ बोले नहीं । फलतः मैंने उन्हें मार डाला ।'' यह सुनकर राजा सोचते
'एक ओर मैतार्य (मुनि) मेरे (गृहस्थ पक्ष) दामाद हैं तथा संत हैं । दूसरी ओर मुझे
-मात्र के प्रति प्रेम (आदर) है, यों समझकर इस सुनार ने साधु का वेप पहना है ।
अब इसे छटकने नहीं दूंगा ।'

श्रेणिकराजा ने बनावटी साधु को ललकारा : वह बोले - ''अरे ढोंगी ! मृत्यु के
से तूने साधुवेश पहन लिया है । साधुवेश में होने के कारण मैं तुझे कोई सजा नहीं
। इस समय तुझे जीवित जाने देता हूँ । परन्तु यदि तूने अब साधुवेश छोड़ा तो तुझे
कड़ाती तेल की कड़ाही में तल डालूंगा ।'' राजा श्रेणिक ने सुनार को झूठा
ी समझा था । इसलिए ये उद्‌गार निकाले । किन्तु सच्चे वैरागी को वह ऐसे शब्द
कहते । सच्चे वैरागी को देखते ही उनका हृदय हर्षित हो उठता है और उसके चरणों
स्तक झुक जाता है ।

जीव को तीन प्रकार से वैराग्य उत्पन्न होता है - ज्ञान से, दुःख से और मोह से ।
य का अर्थ - विषयों और कषायों से विरक्ति-अरुचि । फिर वह अरुचि तीन प्रकार
ती है । यदि वह अरुचि ज्ञान से हुई हो तो वह ज्ञानगर्भित वैराग्य कहलाता है । दुःख
ारण विरक्ति उत्पन्न हुई हो तो उसे दुःखगर्भित वैराग्य कहा जाता है और जिसे मोह
ारण विरक्ति उत्पन्न हो तो उसे मोहगर्भित वैराग्य कहा जाता है । जिसे जीव और
, दानों के प्रति श्रद्धा है तथा जिसे ऐसी समझ है कि कर्म से यह जीव बंधा हुआ
संसार कर्मबन्धन के कारण है । अतः अगर में संसार (जन्म-मरणादि रूप) से छूटुं
नये कर्मबंधन से रुक जाएँ और तपश्चरण द्वारा पुराने (पूर्वकृत) कर्मों का क्षय हो
। ऐसी भावना से जो संसार के प्रति घृणा-अरुचि की दृष्टि से देखता है, उसका वह
य ज्ञानगर्भित कहलाता है । आज कोई सामान्य स्थिति का व्यक्ति दीक्षा लेता है तो
(प्रायः) कहते है - 'इसे (जीवन में) दुःख था, इसलिए इसने दीक्षा ग्रहण कर
। अतः इसका यह वैराग्य दुःखगर्भित है । मगर ऐसा कहनेवाले को यह पता नहीं
क वास्तव में दुःखगर्भित किसे कहा जाता है ? ज्ञानी कहते हैं - ''जैसे किसी महिला

बैठो, परन्तु वह तुम्हारे सामने संसार की वातें नहीं करेगा । जैन साधु की बातों में भी वैराग भरा होता है । जहाँ पाप का आवागमन होता हो, किसी को दुःख होता हो, तो वैसी भाषा जैन साधु कदापि नहीं बोलता । वह निर्दोष और पवित्र भाषा बोलता है । अतः साधु की कीमत निरवद्य भाषा से है । वीतशोका नगरी के बाहर ईशान कोण में इन्द्रकुम्भ नाम का उद्यान था । उस नगरी का राजा कौन था ? कैसा था ? अब इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

स्व. ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि

आज हमारे तारे जैसी जगमगाती स्व. पूज्य ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि है । यों तो उनकी पुण्यतिथि माघ वदी २ की है । परन्तु खंभात-संघ ने उनकी पुण्यतिथि आषाढ़ वदी २ के दिन मनाने का निश्चय किया है । क्योंकि देश में चातुर्मास सिवाय के दिवसों में संत-सतियों का योग कम होता है, इस कारण धर्मकरणी कम होती है । इस प्रयोजनवश खंभात-संप्रदाय के प्रत्येक क्षेत्र में पूज्य ताराबाई महासतीजी की पुण्यतिथि आज ही मनाई जाती है । यद्यपि समय काफी हो गया है, इसलिए संक्षेप में ही मैं कहूँगी ।

स्व. महावैराग्य सम्पन्ना पू. ताराभाई महासतीजी का संक्षिप्त जीवन परिचय

जिनका जीवन धूपबत्ती के समान सौरभ फैला गया है, तथा गुलाब के फूल के समान महकता था, शिष्या-मंडली में जिनका जीवन तारे के समान चमकता था, ऐसे स्व. महावैराग्य सम्पन्ना ताराबाई महासतीजी की आज स्वर्गारोहण तिथि है । आप सब समझ सकते हैं कि उनका जीवन कितना उज्ज्वल और चारित्र सम्पन्न होगा ? उनमें कितना विनय, विवेक और वैराग्य आदि सद्गुणों की सुवास होगी कि जो शिष्या थीं, फिर भी जिनकी पुण्यतिथि उनकी पूज्य गुरुणीजी मना रही हैं । उनमें रहे हुए अखूट गुणों का वर्णन करने के लिए तो अपने पास समय थोड़ा है, मगर उनके जीवन का बहुत ही संक्षिप्त परिचय आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ ।

उन महासतीश्री का जन्म अहमदाबाद शहर में हुआ था । उनके पिता उगरचंदभाई थे और माता समरतबहन थी । उनका विवाह १४ वर्ष की उम्र में हो गया था । उनके पति का नाम केशवलालभाई था । वे बहुत बड़े व्यापारी थे । उनका संसार खूब सुखी था । उस सुखी संसार में दुःख किसे कहा जाए, इसका भी ख्याल नहीं था । ऐसा महान् वैभव, सम्पत्ति, सुख-साधन आदि से सम्पन्न गृहस्थ-संसार सब प्रकार से खूब सुखी था । परन्तु कुदरत मनुष्य को कब कहाँ से कहाँ पटक देती है, इसकी किसी को कोई खबर नहीं है । इस प्रकार से २४ वर्ष की वय में उन पर दुःख का पहाड़ टूट पड़े, ऐसी घटना बनी । इनके पति का अचानक हार्ट फैल होने से दुःखद अवसान हुआ । इस कारण उनके सिर पर घर-संसार की सारी जिम्मेदारी आ पड़ी । आपके चार पुत्र थे । ऐसे अवसर पर उन्हें हमारा (पू. शारदाबाई महासतीजी का) सम्पर्क हुआ । ज्यों-ज्यों वे हमारे

देता था। उस समय के राजा उदार और विशाल दिल के होते थे। एक-एक स्वर्णमोहर से उसका व्यवसाय चल पड़ता और प्रत्येक घर की एक-एक ईंट से उसका मकान बन जाता। आज (किसी नगर में) एक नया मनुष्य रहने (बसने) हेतु आए, तो उसे प्रायः लूटने की ही वृत्ति है। इस कारण बेचारा वह मनुष्य ऊँचा कहाँ से आए ? जिनकी वृत्ति दूसरों को देने की होती है, वह दैवी वृत्ति कहलाती है। ऐसे मनुष्य मनुष्य के रूप में देव है। इसके विपरीत जिनकी वृत्ति दूसरों से छीनने - शोषण करने की है, वह राक्षसी वृत्ति है। ऐसे मनुष्य मनुष्य रूप में राक्षस जैसे हैं।

इस (उक्त) नगरी का नाम वीतशोका था। इसलिए इसमें शोक का तो नामोनिशान नहीं था। सभी मानव आनन्द में रहते थे। नगरी में एक उद्यान था, वह कैसा था ? नगरी का राजा कौन था, कैसा था ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

व्याख्यान - १

आषाढ़ वदी २, मंगलवार | ता. १३-७-७६

जीवन की सार्थकता : संयम से

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि, त्रैलोक-प्रकाशक शासन-सम्राट, वीर प्रभु की शाश्वतीवाणी, उसका नाम सिद्धान्त-वचन। 'ज्ञाता धर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। इस अध्ययन में मल्लिनाथ भगवान् का अधिकार है। परन्तु वह भगवती कहाँ जन्मी थीं ? उस नगरी का नाम क्या था ? वह नगरी कैसी पवित्र थी। इत्यादि पूर्व भूमिका का वर्णन करना चाहिए। सलिलावती नामक विजय में वीतशोका नाम की पवित्र नगरी थी। वह नगरी प्रत्यक्ष देवलोक-सरीखी थी। देवलोक-सरीखी का मतलब है - वहाँ देवलोक नहीं था, परन्तु देवलोक की उपमा दी है। तुम कोई चीज किसी चीज जैसी हो तो उसकी उपमा देते हो न ? तुम छाछ पी रहे हो और वह छाछ मीठी हो तो, तुम कह देते हो, यह छाछ दूध जैसी है। तो क्या वह छाछ दूध बन जाती है ? अथवा यह गुड़ शक्कर जैसा है ? तो क्या गुड़ शक्कर बन जाता है ? नहीं। किसी वस्तु में अमुक अंश में समानता हो तो उपमा दी जाती है। इसी प्रकार वीतशोका नगरी के प्रजाजन देवलोक के समान सुखी थे। नगरी किससे सुशोभित होती है ? देखिए लोकवाणी -

पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाय। प्रत्येक व्यक्ति के मुख से एक ही तरह के उद्‌गार निकल रहे थे - 'अहो ! कैसा है ताराबहन का दृढ़ वैराग्य ! साथ ही पुत्रों का माता के प्रति कितना अगाध प्रेम !' परन्तु विरक्त मन दृढ़ वैरागी ताराबहन प्रेम के बन्धन तोड़कर, स्नेह के सम्बन्ध को छिटकाकर, माया के बन्धन को बिखेरकर, मोहपाश के बन्धन रूप संसार का त्याग करके दीक्षा लेने हेतु दीक्षामण्डप में आई। उस समय का दृश्य इतना करुण हो गया कि सभी की आँखें आंसुओं से छलक उठीं। कहने लगे - 'धन्य है वैराग्यवासिनी ताराबहन को कि रागभाव का पाश तोड़कर वैराग्यवाटिका में विचरण करने हेतु इस विरक्तात्मा ने प्रयाण किया है।' पुत्रों का करुण रुदन देखकर सभी की आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। दीक्षाएँ तो बहुत होती हैं, परन्तु पुत्रों का मोह छोड़कर अभिनिष्क्रमण करनेवाली आत्मा तो बहुत विरल होती है। दीक्षा लेकर ताराबहन ताराबाई महासतीजी बनी। दीक्षा लेकर वे ज्ञान-ध्यान, त्याग-तप और संयम में, चारित्राराधना में अत्यन्त दृढ़ हो गईं। दीक्षा में छोटी होती हुई भी वे बड़ी सतीजी जैसी कर्तव्य अदा करती थीं, वैरागी बहनों को पढ़ाने और सिखाने का कार्य वे स्वयं करती थीं। उनका अपना एक ही ध्येय था - मुझे कोई पण्डित या विदुषी नहीं बनना है, अपितु मुझे सभी साध्वीजी की सेवा करके कर्मक्षय करने हैं। उन्हें सिद्धान्त और तत्त्वों के अध्ययन, थोकड़े और प्रश्नों का अच्छा ज्ञान था। वे अपने से छोटी साध्वियों तथा वैरागिनों को यही कहा करती थीं कि 'अपनी साधना ऐसी होनी चाहिए कि हम शीघ्र मोक्ष (सर्व कर्ममुक्ति) प्राप्त कर सकें।'

वि. सं. २०१८ में मुंबई - कांदावाड़ी चातुर्मास के लिए आना हुआ। क्रमशः कांदावाड़ी, माटुंगा और दादर चातुर्मास करने के बाद संवत २०२१ में विलेपार्ले चातुर्मास हुआ। वहाँ उन्हें असोज महीने में ज्ञात हुआ कि गर्भाशय में कैन्सर हो गया है। इस बात की जानकारी होने पर भी उनके मन में जरा भी उद्वेग नहीं हुआ। पूछने पर प्रसन्नता से कहती थी - "इस शरीर के कैन्सर के साथ कर्म का कैन्सर हो जाए तो कितना उत्तम !"

कर्म से लड़ने हेतु केसरिया किया : अहो ! कैन्सर से क्या घबराना ? यह तो शीघ्रातिशीघ्र कर्मों को क्षय करने का, आत्म-साधना में रमण करने का और पण्डित-मरण से मरने का सिग्नल है। अपनी आत्मा को सम्बोधन करके वे कहतीं - "देखना, चेतनराजा ! इससे (कर्म के साथ युद्ध में) पीछे हटना मत।"

"देहदर्शी दुःख भोगवे, करे सुखनो उपाय।
आत्मदर्शी आत्मा, सुखमां रहे सदाय॥"

संक्षेप में, उनकी आत्मा अत्यन्त जागृत थी। इसलिए वे शूरवीर और धीर बनकर केसरिया करने के लिए सुसज्ज (तत्पर) हुईं। अपनी संयम-साधना में जरा भी खामी नहीं आने देती थीं। ट्रीटमेंट अच्छा मिलने से उनका रोग सर्वथा मिट गया। संवत् २०२२ में आपने घाटकोपर चातुर्मास किया। चातुर्मास पूर्ण होते ही, अन्त में कार्तिकी पूर्णिमा

भिक्षाजीवी वीतरागपथिक श्रमण धर्मरूपी बगीचे में विचरण करे। धर्मरूप बाग में रमण करनेवाले धर्म-रथ के सारथी, धैर्यवान्, इन्द्रियों का दमन करनेवाले, समाधि-धारक साधु सदैव धर्मरूपी बगीचे में विचरण करे। ऐसा उत्कृष्ट वीतराग-प्ररूपित (आत्मा) धर्मरूपी बगीचा है। इसी बगीचे में सैर करने के लिए तुम आओगे तो तुम्हारे जीवन का निर्माण इतना सुन्दर होगा कि तुम्हें आत्मभाव में स्थिर रहने/होने का मन हो जाएगा। फिर किसी की निन्दा-चुगली करने का, या किसी के दुर्गुण देखने का तुम्हें मन ही नहीं होगा। क्योंकि आत्मा सीधे मार्ग पर आ गया है, वह (ऐसा आत्मा) सर्वत्र गुण ही देखता है, दुःख में से सुख खोजता है, जबकि उलटे रास्ते पर चढ़ा हुआ आत्मा गुण में से भी अवगुण देखता/ढूंढता फिरता है।

एक बार एक किसान कुंए के कांठे पर कोश द्वारा पानी निकालकर अपने बैल को पानी पिलाकर थोड़ी देर विश्राम लेने के लिए बैठा था। उसके साथ उसका जवान बेटा भी बैठा था। उस समय एक मनुष्य हाँफता-हाँफता दौड़कर वहाँ आया। वह उस किसान से कहता है - "भाई ! मैं बहुत ही प्यासा हूँ, मुझे पानी पिलाओ न !" किसान ने उसे पानी पिलाया। अतः वह मनुष्य पूछता है - "भाई ! तुम्हारा गाँव कैसा है ?" तब किसान कहता है - "तुम किस आशय से पूछ रहे हो और इतने उतावले होकर कहाँ जा रहे हो ?" आगन्तुक मनुष्य कहता है - "भाई ! क्या बात कहूँ ? मेरे गाँव में एक भी मनुष्य अच्छा नहीं है। सारे गाँव के मनुष्य खराब हैं। इसलिए उनका संग छोड़कर मैं भाग आया हूँ। इसी कारण पूछता हूँ कि तुम्हारा गाँव कैसा है ? यदि अच्छा हो तो रहने के लिए पूछता हूँ।" यह सुनकर किसान कहता है - "भाई ! हमारा गाँव तुम्हारे गाँव से भी अधिक बुरा है। अरे भाई ! यह गाँव तुम्हे पसंद नहीं आएगा।" यह सुनकर वह उठकर चल दिया। किन्तु पिता के ऐसे जवाब से पास में बैठे हुए जवान लड़के का रक्त उबल पड़ा। 'अहो ! मेरे पिताजी कैसे हैं ? हमारा गाँव कितना पवित्र है। गाँव में कोई चोर नहीं है, व्यभिचारी नहीं है। कोई किसी की निन्दा नहीं करता, कोई ठगी या धूर्तता नहीं करता, कोई जुआरी नहीं है, कोई शराब नहीं पीता, सभी एक-दूसरे के साथ भाई-भाई की तरह हिल-मिलकर रहते हैं। फिर भी क्यों ये गाँव के ऐसे अवगुण बोलते हैं ? मेरे मन में ऐसा विचार आता है कि दरांती लाकर बाप को मार डालूं !' इतने में तो एक दूसरा आदमी आया। उसने पीने के लिए पानी मांगा। उसकी तरह उसे भी किसान ने पानी पिलाया। पानी पिलाकर किसान ने पूछा - "भाई ! तुम कहाँ जा रहे हो ?" वह कहता है - "भाई ! हमारा गाँव बहुत पवित्र है। गाँव में कोई चोर नहीं है, गाँव में सभी सज्जन और सद्गुणी आत्मा रहते हैं। सारे गाँव में एकमात्र मैं ही अकेला क्रोधी हूँ, अपवित्र हूँ। यदि मैं वहाँ रहूँ तो दूसरे को मेरा संग (चेप) लगे, गाँव अपवित्र हो जाए, इसलिए मैं गाँव छोड़कर निकल गया हूँ। कहीं वन में जाकर रहूँगा।" इस पर वह किसान बोला - "भाई ! तुम्हें जंगल में जाकर रहने की जरूरत नहीं है। तुम हमारे गाँव में सुखपूर्वक रहो।"

अन्तिम उद्‌गार - 'अब मैं खंभात नहीं आऊँगी' : "अब हम देश में जानेवाले हैं; तो चन्द्रिका की दीक्षा वैशाख महीने में अच्छी तरह देना । मैं अब खंभात आनेवाली नहीं हूँ ।" फिर कहने लगी - "मुझे अब कपड़े दो, मैं बदल लूं । फिर तुम्हें मेहनत करनी पड़ेगी ।" मैंने पूछा - "किसलिए ?" मैंने कपड़े नहीं दिये, फिर भी उन्होंने अंदर के वस्त्र तो स्वयं पहन लिये । मुझे गोलमोल भाषा में समझा दिया, पर मैं समझ नहीं सकी । यों तो तीन दिन पहले से मुझे कहा था कि "मैं अब ढाई दिन हूँ ।" मुझे अगले दिन कहा - "मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी गुरुजी की गोद में मस्तक रखकर अपने गुरुदेव पूज्य रत्नचन्द्रजी महाराज के पास जाऊँगी ।" ठीक वैसा ही हुआ ।

व्याख्यान का समय हो गया, इसलिए मैंने साध्वी वसुबाई को व्याख्यान शुरू करने के लिए भेजा । मैं ९ बजे तैयार होकर पगथियों तक गई कि मुझे कोई अदृश्य दैवी आवाज आई - 'तुझे मैंने कहा था कि मैं ढाई दिन हूँ, फिर तू कहाँ जा रही है ?' मुझे तीन-तीन बार ऐसी आवाज आई, इसलिए मैं व्याख्यान में न जाकर वहीं से लौटकर उनके मस्तक के आगे बैठी । उन्होंने कहा - "आप वापस क्यों आई ?" मैंने कहा - "मुझे ऐसी अदृश्य आवाज आई !" वे बोली - "अच्छा हुआ ।" उन्होंने मेरी गोद में अपना मस्तक रखा और मुझे कहा - "महासतीजी ! मैं नहीं मर रही हूँ, मेरा शरीर मर रहा है ! आप मेरे प्रति रागभाव मत रखना, मेरा मोह छोड़ दो । यह देह तो नश्वर है । आप हिंमत रखना ।" यों कहकर हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ रखकर बोली - "हे आदीश्वर दादा ! मुझे भव-भव में आपकी शरण होजो ।" तब मैं चौंकी, मुझे स्पष्ट ज्ञान हो गया कि मेरी ताराबाई सतीजी मुझे छोड़कर चली । अतः मैंने उन्हें नौ बजकर पैंतालीस मिनट पर या पौने दस बजे सागारी संथारा कराया । संथारे के प्रत्याख्यान लेते समय उनके मुख पर इतना अधिक हर्ष था कि बस, अब मेरी भावना पूर्ण हुई । यों तो उन्होंने ३ दिन पहले ही 'मुझे संथारा कराओ' ऐसी प्रबल भावना व्यक्त की थी, परन्तु मैं उनकी इस भावना को पूर्ण न कर सकी । जब मैंने सागारी संथारा कराने के साथ यों कहा कि - "काल आए तो यावज्जीव संथारा है", यह सुनकर उनकी अन्तरात्मा बोल उठी कि 'मैं आज भाग्यशाली बनी । मेरी गुरुणीजी ने मुझे पावन बना दी । कंटकाकीर्ण मार्ग से पीछे हटाकर मोक्ष के मार्ग पर मोड़ी । धन्य हैं, मेरे गुरुणी देव ! मैं आपसे क्षमायाचना करती हूँ । अब मुझे नवकार मंत्र सुनाओ !' इस पर से हम सब उन्हें नवकार मंत्र का शरण देने लगीं । परन्तु स्वयं तो अन्तिम श्वास तक - 'देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर अमर पद मारूँ ।' यह धून चालू रही । ता. २५ शनिवार के दिन सवेरे १० बजकर १० मिनट पर अपने आप धून बोलती-बोलती माघ वदी २ के दिन ४८ वर्ष की वय में साढ़े आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय पालकर सकल संघ की हाजरी में नश्वर शरीर का त्याग किया । जबसे दीक्षा ली थी, तभी से वे कहती थीं - 'भले कम जीना हो, परन्तु पण्डित-मरण से मेरी मृत्यु हो ।' उनकी यह शुद्ध भावना साकार हुई । अल्प समय में ही उन्होंने आत्मसाधना सिद्ध कर ली ।

जैसे वह नई बहू पड़ोसी महिला को विश्रामस्थान मानती है, वैसे ही आत्मा भी देहरूपी पड़ोसी को विश्रामस्थान मान बैठा है। उक्त बहू को पुत्र हुआ। कुछ समय व्यतीत हुआ, उस पड़ोसिन के आंगन में शौच आदि करके वह लड़का गंदगी कर आता है। पानी ढोल देता है। तब देखो, वह पड़ोसिन कैसे झगड़ा करती है? जो मन में आए, वह अंटसंट बोलती है। वह पडोसिन को सासु की अपेक्षा भी अधिक मानती थी, उस पड़ोसिन के पुत्र ने उसके ओटले पर पानी ढोल दिया। इस पर वह झगडा करने लगी। तब उस बहू को भान होता है कि घर के हैं, वे घर के हैं, पड़ोसी हैं, वे पड़ोसी! अब उसने घर के लोगों की कीमत समझी। अभी तक घर की कीमत समझी नहीं थी। छोटे-छोटे बच्चे माता-पिता के द्वारा इन्कार करने पर भी पड़ोसी के घर दौड़ जाते थे और वे ही बालक बड़े होने पर एक अंगुल जमीन के लिए पड़ोसी के साथ लकड़ी लेकर लड़ते हैं, क्योंकि अब वे समझदारी के घर में आ गए हैं। यह अपना घर है, यों वे समझने लगे हैं। वैसे ही यह आत्मा भी नासमझ दशा में हो, तब यह पुद्‌गल, धन, कुटुम्ब, इन्द्रियाँ और शरीर आदि को अपना मानकर उनके साथ प्रीति करता है। उस समय उसे ज्ञान नहीं होता कि इनके साथ प्रीति (आसक्ति) करके इस (आत्मा) के लिए पापकर्म का बंध करता हूँ, किन्तु उसका फल भोगने के लिए मुझे नरक, तिर्यंच आदि दुर्गतियों में जाना पड़ेगा। मगर जब यह आत्मा अपने शुद्ध चिदानंद स्वरूप को पहचान लेता है, तब उसे यों समझ में आ जाता है कि यह शरीर पड़ोसी है। यह शरीर मैं (आत्मा) नहीं हूँ। इसलिए मुझे (आत्मा को) इस (शरीर और शरीर सम्बद्ध वस्तुओं - परभावों) के साथ एकमेक (अभिन्न) होना नहीं है। अज्ञानी आत्मा शरीरमय बन जाता है। जैसे-लोहे को अग्नि में तपाया जाता है, तब वह अग्नि के साथ एक बन जाता है। वह एकदम लालसूर्ख बन जाता है, मानो वह अग्नि ही है। परन्तु अग्नि में से उस लोहे को बाहर निकालने के बाद यह पता लग जाता है कि वह लोहा है। वैसे ही आत्मा अज्ञान दशा में पुद्‌गल भाव में ऐसा जुड़ जाता है, एकमेक हो जाता है कि मैं शरीर हूँ और शरीर मैं हूँ। परन्तु समझ के घर में आता है, तब उसे यह मालूम हो जाता है कि मैं और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। मेरा शरीर के साथ कोई लेना-देना नहीं है। कर्म के कारण मुझे शरीररूपी जेल में बंद होना पड़ा है। इसलिए शरीर के साथ पड़ोसी जैसा व्यवहार है। आत्मा अगर आनन्द में होता है, तो शरीर पर लालिमा दिखाई देती है और आत्मा जब चिन्ता में मग्न होता है, तब शरीर शुष्क एवं निस्तेज हो जाता है। अतः यह शरीर आत्मा का सज्जन पड़ोसी है, पड़ोसी जैसा व्यवहार रखनेवाला है। परन्तु यह व्यवहार कहाँ तक रखा जाता है? घर को नुकसान न हो, वहाँ तक। पूर्वोक्त नई बहू को पड़ोसी के साथ जब आपत्ति होने लगी, तब उसकी शान ठिकाने आ गई कि स्व स्व है, पर पर है। वैसे ही आत्मा को समझ लेना चाहिए कि शरीर पड़ोसी है। पड़ोसी के रूप में व्यवहार करके रहने का मतलब उसके साथ तन्मय (एकमेक) बन जाना नहीं है।

अन्तिम उद्गार - 'अब मैं खंभात नहीं आऊँगी' : "अब हम देश में जानेवाले हैं; तो चन्द्रिका की दीक्षा वैशाख महीने में अच्छी तरह देना । मैं अब खंभात आनेवाली नहीं हूँ ।" फिर कहने लगी - "मुझे अब कपड़े दो, मैं बदल लूं । फिर तुम्हें मेहनत करनी पड़ेगी ।" मैंने पूछा - "किसलिए ?" मैंने कपड़े नहीं दिये, फिर भी उन्होंने अंदर के वस्त्र तो स्वयं पहन लिये । मुझे गोलमोल भाषा में समझा दिया, पर मैं समझ नहीं सकी । यों तो तीन दिन पहले से मुझे कहा था कि "मैं अब ढाई दिन हूँ ।" मुझे अगले दिन कहा - "मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ कि अपनी गुरुजी की गोद में मस्तक रखकर अपने गुरुदेव पूज्य रत्नचन्द्रजी महाराज के पास जाऊँगी ।" ठीक वैसा ही हुआ ।

व्याख्यान का समय हो गया, इसलिए मैंने साध्वी वसुबाई को व्याख्यान शुरू करने के लिए भेजा । मैं ९ बजे तैयार होकर पगथियों तक गई कि मुझे कोई अदृश्य दैवी आवाज आई - 'तुझे मैंने कहा था कि मैं ढाई दिन हूँ, फिर तू कहाँ जा रही है ?' मुझे तीन-तीन बार ऐसी आवाज आई, इसलिए मैं व्याख्यान में न जाकर वहीं से लौटकर उनके मस्तक के आगे बैठी । उन्होंने कहा - "आप वापस क्यों आई ?" मैंने कहा - "मुझे ऐसी अदृश्य आवाज आई !" वे बोली - "अच्छा हुआ ।" उन्होंने मेरी गोद में अपना मस्तक रखा और मुझे कहा - "महासतीजी ! मैं नहीं मर रही हूँ, मेरा शरीर मर रहा है । आप मेरे प्रति रागभाव मत रखना, मेरा मोह छोड़ दो । यह देह तो नश्वर है । आप हिंमत रखना ।" यों कहकर हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ रखकर बोली - "हे आदीश्वर दादा ! मुझे भव-भव में आपकी शरण होजो ।" तब मैं चौंकी, मुझे स्पष्ट ज्ञान हो गया कि मेरी ताराबाई सतीजी मुझे छोड़कर चली । अतः मैंने उन्हें नौ बजकर पैंतालीस मिनट पर यानी पौने दस बजे सागारी संथारा कराया । संथारे के प्रत्याख्यान लेते समय उनके मुख पर इतना अधिक हर्ष था कि बस, अब मेरी भावना पूर्ण हुई । यों तो उन्होंने ३ दिन पहले ही 'मुझे संथारा कराओ' ऐसी प्रबल भावना व्यक्त की थी, परन्तु मैं उनकी इस भावना को पूर्ण न कर सकी । जब मैंने सागारी संथारा कराने के साथ यों कहा कि - "काल आए तो यावज्जीव संथारा है", यह सुनकर उनकी अन्तरात्मा बोल उठी कि 'मैं आज भाग्यशाली बनी । मेरी गुरुणीजी ने मुझे पावन बना दी । कंटकाकीर्ण मार्ग से पीछे हटाकर मोक्ष के मार्ग पर मोड़ी । धन्य हैं, मेरे गुरुणी देव ! मैं आपसे क्षमायाचना करती हूँ । अब मुझे नवकार मंत्र सुनाओ !' इस पर से हम सब उन्हें नवकार मंत्र का शरण देने लगीं । परन्तु स्वयं तो अन्तिम श्वास तक - 'देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर अमर पद मारूँ ।' यह धून चालू रही । ता. २५ शनिवार के दिन सबेरे १० बजकर १० मिनट पर अपने आप धून बोलती-बोलती माघ वदी २ के दिन ४८ वर्ष की वय में साढ़े आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय पालकर सकल संघ की हाजरी में नश्वर शरीर का त्याग किया । जबसे दीक्षा ली थी, तभी से वे कहती थी - 'भले कम जीना हो, परन्तु पण्डित-मरण से मेरी मृत्यु हो ।' उनकी यह शुद्ध भावना साकार हुई । अल्प समय में ही उन्होंने आत्मसाधना सिद्ध कर ली ।

जूठन के दानों के ढेर में सींग मारने का मन होता है। यदि बीच में कुत्ता खाने के लिए आ जाए तो सींग मारने जाता है। जूठन के लिए वह सब कुछ करने को तैयार है, पर रत्न के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं है। इसी प्रकार यह जीव भी विषय-कषाय की जूठन के लिए भरसक करने को तैयार है, परन्तु धर्मरत्न के लिए कुछ भी करने को तैयार नहीं है। पशु को तो रत्न की परख नहीं है, इसलिए वह उसे जाने देता है। पर तुम तो होशियार मानव हो न ? तुम रत्न को परख सकते हो, फिर किसलिए लापरवाह रहते हो ? दीपक जैसे अंधकार को दूर कर देता है, वैसे धर्मरूपी रत्न के प्रभाव से पापरूपी अंधकार दूर हो जाता है।

यह मानवभव जैसे-तैसे नहीं मिल गया। इसकी कीमत समझो। उसमें भी अमूल्य जैनधर्म मिला है, इसकी महत्ता समझो। यहाँ जीव समझे तो क्षण-क्षण में कर्म की निर्जरा कर सकता है। गौतमस्वामीजी ने भगवान् से पृच्छा की - "भगवन् ! एक नवकारसी तप करे तो उसे क्या फल मिलता है ?" भगवान् ने फरमाया - "हे गौतम ! २९ लाख, ६३ हजार, दो सौ सड़सठ ऊपर एक पल्योपम का चौथा भाग शुभ देवायुष्य का बंध करता है। शुद्ध सम्यक्त्व सहित सामायिक करे तो ९२ करोड़, ५९ लाख, २५ हजार ९२५ पल्योपम और १ पल्योपम के ७ भाग करके उसमें से तीन भाग झाझेरा (अधिक) शुभ देवायु का बन्ध करता है। ऊनोदरी तप करे तो क्या लाभ होता है ? सौ वर्ष के पाप दूर होते हैं। एक उपवास करे तो एक हजार वर्ष के नारकी का पाप दूर होता है। इतनी करणी करने में इतना महान् लाभ रहा हुआ है, तो धर्म की जो खूब आराधना करता है, उसे कितना लाभ होता है ? अरे ! जो संसार छोड़कर संयमी साधु बने हैं, उन्हें तो कितना लाभ है ? प्रतिक्षण कर्मनिर्जरा का लाभ होता है, घाटा तो होता ही नहीं। परन्तु कब ? क्या साधुवेश पहनकर बैठ गये; तुम्हें उपदेश दे दिया, इतने मात्र से कल्याण हो गया ? नहीं। तो फिर कल्याण कब होता है ? यह वीतराग-प्रभु का वेश पहना है, तो वेश के प्रति वफादार रहें तो कल्याण होता है। किन्तु चारित्र को नष्ट-भ्रष्ट करके मात्र दूसरों का कल्याण करने-कराने में रात-दिन लगे रहें तो घाटे का सौदा कर रहे हैं।

आज आप संतों को वन्दन करते हैं। अपने से उन्हें तीन फीट ऊपर बिठाये हैं, यह भगवत् प्ररूपित सम्यक्चारित्र-मार्ग का सम्मान है। कोई व्यक्ति सकल चारित्र का त्याग करके आए तो आप उपाश्रय में उसे ठहरायेंगे क्या ? बोलो न हीराभाई, वजुभाई ! जिसने चारित्र (मुनिदीक्षा) छोड़ दिया, उसे श्रावकवर्ग स्वयं ही कह देगा - 'आप यहाँ से पधार जाओ, यहाँ अब आपके लिए स्थान नहीं है ! यहाँ तो संयम (चारित्र) के प्रति वफादार रहे, उसका काम है।'

पुलिस और सेठ का दृष्टांत : मान लो, किसी धनाढ्य सेठ की पुत्रवधू नई-नई शादी करके आई है। उसे मालूम नहीं है कि यहाँ पानी ढोलने की मनाही है। उसने वहाँ पानी डाला। इस पर म्युनिसिपालिटी के सफाईखाते का चपरासी जांच करने आया। उसने उक्त वहू को (गुनाहगार समझकर) पकड़ी। इस पर उसके ससरा ने उससे कहा -

है ?" उस राजा ने कहा – "तुम एक काम करो । यह सामने मेरा बगीचा है, उसमें ए
अत्यन्त सघन और हराभरा बड़ का पेड़ है । वह सारा का सारा सूख जाए, तब
पास चले आना । हम दीर्घायुष्य क्यों है और तुम्हारे राजा दीर्घायु क्यों नहीं हैं ? इस प्र
का जवाब मिल जाएगा ।" मंत्री के मन में विचार आया कि यह विशालकाय स
हराभरा एवं नीला है – वटवृक्ष । यह कब सूखेगा और कब मुझे छुट्टी मिलेगी ?
प्रतिदिन बड़ के नीचे जाता है और निःश्वास छोड़ता हुआ कहता है –"हे बड़ के पेड़
अब तू जल्दी से जल्दी सूख जा, जिससे मुझे अपना प्रश्न का उत्तर मिल जाय ।"
मंत्री रोज इस प्रकार बड़ के नीचे जाकर निःश्वास छोड़ते हुए इसी प्रकार कहने लग
फलतः वह वटवृक्ष सूख गया । उसका क्या कारण था ? वनस्पति में भी जीव है ।
तो, वृक्ष भी वनस्पतिकायिक जीव है । वनस्पति पर भी अपने जैसा प्रभाव प
है । 'आचारांग सूत्र' के प्रथम श्रुत स्कन्ध के प्रथम अध्ययन के पंचम उद्देशक में म
और वनस्पतिकाय की तुलना करते हुए भगवान् ने कहा है – *"से बेमि इमंपि ज
धम्मयं, एयंपि जाइ धम्मयं, इमं, इमंपि वुड्ढि धम्मयं एयंपि वु
धम्मयं, इमंपि चित्तमंतयं, एयंपि चित्तमंतयं, इमंपि छिन्न मिला
एयंपि छिन्न मिलाति, इमंपि आहारगं, एयंपि आहारगं, इमंपि अणिच्च
एयंपि अणिच्चयं, इमंपि असासयं, एयंपि असासयं, इमंपि चओवचइ
एयंपि चओवचइयं, इमंपि विपरिणाम धम्मयं, एयंपि विपरिण
धम्मयं...।।"*

मैं कहता हूँ – जैसे मनुष्य का शरीर उत्पन्न होने के स्वभाववाला है, वैसे ही वनस
का शरीर भी उत्पन्न होने के स्वभाववाला है । जैसे मनुष्य का शरीर वृद्धि पाता है,
ही वनस्पति का शरीर भी वृद्धि पाता है । जैसे मनुष्य के शरीर में चैतन्य है, वैसे
वनस्पति के शरीर में भी चैतन्य है । जैसे मनुष्य को शरीर का छेद न होने से स
(मुर्झा) जाता है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी छेदन होने से सूख (मुर्झा) जाता है ।
मनुष्य को आहार की जरूरत होती है, वैसे ही वनस्पति को भी आहार की जरूरत ह
है । जैसे मनुष्य का शरीर अनित्य है, वैसे वनस्पति का शरीर भी अनित्य है । मनुष्य
शरीर अशाश्वत है, वैसे ही वनस्पति का शरीर भी अशाश्वत है । जैसे मनुष्य के शरीर
हानि-वृद्धि होती है, वैसे ही वनस्पति के शरीर की भी हानि-वृद्धि होती है । जैसे मनु
के शरीर विपरिणमन-धर्म (अनेक विकार उत्पन्न होने के स्वभाव) वाला है; वैसे वनस्प
का शरीर भी विपरिणमन धर्म के (अनेक विकार उत्पन्न होने के) स्वभाववाला है ।
प्रकार वनस्पति भी मनुष्य के स्वभाव से लगभग मिलती है । इस कारण वनस्पति
सचेतन है, अर्थात् उसमें भी जीव (आत्मा) है ।

मनुष्य पर जिस प्रकार असर होता है, वैसे ... पर भी होता है । उक्त प्रध
बटवृक्ष के नीचे प्रतिदिन जाकर यों ...! तू सूख जा ।" इस कार
... में वह गहर-गम्भीर बड़ सूख गया ... चनों से बुल

जा सकता है। जो पण्डित हो, वह 'मैं पण्डित हूँ,' यों कहलाने के लिए क्या वह मेहनत करता है ? हीरे की कीमत लाखों की हो, फिर भी वह ऐसे नहीं कहता कि मेरी इतनी कीमत है। कहा भी है - 'हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल।' इसी प्रकार सच्चा पण्डित स्वयं पण्डित है, ऐसे नहीं कहता। सच्चा साधु या सच्चा श्रावक, यों नहीं कहता कि हम सच्चे साधु या श्रावक हैं। इनके गुणों पर से ही इनका मूल्यांकन हो जाता है। साधु का साधुता के गुण से और श्रावक का श्रावकत्व के गुण से मूल्यांकन हो जाता है।

एक श्रावक प्रतिदिन सामायिक लेकर व्याख्यान श्रवण करने बैठ जाता था। जिस रोज वह नहीं आता था, उसका ध्यान भी एक साधुजी रखते थे। वह श्रावक लगातार दो दिन तक उपाश्रय में नहीं आया। तीसरे दिन जब आया तो साधुजी ने पूछा - "श्रावकजी ! दो दिन तक आपकी गैरहाजरी क्यों रही ?" यह सुनकर श्रावक ने कहा - "महाराजश्री ! एक काम था।" महाराज साहब ने कहा - "चाहे जितना काम हो, फिर भी आपकी गैरहाजरी नहीं होती।" महाराजश्री ने जब बहुत पूछा तो श्रावक ने कहा - "महाराज साहब ! सच कहूँ तो हम गृहस्थ कहलाते हैं। मेरा एक पुत्र १८ वर्ष का है। उसने मुझसे कहा - 'लोग यों कह रहे हैं कि एक बहुत विद्वान् महाराज पधारे हैं। उनके व्याख्यान बहुत ही अच्छे और युक्तिसंगत होते हैं। उपाश्रय श्रोताओं से खचाखच भर जाता है। आप तो रोज ही जाते हैं, एक दिन मुझे भी व्याख्यान सुनने के लिए जाने दें।' यों उस लड़के ने हठ पकड़ ली कि 'आज तो मुझे उपाश्रय अवश्य जाना है।' परन्तु आप तो अपने व्याख्यान में प्रतिदिन लोगों को फटकारते हो कि कूड़ा तोल, कूड़ा माप (तौलने-नापने में गड़बड़ी रखोगे) तो तिर्यंच गति में जाना पड़ेगा। हमारी दुकान में तो लेने के लिए सवा पाँच शेरी और देने के लिए पौने पाँच सेरी बाट होते हैं। अगर वह लड़का व्याख्यान सुनने के लिए आए और यह बात सुन ले तो हमारा धंधा ही बंद हो जाए न ?" (इसलिए दो दिन तक मैं लड़के को समझाने में लगा रहा)। (हँसाहँस) मैं आपसे पूछती हूँ (क्या ऐसे व्यक्ति को श्रावक कहा जाए ?) ऐसे श्रावक तो बहुत सी दफा बन गए। इससे कल्याण नहीं होता। अब तो सच्चे श्रावक बनो तो कल्याण हो।

सलिलावती विजय में वीतशोका नामक नगरी है। उस नगरी में बाग-बगीचे, बावड़ी, कुंए, धर्मशालाएँ आदि सभी प्रकार की सुविधाएँ हैं। इसलिए वह नगरी देवलोक-तुल्य सुशोभित थी। नगरी के योग्य यह सब सामग्री हो तो वह नगरी शोभायमान होती है। राजा चतुरंगिणी सेना से सुशोभित होता है और नारी की शोभा सतीत्व में है। चाहे जितनी रूपवती स्त्री हो, सौन्दर्य से शरीर शोभायमान हो, किन्तु उसका चारित्र अच्छा न हो तो (ज्ञानियों की दृष्टि में) उसकी कोई कीमत नहीं है। शील तो सती स्त्री का श्रृंगार है। साधु सावद्य भाषा कभी नहीं बोलता। तुम ५ वर्ष की दीक्षा-पर्यायवाले साधु के पास बैठो या ५ दिवस की दीक्षा-पर्यायवाले साधु के पास जाकर

हो !' इस प्रकार का ध्यान रखकर हम राज्य करते हैं, इस कारण प्रजा हमारे प्रति प्रसन्न रहती है और अन्तर से उद्‌गार निकालती है – 'हमारे राजा दीर्घायु हों ।' इस कारण हमारे राजा दीर्घायुष रहते हैं ।'' यह तो एक कवि की कल्पना है । सिद्धान्तानुसार तो सभी जीव अपने-अपने (बँधे हुए) आयुष्य कर्म के अनुसार जीते हैं । किन्तु संसार कैसा विचित्र है ? स्वयं को जिस प्रकार की सुख-सुविधा चाहिए जीव वैसा ही चिन्तन करता है ।

अन्न के और चमड़े के व्यापारी का चिन्तन : एक बार एक अनाज का और दूसरा चमड़े का, यों दोनों व्यापारी दूसरे गाँव जा रहे थे । उस समय एक तीसरा मनुष्य भी इनके साथ जाने को तैयार हो गया । उस मनुष्य ने जाते समय अनाज के व्यापारी के साथ मित्रता की और वापस लौटते समय चमड़े के व्यापारी के साथ मैत्री कर ली । इसका क्या कारण था ? क्या इसका रहस्य तुम समझते हो ? यदि उस मनुष्य ने वापस लौटते वक्त अनाज के व्यापारी के साथ मित्रता की होती तो गाँव में शोहरत हो जाती कि यह बड़ा व्यापारी इसका मित्र है । यह बाह्य दृष्टि है ! परन्तु अगर हम आन्तर दृष्टि से विचार करेंगे तो समझ में आ जाएगा कि इसके अन्तर की विचारणा कैसी है ? जाते समय अनाज के व्यापारी मन में ऐसा विचार करता था कि 'सुकाल हो तो अच्छा, अनाज सस्ता मिलेगा ।' जबकि चमड़े का व्यापारी यों विचारता था कि 'दुष्काल पड़े तो पशु मर जाएँगे और मुझे अच्छा चमड़ा सस्ते भाव में मिलेगा ।' इसलिए जाते समय अनाज के व्यापारी के विचार उत्तम थे, जबकि चमड़े के व्यापारी के मनोभाव अधम थे ! परन्तु वापस लौटे, तब अनाज के व्यापारी की मनोभावना ऐसी थी कि 'अब वर्षा की तान रहे, तो अच्छा, क्योंकि बरसात नहीं होगी तो अनाज के भाव में तेजी होगी, मुझे बहुत मुनाफा रहेगा ।' जबकि चमड़े के व्यापारी के मनोभाव ऐसे थे कि 'अब बरसात खूब वर्षे, सुकाल हो और पशु मरते बंद हों तो चमड़े के भाव में तेजी आएगी, मुझे खूब मुनाफा मिलेगा ।' इसलिए जाते समय तो अनाज के व्यापारी के भाव उत्तम थे और लौटते समय चमड़े के व्यापारी के भाव उत्तम थे । परन्तु इसमें उनकी कोई धर्मदृष्टि नहीं थी । प्रत्युत अपने होनेवाले लाभ-अलाभ की स्वार्थ प्रधान दृष्टि थी । स्वयं को जिसमें लाभ हो, उसे व्यक्ति अच्छा मानता है, और स्वयं को जिसमें हानि हो, उस अच्छे को भी वह खराब मानता है, यह है संसारी जीवों की भावना । जब साधु गौचरी जाता है, तब आहार-पानी मिल जाए तो यों मानता है कि 'इस आहार का सेवन करके ज्ञान-ध्यान बढ़ाने में उद्यम करूँगा' और अगर गौचरी नहीं मिलती है तो मानता है कि 'मुझे अनायास ही तप की वृद्धि का अवसर मिला ।' यह (आत्म दृष्टिवाले) आत्मा की विचारणा है, किन्तु अगर शरीर के प्रति दृष्टि जाती है तो यों विचार हो[illegible] रुकी नहीं, इस कारण गौचरी नहीं मिली । भूख लगी है, इस [illegible] शरीर जहरीला कीड़ा है । जहर के कीड़े को शक्कर में [illegible] आनन्द आता है । उसी प्रकार यह जीव भी [illegible] में [illegible]

परिचय में आते गए, त्यों-त्यों उन्हें संसार की असारता समझ में आ गई और उनकी आत्मा वैराग्य के रंग में रंजित होता गया । पुत्र (उस समय) छोटे होने से तथा सारे घर-परिवार की जिम्मेदारी उनके सिर पर होने से वैराग्य रंग से आसक्त ताराबहन को अनासक्त भाव से १२ वर्ष संसार में गुजारने पड़े । अन्त में एक पुत्र का विवाह करने के पश्चात् घर की जिम्मेदारी संभाल सके, ऐसा पुत्र तैयार होने के बाद उन्होंने पुत्रों से संयम ग्रहण करने की आज्ञा मांगी । ये शब्द सुनते ही माता की प्रेमभरी गोद में खेले हुए चारों पुत्र फफक-फफक कर अश्रुपात करते हुए रोने लगे । वे बोले - "माँ ! संसार में रहकर तू साधुजीवन जी, परन्तु हम तुम्हें (हमें बिलखते छोड़कर) दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं देंगे ।"

संयम लेने के लिए कठोर कसौटी में खड़ी उतरी : ताराबहन ने अपने पुत्रों से कहा - "पुत्रों ! तुम चाहे जो करो, फिर भी एक क्षण भी मैं संसार में रहना नहीं चाहती । मैंने अपनी जिम्मेदारी पूरी-पूरी निभाई है । अतः अब मुझे गृहस्थ-संसार से मुक्त करो । तुम्हारे पीछे मैंने १२ वर्ष बिताये हैं । अब मैं घड़ी भर भी रह नहीं सकती । अतः तुम मुझे प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दो ।" चारों पुत्रों को बहुत कुछ समझाने पर भी जब किसी भी तरह से वे मातृप्रेम छोड़ नहीं सके, साथ ही उन्होंने (पुत्रों ने) जब दृढ़ता बताई कि 'हम किसी भी हालत में दीक्षा की आज्ञा नहीं देंगे,' तब ताराबहन ने अन्त में निर्णय किया कि इन पुत्रों का मेरे प्रति जो स्नेह (मोहासक्त) है, उसे छुड़ाने के लिए मुझे कठोर कसौटी में प्रवेश करके भी दीक्षा की आज्ञा प्राप्त करनी है । अतः उन्होंने चौविहार उपवास करने शुरू किये । आग बरसाते जेठ महीने के सख्त ताप में चौविहार उपवास के कारण माता के मुख पर म्लानता देखकर पुत्रों के हृदय हिल उठे । दूसरी ओर कुटुम्बीजनों और स्नेही - सम्बन्धियों ने उनसे उपवास छोड़ देने के लिए बहुत आग्रह किया । इस पर उन्होंने अपना दृढ़ निश्चय प्रकट कर दिया - "अब मैं संयम (साध्वी दीक्षा) ग्रहण करने की आज्ञा प्राप्त करने के बाद ही पारणा करूँगी, अन्यथा नहीं ।" जिसे संयम की लगन लगी हो और जिसका एक ही ध्येय हो कि संसार से मुक्ति लेकर - कब आत्मा की मुक्ति मैं प्राप्त करूँ, ऐसा दृढ़ वैराग्य देखकर अन्त में पुत्रों ने कहा - "माँ ! तूने हमारे लिए बहुत किया है, तुम्हारे इस अनन्त उपकार के ऋण से मुक्त होने के लिए, हमारी इच्छा है कि तू संसार में रहकर साध्वी जैसा जीवन जी, ताकि हम तेरी सेवा करके तेरे ऋण से उऋण हो सके ।" इतने पर भी जब ताराबहन अपने नियम और वैराग्य से जरा भी विचलित नहीं हुई, तब गदगद् कण्ठ से अश्रुपात करती हुई आँखों से पुत्रों ने माता को दीक्षा की आज्ञा दी : "हे हमारी परम-उपकारिणी वात्सल्यमूर्ति माता ! जाओ, आप सुखपूर्वक स्व-पर-कल्याण की साधना करो ।" इस प्रकार दीक्षा की आज्ञा मिलते ही ताराबहन के रोम-रोम में आनन्द के फूल खिल उठे और वि. संवत् २०१४ के आषाढ़ सुदी २ को दीक्षा ग्रहन करने का मंगल दिवस आ पहुँचा ।

संयम लेने की उम्मीदवार वैराग्यवती ताराबहन जब आषाढ़ सुदी २ के दिन घर छोड़-कर दीक्षामण्डप में आने के लिए तत्पर हुई उस समय का उनके पुत्रों का करुण रुदन, माता के प्रति स्नेह और पुत्रों के हृदय में मातृविरह का आघात ऐसा था कि दर्शकों

चाहिए। यानी प्रतिवर्ष मकान इतना-इतना बढ़ाना चाहिए। उसके रक्षण के लिए अमुक व्यवस्था करनी चाहिए। अगर इस सम्बन्ध में कोई भूल हुई तो पहले भरे हुए किराये में से दण्ड करके उसकी वसूल कर लेना। यह दण्ड कितना करना ? यह हमारी इच्छानुसार हम करेंगे। उस दण्ड की सूचना तुम्हें नहीं दी जाएगी। जिस वक्त रकम पूरी जो जाएगी, उस वक्त तुम्हारे यहाँ आएगा। उस वक्त उस घर में से तुम्हें कोई भी मिल्कियत नहीं लेना, तथैव पत्नी, पुत्र या भाई-बहन को भी याद न करना। सिपाही सीटी बजाये कि तुरंत घर छोड़कर निकल जाना पड़ेगा और ताजा कलम नीचे लिखे अनुसार है – हमारा सिपाही आए, उस समय तुम चाहे जितना (कम) किराया दोगे, यह नहीं चलेगा। वह मकान हमारी मालिकी का है। उसमें जो कुछ भी मिल्कियत होगी या कुटुम्बीजन होंगे, उस पर तुम्हारी मालिकी नहीं रहेगी। बोलो, ऐसी शर्तें मंजूर करके तुम कोई प्लोट लेने के लिए तैयार होओगे ?" *(श्रोताओं में से आवाज)* "नहीं, एक भी प्लोट लेने के लिए कोई तैयार नहीं होगा।" अब इस दृष्टान्त को हम मनुष्यभव पर घटित करते हैं –

कर्मराजा ने मनुष्य भवरूपी प्लोट दिया है। उसमें पहली शर्त यह है कि प्लोट जितने वर्ष रखना हो, उसका किराया पहले भर दो। पुण्योपार्जन करके मनुष्यभव का आयुष्य बांधा। उस वक्त पुण्य के रूप में किराया भर दिया। प्लोट कब्जे में लेने से पहले किराया दे दिया, इसलिए मानव का शरीर मिला। उसके साथ ही आयुष्य कर्म तथा शुभ नामकर्म, यह सब पुण्य से प्राप्त हुआ। माता के गर्भ में आकर दिनानुदिन शरीर बढ़ने लगा। सर्वप्रथम वह अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते जब जन्म होता है, तब इसमें वृद्धि होने से बड़ा हुआ। उसके रक्षण करने हेतु प्रयत्न करना होता है। उस विषय में अगर प्रमाद किया, उन्माद किया तो बाहर ही बाहर (परोक्षरूप से) जमा कर देता है, उसका पता भी नहीं पड़ता। कितने वर्ष का (उसका) आयुष्य है, उसका पता भी हमें नहीं पड़ने देता। अन्त में, जब आयुष्य पूरा होता है, तब कालरूपी सिपाही आकर सीटी बजाकर सूचित करता है कि अब (शरीररूपी) घर में से बाहर निकलो। उस मकान को बांधते समय जो कुछ कर्ज किया हो, वैर-विरोध उठाये हों, उसके साथ कुछ लेना-देना नहीं है। चाहे जितना महान् कौटुम्बिक बल हो, जगत् में (चाहे जितनी) प्रतिष्ठा जमाई हो, या अपार सम्पत्ति अर्जित की हो, मगर कोई भी पदार्थ या किसी भी मनुष्य को साथ में लिये बिना अकेले ही जाना होता है। ऐसी शर्तवाला मकान, अपना शरीर है। उस पर क्यों मोह-प्राप्त कर रहे हो ? ऐसा प्लोट कोई धर्मादे में या मुफ्त में भी दे तो भी क्या कोई लेने को तैयार होता है ? जिसमें भविष्य की मिल्कियत भी खो जाती है और मालिकी भी चली जाती है ! ऐसी कठोर शर्तें कबूल करके खरीदा हुआ शरीर कैसा अशुचिमय है ?

म्युनिसिपालिटी की कचरा भरने की मोटर जैसा यह शरीर है : म्युनिसिपालिटी की मोटर ऊपर से तो कैसी लाल चटकदार होती है ? परन्तु उसका ढक्कन खोलो तो

के दिन उनके मस्तक में असह्य पीड़ा उत्पन्न हुई । वह पीड़ा दो दिन रहने के बाद मिट गई और फिर माघ महीने में माटुंगा पधारीं, तब वहाँ पुनः वैसी ही पीड़ा उत्पन्न हुई ।

सतीजी की सहनशीलता देखकर डोक्टरों के मस्तक भी झुक गए : जिसने रोग को दफना देने की शक्ति प्राप्त की है और असह्य पीड़ा में भी समता के सरोवर में जिनकी आत्मा रमण कर रही है, ऐसे ताराबाई महासतीजी को देखकर डोक्टरों के मुख से उद्‌गार निकल पड़े - "धन्य है, महासतीजी आपको ! आप जैसे रोगियों को इस पीड़ा के आगे पकड़ के रखना पड़ता है । क्योंकि सिरदर्द ऐसा भयंकर होता है कि अच्छे-अच्छे मनुष्य भी सहन नहीं कर सकते । इस रोग में दिमाग की नसें सिकुड़ जाती हैं और खून का संचार कम हो जाता है, तब ऐसी असह्य वेदना उठती है । फिर भी आपकी अलौकिक समता और सहनशीलता को देखकर हमारे मस्तक सहसा झुक जाते हैं ।" इस प्रकार के शब्द डोक्टर के मुख से बरबस निकल पड़ते और कोई भी डोक्टर आता तो चार्ज (फीस वगैरह) भी नहीं लेते थे ।

माघ सुदी ८, शनिवार को मंदाकिनीबाई का भव्य दीक्षा महोत्सव मनाया गया । उसके पश्चात् अपनी मृत्यु के तीन दिन पहले से मुझे कहा - "महासतीजी ! यह जीवन क्षणभंगुर है । नश्वर देह का मोह त्याज्य है । मैं बड़ी दीक्षा देखूंगी ।" ऐसे उनके गूढ संकेत को मैं समझ नहीं सकी । मैंने कहा कि "बड़ी दीक्षा तो सायन में है, आपकी तबियत अच्छी नहीं है, वहाँ तक आप कैसे आ सकोगी ?" इस पर मुझे कहा - "मैं वहाँ आने-वाली नहीं, परन्तु देखनेवाली हूँ । मुझे अब अंतिम आलोचना कराओ । मैं अब सिर्फ ढाई दिवस की मेहमान हूँ ।" दूसरे दिन मैं बड़ी दीक्षा देने के लिए जा रही थी, तब मुझे कहा - "महासतीजी ! आप जल्दी पधारना ।" उस दिन उन्होंने १०-१० मिनट पर धुन बोलनी शुरू की **"देह मरे छे, हुं नथी मरती, अजर-अमर-पद म्हारूं रे ।**

हृदय के रणकार के साथ वे यह धुन बोलने लगीं, तब सभी महासतीजी आँख में आंसू लाकर पूछने लगीं - "आप यह क्या बोल रही हो ?" तब उन्होंने कहा - "महासतीजी ! रुदन मत करो ! आँख में आंसू मत लाओ ।

चिन्ता करो शा काज, कोईनुं फेरवे फरतुं नथी ।
निर्माण जेहनुं जे थयुं, कोई अन्यथा करतुं नथी ।।

"मृत्यु तो जीवनरूपी झरने का अवरोधक-स्थान है । आत्मा तो अजर-अमर अविनाशी है । यह नश्वर देह एक दिन छूटनेवाला है ।" इतना कहकर पुनः अपनी धुन में मस्त हो गए । दूसरे दिन ता. २५ की सुबह को मुझे कहा - "महासतीजी ! आज दो घड़े पानी लाना । पहले काल की गौचरी पहर आने से पहले निपटा देना । कुछ भी रखना नहीं । पहनने के लिए तीन कपड़े सिले हुए तैयार हैं न ? न हों तो अभी के अभी सिला लो ।" यह सब कहने के पीछे उनका आशय यह था कि अभी मैं जानेवाली हूँ । मेरे गुरुणीजी घबरा जाएँगी, इसलिए उन्होंने सब संकेत किये ।

इसकी असारता का इससे बढ़कर क्या प्रमाण चाहिए कि इस पर लगाये हुए सुन्दर से भी सुन्दर पदार्थ भी खराब हो जाते हैं। चन्दन, केसर आदि सुगन्धित पदार्थ इस पर लगाये जाएँ तो शरीर के संसर्ग से अल्पकाल में वे भी विकृत हो जाते हैं। शरीर में डाले हुए सुन्दर से सुन्दर पकवानों की कैसी खराब परिणति होती है और कैसी विकृत वस्तु बाहर (निकलकर) आती है ? शरीर पर पहने हुए वस्त्र भी अल्पकाल में उसके संयोग से मैले हो जाते हैं। कितना असार है यह शरीर ? फिर भी कितना है इसके प्रति मोह ? अतः बुद्धिमान् इस शरीर में रहे हुए दुर्गन्धित पदार्थों तथा शरीर के अंदर की अवस्थाओं को देखकर, इसके सत्य स्वरूप को समझकर इस शरीर पर मोह न रखें और जहाँ तक शक्ति है, स्वस्थता है, वहाँ तक इस शरीर से तप, संयम, त्याग आदि (धर्माराधना) कार्य निकलवालें।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

वीतशोका नगरी में बल नामक न्याय नीतिमान् राजा राज्य करते हैं। जैसे राजा का प्रजा के प्रति प्रेम है, वैसे प्रजा का भी राजा के प्रति प्रेम है। राजा की कीर्ति अत्यन्त दूर-दूर तक व्याप्त है। *"तस्स धारणी-पामोक्खं देवी-सहस्सं ओरोहे होत्था।"* उस बलराजा के अन्तःपुर में (धारणी-प्रमुख) एक हजार रानियाँ थीं। राजा आदर्श और गुणवान् था, तो रानियाँ भी गुणवती थीं। उन एक हजार रानियों में धारणी मुख्य रानी थी।

बन्धुओं ! स्त्री घर का श्रृंगार है। घर चाहे जितना सुंदर हो, पुरुष चाहे करोड़ों रुपये कमाता हो, परन्तु घर में स्त्री (गुणवती और दक्ष) न हो तो घर की कोई व्यवस्था नहीं होती। (गुणवती) स्त्री घर को सुव्यवस्थित रखती है। घर में कुछ भी (आवश्यक वस्तुएँ) न हो, तो भी सुशील गृहिणी घर को अच्छा दिखाती है। पुण्य का उदय हो तो पत्नी सुघड़ और अच्छी मिलती है और पापकर्म का उदय हो तो खराब मिलती है। पुण्योदय हो तो कैसी पत्नी मिलती है ? इसके लिए कहा है -

"कार्येसु मंत्री, करणेषु दासी, धर्मेसु पत्नी क्षमया च धात्री।
भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा, रंगे सखी लक्ष्मण ! सा प्रिया मे ॥"

जब भी पति के किसी कार्य में उलझन आए, तब पतिव्रता स्त्री उस कार्य में मित्रवत् परामर्श देती है, गृहकार्य में भी मंत्री की भूमिका निभाती है। अर्थात् पति के किसी कार्य में कोई उलझन आए उस समय पतिव्रता स्त्री गुप्तमंत्रणा करके उचित हल बताती है। कोई भी गृहकार्य करने में वह नहीं हिचकिचाती। छोटे-से छोटा कर्म करने में वह आगे रहती है। वह पति को धर्ममार्ग में प्रेरित करती है। धर्ममाता के समान वह क्षमाशील, कष्ट सहिष्णु और सहनशील होती है। पति को भोजन कराते समय वह माता की भूमिका निभाती है। वह भोजन के समय इधर-उधर की गृहकलह की या अपनी शिकायत की

जानार तो जाता रह्या, सद्‌गुण एना सांभरे ।
लाखो लुंटावो तो भले, मरनार पाछा ना मळे ।
जानार आग विषे बले, मरनार पाछा ना मळे ।
वैभव मळे, कीर्ति मळे, लक्ष्मी गयेली सांपडे ।
ए सौ मळे आ जगतमां, मरनार पाछा ना मळे ।।

वास्तव में, विकराल काल ने गजब किया ! वात्सल्य की वेलड़ी, विनय की बावड़ी और सेवा के सौरभयुक्त सुमन समा हमारी ताराबाई महासतीजी को क्रूर कालराजा लेकर चल पड़ा । संघ ने प्रत्येक संघ को सूचना दी । अन्तिम दर्शन के लिए मुंबई की मानव-मेदिनी उमड़ पड़ी । उनकी श्मसानयात्रा में लगभग २५ हजार मानव थे । उनका दाह संस्कार चन्दन के काष्ठ से किया गया । सकल संघ में भारी शोक छा गया । वे स्वयं उत्तम आदर्श जीवन जीकर सबको आदर्श जीवन जीने की ज्वलन्त प्रेरणा दे गई हैं । फूल मुर्झा जाता है, पर उसकी सुगन्ध रह जाती है । वैसे ही ऐसी उत्तम आत्मा नश्वर देह छोड़कर चली जाती है । किन्तु गुण की सुवास छोड़ जाती है । संयमपथ में प्रेम के पुष्प बिछानेवाले, ऐसे पू. ताराबाई महासतीजी के गुणरत्नों से परिपूर्ण जीवन में निहित गुणरूपी रत्नों की माला में से एकाध गुणरत्न लेकर अपना जीवन उनके किरणों से चमकाकर कल्याण की पगडंडी पर कदम बढाएँगे, तो हमारे द्वारा उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण की कहलाएगी ।

उज्ज्वल जीवन जीवी जनारा, वात्सल्य वहेणोनी वहावता धारा ।
नयनोना तारा ने हैयाना हारा, गूंथी में गुणपुष्पोनी माला ।।

आज उनकी पुण्यतिथि के निमित्त से ८० अट्ठम (तेले) हुए हैं, तथा ५० पौषध और सामायिक की १०० पचरंगी हुई हैं । श्री संघ ने पू. ताराबाई महासती को अश्रुपूरित आँखों से श्रद्धांजलि अर्पित की थी । समय काफी हो गया है । अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १०

आषाढ़ वदी ३, बुधवार — ता. १४-७-७६

यादशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं एवं बहनों !

अनन्त करुणानिधि, विश्ववत्सल और परमतत्त्व-प्रणेता भगवान् तीर्थंकर ने केवलज्ञान-केवलदर्शन होने के पश्चात् आगमवाणी प्रतिपादित की । आत्मा जब केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे केवलज्ञान से लोकालोक का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता

कामकाज स्वयं अकेली करती थी । पिताजी की भी खूब सेवा करती थी । ऐसी गुणवान् पुत्री के प्रति पिता के दिल में अपार वात्सल्य हो, यह स्वाभाविक है । वह बहुत ही कामकाज करती थी । आखिर तो वह बालिका ही थी न ? रात्रि में बहुत थक जाती थी, कभी-कभी तो अकेली होने से घबरा जाती थी ।

अपर माता की चाह करती पुत्री : एक दिन दयादेवी ने अपने पिता से कहा - "पिताजी ! आप पुनर्विवाह करिए, तो मेरी माँ आएगी । मैं गायें चराने जाऊँगी तो वह रसोई बना लेगी और मुझे माँ का लाड़प्यार मिलेगा ।" पिताजी पुनर्विवाह करेंगे और नई माँ आएगी, वह इसे प्रेम देगी या त्रास देगी, इसकी इस फूल-सी कोमल दयादेवी को क्या पता ? उसके पिता ने कहा - "बेटी ! नई माँ आएगी तो तुझे बहुत दुःख होगा । मुझे लग्न (विवाह) नहीं करना है ।" परन्तु (भोलीभाली) दया कहती है - "आपको (पुनः) विवाह करना ही पड़ेगा ।" लड़की ने बहुत जिद की, तब उसके पिता के मन में विचार हुआ - 'बेचारी अकेली लड़की को कितना काम करना पड़ता है ? इस अपेक्षा से मैं पुनः विवाह करूँ तो इसे सहारा मिले ।' यों सोचकर पिता ने पुनः लग्न करने का निर्णय किया ।

अपर माता ने दया को भयंकर त्रास दिया : बन्धुओं ! जगत् में प्रत्येक मानव सुख के लिए विविध प्रवृत्तियाँ करता है, परन्तु ये प्रवृत्तियाँ प्रायः दुःखरूप और उपाधिरूप होती हैं, इसीका नाम संसार है । दयादेवी के पिता ने पुनर्विवाह किया । घर में दयादेवी की सौतेली माँ आई । दया के मन में अपार हर्ष है कि अब मुझे शान्ति मिलेगी । परन्तु सौतेली माँ दयादेवी के लिए सहायरूप होती है या त्रासरूप यह देखिए ! *उसका नाम ही है सौतेली माँ । ओरमन का अर्थ है - जिसका मन और वानी* अलग हो । यह नई माता सहायरूप होती तो दूर रही, उलटे वह कैसे-कैसे नये-नये (कठोर) आदेश देने लगी । शादी करके इस घर में आने के बाद एक सप्ताह तक तो ठीक चला । दयादेवी यों समझती थी कि अब मेरी नई माता मेरे काम में सहायक बनेगी, परन्तु उसकी यह धारणा गलत निकली । उलटे, अब वह दयादेवी पर ओर्डर करने लगी । एक मिनट भी उसे शान्ति से नहीं बैठने देती थी । काम करने में थोड़ी-सी देर हो जाती तो उसे धमकाती और मारपीट करती । खाना-पीना भी पेटभर नहीं देती थी । फूल-सी कोमल दयादेवी अत्यन्त उलझन में पड़ गई । परन्तु अब क्या हो ? वह चुपचाप रोने लगी, परन्तु पिताजी के समक्ष इस विषय में कुछ भी बात नहीं करती थी । उसका हृदय (दुःख से) भर आता, तब एकान्त में बैठकर विचार करती कि 'अपने सुख के लिए मैंने ही (चलकर) पिताजी को दूसरी शादी करने के लिए विनंती की । पिताजी ने मेरे आग्रहवश शादी की, परन्तु मुझे तो सुख के बदले दुःख मिला । मगर इसमें दूसरे का क्या दोष ? मेरे ही अशुभ कर्म उदय में आए हैं, तो मुझे शान्ति से भोगना चाहिए । भोगे बिना कोई छुटकारा नहीं है । दूसरे तो निमित्त मात्र हैं ।'

बालिका की नागदेव ने परीक्षा की : दयादेवी प्रतिदिन गायें चराने जाती थी । दोपहर में थकी-मांदी घर आती तो सौतेली माँ उसे सुखी रोटी का टुकड़ा और छाछ खाने

जानार तो जाता रह्या, सद्गुण एना सांभरे ।
लाखो लुंटावो तो भले, मरनार पाछा ना मळे ।
जानार आग विषे बळे, मरनार पाछा ना मळे ।
वैभव मळे, कीर्ति मळे, लक्ष्मी गयेली सांपडे ।
ए सौ मळे आ जगतमां, मरनार पाछा ना मळे ॥

वास्तव में, विकराल काल ने गजब किया ! वात्सल्य की बेलड़ी, विनय की बावड़ी और सेवा के सौरभयुक्त सुमन समा हमारी ताराबाई महासतीजी को क्रूर कालराजा लेकर चल पड़ा । संघ ने प्रत्येक संघ को सूचना दी । अन्तिम दर्शन के लिए मुंबई की मानव-मेदिनी उमड़ पड़ी । उनकी श्मसानयात्रा में लगभग २५ हजार मानव थे । उनका दाह संस्कार चन्दन के काष्ठ से किया गया । सकल संघ में भारी शोक छा गया । वे स्वयं उत्तम आदर्श जीवन जीकर सबको आदर्श जीवन जीने की ज्वलन्त प्रेरणा दे गई हैं । फूल मुर्झा जाता है, पर उसकी सुगन्ध रह जाती है । वैसे ही ऐसी उत्तम आत्मा नश्वर देह छोड़कर चली जाती है । किन्तु गुण की सुवास छोड़ जाती है । संयमपथ में प्रेम के पुष्प बिछानेवाले, ऐसे पू. ताराबाई महासतीजी के गुणरत्नों से परिपूर्ण जीवन में निहित गुणरूपी रत्नों की माला में से एकाध गुणरत्न लेकर अपना जीवन उनके किरणों से चमकाकर कल्याण की पगडंडी पर कदम बढाएँगे, तो हमारे द्वारा उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पण की कहलाएगी ।

उज्ज्वल जीवन जीवी जनारा, वात्सल्य वहेणोनी वहावता धारा ।
नयनोना तारा ने हैयाना हारा, गूंथी में गुणपुष्पोनी माला ॥

आज उनकी पुण्यतिथि के निमित्त से ८० अट्ठम (तेले) हुए हैं, तथा ५० पौषध और सामायिक की १०० पचरंगी हुई हैं । श्री संघ ने पू. ताराबाई महासती को अश्रुपूरित आँखों से श्रद्धांजलि अर्पित की थी । समय काफी हो गया है । अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १०

आषाढ़ वदी ३, बुधवार | ता. १४-७-७६

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं एवं बहनों !

अनन्त करुणानिधि, विश्ववत्सल और परमतत्त्व-प्रणेता भगवान् तीर्थंकर ने केवलज्ञान-केवलदर्शन होने के पश्चात् आगमवाणी प्रतिपादित की । आत्मा जब केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब उसे केवलज्ञान से लोकालोक का सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता

करने की रुचि जागृत नहीं होती । जबकि उत्तम जीव अ
करते हैं । मध्यम जीव प्रेरणा करने से धर्म करते हैं और
धर्म नहीं करते । धर्म के प्रति सहज प्रेमभाव से धर्म हो
भवसागर से पार उतारता है और जो (पुण्यात्मक) धर्म सांसा
रागभाव से होता है, वह आत्मा को भवाटवी में भ्रमण क
करने के बदले नये-नये भवों का सर्जन करता है।

बन्धुओं ! कनक, कामिनी और कीर्ति के प्रति रागभ
ने अनन्तवार धर्म किया, मगर मोक्ष के प्रति प्रेमभाव से इ
किया हो, ऐसा अपनी आत्मा की वर्तमान दशा पर से म
धर्माचरण) करे और आत्मा की दशा पलटे नहीं, क्या उ
जा सकता है ? धर्माचरण करें और आपका विचार, वाण
उसे धर्म किया कैसे कहा जा सकता है ? भोजन करें और
किया किस काम का ? दवा सेवन करें और रोग न मिटे तो
पानी पीयें और प्यास न बुझे तो पानी पीना किस काम क
करें, किन्तु स्वभाव न सुधरे, विचार और जीवन न सुधरे,

सत्य समझ कर धर्म करो : जब तुम्हें यह प्रतीत होगा
है, धर्म परम हितकर है, धर्म मेरा सच्चा और शाश्वत धन
उपादेय है, यह अचिन्त्य-चिन्तामणि है, धर्म कामधेनु,
समान है । वह माता है, पिता है, बान्धव है, धर्म के प्रति ऐ
जाए तो मानवजीवन धन्य-धन्य और सार्थक हो जाय । अ
की आशा न रखकर निष्काम, निःस्पृहभाव से धर्म करो ।
जन्म) पाकर धर्म मेरा परम और अनिवार्य कर्तव्य है, ऐसा
को पानी के बिना अन्यत्र कहीं भी चैन नहीं पड़ता, वैसे
सिवाय कहीं भी चैन नहीं पड़ता । इसीलिए उत्तम पुरुष ध
आप ही धर्माचरण करते हैं, मध्यम पुरुषों को कोई प्रेरणा
अधम पुरुषों को कोई धर्म करने की बार-बार प्रेरणा करे
धर्म आपके जीवन में चन्दन के साथ उसकी सौरभ
चाहिए । जैसे चन्दन की सुगन्ध चन्दन से पृथक् नहीं होती
नहीं होना चाहिए । शरीर की छाया, शरीर से अलग नहीं
अलग नहीं पड़ना चाहिए । जीवन में धर्म अस्थि-मज्जाव
में चाहे जितनी कठिनाइयाँ, विपदाएँ आएँ, परन्तु धर्म (ज

र वह प्रसन्न हो जाता है, और कोई उसे गाली दे तो खिन्न हो जाता है, वैसे ही भगवान् कहते हैं - "वनस्पति एकेन्द्रिय जीव है। वह मनुष्य की तरह बाहर (ऊपर) से दिखाई नहीं देता, परन्तु उसपर भी (अच्छे-बुरे भावों, बचनों और व्यवहार का) असर तो अवश्य ही होता है।" प्रधान राजा के समीप जाकर कहता है कि "साहब ! वड़ सूख गया है। अतः अब मुझे मेरे प्रश्न का जवाब दें।" इस पर राजा कहता है - "जैसे तूने रोज निःश्वास डालकर मेरा बड़ सुखा डाला, वैसे ही अब वह बड़ एकदम हराभरा हो जाय, तब मेरे पास आना।" प्रधान विचार करने लगा कि अब वह वड़ वापस कब हराभरा होगा ? अतः मन ही मन बहुत ही आकुल-व्याकुल हुआ, किन्तु राजा की आज्ञा है, इसलिए धैर्य से सहन करना ही पड़ेगा। आप वाचन करते हो, और उस समय किसी विषय में शंका पड़े तो किसी ज्ञानी संत से पूछने आते हो, उस समय वे संत कहें कि इस समय मुझे अवकाश नहीं है, आप कल आना। दूसरे दिन उनके पास गये और वे कहें कि आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। दो दिन के बाद आना। यों अगर वे तुम्हें सात चक्कर खिलायें तो तुम जाओगे क्या ? नहीं जाओगे। बल्कि उस साधु के विरुद्ध बोलने लगोगे। परन्तु जिसके पास से तुम्हें पैसे लेने हैं, उससे उघरानी वसूल करने के लिए जाओ, और उससे पैसे मांगने पर वह सात के बदले दस चक्कर खिलाये, तो भी जाओगे या नहीं ? (हँसाहँस), वहाँ तो चाहे जितने चक्कर खाने पड़े, तुम्हारे पैर नहीं थकेंगे। मगर यहाँ आने में थक जाते हो !

हाँ तो, वह प्रधान मन ही मन बहुत उलझन में पड़ गया, परन्तु वहाँ रुके बिना कोई चारा नहीं था। अतः वह प्रतिदिन उस बड़ के नीचे जाकर बोलने लगा - "हे वड़ ! तू पहले जैसा था, वैसा हरियाला हो जा।" फलतः प्रतिदिन इस प्रकार बोलने से (और उसके प्रति सद्भावना करने से) वह बटवृक्ष छह महीने में एकदम हराभरा हो गया। अतएव प्रधान ने राजा के पास जाकर कहा - "आपका बड़ का पेड़ हराभरा हो गया है। अब मुझे मेरे प्रश्न का जवाब दें।" राजा ने कहा - "तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुम्हें मिल गया है।" प्रधान बोला - "आपने तो मुझे कोई भी जवाब नहीं दिया, फिर कैसे कहते हैं कि तुम्हें अपने प्रश्न का जवाब मिल गया है ?" राजा ने कहा - "सुनो ! तुमने (लगातार छह महीने तक) बड़ के नीचे जाकर ऐसा चिन्तन किया कि हे बड़ ! तू सूख जा, तो वह सूख गया। पुनः तुमने ऐसा चिन्तन किया कि हे बड़ ! तू हराभरा हो जा, तो वह हराभरा हो गया। इसी प्रकार तुम्हारे राज्य में जो राजा बनता है, वह बहुत अन्यायी होता है। वह प्रजा का शोषण करके त्रास देता है। फलस्वरूप प्रजा ऐसा चिन्तन करती है कि यह राजा कब मरे और कब नया राजा आए ! दूसरा नया राजा जो राजगद्दी पर बैठता है, वह भी पहलेवाले राजा जैसा ही आता है। अतः प्रजा भी पुनः उस नये राजा के विषय में भी वैसा ही (अनिष्ट) चिन्तन करती है। इस कारण (पीढ़ी दर पीढ़ी) वे राजा दीर्घायु नहीं होते। इसके विपरीत हम प्रजा के प्रति सद्भावनापूर्ण चिन्तन करते हैं कि "कैसे प्रजा का हित हो ? प्रजा कैसे सन्तुष्ट हो ? प्रजा को किसी प्रकार का दुःख न

पालन बहुत कठिन है। जो जितना बड़ा होता है, उसे उतनी अधिक सहनशीलता रखनी पड़ती है। तुम कहती हो न धरण (छत का टेका) को खीले सहन करने पड़ते हैं। मकान बांधते हैं, तब सर्वप्रथम लकड़ी के धरण को ऊँचाई पर रखना पड़ता है, उस समय शुभ मुहूर्त देखकर धरण को नाड़ाछड़ी बांध कुंकुम् का तिलक करके फूल का हार बांध कर ऊँचा रखते थे। इतना सब करने का क्या कारण था? मकान का सारा आधार धरण पर है। परिवार का बड़ा बुजुर्ग झेलता है। घर का सारा भार धरण झेलता है। इसलिए उसका इतना महत्त्व है। घर में जो बुजुर्ग होता है, उस पर घर की सारी जिम्मेवारी होती है। उसे सहन भी अधिक करना पड़ता है। कोई उसे जरा-सा कुछ कहे और वह तुरंत वाद-विवाद या कलह करने पर आमादा हो जाए तो वह जिम्मेदारी का भार वहन नहीं कर सकता। जो सहन करता है, वही भार वहन कर सकता है। जो बुजुर्ग होता है, उसका हृदय भी विशाल होना चाहिए। घर में सासु हो, और बहू नई साड़ियाँ बाजार से ले आए, पर सासु से छिपाकर रखे तो सासु का हृदय भी संकीर्ण हो जाता है। इसी प्रकार सासु भी बहू से छिपाये तो बहू का दिल भी संकुचित् हो जाता है। इसके विपरीत बहू यों कहे कि - "मम्मी! मैं ये नई साड़ियाँ लाई हूँ, आप पहले पहनना, बाद में मैं पहनूँगी।" इस पर सासु कहेगी - "ना, बेटी! ऐसी साड़ियाँ मुझे नहीं शोभती, तुम पहनना।" परन्तु बहू अत्यन्त आग्रह करके कहे कि - "नहीं मम्मी! पहले आप पहनोगी, बाद में मैं पहनूंगी।" यह सुनकर सासु का मन ऐसा उदार हो जाता है कि अपने पास जो साड़ियाँ थीं, उन्हें देती हुई बहू से कहती है - "बहू बेटी! तुम ये मेरी साड़ियाँ पहनो।" परिवार में प्रत्येक व्यक्ति इसी प्रकार उदारता और विशालता रखे, तो मुझे विश्वास है कि यह (गृहस्थ) - संसार स्वर्ग तुल्य हो जाए! यों नौकरों के लिए सेठ-सेठानी विशाल दृष्टि रखें तो उन नौकरों का मन भी उनके प्रति विशाल रहता है।

धारणी रानी भी ऐसी उदार और विशाल हृदय थी। वह **'यथा नाम तथा गुण'** की उक्ति को चरितार्थ कर रही थी। आजकल तो परिवारों में बच्चे-बच्ची के नाम भी ऐसे रखते हैं, कि उनमें वे गुण होते नहीं। रहना है भारत में, पर नाम फोरेन के ढूंढकर लाते हैं। रहना है इस देश में, किन्तु रीति-नीति वहाँ (विदेश की) रखते हैं। फिर भला भारत कहाँ से ऊँचा उठे? धारणी रानी, विशाल, प्रेमल और उदार थी। वह ९९९ रानियों के दिल में बस गई थी। प्रत्येक रानी का धारणी रानी पर अत्यन्त प्रेम था। उसे देखते ही वे प्रेम में पागल बन जाती थीं। वह जो कुछ कहती, सभी रानियाँ उसे स्वीकार कर लेती थीं और उसकी आज्ञानुसार चलती थीं। धारणी रानी के प्रति प्रत्येक रानी का इतना अधिक प्रेम था, उसका क्या कारण था? उसका कारण था, उनमें कूट-कूटकर भरी सहनशीलता। अच्छा-बुरा सबको पचाने की शक्ति थी। वह राजा की पटरानी थी, इस कारण राजा उसके लिए कोई नवीन वस्तु लाए तो उसके मन में ऐसा नहीं होता था, कि मैं बड़ी हूँ, इसलिए मुझे (अकेली को) ही इसका उपयोग करना है। वह अपनी छोटी बहनों

बन्धुओं ! सोचो-समझो ! इस जीव को कर्मबन्धन कराकर या करवाकर चतुर्गति में भटकाते रहनेवाला हो तो वह है - इस जीव का शरीर के प्रति राग । राग से अनेक प्रकार के पाप का बन्ध करते हो । अन्त में, वह भव-भ्रमण करता है । चाहे जितने पाप के पोटले बांधोगे और इकट्ठे करोगे, परन्तु साथ में क्या आएगा और तुम कहाँ जाओगे ? क्या इसका विचार किया है ? कहा भी है -

अमूल्य जिंदगी गुमावी, जाशो क्यां तमे ?
पापनां पोटलां बांधी, जाशो क्यां तमे ?
साधु संतने जोई मनडुं नाचे नहि; तप-त्यागनी वाते दिलडुं राचे नहि ।
मायानी (२) जालमां फसाईने जाशो क्यां तमें ? अमूल्य जिंदगी...

अमूल्य मानवजीवन में धर्माराधना नहीं करो, संत-समागम नहीं करो, केवल धन इकट्ठा करके पाप के पोटले बांधोगे तो तुम्हारा क्या होगा ? तुम्हें ऐसा विचार नहीं आता होगा, परन्तु मुझे तो तुम्हारी दया आती है । वर्तमान सरकार घी, शक्कर और अनाज आदि समस्त वस्तुओं का निर्यात करती है और दूसरी ओर गरीब को मदद करके गरीबी हटाने की बातें करती हैं । प्रश्न होता है - गरीबी कैसे मिटेगी ? भारतवर्ष में जो वस्तुएँ पैदा होती हैं, भारत की जनता उनका सुखपूर्वक उपभोग नहीं कर सकती । यहाँ जिन चीजों की तंगी बताई जाती है, इन्हीं चीजों का परदेश में निर्यात होता है । अब मैं तुम से पूछती हूँ कि तुमने पाप करके सोना, चांदी, हीरे-मोती और रुपये इकट्ठे किये, क्या उनका परलोक में निर्यात कर सकते हो ? बोलो, (साथ में) कुछ भी ले जा सकोगे ? वहाँ तो एक दमड़ी भी साथ नहीं आएगी । तुम्हारे पिताजी और पिताजी के पिताजी आदि में से कोई (परलोक में) साथ ले गया है ? नहीं । सब कुछ यहीं रह जानेवाला है ! जिसे इतना पालते-पोसते हो, वह शरीर भी यहीं रह जाएगा, फिर भी काया की माया तुम्हारे दिल से छूटती नहीं । अतः जबतक यह काया स्वस्थ और सशक्त है, तबतक उसके द्वारा पाप न करो, किन्तु धर्म कर लो । यह महंगा मानवभव व्यर्थ मत खोओ । यह मानवभव एक प्लोट जैसा है । प्लोट खरीदते हो, तब खरीदते समय कितनी शर्तें मंजूर करते हो ? मैं एक दृष्टान्त द्वारा इस तथ्य को समझाती हूँ ।

प्लोट देने से पहले शर्तें : किसी भूमि पर एक राजा को नगर बसाना था । कितने विस्तृत क्षेत्र में नगर बसाना है, यह निश्चित करके उसने जमीन के प्लोट काटे और जाहिरात की । जो इतनी शर्तें मंजूर करे, वह प्लोट ले सकता है । परन्तु ये शर्तें ऐसी थी कि इसके द्वारा प्लोट लिया नहीं जा सकता था । मान लो, एक प्लोट के नीचे ऐसी शर्त लिखी हुई हो कि प्लोट जितने वर्ष रखना हो, उतने वर्ष तक का सारा किराया पहले से भर देना है । एक वर्ष का किराया २०० रु. निश्चित किया हो और प्लोट सौ वर्ष तक रखना हो तो बीस हजार (२००००), रुपये पहले से भर देना और नीचे बताये हुए नकशे के अनुसार मकान बनाना । इस मकान में मिल्कियत हो, चाहे न हो, उसकी वृद्धि करनी

क्योंकि (वह सम्यग्दृष्टि पूर्वक सोचता है) पूर्वभव में मैंने ही ये (अशुभ) कर्म बांधे हैं, उन कर्मों के उदय में आने के कारण यह दुःख आता है, इसमें हाय-हाय क्यों करना ? प्रत्युत होता है, होता है (हाँ - हाँ), ऐसे करना है यों समझता है। वह (दुःख आने पर) दूसरों को दोष नहीं देता । जो (सम्यग्दृष्टि पूर्वक) ऐसा (मनः) समाधान कर लेता है, समभाव रखता है, उसके वे पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

यहाँ धारणी रानी बहुत ही चतुर, गम्भीर और धैर्यवती थी । वह राज्यकार्य में (समय-समय पर) सलाह देती थी । समय आने पर राज्यतंत्र चला सके, ऐसा उसमें खमीर था । साथ ही, वह धारणी रानी दूसरी ९९९ रानियों के साथ दूध-शक्कर की तरह परस्पर प्रेम भाव से हिल-मिल कर रहती थी । जहाँ रानियों में परस्पर ऐसा शुद्ध प्रेमभाव होता है, वहाँ उनके पति (राजा) को भी कितना आनन्द होता है ? कदापि क्लेश का नामोनिशान भी नहीं था । इस प्रकार बलराजा धारणी आदि १००० रानियों के साथ स्वर्ग जैसे सुखों का उपभोग करते थे ।

बन्धुओं ! यह बलराजा कितना पुण्यवान् है कि उनकी रानियाँ तो आज्ञाकारी थी ही, उनका मंत्रिमण्डल भी अनुकूल था । शरीर में किसी प्रकार व्याधियों ने हमला नहीं किया था । दूसरे राज्यों की ओर से युद्धों का भय नहीं था । उनकी हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल, यों चतुरंगिनी सेना अपार थी । सेवक खम्मा-खम्मा करते थे । उनके पास अपार सम्पत्ति थी । सभी राज-कर्मचारी उनकी सेवा में तत्पर रहते थे । उनके भौतिक सुख में किसी प्रकार की कमी नहीं थी । न ही उनको अधिक प्राप्त करने की आशा या अभिलाषा थी । जो कुछ था, उसी में सन्तुष्ट थे । बिलकुल आनन्द, आमोद-प्रमोद और विनोद में दिवस व्यतीत हो रहे थे । बोलो, बलराजा कितने सुखी थे, था उन्हें किसी प्रकार का दुःख ? परन्तु ज्ञानीपुरुष कहते हैं - राजा को चाहे जितना सुख हो, अन्त में तो वह क्षणिक और विनाशी सुख था न ? ऐसे सुखी राजा की अपेक्षा मोक्ष में गये हुए सिद्ध भगवन्तों को समय समय में अनन्तगुन सुख होता है और वह भी शाश्वत और अव्याबाध और वह कभी विनष्ट होनेवाला नहीं होता । आपको और हमको ऐसा शाश्वत और अव्याबाध एवं अविनाशी सुख प्राप्त करना हो तो धर्माचरण-धर्माराधना करना चाहिए ।

हाँ, तो बलराजा धारणी-प्रमुख एक हजार रानियों के साथ (भौतिक) सुखोपभोग करते हैं, आनन्द करते हैं । इसी दौरान *"तए णं सा धारिणी देवी अन्नया कयाइं सिंहे सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा ।"* एक समय धारिणी रानी सुन्दर पलंग पर सोई हुई थी, तभी कुछ सोती कुछ जागती हुई, ऐसी अवस्था में, रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने स्वप्न में एक सिंह को देखा । इस स्वप्न को देखते ही रानी जागृत हुई । स्वप्न कुछ जागृत और कुछ निद्रित ऐसी अवस्था में आता है । एकान्त जागृत या एकान्त निद्रित अवस्था में स्वप्न नहीं आता । स्वप्न शास्त्र में कुल ७२ स्वप्नों का वर्णन है, जिनमें से ३० स्वप्न शुभ हैं और ४२ स्वप्न अशुभ हैं । उनमें से जब तीर्थंकर भगवान् माता के गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता १४ स्वप्न देखती है और चक्रवर्ती की माता भी

देखते ही घृणा हो जाती है, दुर्गन्ध आती है, इसलिए हम उस मोटर को देखते ही उससे दूर भागते हैं। इस मोटर की शोभा ऊपर से रंगे हुए पतरों से होती है, वैसे ही अपने शरीर पर चमड़ीरूपी पतरा ढका हुआ है, इससे यह सुन्दर दिखाई देता है। उस म्युनिसिपालिटी की मोटर का ढक्कन खोलते ही दुर्गन्ध आती है, मस्तक में चक्कर आने लगता है, वमन भी हो जाता है, वैसे ही इस देह में भी रक्त-मांस-पस आदि दुर्गन्धित माल भरा हुआ है, फिर भी उस पर कितना ममत्व है ? उसके लिए कितना पाप करते हो और धर्म से भी विमुख हो जाते हो ? अतः सोचो कि यह शरीर कैसा है ? 'भगवती सूत्र' के शतक ९, उद्देशक ३३ में जमालिकुमार अपनी माता के समक्ष शरीर का वर्णन करते हुए कहते हैं-

"एवं खलु अम्मयाओ माणुस्सगं सरीरं दुखाययणं, विविहवाहि सुयसंनिकेयं अट्ठि-कलुट्ठियं छिराएहारु-जाल-उवणद्धसंपिणद्धं मट्टिय-भंडं व दुब्बलं, असुइ-संकिलिट्ठं अणिट्ठविय-सव्वकाल-संठप्पयं, जरा-कुणिम-जज्जर-घरं च सडण-पडण-विद्धंसण-धम्मं पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सं विप्पजहियव्वं भविस्सइ ।"

ऐसा है कि हे माता-पिता ! मनुष्य का शरीर दुःखों का आयतन (स्थान) है। विविध व्याधियों की उत्पत्ति की भूमि है। हड्डी-रूपी काष्ठ के आधार पर टिका हुआ है। नाड़ियों और नसों के जाल से लिपटा हुआ है, मिट्टी के कच्चे बर्तन जैसा कमजोर है, अशुचिमय-अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ है। सदा अनावस्थित है। जरा और मृत्यु का जर्जरित घट है। इसका स्वभाव है - सड़ना, पड़ना और विध्वंस होने का। यह पहले या पापी है अवश्य ही एक दिन छूटनेवाला है। निःसार तुच्छ एवं अपवित्र पदार्थों से भरे हुए इस शरीर में कस्तूरी, केसर या चन्दन जैसे सुगन्धित पदार्थ नहीं हैं, तथैव स्वर्ण, मोती, माणिक, नीलम और पन्ना जैसे दर्शनीय सुन्दर पदार्थ नहीं हैं। अपितु हड्डी, मांस, रक्त वगैरह असार पदार्थ भरे हैं। 'आचारांग सूत्र' (अ.-२, उद्दे.-५) में भी भगवान् ने कहा है -

"जहा अंतो तहा बाहिं; जहा बाहिं तहा अंतो; अंतो पूइ-देहंतराणि पासति, पुढोवी संवति पडिए पडिलेहिए ।"

यह शरीर अंदर से जैसा असार है, वैसा बाहर से भी असार है; और बाहर से जैसा असार है, वैसा ही अंदर से भी असार है। बुद्धिमान् पण्डित शरीर के अंदर-अंदर की अशुचि (अशुद्धि) तथा शरीर के अंदर की स्थितियों को देखता है कि ये हमेशा अशुभ-मलादिक पदार्थ शरीर के द्वारों के बाहर निकालते रहते हैं। यह देखकर पण्डित पुरुष इसके सच्चे स्वरूप को समझकर इस शरीर पर मोह न रखे।

आशय यह है कि जैसे अशुचि से भरा हुआ घड़ा अंदर से भी अशुचिमय है और ऊपर से भी वह अशुचिमय कहलाता है, क्योंकि उसके अंदर अशुचि भरी हुई है, भले ही उसके बाहर अशुचि न हो, तो भी अंदर भरी हुई अशुचि के [illegible] वह [illegible] है। इसी प्रकार यह शरीर अंदर से अशुचिमय होने से असार है, [illegible] असार है।

विचार - विमर्श करने हेतु राजा के प्रधानों तथा गाँव के बड़े-बड़े मनुष्यों ने एकत्रित होकर निर्णय किया कि 'एक हथिनी को श्रृंगारित करके, उसकी सूंढ में एक पानी भरा कलश रखना। हथिनी जिस पर कलश ढोले, उसे ही राजा बना देना।' वह घोषणा सुनकर आसपास के गाँवों के राजा भी आ गए थे। गाँव के लोग भी सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा बनने की आशा से तैयार होकर राजमार्ग पर खड़े थे। सबके मन में ऐसी आशा थी कि 'हथिनी हमारे पर कलश ढोलेगी।'

समय होते ही हथिनी को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके उसकी सूंड में कलश रखकर उसे खुली छोड़ दी। राजा के मनुष्य हथिनी के पीछे-पीछे चलने लगे। हथिनी सारे गाँव में घूम ली, परन्तु किसी पर भी कलश नहीं ढोला। फिर वह फिरती-फिरती नदी के किनारे आई। वह गरीब वणिकपुत्र गाढ़ निद्रा में जहाँ सोया था, वहाँ आई। उसे सूंघकर हथिनी ने उस पर कलश ढोला। लोग कहने लगे कि 'हथिनी भूल गई है। भूल गई है कि उसने ऐसे एक रास्ते पर भटकते भिखारी पर कलश ढोला।' राजा लोग परस्पर लड़ने को तैयार हो गए। किन्तु प्रधान ने कहा - "हमने निश्चित किया है कि हथिनी जिस पर कलश ढोलेगी, वही गाँव का राजा बनेगा। अतः इस विषय में किसी को लड़ने-झगड़ने की जरूरत नहीं है।" वह लड़का तो एकदम हड़बड़ा कर नींद से जग गया। उसके आसपास राज्य कर्मचारी खड़े हैं, हथिनी खड़ी है। वह सोचने लगा - यह सब क्या माजरा है ? क्षणभर के लिए तो वह चौंका। राजा के मनुष्यों ने उसे स्नान कराकर राजसी पोशाक पहनाया और श्रृंगारित करके गाजे-बाजे के साथ गाँव में लाकर शुभ मुहूर्त में उसका राज्याभिषेक किया। राजसिंहासन पर बिठाया। बन्धुओं ! कर्मराजा कैसा काम करता है ? वह एक घड़ी में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है। यह गरीब वणिकपुत्र राजा बन गया। गुरुदेव के कथनानुसार सातवें दिन उसे राज्य मिल गया। राजगद्दी पर बैठने से पहले जिन गुरुदेव ने उसके स्वप्न का फल बताया था, उनके पास जाकर उन्हें वंदन किया। गुरु ने उसे कहा - "भले ही तू राजा बना, परन्तु धर्म को कभी भूलना मत।" वह जैन का लड़का था। वह राजा बना, उसी दिन उसने गाँव में डंका बजवाकर घोषणा करवाई कि - "जबतक मेरी आन (आज्ञा) प्रवर्तित है, वहाँ तक कोई भी व्यक्ति (मेरे राज्य में) जीव-हिंसा न करे। जो जीव-हिंसा करेगा, उसे दण्डित किया जाएगा।" राजा बहुत ही धर्मिष्ठ था। वह न्याय-नीतिपूर्वक राज्य-संचालन करता रहा। प्रजा को उससे अत्यन्त संतोष हुआ। गाँव में संतों का बार-बार आवागमन होता रहता। स्वयं राजा संतों के दर्शन करने और व्याख्यान-वाणी सुनने जाता था, इसलिए प्रजाजन भी संतों के दर्शन-वन्दन-श्रवण के लिए बहुत जाते थे। जिस गाँव का राजा धर्मिष्ठ होता है, उस गाँव की प्रजा भी धार्मिक होती है। राजा का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है। जिस धर्मसंघ का प्रमुख धर्मिष्ठ होता है, प्रतिदिन सामायिक करता है, उस गाँव के मनुष्यों पर उसका अचूक प्रभाव पड़ता है। किन्हीं संघों के प्रमुख प्रतिदिन उपाश्रय में नहीं आते। यहाँ तो वजुभाई, सेवंतीभाई, बचुभाई आदि संघ के कार्यकर्ता अत्यन्त जागृत हैं। ये स्वयं धर्माराधना करते हैं और दूसरों को कराते हैं। संघ की सेवा

बातें नहीं करती । शान्त, स्वस्थ, एवं वात्सल्यभाव से प्रेरित होकर वह पति को भोजन कराती है। शयन के समय वह रम्भा की भूमिका अदा करती है। पुण्योदय के फलस्वरूप ऐसी धर्मपत्नी मिलती है। इसके विपरीत जब पाप का उदय हो तो इन गुणों से विपरीत आचरणवाली पत्नी मिलती है। इसके लिए एक विचारक ने कहा है - *"कार्येषु कुत्री, भुक्तेषु डक्फा, शयनेषु भषका।"* इसका आशय यह है कि जब पति दुकान या फैक्ट्री आदि व्यवसायिक कार्यों से घबराया, उलझन में पड़ा या थका हुआ आए, ऐसी स्थिति में घर आते ही पत्नी कुतिया की तरह भौंकने लगती है। पति के कार्य में हिस्सेदार न बने, पति के भोजन करने से पहले ही दिन अभी काफी हो तो भी स्वयं भोजन कर ले। पति रात्रि में शयन करने जाए, उस समय इधर-उधर की शिकायत करने लगे, ज्यों-त्यों अंटशंट बोले, 'तुम्हारी माँ ने आज ऐसा कहा, वैसा कहा' - वह बड़-बड़ करती रहे, उसका रेडियो बंद ही न हो। साथ ही पति पर आये हुए दुःख में स्वयं हिस्सेदार न बने, अपितु पति को हैरान-परेशान किया करे, आर्थिक संकट में डाले। यह है पाप का उदय। जहाँ पुण्य का उदय हो, वहाँ पत्नी घर के सब कार्य सुधारकर पति का गौरव बढ़ाती है। बलराजा अत्यन्त पुण्यवान थे। उनकी एक हजार रानियाँ बहुत ही विनयवती और आदर्श गृहिणी के समस्त गुणों से युक्त थीं। जिसकी पत्नी अच्छी होती है, उसका संसार स्वर्गतुल्य बन जाता है। इसके विपरीत पत्नी कर्कशा व कलहकारिणी हो तो उसका संसार नरकसम बन जाता है। एक दृष्टान्त द्वारा इसे समझाती हूँ।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

पुण्यवती और पापिनी स्त्री कैसी-कैसी होती है ? : एक गाँव में पति, पत्नी और एक पुत्री, यों तीन व्यक्तियों का परिवार था। ये सब अत्यन्त प्रेम से रहते थे। पत्नी बहुत ही धर्मसंस्कारी एवं धर्मिष्ठ थी। इस कारण अपनी पुत्री के जीवन में अच्छे धर्मसंस्कारों का सिंचन करती थी। पुत्री भी अतीव रूपवती और गुणवती थी। प्रायः देखा जाता है कि किसी व्यक्ति में रूप तो होता है, पर गुण नहीं होते, जबकि कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जिनमें गुण तो होते हैं, पर रूप नहीं होता। इस लड़की में रूप और गुण दोनों का सुमेल था। इस लड़की का नाम था दयादेवी। वास्तव में, इसका जैसा नाम था, तदनुरूप दया की देवी थी। इसके नाम का महत्त्व तो इसके काम से मालूम होगा, यह बात आगे आएगी। दयादेवी जब ८ वर्ष की हुई, तभी अचानक इसकी माता बीमार पड़ी और सिर्फ दो दिनों में ही वह मृत्यु को प्राप्त हुई। दयादेवी छोटी थी, परन्तु बहुत होशियार थी। माता की अकस्मात् मृत्यु से इसे बहुत आघात पहुँचा और उसके पिताजी को भी खूब आघात लगा। दयादेवी छाती मजबूत करके पिताजी को बहुत आश्वासन देती थी, हिम्मत बंधाती थी, घर का समस्त कार्य वह स्वयं करती थी। सुबह का कामकाज निपटाकर वह जंगल में गायें चराने जाती थी। दोपहर में वहाँ से लौटकर रसोई बनाती थी। पिताजी को भोजन कराकर, वह स्वयं भोजन करती थी। शाम को फिर वह गायें चराने जाती थी। इस प्रकार सुबह से लेकर देर रात तक घर का तमाम

उसे खुशी से मांग ले। इस पर दयादेवी मन में सोचने लगी - 'क्या मांगू ? मुझे शरीर ढकने के लिए वस्त्र मिलते हैं। घर जाती हूँ तो माता रूखी-सूखी रोटी और ऐंठे-झूठे भात एवं खिचड़ी खाने को देती है। सोने के लिए मुझे फटी-टूटी गुदड़ी मिलती है। फिर मुझे क्या चाहिए ?'

नागरूप में देव ने कहा - मांग-मांग ! : बन्धुओं ! दयादेवी सिर्फ १२ वर्ष की छोटी-सी बालिका है, फिर भी उसमें कितनी समझ है, कितनी समता है ? उसने नागदेव से कहा - "देव ! अगर आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं तो (मेरी एक छोटी-सी मांग है) - इस जंगल में एक भी पेड़ नहीं है। मैं रोज गायें चराने आती हूँ। पर कहीं छाया नहीं मिलती। अगर एकाध पेड़ हो तो मैं उसकी छाया में शान्ति से बैठ सकूं, साथ ही मेरे गायें भी आसपास चरकर छाया में बैठ सकें।" देखो, मांग-मांगकर इसने क्या मांगा ? उसे देव से मांगना होता तो बहुत-सी वस्तुएँ मांग सकती थी। उसकी सौतेली माँ उसे इतना दुःख देती है, अतः उसने इस दुःख-निवारण की मांग की होती तो उसे सुख मिल सकता था। किन्तु उसने यह नहीं मांगा। उसके दिल में दया थी, अतः वह और उसकी गायें छाया में बैठ सकें, इसके लिए उसने एक वृक्ष हो जाने की मांग की। कदाचित् तुम पर देव प्रसन्न हो जाए तो तुम क्या मांगो ? तुम तो मांगने में कोई कसर नहीं रखोगे, ठीक है न ? (हँसाहँस) नागदेव भी विचार में पड़ गए ! अहो ! यह बालिका कितनी भोली है ? यह छोटी है, इसलिए इसमें अधिक मांगने की समझ-बूझ नहीं है। अच्छा, इसकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण कर दूं। अतः नागदेव ने 'तथाऽस्तु' कहकर वहाँ फल-फूलों से सुशोभित एक सुन्दर बगीचा बना दिया, और कहा - "बेटी ! तू जहाँ जाएगी, वहाँ यह बगीचा तेरे साथ-साथ चलेगा और तुझे खूब सुन्दर छाया देगा। यह छोटी जगह में छोटा होकर और बड़ी (विशाल) जगह में बड़ा होकर रहेगा।" इस प्रकार वरदान देकर नागदेव अदृश्य हो गए।

बन्धुओं ! जीवदया पालने में कितना महान् लाभ है ? अब देखना, दयादेवी के पुण्य का कैसा उदय होता है ? प्रारम्भ में मैं कह गई थी कि धर्म आत्मा के लिए निःस्वार्थ - निःस्पृह भाव से करना चाहिए, किसी प्रकार की आकांक्षा से नहीं। हम तुम्हें धर्माचरण करने का कहते हैं तो तुम कहते हो बाद में करेंगे। धर्म करते हुए तुम्हें आलस्य होता है, प्रमाद होता है, विकथाओं में, गप्पों में, टी.वी. देखने आदि में समय खो देते हो, परन्तु धर्म से, पुण्योपार्जन से मधुर सुखद फल मिलते हैं, तब कितना आनन्द आता है ? मनोज्ञ - अभीष्ट वस्तुएँ मांगने की अपेक्षा भी उससे बढ़कर अधिक वस्तुएँ (बिना मांगे ही) सामने से आकर मिलती हैं। यह सब प्रायः पूर्वभव में की गई धर्माराधना तथा पुण्योपार्जन का फल है। अब दयादेवी तो बगीचे में बैठी है, मानो वनदेवी हो ! इस प्रकार सुशोभित हो रही थी ! उसे जब कड़ाके की भूख लगी तो उस बगीचे में आम, सीताफल, चीकू, अंगूर, सेव (सफरजन), मौसम्वी, संतरा आदि अनेक मधुर फल बगीचे में थे, उसने वे फल खाये, पानी पीया और भूख-प्यास मिटाकर शाम होते ही गायें चराकर घर आई।

को देती, उसे वह खा लेती । यों करते - करते वह १२ वर्ष की हो गई । एक दि
गाय चराने गई । मध्याह्न का समय था । जंगल में एक भी पेड़ नहीं था । व
पर बैठी थी, आसपास गायें चर रही थीं । इतने में एक बड़ा भारी सर्प उस
आया । उसकी लाल-लाल आँखें थीं । वह जीभ बाहर निकालकर फुफकार र
उसकी फुफकार से अच्छे-अच्छे लोग दूर भाग जाते हैं, फिर इस बारह वर्ष की व
की क्या सामर्थ्य थी ? (परन्तु वह दूर भागने के लिए उद्यत हुई तभी)
मनुष्य भाषा में बोला - "बेटी ! इस समय मैं तेरी शरण में आया हूँ । तू मेर
कर ।" सर्प को देखकर दयादेवी घबरा गई । नागराज ने कहा - "बेटी ! तू मेरे
भी मत डर । मैं नागकुमार देवाधिष्ठित हूँ । परन्तु मदारी और मंत्रवादी मेरे पीछे
उसके मंत्र के अधिष्ठायक देव की आज्ञा का भंग करने में असमर्थ हूँ । अतः
रक्षा कर । मुझे जल्दी से कहीं छिपा दे । अभी वे लोग (मुझे पकड़ने के लि
पहुँचेंगे । इसलिए विलम्ब मत कर ।"

दयादेवी को एक तरफ तो नाग का डर लगा, दूसरी ओर उसके दिल में द
झरना फूट पड़ा । मन ही मन सोचा - वैसे ही मुझे अपने जीवन में क्या सुख है
हुई भी मैं मृतवत् हूँ । अतः अच्छा है, मैं एक जीव को जीवनदान देने का ल
लूं । तुरंत ही दयादेवी ने अपनी साड़ी का पल्ला आगे रखकर कहा - "नागबाप
जाओ इस पर ।" नाग ने कहा - "बेटी ! तेरी गोद में (छिपाने से) तो वे लोग मु
लेंगे । योंकर, तू अपने केशों में (जूड़े में) मुझे लपट ले । गोद (खोले) में नाग लेना
किन्तु जूडे में लेना अच्छा नहीं । फिर भी दयादेवी ने जूड़े को नागदेव के साम
दिया । नागदेव उससे जूड़े से (सूक्ष्मरूप धारण करके) लिपट गये । अब जूड़े से
सर्प को छिपाने हेतु मस्तक पर साड़ी ओढ़कर दयादेवी बैठी । अब वे मंत्रवादी
और क्या होगा ? यह भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ११

आषाढ़ वदी ४, गुरुवार — ता. १५-७-

स्वभाव में डटो, वि आचरण में लाओ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शास्त्रकार भगवान् जगत् के जीवों के उद्धार के लिए ढिंढो
कर कहते हैं - "हे भव्यजीवों ! अगर तुम्हें इस पंचमकाल में सुख चाहिए तो
करो ।" "*दुःखं पापात्, सुखं धर्मात्*" - पाप से दुःख मिलता है और
सुख । ऐसी सुन्दर और युक्तिसंगत बात समझाने पर भी कितने ही जीवों में धम

व्याख्यान - १२

आषाढ़ वदी ५, शुक्रवार | ता. १६-७-७६

आत्मशक्ति का उपयोग : स्वभाव में या विभाव में ?

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, समता के साधक, विषयों के निवारक, ममता के मारक और स्यादवाद के सर्जक भगवान् महावीर ने 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' के आठवें अध्ययन में गूढ़ भावों की प्ररूपणा की है। ये गूढ़ भाव हमें कब समझ में आ सकते हैं ? जब आत्मा विभावों का विस्मरण करके स्वभाव के घर में आएगी तभी। आत्मा जब स्वभाव में आती है, तब इसे अपना भान होता है। देवों को भी दुर्लभ मानवभव प्राप्त करके मानव को आत्मा का विचार करना है। आत्मा के विचार का अर्थ है - आत्मा के स्व-भाव का विचार। ज्ञान और दर्शन *(अव्याबाध सुख और आत्मशक्ति)* ये आत्मा के स्वभाव हैं। आत्मा की सुरक्षा स्व-भाव में रहने में है। विभाव में जाने से जीव को विपत्तियों का पार नहीं रहता। जो आत्मा सदा स्व-भाव में रहता है, वह महासुखी हो जाता है। इसके विपरीत विभाव में जाता है, उसपर दुःखों के बादल मंडराते रहते हैं। कहा भी है -

"अवधू ! सदा मगन में रहना।"

सदैव स्वभाव में मग्न रहना, आत्मा के लिए मंगलकारी है। और विषय-कषायादि भावों में जाना अमंगलकारी है। अतः बन्धुओं ! प्रतिदिन सुबह उठकर आत्मस्वरूप की भावना करनी चाहिए कि अहो ! मैं ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय अनन्तशक्ति का स्वामी आत्मा हूँ। मेरा पुद्गलों के साथ संग कैसा ? मुझे इस पुद्गल का संग क्यों करना चाहिए ? चेतन के पूजारी को क्या अचेतन की पूजा करना उचित है ? क्या उसके पीछे वह (चेतन) पागल हो जाए ? यदि मैं इस जड़ की शरणागति स्वीकार कर लूंगा तो मैं जीव मिट कर शिव कब और किस प्रकार बन सकूंगा ? (अभी तो) मैं विषय-कषायों में मग्न होकर जड़ का दास हो गया हूँ। जड़ की दासता छोड़े बिना आत्मा का उत्थान कैसे हो सकेगा ?

देवानुप्रियों ! बोलो, तुम्हें २४ घंटे में से सिर्फ पाव घंटे भी ऐसी चिन्ता होती है क्या ? नहीं, परन्तु जड़ की चिन्ता कितनी होती है ? क्या आप २४ घंटे में से एक घंटे भी कषाय से अलिप्त रहते हैं ? ऐसे पवित्र वीतराग-भवन में आकर भी कषाय का त्याग होता है क्या ? आप उपाश्रय में आए और संत ने आपके सामने भी न देखा, 'जी' भी नहीं कहा तो मन में कैसा भाव आएगा ? मैं कितनी दूर से दौड़कर दर्शन करने के लिए आया, परन्तु महासतीजी ने मेरे सामने भी नहीं देखा ! क्या उपाश्रय में जाना उचित है ? कषाय से बचाने वाले धर्मस्थानक में आकर भी कषायरूपी कसाई से बचने का प्रयत्न नहीं

आप अत्यन्त धर्माचरण कर रहे हैं, उस दौरान कदाचित् कष्ट आ पड़े, तो उससे जरा भी घबराना नहीं, क्योंकि पूर्वभव में आपने जो पाप (अशुभ कर्म) किये हैं, वे समय आने (अवाधा काल पूरा होने) पर उदय में आते हैं, ऐसा समझकर उक्त दुःख से जरा भी घवराये विना धर्म के साथ वरावर चिपके रहना चाहिए। धर्म की पूंजी पास में है, तो अन्त में सबकुछ अच्छा ही होनेवाला है, ऐसी दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए। केवल उपाश्रय में आने से ही धर्म हो सकता है, ऐसी (एकान्त) वात नहीं है, उपाश्रय के वाहर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की सुवास व्याप्त रहनी चाहिए। खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, व्यापार-धंधा करते, जीवन् के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म साथ में रहना चाहिए। एक क्षण भी धर्म आपसे अलग नहीं पड़ना चाहिए। किन्तु धर्म करनेवाले को धर्म का वास्तविक स्वरूप समझ लेना चाहिए। साथ ही, धर्म करने के साधनों को भी पहचानना चाहिए। अपना मेलजोल, या संग भी धर्मी मनुष्य के साथ रखना चाहिए। धर्म के सम्वन्ध में वाचन और उसका अभ्यास भी करते रहना चाहिए। किसी भी प्रकार के प्रलोभन और भय के विना धर्माचरण हो तो आत्मा का शीघ्र उत्थान होता है। अतः भौतिक सुख के लिए नहीं, किन्तु आत्मिक सुख के लिए धर्म करने की आवश्यकता है।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। वीतशोका नगरी में वलराजा राज्य करते हैं। उसके अधीन अनेक छोटे-वड़े गाँव है। अनेक वड़े-बड़े नगर भी हैं। वलराजा को इतने राज्य से संतोष है। उनको दूसरे राज्यों पर चढ़ाई करके अपना राज्य वढ़ाने की, या दूसरे राज्यों को हथियाने की किसी प्रकार की लालसा या तृष्णा नहीं है। उनके अन्तःपुर में रूप के अम्वार-सम तथा अप्सरा तुल्य एक हजार रानियाँ हैं। वे भी अत्यन्त विनीत, सुशील और संस्कारी हैं, शीलवती और गुणवती हैं। रूप हो, किन्तु गुण न हो तो उस व्यक्ति की कोई कीमत नहीं होती। संस्कृत के एक श्लोक द्वारा नीतिकार इसी तथ्य को उजागर करते हैं -

अगुणस्य हतं रूपथशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धेपु हता विद्या, अभोगस्य हतं धनम्॥

"जिसके पास गुण नहीं है, उसका स्वरूप नष्ट हो जाता है, जिसके पास शील-सदाचार नहीं है, उसका कुल नष्ट हो जाता है, जिसके पास सिद्धियाँ नहीं हैं, उसकी विद्या का नाश हो जाता है, और जो (आवश्यकतानुसार) उपभोग नहीं करता, उसका धन नष्ट हो जाता है।"

वलराजा की सभी रानियाँ रूप और गुण से सम्पन्न थीं। उनकी एक हजार रानियों में धारिणी रानी प्रमुख थी। उसकी दृष्टि विशाल और हृदय उदार था। बहनों को यों लगता होगा कि धारणी रानी मुख्य पट्टरानी थी, वह ९९९ रानियों में हेड थी, तो उसे कितना सुख होगा ? मेरी वहनों! दुनिया में वड़ा वनना सरल है, परन्तु वड़प्पन के कर्तव्यों का

उस समय सेठ को कितना दुःख होता है ? क्योंकि ब्लेकमार्केट से स्वयं पिता ने करोड़ों रुपये कमाये हैं, उनकी अपनी मिल्कियत (धन-सम्पत्ति) को लड़के दबाकर बैठे हैं। क्योंकि अब सत्ता बेटों के हाथ में आ गई है।

अब दूसरे प्रकार से इस पर सोचें। किसी सेठ की फर्म धड़ल्ले से चल रही है। धनाधन अपार पैसा आ रहा है। धन बढ़ा, अतः सेठ प्रमोद में पड़ गया। खाना-पीना, सैर-सपाटे करना, इन्द्रिय-विषयों के आमोद-प्रमोद में मौज करना, यों रात-दिन मौज-शौक में वह पड़ा रहता। फर्म का सब काम व हिसाब-किताब मुनीमों ने संभाल लिया। ऐसी स्थिति में सेठ की दशा कैसी होती है यह जानते हो न ? सेठ की दशा पराधीन हो जाती है। धन-सम्पत्ति सेठ की है, किन्तु हुक्म मुनीमों का चलता है। सेठ को कुछ काम हो तो स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता। उसे पहले मुनीमों की सलाह लेनी पड़ती है। पैसा खुद का है, पर पूछना है - मुनीमों से। यह कैसी पराधीन दशा है?

आपकी दशा भी पूर्वोक्त पिता और सेठ से भी बदतर है। आत्मा अनन्तशक्ति का स्वामी है। चक्रवर्ती या इन्द्र से भी (निश्चयनय से) बढ़कर महर्धिक है। पाँचों इन्द्रियों और मन ये सब इस (आत्मा) के नौकर हैं। आत्मा जो आदेश दे, उसका पालन इन्हें करना पड़ता है। परन्तु (इस समय) आत्मा की दशा ऐसी हो गई है कि वह स्वयं अपने स्वरूप का भान भूलकर पुद्गल की पूजा में तथा 'पर' की पंचायत में पड़ गया है। वह अपनी शक्ति का भान भूलकर प्रमाद में पड़ गया है। इसलिए पाँच इन्द्रियाँ रूपी पाँच पुत्र कहो या पाँच मुनीम कहो, उन्होंने सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले ली है। इसलिए आत्मा स्वयं चक्रवर्तियों का चक्रवर्ती तथा इन्द्रों का इन्द्र होते हुए भी उसे इन्द्रियों की हुकूमत के अनुसार चलना पड़ता है। इनकी मेहरबानी हो, तभी चेतनराजा (आत्मा) अपनी इच्छानुसार कर सकता है।

चेतनदेव को विचार स्फुरित हुआ कि आज मुझे व्याख्यान सुनने जाना है, परन्तु कान की मेहरबानी न हो तो नहीं जाया जा सकता। कान कहता है, मुझे रेडियो पर छायागीत सुनने हैं, वहाँ नहीं जाना है। चेतनदेव कहता है - मुझे संतदर्शन करने जाना है, परन्तु नेत्र कहता है - मुझे टी.वी. पर पिक्चर देखना है। चेतनराज कहता है - मुझे आज उपवास करना है, या आयम्बिल करना है, परन्तु रसनेन्द्रिय कहती है - ना, ना; उपवास करेगा तो अशक्ति आएगी। आयम्बिल का रूखा-सूखा भोजन अच्छा नहीं लगता। आज तो सरस-स्वादिष्ट चटपटा भोजन करना है। अतः इन (इन्द्रियों) का हुक्म होते ही चेतनराज (मन मसोसकर) बैठ गए। इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय आत्मा पर हुकूमत चलाती है। बोलो, शक्ति होते हुए भी, आत्मा के पास सत्ता है क्या ? उसने अपना स्वामित्व खो दिया है न ? कितने अफसोस की बात है ? क्या आपको इसका कोई दुःख है ? आत्मा अपनी शक्ति का स्वयं सत्कार्य में सदुपयोग न कर सके, कितनी अधिक पराधीनता है ?

पाँच इन्द्रियरूपी पाँच ट्रस्टी : कई बार मनुष्य अपनी सम्पत्ति का ट्रस्ट बनाता है। मान लो, किसी मनुष्य के पास २५ लाख की पूंजी है। उसने ट्रस्ट बनाया। पाँच

को पहले दे देती थी। यह वस्तु मेरी है, ऐसा वह मानती ही नहीं थी। इसलिए किसी भी रानी को उसके (पटरानी के) प्रति ईर्ष्या नहीं होती थी। मनुष्य के गुणों पर से उसका मूल्यांकन होता है। देखिए, दुनिया में लकड़ियाँ तो अनेक प्रकार की होती हैं, परन्तु सबसे अधिक कीमत किस लकड़ी की होती है? चन्दन की लकड़ी की। क्यों? क्योंकि कोई उसे काटे, घिसे या जला डाले तो भी वह सुगन्ध देती है, इस कारण इसका मूल्य अधिक आंका जाता है। चंदन क्या कहता है? कवि के शब्दों में -

गयुं दुःख जगतनुं खमवुं छे, प्रभु ! चंदन मारे बनवुं छे।
कोई लाभ उठावे घसी-घसी, हुं सहन करुं छुं हसी - हसी।
परनी शक्तिमां शमवुं छे, प्रभु ! चन्दन मारे बनवुं छे ॥१॥
कोई अग्निमां मने बाले, नथी फरियादो करवी मारे।
आनंदथी मारे बळवुं छे, प्रभु ! चन्दन मारे बनवुं छे ॥२॥

तुम कैसे श्रोता हो ? : जो दूसरों के लिए अपना बलिदान देता है, जगत् में उसका अधिक मूल्य आंका जाता है। अगर तुम्हें मानवजीवन को मूल्यवान बनाना है तो चंदन जैसे बनो। चंदन को कोई घिस डाले तो वह सुगन्ध देता है। उसे शरीर पर लेप करे तो शीतलता प्रदान करता है। तुम्हें कोई कटु शब्द कहे तो क्या करोगे? समता की सौरभ दोगे या गालियाँ दोगे? यहाँ व्याख्यान पूर्ण हुआ, सामायिक पार ली, मुखवस्त्रिका खोलकर बाहर गये, वहाँ किसी ने तुम्हारा जरा अपमान कर दिया, तुम्हें उसने दो कटु शब्द कहे, तो तुम्हारे क्रोध का पारा आसमान पर चढ़ गया ! तुम रोज वीतरागवाणी सुनते हो, सामायिक करते हो, किन्तु (तन-मन-वचन में) समभाव न आए, तो मुझे तुम्हे क्या कहना? एक केला खाने से भूख मिट जाती है, एक ग्लास पानी पीने से तृषा शान्त हो जाती है, एनेसिन या एस्प्रो की एक टिकिया खाने से सिरदर्द मिट जाता है, तथा ए.पी.सी. की गोली सेवन करने पर बुखार उत्तर जाता है। फिर तुम एक घंटे वीतरागवाणी का पान करते हो, और उसका कोई असर नहीं होता, इसका क्या कारण है? तुम कैसे श्रोता हो? आपके सामने तीन पुतलियाँ हैं। एक है - संगमरमर की पुतली, दूसरी लकड़ी की पुतली और तीसरी है - रूई की पुतली। संगमरमर की पुतली दूध में डाली जाए तो वह दूध में रहती है, वहाँ तक भीगी हुई रहती है, पर बाहर निकालते ही जैसी थी वैसी ही हो जाती है, वह दूध को जरा भी नहीं चूसती। दूसरी जो लकड़ी की पुतली है, उसें दूध में डालने पर वह थोड़ा - सा दूध चूसती है। और तीसरी पुतली रूई की है, जिसे दूध में डालने पर वह दूध को चूस लेती है। बोलो, इन तीन पुतलियों में से तुम कौन-सी पुतली जैसे श्रोता हो? (हँसाहँस), अगर तुम रूई की पुतली जैसे श्रोता न बन सको तो, खैर परन्तु लकड़ी की पुतली जैसे श्रोता बनोगे तो भी मुझे सन्तोष होगा। जिसने थोड़ी-सी वीतरागवाणी पचाई है, वे जीव (अशुभ) कर्म के उदय से दुःख आ पड़ने पर हाय-हाय नहीं करते, अपितु वे 'होता है - होता है' (हाँ - हाँ) कहते हैं।

रहेंगे ? याद रखो, यह धन अन्त में तुम्हारा नहीं रहनेवाला है। देखिए 'आचारांग सूत्र' (सु-१, अ-२ जु-४) में क्या कहा है -

"तओ से एगया (विविहं) विप्परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ; तं पि से एगया दायायाविभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वासे विलुंपंति, णस्सातिवा से, विणस्सतिवा से, अगार-दाहेण वा सेडज्झइ।"

इसका भावार्थ यह है कि गृहस्थ के पास लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से धन प्रचुरमात्रा में हो जाता है। वह भोग के लिए उस धन की रक्षा करता है। भोग के बाद बची हुई विपुल सम्पत्ति के कारण वह महान् वैभववाला बन जाता है। उस धन से वह भोग-विलास के विविध साधन (उपकरण) प्रचुरमात्रा में एकत्रित कर लेता है। उन्हें देख-देखकर वह बहुत हर्षित होता है कि मैंने कितने सुन्दर भोगोपभोग के साधन बसा लिये हैं ? मेरा बंगला कितना सुन्दर व विशाल है ? ऐसा फर्निचर मेरे सिवाय किसी के यहाँ नहीं होगा। परन्तु ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि जीवन में कभी ऐसा समय आता है, जब दामाद (स्वजन) अपना हिस्सा बंटा लेते हैं, चोर उस सम्पत्ति आदि को चुरा लेते हैं, अथवा राजा (शासनकर्ता) उसे छीन लेते हैं, अथवा व्यवस्था में नुकसान होने से वह सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, या (दुर्व्यसनों या आतंकप्रयोग आदि से) वह विनष्ट हो जाती है। मकान में आग लगने से वह जलकर भस्म हो जाती है। अथवा नदी में बाढ़ आने पर वहाँ आसपास के सभी घर-सामग्री सहित वह जाते हैं।"

दो-तीन वर्ष पहले साबरमती नदी में बाढ़ आ गई थी। उस समय साबरमती नदी के किनारे निर्मित सभी बंगले उस बाढ़ में वह गए थे। मेहनत करके संचित किया हुआ धन, सोना, आभूषण, वस्त्र आदि सब उस बाढ़ में वह गए थे, अनेक मनुष्य बेघरबार हो गए थे। भूख-प्यास सहकर, काल-अकाल की परवाह किये बिना संचित किया हुआ धन इस प्रकार चले जाने से वे लोग रोने, विलाप करने और पश्चात्ताप करने लगे। *बन्धुओं ! यह सब तो तुम आए दिन आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखते हो। ऐसा* जान-देखकर तुम्हें अपना भविष्य सुधारना हो तो वर्तमानकाल को सुधारो। अन्यथा, सम्पत्ति तो इस या अन्य प्रकार से चली जाएगी, परन्तु उसे प्राप्त करने में बांधे हुए कर्म तो तुम्हें स्वयं भोगने पड़ेंगे। अतः ऐसा समझ मोह-ममत्व का स्वेच्छा से त्याग कर दो, घरबार, धन-सम्पत्ति तथा समस्त भोगोपभोग के साधनों के प्रति ममत्व का विसर्जन करके सोचो कि मैं एक यात्री हूँ। जीवन पावन करने के लिए इस धर्मशाला में ठहरा हूँ। ऐसा मानकर (ज्ञाता-द्रष्टा बनकर) चलोगे, यानी आत्मस्थ होकर चलोगे तो आधि-व्याधि-उपाधि से दूर रहकर समाधि में स्थिर हो जाओगे।

मेरा यह घर नहीं, किन्तु धर्मशाला है, ऐसा समझ कर रहो : एक बादशाह का महल था। एक फकीर ने आकर उस महल में पड़ाव डाला। सिपाही ने आकर उसे कहा - "सांई ! यहाँ आपने क्यों डेरा डाला है ? यह तो बादशाह का महल है, यहाँ से

इन्हीं १४ स्वप्नों को देखती है। परन्तु दोनों के स्वप्न वृत्ति में अन्तर यह है कि तीर्थंकर प्रभु की माता इन चौदह स्वप्नों को स्पष्ट देखती है, जबकि चक्रवर्ती की माता इन्हें अस्पष्ट देखती है। वासुदेव की माता इनमें से सात स्वप्न देखती है, बलदेव की माता को चार स्वप्न आते हैं और माण्डलिक की माता को एक स्वप्न आता है।

इस धारिणी रानी को चौदह स्वप्नों में से एक स्वप्न आया। स्वप्न को धारण करनेवाले व्यक्ति को धैर्यवान् होना चाहिए। कोई अच्छा स्वप्न आए तो उसके पश्चात् सोना नहीं चाहिए, अपितु धर्माराधना करनी चाहिए। और ऐसी स्वप्न देखकर किसी ऐसे-वैसे मनुष्य के समक्ष प्रगट नहीं करनी चाहिए। प्रभात होते ही, गाँव में कोई पवित्र संत विराजमान हों तो उनके पास जाकर स्वप्न का वृत्तान्त कहना चाहिए। संत न हों तो घर में किसी बुजुर्ग को कहना चाहिए। वह भी न हो तो अपना पति अगर धैर्यवान हो तो उसके समक्ष कहना। अगर सगे-सम्बन्धियों या स्नेहियों में कोई सज्जन हो तो वहीं जाकर उसे कहना चाहिए। परन्तु किसी (योग्य व्यक्ति) को कहे बिना अन्य कार्य में नहीं जुटना चाहिए। चाहे जिस (अयोग्य या दुर्जन) व्यक्ति को स्वप्न वृत्तान्त कहने से या शुभ स्वप्न आने के बाद सो जाने से उस स्वप्न का फल नष्ट हो जाता है। जैसे-तैसे (अयोग्य) व्यक्ति को कहने से क्या होता है ? इस सम्बन्ध में मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत करती हूँ -

स्वप्न एक होते हुए भी फल पृथक्-पृथक् मिले : दो मित्र थे। उनमें से एक वणिकपुत्र था और दूसरा था - पटेल का पुत्र। दोनों अत्यन्त निर्धन थे। एक बार किसी काम से दोनों एक गाँव में गए। वापस लौटते हुए मार्ग में रात पड़ गई। अतः दोनों एक वृक्ष के नीचे सो गए। दोनों को एक सरीखा स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने 'एक घी से - चुपड़ी हुई, और उस पर गुड़ रखी हुई रोटी देखी, जिसे वे सारी की सारी खा गए।' स्वप्न देखकर दोनों जाग गए। भोर होनेवाली थी और दोनों का अपना गाँव नजदीक था। इसलिए दोनों चल पड़े। उस पटेल के लड़के ने एक संन्यासी से कहा - "मुझे ऐसा स्वप्न आया है।" उसे सुनकर सन्यासी ने कहा- "तुझे ऐसा स्वप्न आया है तो जा, आज तुझे घी से - चुपड़ी हुई रोटी और गुड़ खाने को मिलेगा।" दूसरा वणिकपुत्र गरीब होते हुए भी संस्कारी था। वह सीधा उपाश्रय में पहुँचा और गुरुदेव को वन्दन करके उनके समक्ष स्वप्न की बात कही। अतः गुरु ने कहा - "आज से सातवें दिन तुझे राज्य मिलेगा।" वह लड़का बहुत गंभीर था। उसने मन में ऐसा भी नहीं सोचा कि मैं ऐसा गरीब व्यक्ति हूँ, मुझे राज्य कहाँ से मिलेगा ? गुरुवचन को तादृष्टि (वैसा ही है) कहकर वह उनसे मंगलपाठ सुनकर घर गया। वहाँ दो दिन रहकर पुनः किसी कार्यवश दूसरे गाँव गया। संत ने जो स्वप्नफल कहा था, उसे ६ दिन हो गए, लेकिन राज्य मिलने का जरा भी कोई आसार नहीं दिखाई दे रहा है, मन में भी नहीं आया कि संत ने कहा था, मगर कुछ हुआ नहीं। वह लड़का ऐसे गंभीर था। वह घुमता-घामता एक गाँव के बाहरी प्रदेश में आ गया। वह बहुत थक गया था। अतः नदी के किनारे रेत पर सो गया, गाढ़ निद्रा आ गई। संयोगवश उस गाँव के राजा का देहान्त हो गया था। राजा के कोई पुत्र नहीं था। अतः राज्य किसे देना ? इस मुद्दे पर

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

गर्भ पर से जीव की परीक्षा हो जाती है : 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। उसमें बताया गया है कि धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। जागृत होकर उसने राजा के आगे स्वप्न का वृत्तान्त कहा, यह कल कहा गया था। सुबह होते ही बलराजा ने स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने भी कहा कि – "महारानी ने सिंह का स्वप्न देखा है, इसलिए गर्भस्थ जीव सिंह जैसा पराक्रमी, प्रभावशाली और तेजस्वी पुत्र होगा।" स्वप्न का फल सुनकर धारिणी रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। रानी सावधानीपूर्वक गर्भ का पालन करने लगी। रानी जब से गर्भवती हुई, तब से उसके मन में पवित्र विचार आने लगे। मैं साधु-साध्विओं का दर्शन करूँ, दान दूं, सामायिक करूँ, ये और ऐसे धार्मिक विचार आने लगे। गर्भ में पवित्र जीव आता है, तो माता को भी ऐसे पवित्र विचार आते हैं। गर्भ में पुण्यवान जीव आता है तो घर में धन बढ़ता है, प्रेम बढ़ता है, कुटुम्ब में कुसम्प (फूट) हो तो सम्प (मेलजोल) हो जाता है, विघ्न हो तो नष्ट हो जाता है और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की लहर आ जाती है। अगर गर्भ में कोई पापी जीव आ जाए तो वहाँ सम्प (मेलजोल) मिटकर झगड़ा और क्लेश हो जाता है। एक दूसरे का दिल फट जाता है। कई बार गर्भवती बहनें गेहूँ बीनते समय कंकर को (बाहर फेंकने के बदले) मुँह में डाल लेती हैं। यह मिट्टी खाने का उसका मन क्यों हुआ ? इसमें उसका दोष नहीं है। गर्भस्थ जीव ऐसा ही है, जिससे उस गर्भिणी को मिट्टी खाने का मन हो जाता है।

श्रेणिक राजा की महारानी चेल्लणा पवित्र महिला थी, वह चेडा राजा की पुत्री थी। चेडा राजा के एक भी पुत्र नहीं था, सात पुत्रियाँ थी। भगवान् महावीर ने चेडा राजा से कहा था – "राजन् ! तुम्हारी सातों ही पुत्रियाँ सती हैं। तुम्हारे यहाँ पुत्रियों से दीपक (की ज्योति) रहेगी। प्रतिदिन मनुष्यों के मुख में से तुम्हारी पुत्रियों का गुणगान होगा।" ऐसी पवित्र चेल्लना रानी के गर्भ में कोणिक आया, तब उसे श्रेणिक राजा के कलेजे का मांस खाने का विचार (दोहद) उत्पन्न हुआ। इसमें चेल्लणा रानी का कोई दोष नहीं था। गर्भस्थ जीव का ऐसा दूषित भाव था। कोणिक को श्रेणिक राजा (पिता) के कलेजे का मांस खाने का मन क्यों हुआ, यह जानते हो ? उसे श्रेणिक राजा के साथ पूर्वभव का वैरभाव था। पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार है –

कोणिक का जीव (पूर्वभव में) तापस था। वह मासखमण (एक मासिक उपवास) के पारणे मासखमण करता था। उसकी तपश्चर्या को देखकर अच्छे-अच्छे लोगों के सिर झुक जाते थे। उस समय श्रेणिक का जीव राजा था। वह इस तापस का दर्शन करने जाता था। उस तापस के प्रति राजा का अत्यन्त भक्तिभाव था। राजा ने तापस को अपने यहाँ (मासखमण का) पारणा करने का आमंत्रण दिया। तापस का ऐसा नियम था कि जिसके यहाँ पारणा करना निश्चित हुआ है, वहीं करना। अगर वहाँ (किसी कारण से) नहीं हुआ तो अन्यत्र किसी के यहाँ पारणा नहीं करना और तुरंत दूसरा मासखमण तप शुरू कर देना। यह राजा तापस को पारणे का आमंत्रण देता था, किन्तु उसके पारणे

उत्तम सेवा है। सैकड़ों सांसारिक काम करोगे, उनसे उतना लाभ नहीं होगा, मगर संघ की सेवा करने से महान् लाभ होता है।

संक्षेप में हमारी बात चल रही थी स्वप्न की। देखिए, उक्त दोनों लड़कों को एक सरीखा स्वप्न आया था, किन्तु स्वप्न का फल कहनेवालों में अन्तर था। फलतः एक को घी से चुपड़ी हुई रोटी मिली, जबकि दूसरे को राज्य मिला। अतः स्वप्न को कहने और (उसका फल) सुननेवाला, दोनों धैर्यवान् होने चाहिए। धारिणी रानी को पिछली रात में एक स्वप्न आया। उन्होंने स्वप्न में एक बलवान् सिंह को रूमझूम करते हुए ऊपर से आता हुआ देखा। रानी स्वप्न देखकर जागृत हुई। मन में चिन्तन करने लगी कि ज्ञानी महापुरुषों ने चौदह उत्तम स्वप्न बताए हैं। उनमें का यह एक स्वप्न है। यह उत्तम स्वप्न है। इसके फलस्वरूप मैं किसी उत्तम पुरुष की माता बनूंगी। अतः वह जागृत होकर धर्माराधना करती रही। प्रभात होते ही रानी अपने रूम में से उठकर जिस रूप में बलराजा सोये हुए थे, वहाँ आई। धारणी रानी ने बलराजा को नमस्कार करके स्वयं को आए हुए स्वप्न की बात कही। राजा ने कहा - "महारानी! तुम एक पवित्र और सिंह जैसे शूरवीर पुत्र की माता बनोगी। तुम भाग्यशाली हो। राजा स्वप्नपाठकों को बुलाकर स्वप्न का फल पूछेंगे, परन्तु राजा से स्वप्न का फल सुनकर रानी अतीव प्रसन्न हुई। धारिणी रानी गर्भवती हो गई। अब राजा स्वप्नपाठक को बुलाकर स्वप्न का फल पूछेंगे।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

कल हमने आपके समक्ष एक दृष्टान्त प्रस्तुत किया था, एक ब्राह्मण की पुत्री दया-देवी का। वह बहुत ही संस्कारी है, निर्भय भी है। बारह वर्ष की लड़की सर्प को जूड़े में लपेट कर यों निर्भयतापूर्वक बैठ जाए, यह क्या जैसी-तैसी हिंमत कही जा सकती है? जो अपने जीवन का मोह छोड़ देती है, वह ऐसी दया कर सकती है। कुछ ही देर के बाद सपेरे उस नाग को पकड़ने के लिए दौड़कर आए। दयादेवी से उन्होंने पूछा - "अरी छोकरी! यहाँ कहीं (इस क्षेत्र में) तूने कहीं एक नाग देखा है?" तब दयादेवी ने कहा - "मैं तो इन कंकरों से खेलती हूँ। मुझे भला यहाँ नाग कहाँ से दिखाई देता?" तभी दूसरा सपेरा बोला - "इस लड़की ने सांप देखा होता तो यह यहाँ खड़ी ही नहीं रहती, भयभीत होकर भाग जाती!"

लड़की की हिंमत देखकर नागदेव प्रसन्न हुए : "इस ओर नाग आया हो, ऐसा नहीं लगता। चलो, दूसरी ओर चलकर तलाश करें।" यों वे सपेरे नाग न मिलने से क्रोध से धमधमाते हुए दूसरी ओर चले गए। सपेरों के चले जाने पर दया देवी ने कहा - "नागराज! तुम्हारे शत्रु तो चले गए, अब तुम्हें जहाँ जाना हो, वहाँ खुशी से जा सकते हो।" यह सुनकर नाग धीरे से जूड़े से नीचे उतरे और (वैक्रिय शक्ति से) अपना दिव्यरूप धारण करके दयादेवी से कहा - "बेटी! मैं तेरी हिम्मत और ऐसी दयावृत्ति देखकर तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ। मैं नाग का अधिष्ठाता हूँ। अतः इच्छा हो,

ड़कर पोंची ले ली तो महावीर के मेरे श्रावकों को महावीर के वचन पर कब विश्वास गा ? *'विषयान् विषवत् त्यज'* - विषयों को विष जानकर छोड़ दो, इस उक्ति अनुसार उन्हें छोड़ देना चाहिए। विषयों को विष सम जानते हुए भी, छोड़ते नहीं, का एक कारण यह है कि तुम्हें अभी तक वीतराग प्रभु के वचनों पर श्रद्धा-निष्ठा-श्वास नहीं है, तथैव मोक्ष की रुचि जागी नहीं है। जब मोक्ष की रुचि जागेगी, तब हारी यह दशा नहीं होगी। ज्ञानीपुरुषों के वचन पर श्रद्धा जागेगी, तब उनके गुणों , उनकी पवित्रता को और उनके उपकारों को नहीं भूलेंगे।

वन्धुओं ! 'मुझे मोक्ष मिले,' अर्थात् 'मुझे मोक्ष में जाना है' ऐसा विचार किसे ता है ? ज्ञानी कहते हैं - संसार-परिभ्रमण जब अर्द्ध -पुद्गल-परावर्तन-काल-परिमित जाय, तब ऐसा विचार आता है। अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक संसार-भ्रमण तो 'मुझे मोक्ष मिले,' ऐसी इच्छा नहीं होती। इसके विपरीत जिसे मोक्ष प्राप्त करने की छा होती है, उसे अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक संसार में भ्रमण करना नहीं ता। किन्तु 'मुझे मोक्ष में जाना है', 'मुझे जल्दी मोक्ष मिले' इन शब्दों का उच्चारण केवल भ से बोलने तक ही सीमित न हो। तुम यों मत समझना कि महासतीजी यों कहती ' कि मोक्ष में जाने का विचार आए, इसलिए अर्द्ध-पुद्गल-परावर्तन-काल में मोक्ष में वश्य जाना ही है। यह आशय नहीं है, मेरे कथन का मोक्ष में जाने की रुचिवाले जीव *रग-रग में संसार असार है, त्याज्य है, ऐसी प्रतीति होना चाहिए।* मोक्ष का अभिलाषी व चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से संसार में रहता है, परन्तु संसार में रमण नहीं करता, त या आसक्त नहीं होता। किसी मनुष्य को बुखार आया, अतः वह णिवनाईन की ड़वी गोली लेता है, कोई होम्योपैथिक की अथवा बायोकैमिक की मीठी दवा लेता है कोई मीठा शर्वत पीता है। उसे कोई पूछे कि "तू क्या पी रहा है ?' तो वह गा - 'मैं दवा पी रहा हूँ,' परन्तु ऐसे नहीं कहेगा कि 'मैं शर्वत पीता हूँ ?' दवा कड़वी चाहे मीठी हो, पर दवा दवा ही होती है। उसी प्रकार संसार में भले ही तुम्हें स्वर्ग से व मिले हों, या मिल रहे हों, पर संसार तो संसार ही है, जिसमें कोई सार नहीं है। सच तो संसार जीव को चतुर्गति की जेल में डालनेवाला पिंजरा है। मोक्षाभिलाषी जीव कर्म के उदयवश संसार में रहना पड़े तो रहे, पर खूब अलिप्त रहे।

भगवान् महावीर जब आर्हती दीक्षा लेने को तैयार हुए, तब उनके बड़े भाई ने ा - "भाई ! माता-पिता तो हमें छोड़कर चले गए, तू भी क्या मुझे छोड़कर चला एगा ?" बड़े भाई के अत्यन्त आग्रह से उन्हें आश्वासन देने के लिए प्रभु महावीर दो तक संसार में रहे। पर वे किस प्रकार रहे ? जलकमलवत् वे निर्लिप्त रहे। इस सम्बन्ध तुम ऐसा विवाद मत करना कि भगवान् महावीर अपने बड़े भाई के आग्रह के कारण वर्ष संसार में रहे, तो हम संसार में क्यों न रहें ? वन्धुओं ! उन्हें विशिष्ट अतीन्द्रिय ज्ञान ' तुम्हें और हमें वैसा ज्ञान है क्या ? वे तीर्थंकर पद प्राप्त करनेवाले थे, मोक्ष में जाने-ने थे, फिर भी उन्होंने संयम ग्रहण किया और करेमि भंते ! सामाइयं, इस पाठ सामायिक चारित्र अंगीकार किया। दीक्षा लेते ही उन्हें चौथा मनःपर्याय ज्ञान हो गया।

अब प्रतिदिन वह गायें चराने जंगल में जाती और शाम होते ही वापस आती, तब बगीचा भी उसके साथ ही साथ रहता था। वह घर में जाती तो बगीचा भी घर पर छत्र की तरह अधर रहता था। ऐसा मालूम होता था, मानो मकान पर छत्र धारण करके रखा हो।

इस प्रकार प्रतिदिन बगीचा उसके साथ ही साथ रहने लगा। उसके घर पर भी बगीचा (अधर स्थित हुआ) दिखाई देता था। यह देखकर लोगों के मन में आश्चर्य उत्पन्न होता था कि यह क्या है? लोग कहने लगे - "यह लड़की कोई पुण्यवान या भाग्यशाली मालूम होती है।" स्वाभाविक रूप से लोग दयादेवी की खूब प्रशंसा करने लगे। उसकी प्रशंसा सुनकर उसकी सौतेली माँ ईर्ष्या की आग से जलने लगी। एक दिन पूछ बैठी - "छोकरी! यह सब क्या नाटक कर रही है तू?" इस पर दयादेवी कहती - "माँ! मैं कुछ नहीं करती! मुझे कुछ भी पता नहीं है, ऐसा क्यों होता है?"

एक दिन दयादेवी गायें चराने गई थी। बगीचे में एक तरफ हरा घास खूब पैदा होता था, इस कारण गायों को हरा घास चरने के लिए अधिक दूर नहीं जाना पड़ता था। फलतः गायें नजदीक ही चर रही थीं। यह देखकर दयादेवी बगीचे में मौजूद एक बेंच पर निश्चिन्त होकर सो गई। उसे गाढ़ निद्रा आ गई। उस समय पाटलीपुत्र का राजा जितशत्रु किसी शत्रु (राज्य) पर विजय प्राप्त करके अपने नगर की ओर जा रहा था। वह हाथी, घोड़े, पैदल और रथ आदि से युक्त विशाल सेना लेकर इस रास्ते से निकला। रास्ते में यह सुन्दर बगीचा देखकर उसने मन में सोचा - 'हम इस रास्ते से गये, तब ऐसा सुन्दर बगीचा यहाँ नहीं था। एक भी वृक्ष नहीं था। फिर इस बगीचे को किसने बनाया होगा? कितना सुन्दर मनोरम्य है यह?' बगीचे की शोभा देखकर उसकी छाया में विश्राम लेने के लिए राजा ने वहाँ पड़ाव डाला। हाथी, घोड़े, बैल आदि सबको बगीचे के वृक्षों के साथ बांध दिये।

बगीचे में राजा की सेना के ठहरने से बहुत ही शोर होने लगा। अतः दयादेवी एकदम हड़बड़ा कर जाग उठी। चारों ओर हाथी, घोड़े, बैल आदि के होने से उसे अपनी गायें वहाँ पर दिखाई नहीं दीं। इस कारण वह घबरा गई। हाथी, घोड़े आदि को देखकर गायें डर कर दूर चली गई थीं। अतएव दयादेवी एकदम खड़ी होकर दूर चली गई अपनी गायों को वापस लाने के लिए दौड़ी। इस कारण बगीचा भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। वृक्षों से बांधे हुए हाथी, घोड़े, बैल भी दौड़ने लगे। राजा को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यह क्या हुआ? ऐसा तो मैंने अपनी जिंदगी में कभी देखा नहीं! मंत्री भी आश्चर्यचकित हो गया। राजा ने मंत्री से कहा - "प्रधानजी! यह सब क्या आश्चर्यजनक घटना है? इसकी तलाश करो कि ऐसा किस कारण हो रहा है?" प्रधान बुद्धिमान था। उसने कहा - "राजन्! हमलोग यहाँ आये थे, तब वह लड़की बेंच पर सोई हुई थी, इस समय वह दौड़ रही है। इसलिए मेरा अनुमान है कि इस लड़की के पीछे-पीछे यह सब दौड़ रहे हैं।" राजा ने कहा - "तो फिर इस लड़की को बुलाकर पूछो।" अतः प्रधान ने जोर से आवाज देकर उससे कहा - "बहन! तू खड़ी रह।" अब वह खड़ी रहेगी या नहीं? आगे क्या घटना घटित होगी? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।"

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

अपना चालू अधिकार है - धारिणी रानी का । धारिणी रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया है । उसका नाम रखा गया है - महावल कुमार । अव वह वहुत ही लाड़-प्यार से वड़ा हो रहा है । समय वीतते देर नहीं लगती । शास्त्र में कहा गया है -

"महव्वले नामं दारए जाए; उम्मुक्क जाव भोग-समत्थे ।"

महावल कुमार का जन्म होने के पश्चात् समय व्यतीत होने के साथ महावल कुमार ने वाल्यावस्था पार करके युवावस्था में पदार्पण किया । युवक महावल कुमार वहुत होशियार था । अल्पकाल में ही उसने वहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था । वह समस्त कलाओं में कुशल, वुद्धिमान् और पंचेन्द्रिय सुख-भोग के लिए समर्थ (योग्य) हो गया ।

महावल कुमार चतुर और पराक्रमी था । वह अत्यन्त रूपवान् और विनयवान् था । ऐसे गुणवान् पुत्र को देख-देखकर माता-पिता की आँखें थकती ही नहीं (स्थिर हो जाती) थीं । पुत्र पढ़-लिखकर वचपन विताकर जव जवान हो जाता है, तव माता-पिता उसका विवाह करने को उद्यत होते हैं । क्या कोई माता-पिता पुत्र के वड़े या युवक हो जाने पर (ऐसा सोचते हैं कि) यदि इसे वैराग्य उत्पन्न हो तो दीक्षा दिला दें ? (हँसाहँस) वल्कि वह विरक्त (वैराग्य वासित) हो जाए तो उसे (संसार में) रोकने का प्रयत्न करते हैं । हाँ तो, तुम्हारी तरह माता-पिता भी महावल कुमार का विवाह करने के लिए तैयार हुए - *"तए णं तं महव्वलं अम्मापियरो सरिसियाणं कमल- सिरी पामोक्खाणं पंचण्हं रायवर-कन्नासयाणं एगदिवसेणं पाणिंगेण्हावेंति"* तत्पश्चात् महावल कुमार को सिर्फ एक ही दिन में समान कुल और समान वयवाली कमलश्री आदि पाँच सौ उत्तम राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण (विवाह) कर देते हैं ।

वन्धुओं ! आपको ऐसा लगता होगा कि हमारे तो एक ही पत्नी है, और उनके ५०० रानियाँ ! विचार करिए, उनके ५०० पत्नियाँ अवश्य थीं, वे भोगावली कर्म के उदय से भोग भोगते थे, लेकिन वे उनमें आसक्त नहीं थे । उनके एक-एक से वढ़कर सुन्दर ५०० पत्नियाँ थीं । किन्तु समय आने पर वे एक साथ, एक ही झटके में पाँच सौ ही पत्नियों का त्याग कर देते थे, यही उनकी अनासक्ति का सवसे प्रवल सवूत है । मगर आपको जिंदगी भर तक एक पत्नी का भी मोह छूटता नहीं । शास्त्रकार आगे कहते हैं - *'पंच पासायसया पंचसयदाओ जाव विहरइ ।'* वलराजा ने ५०० पुत्रवधूओं के रहने के लिए ५०० राजप्रासाद वनवा दिए । साथ ही महावल कुमार की ५०० पत्नियों में से प्रत्येक पत्नी पांच सौ प्रकार का दहेज (दाज) लाई थी । इस प्रकार महावलकुमार यावत् सभी राजमहलों में यथेच्छ निवास करके मनुष्यभव के सभी सुखभोगों का उपभोग करने लगे ।

इधर वलराजा और धारिणी रानी प्रमुख हजार रानियाँ वहुत ही आनन्दपूर्वक रह रहे थे । उस समय वहाँ क्या हुआ ? शास्त्र में कहा गया - *"तेणं कालेणं तेणं समएणं*

करते, तो समझ लेना कि जहाँ नाममात्र भी कषाय नहीं है, ऐसा अकषायी स्थान मोक्ष तो आपसे बहुत दूर है। धर्मस्थान में आकर भी क्षमादि गुणों का कितना पालन होता है? सच कहूँ तो अभी तक तुम्हें कषाय का डर नहीं लगा। इस कारण कषाय का जरा-सा निमित्त मिलते ही कषाय का नाटक करने लगते हैं। केवल मोक्ष की बातें करने से, मोक्ष की माला फेरने से मोक्ष नहीं मिलेगा, अपितु मोक्ष के साधनभूत क्षमा-भावादि धर्मों के पालन से मोक्ष मिलेगा। मामूली कारण को लेकर कषाय आ जाता है, तो निर्वाण तुम्हारे निकट नहीं आयेगा। भेड़िया, बाघ, सिंह, सर्प, बिच्छू इत्यादि जंगली हिंसक और जहरीले पशुओं के भय की उपेक्षा भी विषय-कषाय रूपी जंगली और जहरीले पशुओं का हमें अधिक भय होना चाहिए। सम्यक्त्वी आत्मा कषाय भीरू होता है। वह विषय-कषायरूपी शत्रुओं से सदा सावधान रहता है। उसे विषय-कषाय का सेवन खटकता है। वह सदैव यह चाहता है कि अब मैं विषय-कषाय से मुक्त हो जाऊँ तो अच्छा। जो विषय-कषायों से सर्वथा मुक्त हो गए हों, उनका यह सच्चा सेवक बनकर रहता है। जो विषय-कषाय का त्याग करने का उपदेश देते हैं, वे सम्यक्त्वी आत्मा को बहुत अच्छे लगते हैं। जिन शास्त्रों से विषय-कषाय से छूटने-बचने का उपदेश मिलता है, उन शास्त्रों पर उसे अत्यन्त बहुमान होता है। ऐसे शास्त्रों को वह सुनता है, पढ़ता है और शास्त्रवचनों को आचरण में उतारता है, परन्तु विषय-कषायों को पुष्ट करनेवाले शास्त्रों को सुनता या पढ़ता नहीं है। विषय-कषायों में वृद्धि हो, ऐसे कुमित्रों से सदा दूर रहने का प्रयत्न करता है, ताकि विषय-कषाय मंद हो जाएँ।

बन्धुओं! मित्रता उसके साथ करनी चाहिए, जिसके विषय-कषाय मन्द हों। परन्तु तुमने तो ऐसों के साथ मित्रता की है, जिनके साथ तुम्हारा मोह मरता नहीं, अपितु तुम पर नित्य उस मोह की मार पड़ती रहती है। मोह को मारने का अर्थ है - विषय-कषायों को मारना। आत्मा को अकषायी बनाने और उसे अपने वास्तविक स्वभाव में लाने के लिए इस मानवभव को पाकर तुम्हें जोरदार पुरुषार्थ करना पड़ेगा और भगवान के वचनों पर श्रद्धा रखनी पड़ेगी। इन विषय-कषाय रूपी शत्रुओं को जीतने के लिए आत्मा में अनन्तशक्ति पड़ी है, परन्तु आत्मा ने अपनी शक्ति का विचार नहीं किया और पांचों इन्द्रियों के वशीभूत होकर, ऐसा पराधीन हो गया है कि अनन्तशक्ति होते हुए भी इन्द्रियों के आदेश के आधीन हो गया है, और उनकी गुलामी करता रहता है। जैसे, कोई व्यक्ति करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी, बड़ा धनाढ्य सेठ है। किसी दुःसाध्य रोग के कारण उसकी शारीरिक शक्ति मंद हो गई, स्मरणशक्ति भी कम हो गई। अतः अब हिसाब में लेन-देन की बात उसे याद नहीं रहती। फलतः उसके लड़के फर्म के मालिक बन बैठे। उन्होंने सारे हिसाब-किताब की बहियाँ और तिजोरी (सारी पूंजी) हस्तगत कर ली। पिता के कब्जे में कोई मिल्कियत नहीं रही। अब पिता को कुछ खाने-पीने का मन हुआ या किसी धर्मकार्य में दान देने का मन हुआ, उसने लड़कों से धन की मांग की, मगर लड़के एक दमड़ी भी उन्हें नहीं देते। पिता पैसों के लिए आजीजी करता है, पर लड़के नहीं देते।

वन्दन करते हेतु जा रहे हों, वहाँ जनता पर भी उसका अपूर्व प्रभाव पड़ता है। फलतः प्रजाजन भी उल्लासपूर्वक संत-दर्शन करने के लिए जाने को उद्यत हुए।

देवानुप्रियों ! तुम्हारे गाँव या नगर में संत-सती का पदार्पण हो, तब तुम (प्रमादी बनकर) घर में बैठे मत रहना ! कम से कम एक घंटा तो संत-समागम अवश्य करना। धंधे - व्यवसाय आदि की ममता छोड़ देना। कुटुम्ब-परिवार के लिए षड्यंत्र करके अधिकांश लोग प्रचुर धन एकत्रित कर लेते हैं, किन्तु आज तो उन अनैतिक धनलोलुपों को मीसा के कानून के अनुसार गिरफ्तार करके जेल में बिठा देते हैं। किसको किस जेल में डाल देते हैं, उसका भी कोई पता नहीं है। खानेवाले को जेल में नहीं जाना पड़ता। लेकिन तुम्हें (चोरबाजारी करनेवाले को) जेल में जाना पड़ेगा। इस मीसा में पकड़े जाने पर किसी प्रकार की अपील या दलील नहीं सुनी जाती। फिर भी इस मीसा से तो कदाचित् दो-तीन वर्ष में छुटकारा मिल जाएगा, किन्तु कर्मसत्ता की मीसा तुम्हें ऐसी पकड़ेगी कि (कितने हजार वर्षों तक) किस दुर्गति की जेल में ठूंस देगी, उसका कोई पता नहीं है। अतः भगवद्वाणी से कर्मों के बंध होने और उससे मुक्त होने के कारणों को भलीभाँति समझकर पर-भावों (शरीर और शरीर से सम्बन्धित सजीव-निर्जीव पदार्थों) पर से ममता-अहंता छोड़कर शुद्ध धर्म का आचरण करोगे, उतना ही तुम्हारी आत्मा को लाभ होगा।

बलराजा भी विशाल जनसमूह के साथ स्थविरमुनि भगवंतों के दर्शन-वन्दन-श्रवण करने के लिए पहुँचा। मुनियों के दर्शन-वन्दन करके वह बैठे। स्थविर भगवन्त ने धर्म देशना सुनाई। उनकी अमृतभरी वाणी सुनकर बलराजा को संसार की अस्थिरता-क्षणिकता का भान हुआ। वह ज्यों-ज्यों जिनवचन गुरुदेव स्थविरमुनि से सुनते गए, त्यों-त्यों उनकी आत्मा में अपूर्व आनन्द की अनुभूति होने लगी। उनके मुख से उद्गार निकले - "अहो ! कितनी कल्याणकारिणी आपकी वाणी है ?" धर्मघोष स्थविर की वाणी सुनकर बलराजा प्रतिबुद्ध हुए, वे वैराग्य-रंग में रंजित हो गए। सचमुच, वे कितने पवित्र और लघुकर्मी आत्मा थे ?

'स्थानांग-सूत्र' के चतुर्थ स्थान में चार प्रकार के मेघ (बादल) बताए हैं। एक मेघ ऐसा होता है, जो एक बार बरसता है, तो उससे दस हजार वर्ष तक अन्न उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार का मेघ एक बार बरसता है, तो उससे एक हजार वर्ष तक अनाज पैदा होता रहता है। तीसरे प्रकार का मेघ एक बार बरसता है तो उससे दस वर्ष तक अन्न उत्पन्न होता रहता है और चौथे प्रकार का मेघ ऐसा है कि वह अनेक बार बरसता है, तब जा कर एक बार धान्य पैदा होता है। यह मेघ पंचम आरे का है।

बन्धुओं ! बलराजा पहले प्रकार के मेघ जैसे थे। उन्होंने धर्मघोष अनगार की पहली बार धर्मदेशना सुनते ही कहा - "गुरुदेव ! आपकी वाणी सुनकर मुझे संसार असार प्रतीत हो गया है।" बलराजा ने तो पहली बार धर्मोपदेश सुनते ही इस प्रकार कहा, परन्तु मेरे घाटकोपर के भावुक श्रावकवर्ग कब कहेंगे कि हमें भगवद्वाणी सुनकर संसार असार

ट्रस्टी नियुक्त किये । स्वयं जीऊं, वहाँ तक सम्पत्ति मेरी है, और मेरे मरने के बाद सम्पत्ति का स्वामित्व मेरी पत्नी का, इस शर्त पर उसने सम्पत्ति ट्रस्टियों को सौंप दी । सम्पत्ति की मालिकी अपनी होते हुए भी उसमें से आवश्यकतानुसार रकम लेनी हो तो ट्रस्टियों के हस्ताक्षर चाहिए । उस सम्पत्ति के मालिक के मरने पर सम्पत्ति की मालिकी पत्नी की है न ? मगर पति के मर जाने पर ट्रस्टियों की नियत बिगड़ गई, वे स्वयं मालिक बनकर बैठ गए । उस सेठ की पत्नी को आवश्यकतानुसार रकम की जरूरत होती है, वह ट्रस्टियों के पास जाकर रकम मांगती है, पर वे देते नहीं, टालमटोल करते हैं । ऐसा भी हो जाता है न ? ट्रस्टीगण अच्छे हों तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु ट्रस्टी भ्रष्टाचारी (खानेवाले) हों तो उक्त महिला की बुरी दशा हो जाती है । पैसा होते हुए भी भीख मांगने का वक्त आ जाता है । उसके पति की कमाई हुई सम्पत्ति है, मालिकी उसकी है, परन्तु स्वयं (वह महिला) भीख मांगती है और ट्रस्टी मौज करते हैं । वैसे ही ये पाँचों इन्द्रियाँरूपी पाँच ट्रस्टी आत्मा की अनन्तशक्ति के मालिक बनकर मौज कर रहे हैं और माल उड़ा रहे हैं । और अनन्तशक्ति का स्वामी शाहंशाह आत्मदेव भौतिक सुख के टुकड़े की भीख मांग रहा है । अनन्तकाल से इन्द्रियों के गुलाम बने हुए चेतनदेव को अब जागृत करो और इस गुलामी से मुक्त करो । चेतनदेव को इस गुलामी से मुक्त बनाने के लिए कमर कस लो । आत्मा को जागृत करने का यह सुनहरा अवसर है । अगर आत्मा जागृत नहीं होगी, सजग नहीं होगी, तो कर्मरूपी लश्कर इसे घेर लेगा । कर्म की सेना कितनी बड़ी है, यह तो तुम जानते ही हो ।

क्या प्रजा की अपेक्षा सेना बढ़कर हो सकती है ? : आपसे पूछती हूँ, क्या प्रजा की अपेक्षा सेना बढ़कर हो सकती है ? (श्रोताओं में से आवाज – नहीं, प्रजा की अपेक्षा सेना बढ़कर नहीं हो सकती ।) इस जगत् में ऐसा एक भी राज्य नहीं है, जिसमें प्रजा की अपेक्षा सेना बढ़कर हो । परन्तु यहाँ कर्मराजा का राज्य इतना जबर्दस्त है कि प्रजा की अपेक्षा कर्मराजा की सेना बढ़कर होती है । कैसे होती है ? सुनो । आत्मा के प्रदेश असंख्यात हैं और एक-एक आत्मप्रदेश पर अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणा के पुद्‌गल हैं । बोलो, कर्मराजा का लश्कर कितना बड़ा है ? किसी राज्य में प्रजा के एक-एक मनुष्य की देखभाल के लिए एक-एक सिपाही रखा जाए तो भी प्रजा सिर ऊँचा नहीं कर सकती है, तो यहाँ तो अपनी एक आत्मा के एक प्रदेश पर अनन्त कर्मवर्गणारूप कर्मराजा के अनन्त सिपाही अड्डा जमाकर बैठे हैं, ऐसी स्थिति में आत्मा मस्तक ऊँचा कर सकती है क्या ? अतः आत्मा यदि समझ ले कि इतनी बड़ी कर्म की सेना मेरे पीछे पड़ी है, तो मैं क्या समझकर इस संसार में मौज मानकर बैठा हुआ हूँ ?

देवानुप्रियों ! अब तुम्हें मेरी बात समझ में आ गई होगी कि कर्मशत्रु को हटाने के लिए कटिबद्ध होना पड़ेगा । इतनी बड़ी कर्मराजा की फौज अपने पीछे पड़ी है, अब भी नहीं चेते तो यह सैन्य बढ़ता जायेगा । कर्मबन्ध करके धन प्राप्त कर रहे हो और मौज कर रहे हो, परन्तु क्या तुम्हें विश्वास है कि घरबार, धन-सम्पत्ति आदि ये सब सदा स्थायी

इतना लम्बा समय हो गया, वह अभी तक अपने यहाँ (पीहर) नहीं आई । अतः मैंने उसके लिए खूब प्रेम से यह बर्फी बनाई है, अतः आप बर्फी का यह डब्बा लेकर जाइए और बेटी से मिलकर उसे यह डब्बा दे आइए ।" अपरमाता ने बर्फी में भरपूर जहर डाल दिया था । ब्राह्मण (उसके पति) को इस षड्यंत्र का बिलकुल पता नहीं था । इसलिए वह बर्फी का डिब्बा लेकर चल पड़ा । उस समय पैदल मुसाफिरी होती थी । अत्यन्त थक जाने से ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे सो गया । सोते ही उसे गहरी नींद आ गई । उस दौरान विद्युत्प्रभा का सहायक नागकुमार देव वहाँ क्रीड़ा करने आया । इस ब्राह्मण को वृक्ष के नीचे सोया हुआ देखकर अवधिज्ञान से उपयोग लगाकर उसने सारी हकीकत जान ली । सौतेली माँ की दुष्ट भावना को विद्युत्प्रभा को मार डालने के षड्यंत्र की तथा ब्राह्मण को इसकी बिलकुल जानकारी न होने की, सारी बात जानकर देव को सौतेली माता पर बहुत गुस्सा आया । उसने सौतेली माँ की खबर लेने (सबक सिखाने) जाने का सोचा । परन्तु ऐसा करने से माँ दुःखी होगी तो विद्युत्प्रभा को बहुत दुःख होगा, यों जानकर उस बात की उपेक्षा की । किन्तु विद्युत्प्रभा को बचाने के लिए उसने बर्फी में से विष को निकाल दिया और उसके बदले अमृत भर दिया । इस कारण वह जहरीली बर्फी अब अमृतमयी, बहुत सुगन्धित और स्वादिष्ट बन गई ।

ब्राह्मण इस बर्फी का डिब्बा लेकर जितशत्रु राजा के महल में पहुँच गया । राजा ने उसे तुरंत पहचान लिया । उसने अपने ससुर का बहुत आदर-सत्कार किया और उसी समय विद्युत्प्रभा को बुलाया । पिताजी को आये देख वह बहुत ही प्रसन्न हुई और उनके चरणों में प्रणाम किया । फिर उसने माँ के कुशल-समाचार पूछे । इस पर ब्राह्मण ने कहा - "बेटी ! हम तुम्हारे राज्य की होड़ तो नहीं कर सकते, किन्तु तेरी माँ ने प्रेमपूर्वक यह बर्फी बना कर भेजी है ।" विद्युत्प्रभा बोली - "पिताजी ! ऐसा मत कहिए । आप अपने मन में जरा भी हीन भावना मत लाइए । पीहर की छोटी-से छोटी चीज भी मुझे प्रिय लगती है ।" राजा यह सुनकर बोला - "तेरी माता ने तेरे लिए बर्फी भेजी है, तो क्या मैं नहीं खा सकता ? लाओ, मैं पहले खाऊँ ।" राजा ने स्वयं बर्फी का डिब्बा खोला । डिब्बा खोलते ही चारों ओर सुगन्ध ही सुगन्ध महकने लगी । राजा ने बर्फी का टुकड़ा मुँह में रखा और कहा - "क्या ही अच्छा स्वाद है ? ऐसी बर्फी तो मैंने कभी खाई नहीं ।" विद्युत्प्रभा ने भी खाई फिर अपनी सब बहनों (रानियों) को देने हेतु अपने पीहर से आई हुई बर्फी भेज दी । बर्फी खाकर सभी विद्युत्प्रभा की माता की प्रशंसा करने लगे - "वाह ! क्या कमाल की चतुराई है !" ब्राह्मण एक-दो दिन रुककर अपने गाँव जाने को तैयार हुआ । राजा ने उसे बहुत-सा इनाम दिया । ब्राह्मण बहुत खुश होकर अपने घर पहुँचा और सारी बात अपनी पत्नी से कही । ब्राह्मणी ने पूछा - "विद्युत्प्रभा ने मेरी बनाई हुई बर्फी खाई या नहीं ?" इस पर ब्राह्मण ने कहा - "अरी ! विद्युत्प्रभा ने अकेली नहीं, किन्तु महाराजा ने, तथा अन्य सभी रानियों ने वह बर्फी खाई और सभी उस बर्फी को खाकर बहुत ही खुश हुए । सभी ने तेरी खूब प्रशंसा की ।" तब उसने पूछा

किसी सराय में जाकर डेरा जमाओ।" फकीर ने कहा - "हम तो यहीं डेरा जमाएँगे।" सिपाही ने जाकर बादशाह से निवेदन किया कि - "एक फकीर आया है, उसने आपके महल में डेरा जमा लिया है, वह वहाँ से जाता नहीं है।" बादशाह ने स्वयं आकर उस फकीर को (अपमानित करके) वहाँ से निकाल दिया। अगर वह फकीर सिपाही के कहते ही स्वयं समझ कर वहाँ से निकल गया होता तो राजा उसे दो-चार दिन के लिए रहने देता, निकालता नहीं। संक्षेप में, इस पर से हमें यह समझना है कि एक यात्री यात्रा करने के लिए निकला। वह जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ धर्मशाला में उतरा। पर वह धर्मशाला को एक कमरा मानकर बैठ गया, पर कहाँ तक ? जहाँ तक वह उसमें रह रहा है, वहाँ तक। धर्मशाला छोड़ने के बाद क्या उस पर तुम्हारा स्वामित्व रह सकता है ? नहीं, बिलकुल नहीं। ज्ञानीपुरुष कहते हैं - यह जीव भी एक यात्री है। एक गति से दूसरी गति में जाता है। वहाँ अपना घरबार आदि सब बसाता है, और यह सब मेरा है, ऐसा मानकर ममत्व करके बैठ जाता है। पर कब तक ? जब तक आयुष्य पूर्ण नहीं हुआ तब तक ही। आयुष्य पूर्ण होने पर पूर्वोक्त फकीर की तरह एक क्षण भी वहाँ नहीं रहने देगा (कर्मराजा)। फकीर को तो बादशाह के महल में बहुत अर्से तक रहना था, परन्तु वहाँ से डेरा उठाकर जाना पड़ा न ? जीव की भी यही दशा है। आयुष्य पूर्ण होने पर यहाँ रहना होगा, तो भी एक क्षण भी नहीं रहने दिया जायेगा। तथैव साथ में कुछ भी ले जाने भी नहीं दिया जाएगा। जीव के साथ फिर उसके शुभ-अशुभ कर्म ही आते हैं। शरीर के लिए, तथा धन और कुटुम्ब के लिए १८ पापस्थानों का सेवन किया, कषाय और राग-द्वेष-मोह किये, मिथ्यात्व का सेवन किया। इन सब पापकर्मो का फल किसे भोगना पड़ेगा ? कर्म तो कर्ता को ही भोगना पड़ता है। माल खाने के लिए तो सभी आएँगे, पर (कर्मो की) मार खाने के लिए कोई नहीं आएगा।

एक घर में दस मनुष्य हैं। उनमें से एक मनुष्य साग सुधार रहा है। असावधानी से चाकू अंगुली पर लग जाने से उसकी अंगुली कट गई। खून निकलने लगा। अत्यन्त पीड़ा होने लगी। वह पीड़ा किसे भोगनी पड़ेगी ? साग तो घर के सभी सदस्य खाते हैं, परन्तु पीड़ा तो अकेले उस साग सुधारनेवाले को ही भोगनी पड़ती है। परन्तु उस साग को खानेवाले घर के अन्य सदस्यों को वह वेदना भोगनी नहीं पड़ती। अतः याद रखो, कुटुम्ब-पोषण के लिए तुमने चोरी की, और पकड़े गए तो जेल में तुम्हें अकेले को ही जाना पड़ेगा। चुराई वस्तु का उपयोग करनेवाले परिवार के अन्य सदस्यों को जाना नहीं पड़ता। तुम आए दिन ऐसा प्रत्यक्ष देखते और अनुभव करते हो कि बुरा कर्म करनेवाला दुःख भोगता है, दूसरों को (चिन्ता आदि के सिवाय अन्य दुःख) नहीं भोगना पड़ता। उनके सिर पर कोई खतरा भी नहीं रहता। विचार करो, ऐसी जोखम उठाकर धन, साधन आदि प्राप्त किये, फिर उन्हें यहीं छोड़कर परलोक जाना और वहाँ भी (पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म के फलस्वरूप) मार खाना। यदि जीव शान्त चित्त से इस पर गहराई से विचार करे तो उसकी (परभावों और विभावों पर से) आसक्ति छूटेगी, अनासक्त भाव आएगा। इससे कर्मबन्धन कम होगा, ऐसा विचार सम्यग्दृष्टि जीव को आता है।

ब्राह्मण की मांग - मेरी पुत्री को मेरे यहाँ भेजो : अब ब्राह्मण ने राजा से कहा – "राजन् ! मेरी पुत्री विवाह करने के बाद मेरे घर नहीं आई । परन्तु यह उसके प्रथम गर्भावस्था (सीमंत) का प्रसंग है । इसका पहला प्रसव तो पीहर में होना चाहिए । इसकी माता भी इससे मिलने के लिए बहुत आतुर है । अतः इसे मेरे साथ भेजो ।" इस पर राजा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया - "यह बात नहीं बन सकती । मैं विद्युत्प्रभा का वियोग एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता ।" यह सुनकर ब्राह्मण उदास मुख होकर वापस लौट गया । इतने पर भी तीसरी बार ब्राह्मणी ने कहा - "चाहे जिस तरह से विद्युत्प्रभा को ले आओ । राजा नहीं माने तो तुम्हारा ब्राह्मणपन दिखाकर भी उसे ले आना ।" तीसरी बार अपरमाता ने फीणी की टोकरी भरकर विद्युत्प्रभा के लिए भेजी । इस बार भी नागदेव ने फीणियों का जहर चूसकर उनमें अमृत भर दिया । इससे वे स्वादिष्ट और सुगन्धित हो गईं ।

- बन्धुओं ! सौतेली माँ की दुष्टता की अब हद होई गई है । किसी भी तरह से वह विद्युत्प्रभा को मार डालना चाहती है । इसके लिए वह भिन्न-भिन्न षड्यंत्र रच रही है, परन्तु सफलता नहीं मिल रही है । ब्राह्मण तीसरी बार गया और फीणी से भरी टोकरी राजा को दिया । राजपरिवार के सब लोगों ने फीणियाँ खाईं, सभी खुश हो गए । तदनन्तर ब्राह्मण ने राजा से कहा - "विद्युत्प्रभा को मेरे यहाँ भेजो ।" राजा ने जब साफ इन्कार कर दिया तो ब्राह्मण ने कहा - "क्या हम गरीब हैं, कि हमारे यहाँ हमारी पुत्री नहीं आती ? उसका विवाह होने के बाद एक दिन भी आपने मेरी पुत्री को नहीं भेजी; यह तो ठीक, परन्तु ऐसे अवसर पर भी इसे नहीं भेजते हैं तो समाज में हमारा खराब दिखता है । दुनिया भी हमें चूंट खावेगी कि तुम अपनी पुत्री को कभी बुलाते नहीं । इसलिए एक बार तो आप इसे मेरे साथ भेज दो ।"

ब्राह्मण ने राजा के प्रति अपना देखावा किया : राजा ने विद्युत्प्रभा पर अगाध स्नेह के कारण ब्राह्मण को उसे भेजने के लिए जब इन्कार किया, तब ब्राह्मण ने अपनी पत्नी द्वारा पढ़ाये हुए पाठ के अनुसार अपना चारित्र दिखाने का प्रयास किया - उसने अपनी जेब में पड़ी हुई छुरी बाहर निकाली और अपने पेट में भोंकने को तैयार हुआ तथा कहने लगा - "महाराजा ! मेरी पुत्री को नहीं भेजोगे तो मैं आत्महत्या करके मर जाऊँगा ।" राजा उसके हाथ में छुरी देखकर घबराया । अगर विद्युत्प्रभा को नहीं भेजूंगा तो इसका पिता इस प्रकार मर जाए, तो विद्युत्प्रभा को दुःख होगा । अतः राजा ने कहा - "मेरी तो इसे भेजने की बिलकुल मर्जी नहीं है, किन्तु आप आत्महत्या करने को तैयार हुए हो, इसलिए भेज दूंगा ।" अब राजा विद्युत्प्रभा को उसके पिता के साथ भेजेगा, वह अपने पीहर जाएगी । वहाँ सौतेली माँ उसके साथ कैसा छलकपट करेगी, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

दिन किसी न किसी तकलीफ (झंझट) में पड़ जाता था । पहले मासखमण के पारणे के दिन राजा के मस्तक में वेदना उत्पन्न हो गई । दूसरे पारणे के दिन राजा को युद्ध में जाना पड़ा । तीसरे पारणे के दिन रानी ने पुत्र को जन्म दिया, उसके पुत्र जन्मोत्सव में राजा व्यस्त था । जैसे गुणसेन और अग्निशर्मा की घटना बनी, वैसा ही यहाँ हुआ । तापस के पारणे का समय बीत जाता और तापस अगला (दूसरा) मासखमण शुरू कर देता । राजा को जब यह याद आता, तब उसके मन में अत्यन्त खेद होता, वह तापस के पास जाकर विनम्रभाव से क्षमायाचना करता । यों लगातार तीन बार इस प्रकार बना । तीसरी बार भी पारणा नहीं हुआ, तब तापस को क्रोध आया । क्रोध ही क्रोध में उसने जीवनभर के लिए आहार का त्याग कर दिया और नियाणा (निदान) कर लिया कि राजा ने तीन-तीन बार अपने यहाँ पारणा करने का आमंत्रण दिया, मगर पारणा नहीं कराया । अतः मैं (अपनी तपस्या के फलस्वरूप) इस वैर का बदला लूंगा । वह तापस मरकर श्रेणिक राजा का पुत्र कोणिक हुआ । बड़ा होने पर उसने श्रेणिक राजा को पींजरे में डाला और उनकी नंगी पीठ पर कोड़े फटकारे । श्रेणिक (के जीव) ने (पूर्वभव में) तापस से बहुत क्षमा मांगी, किन्तु तापस माना नहीं । वैर का विपाक (कर्मफल) जीव को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता । तुम लोगों में एक कहावत है न - **'पुत्र का लक्षण पालने में, और बहू का लक्षण बारणे में (प्रवेशद्वार पर) ।'** नई बहू शादी करके श्वसुर गृह में प्रवेश करती है, तब उसके नयन, वचन और चरण पर से उसकी परख हो जाती है कि यह कैसी है ? चतुर मानव मनुष्य की आँख देखकर समझ जाता है कि यह मनुष्य ऐसा होगा । तथा उसके बोलने पर से सारी प्रतीति हो जाती है, और उसकी चालढाल पर से भी मनुष्य की परख हो जाती है । वैसे ही कई जीव गर्भ में आते हैं, तब उनकी माता को जो विचार आता है, उस पर से उस गर्भस्थ जीव की परख हो जाती है तथा कुछ बातें जन्म होने के बाद परखी जाती हैं ।

प्रस्तुत कथानक में धारिणी रानी के गर्भ में जो जीव आकर उत्पन्न हुआ, तब से उसे पवित्र विचार आने लगे । धारिणी रानी गर्भवती हुई, उससे दूसरी ९९९ रानियों को बहुत आनन्द हुआ । गर्भ का पालन करते हुए सवा नौ महीने सुखपूर्वक पूर्ण हुए । तत्पश्चात् रानी ने पुत्र को जन्म दिया । वह पुत्र अत्यन्त तेजस्वी था । कारण यह था कि माता ने स्वप्न में बलवान् सिंह देखा था । और उसके पिता का नाम बलराजा था । उस पर से पुत्र का नाम रखा गया - महाबल कुमार । किसी परिवार में माता के नाम पर से पुत्र का नाम रखा जाता है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के १९वें (मृगापुत्रीय) अध्ययन में मृगापुत्र का नाम उसकी माता (मृगादेवी) के नाम पर से रखा गया था । चूँकि उसकी माता का नाम मृगादेवी था । उस पर से मृगापुत्र नाम रखा गया । यहाँ पिता (बलराजा) के नाम पर से पुत्र का नाम महाबल कुमार रखा गया । उसके जन्म से वीतशोका नगरी में आनन्द-आनन्द छा गया । पुत्र का लालन पालन करने के लिए अलग-अलग देशों की दासियाँ रखी गई । बहुत ही लाड़प्यार से महाबल कुमार बड़ा हुआ । उसे देखकर राजा-रानी को अपार आनन्द हुआ । अब महाबल कुमार के बड़े होने पर आगे क्या घटना घटित होती है ? उसके भाव आगे यथावसर विचारेंगे ।

की आज्ञा के विना (सैनिक) मोड़ लेने जाए तो नायक शूट कर देता है। आगे कुँआ आए तो कुँए में पड़ जाना, किन्तु नायक के हुक्म का अनादर नहीं करना है। बोलो, सेना का सैनिक भी उसके नायक की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता, तो जहाँ कर्मशत्रुओं का सामना करना है, जिनकी कृपा से कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है, ऐसे भवसागर से तारनेवाले तीर्थंकर भगवन्तों की और गुरु की आज्ञा का पालन करने में कितना सजग रहना चाहिए ? कदाचित् गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करोगे तो तुम्हें वे मधुर उपालंभ देंगे, किन्तु शूट नहीं करेंगे। जबकि सेनानायक की आज्ञा मानने में भूल करे तो वह शूट कर देता है। गुरु और बड़ों का विनय करने से ज्ञान का उघाड़ होता है। ऐसा सम्यग्ज्ञान परलोक में भी साथ में आता है। किन्तु अग्नितपन से प्राप्त किया हुआ ज्ञान लम्बे समय तक नहीं टिकता। जहाँ विनय है, वहाँ दूध और शक्कर की तरह एक दूसरे में समा (घुलमिल) जाते हैं, शिष्य गुरु में, शिष्या गुरुणी में, पत्नी पति में, पुत्र पिता में और बहू सासु में समा (घुलमिल) जाती है। फिर कषाय का कहीं नाम-निशान नहीं रहता और इस पृथ्वी पर स्वर्ग का वास हो जाता है तथा स्व-पर (उभय) का कल्याण हो जाता है। गुलाब के आसपास कंटीली बाड़ होती है और गुलाब के पौधे के भी चारों ओर कांटे होते हैं, तथापि सभी गुलाब को चाहते हैं। कांटे चुभते हैं, हाथ आदि अंगों पर खरौंच आ जाती है, फिर भी सबलोग कांटों को सहकर गुलाब को लेने जाते हैं। किस लिए ? गुलाब में सुगन्ध है, गुलाब स्वयं सुगन्धित है और दूसरों को भी सुगन्धित कर देता है। उसी प्रकार जिसमें विनय, नम्रता, क्षमा, सन्तोष आदि गुण हैं, वह स्वयं तो गुण रूपी पुष्पों के पराग से सुगन्धित है और अपने पास आनेवाले को भी गुणवान् बनाता है। एक विनय गुण में अनेक गुण समाये हुए हैं। 'दशवैकालिक सूत्र' के नौवें अध्ययन में कहा गया है -

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेण कित्तिं सुअं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ ॥

– दशवैकालिक सूत्र अ-९ उ-२, गा-२

धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल विनय है। वह मोक्षरूपी उत्कृष्ट फल का रस है, क्योंकि विनय से यश, कीर्ति प्राप्त होती है। उससे व्यक्ति श्रुतविद्या में पारंगत हो जाता है। शीघ्र ही निःश्रेयस (मोक्ष) के सम्मुख पहुँच जाता है। जो मनुष्य कभी किसी की प्रशंसा नहीं करता, वह मानव भी विनयी आत्मा की प्रशंसा करता है। इसलिए *'गुरुवचन मनुल्लंघनीयम्'* - यानी विनीत शिष्य को गुरु के वचन (आज्ञा) का कदापि उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

शास्त्र औषधालय है, गुरु वैद्य है, वह जैसा रोग देखता है, तदनुसार (रोग निवारणार्थ) वैसी दवा - शास्त्र का निचोड़ निकालकर देता है। उस विषय में तर्कवितर्क नहीं करना चाहिए। रोगी को वैद्य पर शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि वैद्य रोगी को नीरोगी (स्वस्थ)

साढ़े बारह वर्ष - पन्द्रह दिन की उग्र (तप) साधना की तब केवलज्ञान हुआ । इस पर से तुम समझ गये होगे कि (सर्वविरति) चारित्र ग्रहण किये बिना तीन काल में संसार से छुटकारा नहीं हो सकता, यह निश्चित समझ लेना । संसार दुर्गन्ध से भरी गटर है, ऐसा लगना चाहिए । बहुत-सी दफा जब गटर खुलती है, तब कैसी दुर्गन्ध फैलती है ? कोई व्यक्ति यों कहे कि अगर तुम गटर में रहो तो मैं तुम्हें रोजाना २५ रुपये दूंगा, भला क्या कोई उस गटर में रहने को तैयार होगा ? जिस गटर के पास से होकर निकलते हुए भी घृणा पैदा होती है, जिसकी दुर्गन्ध से जीव घबरा जाता है; उसमें रहने हेतु चाहे जितना धन देने का कोई प्रलोभन दे, तो भी क्या कोई उसमें रहने के लिए तैयार होगा ? कदापि नहीं । तुम भोजन करने बैठे हो, उस समय कोई तुम्हारे सामने विष्ठा का टोकरा रख जाए, तो तुम्हें कैसी नफरत होगी ? कदाचित् तुम नाक में कपड़ा ठूंस दोगे, या आँख भी बंद कर दोगे, फिर भी वमन हो जाएगी । गटर से जैसी यह सूग चढ़ती है, उससे भी अधिक सूग, तुम्हें इस आस्त्रवरूपी संसार की दुर्गन्धयुक्त गटर में रहकर पाप का सेवन करने की चढ़नी चाहिए। चतुर्गति में परिभ्रमण का त्रास होना चाहिए । संसार में रमण करने (आसक्त-लिप्त रहने) वाला जीव संसार के मनमाने सुख मिलें तो निःशंक होकर खुले दिल से भोगता है, उसीमें नाचता-कूदता और आनन्द मानता है । उसके फलस्वरूप वह नरक और तिर्यचगति का आमंत्रण स्वीकार करके वहाँ का मेहमान बनता है । तथैव संसार में रहनेवाले जीव का संसार में पाप-कार्य करते हुए उसी तरह मुँह बिगड़ जाता है, जिस तरह क्विनाईन की गोली खाने से मुँह बिगड़ जाता है । भगवान् कहते हैं - "मेरा श्रावक पाप भीरु अर्थात् पाप से घृणा करनेवाला होना चाहिए ।" श्रावक के २१ गुणों में 'पाप भीरू' नामक श्रावक का एक गुण है । अतः श्रावक पाप-कार्य करते हुए सावधान रहे । किसी मनुष्य को किसी चीज के खाने से एलर्जी हो जाती है, तो वह उसका त्याग कर देता है न ? उसी प्रकार किसी भी (अनिष्ट अशुभ पाप) कर्म को करने से आत्मा को एलर्जी हो जाए, तो उसका त्याग करोगे न ? ऐसा करने पर फिर मोक्ष अपने से दूर नहीं है ।

"मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति, न ग्रामान्तर्मेव वा ।
अज्ञान-हृदय-ग्रन्थि-नाशो, मोक्ष इति स्मृतः ॥"

किसी स्थान-विशेष में निवास मोक्ष नहीं है, अथवा मोक्ष को ढूंढने के लिए किसी दूसरे ग्राम में जाने की आवश्यकता नहीं है । हृदयस्थ अज्ञान की ग्रन्थी को नष्ट करना ही सर्वकर्म क्षय रूप मोक्ष कहा गया है । संक्षेप में, मोक्ष कोई बाहर खोजने की चीज नहीं है, यह तो तुम प्रत्यक्ष देखते हो कि किसी बर्तन पर जंग लग जाए तो उसे बहुत घिसकर मांजा जाता है, तो वह चमकने लगता है । मैं पूछती हूँ - बर्तन में वह चमक कहीं बाहर से आती है ? नहीं, वह चमक बर्तन में ही थी, किन्तु उस पर काट लग गया था, बस, इसी तरह आत्मा पर चढ़ी हुई कर्म की कालिमा को तप और संयम द्वारा पूर्णतया दूर की जाय तो आत्मा शुद्ध ज्योतिर्मयी बन जाती है । और आत्मा की सर्वथा शुद्ध अवस्था ही मोक्ष है ।

हाँ, करता है। इसी प्रकार ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि - "अनादिकाल से आत्मगृह में पर-पुद्गलों का प्रवेश हो चुका है, वे आत्मा के ज्ञानदर्शन-चारित्ररूपी धन का विनाश करते हैं।" आत्मगृह में पराया घुस गया है, इतना ही नहीं, वह वहाँ अड्डा जमा कर बैठने में अभ्यास्त हो गया है। आत्मा के गुणों को (आत्म) घर से बाहर फेंककर स्वयं घर का मालिक हो कर बैठा है और मालिक को बाहर निकाल दिया है। आत्मा अज्ञानदशावश परायों को अपने मानकर उनका पोषण और प्रशंसा करती है, तथैव पर पुद्गलों का रागी-द्वेषी बनकर आत्मा समय-समय पर उन्हें घर में घुसाता है और घुसाये हुए वे कर्मपुद्गल आत्मा को बार-बार दुःख देते हैं। जबतक आत्मगृह में कर्म-पुद्गलों की उपस्थिति है, तबतक आत्मा को भय, दुःख, त्रास आदि सब रहेंगे। कर्मपुद्गल जब आत्मगृह में से निकल जाएँगे, तभी आत्मा सच्चे माने में सुखी होगा।

"देवानुप्रियों! इस उत्तम मनुष्यभव को पाकर ऐसा पुरुषार्थ करो कि आत्मगृह में जो पर-पुद्गल प्रविष्ट हो रहे हैं, वे रुकें और जिन पर-पुद्गलों का प्रवेश हो चुका है, उनका शीघ्र निष्कासन हो। यदि आत्मा को अपने स्वरूप का भान हो जाए, तो वह पर-पदार्थों के साथ परिचय कम करने लग सकता है। क्योंकि पर-संयोग के कारण सुख का नाश और दुःख का आगमन होता है। कहा भी है -

'संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्ख-परंपरा'

"पर-संयोग के कारण जीव (आत्मा) ने दुःखों की परम्परा प्राप्त (खड़ी) की है।" जहाँ 'पर' का संयोग हुआ, समझलो वहाँ दुःख आ गया। आत्मा पर के साथ हिलमिल जाता है, उसीके कारण जन्म-मरण के दुःख उत्पन्न होते हैं। असंयोगी आत्मा को कोई आपत्ति या भय नहीं है। आत्मा का शुद्ध स्वरूप समस्त जड़-पदार्थों से भिन्न है। आत्मा (शुद्ध आत्मा) का अस्तित्व स्वतंत्र है। उसे सुख के लिए दूसरों की अपेक्षा रखने की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं अनन्त - (अव्याबाध) सुखरूप है। स्वयं सुखरूप आत्मा को सुख के लिए किसी से भीख मांगने की जरूरत नहीं होती। अपने पास अनन्तसुख का खजाना होने पर भी अज्ञानी जीव पर (दूसरे सजीव-निर्जीव) पदार्थों से सुख के लिए प्रार्थना करता है। आत्मा को अपने में निहित अनन्तसुख का खजाना प्राप्त करने के लिए आत्मगृह में घुसे हुए कर्म-पुद्गलों को भगाने की जरूरत है।

बलराजा धर्मघोषमुनि की वाणी सुनकर वैराग्य रंग से रंग गए। अभी तक तो वे स्वयं पाप पंक में पड़े थे, किन्तु स्व-स्वरूप का भान होते ही निश्चय किया कि 'पर' के संग चढ़कर अनन्तकाल से संसार में भ्रमण किया। 'पर' के प्रपंच में फँसकर अनेक पापकर्म किए। बहुत दुःख सहे, अब इस पर-प्रपंच का पींजरा मुझे नहीं चाहिए। अब तो अपने स्व-गृह में स्थिर होना है। स्व में जो सुख है, वह पर में तीन काल में मिलनेवाला नहीं है। चारा चरने के लिए जंगल में गया हुआ पशु शाम होने पर मालिक के द्वारा उसको बांधने के खीले पर आकर खड़ा रहता है। तब उसका मालिक उसे प्रेम से पपो-

धम्मघोस-णामे थेरा पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव इंदकुंभेणामं उज्जाणे, तेणेव समोसढे, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरंति ।।''

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर ५०० अनगारों के साथ अनुक्रम से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सुखपूर्वक वीतशोका नगरी के बाहर इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान में मुनि-परम्परा के अनुसार अवग्रह प्राप्त करके वनपालक की अनुज्ञा लेकर उक्त उद्यान में ठहरे। वहाँ उनका समवसरण लगा, धर्म सभा जुड़ी। वीतशोका नगरी की जनता को मालूम हुआ कि नगरी के बाहर उद्यान में स्थविर भगवन्त अपने शिष्य समुदाय सहित पधारे हैं। यह सुनकर नगरजन अपने-अपने घर से निकलकर मुनिवरों के दर्शनवन्दन-पर्युपासन करने एवं उनके प्रवचन सुनने के लिए उद्यान में आने लगे। स्थविर भगवन्त ने बलराजा को तथा उस धर्मपरिषद को उपदेश दिया। तत्पश्चात् -

परिसा णिग्गया, बलो वि राया णिग्गओ ।

उपदेश श्रवण करके परिषद् भी अपने-अपने स्थान को चली, राजा भी अपने राजमहल की ओर चल पड़ा।

बन्धुओं ! एक कहावत है, 'साधु तो रमता भला' - साधु विचरण करता रहे, वह अच्छा-निर्मल रहता है। तात्पर्य यह है कि साधु-साध्वी जहाँ-जहाँ विचरण करते हैं, वहाँ धर्मप्रेमी जनता को धर्मोपदेश देते हैं। संसार-सागर से तरने का मार्ग बताते हैं। किन्तु वे सशक्त होते हुए भी अगर एक ही जगह स्थिर होकर रह जाते हैं, तो उनके चारित्र में शिथिलता आने की संभावना रहती है। इसलिए भगवान् ने कहा - ***'विहारचरिया इसिणं पसत्था'*** ऋषि-मुनियों के लिए विहार (विचरण) चर्या ही प्रशंसनीय है। इसलिए भगवान् द्वारा यह कानून कितना अच्छा है ? वे कहते हैं - "हे सन्त ! तू (विभिन्न क्षेत्रों में) जितना अधिक विचरण करेगा, उतना ही तेरा चारित्र अधिकाधिक निर्मल रहेगा और (स्व-पर कल्याणरूप) धर्म का लाभ भी मिलेगा।" एक जगह जमकर रहने से राग भाव बढ़ता है। इसलिए कार्तिक सुदी पूनम के दिन चातुर्मास पूर्ण होने के पश्चात् मागसर वदी (गुजराती कार्तिक वदी) एकम या दूज को, अपने-अपने सम्प्रदाय की परम्परानुसार (सशक्त) साधु-साध्वी विहार करते हैं। भगवान् का आदेश उत्सर्ग परम्परानुसार यहाँ तक है कि चातुर्मास समाप्ति के एक-दो दिन के बाद बिना कारण के उस क्षेत्र में रहना या वहाँ पानी तक पीना कल्पनीय नहीं है।

वीतशोका नगरी में पवित्र स्थविर संत पधारे हैं। बलराजा को उनके पदार्पण की सूचना मिलते ही, वे अपने राज परिवार सहित उनके दर्शन-वंदन-श्रवण करने के लिए तैयार हुए। नगरी में भी राजा ने घोषणा करवाई कि 'नगरी-नरेश संतों के दर्शन करने जा रहे हैं, जिन्हें आना हो वे शीघ्र तैयार होकर चलें।' जहाँ नगरी के राजा संतों के दर्शन-

अगर आपको कुछ आता नहीं होगा, तो अपार दुःख होगा। अगर आपको सामायिक-प्रतिक्रमण आते होंगे तो आप उपाश्रय में जाकर सामायिक-प्रतिक्रमण कर लोगे। मगर आज तो बहुत-से जैनों को सामायिक - प्रतिक्रमण नहीं आते। जैनकुल में जन्मे हुए लोगों को सामायिक - प्रतिक्रमण, छह काय के बोल, नव तत्त्व, पचीस बोल, इतना तो अवश्य ही आना चाहिए। ब्राह्मण के बेटे को जैसे जनेऊ (यज्ञोपवीत) के बिना नहीं चलता, वैसे ही जैनकुल में जन्मे हुए व्यक्तियों का इतना (सैद्धान्तिक) ज्ञान तो अवश्य होना चाहिए। इतना भी नहीं आए तो जीव-अजीव को कैसे जान पाओगे ? 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है -

"जो जीवे वि न याणाइ, अजीवे वि न याणाइ।
जीवा जीवे अयाणंतो, कहं सो नाहिउ संजमं ॥"

जो जीव को नहीं जानता, अजीव को भी नहीं जानता, यों जीव-अजीव को जो नहीं जानता, वह उनकी दया कैसे पालेगा, उनका संयम कैसे रखेगा ? परन्तु आज तो सामायिक-प्रतिक्रमण सीखने का किसी को कहा जाता है तो वह यह कहेगा - "क्या करें, हमें ज्ञान चढ़ता ही नहीं है।" अनन्तशक्ति और अनन्तज्ञान का अधिपति होते हुए भी जीव की कितनी कायरता है ? कितना प्रमाद है ? पर-पुद्गलों के संग में चढ़कर आत्मा अपनी (वास्तविक) शक्ति का भान भूल गया है। उस सिंह के बच्चे जैसी आत्मा की दशा हो गई है। जैसे वह सिंह का बच्चा बचपन से ही भेड़ों के टोले के साथ मिलकर अपनी शक्ति का भान भूल गया था (कहा भी है -

सोनेरी पिंजरमां पुरायो, सिंह बनी केशरियो
गाडरना टोळामां भळियो, विवेक कां वीसरियो.... (२);
दोड़ी दोड़ीने दोडयो, तो ये आव्यो न भवनो आरो रे ॥ एक जाग्यो न...

सिंह का बच्चा (अबतक) मानता था कि मैं इसके जैसा ही भेड़ का बच्चा हूँ। किन्तु एक बार नदी के किनारे भेड़ों की टोली इकट्ठा होकर पानी पीने गया। एक सिंहनी ने इस (शेर के) बच्चे को भेड़ों के टोले में देखा तो उसने गर्जना की। सिंहनी की गर्जना सुनकर भेड़ों का टोला भाग गया। किन्तु उस सिंह शिशु को ऐसा लगा कि हमसे कोई जबरदस्त यह प्राणी है, जिसकी गर्जना से सब उठकर भाग गए। उसने सिंहनी के सामने देखा। पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखा। उसे लगा कि मेरे में और इसमें कोई अन्तर नहीं है, तो क्या मुझमें इसके जैसी शक्ति नहीं है ? मैं भी ऐसा गर्जना करूँ। सिंह शिशु ने भी वैसी गर्जना की, तो उसे अपनी शक्ति का भान हुआ।

बन्धुओं ! सिंहनी ने सिंह शिशु को उसकी शक्ति का भान कराया; उसी प्रकार भगवान् के सन्त भी वीरवाणी द्वारा सिंहनाद करके तुम्हें जागृत कर रहे हैं कि हे आत्माओं ! अपने में अनन्तशक्ति रही हुई है। परन्तु कर्म के वशीभूत होकर अनन्तशक्ति का स्वामी होते हुए भी अपना आत्मा शरीररूपी स्वर्ण-पिंजर में बंद है और विषय-भोग

लगा है। बोलो ! किसी के हृदय में ऐसा विरक्ति का भाव है क्या ? खैर, इतनी तैयारी न हो तो कम से कम आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा तो लो ! ब्रह्मचर्य के पालन में तुम्हें पत्नी-पुत्र आदि परिवार छोड़ना नहीं पड़ेगा, न ही आहार का और न घर का त्याग करना पड़ेगा। फिर भी इससे महान् लाभ मिलेगा। अतः विषयों को विषवत् समझकर त्यागो यों कर्मबन्धन तोड़कर मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त करने में अपनी शक्ति का सदुपयोग करो। बलराजा ने धर्मघोष मुनिवर के समक्ष कहा - "भगवत् ! मुझे आपके पास सर्वविरति संयम ग्रहण करना है। मैं घर जाकर महाबल कुमार को राजगद्दी पर बिठाकर, उसे राज्यभार सौंपकर आपश्री के पास मुनिदीक्षा अंगीकार करूंगा।" इस पर स्थविर भगवंत ने कहा - *"जहा सुहं देवाणुप्पिया !, मा पडिबंधं करेह !'* - "हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस महान् सत्कार्य में विलम्ब, ढील या टालमटोल मत करो।" इस प्रकार स्थविर भगवत ने उनसे कहा। अब बलराजा अपने महल में पहुँचकर किस प्रकार दीक्षा की तैयारी करता है ? उसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

पाटलीपुत्र में प्रवेश और पटरानी का पद : जितशत्रु राजा की दूसरी रानियों को भी विद्युत्प्रभा को देखकर आनन्द हुआ। विद्युत्प्रभा भी अपनी बड़ी बहनों (रानियों) के चरणों में पड़ी। उसके विनयादि गुणों को देखकर बड़ी पटरानी जितशत्रु राजा से कहती है - "स्वामीनाथ ! विद्युत्प्रभा बहुत ही गुणवती है, पवित्र है। इसमें महारानी के पद को सुशोभित करने की योग्यता है। अतः इसे पटरानी का पद प्रदान करें।" यह सुन विद्युत्प्रभा बोली - "अरी बहनजी, यह आप क्या कह रही हैं। मैं तो छोटी हूँ। मुझे ऐसा पद देने के लिए कदापि मत कहना।" किन्तु सभी रानियों ने अत्यन्त आग्रह करके विद्युत्प्रभा को पटरानी पद दिला दिया।

विद्युत्प्रभा के विवाह के कुछ ही वर्षों बाद, सौतेली माँ के एक पुत्री हुई। वह धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। सौतेली माता की पुत्री ज्यों ज्यों बड़ी होती गई, त्यों-त्यों वह (विमाता) विद्युत्प्रभा के सुख को देखकर ईर्ष्या की आग में जलने लगी। यह (विद्युत्प्रभा) बड़ी महारानी बन बैठी है, अतः किसी भी तरह से उसे मार डालकर राजा के साथ मेरी पुत्री का विवाह कर दूं। इस ओर विवाह के १५ वर्ष बाद विद्युत्प्रभा गर्भवती हुई। राजा के मन में अपार आनन्द और उत्साह था। विद्युत्प्रभा का (राजपरिवार) में बहुत मान-सम्मान बढ़ने लगा। सारे गाँव में उसके सद्गुणों की सुवास फैल गई हैं, अतः उसकी खूब प्रशंसा होती है।

विद्युत्प्रभा का सुख देखकर विमाता के दिल में लगी ईर्ष्या की आग : दूसरी ओर सौतेली माता पुण्यशालिनी पुत्री को मार डालने का उपाय खोजने लगी। बहुत विचार करने के बाद उसने अपने पति से कहा - "अपनी पुत्री विद्युत्प्रभा का विवाह हुए

धर्मिष्ठ होने का दावा करनेवाले लोगों की सफेद तम्बू में लगी भीड़ : महाराजा श्रेणिक का फरमान हुआ, इसलिए सबको राजगृही नगरी के बाहर आना पड़ा। राजगृही की सारी जनता वहाँ उमड़ पड़ी। सफेद तम्बू तो ठसाठस भर गया, वहाँ चींटियों की तरह मनुष्य उमड़ पड़े। मगर काले तम्बू में तो सिर्फ चार ही मनुष्य बैठे थे। महाराजा श्रेणिक और अभयकुमार परीक्षा करने के लिए वहाँ आए। महाराजा ने पूछा - "अभय! पहले कौन-से तम्बू में चलें ?" अभयकुमार ने कहा - "पिताजी ! पहले हम काले तम्बू में चलें; क्योंकि सफेद तम्बू में तो भारी भीड़ है और काले तम्बू में सिर्फ चार ही व्यक्ति हैं।" श्रेणिक राजा बोले - "अपनी सारी नगरी बहुत ही पुण्यशालिनी है, इसीलिए तो अधर्मी मनुष्य नगरी में सिर्फ चार ही हैं।" मैं आपसे पूछती हूँ - क्या इसी कारण सफेद तम्बू में खड़े रहने की भी जगह नहीं है ? बन्धुओं ! तुम काले तम्बू में बैठो, ऐसा तुम्हारा जीवन है, या सफेद तम्बू में बैठने योग्य है ? इस बात का विचार तुम अपने अन्तर से कर लेना। जिसका जीवन सफेद हो, वह सफेद तम्बू में बैठ सकता है।

राजा द्वारा की गई परीक्षा और काले तम्बू में बैठे हुए मानवों के हृदय की पवित्रता : श्रेणिकराजा और अभयकुमार दोनों काले तम्बू में आए और उसमें बैठे हुए एक व्यक्ति से पूछा - "भाई ! तुमने ऐसे कौन-से पाप किये कि तुम इस काले तम्बू में आए ?" वह व्यक्ति खड़ा होकर पहले तो खूब रोया, फिर गद्गदकण्ठ से बोला - "साहब ! मेरे से एक महान् पाप हो गया है। मैं महापापी हूँ, अधर्मी हूँ।" उसका पश्चात्ताप देखकर राजा का हृदय पसीज गया। सोचा - 'इस मनुष्य से पाप हो गया है, परन्तु दिल में पाप का इकरार कितना है ?' 'मानवमात्र भूल का पात्र है।' मगर पाप करके पश्चात्ताप करता है, वह (सच्चा) मानव है, और पाप करके हर्षित होता है, वह दानव है। अभयकुमार ने पूछा - "भाई ! तूने क्या पाप किया है, यह तो कहो ?" वह बोला - "साहब ! एक दिन रात्रि को बाहर से मैं घर आया। मैंने उतावले से दरवाजा खोला। वहाँ एक चिड़िया दरवाजे पर बैठी थी, वह दरवाजे में आकर कुचल गई और तड़फड़ा कर मर गई। सुबह उठकर देखा तो उसके मांस के लोंदे निकल गए थे। खून की बूंदे गिरी हुई थीं। यह देखकर मेरा कलेजा कांप उठा।" पेड़ की एक डाली से दूसरी डाली पर बैठकर आनन्द कल्लोल करनेवाली उस चिड़िया के प्राण मुझ पापी ने नष्ट कर दिये। मुझे जीना अच्छा लगता है तो क्या उसे जीना अच्छा नहीं लगता ? उसे कितनी वेदना हुई होगी ? बिच्छू के काटने की वेदना की अपेक्षा मेरे से हुए पाप की वेदना है ! बिच्छू की अपेक्षा सर्प अधिक जहरीला है। फिर भी बिच्छू के डंक की वेदना क्यों कही ? सर्प मनुष्य को डसता है, उसका जहर चढ़ता है, तो मनुष्य बेहोश हो जाता है। इस कारण बेहोशी की दशा में वेदना मालूम नहीं होती, जबकि बिच्छू के काटने से मनुष्य बेहोश नहीं होता। किन्तु बिच्छु के काटने से वेदना इतनी भयंकर होती है कि नींद उड़ जाती है, और अत्यन्त पीड़ा होती है। वह व्यक्ति बोला कि "वह चिड़िया मेरे (निमित्त) से मर गई है, उसका पाप मुझे बिच्छू के डंक की वेदना जैसा पीड़ा दे रहा है। अब आप ही

- "आप तुरंत निकल गये या दूसरे दिन निकले ?" ब्राह्मण ने कहा - "मैं वहाँ दो दिन रुका था ।" यह सुनकर ब्राह्मणी के दिल में यकायक घबराहट हुई और वह मन ही मन अधिक जलने लगी - 'हाय ! मैंने तो बर्फी में जहर डाल दिया था । सबने उसे खाई, लेकिन किसी को कुछ भी नहीं हुआ । अतः इस बार लड्डूओं में तीव्र जहर डालकर भेजूं ताकि उसकी जिंदगी का फैसला हो जाए ।'

यों सौतेली माँ ने ऊपर से तो खुशी जाहिर की, लेकिन अंदर तो कपट भरा था । कपटी मानव अपना कपट जाहिर होने नहीं देते । वे अपनी मलिन वृत्ति को छोड़ते नहीं । इस कपट, दम्भ और मलिन भावना के अशुभ फल जब भविष्य में भोगने पड़ेंगे, तब उसकी नानी याद आ जाएगी, वह हायतोबा मचाएगा, किन्तु कोई उसे बचाने नहीं आएगा । किये हुए अशुभ कर्मों का फल स्वयं को ही भोगना पड़ेगा । अगर दुःख अच्छा नहीं लगता हो तो ऐसे दुष्कृत्य नहीं करने चाहिए ।

माता ने लड्डूओं में जहर डाला : विद्युत्प्रभा की सौतेली माँ ने इस बार लड्डू बनाये । विद्युत्प्रभा गर्भवती है, इसलिए उसके खाने के लिए काटला के लड्डू बनाये । उनमें से भी एक बहुत बड़ा लड्डू बनाया । उसमें जहर मिलाया और ब्राह्मण से कहा - "ये लड्डू लेकर जाओ और यह बड़ा लड्डू तो विद्युत्प्रभा को ही खिलाना । ये लड्डू दूसरे किसी के लिए नहीं, मेरी विद्युत्प्रभा के लिए ही बनाये हैं । अतः दूसरे कोई इन लड्डूओं को न खायें, ऐसा सबको कह देना और वह गर्भवती है, अतः राजा से विनती करना कि पहला प्रसव तो पीहर में ही होना चाहिए । ऐसा कहकर आप उसे साथ में लेकर आना ।" ब्राह्मण लड्डूओं का डिब्बा लेकर चल पड़ा । बीच में आराम करने के लिए उसी (पूर्वोक्त) वृक्ष के नीचे सो गया । दैव योग से पहले की तरह वह नागकुमारदेव भी वहाँ आ गया और अवधिज्ञान से सारी बात जान गया । अतः उसने उन लड्डूओं में से जहर खींचकर उनमें डबल अमृत डाल दिया । फलतः वे लड्डू सुगन्धित और स्वादिष्ट बन गए । ब्राह्मण ने राजमहल में जाकर लड्डूओं का डिब्बा देते हुए कहा - "महाराजा ! ये लड्डू तो केवल विद्युत्प्रभा के खाने के लिए ही उसकी माता ने भेजे हैं ।" राजा ने कहा - "ऐसे नहीं, मुझे तो आप लाते हैं, वे लड्डू बहुत अच्छे लगते हैं । अतः मैं इनमें से कुछ लड्डू तो खाऊँगा ही ।" ब्राह्मण बोला - "किन्तु यह बड़ा लड्डू तो मेरी पुत्री खाएगी ।" यों कहकर उसने बड़ा लड्डू विद्युत्प्रभा को खिलाया और दूसरे लड्डू तो सबने खाये । लड्डू खाते ही विद्युत्प्रभा का रूप अधिक चमकने लगा । सब कहने लगे - "विद्युत्प्रभा की माँ बहुत चतुर है । ऐसे स्वादिष्ट और सुगन्धित लड्डू बनाती है ।" माता ने कैसे स्वादिष्ट लड्डू बनाये हैं, यह तो ज्ञानी जानते हैं । बेचारा ब्राह्मण तो इस बात से बिलकुल अनजान है । लड्डूओं में यह तो दैवी अमृत का स्वाद है । जहरीला मानव दूसरे को मारने के लिए चाहे जो कुछ करे, परन्तु जिसके पुण्य प्रबल होते हैं वहाँ किसी की ताकत है कि उसका बाल भी बाँका कर सके ? नीतिकार कहते हैं - *'रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि'* पूर्वकृत (शुभ) कर्म उस व्यक्ति की रक्षा करते हैं ।

धर्मिष्ठ होने का दावा करनेवाले लोगों की सफेद तम्बू में लगी भीड़ : महाराजा श्रेणिक का फरमान हुआ, इसलिए सबको राजगृही नगरी के बाहर आना पड़ा। राजगृही की सारी जनता वहाँ उमड़ पड़ी। सफेद तम्बू तो ठसाठस भर गया, वहाँ चींटियों की तरह मनुष्य उमड़ पड़े। मगर काले तम्बू में तो सिर्फ चार ही मनुष्य बैठे थे। महाराजा श्रेणिक और अभयकुमार परीक्षा करने के लिए वहाँ आए। महाराजा ने पूछा – "अभय! पहले कौन-से तम्बू में चलें?" अभयकुमार ने कहा – "पिताजी! पहले हम काले तम्बू में चलें; क्योंकि सफेद तम्बू में तो भारी भीड़ है और काले तम्बू में सिर्फ चार ही व्यक्ति हैं।" श्रेणिक राजा बोले – "अपनी सारी नगरी बहुत ही पुण्यशालिनी है, इसीलिए तो अधर्मी मनुष्य नगरी में सिर्फ चार ही हैं।" मैं आपसे पूछती हूँ – क्या इसी कारण सफेद तम्बू में खड़े रहने की भी जगह नहीं है? बन्धुओं! तुम काले तम्बू में बैठो, ऐसा तुम्हारा जीवन है, या सफेद तम्बू में बैठने योग्य है? इस बात का विचार तुम अपने अन्तर से कर लेना। जिसका जीवन सफेद हो, वह सफेद तम्बू में बैठ सकता है।

राजा द्वारा की गई परीक्षा और काले तम्बू में बैठे हुए मानवों के हृदय की पवित्रता : श्रेणिकराजा और अभयकुमार दोनों काले तम्बू में आए और उसमें बैठे हुए एक व्यक्ति से पूछा – "भाई! तुमने ऐसे कौन-से पाप किये कि तुम इस काले तम्बू में आए?" वह व्यक्ति खड़ा होकर पहले तो खूब रोया, फिर गद्गदकण्ठ से बोला – "साहब! मेरे से एक महान् पाप हो गया है। मैं महापापी हूँ, अधर्मी हूँ।" उसका पश्चात्ताप देखकर राजा का हृदय पसीज गया। सोचा – 'इस मनुष्य से पाप हो गया है, परन्तु दिल में पाप का इकरार कितना है?' 'मानवमात्र भूल का पात्र है।' मगर पाप करके पश्चात्ताप करता है, वह (सच्चा) मानव है, और पाप करके हर्षित होता है, वह दानव है। अभयकुमार ने पूछा – "भाई! तूने क्या पाप किया है, यह तो कहो?" वह बोला – "साहब! एक दिन रात्रि को बाहर से मैं घर आया। मैंने उतावले से दरवाजा खोला। वहाँ एक चिड़िया दरवाजे पर बैठी थी, वह दरवाजे में आकर कुचल गई और तड़फड़ा कर मर गई। सुबह उठकर देखा तो उसके मांस के लोंदे निकल गए थे। खून की बूंदे गिरी हुई थीं। यह देखकर मेरा कलेजा कांप उठा।" पेड़ की एक डाली से दूसरी डाली पर बैठकर आनन्द कल्लोल करनेवाली उस चिड़िया के प्राण मुझ पापी ने नष्ट कर दिये। मुझे जीना अच्छा लगता है तो क्या उसे जीना अच्छा नहीं लगता? उसे कितनी वेदना हुई होगी? बिच्छू के काटने की वेदना की अपेक्षा मेरे से हुए पाप की वेदना है! बिच्छू की अपेक्षा सर्प अधिक जहरीला है। फिर भी बिच्छू के डंक की वेदना क्यों कही? सर्प मनुष्य को डसता है, उसका जहर चढ़ता है, तो मनुष्य बेहोश हो जाता है। इस कारण बेहोशी की दशा में वेदना मालूम नहीं होती, जबकि बिच्छू के काटने से मनुष्य बेहोश नहीं होता। किन्तु बिच्छु के काटने से वेदना इतनी भयंकर होती है कि नींद उड़ जाती है, और अत्यन्त पीड़ा होती है। वह व्यक्ति बोला कि "वह चिड़िया मेरे (निमित्त) से मर गई है, उसका पाप मुझे बिच्छू के डंक की वेदना जैसा पीड़ा दे रहा है। अब आप ही

व्याख्यान - १४

आषाढ़ सुदी ७, रविवार | ता. १८-७-७६

धर्मी और पापी की पहचान : विनय और पश्चात्ताप से

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर सर्वज्ञ भवन्तों ने अपने श्रेय के लिए सिद्धान्त की वाणी का प्ररूपण किया । सिद्धान्त की वाणी को समझकर हृदय में उतारने के लिए सर्वप्रथम जीवन में विनय होना चाहिए । विनयवान् जीव शीघ्र श्रेय को सिद्ध कर सकता है । जम्बूस्वामी अत्यन्त विनयवान् थे । वे सुधर्मास्वामी से विनयपूर्वक पूछते हैं - "प्रभो ! भगवान् ने 'ज्ञाता सूत्र' के आठवें अध्ययन में क्या भाव फरमाये हैं ? यद्यपि जम्बूस्वामी को सिद्धान्तों का बहुत ज्ञान था । परन्तु उनके जैसे विनयी शिष्यों से गुरु का हृदय वात्सल्यविभोर हो उठता है । विनयवान् शिष्य *'इंगियागार संपन्ने'* गुरु के मुख के भाव देखकर तथा इशारे से समझ जाता है । शिल्प को बहुत ज्ञान हो, उसमें बहुत होशियारी हो, फिर भी उसे ऐसा विचार कदापि नहीं करना चाहिए कि मुझे अपनी बुद्धि से, अपने क्षयोपशम से सब कुछ आता है, अपितु यह समझना चाहिए कि यह सब प्रताप गुरुदेव का है । सारी मुंबई नगरी रोशनी से जगमगाती है, यह पावरहाउस को आभारी है, इसी प्रकार शिष्य भी ऐसा ही विचार करता है कि मुझमें जो कुछ (विशेषता) है, वह सब मेरे गुरु की देन है, उनकी कृपा से है । ऐसे विनयवान् शिष्य को गुरु जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसे तहत्ति (तथाऽस्तु) करके स्वीकार करता है, वह गुरु की आज्ञा का जरा भी अनादर नहीं करता । वह तो यही समझता है - *'आज्ञा गुरुणाम विचारणीया'* गुरु की आज्ञा पर कदापि अन्यथा विचार नहीं करना चाहिए । अर्थात् - आनाकानी किए बगैर उसका पालन करना चाहिए । कहा भी है - *'सताम्लंध्या गुर्वाज्ञा'* सज्जनों के लिए गुरु की आज्ञा अनुल्लंघनीय है । भगवान् कहते हैं - "गुरु की आज्ञा को कदापि उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।" जैसे - सेना का नायक जब तालीम देता है, तब सैनिकों को कहता है - "मैं जबतक सूचना नहीं करूँ, तबतक तुम्हें सीधे सीधा चले जाना है, मुड़ना नहीं है तथा एक साथ पैर उठाना है । पैर जरा भी बजना नहीं चाहिए । अतः सैनिक सेनानायक की आज्ञानुसार सीधा चलता जाता है । रास्ते में कुँआ आए तो भी का आदेश है कि मोड़ लेना नहीं, सीधे चले जाना । अब क्या करना ? बजाकर खड़ा रहने का न कहे, वहाँ तक खड़े रहना नहीं है, मुड़ना नहीं है ।

देर बाद उस बेचारे ने जेब में हाथ डाला तो जेब कटी हुई मालूम हुई । अतः करुण विलाप करने लगा । 'अरेरे ! घर में पत्नी, बच्चे चार-चार दिन से वेतन का इंतजार कर रहे हैं । खाने के लिए खिचड़ी नहीं है । सोचा था - (वेतन की) यह रकम लेकर जाऊँगा, तभी खाने में हम सम्मिलित होंगे । पत्नी प्रतीक्षा में बैठी होगी । उसे क्या जवाब दूँगा ? भूखे बालकों को क्या खिलाऊँगा ?' यों वह बहुत रो रहा था । उसका रुदन देखकर लोगों को खूब दया आई । किसने इसकी जेब काट ली ? मैं भी उन सहानुभूति बतानेवालों में शामिल हो गया और कहने लगा - "कौन चोर आया और इसकी जेब काट कर रुपये उड़ा ले गया ?" यों विलाप करता हुआ वह गरीब मनुष्य रो रहा था, फिर भी मुझे उस पर दया नहीं आई; यह मेरा पाप मुझे चुभ रहा है । मैंने उस गरीब के पेट पर लात मारी और उसके वेतन के दो सौ रुपये (जेब काटकर) ले लिये । उसे कितना दुःख हुआ होगा ? कहावत है - 'दगा किसी का सगा नहीं ।' मैंने जो दगा किया है, उस पाप का फल कहाँ जाकर भोगूंगा ?"

बन्धुओं ! आज तो जहाँ-तहाँ खूब धोखेबाजी चल रही है । आज सौ रुपये का नोट और दस रुपये का नोट, दोनों एक सरीखे दिखाई देते हैं । बहुत-सी बार उतावल में ग्राहक दस का नोट समझकर दुकानदार को सौ का नोट पकड़ा देता है । बाद में उसे पता लगता है तो बेचारा दौड़ता-दौड़ता आकर कहता है - "सेठजी ! मैंने आपको दस रुपये के नोट की अपेक्षा सौ रुपये का नोट (भूल से) दे दिये । मुझे वापस दे दो ।" वहाँ सेठजी झिड़ककर कहते हैं - "कौन-सा सौ का नोट और कैसी बात ! भाग जा यहाँ से !" तुमलोग तो ऐसा नहीं करते न ? भूल होती हो तो सुधारना ! पाप छिपा नहीं रह सकता ! मिट्टी के घड़े में नमक भरो तो वह फूटकर निकल जाता है, वैसे ही पाप फूटकर निकलता है । उस मनुष्य ने गरीब की जेब अज्ञानदशा में काट ली थी । उसका उसे बहुत पश्चात्ताप होने लगा ।

राजा ने तीसरे मनुष्य से पूछा - "भाई ! तूने क्या पाप किया ?" उसने कहा - "मैं तो इन दोनों की अपेक्षा घोर पापी हूँ । एक बार एक अत्यन्त रूपवती स्त्री सुन्दर वस्त्राभूषण पहनकर चटक-मटक करती जा रही थी । उसे देखकर मेरे मन में काम वासना पैदा हुई । मैंने अपने मन में सोचा कि 'मुझे अगर यह स्त्री एक दिन के लिए मिल जाए तो मेरा जीवन सफल हो जाए । उसके साथ सहवास करके आनन्द लूट लूं ।' वह स्त्री तो (अपने रास्ते से) चली गई ।" अभयकुमार ने पूछा - "फिर तूने क्या किया ?" "साहब ! फिर मैंने उसका पीछा नहीं किया और नहीं उसके साथ अब्रह्मचर्य - सेवन किया । केवल मेरे मन में काम-विकार आया । एक दिन तो मैं इसी के विचारों में लीन रहा, किन्तु दूसरे दिन मैंने ही अपने आत्मा से कहा - 'अरे निर्लज्ज ! तुझे परस्त्री के साथ रमण करने का मन क्यों हुआ ? तू भारतीय संस्कृति को क्यों भूल गया ? माता के (दिये हुए) संस्कारों को क्यों विस्मृत कर दिया ?' माता-पिता ने बचपन में संस्कार

बनाना चाहता है। अध्यापक विद्यार्थी को विद्वान् बनाना चाहता है। गार्ड रेलगाड़ी को क्षेम कुशल-पूर्वक स्टेशन पहुँचाना चाहता है। नाविक नौका को नदी या समुद्र के किनारे ले जाना चाहता है, इसी प्रकार गुरु की भावना शिष्य का शीघ्र कल्याण कराने की होती है। गुरु को अन्य कोई स्वार्थ नहीं होता।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

स्व-पर-कल्याण के कामी सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी को शास्त्र-सुधारस का पान कराते हैं और विनयवान् जम्बूस्वामी खूब प्रेम से (शास्त्र रस की) घूँट का पान कर रहे हैं। कल हमने यह बात कही थी कि बलराजा अत्यन्त उत्साहपूर्वक इन्द्रकुम्भ उद्यान में धर्मघोष अनगार की वाणी सुनने के लिए गए। धर्मघोष अनगार को वन्दन करके वे उनकी वाणी का पान करने हेतु बैठ गए। वीतरागवाणी सुनते समय यदि हृदय में माया, कपट, ईर्ष्या आदि दुर्गुण भरे होंगे तो वह वाणी अन्तर में नहीं उतरेगी। जैसे नरम जमीन पर वर्षा बरसती है तो वह (पानी) जमीन के अंदर उतर जाता है, किन्तु पाषाण पर बरसे तो पानी वहाँ टिकता नहीं, शीघ्र (चला) बह जाता है, इसी प्रकार जिसका हृदय सरल और पवित्र होता है, उसके हृदय में जिनवाणी का शीघ्र असर हो जाता है।

बन्धुओं ! यदि आप संसार के कार्य में उत्साहपूर्वक लग जाते हैं, तो कर्म का बन्धन होता है, किन्तु यदि आप उत्साहपूर्वक सन्तदर्शन करने घर से निकले, मन में ऐसे भाव आएँ कि अहो आज मैं संत के दर्शन करूंगा, उनके मुख से धर्म के दो शब्द सुनूंगा और पावन बनूंगा। आज मेरा जीवन धन्य हो जाएगा, किन्तु आप अभी तक उपाश्रय नहीं पहुँचे हैं, वाणी भी नहीं सुनी है, फिर भी कदम-कदम पर आपके कर्मों की निर्जरा होने लगती है। 'भगवती सूत्र' के प्रथम शतक, प्रथम उद्देशक और प्रथम सूत्र में भगवान् का कथन है - *'चलमाणे चलिए'* - चलने लगे, तब से चला कहलाता है। किस प्रकार ? जैसे - सत्ता में आठों ही आठ कर्म पड़े हैं, वे कर्म अभी तक उदय में नहीं आए हैं, परन्तु वे विपाकोदय में आने के लिए सत्ता में से चलित हुए हैं, तब कहा जाएगा कि वे कर्म विपाकोदय में आए हैं। इसी प्रकार धर्म का कार्य हो, या पाप का कार्य, करने लगे तो वह किया कहलाएगा। अन्तर इतना ही है कि धर्म के कार्य में कदम-कदम पर कर्म की निर्जरा होती है, जबकि पाप के कार्य में कदम-कदम पर कर्म का बन्ध होता है।

बलराजा अपने विशाल परिवार सहित धर्मघोष अनगार के दर्शन करने गए। दर्शन करके अत्यन्त उल्लासपूर्वक उनकी वाणी सुनी। धर्मघोष अनगार धर्म का उपदेश देते हुए समझाते हैं - "यह जीव अनन्तकाल से संसार में किस कारण भटकता है ? अनादिकाल से आत्म-घर में पर-पुद्गलों का प्रवेश हुआ है। कहा है - *'परः प्रविष्टः कुरुते विनाशः'* पराया प्रविष्ट होने पर वह विनाश करता है।" बन्धुओं ! मैं आपसे पूछती हूँ कि आपके घर में कोई दुर्जन मनुष्य घुस जाए तो वह नुकसान करता है या नहीं ?

खोजा कि अगर वह मिल जाय तो उसकी रकम वापस सौंपकर उससे माफी मांग लूं। परन्तु वह मनुष्य मुझे मिला नहीं।" तीसरा व्यक्ति कहता है - 'मैंने जिस बाई पर कुदृष्टि की थी, उस बाई की मैंने बहुत तलाश की कि अगर मुझे वह मिल जाए तो मैं उसे माता कहकर उसके चरणों में गिरकर उससे माफी मांग लूं।" और चोथे मनुष्य ने कहा - "जिसकी अमानत मैंने हड़प ली थी, उसे मैंने बहुत ढूंढा, परन्तु मिली ही नहीं। बेचारी विलाप कर-करके मर गई होगी। उस सच्ची बाई को झूठी सिद्ध करके मैंने उसकी फजीहत की। उसका करुण रुदन आज भी मुझे अपनी आँखों के समक्ष नजर आता है। उस पाप का डंक मेरे हृदय में से नहीं जाता। साहब ! ऐसे काले कुकृत्य करनेवाले हम सफेद तम्बू में कैसे बैठें ?" इन चार व्यक्तियों के मुख से पाप की कहानी सुनकर पाप के प्रति उनका पश्चात्ताप देखकर राजा का हृदय पिघल गया।

घोर पापी होते हुए भी धर्म का दम्भ करनेवाले मानवों की परीक्षा लेते हैं श्रेणिक राजा : अब राजा और अभयकुमार धर्मी की परीक्षा करने हेतु सफेद तम्बू में आए। सफेद तम्बू में तो पड़े उसके टुकड़े हैं। अभयकुमार ने कहा - "पिताजी ! देखिए, यहाँ कैसे-कैसे कितने सब धार्मिक जीव इकट्ठे हुए हैं ?" सब मनुष्यों को हटाकर दोनों (पिता-पुत्र) अंदर गए। पहले ही झटके में एक वेश्या आई। उसे महाराज ने पूछा - "बहन ! तुमने क्या धर्माराधना की है ? क्या दान-पुण्य किया है ? जिससे इस सफेद तम्बू में तुम्हें स्थान मिला ?" वेश्या ने कहा - "साहब ! मेरे जैसा दान और धर्म कौन करता है ? मैं नित-नये श्रृंगार करती हूँ, अच्छे-अच्छे मनोरम्य वस्त्र पहनती हूँ। नित्य नये-नये पुरुषों को शराब की प्यालियाँ पिलाकर उनका मनोरंजन करती हूँ। उसकी काम-वासना सन्तुष्ट करती हूँ। मेरे यहाँ आए, उसे सन्तुष्ट करना मेरा धर्म है। बताइए, मैं सच्ची धर्मी हूँ या नहीं ?" वेश्या का जवाब सुनकर महाराजा श्रेणिक स्तब्ध रह गए। मनुष्य की अपनी सफाई देने की क्या कला है ? स्वयं अधर्मी प्राणी होते हुए भी पाप को कबूल न करके स्वयं को धर्मी कहलाने का मिथ्या आडम्बर करता है ?

वेश्या की बात पूरी हुई, इतने में तो वहाँ दूसरा पुरुष आया। राजा ने उससे पूछा - "बोल भाई ! तूने कौन-सा पुण्य किया है कि तू इस सफेद तम्बू में आया है ?" वह कसाई था। कसाई बोला - "साहब ! मैं भेड़-बकरों को काटकर प्रतिदिन सबको मांस देता हूँ। सुबह-सुबह मेरी दुकान पर कितनी भीड़ होती है ग्राहकों की ? इसलिए मैं जल्दी उठकर बकरे काटकर मांस तैयार करके रखता हूँ। अगर मैं सबको मांस न दूं तो वे लोग भूखे मरेंगे न ? 'मैं मांस देकर भूखों की भूख मिटाता हूँ। बोलो, मैं सच्चा धर्मी हूँ या नहीं ?"

कसाई की बात पूरी हुई कि वहाँ तीसरा एक दलाल आया। उससे अभयकुमार ने पूछा - "बोल भाई ! तूने क्या धर्म किया ?" इस पर वह बोला - "साहब ! 'मैं दलाल

लता है तथा उसके खाने के लिए घास-चारा डालता है और जो ढोर मालिक की आज्ञा में नहीं रहता, उसे लकड़ी की मार खानी पड़ती है । स्कूल में पढ़ने गया हुआ बालक जब घंटी बजती है, तब उसके मन में विचार फिरता है कि अब शीघ्र घर जाना चाहिए । तुम ओफिस या घर जाते हो, वहाँ पंखे या एयरकंडीशन रूम में कुर्सी पर बैठे हो । वहाँ सभी तुम्हे साहब-साहब कहते हों, लेकिन शाम होते ही तुम्हें घर आने का मन होता है । यहाँ उपाश्रय में आकर बैठे हो, तब भी ऐसा होता है कि कब महासतीजी व्याख्यान बंद करें और हम घर जाएँ । यहाँ बैठे हो फिर भी घर की याद आती है । यहाँ तो कितनी शान्ति है ? जबकि घर में कितनी उपाधि है ? रविवार की छुट्टी के दिन शान्ति होती है, परन्तु घरवाली कहेगी - "आज घी समाप्त हो गया है ।" दूसरे रविवार को कहेगी कि तेल और रेशनिंग के पैसे दो । फिर तीसरे रविवार को कहेगी - इस लड़के के कपड़े फट गए हैं । वे (खरीद कर बाजार से) लाइए, फीस भरने के लिए रकम दो । यों घंटी बजती रहती है - फरमाइस की । इतनी उपाधि होने पर भी घर याद आता है, किन्तु क्या उपाश्रय या धर्मगुरु याद आते हैं ? एक भक्त ने अपनी मस्ती में गाया है -

हुं तने भजुं छुं रविवारे, नाकी क्यां छे समय प्रभु म्हारे ?
आम तो हमेशा स्थानके आवुं, आवुं तेवो पाछो सीधावुं ।
ने घड़ी बेसुं छुं रविवारे, नाकी क्यां छे, समय प्रभु म्हारे ? ॥

आज रविवार है, इसलिए यहाँ बैठे हुओं में से कितने ही लोगों ने प्रोग्राम निश्चित कर रखा होगा कि आज गार्डन में घूमने जाना है, पिक्चर देखने जाना है, सगे-सम्बन्धियों से मिलने जाना है, या विवाह अथवा सगाई में जाना है । परन्तु क्या आत्मा के लिए कोई प्रोग्राम निश्चित किया है क्या ? अनन्तकाल से आत्मा पाप करता आया है, परन्तु क्या आपके मन में कभी यह विचार आता है कि इस पाप को पश्चात्ताप की भट्टी में डालकर जला डालूं ? एक दिन भी पाप के विषय में पश्चात्ताप किया है क्या ? शरीर को स्वच्छ रखने के लिए प्रतिदिन स्नान करते हो, परन्तु आत्मा को स्वच्छ बनाने के लिए रोज प्रतिक्रमण करते हो क्या ? इस समय वर्तमान चातुर्मास के पवित्र दिन चल रहे हैं, तो अष्टमी या पंचमी को, या सुबह अथवा शाम को, एक टाइम भी मुझे प्रतिक्रमण करना है, ऐसा प्रोग्राम निश्चित करते हो क्या ?

बन्धुओं ! पाप का पश्चात्ताप नहीं करोगे, और नये कर्म करते हुए रुकोगे नहीं, वहाँ तक आत्मा को कर्म की गुलामी से मुक्ति नहीं मिलेगी । तुम्हें सबकुछ स्वतंत्र अच्छा लगता है न ? मकान स्वतंत्र पसंद है, व्यापार भी स्वतंत्र अच्छा लगता है, परन्तु अभी तक कर्म की गुलामी से आत्मा को मुक्त करके स्वतंत्र बनाने की लगन नहीं लगी । अगर तुम्हारा मन धर्म में लीन होगा, सामायिक-प्रतिक्रमण आता होगा, तो बुढ़ापे में भी कोई आपत्ति नहीं आएगी । बुढ़ापा आएगा, तब काम नहीं हो सकेगा, तब बेटा कहेगा "पिताजी ! अब आपकी हमें जरूरत नहीं है । उपाश्रय में जाकर बैठो ।" (उस **समय**)

व्याख्यान - १५

आषाढ़ वदी ८, सोमवार | ता. १९-७-७६

जिनवाणी-श्रवण की सार्थकता किसमें ?

घनघाती कर्मो की घटा को त्यागरूपी करवत से विदारण करके अनन्तज्योति-स्वरूप केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् जो वाणी उनके मुख से निःसृत हुई, उसका नाम है - सिद्धान्त । ३२ सिद्धान्तों (शास्त्रों) में से छठे अंग 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में भगवान् ने परिपूर्ण भाव बताये हैं । यह वाणी किसी छद्मस्थ की नहीं है, किन्तु महावीर की वाणी है ।

आ छे वीरनी वाणी, करी ल्यो आत्मानी पिछाणी ।
स्व-स्वरूपनी मोज ले माणी, तो मळे सुखनी खाणी ॥

ज्ञानी कहते हैं - हे चेतन ! तुझे सुख चाहिए तो ऐसा उत्तम मानव-भव पाकर वीतराग प्रभु की वाणी सुनकर आत्म-स्वरूप की पहचान कर ले । जिसे आत्मस्वरूप की पहचान हो जाती है, वह अनन्तसुख को उपलब्ध कर लेता है । वीतराग प्रभु की वाणी सौ टंच सोने जैसी ठोस और सत्य है । ज्ञानी महापुरुषों के एक-एक वचन का कोई मूल्यांकन नहीं कर सकता । कोई मनुष्य चाहे जितना बड़ा वक्ता हो, अथवा द्वादशांगी का अध्ययन किया हुआ हो, किन्तु जबतक वह छद्मस्थ है, तबतक उसमें भूल होना संभव है । परन्तु जब घातीकर्मों का क्षय करने के बाद उसमें केवलज्ञान प्रगट हो जाता है, तब किसी प्रकार की भूल होने की संभावना नहीं होती । हीरा घिसकर तैयार होने के बाद जांच करने के साधनों द्वारा उसकी जांच करके छानबीन की जाती है कि यह हीरा खरा है या खोटा ? सोनेकी परीक्षण करने के लिए कसौटी के पत्थर पर उसकी जांच की जाती है । सोना जब कसौटी में पास हो जाता है, तब उसकी कीमत आंकी जाती है । भगवान् ने केवलज्ञान प्रगट करने से पहले कैसी उग्र साधना की थी ? कितनी - कितनी कसौटियों में से वे पार उतरे, तब सफलता के अन्त में घातीकर्मों की घनघटा का विदारण करके उन्होंने केवलज्ञान प्रगट किया । फिर क्या उनके वचनों में कोई दोष हो सकता है ? नहीं, ऐसे वीतराग प्रभु की वाणी सुनने के पश्चात् पुद्गलों की जूठन में जीव रमणता नहीं करता, अपितु अपने स्वरूप की पहचान करता है ।

देवानुप्रियों ! अगर तुम इसे भलीभांति समझ लो तो चन्दन के वृक्ष के समान अपनी आत्मा भी बन सकती है । जहाँ चन्दन के वृक्षों का वन होता है, वहाँ सुगन्ध और शीत-लता होती है । परन्तु चन्दन के वृक्ष के चारों ओर जहरीले सांपों ने साम्राज्य जमाया

रूपी भेड़ों के टोले में मिलकर अपनी अनन्तशक्ति का भान भूल गया है। सिंहशिशु को जब भान हुआ कि मैं वन में विचरण करनेवाला केशरीसिंह हूँ, तब भेड़ों के टोले को छोड़कर छलांग मारकर वन में चला गया। वैसे ही आत्मा की अनन्तशक्ति का भान करके, उस शक्ति को ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप में लगाकर, इस शरीररूपी पिंजरे को छोड़कर शाश्वत सुख को प्राप्त करना है, तो ऐसी कायरता कैसे चलेगी ? जितना हो सके, उतना धर्म का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करो। सम्यग्ज्ञान बढ़ेगा तो धर्म का वास्तविक स्वरूप स्वतः समझ में आ जाएगा। जब धर्म समझ में आ जाएगा, तब यह अन्याय, अनीति और अधर्म करने से जीव रुक जाएगा और जरा-सा भी पाप हुआ होगा, तो भी उसके हृदय में वह खटकेगा। आज तो मनुष्य पाप करके भी स्वयं धर्मात्मा है, ऐसा दिखावा करता है। इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ -

श्रेणिकराजा और अभयकुमार का दृष्टांत : एक बार श्रेणिकराजा और अभयकुमार दोनों घूमने जा रहे थे। रास्ते में वे तत्त्व-चर्चा कर रहे थे। उस समय श्रेणिकराजा ने कहा - "अभय ! इस दुनिया में धार्मिक मनुष्य अधिक हैं या अधार्मिक ?" इस पर चार प्रकार की बुद्धि के निधान अभयकुमार ने कहा - "पिताजी ! दुनिया में धर्मी मनुष्यों की अपेक्षा अधर्मी मनुष्य ज्यादा हैं, धर्मी मनुष्य कम हैं। किन्तु स्वयं धार्मिक न होते हुए भी धार्मिक का बिल्ला लगा कर घूमनेवाले और स्वयं को धर्मी कहलानेवाले मनुष्य बहुत हैं।" एक भक्त ने भजन में गाया है -

"अरे ! ओरे ! अरे ओरे ! कदम-कदम पर मैं करता दम्भ और दुनिया माने धर्मात्मा !
पर क्या भरा मेरे अन्तर में, एक बार देखिए परमात्मा ! (२)
मैं ढोंग करता हूँ धर्मी का, पर धर्म बसा नहीं हैय्या में।
बेदहाल भले फिरती दुनिया, मुझे सोना है सुख-शय्या में ॥ अरे ओरे ॥"

ऊपर से धर्मात्मा का दिखावा करनेवाला मानव, अंदर में कैसे-कैसे पाप का आचरण करता है ? यह तो उसकी अन्तरात्मा जानती है। ऐसे मनुष्यों की संख्या जगत् में अधिक है। अभयकुमार कहता है - "पिताजी ! आपको यह बात सच नहीं लगती हो तो परीक्षा करके देख लो।" इस पर श्रेणिक राजा की इच्छा परीक्षा करने की हुई। इसलिए राजगृही नगरी के बाहर दो तरह के विशाल तम्बू बांधे गए। एक काला और दूसरा सफेद। हजारों मनुष्य उनमें बैठ सके, ऐसे विशाल दो तम्बू तैयार कराके रखे गए। फिर राजगृही नगरी में ढिंढोरा पिटवाया गया - श्रेणिक महाराजा की इच्छा यह जानने की हुई है कि - 'मेरी नगरी में धर्मी जीव कितने हैं और अधर्मी कितने हैं ?' इस कारण नगरी के बाहर दो विशाल तम्बू बंधवाए गए हैं। जो व्यक्ति धर्मी हो, वह सफेद तम्बू में प्रविष्ट हो और जो अधर्मी हो, वह काले तम्बू में प्रविष्ट हो जाए। परन्तु इस नगरी में, जो धर्मी हो या अधर्मी हो, प्रत्येक को फर्जियात अवश्य आना है। जो नहीं आएगा, उसे राजा की ओर से दण्ड दिया जाएगा।

के एक टहुकार से चन्दन वृक्ष पर लिपटकर रहे हुए सर्प चंदन वृक्ष को छोड़कर इधर-उधर भागने लगते हैं । क्योंकि मोर और गरुड़ के सामने सर्प खड़ा नहीं रह सकता । इसी प्रकार वीतरागवाणी का टहुकार सुनकर कर्मरूपी सर्प भी भागने लगते हैं । शुद्ध भाव से वीतरागवाणी सुनो तो कर्मों के बन्धन अपने आप टूटने लगते हैं । वीतरागवाणी का टहुकार हृदय तक नहीं पहुँचेगा, तबतक कर्मबन्ध मौजूद रहेंगे । परन्तु अभी तक जीव वीतरागवाणी का मूल्य समझे नहीं हैं, अधिक क्या कहूँ ?

जैनधर्म में प्रत्येक क्रियाएँ मूल्यवान हैं । मगध नरेश श्रेणिक जैसे महाराजा सामने चलकर एक छोटी-सी झोंपड़ी में रहनेवाले पूणिया श्रावक के घर (पास) एक सामायिक का फल लेने गए । श्रेणिक नृप को देखकर पूणिया श्रावक ने पूछा - "महाराजा ! ऐसा क्या काम आ पड़ा कि आपको इस रंक की झोंपड़ी पर आना पड़ा ?" इस पर राजा बोला - "श्रावकजी ! मैं आपके एक सामायिक का फल लेने आया हूँ ।" पूणिया श्रावक ने कहा - "सामायिक का फल (मूल्य) कितना है, यह मुझे मालूम नहीं है ।" तब राजा ने कहा - "श्रावकजी ! मुझे वह मुफ्त में नहीं चाहिए, मूल्य चुकाकर लेना है ।" इस पर श्रावक ने कहा - "साहब ! आप उन्हीं से पूछ लीजिए इसका मूल्य, जिन्होंने आपको सामायिक खरीदने के लिए भेजा है । उन्हीं से पूछ लेना कि सामायिक का मूल्य कितना है ? परन्तु इतना तो कहूँगा कि आपके भण्डार सहित राज्य दे दो तो भी सामायिक का मूल्य चुकाया नहीं जा सकता । फिर आप जो सामायिक का मूल्य देना चाहते हैं, वह अनित्य है, जबकि सामायिक का सुख नित्य है । क्या अनित्य वस्तु के साथ नित्य (सामायिक) का सौदा हो सकता है ? नहीं । अतः क्या भौतिक सुख की सामग्री रूपी गेहूँ की बोरी के बदले में हीरे की अपेक्षा भी अमूल्य सामायिक का फल दिया जा सकता है ? आप ही विचार करिए ।" पूणिया श्रावक का जवाब सुनकर चार प्रकार की बुद्धि के धनी श्रेणिक राजा तो स्तब्ध रह गए । कुछ भी जवाब न दे सके। सारांश यह है कि धर्म की कोई भी क्रिया शुद्ध उपयोग और भावपूर्वक की जाए तो उससे प्रतिक्षण कर्मों की निर्जरा होती है । वस्तु अच्छी हो, किन्तु पात्र योग्य न हो तो अच्छी से अच्छी वस्तु भी खटाईवाले वर्तन में दूध के बिगड़ जाने की तरह बिगड़ जाती है ।

बन्धुओं और बहनों ! यह धर्मस्थानक उत्तम है, शान्ति-प्रदाता है, परन्तु यहाँ आकर परकीय पंचायत और परनिन्दा की तो क्या होगा ? पाप ही होगा न ? मैं तो तुमसे कहती हूँ कि तुम यहाँ आकर बात करो तो आत्मा की ही करो, (आत्मलक्षी वार्तालाप करो) घर-घर की नहीं । श्रवण करो तो एकमात्र वीतरागवाणी सुनो, परन्तु किसी के सम्बन्ध में बुराई, निन्दा, चुगली, आदि मत सुनना । परनिन्दा के बदले आत्मनिन्दा करो । आत्मनिन्दा करने से जीव को क्या लाभ होता है ? *(निंदणयाएणं भंते जीवे किं जणयइ ?)* इस सम्बन्ध में भगवान् ने कहा -

हिए, ऐसा घोर पापी क्या मैं सफेद तम्बू में बैठने का अधिकारी हूँ ?" इसके बाद भयकुमारने पूछा - "इसके सिवाय तूने और कोई पाप किया है ?" तब उसने कहा "नहीं, मैंने और कोई पाप नहीं किया ।"

बन्धुओं ! दरवाजा खोलते समय अनजाने में एक चिड़िया (कुचलाकर) मर गई, सका उसे कितना पश्चात्ताप है ? क्या तुम्हें ऐसा पश्चात्ताप होता है ? ऐसा पश्चात्ताप जीव ो होगा, तभी कर्मों से जल्दी छुटकारा हो सकेगा । परन्तु आज कैसी दशा है ?

पापाचरण करके उसे ढांकते फिरते हैं ।

पाप कीधा अघोर छुपाव्या बहु, पुण्य कीधानो देखाव कीघो बहु !
भर्या अन्तरमां झेर, बाहर अमृत पण वैर ।
एवां कामो जीवनमां, में आचरिया,
शुं ए शोभी रह्या छे, जिनवरिया !

पाप करके पाप को छिपाना, पाशवी वृत्ति है । गोबर के एक पोठे को ढांकने के लए, उस पर तीन टोकरी धूल डालनी पड़ती है, वैसे ही एक पाप करके उसको छिपाने ़ लिए दूसरे कितने नये पाप खड़े हो जाते हैं ? भगवान् फरमाते हैं - "संसारी (गृहस्थ) ़ या साधु हो, अगर पाप हो गया हो तो उसे पाप के रूप में स्वीकार कर उसका पश्चात्ताप रके प्रायश्चित्त ले लेना । मगर पाप को कदापि छिपाना नहीं । पाप करके पाप को छपानेवाला महापापी है ।" आज जो छोटा-सा पाप हुआ होगा, वह (छिपाने पर) कल ो बड़ा पाप होनेवाला है । बालक एक छोटा-सा पेन चुरा कर लाए और उसके माता-ता उसे कुछ भी न कहें तो कल वह स्लेट-नोटबुक या पुस्तक तथा पैसे चुरा कर ले ाएगा । धीरे-धीरे वह बड़ी-बड़ी चोरियाँ करना सीख जाएगा । अतः पहले से ही उसे तशिक्षा दी जाए तो वह आगे बढ़ने से रुक जाएगा । नौका में छोटा-सा छिद्र हो जाय, से बंद न किया जाए तो धीरे-धीरे छिद्र बड़ा होने पर नौका डूब जाएगी । इसी प्रकार ोटे पाप करने से नहीं रुकोगे तो एक दिन बड़े से बड़ा पाप करने में नहीं हिच-कचाओगे । फिर बाजी बिगड़ जाएगी । अतः जाने-अनजाने पाप हो जाए तो उस पाप ा इकरार करो । उस भाई (के निमित्त) से एक चिड़िया मर गई, उसका इतना अत्यधिक श्चात्ताप देखकर राजा श्रेणिक के दिल में विचार हुआ कि 'अहो ! मैंने अज्ञानदशा में ाकार करते हुए कितने निर्दोष प्राणियों को बींध डाले । गर्भवती हिरणी को मार ाली, मैं तो इसके अपेक्षा भी भयंकर पापी हूँ ।'

अब राजा ने दूसरे मनुष्य से पूछा - "भाई ! तूने क्या पाप किया है ?" वह खड़ा आ, 'आँख की अपेक्षा आंसू बड़े,' इस न्याय से पाप की अपेक्षा पश्चात्ताप बहुत अधिक । वह दो हाथ जोड़कर कहने लगा - "महाराजा ! इस तम्बू के कपड़े की अपेक्षा भी रा कलेजा बहुत काला है । मैं चोर का चोर हूँ और साहूकार का साहूकार हूँ । मेरे जैसा ोई अधम नहीं है । एक बार एक गरीब मनुष्य अपने वेतन के दो सौ रुपये जेब में डालकर पने घर जा रहा था । मैने उसकी जेब काट ली (और दो सौ रुपये उड़ा लिये) । थोड़ी

बलराजा ने वीतरागवाणी श्रवण करके निश्चय किया कि 'मैं घर-जाकर पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर आत्मशान्ति प्राप्त करने हेतु संसार छोड़कर संयमी बनूंगा ।' बोलो, तुममें से किसी ने निर्णय किया है कि मुझे आर्हती दीक्षा लेनी है । तुमने तो अनेक बार वीतरागवाणी सुनी है, जबकि बलराजा ने तो एक ही बार जिनवाणी सुनी थी । क्या तुम्हारा हृदय इतना कठोर है कि वीतरागवाणी की इतनी वर्षा बरसने पर भी तुम्हारा हृदय भीगता नहीं ? मगर याद रखना कि अभी तक तुम पूर्व की कमाई खा रहे हो और इस भव में कुछ (धर्मकरणी) कर नहीं रहे हो, फिर परभव में तुम्हारा क्या हाल होगा ? 'भगवती सूत्र' में तामली तापस का अधिकार (वर्णन) है, वह जैन नहीं था । एक रात को वह (मोह) निद्रा से जाग उठा । उसे यह शुभचिन्तन हुआ कि 'पूर्वभव में मैंने कोई सत्कार्य, दान, पुण्य आदि किये होंगे, उसका यह फल मिला है, किन्तु इस भव में कुछ (सत्कार्य) नहीं करूँगा तो परभव में मेरा क्या होगार ? यह (सांसारिक) सुख मुझे छोड़कर चला जाए, इसकी अपेक्षा मैं स्वयं ही इसे छोड़कर चला जाऊँ !' ऐसा चिन्तन होने पर प्रातःकाल उसने (अपने) धर्म की दीक्षा अंगीकार की और पर्वत पर (साधना करने हेतु) चला गया । छट्ठ (बेले) के पारणे छट्ठ (बेला) तप करने लगा । यों ६० हजार वर्षों तक उसने तपश्चरण किया । यद्यपि तामली तापस ने परभव के सुख की इच्छा से तप किया था, इसलिए शास्त्रकारने इसके तप को बालतप कहा है ।

निष्कर्ष यह है, कि तामली तापस अन्य धर्मी था, किन्तु परभव का विचार आते ही (वैभवादि का) त्याग करके साधु बन गया । मगर तुम्हें परभव का विचार भी नहीं आता होगा । तुम्हारे मन में प्रायः एक ही लगन रहती है कि पुत्र के पुत्र सुखोपभोग करें, इतना धन एकत्र कर लूं । परन्तु (बदले में) ये तुम्हारे पुत्र-पौत्र तुम्हें कितना सुख देंगे ? यह तो पुण्याधीन है । इस भव में सुखी होना हो तो जीवन में शुद्ध धर्माचरण जरूरी है । तुम स्वयं सद्धर्म का आचरण करो और सन्तानों को धर्म के सुसंस्कार प्रदान करो तो तुम सुखी होओगे । परन्तु अगर तुमने धर्म को समझा नहीं, आचरण भी नहीं किया, तो संसार में आग (कषायों की अग्नि) फूट निकलेगी । जीवन में पुण्य का संचय होगा तो उनके पुत्र-पुत्री माता-पिता की देखभाल करेंगे, किन्तु पुण्य समाप्त हो गया तो धन-सम्पत्ति होने पर भी माता-पिता को रोने का वक्त आएगा । यह संसार जलती आग जैसा है । इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ -

एक सेठ का दृष्टांत : मगनलाल नामक एक सेठ बहुत सुखी थे । वे गरीबी में से मेहनत - मजदूरी करते- करते उच्चस्तर पर आए थे । प्रचुर धन उपार्जन किया । फर्म खूब अच्छी तरह जमा ली । समाज में भी मगनभाई की अच्छी प्रतिष्ठा थी । पुण्य के उदय से धन बहुत था, परन्तु ममत्व भाव पर विजय पाना बहुत कठिन होता है । सेठ को भी धन पर बहुत ममत्व था । खर्च करने में भी वह बहुत कतरव्योंत करते थे । मगनलाल सेठ को एक पुत्र था, उसका नाम था सुरेश । सुरेश बड़ा हुआ तो सेठ ने उसे खूब पढ़ाया । वह बी. कोम पास हुआ । सेठ ने उसकी शादी की । फिर उसे दुकान में बिठाया । सुरेश बी. कोम. पास थे, इसलिए बहुत होशियार था । उसका दिमाग कुछ और ही किस्म

कहिए, ऐसा घोर पापी क्या मैं सफेद तम्बू में बैठने का अधिकारी हूँ ?" इसके बाद अभयकुमारने पूछा - "इसके सिवाय तूने और कोई पाप किया है ?" तब उसने कहा - "नहीं, मैंने और कोई पाप नहीं किया ।"

बन्धुओं ! दरवाजा खोलते समय अनजाने में एक चिड़िया (कुचलाकर) मर गई, उसका उसे कितना पश्चात्ताप है ? क्या तुम्हें ऐसा पश्चात्ताप होता है ? ऐसा पश्चात्ताप जीव को होगा, तभी कर्मो से जल्दी छुटकारा हो सकेगा । परन्तु आज कैसी दशा है ? पापाचरण करके उसे ढांकते फिरते हैं ।

पाप कीधा अघोर छुपाव्या नहु, पुण्य कीधानो देखाव कीधो नहु !
भर्या अन्तरमां झेर, बाहर अमृत पण वैर ।
एवां कामो जीवनमां, में आचरिया,
शुं ए शोभी रह्या छे, जिनवरिया !

पाप करके पाप को छिपाना, पाशवी वृत्ति है । गोबर के एक पोठे को ढांकने के लिए, उस पर तीन टोकरी धूल डालनी पड़ती है, वैसे ही एक पाप करके उसको छिपाने के लिए दूसरे कितने नये पाप खड़े हो जाते हैं ? भगवान् फरमाते हैं - "संसारी (गृहस्थ) हो या साधु हो, अगर पाप हो गया हो तो उसे पाप के रूप में स्वीकार कर उसका पश्चात्ताप करके प्रायश्चित्त ले लेना । मगर पाप को कदापि छिपाना नहीं । पाप करके पाप को छिपानेवाला महापापी है ।" आज जो छोटा-सा पाप हुआ होगा, वह (छिपाने पर) कल को बड़ा पाप होनेवाला है । बालक एक छोटा-सा पेन चुरा कर लाए और उसके माता-पिता उसे कुछ भी न कहें तो कल वह स्लेट-नोटबुक या पुस्तक तथा पैसे चुरा कर ले आएगा । धीरे-धीरे वह बड़ी-बड़ी चोरियाँ करना सीख जाएगा । अतः पहले से ही उसे हितशिक्षा दी जाए तो वह आगे बढ़ने से रुक जाएगा । नौका में छोटा-सा छिद्र हो जाय, उसे बंद न किया जाए तो धीरे-धीरे छिद्र बड़ा होने पर नौका डूब जाएगी । इसी प्रकार छोटे पाप करने से नहीं रुकोगे तो एक दिन बड़े से बड़ा पाप करने में नहीं हिच-किचाओगे । फिर बाजी बिगड़ जाएगी । अतः जाने-अनजाने पाप हो जाए तो उस पाप का इकरार करो । उस भाई (के निमित्त) से एक चिड़िया मर गई, उसका इतना अत्यधिक पश्चात्ताप देखकर राजा श्रेणिक के दिल में विचार हुआ कि 'अहो ! मैंने अज्ञानदशा में शिकार करते हुए कितने निर्दोष प्राणियों को बींध डाले । गर्भवती हिरणी को मार डाली, मैं तो इसके अपेक्षा भी भयंकर पापी हूँ ।'

अब राजा ने दूसरे मनुष्य से पूछा - "भाई ! तूने क्या पाप किया है ?" वह खड़ा हुआ, 'आँख की अपेक्षा आंसू बड़े,' इस न्याय से पाप की अपेक्षा पश्चात्ताप बहुत अधिक है । वह दो हाथ जोड़कर कहने लगा - "महाराजा ! इस तम्बू के कपड़े की अपेक्षा भी मेरा कलेजा बहुत काला है । मैं चोर का चोर हूँ और साहूकार का साहूकार हूँ । मेरे जैसा कोई अधम नहीं है । एक बार एक गरीब मनुष्य अपने वेतन के दो सौ रुपये जेब में डालकर अपने घर जा रहा था । मैंने उसकी जेब काट ली (और दो सौ रुपये उड़ा लिये) । थोड़ी

कोई बड़ा व्यापारी आया । सेठ उसके साथ बातचीत करने लगे । उस समय सुरेश ने व्यापारियों को कह दिया - "इस बूढ़े के साथ आप व्यापार-सम्बन्धी कोई बात मत करना । इसमें कुछ भी बुद्धि नहीं है । अगर मुझे पूछे बिना किसी सौदे की बातचीत करेंगे तो मैं मान्य नहीं करूंगा ।" अब तो हद हो गई न ? ऐसे समय में पिता को कितना दुःख होता है ? उनके मन में ऐसा विचार आया कि धरती जगह दे तो मैं समा जाऊँ ! मन ही मन वह क्रुद्ध हो उठे कि एक थप्पड़ मारकर इस नालायक को गद्दी से उठा दूँ । एक बार जीभ तो थोड़ी-सी कुलबुलाई, किन्तु सेठ उस गुस्से को (मन ही मन) पी गए । वह सुरेश को एक शब्द भी न कह सके, मगर उनके दिल में बहुत आघात लगा । कोई नहीं था, उस समय धीरे-से सेठ ने उससे कहा - "बेटा सुरेश ! तू मुझे क्यों हैरान कर रहा है ? मैंने कठोर परिश्रम (खून-पसीना एक) करके दुकान जमाई । मैंने इतना सब कमाया, फिर भी तू मेरी ऐसी अवदशा करने पर तुला है ?" यह सुनते ही सुरेश एकदम गुस्से में आकार चिल्लाया - "चुप रहो ! एक भी शब्द बोले तो ठीक नहीं रहेगा ! अगर अधिक बड़बड़ की तो मैं दुकान पर चढने नहीं दूंगा !"

पुत्र की ओर से नितान्त तीव्र अपमान : पिता को लगा गहरा आघात : बन्धुओं ! बेटे ने बाप की कीमत कौड़ी की कर डाली, फिर भी बाप को उसके प्रति ममता नहीं छूटती । उसे उपाश्रय में आने का मन नहीं होता । कैसी करुण दशा है ? घर जाता है, तब बाप कहता है - "बेटा ! तू मेरी एक बात तो सुन !" इस पर बेटा कहता है - "अब बकवास करना छोड़ दो । अगर अधिक बड़बड़ करोगे तो इस घर में रहने नहीं दूंगा । इतना तो मैं अच्छा हूं कि मैं तुम्हें भरपेट खाने को देता हूँ न ?" पुत्र का कोपकाण्ड देखकर बाप कांप उठा । सोचा कहाँ जाऊँ ? मेरी आपबीती किसे कहूँ? वह बहुत घबराया । फफक-फफक कर रोये । फिर रोकर उन्होंने अपना हृदय हलका किया और मन ही मन निश्चय किया यह उद्धत लड़का मुझे धुतकारता है, अतः अब मुझे दुकान पर नहीं जाना है । व्यवसाय की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देना है । उपाश्रय जाकर धर्मध्यान करना है ताकि आत्मा का कल्याण तो हो । मुझे कई बार संत चेतावनी देते थे कि परभव का पाथेय तैयार करने के लिए दो घड़ी उपाश्रय में तो आओ, धर्मध्यान करो और कुछ नहीं तो नवकारमंत्र की एक माला तो अवश्य फेरो । ब्लेक मार्केट करके धन इकट्ठा कर रहे हो, पर वह सब (परलोक में) साथ आनेवाला नहीं है । महारम्भ (तीव्र हिंसा) करोगे तो नरक में जाओगे और छलकपट और गलत तौल-माप करोगे तो तिर्यंच बनोगे । सचमुच, मैंने बेटे के लिए इतने पाप करके धन इकट्ठा किया । पाप करने में मैंने किसी प्रकार का आगे-पीछे का विचार नहीं किया । नरक में तो जाऊँगा तब जाऊँगा । पर मुझे बेटे ने इस समय तिर्यञ्च जैसा परवश (पराधीन) बना दिया है । तो चलूं, अभी मैं उपाश्रय चला जाऊँ । सेठ उपाश्रय गये, व्याख्यान सुना । घर आकर भोजन किया और सोये; परन्तु नींद नहीं आ रही थी । टाइम पास नहीं हो रहा था । अतः सेठ को दुकान का विचार आया कि आज कौन आढ़तिया आया होगा ? कपासिया को बराबर तौला होगा या नहीं ? सुरेश ने जामनगर से आया हुआ चेक बैंक में जमा कराया

दिये थे कि अपने से बड़ी महिला हो तो उसे माता के समान मानना और छोटी हो तो बहन समझना, अत्यन्त छोटी हो तो पुत्री तुल्य मानना। वह तो मेरी बहन के समान थी। बहन के प्रति कुदृष्टि से कैसे देखा जा सकता है? साहब! मैंने यह भयंकर पाप किया है, यह मुझे आँख में पड़े हुए रजकण के समान खटकता है।'' अब राजा ने चौथे व्यक्ति से पूछा - ''बोल भाई! तूने क्या भूल की है?'' चौथे मनुष्य ने कहा - ''मैं तो इन तीनों से बढ़कर पापात्मा हूँ। मुझे अपना पाप प्रकट करने में शर्म आती है। मैं बड़ा व्यापारी हूँ। एक बहुत ही गरीब विधवाबाई ने एक-एक पैसा इकट्ठा करके दो हजार रुपये की पूंजी जुटाई और मेरे पर विश्वास करके मेरी दुकान में ब्याज पर वह पूंजी रख गई। एक वर्ष तो मैंने उसे बराबर ब्याज दिया। फिर मेरी नीयत बिगड़ी। मैंने सोचा- 'इसे अगर इसी तरह ब्याज देता रहूँगा तो मूल पूंजी की अपेक्षा ब्याज बढ़ जाएगा। अतः अब मुझे इसकी पूंजी हजम कर लेनी चाहिए।' मैंने अपने मुनीम से कह रखा कि 'अब जब भी वह बाई पूंजी का ब्याज लेने आए, तो दुकान के ओटे पर चढ़ने मत देना। स्पष्ट शब्दों में कह देना कि 'कौन-सी पूंजी और किसका ब्याज? हम कुछ नहीं जानते।'

सचमुच कुछ दिनों बाद उक्तबाई सेठ की दुकान पर आकर मुनीमजी से बोली - 'मुझे अपनी पूंजी में से कुछ रुपये उठाने हैं। आप मुझे रकम का ब्याज और कुछ रकम मूल पूंजी में से दो।' इस पर मुनीम ने कहा - 'कौन-सी मूल पूंजी और कौन-सा ब्याज? क्या बकवास कर रही है? चली जा यहाँ से!' यों कहने पर भी बाई गई नहीं। तब मैंने कहा - 'यह बाई झूठी है। यहाँ यह पैसा रखकर नहीं गई और अपने गले पड़ रही है। इसे धक्के मारकर बाहर निकालो।' मुनीमजी ने धक्के-मुक्के मारकर बहुत मुश्किली से उसे बाहर निकाली। दुकान के द्वार पर दो दिन तक आकर उसने सिर पटके, किन्तु साहब! मेरा कठोर दिल नहीं पिघला। वह बहन तो चली गई। बेचारी ने पेट पर पट्टी बांधकर मुश्किल से दो हजार रुपये इकट्ठे किये थे। उसके दो हजार रुपये उसके लिए प्राण के समान प्रिय थे। मुझ पापी ने उसके प्राण हरण कर लिये। फिर उसका क्या हुआ? यह तो मुझे पता नहीं। इस घटना के होने के कुछ दिनों बाद मुझे एक दिन किसी संत का समागम हुआ। उन्होंने हमें समझाया कि किसी की 'अमानत रकम हड़पना, जेब काटना, जीव की हिंसा करना और परस्त्री के प्रति कुदृष्टि करना, ये महान् पाप हैं। ऐसे पाप करने से जीव दुर्गति में जाता है, वहाँ बड़े-बड़े दुःख भोगने पड़ते हैं। हंस-हंसकर बांधे हुए कर्म नरकगति में जाकर रो-रोकर भोगने पर भी उनका अन्त नहीं आता। वहाँ तुम्हें कोई भी छुड़ाने नहीं आएगा। कर्मों का कर्ज चक्रवर्ती ब्याज सहित चुकाना पड़ता है।

उस काले तम्बू में बैठे हुए चारों ही मनुष्य कहने लगे? ''साहब! हमें अपनी भूल का भान हुआ तब से पश्चात्ताप का कोई पार नहीं है। प्रथम व्यक्ति कहता है - ''मैंने चिड़िया के प्राण हरण किये, अब मैं चाहे जो कुछ करूँ, पर उसके प्राण तो वापस आनेवाले नहीं है।'' दूसरा व्यक्ति कहता है - ''मैंने जिसकी जेब काटी थी, उसे मैंने

इस सेठ की ऐसी दशा क्यों हुई ? जीवन में खुद ने धर्माचरण नहीं किया था और बेटे को भी धर्म के संस्कार नहीं दिये थे। जो उसे धर्म समझाया होता तो ऐसी दशा न होती। देवानुप्रियों ! मैं तो तुम्हें कहती हूँ कि तुम्हें अपनी दशा ऐसी न करनी हो, बुढ़ापे में आत्मा का बिगाड़ न करना हो तो पाव घंटे या आधे घंटे भर बालकों को धार्मिक शिक्षण अवश्य ही दिलाओ। युक्ति, सूक्ति और अनुभूति के सहित धर्म की थ्योरी समझाओ। तुम्हारी दुकान पर अन्य धर्मी ग्राहक आए तो उसे भी धर्म की प्रसाद दो। सबको समझाओ कि स्कन्दक ने पूर्वभव में एक काचरे की छाल उतारी तो उसे अगले भव में जीवित शरीर की चमड़ी उधेड़वानी पड़ी। चक्रवर्ती, करोड़पति या तीर्थंकर को भी कर्म छोड़ते नहीं। कर्म का कर्ज चक्रवर्ती-ब्याज-सहित भोगकर चुकाना पड़ेगा। ऐसी सैद्धान्तिक बात तुम स्वयं समझो और दूसरों को समझाओ।

बन्धुओं ! जैनधर्म के सिद्धान्त तो सौ टंच सोने जैसे हैं। यदि इस भव और परभव में सुखी होना हो तो वीतराग-प्ररूपित सद्धर्म का आचरण करो। धर्म ही जीव का सच्चा मित्र है। इस भव में अथवा अगले भवों में जीव के साथ रहने और जानेवाला तो धर्म ही है। इसलिए धर्म के कार्य में जरा भी प्रमाद न करो। धर्म के कार्य को केवल वादा कर लेने मात्र से फायदा (लाभ) नहीं होता। धर्म का नाम तत्काल नकद देकर यानी तदनुरूप शीघ्र आचरण करके निपटाना सीखो, पाप के काम में विलम्ब करो। आयुष्य और आरोग्य का कोई भरोसा नहीं है। अतः धर्मकार्य में जरा भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। कहावत है - *'अच्छे कार्य में सौ विघ्न'* यों समझकर शुभ कार्य या शुद्ध धर्म कार्य में विलम्ब मत करो। सुकृत भी शीघ्र ही करो। जब भी अन्तर में धर्माराधना करने का भाव जगे, तब भाव को तुरंत आचारित कर डालो। क्योंकि आये हुए भाव कब चले जाएँगे, इसका कोई भरोसा नहीं है। प्रथम तो पुण्य का शुभ भाव, या शुद्ध धर्म का भाव अन्तर में जगना ही कठिन है, फिर उसके विषय में उधार रखना, स्वयं को जान बूझकर सद्धर्मी आत्मा का खेल खत्म करने जैसा है। अतः सुकृत या सद्धर्म करने का भाव जगे, तब कल करेंगे या फिर कर लेंगे, ऐसा विचार कदापि न करो, क्योंकि एक क्षण के बाद क्या होनेवाला है उसे हम नहीं जानते। अतएव कोई व्रत, नियम लेने का, दान देने का, शीलपालन करने का, तपश्चरण करने का, सामायिक करने का अथवा पंच परमेष्ठी भगवन्तों के नाम-स्मरण का, जप का, या भगवती दीक्षा लेने का भाव अन्तर में जागे तो शीघ्र ही उसे क्रियान्वित करो, तदनुरूप आचरण करो। कहा भी है -

जरा जावं न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥

- दश. सूत्र, अ-८, गा-२६

"जबतक इस शरीर को बुढ़ापे ने पीड़ित नहीं किया, जबतक यह तन-मन कैन्सर, लकवा आदि शारीरिक या चिन्ता - उद्विग्नता, क्रोधादि कषाय, कामादि विकारों से ग्रस्त नहीं होता, जबतक पाँचों इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती, तबतक सद्धर्म का आचरण कर

हूँ। दुनिया में अनेक प्रकार के दलाल होते हैं। कोई जवाहरात की, कोई कपड़े की, कोई अनाज की दलाली करता है, पर मैं तो कन्याओं का दलाल हूँ। किसी को कन्या नहीं मिलती हो, तो उसके लिए मैं कन्या ढूंढ कर लाता हूँ। फिर भले ही वह मुसलमान, मोची की, या कोल की बेटी हो, परन्तु मैं तो बनिये की लड़की है यों कहकर किसी के साथ शादी करा देता हूँ। इस प्रकार मैं दूसरों का घर बसा देता हूँ। मैं ऐसा धर्मी हूँ।"

इस प्रकार राजा और अभयकुमार ने सबसे पूछा। उनमें सभी पाप करके धर्मी कहलानेवाले नहीं थे। अपितु कुछ सच्चे धर्मी भी थे। वे कहने लगे - "साहब ! आप का फरमान था, इसलिए हमें आना पड़ा। किन्तु धर्म कोई प्रदर्शन की वस्तु नहीं है। धर्म तो अन्तरात्मा में बसा हुआ होता है। मैं धार्मिक हूँ धर्मी को ऐसा बिल्ला लगाना नहीं होता। हीरे का मूल्य जौहरी आंक सकता है, वैसे ही जो मनुष्य धर्मिष्ठ है, उसे किसी को कहने जाने की जरूरत नहीं पड़ती, वह तो अपने गुणों से स्वतः परखा जाता है।

श्रेणिकराजा और अभयकुमार ने देखा कि पाप करके पश्चात्ताप करनेवाले थोड़े-से निकले। जगत में सच्चे धर्मी कम हैं, अधर्म-पाप करके स्वयं को धर्मी कहलानेवालों की संख्या अधिक है। श्रेणिकराजा ने अभयकुमार से कहा - "बेटा ! तेरी बात सच्ची है। ऐसे अधर्म-पाप करके उसे छिपानेवाले पापी को क्या होगा ? पाप को पाप और धर्म को धर्म, जैसा हो वैसा यथार्थ रूप से मानना, यह है सच्ची समझ ! और अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म मानना तो मिथ्यात्व है। जो व्यक्ति धर्म का यथार्थ स्वरूप समझकर उसका आचरण करे, वही सच्चा धर्मी है।"

देवानुप्रियों ! इस दृष्टान्त पर से यह सार ग्रहण करना कि अगर तुमसे कोई पाप हो गया हो, तो उसे छिपाना मत। पाप को कबूल कर पश्चात्ताप करके उसका प्रायश्चित्त करना। साथ ही पुनः नया पाप न हो, इसका ध्यान रखना तथा पाप भीरु बनना। पाप भीरु बने बिना पवित्र नहीं बना जा सकता और भवभीरु बने बिना भवकट्टी नहीं हो पाती। अतः प्रतिक्षण पाप न हो, इसकी सावधानी रखना। जितना पर (वस्तु या व्यक्ति) का संग, और पर की प्रीति छूटेगी, उतना पाप भी कम होगा।

बलराजा धर्मघोष मुनि के दर्शन करने गए। उनकी वाणी सुनकर मन में निश्चय किया कि 'मैंने अनन्तकाल से 'पर' का संग किया है और 'पर' की पंचायत में पड़कर मैंने अपनी आत्मा को बिगाड़ा है। अब मुझे पर का संग नहीं चाहिए। मुझे यथाशीघ्र पुद्गल की प्रीति छोड़कर आत्मा के साथ प्रीति करनी है, तो दीक्षा ले लूं।' एक बार वाणी सुनकर वैराग्य रंग में रंगा गए। अब बलराजा अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर संयम लेंगे। जिसे वैराग्य का रंग लगता है, उसे संसार में एक क्षण निकालना भी भारी लगता है। अतः अब बलराजा दीक्षा लेंगे। उसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

हुई है ? तेरे लिए उन्होंने कितना पुरुषार्थ किया है और तू ऐसा करे तो उन्हें कितना आघात लगता है ?'' इस प्रकार मित्र ने सुरेश को समझा-बुझाकर उसके पास से फंड में लिखाये हुए १००१ रु. निकलवाये और मगनलाल सेठ को दिए । सेठ ने स्वयं जाकर संघ को वे १००१ रु. दे दिए । इससे उनकी आत्मा की शान्ति हुई । परन्तु अब संसार पर से सेठ का मन उठ गया । पुत्र के प्रति मोह नहीं रहा । धर्म का वास्तविक स्वरूप अब समझ में आया । स्वयं वे जिंदगीभर धर्माचरण नहीं किया, दान-धर्म में धन का सदुपयोग नहीं किया, इस बात का बहुत पश्चात्ताप होने लगा, परन्तु अब उनका पछताना रंडापा आने के बाद चतुराई करने के समान किस काम का ? सेठ का मित्र अब प्रतिदिन उसके पास आकर धर्म का स्वरूप समझाता था । यों करते-करते एक दिन सेठ का आयुष्य पूर्ण हो गया और सुरेश के घर से उसके पिता ने सदा के लिए अलबिदा ले ली ।

अपने सगे-सम्बन्धियों को सेठ की मृत्यु के समाचार दिए । सेठ की अर्थी बांधी गई, उस समय सुरेश जोर-जोर से कण्ठ फाड़कर सेठ की अर्थी पकड़कर रोने लगा - ''पिताजी ! आप मुझे छोड़कर चले गए ! अब मैं अकेला हो गया । मेरा कोई नहीं है । अब मेरी सार-संभाल कौन रखेगा ? मुझे हितशिक्षा कौन देगा ?'' यों कहकर खूब करुण स्वर में विलाप करने लगा । सगे-सम्बन्धी उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहने लगे - ''भाई ! शान्ति रखो । देर-सबेर एक दिन तो सबको जाना ही पड़ेगा ।'' उसका रुदन देखकर सबकी आँखों में अश्रु उमड़ पड़े । आखिर सबने सेठ की अन्त्येष्टि क्रिया की । यह सब निपटने के बाद सुरेश ने अपने पिताजी का एक फोटो सुन्दर फ्रेम में मढवाकर दुकान में टंगाया । उस पर पुष्पहार पहनाकर वह पूजा करने लगा । उसने अपने पिता को कैसे-कैसे दुःख दिए हैं, यह सब जानते थे, परन्तु किसी ने उसे कुछ कहा नहीं । मगर सेठ के मित्र ने कहा - ''सुरेश ! अब तू यह मिथ्यादम्भ किसलिए कर रहा है ? तूने अपने पिता को एक दिन भी सुख नहीं दिया । अब उनके मरने के बाद तू जोर-जोर से गला फाड़कर रोता है ! तूने उनको जीते-जी तो जाना-समझा नहीं, और मरने के बाद उनकी पूजा करने बैठा है, इसका क्या अर्थ है ? दुनिया में तेरे सरीखा दम्भी कौन है ?'' यों कहकर उसे खूब फटकारने लगा ।

संक्षेप में, मुझे तो तुम्हें इतनी ही बात कहनी थी कि यह संसार असार है । कुटुम्ब-कबीला तथा परिवार और पैसा कोई भी परलोक में जीव को त्राण - रक्षण एवं शरण देनेवाला नहीं है । अतः संसार की माया-ममता छोड़ दो । कहा भी है -

आज मीठा है यह संसार, कल को दुःख है पारावार । इससे प्यार क्यों करूँ ?
आज जिसका है साथ, कल को तज देगा वह साथ । इससे प्यार क्यों करूँ ?

तुम समझ लेना । इस संसार से प्यार करना योग्य नहीं है । अगर संसार से प्यार करने गए तो मगनलाल सेठ जैसी दशा हो जाएगी । अगर संयम नहीं ले सकते हो तो संसार में अलिप्त भाव से रहो ।

हुआ होता है, इसलिए वहाँ कोई मौज मजा करने के लिए नहीं जा सकता । परन्तु अगर उस वन में एक मयूर पहुँचकर टहुकने लगे तो सभी सर्प वहाँ से भाग जाते हैं । कल्याण मंदिर स्तोत्र में सिद्धसेन दिवाकर ने पार्श्वनाथ भगवान् की स्तुति करते हुए कहा -

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो ! शिथिली भवन्ति,
जन्तोः क्षणेन निबिडा, अपि कर्मबन्धाः ।
सद्यो भुजंगममय इव मध्यभाग,
मभ्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥

भगवन् ! जो मनुष्य हृदय में आपको धारण करता है, उसके गाढ़ से गाढ़ कर्मो के बन्धन क्षणभर में शिथिल हो जाते हैं । किस प्रकार ? जैसे चन्दन वृक्ष के चारों ओर विषैले सर्प लिपटे हुए रहते हैं । यदि उस वन में मोर टहुकने लगे तो सर्प बहुत शीघ्र पलायित हो जाते हैं । क्योंकि मोर सांप का कट्टर शत्रु है । यहाँ समझना यह है कि चन्दन वृक्ष के चारों ओर सर्प लिपटे रहते हैं, किन्तु सर्प में (चन्दन की) सुगन्ध या शीतलता नहीं आती । वैसे ही अपनी आत्मा निश्चयनय की अपेक्षा से तो चन्दनतरु जैसा शीतल और सुगन्धवाला है, परन्तु उस पर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, *मोह तथा विषय एवं कषाय के जहरीले सर्प लिपट गए हैं,* इन सर्पो को भगाने के लिए वीतराग वचनरूपी मयूरों का एक टहुकार बस है । कहा भी है -

आत्म-चन्दन पर कर्म-सर्पनुं, नाथ ! अतिशय जोर,
ते दुष्टोने दूर करवा, आप पधारो बनी मोर,
आवो - आवो हे वीर (प्रभु) स्वामी, मारा अन्तरमां (२)... आवो...

वस्तुतः आत्मारूपी चन्दन वृक्ष पर विषयों और कषायोंरूपी सर्पों का भयंकर जोर चढ़ गया है । उसे उतारने के लिए इस स्वयं वीतराग प्रभु अपने समक्ष उपस्थित नहीं हैं, किन्तु वीतराग के उत्तराधिकारी संतरूपी मयूर तुम्हारे समक्ष वीतरागवाणी का मयूर टहुकार करते हैं कि यदि तुम्हें शीतलता और सुगन्ध चाहिए तो कषायों को कसाई के समान क्रूर समझ कर दूर करो और विषयों का वमन करो । अन्यथा, सर्प चन्दन वृक्ष पर पड़े रहने पर भी शीतलता और सुगन्ध प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें जहर भरा हुआ है । वैसे ही अगर तुम प्रतिदिन उपाश्रय में आकर संत के पास बैठ जाओ, इतने मात्र से शीतलता नहीं मिलेगी, किन्तु यदि तुम क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, ममता, निन्दा और ईर्ष्या के जहर निकाल दो तो शीतलता मिलती है और आत्म-स्वरूप का भान हो जाता है ।

बन्धुओं ! तुम सोचो, वर्षों से तुम वीतराग भवन में आते हो, बताओ तुमने कषायें कितनी कम कीं । जरा-सा अपना मनचाहा काम न हुआ तो तुरंत क्रोध भड़क उठता है । कोई तुम्हें जरा-सा अप्रिय शब्द कहे तो तुरंत अत्यधिक गर्म हो उठते हो । बोलो, ऐसी स्थिति में शीतलता कहाँ से मिल सकती है ? आत्मारूपी चन्दन पर कर्मरूपी सर्प लिपट गये हैं, उन्हें दूर करने के लिए वीतरागवाणी का आलम्बन लेना पड़ेगा । मोर

सुकृत्य करके पाथेय (भाता) नहीं बांधोगे, तो आगामी भव में दुःखी बनकर करुण क्रन्दन करोगे तो कोई तुम्हारी (वात) नहीं सुनेगा । अतः अब भी समझो । लक्ष्मी चंचल है। आयुष्य का कोई भरोसा नहीं है । अच्छे-अच्छे चक्रवर्ती, वासुदेव, राजा-महाराजा और श्रेष्ठीगण भी हाथ मलते-मलते चले गए । कालराजा तो मुँह फाड़कर बैठे हैं । वे कब दौड़कर आ धमकेंगे, इसका कुछ पता नहीं है । भरे जवानी में भी पुत्र, पिता, माता आदि सभी स्वजन सम्बन्धियों को छोड़कर जाना पड़ता है । अपार सम्पत्ति का स्वामी भी खाली हाथ जानेवाला है ।

धर्म की महिमा अलौकिक है : इस लोक में वैमानिक आदि देवलोकों के ऊँचे से ऊँचे सुख तथा (वीतरागोक्त) उत्कृष्ट मोक्ष का सुख, ये दोनों क्रमशः पुण्य तथा भावधर्म के प्रसिद्ध फल हैं । धर्म का फल दो प्रकार का है : अनन्त फल और परम्परा फल । धर्म के अनन्तर फल के रूप में भाव-ऐश्वर्य, अर्थात्-(धर्म-साधना में) अनुकूलता, उदारता, पापनिन्दा इत्यादि गुणों की प्राप्ति होती है, एवं राग-द्वेषादि का नाश होता है और परम्पराफल में अच्छी गति में जन्म होना, तथा उत्तम स्थान की परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होना है ।

देवलोक में उत्तम रूप की सम्पत्ति, उत्तम ऋद्धि, वैभव तथा स्थिति इत्यादि का उपभोग, निर्मल इन्द्रियाँ, वैक्रियशक्ति, उत्कृष्ट भोगों के साधन, दिव्य विमान, मनोहर उद्यान, सुन्दर जलाशय, रूपवती अप्सराएँ, रमणीय नाटक, निपुण सेवक और उदारभोग, ये सब पुण्य से मिलते हैं । पुण्य के योग (उदय) से देवलोक से च्यवकर भी आर्यदेश, उत्तमकुल, जैनधर्म में जन्म, सुन्दर रूप, नीरोगता, उत्तम बुद्धि इत्यादि धर्म से प्राप्त होते हैं ।

बन्धुओं ! इसीलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं – धर्म श्रेष्ठ चिन्तामणि, उत्तम कल्याण-स्वरूप, एकान्तहितकारक और परम अमृत है, साधु और गृहस्थ दोनों के लिए उपयोगी है । धर्म पारसमणि से भी श्रेष्ठ है और संसार भयंकर दुःखकारक है । अतः धर्माचरण करने का यह अमूल्य अवसर है । अब तो जागो, आत्मा को पहचानो और विषयों पर विजय प्राप्त करो । मैंने कल कहा था कि धर्म के कार्य में विलम्ब न करो, एक नीतिकार ने भी कहा है –

"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत, पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ।
नहि प्रतिक्षते मृत्युः, कृतमस्य न वा कृतम् ।।"

आगामी कल को करने योग्य कार्य आज ही कर लो । अपराह्न में करने योग्य कार्य को पूर्वाह्न में कर लो । मृत्यु तुम्हारी इंतजार नहीं करेगी कि तुमने अपना कार्य (कर्तव्य) पूरा किया या नहीं किया ?

सारांश यह है कि सब यहीं छोड़कर, केवल पुण्य-पाप साथ में लेकर परलोक में जाना है । इसलिए जितनी हो सके, धर्माराधना कर लो, ताकि प्रत्येक जन्म में शान्ति

"निंदणयाएणं भंते जीवे कि जणयइ ? निंदणयाएणं पच्छाणुतावं जणयइ पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेढि पडिवज्जइ, करणगुणसेढि पडिवण्णेयणं अणगारे मोहणिज्जं कम्मं उग्धांएइ ॥"

उत्त. सू. अ.-२९, सूत्र-६

इसका भावार्थ यह है कि-"आत्मनिन्दा करने से पश्चात्ताप होता है, और पश्चात्ताप से साधक वैराग्यवान् बनकर करण-गुणश्रेणी (क्षपकश्रेणी) प्राप्त कर लेता है। क्षपक श्रेणी-प्राप्त अनगार मोहनीय कर्म का उद्घात (नाश) कर डालता है।"

आत्मनिन्दा करने से ऐसा लाभ होता है, जबकि पर निन्दा करने से अशुभ कर्मबन्ध होता है। आत्मा को उज्ज्वल बनाना हो तो एक-एक गुण को अपनाते जाओ और दोषों को दफनाते जाओ। जीवन में से एक-एक दोष को दूर करते जाओगे तो एकदिन अपना आत्मा गुणों की खान के समान हो जाएगा।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

जिनके जीवन में गुण भरे हुए हैं, ऐसे गुणों की खान के समान धर्मघोपमुनि ५०० शिष्यों के परिवार-सहित इन्द्रकुम्भ उद्यान में पधारे हैं। वीतशोका नगरी के महाराजा उनके दर्शनार्थ पहुँचे। उनकी वाणी सुनी, जो उनके हृदय में सीधी उतर गई। वीतरागवाणी का टहुकार राजा के अन्तरतम तक पहुँचा। अतः विपय-कपाय के सर्प जो (कुण्डली मारकर बैठे थे) एकदम पलायन कर गए। उनको यह हृदयंगम हो गया कि यह संसार जलता हुआ दावानल है। इसमें आधि-व्याधि-उपाधि का घूरा (उकरड़ा) है। स्वार्थ का मैदान है। सच्चा सुख और शान्ति त्याग में है। इन संतों के पास कुछ नहीं है, ये अकिंचन हैं, फिर भी कितने प्रसन्न हैं ? समाधि (भाव) में कितने स्थिर हैं ? सच्चा संत किसे कहा जाए ? **जो शान्ति प्राप्त कराए, वही संत है। जो संत (झगड़े-झंझटों), जिद या वाद-विवाद) का अन्त लाए, वह संत है। जो भव (संसार) का अन्त करे-करावे, स्वयं भगवन्त बने, दूसरों को भगवन्त बनावे, वही सच्चा संत है।** जिन्होंने संसार की आसक्ति की ग्रन्थी (गांठ) काट डाली है, तथैव राग, द्वेप, मोह, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, मद, मत्सर आदि कपायों-नोकपायों की ग्रन्थी (गांठे) भी छिन्नभिन्न कर दी है, वे ही सच्चे निर्ग्रन्थ हैं। ऐसे संत आत्ममस्ती में ऐसे मस्त होते हैं कि उन्हें आहार करने के लिए खड़ा होना पड़े या बैठना पड़े तो उनकी आँखों में पश्चात्ताप के आंसू उमड़ पड़ते हैं, कि प्रभो ! मेरे आत्मा का स्वभाव तो अनाहारक है, और मैं उस दशा को अभी तक प्राप्त नहीं कर सका, इसलिए मुझे आहार करना पड़ता है। इस शरीर को (धर्मपालनार्थ) टिकाने के लिए मुझे आहार करना पड़ता है। जब आहार करते हैं, तो निहार भी करना होता है। प्रभो ! मैं कब अनाहार की दशा को प्राप्त करूँगा ? और आत्मा की अखण्ड समाधि कब प्राप्त करूँगा ? सच्चा सन्त ऐसा चिन्तन करता है।

हो गई तो उसे मार खाना पड़ा। वैसे ही यह आत्मा भी (निश्चियनय से निरंजन, निराकार और ज्योति स्वरूप है, परन्तु मोहराजा के मैले मकान में ठाठ से मटरगश्ती करने हेतु जब प्रविष्ट हुआ, तब मार न खाये तो क्या खाएगा ?

बन्धुओं ! ऐसा (कमलवत् निर्लिप्त) चैतन्यदेव दुःख के कारण इस शरीर में आकर फँस गया है। तुम किसी जगह जाओ और वहाँ अनुकूलता नहीं मिले तो वहाँ से निकल सको, ऐसा भी नहीं है, तो मन में यों तो कहो न - 'आ फंसे भाई ! आ फंसे।' जीव की आज ऐसी स्थिति हो गई है। इस जीव (आत्मा) ने अनन्त भवों में भूलें की है। भूलें हुई हैं, इसीलिए तो ज्वाला उठी है। अब यह ज्वाला बुझाना है। इस भूलों की जो सजा मिली है, उसे समभाव से सहन कर लो। यदि समत्वपूर्वक सहन नहीं करोगे तो इससे भी एक चार गुना बड़ी ज्वाला भड़केगी। मान लो, किसी व्यक्ति ने कोई चीज रास्ते में रखी है, दूसरा मनुष्य वहाँ से गुजरा। भूल से भी उसका पैर उस वस्तु से छू गया। अब उस वस्तु का मालिक उस आदमी से कहे - "भाई ! जरा देखकर चल।" उस समय वह व्यक्ति कह दे कि मेरा पैर भूल से ही तुम्हारी वस्तु को छू गया है तो बात वहीं सुलझ जाती है, परन्तु वह व्यक्ति यों कहे कि - "तुझे कुछ भान है या नहीं ? यह वस्तु तूने रास्ते में क्यों डाली है ?" इस पर वस्तु का मालिक कहे - "तेरी आँखें हैं या नहीं ?" यों बात आगे से आगे बढ़ती जाती है और बड़ा भड़ाका हो जाता है। परन्तु यदि भूल को कबूल कर लिया जाए तो थोड़े-से में बात निपट जाती है। इसके विपरीत अगर बाताबाती करके आगे बढ़ते जाएँ तो बड़ा भड़ाका हो जाता है। फलतः अपनी आत्मा ने जन्म-जन्म में उसी भूल की पुनरावृत्ति करके भूलों का पात्र बनकर दुखों के घर रूपी शरीर में प्रवेश किया है। अतः भूल को सहन कर लो तो पुनः-पुनः वह दुःख नहीं आएगा।

यह शरीर कैदखाना है : यह शरीर है तो दुःख है। यह बात तो समझ में आ गई न ? तुम दुःख से घबरा भी गये हो। अब अगर यह दुःख नहीं चाहिए तो, पुनः बार-बार शरीर प्राप्त न करनी पड़े, दूसरे शरीर में कैद न होना पड़े, ऐसा लक्ष्य रखो। दुःख आता है, तब मन आकुल-व्याकुल हो जाता है। परन्तु भविष्य में ऐसा दुःख न भोगना पड़े, उसके लिए तुम्हारी सावधानी कितनी है ? वास्तव में इस पर गहराई से समझो तो मालूम होगा कि हम ही उस कैद को सुदृढ़ करनेवाले हैं। क्योंकि हमें कैद कैदरूप लगी नहीं है। सचमुच यह शरीर कैदखाना है। कैदी को कैदखाने में बंद करने के बाद वह उसे छोड़कर बाहर नहीं जा सकता। जेल प्रज्वलित होती है तो उसके साथ-साथ कैदी भी प्रज्वलित हो उठता है। वैसे ही आत्मा भी शरीररूपी जेल में बंद है, इसलिए शरीर के दुःख से उसे भी दुःखी होना पड़ता है। साथ ही दुःख के समय वह (आत्मा) शरीर से बाहर निकल नहीं सकता। एक दृष्टि से देखें तो इस शरीर की अपेक्षा घर अच्छा है, क्योंकि जिस घर में आग लगती है, उस घर में अन्य कोई भय या संकट आता है, तो गृहस्वामी घर से बाहर निकल जाता है और भय या संकट के चले जाने पर वापस घर में प्रवेश कर सकता है। अतः शरीर घर होता, तो अच्छा था, पर यह तो जेलखाना

का था । सेठ मन में यों सोचते थे कि अब बेटा बड़ा हो गया है, पढ़ा लिख भी गया है, इसलिए अधिक बड़ा व्यवसाय करेंगे । मुझे अब शान्ति मिलेगी । परन्तु भावी में कुछ और ही होना था । सुरेश व्यापार में लग गया । धीरे-धीरे उसने सारी लगाम अपने हाथ में ले ली । स्वयं व्यापार में बहुत प्रवीण हो गया था । इसलिए उसे पिताजी की रीति-नीति पसंद नहीं थी । मगनभाई सुरेश को कहते रहते थे - "बेटा ! दुकान का प्रत्येक काम अपने हाथ से करना चाहिए । नौकर होने पर आदमी को परवश नहीं होना चाहिए । गाड़ियों में आये हुए माल को तुलवाने, गोडाउन में माल को व्यवस्थित ढंग से रखवाने के लिए स्वयं जाना चाहिए। नौकरों के भरोसे काम नहीं करना ।" इस प्रकार सेठ पुत्र को हितशिक्षण देते थे, मगर सुरेश को यह अच्छा नहीं लगता था । सुरेश आधुनिक पद्धति का मनुष्य था । इसलिए सौ रुपयों में एक वैतनिक मनुष्य जो काम कर सकता हो, उसमें स्वयं को रुक जाना पड़े, यह उसको पसंद नहीं था । हिसाब-किताब की लम्बी-चौड़ी बहियाँ और चमड़े के पुट्ठों में हाथ से बांधी हुई नोटबुकें उसे नापसंद थी । दावात और कलम भी उसे रखने पसंद नहीं थे । बाजार के बीच में खड़े रहकर भावताल के विषय में जोर से चिल्लाने की जो अधिकांश व्यापारियों की आदत थी, वह भी सुरेश को पसंद नहीं थी । मतलब यह कि पिता सुरेश को जो भी सीख देते, वह उसे कटकट लगती थी । फिर वह छोटी-छोटी बातों में पिता को रोकटोक करता था । एक दिन मगनलाल सेठ दुकान के चौतरे के पास खड़े रहकर किसी व्यापारी के साथ किसी वस्तु के भावताव की बात कर रहे थे, तब सुरेश ने उन्हें टोका । सेठ को यह अच्छा नहीं लगा । परन्तु उस समय वे कुछ बोले नहीं । इसके बाद वह बाजार में जहाँ-तहाँ खड़े रहने में हिचकिचाते थे । धीरे-धीरे पिता-पुत्र में मजदूरी चुकाने से लेकर सौदा करने के बारे में आपसी मतभेद खड़े होने लगे । सुरेश मगनभाई की कोई भी बात सुनता नहीं था । वह अपनी मनमानी करता था । दिनोंदिन सेठ के स्वाभिमान को चोट पहुंचती थी । जवान पुत्र को अधिक क्या कहना ? यह सोचकर सेठ मौन रहते थे । परन्तु सुरेश इतने से ही रुका नहीं, अपितु दूसरे व्यापारियों की उपस्थिति में अपने पिता को जैसे-तैसे नीचा दिखाता रहता था । पिता जरा-सा उसे कुछ कहने जाते तो वह तुरंत बोल उठता - "अबे, बैठ न बूढ़े ! अब तुम्हें हमारे काम में माथा-फोडी नहीं करना है ।" कई वार तो वह पिता को गद्दी से उठाकर मुनीम जहाँ नामा लिखने बैठता था, वहाँ बिठा देता था । इस प्रकार सुरेश पिता का खुल्लं-खुल्ला अपमान कर बैठता था ।

सेठ के हृदय में भारी सन्ताप : सुरेश की इन हरकतों से पिता मन ही मन क्रोध से उत्तेजित हो उठते थे कि यह छोकरा क्या समझता है ? यह सब किसने खड़ा किया है ? मैंने अपनी सारी जिंदगी इस दुकान को जमाने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने में लगाई । व्यापारी वर्ग में मेरा सम्मान है । बीस-पच्चीस हजार का सौदा तो मैं आसानी से कर लेता हूँ । उसे ऐसा सब सुनाने का सेठ का मन हो जाता है । पुत्र मुझे इतना सताता है । फिर भी सेठ समझते हैं कि जवान पुत्र है, और इसने सब काम अपने हाथ में ले लिया है । धीरे-धीरे यह ठिकाने आ जाएगा । यों वह मन को मनाते रहते थे । एक वार

मानवभव का प्रत्येक क्षण अमूल्य है । लाखों-करोड़ों रुपये देने पर भी मानवभव की एक क्षण भी खरीदने की किसी में ताकत नहीं है । वह क्षण कितना मूल्यवान है, इसका अंदाजा लगाओ । कोई तुम्हें यों कहे कि तुम्हारी जिंदगी धूल में मिल गई, तो उस पर तुम्हें गुस्सा आएगा या नहीं ? परन्तु इस जिंदगी की धूल जितनी कीमत भी (प्राय:) तुम्हारे मन में नहीं है और सब वस्तुओं का जितना मूल्य तुमने आंका है, उतना मूल्यांकन तुमने इस मानवजीवन का नहीं किया । (तुम्हारे या तुम्हारे परिवारिक जन के हाथ से) घी, तेल, दूध आदि ढुल जाए तो तुम्हारे उद्‌गार ऐसे निकलते हैं – अरर...! ढुल गया । पुराने जमाने में बही-खाते काली श्याही से लिखते थे और लिखे हुए को जल्दी सूखाने के लिए उस पर चिपटी भर काली रेत डालते थे । अगर कोई व्यक्ति मुट्ठी भर रेत बाहर फेंक देता तो उसे डांटते-डपटते थे । क्योंकि इन सब वस्तुओं की उपयोगिता और कीम वे जानते और करते थे । क्या इतनी कीमत आपलोग इस जिंदगी की करते हैं ? घी, तेल, दूध अथवा धूल का नुकसान हो जाए तो मन में एक धक्का लगता है, परन्तु इस जिंदगी के बहुत-से घंटे, दिन, पक्ष, महीने और वर्ष प्रमाद में व्यर्थ गए, क्या इस बात का धक्का तुम्हें लगता है ? इसीलिए ज्ञानीजन कहते हैं – 'जिंदगी को तुमने धूल की अपेक्षा भी हलकी समझी है !' जब तुम्हारे मन में यह विचार उठेगा कि मैंने अपने मानवजीवन के इतने वर्ष विषयों और कषायों में तथा प्रमाद में बिता दिये, आत्मा के लिए कुछ भी नहीं किया, परभव में मेरा क्या होगा ? ऐसा धक्का मन में लगेगा, तभी जिंदगी की कीमत तुम्हें समझ में आएगी । यदि ऐसा नहीं होता है तो समझ लेना कि मैंने घाटे का व्यापार किया है ।

बलराजा को यह भलीभांति समझ में आ गया कि मैं जबतक इस मानवजीवन का मूल्य नहीं जानता-समझता था, तबतक तो मैंने घाटे का व्यापार किया । अब मुझे घाटे का व्यापार नहीं करना है । कोई भी व्यक्ति एक आना लेकर बदले में रुपया नहीं दे देता और दे देता है तो तुम उसे वज्रमूर्ख ही कहोगे न ? तो कामभोगों के क्षणिक सुख में तल्लीन होकर दीर्घकालिक दुःख को मोल ले ले, उसे कैसा मनुष्य कहना ? बलराजा को अब शाश्वत सुख प्राप्त करने की तमन्ना जागी है । अब उसे संसार के क्षणिक सुख अच्छे नहीं लगते । प्रकारान्तर से भी उन्हें ऐसा विचार हुआ कि यह राजमुकुट भव का भार बढ़ानेवाला है ।

राजाओं को कदम-कदम भय लगा रहता है । वे अकेले बाहर नहीं निकल सकते। उन्हें खाने-पीने में, पहनने और रहने में सर्वत्र भय लगा रहता है । क्योंकि जिसके पास जितनी बड़ी राज्यसत्ता होती है, उसके उतने ही अधिक शत्रु होते हैं । ऐसे तथाकथित बड़े आदमियों को खाने में जहर दे दिया जाता है । उसकी बैठने की कुर्सी में, तथा उसके पहनने के वस्त्रों में भी जहर डाल दिया जाता है । इसलिए राजा तो बेचारे सुख से खा-पी भी नहीं सकते । नहीं सुख से सो सकते हैं । यही कारण है कि राजमुकुट धारण करने वाले कई राजा (तीव्र द्वेष, भय, रोष आदि के कारण) नरक में चले गए ।

होगा या नहीं ? व्यापार में ध्यान नहीं रखेगा तो उसमें घाटा लगेगा । सुरेश चाहे जो हो, आखिर तो मेरा बेटा है न ? यों सेठ के मन में एक के बाद एक विचार आने लगे । नींद आ नहीं रही थी, इसलिए सेठ उठकर दुकान चले गए ।

अपनी मिल्कियत होते हुए भी दान देने का अधिकार नहीं : बन्धुओं ! जिस पुत्र के लिए पिता ने इतना किया, वह पुत्र पिता को कैसे-कैसे दुःख दे रहा है ? फिर भी मोहदशा कितनी भयंकर है ? मगनलाल सेठ ने दुकान में जाकर बेटे से पूछा - "बेटा ! तूने बैंक में चेक जमा कराया ? कोई नये व्यापारी आये थे क्या ? किसी का पत्र आया क्या ?" यों अनेक प्रश्न पूछे, किन्तु बेटे ने कोई जवाब नहीं दिया, तब पुनः पुत्र से पूछा, तब सुरेश ने कहा - "अबे बूढ़े ! सब हो जाएगा । तू चूप मर न ?" यों एक नौकर से भी वदतर दशा बाप की हो गई । बाप को बहुत दुःख हुआ । बाप का हृदय फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया । वह दुकान से सीधे घर आए । दूसरे दिन बाप पुनः उपाश्रय गए । उस दिन संघ प्रमुख चंदा करने के लिए खड़े हुए ।

मगनलाल सेठने मन में सोचा - 'मैंने लोभाविष्ट होकर सत्कार्य में एक लाल पैसा भी नहीं दिया । आज तो मैं सत्कार्य में कुछ दूं । मेरे परिश्रम की कमाई है । धर्मकार्य में सुरेश थोड़े ही इन्कार करेगा ?' सेठ ने खड़े होकर घोषणा की - मेरे १००१ रु. लिखो । संघ के प्रमुख व सेठ खूब हर्षित हुए कि आज तो मगनलाल सेठ ने संघ के फंड में दान की अच्छी शुरूआत की । अब अपने संघ का चंदा धाराप्रवाह होगा, लोग अधिकाधिक रकम लिखायेंगे । संघ ने सेठ का खूब सत्कार किया । सेठ वहाँ से उठकर घर गए । शाम को सुरेश घर आया, तब बाप ने उससे कहा - "बेटा ! आज मैं उपाश्रय गया था । वहाँ संघ का चंदा हो रहा था । मैंने उसमें १००१ रु. लिखाये हैं, तो तू मुझे १००१ रु. दे दे, ताकि मैं लिखाई हुई रकम भर आऊँ ।" यह सुनते ही सुरेश तो बाप को मारने दौड़ा । "बूढ़े ! किसे पूछकर चंदा लिखाया था ? मैं एक लाल पाई भी नहीं दूंगा ।" पुत्र के कटुवचन सुनकर बाप तो वहीं ढेर होकर ढल पड़ा । उसे बहुत आघात लगा कि मैंने रकम लिखाई, किन्तु अब यह दुष्ट छोकरा पैसा नहीं देगा तो मैं क्या करूँगा ? वह बहुत घबराया । वह बिलख-बिलख कर रोये, परन्तु बेटेको बाप की दया नहीं आई । अब बाप को भान हुआ कि इस संसार में कोई किसी का नहीं है । संत की बात बिलकुल सत्य है कि जैसे कर्म करोगे, वैसे भोगने पड़ेंगे । मैंने पूर्व-भव में ऐसे कर्म किये होंगे, वे अब इस भव में उदय में आए । मैंने पुत्र को पढ़ाया-लिखाया, उसकी शादी की और उसके लिए पाप करते हुए पीछे मुड़कर नहीं देखा । उस दुष्ट पुत्र ने मुझे एक दिन भी सुख नहीं दिया, ऊपर से यह परेशान करता है । हाय ! मैंने कैसे कर्म किये होंगे ? बन्धुओं ! मगनलाल सेठ की यह हालत देखकर ममता का त्याग करना । बांधे हुए कर्म किसी को नहीं छोड़ते ।

कहा भी है -

"कर्म आवे, खून सतावे, वैरनी पूरी वसुलात वाळे के धर्म करो, धर्म करो ।
वायरा धर्म तणां वावा लाग्या, के धर्म करो, धर्म करो ।।"

•.•.•.•.•.• . . • • •.•

आनी चाहिए, हमारे पर नहीं । भगवान् के बताये मार्ग पर चलनेवाले संत (अपनी चर्या यतनापूर्वक करते हुए) प्रतिक्षण कर्म निर्जरा करते हैं । साधु वर्ग (अपनी मर्यादानुसार) वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, तप करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, विहार करते हैं, भिक्षाचरी करते हैं, यों साधु जीवन की कोई भी क्रिया यतनापूर्वक आत्महितलक्षी शुद्ध भावों से करते हैं तो उनके श्वास-श्वास में कर्म-निर्जरा होती है । साधु भिक्षाचरी (गौचरी) के लिए जाए, तब क्या चिन्तन करे ? इसके लिए 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है, जिस का भावार्थ इस प्रकार है –

अहो ! जिनेश्वर प्रभु का कितना महान् उपकार है कि संयम की सुरक्षा के लिए निर्दोष पापरहित (असावद्य) गौचरी चर्या बताई है । गौचरी में आधा कर्म आदि ४२ दोषों को टालकर, शुद्ध गवेषणा ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा करनी है । अतः मुझे इस समय विशेषतः उन दोषों को वर्जित करके सतत उपयोगवान् बनना चाहिए । जिह्वा की स्वादलालसा से, लापरवाही से, या अनुपयोग से गौचरी चर्या में मुझे कोई भी दोष नहीं लगाना चाहिए । इस प्रकार से भगवान् की आज्ञानुसार निर्दोष आहार-पानी की गवेषणादि करूँगा तो ये संयम का भी शुद्धरूप से पालन होगा, मेरे अध्यवसाय निर्मल बनेंगे । इतना ही नहीं, भगवान की आज्ञानुसार आहार-पानी की मेरी ऐसी निर्दोष गवेषणा देखकर दूसरे साधु-साध्वियों को भी प्रेरणा मिलेगी । तत्पश्चात् ऐसा चिन्तन करे कि मैं ऐसा निर्दोष शुद्ध आहार ले जाऊँगा तो मेरे परम उपकारी गुरुदेव, पू. बुजुर्ग संतों, ज्ञानाभ्यासी, तपस्वी, बाल, वृद्ध, रुग्ण, नवदीक्षित आदि संतों की भक्ति करने का मुझे लाभ मिलेगा । वे मेरे द्वारा लाये हुए आहार-पानी का उपभोग करके जो ज्ञान-ध्यान-आराधना करेंगे, उसका लाभ भी मुझे मिलेगा । इसके अतिरिक्त भिक्षाचरी के समय निर्दोष आहार-पानी की गवेषणा करने से मेरे वीर्यान्तराय कर्म का भी क्षय होगा । जिससे मैं तप, त्याग और वैयावृत्य में अधिक उद्यम कर सकूँगा । तथैव भिक्षाचरी करके आहार-पानी लाने में शारीरिक श्रम होने से मुझ में सहिष्णुता का गुण भी आएगा । भरत और बाहुबली की आत्माओं ने पूर्वभव में ५००-५०० साधुओं की सेवा-भक्ति की थी, तो क्या मैं पाँच संतों के लिए आहार-पानी लाकर देने की सेवा-भक्ति का लाभ नहीं ले सकता ? ऐसे त्यागी, तपस्वी, संयमी, पापरहित, ब्रह्मचारी साधु-महात्माओं की सेवा-भक्ति का लाभ महान् पुण्योदय हो, तभी मिलता है । अतः आज मुझे अपने परम-सौभाग्य से ऐसा स्वर्ण-अवसर मिला है, तो काया की सुकुमालता छोड़कर महान् निर्जरा का लाभ ले लूं । मेरा यह शरीर अस्थिर है, अतः अस्थिर शरीर से स्थिर धर्म होता हो तो फिर इससे बड़ा कौन-सा लाभ है ? अनन्तकाल से स्वार्थ के काम तो मेरे जीव ने बहुत किये हैं, परन्तु संयमी संतों की संयम-साधना में सहायक बनने का इस भव के सिवाय अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? तो फिर मेरे आहार-पानी और सुख-सुविधा का विचार करके मुझ से कैसे बैठा रहा जा सकता है ? आहार-पानी लाने के बाद भी मेरे हिस्से में जो आए, उसे मुझ अकेले को सेवन न करने का संकल्प लिया । अपितु मेरे पात्र में

लो। अवसर बीतने के बाद फिर पछताना पड़ेगा।" धर्माचरण का अवसर बार-बार नहीं मिलता। तन-मन-वचनादि व्याधिग्रस्त हो जाने पर चाहे जितनी इच्छा करने पर भी यह सुनहरा अवसर स्वस्थ और अनुपम मौका नहीं मिलेगा। पाप करने का अवसर या अवतार तो जीव को नीच कुलों में या नीच जातियों में अनन्त बार मिले, परन्तु धर्माचरण करके शीघ्र ही जन्म-मरणादि के त्रास से मुक्त होने का अवसर बारंबार मिलना मुश्किल है। इसीलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं -

"हे (मनुष्य-) देहरूपी घोंसले में रहनेवाले आत्मारूपी हंस! तू इस देह में क्रीडा कर रहा है, तबतक सकल दुःखों (दोषों) के नाशक और सकल सुखों के साधक-वीतरागोपदिष्ट धर्म की साधना कर ले॥"

ऐसी धर्म करने की सामग्री और संयोग पुनः पुनः मिलने मुश्किल हैं। अतः प्रमाद का त्याग करके धर्माचरण करने के लिए कटिबद्ध हो जाओ। प्रबल पावर से ऐसा धर्माचरण करो कि कर्म की जंजीरें टूटकर धराशायी बन जाएँ और आत्मा कर्मशत्रु के त्रास से सदा के लिए मुक्त हो जाए।

बन्धुओं! अगर समझ-बूझकर धर्म का आचरण नहीं करोगे तो उक्त सेठ की तरह बुरा हाल होगा। सेठ ने संघ के चंदे में १००१ रु. लिखा दिए। अपने पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी और दुकान में सर्वोपरी सत्ता बेटे की थी। चिन्ता हुई - अगर चंदा लिखाकर रकम नहीं दूं तो मेरी इज्जत का क्या? बाप ने कहा - "बेटा! अब मैं फिर कभी रकम नहीं लिखाऊँगा, पर इस वक्त तो तू जो रकम मैंने लिखाई है, उसे दे दे।" इस पर सुरेश ने क्रुद्ध होकर कहा - "मैं नहीं दूंगा। एक बार नहीं दूंगा तो तुम्हें भान हो जाएगा और फिर कभी रकम लिखाना भूल जाओगे।" सेठ के तो आँख की अपेक्षा बड़े-बड़े आंसू उमड़ आए। रोते-रोते बोले : "सुरेश! कुछ तो विचार कर! लिखाई हुई रकम नहीं दूंगा तो संघ में मेरी कैसी हलकी छाप पड़ेगी, लोगों में बात फैलेगी कि मगनलाल ने रकम लिखा कर दी नहीं। मैं उपाश्रय जाकर लोगों को क्या मुँह बताऊँगा?" यों विचार करते-करते मगनलाल सेठ दिमाग पर नियंत्रण खो बैठे और बार-बार बोलने लगे - "मेरी इज्जत का क्या होगा? लड़का पैसा नहीं देता।" यों बड़-बड़ करने लगे। शरीर क्षीण होने लगा इस चिंता और व्यथा से, चलते-चलते भी लड़खड़ाने लगे। परन्तु सुरेश पिता की जरा-सी भी सारसंभाल नहीं करता, औषधोपचार भी नहीं कराता था।

पिता के मित्र की सुरेश को हितशिक्षा : सेठ बहुत ऊब जाते, तब वे अपने पुराने मित्र के वहाँ जाकर अपने हृदय की भड़ास निकालकर रो पड़ते। मित्र सेठ को आश्वासन देते हुए कर्म का स्वरूप समझाता। उससे सेठ को कुछ शान्ति मिलती। मित्र से मगनलाल का दुःख देखा नहीं जा रहा था। इसलिए वह सुरेश को बार-बार समझाते-"सुरेश! तुझे अपने बाप के साथ ऐसा असद्व्यवहार नहीं करना चाहिए। आज उनकी कैसी

है – "पिताजी ! क्या आप मेरे पर (संसार का) सारा भार डालकर जाएँगे ?" रानियाँ भी झूरने लगी । आपलोग यह मत समझ बैठना कि बलराजा को दीक्षा लेने का भाव हुआ और उन्हें तुरंत उसकी अनुज्ञा मिल गई । ऐसा नहीं हुआ । उनके पुत्रों और पत्नियाँ, सबने उन्हें गृहस्थाश्रम (संसार) में रुकने का बहुत ही आग्रह करते रहे । परन्तु जिसे संसार का स्वरूप समझ में आ जाता है, वह संसार के मायाजाल में नहीं फंसता ।

बलराजा सबको समझाता है कि-"तुम सब किसलिए रो रहे हो ? यदि मैं इस समय संसार का स्वरूप समझकर इसे नहीं छोड़ूँ तो एकदिन (देर-सवेर) छोड़ना तो पड़ेगा ही । इस जीव ने अनन्त बार जन्म-मरण किए । देवलोक के महान सुख भी भोगे, और नरकगति के दारुण दुःख भी भोगे हैं । तिर्यंच गति में परवशता से भी दुःख सहे हैं और कर्म बांधे हैं । ये कर्मो के कांटे अब मेरे से सहे नहीं जाते और (भयंकर दुःखों से भरी) नरकगति में अब मुझे नहीं जाना है । जीव ने नरकगति में कैसे-कैसे दुःख सहे हैं ? इसके लिए प्रभु से दुःख निवारण हेतु एक व्यक्ति निवेदन करता है –

"केवां केवां दुःखड़ा स्वामी ! में सह्या नारकीमां...
एक रे जाणे छे मारो आत्मा...
ए...जी...रे एक रे जाणे छे मारो आत्मा
लनकारा करती काळी वेदनाओ सहेतां सहेतां,
वर्षोनां वर्षो स्वामी ! में वीताव्या त्रासमां,
ए...ई...रे मलकनुं ज्यां पूरुं थयुं आयखुं
त्यां थयो रे जन्म मारो जानवरना लोकमां;
दुःखड़ा निवारो मारा, जन्म-मरणना परमात्मा ।"

"ऐसे दुःख तो इस जीव ने अनन्त बार भोगे हैं । इन दुःखों से मुक्त करानेवाला हो तो यह संयम ही है । अतः तुम सब मुझे राजीखुशी से आत्म-साधना करने हेतु संयम ग्रहण करने की आज्ञा दो ।" राजा ने प्रधान आदि सभी राजपुरुषों को भी आमंत्रित किया था । सब ने राजा की संयम – ग्रहण करने की तीव्र तमन्ना देखकर कहा – "अब महाराजा की संयम अंगीकार करने की उत्कृष्ट भाव हैं । किसी भी मूल्य पर ये रुकनेवाले नहीं हैं और युवराज राज्य का भार वहन करने योग्य हैं । अतः युवराज का राज्याभिषेक करके महाराजा को संयमग्रहण करने की आज्ञा दे देनी चाहिए, ऐसा हमारा मत है । अतः सब ने एकमत होकर शुभ दिवस में महाबल कुमार का राज्याभिषेक किया । शास्त्रकार कहते हैं – *"जंनवरं महब्बलं कुमार रज्जे ठावइ ।"* महाबल कुमार को राजगद्दी पर बिठाया । अब वह राजा बने । राजा महाबल कुमार ने पिताजी से कहा – "पिताजी ! आप संयम ग्रहण कर रहे हैं तो मैं भी भविष्य में आपके जैसा संयमी बनूँ, मुझे ऐसे आशीर्वाद देना ।" अब बलराजा मुनि दीक्षा लेंगे; उसके भाव यथावसरे ।

धर्मघोष अनगार की वाणी सुनकर बलराजा को संसार की असारता समझ में आ गई । वह गुरु को वन्दन करके कहते हैं - "गुरुदेव ! आपने मुझे संसार के दावानल से निकलने का उपाय बताया । अतएव मैं घर जाता हूँ और अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके स्वयं दीक्षा ग्रहण करूँगा ।" धर्मघोष अनगार को इस प्रकार कहकर बलराजा अपने महल में आये । बोलो, आपमें से किसी का ऐसा भाव है क्या ? वजुभाई, हीराभाई आदि भाईयों में से कोई तो यों कहो कि महासतीजी ! चौमासा पूर्ण होने के पश्चात् मैं दीक्षा ग्रहण करूँगा । (हँसाहँस) ।

बलराजा ने घर आकर धारिणी प्रमुख अपनी १००० रानियों तथा महाबल कुमार के समक्ष अपनी दीक्षा अंगीकार करने का अभिगम व्यक्त किया । महाबल कुमार कहता है - "पिताजी ! अभी तो मैं छोटा हूँ । क्या आप मुझ पर राज्य का भार डालकर दीक्षा ग्रहण करेंगे ?" धारिणी आदि रानियों को भी यह सुनकर बहुत दुःख हुआ । ये सब राजा को संसार (गृहस्थ जीवन) में रहने के लिए बहुत आग्रह करते हैं । बलराजा ऐसा विचार नहीं करते हैं कि ये सब बहुत रो रहे हैं, तो कुछ समय तक रुक जाऊँ । अब बलराजा महाबल कुमार का राज्याभिषेक करेंगे और सबको समझएँगे, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १६

आषाढ़ वदी ९, मंगलवार | ता. २०-७-७६

मानवजीवन का सही मूल्यांकन करो

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

पूर्वकृत महान् पुण्य के प्रभाव से जैनधर्म जैसा सर्वोत्तम धर्म मिला । वीतराग भगवान् जैसे जगत्-वत्सल, अहिंसामूर्ति, परमात्मा महावीरस्वामी का उत्तराधिकार मिला है । त्यागी, तपस्वी, उपकारक, जीवमात्र का कल्याण करने-करानेवाले ऐसे महान् साधु-महात्माओं का सत्संग मिला है । देवों को भी दुर्लभ सामग्री से युक्त उत्तम मानवभव मिला है । इस भव में ये सब (शुभ साधन) प्राप्त हुए हैं, वह तो पुण्यभव की कमाई है, वह तो साफ हो रही है । आगामी भव के लिए पाथेय कब बांधोगे ? लाडी, (गृहिणी), वाड़ी (गृह-बंगला) और गाड़ी (वाहन) के मोह में कहाँ तक पड़े रहोगे ? वर्तमान भव में

कपटजाल मालूम होता है । राजा ने नकली विद्युत्प्रभा से पूछा - "अरी ! तेरे साथ सदा सर्वत्र रहनेवाला वह बगीचा क्यों नहीं दिखाई देता ?" इस पर वह स्त्री बोली - "स्वामीनाथ ! अभी उस बगीचे को तो मैं अपने पीहर रखकर आई हूँ । कुछ दिनों के बाद उसे बुला लूंगी ।" यह लड़की भी अपनी माँ की तरह दंभी थी । जवाब देने में वाचाल और चतुर थी । परन्तु राजा को उसके जवाब से सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ । उसकी माता मन में समझ रही है कि मेरी बेटी राजा की रानी हो गई । परन्तु यहाँ राजा को उस पर शक पड़ गया । इस कारण वह नये-नये प्रश्न पूछ रहे हैं । वह लड़की जैसे-तैसे उत्तर देती है, परन्तु पाप कहाँ तक छिपा रह सकता है ? बादलों में चद्रमा तथा रूई लपेटी आग छिप सकती हो तो पाप छिपा रह सकता है !" असली विद्युत्प्रभा इस ओर कुँए में पड़ी है । दूसरी ओर नकली विद्युत्प्रभा से राजा सन्तुष्ट नहीं हो रहे हैं । अतः यह पाप किस प्रकार प्रकट होगा और विद्युत्प्रभा का कुँए में गिरने के बाद क्या हुआ ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - १७

आषाढ़ वदी १०, बुधवार | ता. २१-७-७६

सद्गुरुओं की पावन छाया में

उपस्थित सतीमण्डल, सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज घाटकोपर संघ के आंगन में दो पवित्र पुरुषों की पुण्यतिथि मनाने का पवित्र दिवस है । पू. छगनलालजी महाराज और पू. शामजी महाराज, ये दोनों महान् पुरुष थे । ऐसे पवित्र सद्गुरुदेवों के गुणगान करते हुए अपना हृदय नाच उठता है ! उसका क्या कारण है ? ये हमारे परम उपकारी पवित्र गुरुदेव संयम अंगीकार कर उत्तम साधना करके सांसारिक बन्धनों को काटकर मोक्ष की ओर प्रयाण करने का परम पुरुषार्थ करके जीवन जी गए है तथा दूसरे जीवों को भी प्रेरणा देते गए हैं । इन सद्गुरुओं का स्मरण करने से पहले एक तथ्य पर विचार करें कि सच्चा गुरु किसे कहा जाए ?

सिद्धान्तानुसार जिनकी प्ररूपणा हो, और जो पंच-महाव्रतधारी हों, वे सभी सुगुरु हैं । राग-द्वेषादि अठारह दोषों से रहित, वीतराग जिनेश्वरदेव, ये हमारे देवाधिदेव अरिहन्त भगवान् हैं । उनके द्वारा प्ररूपित आगम के अनुसार जिनकी श्रद्धा-प्ररूपणा हो ऐसे महाव्रतधारी त्यागी साधु सुगुरु हैं । और जिनेश्वर अरिहंत भगवन्तों द्वारा कथित दयामय धर्म सद्धर्म है । इस प्रकार सुदेव-सुगुरु और सुधर्म को माननेवाला सच्ची श्रद्धावाला सम्यग्दृष्टि है, और आराधक है । श्रीजिनेश्वर देव का वचन सत्य है, यह श्रद्धा जबतक

मिले । प्राप्त हुए इस सुनहरे अवसर को चूको मत, खोओ मत ।" धर्मघोष मुनिवर की वाणी सुनकर बलराजा को संसार दावानल जैसा प्रतीत होने लगा । उन्हें लगा कि यह संसार संयोग और वियोग का घर है । संसार का (वैषयिक) सुख क्षणिक है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के चौदहवें अध्ययन में भगवान् महावीर ने फरमाया है –

खणमित्त-सुक्खा बहुकाल-दुक्खा, पगाम-दुक्खा, अणिगाम-सुक्खा ।
संसार-मोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।।

–उत्त. सू. अ-१४, गा-१३

भावार्थ यह है कि (काम-भोग सम्बन्धी) सुख तो क्षणमात्र है, परन्तु (उनके फलस्वरूप नरकादि में) दुःख तो बहुत काल तक भोगना पड़ता है । फलतः (कामभोग-सेवन से) (शारीरिक-मानसिक) दुःख तो अधिकरूप से भोगना पड़ता है, जबकि (उनसे प्राप्त होनेवाला) सुख बहुत ही थोड़ा है । फिर ये (कामभोग संसार के बन्धन के कारण होने से जन्म मरणादि रूप) संसार से मोक्ष (मुक्ति) के पूर्णतः प्रतिबन्धक (विपक्षीभूत) है । अधिक क्या कहें, विश्व के सारे अनर्थों की खान अगर कोई है तो ये विषयभोग ही है ।"

यह सुनकर बलराजा को भी संसार के समस्त सुख अनर्थ की खान सरीखे प्रतीत होने लगे । हृदय में वीतरागवाणी की चोट लगी, फिर तो उन्हें संसार में सर्वत्र दुःखों के दर्शन-अनुभव होने लगे । वीतरागवाणी सुनकर उन्हें यह निश्चय हो गया कि संसार का एक भी स्थान दुःख रहित नहीं है । तथा यह दुःख किन कारणों से है ? यह भी अब उन्हें भलीभांति समझ में आ गया । बन्धुओं ! बलराजा को तो यह बात भलीभांति समझ में आ गई, तुम्हें समझ में आई या नहीं ? देखो, तुम नहीं समझे हो तो मैं तुम्हें समझाती हूँ । सुनो – इस संसार के सभी सुख किस कारण से हैं ? संसार में (जन्म-मरणादि) दुःख होते हैं, वे शरीर के कारण से हैं । यह एक शरीर न हो तो जीव (आत्मा) को अकेले को कोई दुःख नहीं है, परन्तु यह जब से शरीर में प्रविष्ट हुआ, तब से इसे दुःख भोगना पड़ता है । अग्नि अग्निरूप में रहे, तबतक उस पर कोई घन की चोट नहीं मारता, परन्तु अग्नि जब लोहे में प्रविष्ट हो जाती है, तब उस पर घन की धड़ाधड़ चोट पड़ती है । अग्नि लोहे में प्रविष्ट हुई कि उसपर घन का धनाधन प्रहार होता है, इसी प्रकार जीव (आत्मा) जब मोहराजा के घर में प्रविष्ट होता है, तब उस पर कर्मराजा के घन की (कटु-असह्य फल की) चोट पड़ती है । आकाश सर्वत्र व्यापक है । पर वह किसी का आश्रय नहीं लेता, वह निर्लेप है । ऐसी स्थिति में कोई उस पर प्रहार नहीं करता । उसी प्रकार यह जीव भी आकाश की तरह आश्रय-विहीन हो जाए तो किसी बात की पीड़ा नहीं होगी । समझो, बन्धुओं ! ऐसे दुःख के कारणों के प्रति राग क्यों करना चाहिए ? यह शरीर चारों गतियों के दुःखों का दलाल है । आकाश पर कोई घन-प्रहार नहीं करता, क्योंकि यह किसी में मिश्रित नहीं होता । अग्नि को भी कोई घन से पीटता नहीं, मगर वह लोहे में मिश्रित

सुधारने और संयम में स्थिर करने का मार्ग अपनाया। परन्तु आज किसी भी साधक के अन्तरमन में क्या है ? इस बात को जाननेवाले ज्ञानी महापुरुष नहीं हैं, फिर अपने दोषों को जानते हुए भी जिन्हें सुधरने की तमन्ना नहीं है, दोषमुक्त होने की अत्कट इच्छा नहीं है, उन्हें तो संघगुरु आचार्य या दीक्षागुरु भी सुधारने में समर्थ नहीं हैं।

हाँ तो, रूप के विषय में चर्चा चल रही थी। श्रेणिकराजा अनाथीमुनि का रूप देखकर विस्मित और चकित हो गए; इस पर विचार करिए कि अनाथीमुनि के आगे श्रेणिकराजा को अपना रूप फीका लगता होगा न ? एक मनुष्य की चमड़ी का रंग गेहुँआ है, परन्तु उसे भूख नहीं लगती, वह खुराक ले नहीं सकता। इस कारण रक्ताल्पता का रोग होने से उसका चेहरा फीका पड़ गया हो, उसकी चमड़ी का रंग सफेद दिखता है। एक दूसरा मनुष्य है, जिसकी चमड़ी स्वाभाविक गोरी है। बताइए, इन दोनों में शोभा किसकी अधिक है, जो नीरोगी है, उसकी ही शोभा बढ़कर है; क्योंकि सफेद चमड़ीवाला तो रोगी है, इस कारण उसका रूप फीका प्रतीत होता है। यही अन्तर श्रेणिकराजा और मुनि के रूप में था। राजा श्रेणिक का रूप केवल चमड़ी का था। जबकि मुनि का रूप चमड़ी का तो था ही, साथ ही उनके चारित्र एवं तप के तेज का रूप असाधारण था। उनके ललाट पर ब्रह्मचर्य का तेज चमक रहा था जो कि चमड़ी के आवरण को भेदकर अन्तर का तेजस्वी रूप पारदर्शी होकर चमक रहा था। इस कारण महाराजा श्रेणिक की अपेक्षा मुनि का रूप उत्कृष्ट था।

जिस महिला को लेकर शिवाजी के सैनिक आए थे, उसका रूप भी कम नहीं था, किन्तु उसे देखकर शिवाजी का मन चलायमान नहीं हुआ। अपितु वे सिंहासन से उठकर उस सुन्दरी के चरणों में गिर पड़े और बोले - "धन्य हो माता तुझे। तू कितनी रूपवती है ? अगर मैंने तेरे उदर से जन्म लिया होता तो मैं भी इतना रूपवान होता !" शिवाजी के ऐसे उद्‌गार सुनकर पर्दे के पीछे बैठी हुई माता जीजाबाई का हृदय हर्ष से नाच उठा। वह मन ही मन बोल उठी - 'धन्य है शिवा तुझे ! तेरे जैसे वीर पुत्र की मैं माता बनी हूँ। तूने मेरा दूध दीपाया है। मैं वीरपुत्र की माँ बनने के लिए भाग्यशाली हुई हूँ।'

छगनलाल महाराज की पुण्यतिथि

आज छगनलालजी महाराज की पुण्यतिथि है। उनकी स्वर्गारोहणतिथि तो वैशाख वदी १० की है। परन्तु चातुर्मास काल में धर्माराधना अधिक हो, इस दृष्टि से खंभात संघ ने आषाढ़ वदी १० की तिथि निर्धारित की है। इस पुण्यतिथि के दिन हम गुरु के गुणगान करते हैं। गुरुदेव के गुणगान करने से अपने जीवन में रहे हुए अवगुण नष्ट हो जाते हैं। तीर्थंकर नामकर्म के उपार्जन करने के जो बीस बोल बताये हैं, उनमें *'गुरु-थेर-बहुस्सुए-तवस्सीसु'* इस गाथा के अनुसार एक बोल है - गुरु की भक्ति करने से, गुरु के गुणगान करने से भी जीव तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है। गुरु के गुणगान करने से इतना महान् लाभ है। परन्तु आज तुम प्रायः किसका गुणगान करते

है । जिसमें अपनी इच्छानुसार प्रवेश करने और निकलने की छूट नहीं है, उसे घर कैसे कहा जा सकता है ? बिलकुल नहीं, क्योंकि जिसमें अपनी इच्छानुसार प्रवेश करना रहना और निकलना नहीं हो सकता, उसे कैद कहा जाता है, घर नहीं । कोर्ट के फैसले के अनुसार जिस कैदी की सजा की जितनी कालावधि निश्चित की है तदनुसार उसे जेल में रहना, प्रविष्ट होना या निकलना है । इसी प्रकार कर्मराजा के ओर्डर के बिना संसार रूपी जेल का कैदी अपनी इच्छानुसार वहाँ प्रवेश, निवास या निष्कासहन नहीं कर सकता । तात्पर्य यह है कि कर्मराजा के ओर्डर के अनुसार ही उसे शरीर में प्रविष्ट होना, रहना और बाहर निकलना है । दूसरी दृष्टि से सोचें तो तत्त्वदृष्टि से यह शरीर कैदखाना और अशुचि का कारखाना है, क्योंकि अच्छी से अच्छी चीज खा लेने पर वे चीजें अशुचिमय होकर (मलमूत्रादि के रूप में) बाहर निकलती हैं । इस कारण यह शरीर अशुचि का कारखाना है । पुण्य की प्रचुरमात्रा में संचित पोटली देकर खरीदा हुआ यह शरीर है, फिर भी यह शरीर (आधि-व्याधि-उपाधि तथा जन्म-जरा-मरणादि का जनक) होने से आत्मा के लिए दुःखकारक है । अतः अब भविष्य में ऐसा दुःख न भोगना हो, दुःखों से भयभीत होते हो तो नये कर्मबन्धन न करो, पुराने बांधे हुए कर्मो को समभाव से भोगकर – सहन करके क्षय कर दो ।

बन्धुओं ! पिछले भवों (जन्मों) में जीव ने जो (शुभाशुभ) कर्म बांधे हैं, उनका फल इस समय भोग रहे हैं । उन कर्मो का फल भोगते हुए यदि आर्तध्यान आए तो जीव नये कर्म और बांध लेता है, पुराने कर्मो के फल भोगे, वे तो नफे में गए और (थोड़ी-सी अकाम निर्जरा हुई) नये कर्म और बांध लिये । अतः यदि आपको सचमुच दुःखों से सच्चा डर लगता हो तो आ पड़े हुए दुःखों को सत्कार करके समभावपूर्वक कर्मफल भोगकर (उन कर्मो को) बिदा करे और नये दुःखों को आमंत्रण न दो । पुराने बांधे हुए अशुभ कर्म उदय में आते हैं, तो दुःख आते हैं । उन दुःखों को देखकर यदि आप घबराकर हाय-तोबा मचाते हैं, आर्तध्यान करते हैं, रोते हैं, विलाप करते हैं, निमित्तों को कोसते हैं तो आप कर्मो को निकालने का नहीं, अपितु नये कर्मो को बुलाने का उद्यम करते हैं । अतः नये कर्म न बंधे, इसके लिए सावधान रहकर, अब नये कर्म न बंधे और ऐसे (अशुभ कर्म फल जनित) दुःख बार-बार न आएँ, ऐसा उद्यम करो । अगर तुम सच्चे माने में दुःख से भयभीत हो तो दुःख के कारणभूत शरीर के प्रति मोह न रखो । इसे खिलाओ-पिलाओ, वह भी इससे आत्म-साधना करके दुःख से मुक्त होने के उद्देश्य (हेतु) से सभी चर्या करो । साधु-साध्वी वर्ग शरीर को पुष्ट करने के हेतु से आहार नहीं करते । वे शरीर को एक किराये का मकान मानकर उसे किराया (भाड़ा) देते हैं । जिस शरीररूपी मकान में स्वयं रहते हैं, वह अकारण ढह न जाए, इस दृष्टि से उसे सशक्त और स्वस्थ रखने के लिए आहार देते हैं । बस, एक ही उद्देश्य है कि मैं इस शरीर में हूँ, वहाँ तक इससे (तप-त्याग-संयमादि-साधना के लिए) कसकर काम लेकर कर्मो का कर्ज चुका दूँ, ताकि कर्मराजारूपी साहूकार पुनः-पुनः कर्ज वसूली करने के लिए न आएँ ।

मनुष्य क्यों न हो, गुणोदधि गुरुओं के सत्संग के बिना तत्त्व को नहीं जान सकता। अतः समझदार और होशियार मनुष्य को तत्त्वज्ञान पाने के लिए गुरु के समागम में आना आवश्यक है। व्यवहार में मनुष्य चाहे जितना चतुर हो, चाहे जितना धन उसने संचित कर लिया हो, महान् धनाढ्य हो जाए, मगर अन्त में तो आयुष्य पूर्ण होने पर धन, धाम, साधन आदि सब यह छोड़कर जाएगा, यह तो निश्चित है न ? तो अब संसार की मोह-माया छोड़कर सद्गुरु का समागम करो। निःस्वार्थभाव से तुम्हें कल्याण का मार्ग बताने और कल्याण करानेवाले ऐसे धर्मगुरु फिर नहीं मिलेंगे। दुनिया में गुरु तो बहुत-से होते हैं, किन्तु गुरु-गुरु में बहुत अन्तर होता है, इसे समझो -

काष्टे च काष्टेऽन्तरता यथाऽस्ति, दुग्धे च दुग्धेऽन्तरता यथाऽस्ति।
जले जले चान्तरता यथाऽस्ति, गुरौ गुरु यान्तरता यथाऽस्ति॥

भावार्थ यह है कि बबूल की, शीशम की, सागवान की, आम की, ईमली की लकड़ी में जैसे गुण और विशेषता की दृष्टि से बहुत अन्तर होता है, वैसे ही दूध दूध में, पानी-पानी में भी अन्तर होता है। इन सबमें जैसे चन्दन की लकड़ी मूल्यवान होती है, इसी प्रकार गाय, भैंस, बकरी का दूध होता है, तथैव थोहर और आक का भी दूध होता [illegible] केन्तु आक और थोहर का दूध तो [illegible] अन्तर है। किसी गाँव का पानी खुराक को पचानेवाला होता है, कहीं का पानी खनिज पदार्थ अधिक होने से पचने में भारी होता है। उसे पीने से भूख नहीं लगती। इसी प्रकार गुरु-गुरु में बहुत ही अन्तर होता है। कई गुरु ऐसे होते हैं, जो उसका धनिक भक्त ब्लेकमार्केट करता हो, बेईमानी और ठगी करता हो, तोल-नाप में गड़बड़ करता हो तो यों सोचकर कि इसे इन बुराइयों को छोड़ने का तथा ऐसा अन्याय-अनीति का धंधा करने से तिर्यंच गति या दुर्गति में जाना पड़ेगा, ऐसा कहूँगा तो मेरे पास आना ही बंद कर देगा, इस लिहाज में आकर मुखमंगलियापन करते हैं। ऐसे गुरु स्वयं भी डूबते हैं और दूसरों को डुबाते हैं। इसके विपरीत सच्चे गुरु तो किसी के लिहाज में नहीं आते, वे अन्याय-अनीति तथा पाप करनेवाले को प्रिय शब्दों में स्पष्ट कह देते हैं कि ऐसे अशुभ आचरण करोगे तो दुर्गति में जाना पड़ेगा। अतः पाप कार्यों को छोड़ दो। फिर भक्तों को आना हो तो आएँ, नहीं आना हो तो न आएँ, परन्तु वे मुलाहिजे में आकर सच्ची बात कहने से नहीं डरते। अतः ऐसे सद्गुरु को परखकर उसके अनुयायी बनो। कामी, कपटी, नशेबाज लोभी गुरुओं के चंगुल में मत फँसो। जहाँ-तहाँ अपना मस्तक मत झुकाओ।

छगनभाई बहुत होशियार थे। परन्तु अभी तक उन्हें सच्चे गुरु का समागम नहीं हुआ था। मित्र के साथ उपाश्रय में आने और गुरुवचन सुनने से उन्हें सद्धर्म की प्राप्ति हो गई। फिर तो उन्हें ऐसा रस लगा कि जब भी टाइम मिलता, वे उपाश्रय में पहुँच जाते और धर्म का अभ्यास करते। अल्प समय में ही उन्होंने जैनधर्म का बहुत-सा तत्त्वज्ञान

चित्त और ब्रह्मदत्त (सम्भूति) पूर्वभव में सगे भाई थे। दोनों ने साथ-साथ दीक्षा ली थी। उस समय ब्रह्मदत्त के पूर्वभव के जीव सम्भूति ने सनतकुमार चक्रवर्ती की ऋद्धि देखकर मुनि-अवस्था में नियाणी (निदानरूप कुसंकल्प) कर लिया था कि 'अपने तप-संयम के फलस्वरूप मैं आगामी भव (जन्म) में ऐसा चक्रवर्ती बनूं।' इस नियाणे के प्रबल फलस्वरूप सम्भूतिमुनि आगामी भव में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना और चित्तमुनि के जीव ने दीक्षा ली। जाति-स्मरण ज्ञान के बल से चित्तमुनि का जीव साधुजीवन में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को ढूंढते-ढूंढते आए। उनको ब्रह्मदत्त के (भोगी) जीवन पर दया आई कि यह मेरा पूर्वभव का भ्राता राजमुकुट की शोभा में पड़ गया है और कामभोग के कीचड़ में गले तक डूब गया है। अतः मैं उसे धर्मोपदेश देकर उस कीचड़ से बाहर निकालूं। अतः धर्म का उपदेश देते हुए चित्तमुनि कहते हैं - "हे ब्रह्मदत्त ! यह तेरा राजमुकुट तथा चक्रवर्ती का पद तू नहीं छोड़ेगा तो ये तुझे नरक का (रिजर्वेशन) टिकट देंगे। मुझे तेरे पर दया आ रही है, इसलिए कहता हूँ कि इन अनिष्टों को भलीभांति समझकर छोड़ दे।" परन्तु विष्टा के कीड़े को विष्टा में ही आनन्द आता है न ? इसे विष्टा में से उठाकर कोई कमल के फूल पर लाकर रख दे तो वेचारा दम घुटकर मर जाय। इसे विष्टा में ही पड़े रहना अच्छा लगता है। यह उसी में उत्पन्न होता है और उसी में मर जाता है। ब्रह्मदत्त कहता है - "भाई ! मैं महान् चक्रवर्ती हूँ और तुम घर-घर भीख के टुकड़े मांग-मांगकर खाते हो ! मुझे तो तुम पर दया आती है। तुम्हें जब मैं मांगते हुए देखता हूं तो लज्जा से मेरा सिर झुक जाता है। अतः यह साधु का वेष छोड़कर मेरे महल में आ जाओ। आगे उसने चित्तमुनि से कहा :

"उदय, उच्च, मधु, कर्क, ब्रह्म आ; सुख महालय ने वळी राज्य आ।
रमणी रम्य सुवैभव भोग आ, तप-दुःखो तजी ए नित्य भोगवो ॥"

"मेरे यहाँ उदय, उच्च, मधु, कर्क और ब्रह्म, ऐसे पाँच-पाँच प्रकार के बड़े-बड़े राजमहल हैं। ऐसा महान् विशाल राज्य है। मनोज्ञ रम्य रमणियों के साथ तुम्हारा विवाह करा दूंगा। तुम्हें संसार-सुख की जो भी सामग्री चाहिए, उसकी पूर्ति मैं कर दूंगा। यह तप तो दुःखदायक है, इसे छोड़कर आप मेरे राजमहल में आ जाओ।"

देवानुप्रियों ! जीव की यह कैसी उलटी मति है ! संत ने इस पर दया की, जबकि यह संत पर दया करने बैठा ! यहाँ भी ऐसे कई जीव हैं। कोई व्यक्ति श्रावक धर्म की आराधना नहीं करता, केवल धन कमाने में ही जीवन की सफलता मानता है, ऐसे श्रावक को संत-सतीजी कहते हैं - "थोड़े समय के लिए भी धर्मस्थानक में आओ और संत-समागम करो। ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। अगर (ऐसे सुनहरे अवसर मिलने पर भी) धर्माचरण, धर्मध्यान नहीं करोगे, तो तुम्हारा (भविष्य में) क्या होगा ?" इस पर वह वेचारा यों कहता है - "महासतीजी ! तुम्हारा यह सब वजन उठाये फिरना, घर-घर गौचरी जाना, यह सब कष्ट देखकर हमें आप पर दया आती है। (हँसाहँस), भला ! दया तो तुम्हारे ऊपर

कि - "तुम्हारी सगाई की है, उस कन्या का क्या होगा ? सोच तो सही, क्या बीतेगी उस पर ?" छगनभाई ने कहा - "मैं उसे बहन बनाकर चूंदड़ी ओढा दूंगा ।" फिर काका ने कहा - "हम तो क्षत्रिय हैं । तेरा जैन साधुओं के साथ कैसा, (क्या) वास्ता ? जैन साधु तो मैले-कुचैले रहते हैं । इसकी अपेक्षा दीक्षा लेनी हो तो अपने धर्म में ही दीक्षा ले ।" उन्होंने कहा - "मैंने जिन्हें गुरु माने हैं, वे ही सच्चे गुरु हैं । अतः अब मैं अन्यत्र कहीं दीक्षा लेना नहीं चाहता ।" दीक्षा लेने की उनकी तीव्र और उत्कट भावना देखकर काका-काकी ने उन्हें दीक्षा की आज्ञा दे दी । अतः संवत् १९४४ के पोष वदी १० के पवित्र दिन पूज्य हरखचन्दजी महाराज के पास आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की और गुरु के प्रति समर्पित हो गए ।

गुरु के सान्निध्य में रहकर आपने खूब ज्ञानाभ्यास किया, व महान् प्रतापी पुरुष हुए । उनमें ज्यों-ज्यों ज्ञानवृद्धि होती गई, त्यों-त्यों जीवन में नम्रता, सरलता, क्षमा, संयम में पराक्रम आदि अनेक गुण प्रगट होते गए । उन्होंने जगह-जगह विचरण कर अन्य धर्म के लोगों को भी जैनधर्म प्राप्त कराया । वसो गाँव में जैनों के दस घर भी नहीं थे, वहाँ भी उन्होंने पटेल, काछिया आदि को जैनधर्मी बनाया । अभी तक उन लोगों में जैनधर्म की परम्परा चली आ रही है । फिर तो उन्होंने कई गाँवों में विचरकर हिन्दू, मुस्लिम, पटेल, शेख, लुहाणा आदि अनेक लोगों को जैनधर्म का बोध दिया । स्वयं शरीरबल के धनी और शूरवीर क्षत्रिय थे, इसलिए तप-संयम की आराधना में प्रमाद नहीं करते थे । वे ऐसे तेजस्वी, ओजस्वी और प्रतापी थे कि जब व्याख्यान वांचते, तब ऐसा लगता था, मानो सिंहगर्जना कर रहे हों । उनकी वाणी में अलौकिक जादू था । जिससे उनकीवाणी के प्रभाव से जैन-जैनेतर लोग झटपट धर्माचरण करने लग जाते । उन्होंने खंभात-सम्प्रदाय में अनेक लोगों को प्रतिबोध देकर साधुधर्म में दीक्षित किये थे । उनके प्रथम शिष्य थे - हमारे तारणहार, जीवननैया के कर्णधार बा.ब्र. पूज्य रत्नचन्द्रजी महाराज साहब । गुरु भी क्षत्रिय थे तो शिष्य भी क्षत्रिय थे । पू. गुरुदेव रत्नचन्द्रजी म.सा. रत्न के समान एक तेजस्वी शिष्य रत्न थे । पूज्य छगनलालजी म.सा. और पू. रत्नचन्द्रजी म.सा. को देखकर तो लोग कहते थे कि मानो यह महावीर और गौतम की जोड़ी है । पू. रत्नचन्द्रजी म.सा. ऐसे अन्तेवासी शिष्य थे कि वे सदैव गुरु की सेवा में हाजिर रहते थे । पू. गुरुदेव श्री छगनलालजी म.सा. अपने सात शिष्यों के साथ १९७५ में मुंबई पधारे । वहाँ उन्होंने कच्छी की वाड़ी में चातुर्मास किया । उस समय मुंबई में धर्मस्थानक नहीं था । अतः किराये से कच्छीवाड़ी लेकर उनका चातुर्मास कराया गया था । चातुर्मास के दौरान गुरुदेव ने श्रावकवर्ग को इशारा किया कि जैन संतों के लिए वाड़ी किराया देकर ली जाए, और किराया भरना पड़े, यह योग्य नहीं है । उस समय मेघजी थोभण जीवित थे । अतः उन सभी श्रावकों ने मिलकर कांदावाड़ी में उपाश्रय बनाया । कांदावाड़ी में जहाँ अभी आयंबिल खाता का मकान है, वह पहले उपाश्रय था । पूज्य गुरुदेव अजमेर साधु-सम्मेलन में पधारे थे । इस प्रकार पू. गुरुदेव ने देश-परदेश में विचरण करके धर्मध्वज फहराया था ।

जो अच्छी चीज आई हो, उसे पू. गुरुदेव या गुरुणीजी को देती, फिर तपस्वी, ग्लान (रुग
और नवदीक्षित साधुओं को देकर शेष बचा हुआ स्वयं सेवन करना । 'अच्छा स
स्वादिष्ट आहार भक्ति के लिए और बाकी का बचा हुआ आहार मेरे लिए,' इस री
से हृदय के उल्लासपूर्वक शुद्ध भावना से गौचरी करके आहार-पानी लाकर सब
करा कर ऐसी अनुमोदना करो कि 'अहो ! मेरे लिए आज धन्य दिवस है । मुझे ऐ
भक्ति का महान् लाभ मिला । ऐसा लाभ मुझे रोज मिलता रहे तो कितना अच्छा ?
इन बुजुर्ग और दूसरे संतों ने मुझ पर महान् अनुग्रह करके मेरे द्वारा लाये हुए आहार-पा
का स्वीकार किया । इसके लिए मैं उनका महान् उपकार मानता हूँ' ऐसी भाव
से ओतप्रोत होकर जो साधु/साध्वी आहार-पानी लाते हैं और सबको कराते हैं,
महती कर्म-निर्जरा कर लेते हैं ।

बन्धुओं ! साधु गौचरी जाएँ तब ऐसी भावना आते हैं । इस रीति से संयम
प्रत्येक कार्य में साधु वर्ग शुद्ध भावनापूर्वक संयम के हेतु से प्रवृत्ति करे तो मह
कर्म-निर्जरा कर सकता है । संयमी साधुवर्ग का एक भी कार्य ऐसा नहीं है, कि जिस
कर्मबन्धन हो । जबकि तुम्हारे संसार में एक भी कार्य ऐसा नहीं है, जिसमें कर्मबन्ध
न हो । संसार में पिता वृद्ध हो जाए, कमाता बंद हो जाए, तब उसकी प्रायः कौड़ी
कीमत नहीं होती । बाप बीमार पड़ जाए तो बेटे उससे मुँह फेर लेते हैं, उसके सामने
नहीं देखते । यद्यपि यह एकान्ततः सभी के लिए मैं ऐसी बात नहीं कहती । कई पुण्यव
जीव ऐसे भी होंगे कि माता-पिता को दुःख हो, ऐसा एक भी कार्य वे पुत्र न
करते । परन्तु ऐसे पुत्र बहुत ही कम मिलेंगे । अधिकांश पुत्रादि तो ऐसे देखने में अ
हैं कि उनकी वृत्ति-प्रवृत्ति देखकर तो ऐसा लगता है कि सभी स्वार्थ के सगे हैं । बोल
ऐसा है या नहीं ? हमारे साधु जीवन में गुरु वृद्ध या बीमार हो जाता है तो शिष्य आ
उसकी खूब सेवा करते हैं । साधु या साध्वी की जितनी दीक्षा-पर्याय बढ़ती है तो उत
ही उसका सम्मान बढ़ता है । पिता-पुत्र की अपेक्षा भी शिष्य आदि गुरु के सम्मान व
सुरक्षा करते हैं । ऐसा सुन्दर है – संयम का स्थान । इसमें किसी प्रकार चिन्ता या उपा
नहीं है । फिर भी साधारण संसारी जीवों को संयम में प्रायः अच्छा नहीं लगती, इसक
मुख्य कारण है – संसार का मोह ।

बलराजा के मन से संसार का मोह उतर गया । संयम लेने का मन में निश्च
किया । मुनिवर को वन्दन करके घर आए । आपलोग तो प्रतिदिन दर्शन करते
धर्मोपदेश सुनते हो, मगर – जीवन में कोई परिवर्तन या सुधार नहीं होता । बलराजा
तो धर्मघोष मुनिवर की देशना सुनी, दर्शन किए, ये सब फलीभूत हो गए । उन्होंने दर्शन
वन्दन-प्रवचन-श्रवण का पूरा लाभ लिया । घर आकर महाबल कुमार को अपने पा
बुलाया । साथ ही धारिणी – प्रमुख १००० रानियों को बुलाकर राजा ने अपनी दीक्ष
लेने की भावना व्यक्त की । यह सुनकर महाबल कुमार और रानियों को बहुत दुःख
हुआ । सब रोने लगा । रागभाव प्रत्येक व्यक्ति को रुलाता है । महाबल कुमार कहत

जीवन में से एक भी गुण अपना लें और उनके जैसे कर्मठसाधक बनकर जीवन सार्थक करें। आज गुरुदेव के परिवार में १० महाराज साहब एवं १८ महासतीजी हैं। यह सब प्रताप पू. गुरुदेव का है। हम उनके जैसे पवित्र बनें, ऐसी मंगलभावना सहित दोनों गुरुदेवों को भावभीनी अन्तःकरण से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ।"

बा.ब्र. कुमुदप्रभा महासतीजी का प्रवचन

आज से नौ दिन पहले बा. ब्र. शारदाबाई महासतीजी ने जाहिरात की थी, आषाढ़ वदी १० के दिन पू. शामजीस्वामी की पुण्यतिथि आती है। वह दिवस आज आ पहुँचा। समय को बीतते कितनी देर लगती है ?

अनादिकाल से जीव संसार में भटक रहा है। इस रखड़पट्टी को रोकने के लिए जीव को संत-समागम की आवश्यकता है। पापी से पापी जीवों का उद्धार करनेवाला हो तो वह संत ही है। संत के समागम से कई पापी जीव पवित्र मानव बन गए, ऐसे अनेक दृष्टांत हैं।

गुरु दीपक के समान हैं। दीपक अन्धकार को मिटाता है। वैसे गुरुदेव भी अनादिकाल से आत्मा पर छाये हुए मिथ्यात्व के अन्धकार को दूर करके हमारे जीवन में सम्यक्त्व का दीपक जलाते हैं। जहाँ तक मिथ्यात्व का अन्धेरा नहीं जाता, वहाँ तक सम्यक्त्व का प्रकाश जीवन में नहीं होता। जिन्होंने जीवन में प्रकाश की प्रेरणा दी है, ऐसे तारक पू. गुरुदेव श्री छगनलालजी म.सा. और पू. शामजीस्वामी की आज पुण्यतिथि है।

पू. शामजीस्वामी का जीवन तप, त्याग और संयम से परिपूर्ण था। 'फूल गया और उसकी सुगन्ध रह गई' इस कहावत के अनुसार वे साधकजीवन जीकर चले गए, परन्तु उनके गुण की सुगन्ध अभी तक संघ में फैली हुई है। इस संसार में अनेक जीव जीवन जीकर चले जाते हैं, किन्तु सबको हम याद नहीं करते। हम उन्हीं को याद करते हैं, जिन्होंने जीवन जीना जाना है। पू. शामजीस्वामी का जन्म कहाँ हुआ था ? उन्होंने संयम का पालन किस प्रकार किया था ? उनके जीवन में क्या-क्या विशेषताएँ थीं ? पू. शामजीस्वामी की जन्मभूमि थी कच्छ के रापर तालुके में 'सई' नामक छोटा-सा गाँव। उस पवित्र भूमि में संसार में फिसलने के लिए नहीं, अपितु स्व-पर का उद्धार करने हेतु वि. संवत् १९३४ माघ सुदी १२ के मांगलिक दिवस को माता नवलबहन की कुक्षि से जन्म लिया। पिताजी का नाम था - लक्ष्मीचन्दभाई। ये तीन भाई और एक बहन थे। इनका नाम शामजीभाई रखा गया। बचपन में वह बहुत शरारती थे, चपल थे। उन्हें शान्त बनानेवाले गुरु का मिलन कैसे हुआ ? यह जानने योग्य बात है।

शामजीभाई व्यापार करने हेतु कच्छ छोड़कर मोरबी गये थे। वे गये तो थे गुड़ खरीदने, पर क्या ले आए ? गुड़ खरीदने के पश्चात् मालूम हुआ कि यहाँ मंगलजीस्वामी और करसनजीस्वामी विराजमान हैं। अतः गुड़ एक जगह रखकर वे पहुँचे दोनों

पुण्य-पाप के खेल की कथा

अब आइए विद्युत्प्रभा के जीवन की ओर ! पूर्वभव में की हुई धर्माराधना का कैसा महान् फल मिलता है ? उस पर विद्युत्प्रभा का दृष्टान्त कहा जा रहा था । विद्युत्प्रभा सीमंत (प्रथम गर्भावस्था में) है । महाराजा के आनन्द का पार नहीं है । दूसरी ओर उसकी सौतेली माँ विद्युत्प्रभा का सुख देखकर ईर्ष्या से जल रही है । उसे किसी भी तरह से विद्युत्प्रभा का कांटा निकाल (वध करवा) कर अपनी पुत्री को राजा की रानी बनानी थी । अपनी दुष्ट भावना पूरी करने के लिए वह षड्यंत्र रच चुकी, मगर वह सफल नहीं हुई । कारण यह है कि जिसके पुण्य प्रबल होते हैं, उसका बाल बांका करने में देव भी समर्थ नहीं होते तो यह बेचारी ब्राह्मणी क्या कर सकती थी ? आखिरकार उसने अपने पति को समझाकर विद्युत्प्रभा को बुला लाने के लिए भेजा । विद्युत्प्रभा के पिता ने जब उसे अपने यहाँ भेजने के लिए कहा तो राजा ने स्पष्ट इन्कार कर दिया और कहा, "यह नहीं हो सकता । मैं विद्युत्प्रभा का वियोग नहीं सहन कर सकता । फिर मेरे यहाँ अनेक वर्षों के बाद पुत्र का पालना बंधेगा । इसलिए मुझे रानी को कहीं भेजनी नहीं है ।" इस पर उसके पिता ने (अपनी पत्नी द्वारा सिखाया हुआ) नाटक किया, उसने कहा - "अगर आप मेरी पुत्री को प्रथम प्रसव करने के लिए मेरे यहाँ नहीं भेजेंगे तो मैं पेट में छुरा भोंककर आत्महत्या कर लूंगा ।" यों कहकर उसने जेब में से छुरी निकाली और उसे पेट में भोंकने के लिए तैयार हुआ । अतः राजा को निरुपाय होकर भेजने के लिए हाँ कहना पड़ा । राजा ने विद्युत्प्रभा को भेजना स्वीकार किया तो उसके पिता को बहुत खुशी हुई ।

विद्युत्प्रभा पिता के घर जाकर संकट में पड़ी : विद्युत्प्रभा खूब पवित्र है । उसने पहले का कोई विचार नहीं किया कि 'मेरी सौतेली माँ ने कैसे-कैसे दुःख दिये थे ? उसके यहाँ जाने से मेरा क्या काम है ? फिर मैं महाराजा की पटरानी हूँ, अतः ऐसी सुख-समृद्धि में रह रही हूँ, क्या मुझे वहाँ रहना कैसे अच्छा लगेगा ?' ऐसा जरा भी विचार उसने नहीं किया । विद्युत्प्रभा को भेजने का भी महाराजा को अच्छा नहीं लगा था, परन्तु निरुपाय होकर लाचारी से उसे पिता के यहाँ भेजनी पड़ी । विद्युत्प्रभा राजा की पटरानी थी, इस कारण राजा ने उसकी हिफाजत करने के लिए दास-दासी, नौकर चाकर आदि सब को विद्युत्प्रभा की भलीभांति सुरक्षा करने हेतु हिदायत करके उसके साथ भेजे । अब विद्युत्प्रभा जितशत्रु राजा तथा दूसरी सब रानियों से विदा लेकर पीहर आई । उसे आई देखकर उसकी सौतेली माँ को बहुत खुशी हुई । मानो उसके प्रति अपार प्रेम है, यों बताने के लिए उसे एकदम बांहों में भर लिया । विद्युत्प्रभा को भी लगा कि मेरी माता का मेरे प्रति कितना प्रेम है ? कपटी मानव जितने नाटक न करें, उतने कम हैं ! यह सौतेली माँ भी ऊपर से खूब प्रेम दिखाती है, किन्तु अंतर में विचार करती है कि अब मेरी धारणा पूर्ण हो जाएगी । विद्युत्प्रभा अब तो मेरे हाथ में है । एक दिन इसका खात्मा कर डालूंगी । यों करते-करते सवा नौ महीने पूरे होने पर विद्युत्प्रभा ने एक पुत्र को जन्म दिया । राजा के यहाँ से विद्युत्प्रभा के साथ आई हुई दासियाँ विद्युत्प्रभा का बहुत ध्यान

मंगलजीस्वामी उनकी सेवा में कभी-कभी अपनी शिष्याओं - पू. वेलवाईस्वामी और पू. माणेकवाई स्वामी को भेजते थे। एक दिन वे गिर पड़े, फ्रेक्चर हो गया। प्रबल वेदना होती थी, परन्तु शान्तमूर्ति पूज्य गुरुदेव समभाव से उसे सहन करते थे। कुछ दिनों वाद वे ठीक हो गए। सबको लगा कि गुरुदेव का स्वास्थ्य अब ठीक हो गया है, अब कोई हरकत नहीं। परन्तु हम मन में धारते कुछ और हैं, और होता कुछ और ही। अचानक पू. गुरुदेव को जोरदार हार्ट-एटेक आया। पूज्य गुरुदेव अन्दर से जागृत हो गए कि अब इस रोग के हमले से मैं बच नहीं पाऊँगा। आसपास के क्षेत्रों में समाचार पहुँच गए कि शामजीस्वामीजी की तवियत ठीक नहीं है। जो साधु-साध्वी निकटवर्ती क्षेत्रों में थे, वे पहुँच गए। स्वयं ने यावज्जीव अनशन (संथारा) अंगीकार कर लिया। अपने शिष्यवृन्द से उन्होंने कहा - "नवकार मंत्र का जाप चालू रखो।" अन्त में, सबके बीच में अपूर्व समाधिपूर्वक पू. गुरुदेव ने इस लोक से विदा ली। समग्र जैन समाज को ऐसे गुणी पू. गुरुदेव के जाने से महती क्षति हुई, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है। उनके परिवार में इस समय ५० महासतीजी और २५ विरक्तात्मा बहनें हैं। आज के पवित्र दिवस में प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि हमें उन गुरुदेव जैसा आत्मबल मिले, हममें तप, संयम और ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़े; इसी मंगलभावना के साथ मैं पू. गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। ऐसे गुणों के भण्डार गुरुदेव के जितने गुणगान करें, उतने कम हैं।

पू. कौशल्याबाई महासतीजी का प्रवचन

प्रिय आत्मबन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज पू. छगनलालजी म.सा. की तथा पू. शामजीस्वामी की पुण्यतिथि है। उन पुण्यात्माओं का स्मरण करने हेतु श्रमणी विद्यापीठ से सतीवृन्द तथा भावदीक्षित बहनें भी यहाँ उपस्थित हुई हैं। इस संसार में दो प्रकार के प्राणी निवास कर रहे हैं - एक सामान्य और दूसरे विशेष। भगवान महावीर ने सामान्य और विशेष सभी प्राणियों के लिए एक सूत्र फरमाया - *'नत्थि कालस्स नागमो'* काल का आगमन अवश्यम्भावी है। चाहे सामान्य हो या विशेष, मृत्यु एक दिन अवश्य ही आनेवाली है। सबको ले जाने के लिए वह तैयार रहती है। इस परिवर्तनशील संसार में कौन जन्म नहीं लेता और कौन नहीं मरता ? जो जन्मता है, वह एक दिन मरता है। परन्तु जीवन उसीका सार्थक होता है, जो तप, त्याग और संयम की सौरभ से जीवन-बाग को महकाकर जाता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मरण भी दो प्रकार के बतायें हैं - एक सकाममरण है, दूसरा अकाममरण है। इनमें से जो सकाममरण से मरता है, उसकी महत्ता है, अकाममरण की कोई विशेषता नहीं है। ऐसे प्रतिभाशाली महान् पुरुष मानवभव को पाकर जीवन जीते हुए मृत्यु की कला जान लेते हैं। अन्तिम समय में भी सकाममरण प्राप्त करते हैं। ऐसे महापुरुष विशिष्ट जीवन जीकर सहनशीलता, क्षमा आदि गुणों को आत्मसात् करके इस पार्थिव देह का त्याग कर देवलोक में प्रयाण

सुदृढ़ न हो, तबतक आत्मा (साधना में) आगे नहीं बढ़ सकता। जिनेश्वर देव के वचनों तथा उनके द्वारा बताये हुए तत्त्वों, और सिद्धान्तों पर दृढ़ श्रद्धा होने का नाम सम्यक्त्व है, समकित है। सम्यक्त्व धर्म का बीज है। बीज होता है तो धीरे-धीरे वह वृद्धि पाता-पाता वृक्ष के रूप में परिणत होता है। परन्तु जहाँ बीज का ही ठिकाना न हो, वहाँ (अध्यात्म साधना में) आगे बढने की बात कैसे की जा सकती है?

देवानुप्रियों! जैसे एक (अंक) के बिना केवल बिन्दियों की कोई कीमत नहीं है, वैसे ही श्रद्धा (सम्यक्त्व) रहित ज्ञान और क्रिया की भी कोई कीमत नहीं है। श्रद्धारहित क्रिया द्रव्यक्रिया है। मोक्षप्राप्ति के लिए श्रद्धायुक्त द्रव्य-भावक्रिया आवश्यक है। सम्यक्त्व-युक्त सिद्धान्त की आज्ञानुसार शुद्धभाव से की गई धर्मक्रिया सच्ची आराधना है। ऐसी आराधना की कीमत है। इससे (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप रूप धर्म की उसी आराधना से) मोक्षरूपी महान फल की प्राप्ति होती है।

संक्षेप में, मेरे कहने का आशय यह है कि सुश्रद्धापूर्वक कल्याण कामना से की गई क्रिया का नाम आराधना है। जैसे रागी-द्वेषी सच्चे देव (सुदेव) नहीं कहलाते, वैसे ही लाडी (कामिनी), वाड़ी (घरबार) और गाड़ी (वाहनादि परिग्रह) के मोह में पड़े हुए भी सुगुरु नहीं कहलाते। मान लो कि कोई त्यागी, तपस्वी तो हो, किन्तु उसकी श्रद्धा-प्ररूपणा सिद्धान्तानुसार न हो, अपितु सिद्धान्त-विरुद्ध हो, वह कुगुरु है। फिर भी भले ही वह बड़ा आचार्य हो, अनेक शिष्यों और भक्तों से घिरा हुआ हो, त्यागी, तपस्वी और महा विद्वान हो, मगर उसकी देशना-प्ररूपणा शास्त्रविरुद्ध हो, तो वह कुगुरु है। ऐसा कुगुरु स्वयं तो डूबता ही है, अपने शरण में आनेवालों को भी (संसार-समुद्र में) डुबाता है। जैसे लोहे की नौका स्वयं तो डूबती है, उसमें बैठनेवाले यात्रियों को भी डुबाती है। वैसे ही कुगुरु स्वयं डुबता है, दूसरों को भी डुबाता है। बन्धुओं! हमें जिनसे सद्धर्म प्राप्त हुआ हो, वे हमारे परम-उपकारी कहलाते हैं। हमें किसी भी रीति से उनके ऋण से उऋण (मुक्त) होना कठिन है। 'स्थानांग सूत्र' के तीसरे स्थान में भगवान् ने कहा है - "मनुष्यमात्र के सिर पर तीन व्यक्तिओं का महान उपकार है - (१) माता-पिता का, सेठ का और गुरु का।" इनमें से माता-पिता और सेठ के उपकार का बदला किसी भी उपाय से चुकाया जा सकता है, परन्तु हमें धर्मप्राप्ति करानेवाले सद्गुरु के उपकार का बदला, उनकी चाहे जितनी सेवा-शुश्रूषा की जाए तो भी चुकाया नहीं जा सकता, किन्तु यदि वे स्वधर्म से च्युत होकर पडिवाई हो गए हों, उन्हें पुनः केवली-प्ररूपित धर्म में स्थिर (स्थापित) किया जाए तो अवश्य ही बदला चुकाया जा सकता है। मुझे भी आज ऐसे पवित्र सुगुरु के गुणगान करने हैं। गुणगान किसके किये जाते हैं? जो तप, त्याग और संयम की सौरभ से अपना जीवन उज्ज्वल बना गए, महका गए हैं। दुनिया में सैंकड़ों माताएँ सैंकड़ों पुत्र को जन्म देती हैं, परन्तु ऐसे पवित्र पुरुषों को जन्म देनेवाली माताएँ तो बहुत थोड़ी होती हैं। 'भक्तामर स्तोत्र' में मानतुंगाचार्य कहते हैं -

मंगलजीस्वामी उनकी सेवा में कभी-कभी अपनी शिष्याओं - पू. वेलबाईस्वामी और पू. माणेकबाई स्वामी को भेजते थे। एक दिन वे गिर पड़े, फेक्चर हो गया। प्रबल वेदना होती थी, परन्तु शान्तमूर्ति पूज्य गुरुदेव समभाव से उसे सहन करते थे। कुछ दिनों बाद वे ठीक हो गए। सबको लगा कि गुरुदेव का स्वास्थ्य अब ठीक हो गया है, अब कोई हरकत नहीं। परन्तु हम मन में धारते कुछ और हैं, और होता कुछ और ही। अचानक पू. गुरुदेव को जोरदार हार्ट-एटेक आया। पूज्य गुरुदेव अन्दर से जागृत हो गए कि अब इस रोग के हमले से मैं बच नहीं पाऊँगा। आसपास के क्षेत्रों में समाचार पहुँच गए कि शामजीस्वामीजी की तबियत ठीक नहीं है। जो साधु-साध्वी निकटवर्ती क्षेत्रों में थे, वे पहुँच गए। स्वयं ने यावज्जीव अनशन (संथारा) अंगीकार कर लिया। अपने शिष्यवृन्द से उन्होंने कहा - "नवकार मंत्र का जाप चालू रखो।" अन्त में, सबके बीच में अपूर्व समाधिपूर्वक पू. गुरुदेव ने इस लोक से विदा ली। समग्र जैन समाज को ऐसे गुणी पू. गुरुदेव के जाने से महती क्षति हुई, जिसकी पूर्ति निकट भविष्य में होनी कठिन है। उनके परिवार में इस समय ५० महासतीजी और २५ विरक्तात्मा बहनें हैं। आज के पवित्र दिवस में प्रभु से प्रार्थना करती हूँ कि हमें उन गुरुदेव जैसा आत्मबल मिले, हममें तप, संयम और ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़े; इसी मंगलभावना के साथ मैं पू. गुरुदेव को श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। ऐसे गुणों के भण्डार गुरुदेव के जितने गुणगान करें, उतने कम हैं।

पू. कौशल्याबाई महासतीजी का प्रवचन

प्रिय आत्मबन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

आज पू. छगनलालजी म.सा. की तथा पू. शामजीस्वामी की पुण्यतिथि है। उन पुण्यात्माओं का स्मरण करने हेतु श्रमणी विद्यापीठ से सतीवृन्द तथा भावदीक्षित बहनें भी यहाँ उपस्थित हुई हैं। इस संसार में दो प्रकार के प्राणी निवास कर रहे हैं - एक सामान्य और दूसरे विशेष। भगवान महावीर ने सामान्य और विशेष सभी प्राणियों के लिए एक सूत्र फरमाया - *'नत्थि कालस्स नागमो'* काल का आगमन अवश्यम्भावी है। चाहे सामान्य हो या विशेष, मृत्यु एक दिन अवश्य ही आनेवाली है। सबको ले जाने के लिए वह तैयार रहती है। इस परिवर्तनशील संसार में कौन जन्म नहीं लेता और कौन नहीं मरता ? जो जन्मता है, वह एक दिन मरता है। परन्तु जीवन उसीका सार्थक होता है, जो तप, त्याग और संयम की सौरभ से जीवन-बाग को महकाकर जाता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मरण भी दो प्रकार के बतायें हैं - एक सकाममरण है, दूसरा अकाममरण है। इनमें से जो सकाममरण से मरता है, उसकी महत्ता है, अकाममरण की कोई विशेषता नहीं है। ऐसे प्रतिभाशाली महान् पुरुष मानवभव को पाकर जीवन जीते हुए मृत्यु की कला जान लेते हैं। अन्तिम समय में भी सकाममरण प्राप्त करते हैं। ऐसे महापुरुष विशिष्ट जीवन जीकर सहनशीलता, क्षमा आदि गुणों को आत्मसात् करके इस पार्थिव देह का त्याग कर देवलोक में प्रयाण

हो ? जो तुम्हें धन प्राप्ति करा दे, तुम प्रायः उसका गुण गाते हो । तुम्हारी पीठ ठोके आशीर्वाद दे दे, उसके पीछे दौड़ते हो । जैसे तुम व्यापारी के गुण गाते हो, वैसे अगर (निष्काम भोग से) गुरु के गुण गाओ तो कर्मों के कठोर किनारे टूट जाएँ ।

पूज्य छगनलालजी महाराज साहब खंभात के निवासी थे । उनके पिताजी का नाम अवलसंगभाई और माताजी का नाम रेवाकुंवरबाई था । वे क्षत्रिय ज्ञाति के थे । मूल में वे जैन परम्परा के नहीं थे । परन्तु जैनधर्म को उन्होंने कैसे प्राप्त किया ? खंभात में जवाहरात का, अकीक (गोमेद) का तथा साड़ियाँ बनाने का, ये तीन धंधे मुख्य हैं । इनके पिताजी नवाबी राज्य में नौकरी करते थे । वे स्वयं अकीक (गोमेद) का धंधा करते थे । एक जैन वणिक सुन्दरभाई उनके मित्र थे । उनके साथ घूमने-फिरने जाते और साथ में धंधा भी करते थे । एक दिन भाई ने उनसे कहा - "छगन ! आज मैं बगीचे में घूमने नहीं आऊँगा ।" इस पर उन्होंने पूछा - "क्यों, आज क्या बात है ?" सुन्दरभाई ने कहा - "आज हमारे गुरुदेव नगर में पधारे हैं । इसलिए आज रात को मैं उपाश्रय में उनके दर्शन-वन्दन-वाणीश्रवण करने जाऊँगा । वहाँ बहुत ज्ञानचर्चा होती है । इसलिए अच्छी-अच्छी बातें जानने को मिलती है । अतः मैं आज वहाँ जाऊँगा ।" यह सुनकर छगनभाई ने पूछा - "क्या मैं तुम्हारे गुरु के पास आ सकता हूँ ?" मित्र बोला - "हमारे धर्म में किसी प्रकार का जातपात का भेदभाव नहीं है । वहाँ प्रत्येक व्यक्ति को आने की छूट है । तू भी खुशी से आ सकता है ।" छगनभाई अपने मित्र के साथ उपाश्रय में गए । उन्हें अपनी तरह वन्दना करना नहीं आता था । परन्तु मित्र ने जैसे किया, वैसे ही करके वह बैठे ।

वहाँ बहुत-से श्रावक एकत्रित हो गए थे । एक के बाद एक प्रश्नों की झड़ियाँ लग रही थीं । छगनभाई को उसमें बहुत दिलचस्पी हुई । उन्होंने मन में सोचा कि मैंने ऐसा ज्ञान तो कभी सुना नहीं था । 'जैनधर्म का ज्ञान तो अलौकिक है । चाहे जितना ज्ञान प्राप्त कर लें, किन्तु आत्मा से सम्बन्धित ऐसा गहरा तत्त्वज्ञान नहीं प्राप्त करें, तो सब कुछ धूल-समान है ।' ऐसा विचार क्षत्रिय छगनभाई के मन में हुआ ।

बन्धुओं ! वर्तमानकाल में लौकिक शिक्षण में आगे बढ़े हुए तथा पठित-शिक्षित और होशियार मनुष्य तो बहुत हैं; जिन्होंने बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हासिल कर ली हैं, परन्तु धार्मिक ज्ञान में वे बहुत पीछे हैं । इसी कारण वे धर्मक्रिया और आचार-विचार में शिथिल हैं । इन सबका मूल कारण है - इन पढ़े लिखे शिक्षित वर्ग का आत्मा-परमात्मा तथा कर्म-सिद्धान्त आदि पर श्रद्धा का अभाव । इन विषयों के ज्ञाता-अनुभवी सद्गुरुओं के सम्पर्क में वे कभी आते नहीं और सद्गुरु के समागम के बिना चतुर और निपुण मनुष्य भी तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता । इसलिए ज्ञानी कहते हैं -

"विना गुरुभ्यो गुण-नीधिभ्यो, तत्त्वं न जानाति विचिक्षणोऽपि ।
आकर्ण-दीर्घोज्ज्वल-लोचनोऽपि, दीपं विना पश्यति नान्धकारे ।।"

भावार्थ यह है कि जैसे किसी व्यक्ति की आँखें कान तक दीर्घ और उज्ज्वल क्यों न हो, मगर अन्धकार में दीपक के बिना वह नहीं देख सकता, वैसे

श्रेष्ठिपुत्र ने बही खाते खोलकर देखे तो जिसे ८,००० रु. उधार दिये थे, उस आदमी का उसमें नामोल्लेख भी नहीं है। जिसे १७-१८ हजार रुपये उधार दिये हैं, वह मनुष्य रोज आता-जाता है, बातचीत भी करता है, पर अभी उसे जितने रुपये उधार दिये हैं, उतने खपरेल (कवेलु) भी उसके घर पर नहीं है। अब क्या करना ? जिसे १० हजार रुपये कर्ज दिये हैं, उसका नाम ढूंढा तो वह उससे मांगे तो तुरंत मिले। परन्तु स्थिति ऐसी है कि एक-एक गाँव में एक-एक रुपया है, यों कुल मिलाकर १० हजार है। मुनीम रखने का खर्च करे तो वह रकम मिल सकती है। परन्तु एक रुपया (मुनीम रखने के पीछे) खर्च करे तो एक रुपया मिल सकता है। सोचिए, ऐसे इस व्यापारी की स्थिति कैसी है ? वह पूंजी इकट्ठी करने हेतु प्रयत्न करे तो भी क्या वह मिल सकती है ? नहीं, बिलकुल नहीं। यही न्याय अपने पर घटित करना चाहिए।

इस समय अपनी (मनुष्य की) आयु लगभग १०० वर्ष की होती है। कदाचित किसी की आयु अधिक भी संभव है, परन्तु हम मनुष्य की औसत आयु १०० वर्ष की मानकर चलें। १०० वर्ष के दिन कितने ? ३६००० दिन होते हैं। जन्म के बाद शिशु डेढ़-दो वर्ष का होता है, तब बोलने लगता है। उस समय उस शिशु को धर्म या व्यापार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। फिर जब वह १५-२० वर्ष का हो जाता है, तब उसे भान होता है कि 'मैं मनुष्य हूँ। मुझे जैनधर्म मिला है। यह मेरा है, यह तेरा है, यह मेरे पिता का घर है,' ऐसा ख्याल हो गया उसे। परन्तु उससे पहले के जिंदगी के ७-८ हजार दिवस गये, वे तो गए। उसके बाद ५०वें वर्ष के बाद के जो दिवस हैं, वे तो दिखाने के हैं, मात्र गणना करने के हैं, कमाई करने के नहीं। फिर वह ज्ञानाभ्यास या शासन (धर्मसंघ) की सेवा वह कैसे कर सकेगा ? बीच के दिवस १० हजार रहे, २० वर्ष से ५० वर्ष तक की उम्र के बीच के ३० वर्ष होते हैं। वे ३० वर्ष निकाले - विषय-सुखों के उपभोग में, मगर उस सुख के परिणामस्वरूप सच्चे सुख का एक खपरेल (कवलु) भी नहीं मिलेगा। उल्टे क्या मिलेगा, इसके लिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ-१९, गा-१७) में कहा गया है -

जहा किंपाग-फलाणं, परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताणं भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो॥

किंपाक वृक्ष के फल दिखाव में, रूपरंग में सुन्दर और खाने में मधुर एवं स्वादिष्ट लगते हैं। परन्तु उसे किंपाक फल के खाने से जीव और शरीर दोनों पृथक् पृथक् हो जाते हैं। इसी प्रकार विषय सुखोपभोग में पड़े हुए जीव को पता नहीं होता कि मैं जिस कामभोगरूपी फलों को भोग रहा हूँ, उनका परिणाम अच्छा नहीं है। अर्थात् उसके पीछे दुःख खड़ा है। इस प्रकार बीच के ३० वर्ष संसार-सुख में बीते हैं, जिनके पीछे कुछ नफा तो हुआ नहीं, बल्कि परिणाम-स्वरूप घाटा लगता रहा। तो उन ३० वर्षों में भी एक-साथ दो दिन लेने चाहे तो मिल सकते हैं क्या ? नहीं मिल सकते। एक दिवस बीतने पर दूसरा दिवस आता है। साहूकारों के यहाँ गाँव में १० हजार रुपये जमा पड़े हैं। मगर एक रुपया खर्चो तो एक रुपया मिले। इस न्याय से क्या उसे अपनी पूंजी

उपलब्ध कर लिया। वे अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार के थे, इसलिए स्वयं ने श्राविकाशाला तथा जैनशाला की स्थापना की, और स्वयं धार्मिक शिक्षण के क्लास चलाने लगे। यों करते-करते उन्हें ऐसा विचार आया कि ऐसा उच्च आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद मुझे संसार (गृहस्थी)में किसलिए फँसे रहना चाहिए ? मुझे दीक्षा लेकर ऐसा संयम-पालन करना चाहिए, जिससे शीघ्र आत्म-कल्याण हो। बन्धुओं ! ऐसे थे वे असली क्षत्रिय के शूरवीर बच्चे ! वे ढीली दाल खाकर ढीलाढाला बोलने व आचरण करनेवाले नहीं थे। उन्होंने मित्र से कहा - "सुन्दर ! हमें ऐसा उत्तम मानवजन्म पाकर क्या संसार की गंदी कोठरी में ही पड़े रहना है ? चलो हम दोनों दीक्षा ले लें।" मित्र बोला - "छगन ! तेरी बात यथार्थ है, परन्तु तुझे पता है कि मैं तो अपने पिता की दो पत्नियों के बीच में एक ही पुत्र हूँ। क्या ये मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा देंगे ?" छगनभाई की भी सगाई हो गई थी। वे बोले - "तुझे तेरे माँ-बाप आज्ञा नहीं देंगे तो क्या मुझे मेरे काका-काकी थोड़े ही आज्ञा दे देंगे ? हमें अपने विचारों में सुदृढ़ और पक्के रहकर काम निकाल लेना है।" अन्त में, मित्र को भी दीक्षा लेने की भावना जगी। दोनों ने विचार किया कि यहाँ तो हमदोनों को कोई दीक्षा लेने नहीं देंगे। हम यहाँ से अन्यत्र जाकर किसी सद्गुरु की खोज करके उनसे दीक्षा ग्रहण कर लें, यही ठीक रहेगा।

दोनों मित्र घर से निकलकर मारवाड़ पहुँचे। वहाँ उन्हें पूज्य वेणीरामजी महाराज मिले। उन्होंने महाराजश्री से कहा - "गुरुदेव ! हम दोनों दीक्षा लेना चाहते हैं। आप हमें दीक्षा प्रदान करें।" महाराजश्री ने कहा - "क्या तुम दोनों अपने-अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आए हो ?" उन्होंने जवाब दिया - "नहीं, हमने उनकी आज्ञा नहीं ली। हम तो वहाँ से भागकर आए हैं।" यह सुनकर महाराजश्री ने कहा - "भाई ! अपने सगे-सम्बन्धियों, या परिवार प्रमुखजनों की आज्ञा के बिना हमसे दीक्षा नहीं दी जा सकती। आज्ञा बिना दीक्षा दूं तो एक प्रकार से चोरी का कृत्य कहा जायेगा। अतः अपने-अपने अभिभावकों का लिखित आज्ञापत्र लाओ, फिर मैं तुम्हें दीक्षा दे सकूंगा।" अतः वे दोनों मित्र वहाँ से रवाना होकर अहमदाबाद पहुँचे, वहाँ डोसीवाडा की पोल में आये। इस तरफ खंभात से उनके निकलने के बाद दोनों मित्रों के सगे-सम्बन्धियों ने बहुत तलाश कराई, परन्तु कहीं भी पता नहीं लगा। उस समय टेलीफोन की सुविधा नहीं थी, ताकि दूसरे गाँव फोन करके समाचार पूछा जा सके। अतः परिवारवालों ने ढूंढने के लिए जगह-जगह आदमी भेजे। अन्त में, अहमदाबाद में उन दोनों का पता लगा। वहाँ से वे लोग उन दोनों को खंभात ले आए।

दोनों के माता-पिता आदि की तरफ से बहुत धमकी दी गई : छगनभाई के माता-पिता तो उनके बचपन में ही गुजर गये थे। उन्हें काका-काकी ने पाला-पोपा था। दोनों मित्रों को उनके परिवारवालों ने बहुत उपालम्भ दिया और बहुत रीति से धमकी दी। इससे सुन्दरभाई तो पसीज गये। परन्तु वैराग्य दृढ़ था, वह क्षत्रिय का बच्चा नहीं पिघला, अपनी बात पर अड़ा रहा। काका-काकी ने उन्हें खूब समझाया और

है, ऐसा भान नहीं होता, वैसे ही संसार-समुद्र में अज्ञान के प्रवाह में डूबे हुए जीवों को *उस समय कुछ भी भान नहीं होता कि मेरे जीवन की सुन्दर स्थिति कैसी होनी चाहिए?* इस कारण उसे अपना भान नहीं होता, फलतः वह मृत्यु-पर्यन्त धर्म को याद नहीं करता।

वर्तमान में धर्माचरण - वरविहीन बारात जैसा : आज धर्माचरण करनेवालों के जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो प्रायः ऐसा मालूम होता है, वे वरविहीन बारात के समान धर्म करते हैं। यों कहकर मैं धर्म करनेवालों को हलका दिखाना नहीं चाहती। उन्हें सजग रहने के लिए चेतावनी के रूप में कहती हूँ।

वर्षों पहले की एक घटना है। एक शहर में दुल्हे के सगे-सम्बन्धी उसे लेकर (बारात के रूप में) निकले। उस समय ट्रेन या बस का प्रचलन शुरू नहीं हुआ था। इस कारण बारात बैलगाड़ियों में जाती थी। एक कुप्रथा ऐसी थी कि व्याहीजी का गाँव नजदीक आए, यानी वह गाँव लगभग २, ४, ५ गाऊ दूर रहे, तभी से बैलगाड़ियों और बैल को तीव्रगति से दौड़ाते हैं। बैलगाड़ियों को यों दौड़ाते हैं, तब वरराजा जिसमें बैठे हो, वह बैलगाड़ी चारों ओर से खुली होती है। दूसरे बराती जिनमें बैठे होते हैं, उन बैलगाड़ियों में चारों ओर से पकड़ने का होता है। अतः वरराजा जिस में बैठे थे, वह बैलगाड़ी खुली होने से, दौड़ते-दौड़ते वरराजा बैलगाड़ी में से नीचे गिर पड़े। किन्तु दौड़ की प्रतियोगिता के कारण बैलगाड़ी गिरे हुए वर को लेने के लिए नहीं रुकी। अतः वरराजा-विहीन वह बैलगाड़ी ठीक विवाह-मण्डप पर आकर रुकी, जहाँ सासु कंकुदानी लेकर जंवाईराज का स्वागत करने के लिए खड़ी थी। परन्तु उन्हें बैलगाड़ी में वर नहीं नजर आया। ऐसे समय में बैलगाड़ी चलानेवाले ने इस पर कोई ध्यान न देकर बैलगाड़ी चलाये रखी। फलतः वह बारात बिना वर की हो गई। जैसे वर-विहीन बारात शोभा नहीं देती, वैसे ही धर्म का तत्त्वस्वरूप और रहस्य समझे बिना धर्म करना इतना शोभा नहीं देता। आज व्यक्ति धर्म करते हैं, किन्तु धर्म का रहस्य क्या है, मर्म क्या है, उसका फल क्या है, यह नहीं समझते। धर्मक्रिया करते हुए भी अन्तर में उसके प्रति श्रद्धा नहीं, (उसके परिवार, समाज, राष्ट्र आदि में) उसका सक्रिय आचरण नहीं है। फलतः धर्म करते हुए भी आत्मा को जो निर्जरा (आंशिक कर्मक्षय) होनी चाहिए, वह नहीं होती। इसे ही कहते हैं - वरविहीन बारात जैसा धर्म किया। वरराजा सहित बारात होती है, तो उसकी शोभा और कीमत कुछ और ही होती है; इसी प्रकार आन्तरिक इच्छापूर्वक श्रद्धाभाव से किया धर्म, यानी जिस धर्म के लिए देह का बलिदान देना पड़े तो देने में हिचकिचाहट न हो, ऐसे धर्माचरण करनेवाले के आचरण पर से धर्म का यथार्थ मूल्यांकन होता है। आचार्य समन्तभद्र ने कहा है - ***'न धर्मो, धार्मिकैर्विना'*** धार्मिकों (धर्म का सही आचरण करनेवालों) के बिना धर्म का सम्यक् आंकन नहीं किया जाता। धर्म का यथार्थ स्वरूप समझकर आचरण करनेवालों पर से ही धर्म का मूल्यांकन होता है।

ऐसे शुद्ध आत्मधर्म का स्वरूप सद्गुरुओं से ही समझा जा सकता है। फिर भी कतिपय अज्ञानी जीव उपाश्रय में संतों के पास आते हैं - सांसारिक सुख की आकांक्षा

संवत् १९९५ में गुरुदेव अहमदाबाद में विराजमान थे । उनके घुटने में सख्त वातव्याधि रहती थी । आज योगानुयोग कैसा मिला ? पूज्य शामजीस्वामी भी उस समय पू. गुरुदेव के साथ दोलतखाने के उपाश्रय में बिराजमान थे, जिनकी भी आज पुण्यतिथि है । पू. गुरुदेव के पैरों में सख्त पीड़ा होती थी, इसी कारण वे ऊपर व्याख्यान पढ़ने के लिए नहीं पधारते थे । वैशाख वदी १० के दिन उन्होंने पू. शामजीस्वामी और पू. रत्नचन्द्रजी म.सा. से कहा कि "आज दस बजने में १० मिनट बाकी रहे, तब व्याख्यान वंध कर देना ।" पू. रत्नचन्द्रजी म.सा. ने पूछा - "क्यों गुरुदेव ?" पू. गुरुदेव ने कहा - "मुझे ऊपर जाना है ।" इस पर सभी संतों ने कहा - "पधारो गुरुदेव ! हम आपको हाथों में उठाकर ऊपर ले चलते हैं ।" तब कहा - "नहीं, मुझे यों ऊपर नहीं आना है । मुझे अपनी साधना की समाधि में लीन होना है ।" इसे कौन सच मानता ? बिलकुल स्वस्थ शरीर, शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं । अतः किसी को पू. गुरुदेव के कथन का रहस्य समझ में नहीं आया । व्याख्यान प्रारम्भ हो गया । मेरी पूज्य गुरुणी पार्वतीवाई महासतीजी उस समय वहीं थी । वे पू. गुरुदेव से साता पूछने आई तो गुरुदेव ने पूछा - "सवेरे का लाया हुआ आहार पड़ा है, या सब कर लिया ?" उन्होंने कहा - "थोड़ा पड़ा है गुरुदेव !" तब गुरुदेव ने कहा - "पहले कल का लाया हुआ आहार-पानी हो, उसे तुरंत निपटाकर यहाँ आओ ।" पू. महासतीजी ने कहा - "साहब ! व्याख्यान समाप्त के बाद आकर उस आहार को निपटा देंगे ।" पूज्यश्री ने कहा - "नहीं, अभी के अभी उसे निपटा दो ।" थोड़ी देर बाद पूज्य महासतीजी आहार-पानी सब निपटाकर पधारीं, तब वे बोले - "अब स्वाध्याय करो ।" सबको स्वाध्याय करने का कहकर स्वयं भी स्वायाय करने लगे । दस बजने में दस मिनट कम थी, तब ऊपर व्याख्यान बंद हो गया । सभी संत नीचे पधार गये । अतः पू. गुरुदेव-पू. रत्नचन्द्रजी म.सा. से कहा - "मुझे चारों आहार तथा अठारह पापस्थान के व्याख्यान करा दो । मुझे आलोचना सुना दो ।" किन्तु किसी का साहस न हुआ, सब पशोपेश में पड़ गये । तब पूज्य गुरुदेव ने स्वयं आलोचना करके आत्मशुद्धिपूर्वक संथारे का प्रत्याख्यान ले लिये । सबसे बारंबार क्षमायाचना करके कहा - "अब नवकार मंत्र बोलो ।" स्वयं भी नवकार मंत्र का स्मरण करते हुए *'नमो लोए सव्वसाहूणं'* कहते-कहते इसी दिन-अर्थात् १९९५ के वैशाख वदी १० के दिन, पूज्य गुरुदेव ने प्रसन्न मुख से कालधर्म प्राप्त किया । वे तो अपनी साधना भलीभांति सिद्ध कर गए । क्षति हुई है, तो हमें हुई है, उनके स्वर्गारोहण से । ऐसे प्रतिभाशाली संत बार-बार नहीं होते । पूज्य गुरुदेव का खंभात-सम्प्रदाय पर और जैन समाज पर महान् उपकार है । वे न होते तो खंभात सम्प्रदाय में इतने संत-सतीजी नहीं होते । हम उनके उपकार का बदला कैसे चुका सकते हैं ? यह सोचना है । पू. गुरुदेव *'कम्मेसूरा ते धम्मेसूरा'* अर्थात् - वे कर्म में शूरवीर थे; धर्म में भी शूरवीर थे । उनके पराक्रम के जितने गुण गाएँ, उतने थोड़े हैं । उन उपकारी पू. गुरुदेव के गुणों गीता छपाएँ तो भी कम पड़ती है । उनके जीवन में अनेकानेक महान् गुण थे । हम

मुख्य पत्नी थी। (यह रेवती वह नहीं थी, जिसने भगवान महावी... शमन हेतु कोल्हापाक बहराया था); यह महाशतक-पत्नी रेवती बहुत... थी। वह मांसाहारी और कामभोग-लुब्ध थी। उसको लगा,... (सपत्नियाँ)। मेरे कामसुख में बाधक हो रही है, अतः उसने गुप्त... शस्त्र से और शेष ६ सौतों को जहर देकर मार डाली थी। महाशतक... भी नहीं पड़ी, नहीं उसने लगने दी। उन्हें पता ही नहीं लगा कि मे... मृत्यु कैसे हुई? किसने इनका वध किया? एक नारी जाति होते हु... क्रूर पापाचरण कर डाला? वस्तुतः जब जीव विषयसुखों में लुब्ध... वह अपनी आन, बान, शान और भान खो बैठता है।

मगधसम्राट श्रेणिक ने भगवान् महावीर का उपदेश सुनकर अपने... का अमारिपडह पिटवाकर घोषणा करवाई थी कि-'मेरे राज्य में कोई... हिंसा न करे। जो जीव हिंसा करेगा, उसे दण्ड दिया जाएगा।' इस घोष... राज्य में मांस-विक्रय बंद हो गया। मगर रेवती को प्रतिदिन मांस-भोजन... नहीं पड़ता था। अतः उसने अपनी पीहर से आए हुए गोकुल की गायों के स... दो बछड़ों को मारकर उनका मांसाहार चालू रखा।

दूसरी ओर महाशतकजी एक बार भगवान महावीर की देशना सुनकर बा... श्रावक बन गए। व्यापार को भी सीमित कर दिया, परिग्रह बढ़ाना भी बंद... अब पौषधशाला में रहकर धर्मध्यान करने लगे। सामायिक, प्रतिक्रमण, देशावका... पौषधव्रत आदि में ही रत रहने लगे। अन्त में अपने कषाय और शरीर को त... भेदविज्ञान आदि से कृश करके संलेखनापूर्वक एक महीने का संथारा ग्रहण किया... की विषयवासना के प्रति ऐसी विरक्ति व उदासीनता देखकर रेवती ने मन में स... मेरा सर्वस्व सुख लूटा जा रहा है। इस कारण वह एक बार शराब पीकर मदोन्मत्त ब... आई और आकर ध्यानस्थ महाशतकजी की गोद में बैठ गई। फिर भी महाशतकजी... से जरा भी विचलित नहीं हुए। रेवती यद्वा-तद्वा बोलकर चली गई। कुछ दिनों... फिर दूसरी बार शराब के नशे में मत्त होकर आई और महाशतकजी की गोद को हा... से रौंदने लगी और जैसे-तैसे बकवास करने लगी। उस समय महाशतकजी को अवधिज्ञ... प्राप्त हो गया था। अवधिज्ञान से रेवती का भविष्य जानकर महाशतक ने रोष में आक... कहा - "अरी रेवती! ऐसी उन्मत्त होकर तू धर्मध्यान में मग्न ध्यानी का ध्यान भंग करने... पर तुली है। परन्तु याद रख, आज से सातवें दिन मरकर तुझे पहली नरक में जाना... पड़ेगा। तेरे पापों का घड़ा फूटनेवाला है।" यह सुनकर रेवती अत्यन्त भयभीत होकर... आर्त-रौद्र-ध्यान करने लगी।

भगवान महावीर को केवलज्ञान के प्रकाश से महाशतकजी के अहिंसा और सत्यव्रत... में भंग हुआ ज्ञात हुआ। सत्य होते हुए भी रेवती को रोषवश अप्रिय वचन कहा (भावहिंसा... के साथ सत्याणुव्रत भंग हुआ)। फलतः रेवती के आर्त-रौद्रध्यान में निमित्तभूत बने।... भगवान ने श्री गौतमस्वामी को महाशतकजी को प्रायश्चित्त देकर शुद्ध और आ...

महाराजश्री के दर्शन करने । दर्शन करते ही उनके पूर्वसंस्कार जागृत हो गए । अंतर से आवाज आई – 'हे आत्मन् ! तुझे क्या करना है ? संसार में रहना है या संयम लेना है ? संसार का सुख तो क्षणिक है, संयम का सुख शाश्वत है ।' अतः मुझे तो संयम ही अंगीकार करना है; ऐसे निर्णय करके वह घर आए । माता-पिता के सामने अपना मन्तव्य प्रगट किया कि मुझे दीक्षा लेनी है । यह सुनते ही मोहवश माता-पिता को अत्यन्त दुःख हुआ कि हमें छोड़कर यह पुत्र दीक्षा लेगा ? उनके संयमग्रहण के भावों को दवाने के लिए माता-पिता ने उन्हें कोठार में बंद कर दिया । एक दिन बीता, दूसरा दिन भी बीता, अतः पिताजी ने पास जाकर पूछा – "बोल शामजी ! तेरा क्या विचार है ?" शामजीभाई बोले – "आपकी सौ बात है तो मेरी एक ही बात है – मुझे दीक्षा लेनी है ।" तीसरे दिन भी इसी तरह पूछा तब शामजी ने कहा – "आप मुझे कोठार में से निकालो, चाहे न निकालो, मेरा दृढ़ निश्चय है – दीक्षा लेने का ।" पुत्र की दृढ़ता देखकर माता-पिता को आज्ञा देनी पड़ी । माता-पिता की आज्ञा मिलते ही वह मंगलजीस्वामीजी के पास जाकर अभ्यास करने लगे । अन्त में, संवत् १९५० के वैशाख वदी १०, सोमवार के दिन कच्छ के एक नामी शहर 'अंजार' में पूज्य गुरुदेव मंगलजीस्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की और आप हमारे गुरु बन गए । दीक्षा लेने के बाद आपका एक ही लक्ष्य रहा कि जल्दी से जल्दी मैं अपने कर्मो का क्षय करके शाश्वत सुख प्राप्त करूँ । ज्ञान प्राप्त करने की अतीव लगन थी । ज्ञानप्राप्ति के लिए आप शर्त (होड़) में उतर जाते थे । इनके लिए एक भक्त ने कहा –

ज्ञान मेळववा होडाहोडमां, खिले नित्य नवा कोडमां
लेता शास्त्र-सौरभ, अजोड़ आराधना...वंदन श्याम गुरुदेवने ।
संयम-साधना, विरल आराधना...वंदन श्याम गुरुदेवने... ।

पू. गुरुदेव के सान्निध्य में रहकर शामजीस्वामी शास्त्रों का गूढ ज्ञान प्राप्त करते थे । उन्होंने बहुत ही आगम ज्ञान अर्जित किया । कई साधक ज्ञान तो प्राप्त करते हैं, तप नहीं कर पाते, कई तप करते हैं, वे ज्ञानाभ्यास नहीं कर पाते । पर पू. शामजीस्वामी ज्ञानाभ्यास के साथ तपश्चर्या भी करते थे । वे एक दिन चौविहार उपवास और दूसरे दिन एकाशन करते थे । एकाशन में सिर्फ छाछ का पानी लेते थे । अष्टमी तथा पक्खी को छट्ठतप (बेला) करते थे, और पारणे के दिन केवल ५ द्रव्यों का ही सेवन करते थे । उनमें तप, ज्ञान और सेवा का भी बेजोड़ गुण था । स्वयं को जब भी अवकाश मिलता, वे अच्छी पुस्तकों का लेखन करते थे । प्रत्येक पुस्तक में पू. मंगलजीस्वामी का नाम लिखते थे । छोटी-सी पुस्तक पर भी मंगल-पोथी लिखते थे । अपने तप-संयम की आराधना करते हुए आपने कच्छ, काठियावाड़, मारवाड़, गुजरात आदि प्रदेशों में विचरण करके अनेक भव्यजीवों को धर्मोपदेश का लाभ दिया । उनका ११ से १२ ठाणा साधुओं का ग्रुप था । उसमें से एक के बाद एक साथी साधु देवलोक प्रयाण करते गए । वृद्धावस्था के कारण वे रूपचन्द्रजीस्वामी के साथ लींवड़ी में स्थिरवास हो गए। पू. गुरुदेव

"लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो णिंदा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ ।।"

जो लाभ में या अलाभ में, सुख हो या दुःख हो, जीवन (जीने) में या मरण में, एवं निन्दा अथवा प्रशंसा में, तथा मान -(सम्मान) या अपमान में सम रहता है, प्रत्येक परिस्थिति में समभाव रखता है, प्रियता-अप्रियता या मनोज्ञता-अमनोज्ञता का भाव नहीं लाता । प्रत्येक प्रवृत्ति में राग-द्वेष-मोह-आसक्ति-घृणा से दूर रहता है, ज्ञाताद्रष्टा बनकर रहता है, वही सच्चा साधु है, सद्भिक्षु है, संयमी मुनि है ।

हाँ तो, बलराजर्षि संयमी बनकर क्षमावान् इन्द्रियों और मन से दान्त, एवं निरादम्भी बन गए । धीरे-धीरे उन्होंने ११ अंगों (अंगशास्त्रों) का अध्ययन किया । क्रमशः अनेक वर्षों तक श्रमण-पर्याय (शुद्ध चारित्र) का पालन किया । अन्तिम समय में चारु पर्वत था, वहाँ पहुँचकर चारों आहार, १८ पापस्थानकों को त्यागकर, शरीरादि तथा उपकरणों पर से ममत्व छोड़कर सच्चे क्षमायाचना करके, एक मास का संथारा करके समाधिपूर्वक देह व्युत्सर्जन करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गए ।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पाह खलुदुदभ्यो । अप्पादंतो सुही होई, अस्सिंतोए परत्थय।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

इधर महाबलकुमार राज्यसिंहासन पर बैठकर सुन्दर ढंग से न्याय-नीतिपूर्वक राज्य-संचालन कर रहे हैं । उनके ५०० रानियाँ हैं । उनमें से मुख्य पटरानी का नाम कमलश्री है । एक दिन कमलश्री क्या देखती है ? इस पर यथावसर चिन्तन प्रस्तुत किया जाएगा।

विद्युत्प्रभा को कुँए में डालने पर उसके भाग्योदय से उसे बचानेवाला कौन मिला ? : पुण्य-पाप के खेल प्रदर्शित करनेवाली विद्युत्प्रभा की कथा चल रही है । राजा ने नकली विद्युत्प्रभा से अनेकों प्रश्न पूछे, उनके उत्तर में उसने बनावटी बातें कहीं । अर्थात् - उसके सभी जवाब बनावटी थे ।

इधर अपरमाता ने विद्युत्प्रभा को कुँए में डाल दी थी, परन्तु उसके भाग्य कुँए में नहीं गिर गये थे । जिसका भाग्य (पुण्य) प्रबल होता है, उसका बाल भी बांका कौन कर सकता है ? प्रबल भाग्योदय के कारण कुँए में गिरते ही विद्युत्प्रभा ने नागदेव का स्मरण किया, जिससे नागदेव तत्काल वहाँ उपस्थित हो गए और उन्होंने कुँए में पड़ती हुई विद्युत्प्रभा को झेल ली, उसने गिरने नहीं दी । इस कारण उसे कोई भी अड़चन नहीं आई । नागराज ने उसे कुँए में रहा हुआ एक गुप्त तलघर (भोंयरा) बता दिया और उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस तरह से पूरी सुविधा कर दी । फिर नागराज ने उसे आश्वासन देते हुए कहा - "बहन ! तुझे यहाँ कुछ दिन रहना पड़ेगा । यहाँ मैं तुझे जरा भी तकलीफ नहीं होने दूंगा । सब प्रकार की सुविधा मैं पूरी कर दूँगा । तू निश्चित रहना ।"

कर जाते हैं। परन्तु उनका तेजस्वी, ज्योतिर्मय, उदार व्यक्तित्व युगों-युगों तक भव्य जीवों को प्रेरणा का प्रकाश देता रहता है । इस प्रकाश में भव्य जीव अपना जीवन पवित्र बनाते हैं । मैं भी ऐसे उत्तम गुणों को प्राप्त करूँ, ऐसी आशा-सहित उन महान् पुरुषों को भावपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ और अधिक समय न लेकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करती हूँ ।

व्याख्यान - १८

आषाढ़ वदी ११, गुरुवार — ता. २२-७-७६

दुःख से नहीं, पाप से बचो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जिन्होंने घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन की ज्योति प्रकट की है, ऐसे अनन्त करुणासागर वीरप्रभु भगवान् ने अपने जैसे बालजीवों के लिए इस संसार-सागर को तिरने के लिए शास्त्र (सिद्धान्त) रूपी वाणी का प्रकाशन किया । सिद्धान्त का अर्थ है - कर्मों का क्षय कराकर सिद्धि का सुख प्राप्त कराये । विभाव का अन्त करके स्वभाव का दर्शन कराये इसीका नाम सिद्धान्त है । इसीको दूसरे शब्दों में आगम, शास्त्र, श्रुत या सूत्र कहा जाता है । जैन सिद्धान्त अध्यात्मवाद का अमूल्य खजाना है । इसमें इस जीवन और परजीवन की सुखसामग्री की प्राप्ति के उपाय हैं । इनमें उपाय के साथ इनके अपायों आचार के साथ अतिचार-अनाचार का भी वर्णन है ।

सिद्धान्त में ज्ञानी भगवन्त फरमाते हैं - जगत् में मनुष्य जितनी भी मेहनत दुःखों को दूर करने के लिए करता है, अगर उतनी ही मेहनत पापों (दुर्ध्यानों, दुर्भावों, दुर्वचनों और दुराचारों) को दूर करने में करे तो क्या दुःख रह सकता है ? कारण को दूर करो तो कार्य अपने आप दूर हो जाता है । दुःख का कारण है - पाप । पाप को भगाओ तो दुःख स्वयंमेव भाग जाएगा । परन्तु आज के जीवों की बात कैसी है ? उन्हें रोग को निकालना (भगाना) है, किन्तु कुपथ्य-आहार करना बंद नहीं करना है, तो फिर भला रोग कैसे जा सकता है ? वैसे ही दुःखरूपी रोग को निकालने के लिए पापरूपी कुपथ्य का त्याग करे, तभी दुःखरूपी रोग जा सकता है । जबतक पापाचरण करते रहोगे, तबतक दुःख रहनेवाला है । कारण के अभाव में कार्य का अभाव, और कारण के सद्भाव में कार्य का सद्भाव रहेगा । यही न्याय सिद्धान्त का नियम है । पाप करते रहने से दुःख से दूर रहना कैसे हो सकता है ? पाप करेंगे तो दुःख निश्चित ही आएगा ।

एक हिदायत की – "पुत्र को खेला-पिलाकर हमें तुरन्त वापस लौटना पड़ेगा । इसमें यदि विलम्ब हुआ और सवेरा हो गया तो बाजी बिगड़ जायेगी । फिर तुम्हें मेरे दर्शन दुर्लभ हो जाएँगे । अगर वहाँ तुम्हें रहते प्रभात हो गया तो इसकी प्रतीति के रूप में तुम्हारी वेणी में से मरा हुआ सर्प नीचे गिर जाएगा । इससे समझ लेना कि इसके बाद मैं हाजिर नहीं होऊँगा ।"

विद्युत्प्रभा इस बात का बराबर ध्यान रखती है । वह रोज रात्रि में जाती है, और बालक को दूध पिलाती है, स्नान कराती है, रमाती है, फिर तुरन्त वापस चली आती है । एक दिन राजा के मन में यह देखकर शंका पैदा हुई कि बालक को जब सुलाया था, तब इस प्रकार नहलाया-धुलाया तथा आँख में काजल डाला हुआ नहीं था । यह प्रतिदिन ऐसा कैसे होता है ? विद्युत्प्रभा जब राजमहल में आती थी तो उसके साथ वह बगीचा भी साथ में चला जाता था । पुत्र को रमाकर जब वह वापस लौटती, तब वह बगीचा भी आता था । परन्तु बगीचे में से गिरे हुए कुछ फल, फूल और पत्ते वहाँ पड़े रह जाते थे । राजा यह देखकर बनावटी विद्युत्प्रभा से पूछता है – "यह फल, फूल और पत्ते कहाँ से आए ?" इस पर वह कहती – "रात को मैंने बगीचे को बुलाया था, इस कारण उसमें से ये फल, फूल और पत्ते पड़े हुए मालूम होते हैं ।" राजा को उसके इस जवाब से सन्तोष नहीं हुआ । अतः एक दिन राजा स्वयं जागकर वहाँ चौकी करने बैठा । ठीक १२ बजे रुमझुम करती हुई विद्युत्प्रभा आई । राजा गुप्तरूप से देखने लगे कि देखें, क्या होता है ? विद्युत्प्रभा ने बालक को स्तन-पान कराया, रमाया, फिर जब वहाँ से रवाना होने लगी, तब राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया । कहने लगे – "अब तू कहाँ जा रही है ? अब मैं तुझे नहीं जाने दूंगा । तू ही असली विद्युत्प्रभा है । मुझे दगा देकर क्यों चली गई ?" विद्युत्प्रभा बहुत ही गिड़गिड़ाती है कि मुझे अभी जाने दो । किन्तु राजा उसे नहीं छोड़ते । कहते हैं – "तू इतने दिनों तक कहाँ छिप गई थी और तेरे द्वारा ऐसा करने का क्या कारण है ?" उसकी सारी रामकहानी जानने के लिए राजा ने विद्युत्प्रभा से अनेक प्रश्न किए । तब विद्युत्प्रभा ने कहा – "आज बहुत देर हो गई है, मुझे जाने दो । कल मैं आपको सारी आपबीती कहूँगी । अगर मुझे वापस जाने में देर हो गई तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा । अतः अभी तो मुझे जाने दो । आप मान जाओ ।" इतना कहने पर भी राजा नहीं माने । अतः विद्युत्प्रभा ने सारी आपबीती कही । बात कहते-कहते सूर्योदय हो गया । इस कारण पूर्व संकेतानुसार उसकी वेणी में से मरा हुआ सांप तुरंत नीचे गिरा । यह देखकर विद्युत्प्रभा के होश उड़ गए, उसके मन में बहुत ही आघात लगा कि अब मेरा क्या होगा ? मेरा कौन सहायक होगा ? अब आगे क्या होगी ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

कर जाते हैं। परन्तु उनका तेजस्वी, ज्योतिर्मय, उदार व्यक्तित्व युगों-युगों तक भव्य जीवों को प्रेरणा का प्रकाश देता रहता है। इस प्रकाश में भव्य जीव अपना जीवन पवित्र बनाते हैं। मैं भी ऐसे उत्तम गुणों को प्राप्त करूँ, ऐसी आशा-सहित उन महान् पुरुषों को भावपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ और अधिक समय न लेकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करती हूँ।

व्याख्यान - १८

आषाढ़ वदी ११, गुरुवार | ता. २२-७-७६

दुःख से नहीं, पाप से बचो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

जिन्होंने घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन की ज्योति प्रकट की है, ऐसे अनन्त करुणासागर वीरप्रभु भगवान् ने अपने जैसे बालजीवों के लिए इस संसार-सागर को तिरने के लिए शास्त्र (सिद्धान्त) रूपी वाणी का प्रकाशन किया। सिद्धान्त का अर्थ है - कर्मों का क्षय कराकर सिद्धि का सुख प्राप्त कराये। विभाव का अन्त करके स्वभाव का दर्शन कराये इसीका नाम सिद्धान्त है। इसीको दूसरे शब्दों में आगम, शास्त्र, श्रुत या सूत्र कहा जाता है। जैन सिद्धान्त अध्यात्मवाद का अमूल्य खजाना है। इसमें इस जीवन और परजीवन की सुखसामग्री की प्राप्ति के उपाय हैं। इनमें उपाय के साथ इनके अपापों आचार के साथ अतिचार-अनाचार का भी वर्णन है।

सिद्धान्त में ज्ञानी भगवन्त फरमाते हैं - जगत् में मनुष्य जितनी भी मेहनत दुःखों को दूर करने के लिए करता है, अगर उतनी ही मेहनत पापों (दुर्ध्यानों, दुर्भावों, दुर्वचनों और दुराचारों) को दूर करने में करे तो क्या दुःख रह सकता है ? कारण को दूर करो तो कार्य अपने आप दूर हो जाता है। दुःख का कारण है - पाप। पाप को भगाओ तो दुःख स्वयंमेव भाग जाएगा। परन्तु आज के जीवों की बात कैसी है ? उन्हें रोग को निकालना (भगाना) है, किन्तु कुपथ्य-आहार करना बंद नहीं करना है, तो फिर भला रोग कैसे जा सकता है ? वैसे ही दुःखरूपी रोग को निकालने के लिए पापरूपी कुपथ्य का त्याग करे, तभी दुःखरूपी रोग जा सकता है। जबतक पापाचरण करते रहोगे, तबतक दुःख रहनेवाला है। कारण के अभाव में कार्य का अभाव, और कारण के सद्भाव में कार्य का सद्भाव रहेगा। यही न्याय सिद्धान्त का नियम है। पाप करते रहने से दुःख से दूर रहना कैसे हो सकता है ? पाप करेंगे तो दुःख निश्चित ही आएगा।

अ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाता सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है। उसमें वर्णन है कि बलराजा को सर्वज्ञ वीतराग भगवान् का शासन मिला। इस शासन में दीक्षित होकर बलराजर्षि ने ११ अंगशास्त्रों का अध्ययन किया। अनेक वर्षों तक शुद्ध (निरतिचार) चारित्र का पालन किया। अन्त में चारुपर्वत पर पहुँचकर उन्होंने एक मास अनशनपूर्वक संथारा अंगीकार किया; सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए। इस प्रकार बलराजर्षि ने सर्वज्ञ का शासन प्राप्त कर अपने आत्मा को शाश्वत सुख का स्वामी बनाया। उन्होंने आपना सर्वकार्य सिद्ध किया। यह बात तो यहाँ पूर्ण हो गई।

इधर बलराजा की राजगद्दी पर उनके सुपुत्र महाबलकुमार आसीन हुए। उनके कमलश्री प्रमुख ५०० रानियाँ थीं। एक तो विशाल राज्य की ऋद्धि, साथ ही एक से एक बढ़कर मनोज्ञ मनोहारिणी ५०० रानियाँ थीं। कामभोगों के इतने सुख-साधन होते हुए भी महाबलकुमार नृप अनासक्त भाव से रहते हैं। क्योंकि जिस राज्य और रानियों को छोड़कर उनके पिता ने दीक्षा ली थी, वह राज्य अस्थिर है, कर्मबन्ध कराने-वाला है, इसे एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा; इस तथ्य-सत्य को महाबलकुमार समझते थे। यही कारण है कि वे राज्य में किस प्रकार रहते थे ? यह बात 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ.-२५, गा.-२७) की इस गाथा द्वारा बताई गई है -

"जहा पोम्मं जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं॥"

जैसे कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है, वह पानी में रहता है, किन्तु पानी से लिप्त नहीं होता, पानी से अध्धर रहता है। उसी प्रकार तुम संसार में रहते हुए, सभी साधु नहीं बन सको, मगर तुम्हें संसार में किस प्रकार रहना है ? जैसे कमल कीचड़ में पैदा होते हुए भी उससे अलिप्त रहता है, वैसे ही तुम काम-भोगों से अलिप्त रहो, भोगासक्त न बनो। आनन्द, कामदेव आदि प्रमुख श्रावकों ने दीक्षा नहीं ली थी, वे गृहस्थवास में थे, परन्तु उसमें रहते हुए भी वे उसमें लुब्ध नहीं होते थे। उनके यहाँ वैभव का कोई पार नहीं था। फिर भी उन्होंने धन, वस्त्र तथा खाद्य-पेय पदार्थों आदि की मर्यादा की थी। उन्होंने आस्रव के सभी द्वार खुल्ले नहीं रखे थे। आंशिक रूप से क्रमशः जीवन जीने के लिए आवश्यक प्रत्येक पदार्थ की मर्यादा करके वे मर्यादित जीवन जीते थे। वस्तुतः वे संसार में रहते हुए भी सांसारिक सुखों का रसास्वादन नहीं करते थे। वे सोचते थे - जहाँ क्षण-क्षण में पाप कर्म का बन्ध होता हो, वहाँ सांसारिक सुखों का स्वाद लिया जा सकता है क्या ? मैं आपको एक उदाहरण द्वारा इसे समझाती हूँ-

मान लो, एक धनाढ्य मानव की पुत्री की शादी किसी धनिक सेठ के पुत्र के साथ की गई। माता-पिता जब अपनी पुत्री का विवाह करते हैं, तब उसे अतीव बहुमूल्य घरचोला पहनने को देते हैं। अतः वह घरचोला पहनकर ससुराल गई। उसके किसी अशुभ

अब या कभी भी मिल सकती है क्या ? नहीं मिल सकती । इसी प्रकार इस जिंदगी के कीमती दिन चले जा रहे हैं । क्या वे बीते दिन वापस मिल सकते हैं क्या ? ज्ञानीपुरुष हमें यह समझाते हैं कि - जबतक तेरी यह जिंदगी धूल में नहीं मिली, तबतक इस शरीर की कीमत क्यों नहीं कर लेता ?

एक सामायिक का महान् लाभ : इस मनुष्यभव का एक मिनट, देवों के दो करोड़ पल्योपम से कुछ न्यून जितना है । एक मिनट में से दो करोड़ पल्योपम से कुछ न्यून, देव का आयुष्य सहज ही ले सकोगे । शायद तुम्हें यह लगता होगा कि ऐसा हो सकता है ? मैं आपको समझाती हूँ - एक सामायिक ४८ मिनट की होती है । शुद्धभाव से एक सामायिक करने से ९२,५९,२५,९२५ पल्योपम देवायुष्य प्राप्त कर सकते हैं । यह देशविरति की सामायिक एक मिनट में इतनी बड़ी कीमत प्राप्त करा देती है । किसी के पास कीमती हीरा हो, परन्तु उसे हीरे की पहचान न हो तो वह उसे कौड़ी की तरह बेच देता है । आज आपके हाथ में आई हूई मनुष्य की जिंदगी के समान कोहीनूर हीरा हाथ में आ गया, परन्तु उसे कोहीनूर के रूप में समझा जाएगा, तभी तो उसकी कीमत प्राप्त कर सकोगे न ?

बन्धुओं ! इस बहुमूल्य मानवजीवन में जन्म लिया तब से मरण-प्राप्ति तक के बाहर के सब विचार किए । समग्र जीवन का क्रम जांचा-परखा, मगर मैं तुमसे पूछती हूँ कि क्या तुमने किसी टाइम में आत्मा को जांचा-परखा है ? आत्मा का कभी विचार किया है, कि मेरी आत्मा पाप से कितना पीछे हटी है ? आत्म-साधना के गुण में कितनी प्रगति की है ? कर्मबन्धन से आत्मा जल्दी मुक्त हो, ऐसी साधना की है क्या ? जन्मे तब से (अबोध अवस्था में) खाने-पीने का विचार, उससे आयु थोड़ी आगे बढ़ी, कुछ बड़े हुए तो छोटे छोटे हमजोली बालकों के साथ खेलने-कूदने में रहता है, उसके बाद विद्यार्थी जीवन में आए, तब स्कूल में पढ़ने और परीक्षाएँ पास करने में समय बीतता है । उससे थोड़े बड़े हुए अर्थात् - १८-२० वर्ष के हुए तब व्यापार-धंधा में जुटे, फिर विवाह हुआ, तो पत्नी तथा लड़के-लड़कियों के पालन-पोषण, शिक्षण-संस्कार की एवं उनके सगाई-विवाह की चिन्ता खड़ी होती है । ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों संसार के जाल में अधिकाधिक फंसते गए, परन्तु धर्म को याद किया है क्या ? पुत्र-परिवार के विषय में जितने विचार आते हैं क्या उतने आत्मा के सम्बन्ध में आते हैं ? नहीं आते । आज जगत में मृत्यु को प्रत्यक्ष दृष्टि के समक्ष देखनेवाले कितने मनुष्य हैं ? शायद ही कोई होगा । होंगे तो भी बहुत ही थोड़े ! जैसे कोई आदमी पानी में गिर गया । पर अभी जिंदा है । किन्तु वह मरणासन्न है । उस समय उसे मैं कौन हूँ? किसलिए डूबा ? इस समय मेरी क्या स्थिति है ? पानी से बाहर कैसे निकलना ? बाहर निकलने से मुझे क्या फायदा है ? क्या ये सब विचार आते हैं ? नहीं आते । उस समय तो सिर्फ एक ही विचार आता है कि पानी में से जल्दी बाहर कैसे निकलूं, उसके सिवाय उसे दूसरा कोई विचार नहीं आता । जैसे समुद्र में डूबे हुए जीव को अपनी स्थिति का, अथवा बचने से मेरा उदय

जो राजा प्रजा को त्रास देता हैं, प्रजा भी उसका तिरस्कार करती है। ऐसा राजा प्रजा के हृदय में स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। यह तो हुई राजा की बात। परन्तु एक घर का स्वामी भी क्रोधी हो तो घर के मनुष्य त्रस्त हो जाते हैं और यों सोचते हैं कि अब यह बला कुछ दिनों के लिए कहीं चली जाय तो अच्छा! अगर वह घर में शान्ति से रहे तो घर के लोग क्या ऐसे विचार करेंगे क्या? कदापि नहीं। देखना, आप ऐसे मत बनना! इस पर मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

मता पिता - पुत्र का दृष्टांत : एक राजा अत्यन्त क्रूर और क्रोधी था। प्रजा का छोटा-सा नगण्य अपराध होता तो उसके लिए कठोर से कठोर सजा फटकारता था। कभी-कभी तो किसी का कसूर न होता तो भी उस पर कोप कर बैठता था। क्रोध उसकी खुराक थी। क्रोध किए बिना उसे चैन नहीं पड़ता था। वह जब अपने सिंहासन पर बैठने जाता, उस समय कदाचित् तू कोई मनुष्य उसे - 'पधारो महाराज!' कहकर सम्मान नहीं देता, तो उसपर गुस्से होकर उसे पीट डालता। इसलिए उसके राज्य में प्रत्येक मनुष्य उसके डर से थर-थर कांपते थे और सभी लोग उस राजा की दृष्टि से दूर रहते थे। राजा के पास जाने का किसी का भी मन नहीं होता था। इस प्रकार उस राजा ने काफी समय तक क्रूरतापूर्वक राज्य-संचालन किया। जनता त्राहि-त्राहि पुकार उठी थी।

बन्धुओं! मनुष्य चाहे जैसा क्रोधी हो, अभिमानी हो, मायावी हो, या बड़ा राजा-महाराजा हो, क्या काल (मरण) किसी को छोड़ता है? समय पाकर इस क्रूर और क्रोधी राजा की मृत्यु हुई। राजा की मृत्यु के समाचार सारी नगरी में तीव्र वेग से फैल गए। प्रजा बहुत खुश हुई। सब कहने लगे - "आज तो लड्डू बनाकर खाने चाहिए। क्रूर राजा परलोक गया, अब नया राजा राजगद्दी पर आएगा, तो हम अब शान्ति से रहेंगे।" गहराई से सोचो - मनुष्य जैसा जीवन जीकर जाता है, उसके पीछे उसका प्रतिघोष पड़ता है। अगर पूर्वराजा ने न्याय-नीति से सहानुभूतिपूर्वक राज्य किया होता तो प्रजा उसके पीछे अश्रुपात करती। परन्तु यहाँ तो उक्त क्रूर राजा की मृत्यु से प्रजा को आनन्द हुआ, क्यों कि उक्त राजा की आकृति मनुष्य की थी, परन्तु प्रकृति थी राक्षस की।

राजा की मृत्यु के बाद उसका पुत्र राजगद्दी पर बैठा। उस कुमार में इतनी अधिक नम्रता थी कि वह अपने प्रधान आदि बड़े अधिकारियों से कहता था कि-"मेरी कोई भी भूल हो जाए तो मुझे सावधान कर देना।" मैं नया नौसीखिया हूँ, बालक हूँ, आप मेरे माता-पिता बनकर हित शिक्षा देना। कुमार के ये उद्‌गार सुनकर सबके दिल में शान्ति हुई। सभी सोचने लगे कि पुरानी कहावत है - **'बाप जेवा बेटा, ने वड़ जेवा टेटा।'** परन्तु इस नये राजा में ऐसा घटित नहीं होता। कहाँ तो पूर्व-राजा का कठोर स्वभाव और कहाँ इस नये-राजा की कोमलता और नम्रता? यह नूतन राजा नागरिकों को सन्तोष हो, इस प्रकार से राज्य चलाएगा। एक दिन इस नये-राजा की सवारी निकली। यह कुंवर राजा पहली ही बार सवारी निकालकर नगर में घूमने हेतु निकले थे। सवारी अत्यन्त धूमधाम से सारे नगर में धूम-फिरकर राजमहल के मुख्य द्वार पर आई।

से प्रेरित होकर। परन्तु जो वस्तुएँ धर्मगुरु के पास है ही नहीं, जिन्हें वे सर्प की कांचली की तरह छोड़कर सांसारिक (गृहस्थ) जीवन से निकल गये हैं, वे तुम्हें कैसे उन चीजों को दे सकते हैं ? संतों के पास तो धर्म के सिवाय दूसरी बातें नहीं हैं। अतः हीरे के तेज को अग्नि के साथ, तथा मोती के पानी की वर्षा के पानी के साथ सदृशता नहीं की जाती। जौहरी की कीमत उसके पास रहे जवाहरात पर से आंकी जाती है। एक कोली, जिसे जवाहरात की परख करनी नहीं आती थी, उसने एक नग हाथ में लिया और देखने लगा। उसने कहा - "जौहरी तो नग के तेज को सूर्य के तेज जैसा कहता है, परन्तु मुझे तो इसमें जलती दियासलाइ जैसा तेज नहीं नजर आता।" दूसरे एक जौहरी ने मोती हाथ में लिया और कहा - "इसमें तो पानी का दरिया है।" अतः उसके पास खड़े कोली कपड़ा लेकर (उस मोती के निकट लाकर) भिगोने लगा। पर क्या उससे कपड़ा भीग सकता था ? नहीं भीग सकता था। अतः जिस हीरे की अग्नि के तेज से तथा मोती के पानी की समानता करने जाए, उसे हम मूर्ख कहते हैं, इसी प्रकार जो मनुष्य भौतिक सुख के लिए धर्म करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को मूर्ख ही कहना चाहिए न ? दूसरी तरह से समझाती हूँ - जैसे कोली को हीरे के तेज और मोती के पानी, कहनेवाला मानव गलत लगता है, जो धर्म को पौद्गलिक दृष्टि से देखने जाता है, उन्हें धर्म हम्बक (झूठी गप्प-सा) लगता है। महारम्भवाले मार्ग पर चढ़े हुए व्यक्ति को सद्गुरुजन सच्चा धर्म समझाने जाएँ, किन्तु उसे धर्म रुचिकर नहीं लगता। अतः मोती की कीमत अग्नि के तेज के कारण नहीं, अपितु विभिन्न प्रकार के पानी से सम्बन्धित है, हीरे की कीमत भी भिन्न-भिन्न प्रकार के तेज के कारण है। वैसे ही धर्म की कीमत आत्मकल्याण-कारकता के कारण है। जिसकी दृष्टि आत्मकल्याण की ओर नहीं गई, अथवा जिसमें आत्मकल्याण करने की भावना नहीं हुई; ऐसे मनुष्य की दृष्टि में धर्म निरर्थक है। परन्तु जब आत्मा जाग जाता है, तब (स्व) धर्म की रक्षा के लिए, चाहे जितने कष्ट आएँ, उन्हें समभाव से सहन कर लेता है।

महाशतक श्रावक का दृष्टांत : 'उपासक दशांग सूत्र' में महाशतक श्रावक (श्रमणोपासक) का वर्णन आता है। महाशतक के पास अपार (असीम) धन था। उसके पास कुल मिल्कियत २४ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की थी। उनमें से ८ करोड़ सोनैये व्यापार-धंधे में लगाये हुए थे, ८ करोड़ सोनैये घर-बखरी सामान के लिए रखे हुए थे और ८ करोड़ सोनैये भूमि में निधान के रूप में सुरक्षित कर रखे थे। आज के लोगों की क्या स्थिति है ? आज तो हुंडी का दर एक लाख का है, परन्तु व्यापार किया जाता है, पाँच लाख का। कई माई के लाल व्यापार फैला देते हैं करोड़ो रुपयों का, मगर पास में पूंजी उतनी नहीं होती। परन्तु महाशतकजी के पास ऐसी अनधिकार चेष्टा नहीं थी। उन्होंने अपने पास की २४ करोड़ सौनेयों की मिल्कियत को तीन हिस्सों में लगा दी थी। तदुपरान्त उनकी १२ पत्नियाँ थीं। प्रत्येक पत्नी अपने पीहर से प्रीतिदान के रूप में एक-एक करोड़ सोनैये तथा एक-एक गोकुल जितनी गायें लाई थी। १३वीं स्त्री रेवती

विना पैसे मिलती है, परन्तु यह तुम्हें अच्छी नहीं लगती। उस दवा का नाम है - 'समता' सुनो, क्रोध का फल कितना विषम है? **'क्रोधे क्रोड पूरवतणुं, संयम-फल जाय रे!''** एक क्षण क्रोध करने से वर्षो तक पालन किए हुए संयम का फल समाप्त हो जाता है। इस शास्त्र-वचनरूपी क्वीनाइन की गोली किसके पास नहीं है? कदाचित् तुम इसे जानते नहीं हो तो, खैर!! मगर तुम्हें इतना तो पता है कि क्रोध करना किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं है। क्रोध के फल कड़वे मिलते हैं। फिर भी दुःख की बात यह है कि यह समतारूपी गोली क्रोधरूपी बुखार नहीं चढ़े, वहाँ तक रखते हो, किन्तु क्रोध आता है, तब यह गोली गायब हो जाती है। बोलो, क्रोध आता है, तब याद आता है कि क्रोध करने से आत्मा के गुण (क्रोधाग्नि में) जलकर भस्म हो जाते हैं। जब क्रोध शान्त हो जाता है, तब पछतावा होता है कि मुझे ऐसा गुस्सा नहीं करना चाहिए। क्रोध का परिणाम करुण और दारुण होता है। ऐसा जानते समझते हुए भी पंच-महाव्रत के पालक, मासखमण का तप करनेवाले, अष्ट-प्रवचन-माता की गोद में लोटनेवाले और तीर्थंकर भगवन्तों की आज्ञा का पालन करने के लिए जीवन-अर्पण करनेवाले महान् पुरुष भी कभी-कभी क्रोधरूपी कसाई के चंगुल में फँस जाते हैं, तव वर्षो की संयम-साधना को भस्मीभूत कर देते हैं।

क्रोध-के फल कितने कड़वे हैं ? : एक संत थे, वे क्रोधाग्नि में जलकर भूर्त्ता हो गये। मरकर भी ऐसे क्रूर हो गए कि वे तीर्थंकर भगवन् को भी मारने को उद्यत हो गए। जब वे पहली बार तीर्थंकर प्रभु को मारने के लिए तत्पर हुए, किन्तु वे नहीं मरे। दूसरी-तीसरी बार भी विषाक्त दृष्टि फेंकी, किन्तु तीर्थंकर भगवान् पर कुछ भी असर नहीं हुआ। तब उसे अफसोस हुआ। वह पुनः प्रभु को मारने का उपाय करता है, किन्तु फिर भी तीर्थंकर प्रभु पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ। कौन था वह? क्या तुम उसे जानते हो? तुम्हें नहीं मालूम हो तो मैं ही बता देती हूँ। वह था चण्डकौशिक दृष्टि विष सर्प। और जिन्हें वह मारने का उपक्रम कर रहा था, वे थे तीर्थंकर भगवान् महावीर। यह तो सभी जैन जानते हैं कि चण्डकौशिक कौन था? वह ऐसा भयंकर जहरीला सर्प कैसे बना? चण्डकौशिक सर्प का जीव पूर्वभव में एक महान् पवित्र साधु थे। उनके लघुशिष्य ने सायंकाल प्रतिक्रमण के समय याद दिलाया कि - "गुरुदेव! अपन स्थाण्डिलभूमि (शौच के लिए) जा रहे थे, तब आपके पैर के नीचे एक मेंढकी दबकर मर गई थी, उसकी आलोचना कीजिए।" इस पर गुरुदेव ने कहा - "वह दब गई थी, किन्तु मरी नहीं थी।" शिष्य ने प्रतिवाद करते हुए इस बात को दो-तीन बार दोहराई। इससे गुरु भी भयंकर क्रोधाविष्ट हो गए और शिष्य को मारने दौड़े। रात्रि के अन्धकार में क्रोधावेश में भान न रहने के कारण वे एक थंभे से टकरा गए। फलतः उनके मस्तक की मुख्य नस फट गई और वे तत्काल मरण-शरण हो गए।

अत्यन्त क्रोधवश मृत्यु होने से मरकर (वे पवित्र साधु) चण्डकौशिक सर्प बने। क्षणभर की प्रचण्ड क्रोध में उनकी वर्षों की साधना जलकर भस्मीभूत हो गई। क्षणिक क्रोध महाव्रत को मूल से नष्ट कर देता है और अष्टप्रवचन-माता की मातमपुर्सी (मोकाण) कर देता है। क्या वह साधु यह जानते नहीं थे कि क्रोध का नतीजा अत्यन्त विषम होता

बनाने के हेतु भेजा । गौतमस्वामी भगवान की आज्ञा से महाशतकजी के पास आए । उन्हें उपर्युक्त बात कही । तथा कहा - "आपने रेवती पर क्रोध आने से, सत्य होते हुए भी रोषवश अप्रिय बात कही और उसके आर्त-रौद्रध्यान में निमित्त बने । अतः मैं भगवान की आज्ञा से आपको प्रायश्चित्त देने आया हूँ ।" सरलभाषी महाशतकजी तुरंत प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हुए । संथारा साजने पर कालधर्म पाकर वह पहले देवलोक में देव हुए । बन्धुओं ! जो आराधक होते हैं, या आराधक बनना चाहते हैं, वे गम्भीर एवं योग्य निर्णायक के पास आचोलना-वन्दना-क्षमापना करके तुरंत प्रायश्चित्त ग्रहण कर लेते हैं । चौदह-पूर्व धारक, लब्धधारी साधु अपनी शंका का समाधान प्राप्त करने हेतु आहारक शरीर बनाकर सीमन्धरस्वामी के पास जाए और अपने प्रश्न का समाधान पाकर आए, फिर आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करे तो आराधक हो जाता है, और ऐसा न करे तो विराधक हो जाता है । अतः अपनी भूल, दोष, अपराध, त्रुटि का दृष्टांत करना सीखो, नजरअंदाज न करो, प्रतिक्रमण भी शुद्धभावों से करो । अतिचार पाठ भी ज्यों-ज्यों बोलते जाओ, त्यों-त्यों शुद्ध अन्तःकरण से मिच्छामि दुक्कड़ं बोलकर दिनचर्या अथवा पाथिकादि की चर्या में लगे हुए दोषों-पापों का प्रायश्चित्त ग्रहण करते जाओ तो, क्रमशः असंख्यात कर्मों की निर्जरा होती जाती है ।

बलराजा को मानवजीवन की महत्ता समझ में आ गई । सम्यक् समझ आने से वह अब भागवती दीक्षा (पूर्ण संयम आराधना) अंगीकार करने के लिए तैयाह हो गए हैं । शास्त्रकार कहते हैं -

"जं नवरं महब्बलं कुमारं रज्जे ठावइ, जाव एक्कारसंगवी, बहूणि वासाणि सामण्णं-परियायं पाउणित्ता जेणेव...चारु पत्वए मासिएणं भत्तेणं...सिद्धे ।"

अतः विरक्त बलराजा ने महाबलकुमार को राज्य-सिंहासन पर बिठाया । स्वयं (बलराजा) संयम ग्रहण करने के लिए तत्पर हुए । स्थविर भगवंतों के पास गए । उनके निश्राय में भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

प्रश्न होता है - बलराजा का दीक्षा लेने से क्या लाभ हुआ ? लाभ यह हुआ कि वह संयतात्मा *'खंतो दंतो निरारंभो'* हो जाता है, अर्थात् जो आत्मा प्रव्रज्या ग्रहण करता है, वह क्षमावान (खंतो) बन जाता है, दैतो - इन्द्रिय-दमनकर्ता बन जाता है । "दुष्ट (दोषयुक्त) आत्मा का दमन करने से इस लोक और परलोक में सुखी हो जाता है । अगर साधक स्वयं इस प्रकार से आत्मदमन नहीं करता है, इन्द्रियों और मन को स्वच्छन्द रूप से प्रवृत्ति करने देता है, तो दूसरे प्रकार से, बन्धनादि से उनका दमन तो होता ही है । अतः स्वयं वह दान्त बन जाता है ।" *तथैव निरारंभो* अर्थात् - आरम्भ से रहित हो जाता है । वह आरम्भ (हिंसादि) के किसी कार्य से नहीं जुड़ता । साथ ही दीक्षा लेने के बाद संयमी की आत्मा समभाव से भावित हो जाती है । जैसे कि सच्चे मुनि के विषय में 'उत्तराध्ययन सूत्र' (के आ.-१९, गा.-९०) में कहा गया है -

"उत्पद्यमान: प्रथमं दहत्येव स्वमाश्रयम ।
क्रोध: कृशानुवत् पश्चादन्यं दहति वा न वा ।।"

भावार्थ यह है कि क्रोधी व्यक्ति दूसरों का तो अहित करता है, किन्तु उससे पहले स्वयं का अहित कर लेता है । इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि क्रोध का सर्वथा त्याग करना चाहिए । जिसे शीघ्र ही आत्मा का श्रेय (कल्याण) करना हो, उस पर कोई क्रोध करे या उसका अपमान करे, अथवा कटुवचन कहे तो मन में जरा भी उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए । क्रोधी व्यक्ति के खिलाफ प्रतिक्रोध न करने से पहला लाभ तो यह होता है कि अपना आत्मा मलिन नहीं होता । दूसरा लाभ यह है कि क्रोध करनेवाला मनुष्य अकेला कबतक और किसके प्रति क्रोध करेगा ? उसे प्रत्युत्तर नहीं मिलेगा, तो अपने आप वह शान्त हो जाएगा ।

महाबलराजा अत्यन्त न्याय-नीतिपूर्वक राज्य चलाता है । प्रजा उन पर आशीर्वाद का अभिषेक करते हैं कि हमारे यहाँ राजा दीर्घायु हों । इस प्रकार आनन्दपूर्वक जीवन चल रहा था ।

इसी बीच एक शुभ प्रसंग बना । शास्त्रकार कहते हैं ।

'तएणं सा कमलसिरी, अन्नया सीहं - सुपिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा ।"

महाबलराजा की रानी कमलश्री एकबार सुखशय्या पर सोई हुई थी । कुछ जागृत और कुछ निद्रित अवस्था में उसने एक सुस्वप्न देखा । स्वप्न में उसने एक सिंह देखा । रानी कमलश्री ने शय्या में से उठकर अपने पति महाबलराजा के शयन कक्ष में जाकर विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा - "स्वामीनाथ ! आज मैंने स्वप्न में एक सिंह देखा है । स्वप्न देखने के बाद जागृत होकर धर्माराधना करने के पश्चात् मैं आपसे स्वप्न का वृत्तान्त निवेदन करने आई हूँ ।" यह सुनकर महाबलराजा ने कहा - "महारानीजी ! आपने देखा हुआ सिंह का स्वप्न सूचित करता है कि आपकी कुक्षि से सिंह जैसे बलवान् एवं पवित्र पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा ।" पति के मुख से ये उद्‌गार सुनकर रानी अत्यन्त प्रसन्न और आनन्दित हुई । रानी को राजा के वचन पर अत्यन्त श्रद्धा थी, इसलिए पतिदेव के वचन को 'तथाऽस्तु' कहकर स्वीकार किया । बन्धुओं ! एकबार पहले मैंने प्रवचन में कहा था कि स्वप्न की बात किसके आगे प्रकट की जाए ? तथैव स्वप्न की बात कहने की भी कला आनी चाहिए । स्वप्न की बात सुननेवाला भी गम्भीर होना चाहिए । अन्यथा, कई लोग स्वप्न का उटपटांग अर्थ लगा लेते हैं । इस सम्बन्ध में मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है ।

बोलने में अविवेक से हानि और विवेक से लाभ : 'एक राजा ने स्वप्न में देखा कि मेरी दांत की सारी बत्तीसी टूट पड़ी है ।' इसलिए उसने ज्योतिषी को बुलाकर पूछा - "मुझे ऐसा स्वप्न आया है, उसका मुझे क्या फल मिलेगा ?" ज्योतिषी ज्योतिषशास्त्र का विद्वान् था । उसने स्वप्नशास्त्र में उक्त स्वप्न का फल यथार्थ रूप से जानकर राजा से पूछा - "महाराजा ! स्वप्न का फल जैसा है, वैसा ही कह दूं क्या ?" आप भी

बनावटी विद्युत्प्रभा को राजा पूछते हैं – "तुम्हारे सिर पर बगीचा रहता था
दिखाई नहीं दे रहा है ?" वह उलटे-सीधे जवाब देने लगी। परन्तु फिर उसकी बु
में पड़कर व्यथित होने लगी। किसी के द्वारा सिखाया हुआ, कहाँ तक बोला
है ? समय आने पर तो उसे अपनी ही बुद्धि से जवाब देना चाहिए न ?

जाम साहब का पुत्र ९ वर्ष का हुआ। उस समय उसके राज्य पर दूसरे र
करने आए। उस समय उसकी माता अपने पुत्र को सिखाने लगी – "देख वे
यों पूछे तो उसका जवाब यों देना।" लड़का कहने लगा – "माँ ! तुम्हारे द्वारा
पूछे तो तो ठीक, परन्तु उसके अतिरिक्त कोई सवाल पूछे तो ?" माता ने कहा
स्थिति में तुझे जो सूझे, योग्य लगे, वह जवाब दे देना।" वह लड़का तत्कालीन
के पास गया। बादशाह ने उसके दो हाथ पकड़ लिए और पूछा – "बोल, अ
करेगा ?" लड़का बोला – "लग्नमण्डप में पति स्त्री का एक हाथ पकड़ता
जिंदगी भर उसका पालन-रक्षण करता है, उसकी आर्थिक स्थिति ठीक न हो त
मेहनत-मजदूरी करके जिंदगीभर अपनी पत्नी को निभाता है, पालन करता है
तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए हैं। अतः अब मुझे क्या चिन्ता है ? मेरा पाल
आप करेंगे ही।" इस लड़के का जवाब सुनकर राजा प्रसन्न हो गया। उन्हों
"बेटा ! तुझमें ऐसी बुद्धि कहाँ से आई ?" कहने का आशय यह है कि सिख
सब काम नहीं आता। मैं आपको रोज कहती हूँ कि प्रतिक्रमण सीखो। दुर्ग
जाना हो तो पापभीरु बनो। मगर आपको खुद को प्रतिक्रमण सीखने की लग
तो पन्द्रह दिनों में सीख सकोगे। लड़का स्कूल में पढ़ने जाता है, परन्तु वहाँ (
से पहले) उसका नाम-पता आदि न लिखा गया हो तो वह अपनी माँ के पा
स्कूल में नाम लिखाने के लिए माँ से जिद्द करता है। माँ उसके साथ स्कूल
अपने पुत्र का नाम-ठाम आदि लिखा देती है, तभी उस लड़के को चैन पड़ता
तरह अगर तुम्हें प्रतिक्रमण या सामायिक आदि के पाठ न आते हों, सीखने हों त
भगवन्त की पाठशाला में अपना नाम लिखाओ और प्रविष्ट हो जाओ।

वह बनावटी रानी राजा को अपनी सफाई देती हुई कहती है – "१५ दिन बा
आ जाएगा।" यह जवाब सुनकर राजा को उसके विषय में शंका पक्की हो
इधर विद्युत्प्रभा नागराज की सहायता से आनन्द में समय व्यतीत कर रही है
उसे अपने नवजात पुत्र के विरह का दुःख बार-बार मन को कचोटता है कि
का क्या हुआ ? एक दिन विद्युत्प्रभा ने अपने उपकारी नागदेव से प्रार्थना क
नागराज ! मेरा शिशु मेरे से वियोग हो गया है, उसे देखने के लिए मेरा मन व
रहा है। उसे खेलाने और दूध पिलाने की मेरी बहुत इच्छा है। मेरी इतनी-सी म
आप पूर्ण करो। नागदेव को विद्युत्प्रभा के प्रति अत्यन्त स्नेह और भक्ति
अतः रात्रि के समय वह विद्युत्प्रभा को राजमहल में ले जाता है। परन्तु नागरा

एक गाँव जागीरी में इनाम दिया । किन्तु ज्योतिपी यह सब उपहार लेने से इन्कार कर दिया । पहला ज्योतिपी, जो जेल में था, उसे इस बात का पता लगा, तो उसकी आँख में आँसू आ गए । ये आँसू किस बात को लेकर थे ? स्वयं को जेल में बंद किया गया और उसके शिष्य को इतना इनाम मिला है, उसके लेकर उसकी आँख में आँसू नहीं उमड़े थे ! अपितु उसके मन में यह विचार हुआ कि मेरे पास ज्योतिष पढ़े हुए शिष्य ने कहीं (स्वप्न का) गलत अर्थ तो नहीं किया है ? राजा उस ज्योतिर्विद् से कहता है - "मैं तुम्हें राजीखुशी से भेंट दे रहा हूँ, इसे ग्रहण कर लो ।" इस पर दूसरा ज्योतिषी बोला - "मुझे इनमें से एक चीज भेंट में कम दो, परन्तु जिन्हें आपने जेल में बंद किया है, उन्हें मुक्त कर दो ।" राजा ने कहा - "उसे तो हर्गिज नहीं छोड़ सकता ।" इस पर दूसरे ज्योतिषी ने कहा - "तो मुझे आपसे कुछ भी भेंट नहीं चाहिए ।" अन्ततोगत्वा राजा ने पहले ज्योतिपी को जेल से मुक्त किया । तब वह ज्योतिषी अपने शिष्य से पूछता है कि - "तू सत्य से विजयी हुआ है या असत्य से ?" यह सुनकर शिष्य ने कहा - "गुरुदेव ! मैंने *अर्थ का अनर्थ बिलकुल नहीं किया । मैंने यों कहा कि - 'महाराजा ! आप ऐसे* दीर्घायु हैं कि आपकी मृत्यु (आपके परिजन) कोई नहीं देखेंगे ।' इसका अर्थ तो वही हुआ न (जो आपने कहा था) ?" सारांश यह है कि भापा में विवेक रखने से लाभ और अविवेक से हानि होती है ।

महारानी कमलश्री ने भी अपने पति को (विवेकपूर्वक) स्वप्न का वृत्तान्त कहा, राजा ने भी उसका उचित जवाब दिया । उसे सुनकर रानी को बहुत प्रसन्नता हुई । अब राजा स्वप्नपाठकों को बुलाकर (स्वप्नशास्त्र के अनुसार) स्वप्न का फल पूछेंगे; यह बात यथावसर कही जाएगी ।"

पुण्य-पाप के खेल की कथा

विद्युत्प्रभा का रुकना और नागदेव का मरण-शरण होना : राजा के अत्याग्रह के कारण विद्युत्प्रभा सारी बात खोलकर कहीं । इतने में सबेरा हो गया और सहसा विद्युत्प्रभा की वेणी में से मृत सर्प नीचे गिर पड़ा । यह देखकर विद्युत्प्रभा के होश उड़ गए । वह बिलकुल उदास होकर सोचने लगी - *अब मेरा क्या होगा ?* उसे बहुत ही रंज हुआ, परन्तु जो होना था, वह होकर रहा । विद्युत्प्रभा बेहोश होकर धड़ाम से गिर पड़ी । सभी दास-दासियाँ एकत्रित हो गई, ठंडा जल उसपर छींटा गया । चन्दन का लेप किया गया, अनेक उपचार किए, तब रानी कुछ होश में आई । राजा ने जब सत्य हकीकत जानी, तव उसकी सौतेली माँ पर उन्हें बहुत ही क्रोध उत्पन्न हुआ ।

सौतेली बहन और माँ को राजा द्वारा मारने से वियुत्प्रभा ने रोका : राजा ने क्रोधावेश में आकर नकली विद्युत्प्रभा को रस्सी से बांधकर चाबुक का प्रहार करने का आदेश दिया । उस समय विद्युत्प्रभा राजा के चरणों में पड़कर कहने लगी -

व्याख्यान - १९

आषाढ़ वदी १२, शुक्रवार — ता. २३-७-७६

सच्चा विरक्त : नहीं होता भोगों में आसक्त

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त पुण्योदय से हमें यह सर्वज्ञ वीतरागों का शासन प्राप्त हुआ है। सर्वज्ञ के शासन का तात्पर्य है - मोक्ष - प्रासाद पर चढ़ने की सीढ़ी । अगर हमने इस सीढ़ी को छोड़ दी तो दुर्गति की गहरी खाई में एकदम गिर जाएँगे । सीढ़ी को छोड़ने का अर्थ है - जिन शासन के प्रति श्रद्धा का त्याग करना । अतः इस सर्वज्ञ के शासन को पाकर आत्मा को सुधार लेना है । जो आत्मा विषय-कषाय के चंगुल में फंसकर बिगड़ गया है, उसे सुधारने का काम सर्वज्ञ का शासन पाकर नहीं करेंगे तो फिर कहाँ करेंगे ? सर्वज्ञ वीतराग प्रभु का शासन आत्मा को सुधार सकता है । सर्वज्ञ के शासन में शुद्ध रत्नत्रयी (सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र) और आराध्य तत्त्वत्रयी (देव, गुरु और धर्म) प्राप्त होती है । अतः शुद्ध रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयी की साधना, आराधना और श्रद्धा (निष्ठा) द्वारा आत्मा को सुधारने (शुद्ध बनाने) का पुरुषार्थ करना चाहिए । अगर यहाँ (इस मनुष्य जन्म में) पुरुषार्थ नहीं किया तो बाद में पश्चात्ताप करना पड़ेगा ।

बन्धुओं ! जिनशासन समस्त जीवों की रक्षा का जोर-शोर से उपदेश देता है। छोटे-से छोटे जीव की रक्षा से लेकर बड़े-से बड़े जीव की रक्षा (की प्रेरणा) जिनशासन में जिस प्रकार बताई है, वैसी रक्षा-विधि अन्यत्र कहीं नहीं है। तथैव अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, नम्रता, सरलता, पवित्रता, संयम, सन्तोष, बाह्य-आभ्यन्तर तप, व्रत, नियम, ज्ञान-ध्यान, विरति, कर्मों-दुःखों तथा जन्म-मरणादि से मुक्ति, एवं अनेकान्तवाद आदि सम्यक् सिद्धान्त वगैरह की सत्यता, शुद्धता, यथार्थता, जो सर्वज्ञ-शासन में दृष्टिगोचर होती है, वैसी अन्यत्र कहीं भी प्रतीत या दृष्टिगत नहीं होती । भव के कारणों और मोक्ष के कारणों का पृथक्-पृथक् चयन करके स्पष्ट बतानेवाला कोई हो तो वह जैनशासन है । यही कारण है कि संसार और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप जो जैनशासन में देखने में आया है, वह दूसरे किसी मत, तीर्थ संघ या शासन में देखने को नहीं मिलता । अतएव समस्त जीव मात्र के लिए हितकारक एवं दुर्लभ शासन पाकर तुम प्रमाद में पड़कर आत्मा का अहित मत करना । बल्कि आत्मा का हित करने के लिए सर्वज्ञ शासन के प्रति वफादार रहना ।

होती है और परभव में स्वर्ग के दिव्य सुख तथा उत्तम सद्धर्माचरण से मोक्ष के सुख मिलते हैं ।" ऐसी सुन्दर धर्मोपदेशना सुनकर विद्युत्प्रभा रानी ने गुरुदेव से पूछा - "गुरुदेव ! मैंने पूर्वभव में कैसे कर्म बांधे थे कि पहले मुझ पर दुःखों की झड़ियाँ बरसीं । मेरे दुःख निवारण में नागदेव सहायक बने और मेरे सिर पर सदा बगीचा छत्राकार में रहा । आपको साता हो तो कृपा करके मुझे बताइए ।" गुरुदेव ने कहा - "तो सुनो तुम्हारे सुख-दुःख का वृत्तान्त ।

आत्मार्थी ज्ञानी गुरुदेव ने विद्युत्प्रभा का पूर्वभव वृत्तान्त कहा : इस भरतक्षेत्र में चम्पापुरी नाम की अलबेली नगरी थी । उस नगरी में कुलधर नामक धनाढ्य सेठ रहते थे । उनकी पत्नी का नाम था - कुलानन्दी । उसके रूप-लावण्य सम्पन्न सात पुत्रियाँ थीं । उसके बाद सेठानी के आठवीं पुण्यहीन पुत्री हुई । इस पुत्री के कदम पड़ते ही इस घर से लक्ष्मी देवी रूठकर बिदा हुई । इस कारण माता-पिता को उस लड़की के प्रति बिलकुल प्रेम नहीं रहा । उस अभागी पुत्री का नाम भी माँ-बाप ने नहीं रखा । क्रमशः बड़ी होकर वह लड़की यौवन के सिंहद्वार पर आ पहुँची । उसके माँ-बाप को उक्त पुत्री के विवाह की चिन्ता सताने लगी । अब सगे-सम्बन्धी भी सेठ से कहने लगे - "आप की पुत्री विवाह योग्य हो गई है, फिर भी अभी तक उसके विवाह का विचार क्यों नहीं करते ?" इस पर सेठ ने कहा - "इस लड़की के योग्य वर मिले तो मैं उसका विवाह कर दूंगा । मैं इसके योग्य वर की तलाश में हूँ ।"

एक दिन सेठ अपनी दुकान में बैठे थे, उस समय एक मैले-कुचैले कपड़ेवाला तथा उसके मस्तक पर बिखरे हुए बरछट बाल थे, तथा जुंओं से भरे हुए थे । साथ ही अनेक दिनों के प्रवास के कारण थका हुआ एक वणिकपुत्र सेठ की दुकान पर आ चढ़ा । सेठ ने उससे पूछा - "भाई ! तू कौन है ? कहाँ से आया है ? किस नगर में रहता है ?" कंगाल हालत में रहे हुए वणिकपुत्र ने कहा - "सेठजी ! मैं कौशल नगर के निवासी नंदी वणिक का पुत्र और उनकी सोमा नाम की पत्नी का अंगजात हूँ । मेरा नाम नन्दन है । मैं धन कमाने के लिए चौड़ देश में गया था, किन्तु दुष्ट दारिद्र्य ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा । फिर धन के बिना मैं व्यापार-धंधा भी कैसे करता ? विवश होकर इस नगर के निवासी और चौड़ देश के व्यापारी वसंतदेव वणिक के यहाँ मैंने नौकरी कर ली । यहाँ वसंतदेव ने अपने घर में पत्र देने हेतु मुझे भेजा है । उनका घर कहाँ है ? कृपया यह मुझे बताइए, ताकि मैं उनका पत्र उन्हें देता आऊँ ।"

इस वणिकपुत्र की बात सुनकर सेठ ने मन ही मन सोचा - 'वास्तव में यही मेरी छोटी पुत्री के लायक वर है । इसके साथ उसका विवाह करके इसके साथ ही उसे भेज दूं ताकि वह फिर वापस यहाँ न आए ।'

पिता की पुत्री के प्रति कैसी दुष्ट भावना : कर्म की कुटिलता कैसी है ? सेठ ने उस वणिकपुत्र से कहा - "तू यह पत्र वसंतदेव के घर देकर जल्दी से मेरे घर

कर्म के उदय से शादी के दो-तीन वर्ष बाद ही उसके पति का देहान्त हो गया । अतः वह लड़की विधवा हो गई । उस जमाने में ऐसा रिवाज था कि कोई महिला विधवा हो जाय तो उसे शादी के समयवाला वही घरचोला पहनाते थे । इस पर आप सोचिए कि जब वह नारी शादी करके ससुराल आई, तब घरचोला पहनने में उसे कितना आनन्द था ! किन्तु जब उसका सुहाग छीन गया, तब एक वक्त आनन्द देनेवाला वहीं घरचोला, अब आनन्ददायक लगने के बदले शरीर पर मानो अंगारे रखें हों, ऐसा दुःखदायक लगेगा न ? किसी का जवान पुत्र गुजर जाए, तब संसार में उस माता को किसी प्रकार का स्वाद या आनन्द नहीं रहता । वैसे ही भगवान् कहते हैं कि - "मेरे श्रावक को कर्म के उदय से संसार में रहना पड़े तो रहे, पर वह संसार का स्वाद नहीं लेता ।" विधवा बहन को पति का वियोग होने पर संसार में वह उदासीन भाव से रहती है, वैसे ही सच्चा श्रावक उदासीन भाव से रहता है । श्रीमद् राजचन्द्रजी ने भी कहा है -

"सर्वभावथी औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देह ते संयम हेतु होय जो ।...अपूर्व...।"

संसार में चाहे जितना सुख हो, किन्तु उसे वह क्षणिक प्रतीत होता है । पाप का काम आए, वहाँ वह पीछे हट जाता, अनर्थ दण्ड से दण्डित नहीं होता और अशुभ अनिष्ट कर्म नहीं बांधता, क्योंकि वह (श्रावक) समझता है कि ये कर्म मेरे कट्टर शत्रु हैं । इन कर्मो ने ही मुझे अनादिकाल से संसार में भटकाया है । अब तो सर्वज्ञ वीतराग प्रभु का शासन पाकर मुझे कर्मशत्रु के खिलाफ बाँहे फैलाकर भिड़ जाना है और उसे भगाना है । श्रावक में ऐसी लगन होनी चाहिए । आज तो मनुष्य क्षण-क्षण में कर्मबन्ध करता है । जहाँ-तहाँ अनर्थदण्ड से दण्डित होता है ।

महाबलकुमार खूब अनासक्त भाव से राज्य में रहते थे । संसार में (विवेकपूर्वक) रहना आ जाए तो मनुष्य कुछ सत्कार्य कर सकता है । परन्तु तुम्हें तो संसार में कैसे रहना ? यह आता नहीं । बोलो, आता है ? कितना मोह, कितनी ममता और कितना परिग्रह ? दूसरों के लिए कितनी व्यर्थ झंझट ?

जन्मीने मरी जावुं, एटली वात छे, एमां तो मानवीने केटली पंचात छे ?
प्रभु-नाम रटी जीवे तरवानो हाथ छे, एमां तो मानवीने केटली पंचात छे ?
होहो ! भणी-गणीने एने डाह्या थई महालवुं, पांचमां पुछावुं एने मोटा थई महालवुं ।
मोटा थवानो एने केटलो उचाट छे ? ऐमां तो मानवीने.....॥

२५, ५० या १०० वर्ष की जिंदगी है । उसमें धर्माराधना करने के बदले पैसा, पद, प्रतिष्ठा और प्रमाद के पीछे कितना पागलपन है ? इन सबको प्राप्त करने में जिंदगी का अमूल्य समय व्यर्थ खर्च हो जाता है । अतः अब पर (आत्म-बाह्य) की पंचायत करना छोड़कर आत्मा की पंचायत करो तो आत्मा का कल्याण हो जाय ।

महाबलकुमार राजा बने । वह कमलश्री आदि ५०० रानियों के साथ संसार के सुख भोग रहे हैं और प्रजा का भलीभांति रक्षण करते हैं । जो राजा न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करता है, प्रजा को सन्तुष्ट रखता है, वह राजा प्रजा के दिल में बस जाता है । इसके विपरीत

पहचानता न हो तो भी उसे चलकर बुलाता हैं, पूछता है – "आओ बहन ! कहाँ से आई हो ? किसे ढूंढ रही हो ?" पर यह तो गरीब और फटेहाल थी । इसे कौन आदरपूर्वक पूछता ? मैं ठीक कह रही हूँ न ? बहनों ! तुम भी ऐसा ही करती हो न ? यहाँ तो इस लड़की का कोई भी नहीं था । इसके सुख-दुःख का हाल पूछनेवाला कोई नहीं था । इस नगर के निवासी अधेड़ वय के माणिभद्र नाम के एक सेठ हैं । उनकी दुकान पर कोई ग्राहक या मुनीम नहीं है । सेठ अकेले दुकान पर बैठे हवा खा रहे हैं । इतने में वह बाई घूमती-घूमती माणिभद्र सेठ की दुकान के पास आई । सेठ को पवित्र मनुष्य जानकर उनके चरणों में पड़कर रोती-रोती कहने लगी – "पिताजी ! मैं दीन-हीन, अनाथ अबला हूँ । आप मेरे लिए शरण रूप हैं । मैं आपकी शरण में आई हूँ ।" उसके वचनों में भरपूर वेदना की आर्द्रवारि बह रही थी । यों बोलते-बोलते उसकी आँखों से सावनभादों बरसने लगा । उसका रुदन और करुणाभरे वचन सुनकर सेठ का हृदय पसीज उठा । सोचा – ऐसी अनाथ बालिका को मुझे शरण देनी चाहिए । इसका ललाट देखने से यह उत्तम कुल की पुत्री मालूम होती है । उसके मुख पर पवित्रता और लज्जा आदि के कारण लाली नजर आ रही है । इसके वचन भी नम्रता और विपत्ति की पीड़ा से भरे हैं । यों विचार करके सेठ उसे क्या पूछेंगे तथा आगे क्या होगा ? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

.....

व्याख्यान - २०

आषाढ़ वदी १३, शनिवार | **ता. २४-७-७६**

अपवित्रता के संस्कार तजो, पवित्रता के नहीं

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

हमें महान् पुण्योदय के फलस्वरूप मानवजीवन पवित्रता के पथ पर चलने के लिए मिला है । अनन्त-अनन्तकाल से आत्मा अज्ञान के कारण अपवित्र बन गया है, उसका प्रत्याघात का वह इस जीवन में अनुभव करता है । किस प्रकार ? क्या तुम्हें यह समझ में आता है ? अनन्त भवों के मलिन कुसंस्कार जीव को सहज रूप से मलिन विचार कराते हैं । दूसरों को दुःख लगे, ऐसा कठोर वचन बुलाते हैं, अन्याय, अनीति, चोरी, माया और प्रपंच भरे आचरण कराते हैं, ऐसे अमूल्य वीतराग-प्ररूपित धर्म को छोड़कर धन का ढेर जुटाने की मेहनत कराते हैं । ये और ऐसे जो कुछ कुकृत्य होते हैं; वे सूचित करते हैं कि पूर्वभव की अपवित्रता के संस्कार जीव को यह सब कराते हैं ।

बन्धुओं ! गरहाई से सोचें, यह मानवभव मन को सावधान और पवित्र बनाकर पवित्रता के पथ पर पुरुषार्थ करने के लिए मिला है । यदि यहाँ आकर (मनुष्य जन्म पा-

इस महल के दरवाजे पर तैनात द्वारपाल बहुत चतुर था। उसके मन में एक विचार स्फुरित हुआ कि 'यह नया-राजा इस समय तो शान्त दिखाई देता है, किन्तु भविष्य में अपने पिता की तरह क्रोधी और अन्यायी न हो जाय, अतः मैं उसकी अभी से छानबीन तो कर लू।'

अतः ज्यों ही नया-राजा हाथी पर से उतरकर राजमहल में प्रवेश करने जाता है, त्यों ही वह द्वारपाल फफक-फफककर रोने लगा। यह राजा नये थे, अभी उन्हें राज-सत्तारूढ होने का गर्व नहीं था। द्वारपाल को रोते देखकर नये-राजा ने उसके पास आकर नम्रतापूर्वक पूछा – "द्वारपाल ! मैं राजा बना, उसे देखकर ग्रामजनों के दिल में तो आनन्द है, फिर तू इस समय क्यों रोता है ? क्या मैं राजा बना, यह तुझे पसंद नहीं है ! फिर तू किस लिए रोता है ? मुझे झटपट कहो।" नये-राजा का वचन सुनकर उनके चरणों में पड़कर द्वारपाल बोला – "साहब, आप हमारे राजा बने, इस बात का तो मुझे बहुत आनन्द है। परन्तु आज आपकी जब सवारी निकली, तब मुझे एक बात याद आ रही है कि आपके पिताजी जब-जब महल में पधारते थे, तब मुझे बिना किसी अपराध के दो-चार कोड़े मारते थे।" यह सुनकर नये-राजा मुस्कराए और बोले – "भाई ! वह समय बीत गया। मुझे पिताजी की तरह क्रोध नहीं करना है, नहीं प्रजा को पीड़ित करनी है। मैं तो क्रोध को ऐसा सन्देश भेज रहा हूँ –

क्रोधने कहेजो, आवे लई हथियार, ढाल क्षमानी राखी में तैयार।
कोई गाळ दे, एने प्यार करुं; शक्ति छतां समता धरूं।
पण क्रोधी मारे थवुं नथी, ने दुर्गतिमां हवे जवुं नथी॥

अगर मेरे देह में क्रोधरूपी क्रूर राक्षस प्रवेश करने आएगा, तो उसको हनन करने के लिए मैंने क्षमारूपी ढाल रखी है। अतः मुझे तो कदापि क्रोध नहीं करना है और नहीं दुर्गति में जाना है। क्रोध के कटु फल दुर्गति में भोगने पड़ते हैं। मतलब यह है कि – यह नये-राजा कहते हैं – "मुझे क्रोध करना नहीं है, कदाचित् क्रोध आएगा तो क्षमा की ढाल मैंने तैयार रखी है।" बन्धुओं ! आप वर्षों से सामायिक करते हो, वीतरागवाणी सुनते हैं। परन्तु कभी यह भाव आते हैं कि **'चाहे जो हो, मैं अब क्रोध को पास में भटकने नहीं दूंगा।'** क्रोध करने से आत्मा का बहुत बड़ा नुकसान होता है। 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है – ***'कोहो पीई पणासेई'*** क्रोध से प्रीति का नाश होता है और आत्मा कर्म के कीचड़ से लिप्त हो जाता है।

मनुष्य को ज्वर आता है, तब शरीर गर्म हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं और खाने-पीने की रुचि भी नहीं होती। तीव्र बुखार चढ़ता है, तब बहुत-से लोग यों कहते हैं कि इसे पानी पिलाओ तो इसका ताप ठंडा पड़ जाएगा। परन्तु जिसे बुखार चढ़ा हो, उस व्यक्ति को पानी पीना अच्छा नहीं लगता। यह ज्वर तो शारीरिक है, किन्तु क्रोध तो अध्यात्मिक ज्वर है। शारीरिक ज्वर को उतारने के लिए क्वीनाइन की गोलियाँ पैसे खर्च करके लानी पड़ती है। मलेरिया ज्वर-निवारण की गोलियाँ भी पैसे खर्च करके लाकर घर में सुरक्षापूर्वक रखी जाती है। परन्तु इस क्रोधरूपी बुखार को मिटाने की दवा

अगर दुःखद अवस्थाएँ प्राप्त न करनी हों तो वर्तमानकाल में खूब सावधानी रखो। यदि तुम्हारा वर्तमानकाल सुधर जाएगा तो भविष्यकाल स्वतः सुधर जाएगा।

वन्धुओं ! अब तो तुम्हें समझ में आ गया न कि मनुष्यभव क्यों दुर्लभ है ? और उसमें भी धर्माराधना करने का सुयोग तो अतिदुर्लभ क्यों है ? मैं एक दृष्टान्त द्वारा इस तथ्य को समझाती हूँ -

मान लो, एक मनुष्य विकलांग है। वह कान से बहरा है, आँख से अन्धा है, साथ ही मूक है और शराब के नशे में चूर होकर भयंकर अटवी में फंस गया हो, उसे सही मार्ग पर कौन और कैसे ला सकता है ? और तो और उसे खुद को भान भी नहीं है कि मैं कहाँ हूँ ? इसी प्रकार इस जीव को भी (मोहकर्म के नशे में) भान नहीं है कि -

हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ? कोना संबंधे वळगणा छे ? राखुँ के हुं परिहरुँ ?

अर्थात् - मैं कौन हूँ ? मैं कहाँ (किस गति, योनि) से आया हूँ और मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है ? इसका विचार तक नहीं है। यद्यपि समुद्र या नदी के पानी में तैरनेवाले होशियार तैराक भी कभी डूब जाते हैं तो जिसे तैरना नहीं आता, ऐसे व्यक्ति की तो बात ही क्या की जाए ? अतः मनुष्यभव यानी भवसागर में तैरने की नौका मिलने पर भी मेरा शीघ्रातिशीघ्र कल्याण कैसे हो ! ऐसा विचार तक नहीं आता, तो फिर वह जीव असंज्ञीदशा में कैसे ख्याल करेगा ? इसका विचार करो।

जैसे कोई खेल में मस्त लड़का हो, उसे खेलते-खेलते थकान आ जाए तो वह सो जाएगा, मगर अपने स्कूल में पढ़ा हुआ पाठ याद करने को तैयार नहीं होगा। उसके माँ-बाप उसे पाठ याद करने का कहें तो उसे उनकी बात कड़वी लगती है, अच्छी नहीं लगती। बात तो भविष्य के हित के लिए है, इस बात का उसे ज्ञान-भान नहीं है। फलतः अपने हित की बात को भी वह अनिष्टकारी मानता है। ऐसे बालक को बुखार आ जाए या शर्दी, खाँसी या जुकाम हो जाए तो उससे वह नहीं घबराता, परन्तु यदि उसे स्कूल में अध्यापक के पास पढ़ने जाने का कहें तो घबरा जाता है, क्योंकि स्कूल उसके लिए नापसंद स्थान है। टीचर को देखते ही मानो यमराज को देखता हो, ऐसा भय क्यों लगता है ? पढ़ने का नाम लेते ही ऐसा लगता है मानो चींटियों ने काटा हो। उसने पढ़े हुए पाठ को याद नहीं किया, इसलिए शिक्षक उसे डांटेगा, इसलिए उसे डर लगता है। यह तो अज्ञान-अबोध बात हुई। बालक को अपने भविष्य का या वर्तमान में अपने हित का ख्याल नहीं होता। क्योंकि वह तो अभी बालक है। परन्तु यह जीव मनुष्यभव में आया, उसे पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से बहुत सुख मिला, लेकिन धर्माचरण करना उसे कड़वा जहर जैसा लगता है। अरे ! कोई साधु-साध्वी या कोई धर्मिष्ठ मानव उसे धर्म करने का कहने जाए तो वे वोली भी उसे कटु विष के समान प्रतीत होते हैं। जिन्हें धर्म करना अच्छा नहीं लगता, उन्हें वगीचे में सैरसपाटा करना अच्छा लगता है। उन्हें प्रतिक्रमण करना अच्छा नहीं लगता। उन्हें गप्पें मारना अच्छा लगता है, किन्तु धर्मोपदेश सुनना अच्छा

है । फिर भी जब उन्हें क्रोध का ताप चढ़ा, तब **'क्रोधे करोड़ पूरब तणुं फल जाय रे ।'** इस वाणी की गोली भी गायब हो गई न ? संक्षेप में, क्रोध बहुत बुरा है। क्रोध दूसरे जीवों में भय पैदा करता है, साथ ही क्रोध करनेवाले में भय अड्डा जमा लेता है । क्रोधी मनुष्य किसी की प्रीति सम्पादन नहीं कर सकता ।

क्षमावान् राजकुमार के पवित्र विचार : मैं पहले क्रोधी राजा का दृष्टान्त सुना रही थी । उसकी मृत्यु के बाद नये-राजा ने द्वारपाल से कहा - "मेरे पिताजी क्रोधी थे । किन्तु मुझे ऐसा क्रोधी नहीं बनना है और मैं ऐसा जुल्म नहीं करूँगा ।" इस पर द्वारपाल ने कहा - "आप वैसे क्रोधी और क्रूर नहीं हैं, पर मुझे यह विचार आता है कि आपके पिताजी को यमराज उनके क्रूर कर्मों की सजा देते होंगे, तो वे उसे कैसे सहन करते होंगे ?" द्वारपाल की यह बात सुनकर नये-राजा के पास खड़ा प्रधान बोला - "अरे ! अपने (पूर्व) महाराजा का कोप तो ऐसा था कि यमराजा उन्हें सजा करें तो गुस्से में आकर यमराजा की पीठ पर भी वह ५-७ चाबुक फटकार देते होंगे ?" (हँसाहँस), इस पर द्वारपाल ने कहा - "मुझे इस बात का दुःख होता है कि अगर महाराजा क्रुद्ध होकर जैसा अन्याय भरा व्यवहार यहाँ करते थे, वैसा व्यवहार वे यमराजा के साथ करते होंगे, तो यमराज भी क्रुद्ध होकर उन्हें वापस यहाँ (इस लोक में) न धकेल दें तो अच्छा ! नहीं तो, महाराजा वापस यहाँ आकर हम सबको सतायेंगे !" (हँसाहँस) द्वारपाल की बात सुनकर एक बुद्धिशाली मनुष्य उसकी बात का रहस्य समझ गया । वह बोला - "भाई ! तेरी बात सही है । क्योंकि क्रोधी मनुष्य जबतक जीवित रहता है, तबतक लोग उससे भयभीत रहते हैं और उसकी मृत्यु के बाद भी लोग उससे डरते रहते हैं, तथा घृणापूर्वक उसे याद करते हैं । परन्तु अब तू घबराना मत, क्योंकि मरनेवाला उस (पूर्व) रूप में कदापि वापस नहीं आता और अपने नये महाराजा तो बहुत ही कोमल दिल के हैं । उन्हें क्रोध स्पर्श भी नहीं कर सकता । इसलिए तू निर्भय होकर नये-राजा की सेवा कर ।"

द्वारपाल और प्रधान की वार्तालाप सुनकर नये महाराजा ने तो प्रतिज्ञा कर ली कि 'अब मुझे कदापि क्रोध नहीं करना है और नहीं प्रजा पर अन्याय करना है और न निरपराधी मनुष्य को सताना है ।'

बन्धुओं ! क्रोध का परिणाम कितना बुरा आता है, यह आपने सुन लिया न ? क्रोधी मनुष्य जीते जी किसी का प्रेम सम्पादन नहीं कर सकता तथा यहाँ से मरकर सुगति प्राप्त नहीं कर सकता । क्रोध अनर्थ का मूल है तथा वह मन और आत्मा को मलिन बनाकर ज्ञानरूपी नेत्रों को बंद कर देता है । एक विचारक ने कहा है -

"क्रोधी मानव अपनी आँखे बंद कर लेता है, और मुँह खुला रखता है ।"

दूसरी बात यह भी ध्यान में रखो कि मान, माया और लोभ करनेवाले का प्रभाव तो दूसरे मनुष्यों पर धीरे-धीरे पड़ता है जबकि क्रोध ऐसी भभकती अग्नि जैसा है कि यदि वह हृदय में प्रज्वलित होता है तो दूसरों को तो जलाये या नहीं भी जलाये, पर खुद को तो अवश्य ही जलाता है । एक संस्कृत भाषा के श्लोक में भी कहा है -

बचाव का कोई बंदोबस्त नहीं किया । बचाव का बंदोबस्त शेष रहे एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम पर किया है ।

वन्धुओं ! मजबूत किले तो राज्य की सरहद पर होते हैं । राज्य में जगह-जगह किले नहीं होते । इसी प्रकार मोहराजा की सरहद एक कोटाकोटि सागरोपम पर है, वहीं इसका मोर्चा है । यह जीव ६९ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम की स्थिति का क्षय करके मोहराजा की सरहद तक तो अनेकवार आ गया । किन्तु वहाँ (मोर्चे पर) मोहराजा की सेना को देखकर भाग गया है । भव्य या अभव्य सभी जीव इस सरहद तक तो आते हैं, किन्तु सरहद को पार करके आगे बढ़ना मुश्किल होता है । जीव पुद्गलानन्दी था, तो भी इसने ६९ कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति का क्षय कर ली । मतलब यह है कि जब यह जीव पुद्गलों में आनन्द मानता था । अच्छे मनोज्ञ विषयों को प्राप्त करने की और खराब अमनोज्ञ विषयों को दूर करने की इच्छा में आनन्द मानता था, ऐसा जीव (आत्मविकास विरोधक तत्त्वों से) लड़े बिना यहाँ तक आ सका, क्योंकि वह स्थिति वीरान जंगल जैसी है, जिससे बिना लड़े ही वश की जा सकती है । किन्तु जहाँ सरहद पर मजबूत किला बंधा हुआ हो, वहाँ तो मरजीवा बनकर जान पर खेल कर जूझना पड़ता है न ? वैसे ही एक क्रोड़ाक्रोड़ी सरहद के आगे मोहराजा का मजबूत बंदोबस्त है । वहाँ पर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, ईर्ष्या, अभ्याख्यान, परपरिवाद, मायामृषा, ममता और पाँचों इन्द्रियों और मन के विविध विषय; ये सब मोहराजा के शस्त्रों से सुसज्ज सैनिक सावधान होकर खड़े हैं । वहाँ अनेक जीव अनन्त बार आए, अपना घेरा डालकर बैठे, परन्तु सफल नहीं हुए । इसलिए वे पीछे हट गए, क्योंकि उनके लिए मोहराजा की सीमा पार करके आगे बढ़ना मुश्किल था । जैसे १४ की लड़ाई में तुर्किस्तान का गेलीपोली का किला तोड़ने में कितनी कठिनाई हुई थी ? यह तो ऐतिहासिक घटना है, जिसे आप जानते हैं न ? वैसे यहाँ भी मोहराजा का मजबूत किला तोड़कर धर्मराजा की सरहद पर जाना मुश्किल है । क्योंकि एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम के आगे ही मोहराजा का मोर्चा तैनात है । इस मोर्चे के खिलाफ जूझकर उसे जीतने का उत्तम कार्य मानवभव के सिवाय अन्य किसी भव में नहीं हो सकता । मोहराजा के खिलाफ मोर्चा तैनात करने, अर्थात् सेना की व्यूहरचना करने के लिए क्षमा, दया, समता, अहिंसा, सहिष्णुता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि धर्मराजा के सैनिकों को तैयार करना पड़ता है, तभी मोहराजा के मोर्चे के खिलाफ युद्ध करके उसे जीता जा सकता है । एक जबर्दस्त मोहरूपी सेनापति को जीत लें तो अपना कार्य सिद्ध हो सकता है । देवानुप्रियों ! मोह को जीतने का यह अमूल्य अवसर है । बार-बार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा । नौका नदी को पार करके किनारे आ जाए, वहाँ अचानक, हवा का प्रबल झोंका आ जाए तो वह वापस दूर चली जाती है । वैसे ही अपनी आत्मा की नौका भवसागर पार करके किनारे तक आ गई थी, परन्तु मोहनीय कर्म प्रबल अन्धड़ आते ही वापस संसारसागर में फंस गई । अभी तक वह डूबी नहीं है, यहाँ तक अच्छी बात है । अतः आत्मा से कहो कि हे आत्मन् ! महापुरुष मोह की सरहद पार करके मोक्ष में चले गए, पर तू अभी तक संसार में क्यों भटक रहा

ज्योतिषी से जब कुछ पूछते हैं, तो वह आपका भविष्य बताए, यही अपेक्षा रखते हैं न ? अगर ज्योतिषी आपको अच्छा लगे वैसी बात कहे तो आनन्द-आनन्द होता है, और यदि वह आपको अच्छी बात न कहे तो दुखित हो जाओगे, ऐसी बात कहे तो आप उससे तुरंत कह देंगे - "चल, यहाँ से भाग जा, अपना रास्ता नाप !" बेचारा ज्योतिषी इसी अपेक्षा से तुम्हें मनचाही अच्छी बात कहता है । परन्तु इस ज्योतिषी ने राजा से कहा - "देखिए, राजा साहब ! आपकी सारी बत्तीसी टूट गई है, ऐसा स्वप्न आपको आया है । इसका फल यह है कि आपकी मौजूदगी में आपका सारा कुटुम्ब साफ हो जाएगा ।" यह सुनकर राजा को बहुत गुस्सा आया । उन्होंने ज्योतिषी को जेल में बंद करवा दिया । ज्योतिषी को अब भान हुआ कि मैंने सत्य बात कही, फिर भी मुझे कारागार में बंद होना पड़ा, क्योंकि आज सत्यवादी के पक्ष में दुनिया नहीं है । राजा ने दूसरे ज्योतिषी को बुलाकर उसी स्वप्न का फल पूछा तो उसने कहा - "महाराजा ! आप ऐसे दीर्घायु और भाग्यशाली हैं कि आप की मृत्यु (आपके परिवार का) कोई देख नहीं सकेगा ।" अगर राजा बौद्धिक दृष्टि से समझे तो बात तो वही की वही थी, परन्तु दोनों ज्योतिषियों के कहने-कहने (भाषा) में अन्तर था । पहले ज्योतिषी ने जो कहा, उसे सुनकर राजा को गुस्सा आ गया, जबकि दूसरे ज्योतिषी की बात सुनकर राजा हर्षित हो गया । इस अन्तर का कारण था भाषा में अविवेक और विवेक । जबकि यह ज्योतिषी, उस ज्योतिषी का शिष्य था, जिसे राजा ने जेल में बंद करवा दिया था । इस दूसरे ज्योतिषी ने उस पहले ज्योतिषी से ज्योतिषशास्त्र पढ़ा था, परन्तु यह विवेक से और मिठास से भाषा बोला था, इस कारण राजा को उसकी वाणी प्रिय लगी, जबकि पहला ज्योतिषी विवेकरहित अप्रिय भाषा बोला, जो राजा को बहुत कड़वी और कठोर लगी । कहा है-

शब्द शब्द तुम क्या कहो ?, नहीं हाथ, नहीं पांव ।
एक शब्द घाव मिटावे, एक लेता है प्राण ।।

एक शब्द ऐसा मधुर और प्रिय होता है, कि मरणासन्न मानव भी एक बार तो उठ बैठता है, जबकि एक शब्द ऐसा होता है कि जीवित मानव का भी प्राण हरण कर लेता है । शब्द के कोई हाथ-पैर नहीं होते, मगर उसमें बहुत शक्ति होती है । इसीलिए भगवान् कहते हैं - "भाषा सत्य होते हुए भी अप्रिय और कटु नहीं होनी चाहिए ।" सत्य और मधुर भाषा बोलो, ताकि सुननेवाले को आनन्द मिले । यह जीभ कटुवचन के कांटे चुभाने के लिए नहीं मिली है । अतः जीभ से मधुर और प्रिय बोलो । भाषा समिति का ठीक-ठीक उपयोग रखो । जैसे तुम दूध और पानी का छानकर उपयोग करते हो, वैसे ही भाषा भी ठीक छानकर बहुत विचारपूर्वक बोलो, जिससे तुम्हारे बोलने से मतभेद या मतिभेद पैदा न हो, कलह-क्लेश न हो, अपितु जहाँ मतभेद हो, (वहाँ तुम्हारे बोलने से) एकता हो जाये, और झगड़ा हो, वहाँ शान्ति स्थापित हो जाय । जैसे दूसरे ज्योतिषी का कथन सुनकर राजा का क्रोध शान्त हो गया था । तथा उससे प्रसन्न होकर राजा ने उस ज्योतिषी को सोने का एक रत्नजड़ित प्याला, अच्छे-अच्छे जरीदार वस्त्र तथा

पुत्र का जन्म दिया, उसका नाम बलभद्रकुमार रखा गया । कुंवर का लालन-पालन अत्यन्त लाड-प्यार से हो रहा है । एक सामान्य परिवार में भी पुत्र का जन्म होता है, तब कितना आनन्द-मंगल होता है, तो फिर राजा के यहाँ पुत्र को जन्म हो तो महोत्सवादि करने में क्या बाकी रहता है ? समय आने पर बलभद्रकुमार अब कुमार न रहकर युवराज हो गए - *"जुवराया यावि होत्था ।"* इसके बाद आगे क्या होता है ? -

"तस्सणं महाबलस्स रण्णो इमे छप्पियवाल वयसमा रायाणो होत्था, तं जहा - अयले, धरणे, पूरणे, वसु वेसमणे, अभिचंदे, सहजाया जाव सह संवड्डिया ।"

इस महाबल राजा के छह बाल मित्र राजा थे । उनके नाम इस प्रकार हैं - (१) अचल, (२) धरण, (३) पूरण, (४) वसु (५) वैश्रमण और (६) अभिचन्द्र । ये छहोबलराजा के साथ जन्मे थे और यावत् साथ ही बड़े हुए थे । उनकी माताएँ पृथक्-पृथक् थीं, ये एक माता के पुत्र नहीं थे । ये सब बचपन के हमजोली मित्र थे । कोई मनुष्य बूढा हो जाता है, तो भी कहता है कि अमुकभाई मेरे लंगोटिया मित्र है । वैसे ही ये छहों राजकुमार महाबल राजा के बालमित्र थे । ये छहों साथ-साथ घूमते-फिरते एवं हर काम में साथ रहते थे । एक दिन ये सब मित्र किसी कार्य के प्रसंग एक जगह इकट्ठे हुए और क्या विचार किया ? शास्त्रकार कहते हैं -

"जाव अम्हेहिं एगयवो समेच्चा णित्थरियत्वे, त्तिकट्टत् अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुर्णेति ।"

एक दिन सभी मित्रों ने एक जगह इकट्ठे होकर निर्णय किया कि चाहे जो भी दुःखकर कार्य हो, चाहे सुखकर, प्रव्रज्या लेनी हो या अन्य कोई भी कार्य करना हो, हम सब संगठित होकर हिलमिलकर करेंगे, इस प्रकार वे परस्पर वचनबद्ध हुए ।

महाबलराजा के ये छहों मित्र एक-दूसरे के प्रति अत्यन्त प्रेमल थे । वे एक-दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होनेवाले थे, मगर स्वार्थी कतई नहीं थे । तुम सब के भी मित्र तो अनेक होंगे, पर वे सब कैसे हैं ? केवल खाने-पीने और सैरसपाटे करने में साथ रहनेवाले हैं क्या ? सुख मिले वहाँ तक दोस्ती और दुःख आ पड़े वहाँ दोस्ती छोड़ देनी । कई ऐसे दबोचकर खानेवाले निकम्मे मित्र होते हैं । सच्चा मित्र वह कहलाता है, जो दुःख में भी हरदम साथ रहता है । अगर तुम किसी के मित्र बनो तो भी ऐसे बनना कि सुख के समय में भले उसकी सुध ली जाए या न ली जाए, किन्तु दुःख के समय तो अवश्य ही उसकी सुध लेना । मित्र सज्जन होता है तो वह दुःख के समय काम आता है । मुझे इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

दो मित्रों का दृष्टांत : एक सेठ बहुत ही धनवान् थे । उन्होंने बहुत मेहनत करके धन संचित किया था । उनके एक ही इकलौता और प्यारा पुत्र था । इसलिए अत्यन्त लाड-प्यार से उसका पालन-पोषण किया गया था । सेठ ने उसे बहुत मुँह चढ़ा लिया था । अपनी संतानों को लाड लडावो, परन्तु ऐसा लाड-प्यार नहीं होना चाहिए, जिससे

"स्वामीनाथ ! चाहे जो हो, तो भी यह मेरी छोटी बहन है, अतः मारिए-पीटिए नहीं, इसे माफ कर दीजिए ।" विद्युत्प्रभा के कहने से राजा ने नकली विद्युत्प्रभा को छोड़ दी और उसको साथ रखी ।

बन्धुओं ! देखिए, विद्युत्प्रभा कितनी गुणवती और सज्जन है ? अपनी सौतेली माँ ने उस पर इतना जुल्म ठहाया, और यह बहन (सौतेली माँ की पुत्री) अपनी सौत बन बैठी ! क्या ऐसी झूठन को कोई अपने घर में रखने को तैयार होगा ? विद्युत्प्रभा की सज्जनता देखकर राजा को बहुत प्रसन्नता हुई । उन्होंने मन से सोचा - 'अहो ! कहाँ इसकी सज्जनता और कहाँ उसकी दुर्जनता !' खरे-खोटे की परीक्षा समय पर होती है । विद्युत्प्रभा के माता-पिता पर राजा को बहुत ही रोष हुआ । इसलिए अपने द्वारा बक्षीस दिए गए १२ गाँव राजा ने वापस ले लिये और उनके नाक-कान काटकर उन्हें अपनी राज्य की सीमा से बाहर निकाल देने का हुक्म किया । उस समय भी विद्युत्प्रभा ने राजा के चरणों में गिरकर विनती करने लगी - "नाथ ! चाहे जो भी हो, आखिर तो ये मेरे माँ-बाप हैं । इन पर दया करके इनका अपराध माफ कर दीजिए ।" विद्युत्प्रभा पर राजा को बहुत प्रेम था, इसलिए उसके माँ-बाप का गुनाह माफ कर दिया और पहले की तरह विद्युत्प्रभा को पटरानी पद पर स्थापित की । अब राजा-रानी सभी सुखपूर्वक दिवस व्यतीत कर रहे हैं । अब किसी प्रकार का दुःख और उपाधि नहीं रही । विद्युत्प्रभा स्वयं आमोद-प्रमोद में मग्न रहकर दूसरों को भी आनन्द में रखती है ।

वस्तुतः मानवजीवन का कर्तव्य है कि स्वयं आनन्द में रहना और दूसरों को आनन्द देना । हो सके तो किसी का भला करना, बुरा तो हर्गिज नहीं करना । ऐसा मूल्यवान् मानवजीवन पाकर उसका यथार्थ मूल्यांकन न कर सके तो यह वैसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति चिन्तामणि रत्न पाकर उसका उपयोग कौए उड़ाने में करता है । मानवजीवन भलीभांति जीना आए तो यह जीवन सत्कर्मों के द्वारा मनुष्य को सुख के शिखर पर (चढ़ा देता है) पहुँचा देता है और दुष्कृत्य करे तो दुःख के सागर में डुबा देता है ।

एक दिन जितशत्रु राजा और विद्युत्प्रभा रानी बैठे वार्तालाप कर रहे थे, तभी वनपालक ने प्रसन्न मुद्रा में राजा के पास आकर हाथ-जोड़कर कहा - "महाराजा ! आज अपने उद्यान में विद्याधरों और मनुष्यों द्वारा वन्दनीय-पूजनीय वीरभद्र मुनिराज ५०० मुनियों सहित पधारे हैं । उनके पदार्पण से अपना उद्यान पावन हुआ है ।" यह सुनकर राजा-रानी दोनों को बहुत आनन्द हुआ । उनका मन-मयूर नाच उठा । उन्होंने खुश होकर वनपालक को पर्याप्त इनाम देकर बिदा किया । तत्पश्चात् जितशत्रु राजा एवं विद्युत्प्रभा रानी समस्त राजपरिवार एवं राज कर्मचारीगण के सहित गुरुदेव के दर्शनार्थ पहुँचे । तीन बार प्रदक्षिणा करके वे गुरुदेव के सम्मुख धर्मोपदेश सुनने हेतु बैठ गए । मुनिराज की उपदेश-धारा प्रारम्भ हुई - "हे भव्यजीवों ! धर्म की आराधना से जीव को सुख-सम्पदा, स्वस्थ शरीर, उच्चकुल की प्राप्ति, दिव्य रूप, अनुपम यौवन और लोक में यशकीर्ति प्राप्त

पुत्र का जन्म दिया, उसका नाम बलभद्रकुमार रखा गया । कुंवर का लालन-पालन अत्यन्त लाड-प्यार से हो रहा है । एक सामान्य परिवार में भी पुत्र का जन्म होता है, तब कितना आनन्द-मंगल होता है, तो फिर राजा के यहाँ पुत्र को जन्म हो तो महोत्सवादि करने में क्या बाकी रहता है ? समय आने पर बलभद्रकुमार अब कुमार न रहकर युवराज हो गए - *"जुवराया यावि होत्था ।"* इसके बाद आगे क्या होता है ? -

'तस्सणं महाबलस्स रण्णो इमे छप्पियबाल वयसमा रायाणो होत्था, तं जहा - अयले, धरणे, पूरणे, वसु वेसमणे, अभिचंदे, सहजाया जाव सह संवड्ढिया ।"

इस महाबल राजा के छह बाल मित्र राजा थे । उनके नाम इस प्रकार हैं - (१) अचल, (२) धरण, (३) पूरण, (४) वसु (५) वैश्रमण और (६) अभिचन्द्र । ये छहोंबलराजा के साथ जन्मे थे और यावत् साथ ही बड़े हुए थे । उनकी माताएँ पृथक्-पृथक् थीं, ये एक माता के पुत्र नहीं थे । ये सब बचपन के हमजोली मित्र थे । कोई मनुष्य बूढा हो जाता है, तो भी कहता है कि अमुकभाई मेरे लंगोटिया मित्र है । वैसे ही ये छहों राजकुमार महाबल राजा के बालमित्र थे । ये छहों साथ-साथ घूमते-फिरते एवं हर काम में साथ रहते थे । एक दिन ये सब मित्र किसी कार्य के प्रसंग एक जगह इकट्ठे हुए और क्या विचार किया ? शास्त्रकार कहते हैं -

"जाव अम्हेहिं एगयवो समेच्चा णित्थरियत्वे, त्तिकट्टत् अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुर्णेति ।"

एक दिन सभी मित्रों ने एक जगह इकट्ठे होकर निर्णय किया कि चाहे जो भी दुःखकर कार्य हो, चाहे सुखकर, प्रव्रज्या लेनी हो या अन्य कोई भी कार्य करना हो, हम सब संगठित होकर हिलमिलकर करेंगे, इस प्रकार वे परस्पर वचनबद्ध हुए ।

महाबलराजा के ये छहों मित्र एक-दूसरे के प्रति अत्यन्त प्रेमल थे । वे एक-दूसरे के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होनेवाले थे, मगर स्वार्थी कतई नहीं थे । तुम सब के भी मित्र तो अनेक होंगे, पर वे सब कैसे हैं ? केवल खाने-पीने और सैरसपाटे करने में साथ रहनेवाले हैं क्या ? सुख मिले वहाँ तक दोस्ती और दुःख आ पड़े वहाँ दोस्ती छोड़ देनी । कई ऐसे दबोचकर खानेवाले निकम्मे मित्र होते हैं । सच्चा मित्र वह कहलाता है, जो दुःख में भी हरदम साथ रहता है । अगर तुम किसी के मित्र बनो तो भी ऐसे बनना कि सुख के समय में भले उसकी सुध ली जाए या न ली जाए, किन्तु दुःख के समय तो अवश्य ही उसकी सुध लेना । मित्र सज्जन होता है तो वह दुःख के समय काम आता है । मुझे इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

दो मित्रों का दृष्टांत : एक सेठ बहुत ही धनवान् थे । उन्होंने बहुत मेहनत करके धन संचित किया था । उनके एक ही इकलौता और प्यारा पुत्र था । इसलिए अत्यन्त लाड-प्यार से उसका पालन-पोषण किया गया था । सेठ ने उसे बहुत मुँह चढ़ा लिया था । अपनी संतानों को लाड लडावो, परन्तु ऐसा लाड-प्यार नहीं होना चाहिए, जिससे

आ जाना।" सेठ ने अपने नौकर को वसंतदेव का घर बताने को उसके साथ भेजा। वह वणिकपुत्र वहाँ पत्र देकर तुरंत वापस आया। अतः उस वणिकपुत्र को घर ले जाकर पहले नहलाया-धुलाया, फिर उसे पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्र उतरवा कर नये कपड़े पहनाए। उस दरिद्र का दीदार बदल कर उसे अच्छी तरह भोजन कराया। तत्पश्चात् सेठ ने कहा - "नन्दन ! मेरी इच्छा है कि मैं अपनी इस पुत्री का विवाह तेरे साथ करूँ।" नन्दन ने कहा - "सेठ ! मैं तो चौड़देश में वापस जानेवाला हूँ। फिर मैं तो निर्धन हूँ। आपकी पुत्री के साथ शादी करके क्या करूँ ?" इस पर सेठ ने कहा - "कोई हर्ज नहीं। नन्दन ! तू मेरी पुत्री के साथ शादी करके इसे अपने साथ ले जाना। तेरी आजीविका के लिए मैं वहाँ तेरे पास धन भेजता रहूँगा।" वगैर मांगे और बिना मेहनत के कन्या और धन मिलते हों तो कौन आनाकानी करे ? यों विचार कर नन्दन ने सेठ की पुत्री के साथ विवाह किया। सेठ ने उसे थोड़ा खाने-पीने का सामान और रास्ते के खर्च के लिए कुछ धन देकर दोनों को विदा किया। नन्दन ने पत्नी के साथ चौड़देश जाने के लिए प्रस्थान किया।

पति ने किया विश्वासघात : मुसाफिरी करते-करते पति-पत्नी दोनों अवन्तीनगरी के बाहर मैदान में आए। नगरी के बाहर एक मन्दिर था, उसके चबूतरे पर दोनों आराम करने बैठे। दोनों बहुत थक गए थे, इसलिए थोड़ी ही देर में निद्राधीन हो गए। कुछ देर बाद नन्दन जाग गया और विचार करने लगा - 'रास्ते में खर्च के लिए जो पैसे थे, वे तो पूरे हो गए। खाने के लिए जो भाता लाये थे, वह भी थोड़ा-सा रहा है। उसे दोनों खायेंगे तो ज्यादा नहीं चलेगा, फिर तो भीख मांगने का वक्त आएगा।' यों विचार करके नन्दन अपनी पत्नी को सोई हुई छोड़कर अकेला ही चल पड़ा।

बहनों ! तुम 'मेरा-मेरा' कहकर सांसारिक पदार्थों या व्यक्तियों के साथ मोहवश चिपकते रहते हो ! यह स्वार्थ की श्रृंखला कैसी है ? कर्म मनुष्य को कब और कैसी स्थिति में ला पटकता है ? कभी विचार किया है इस पर ? बेचारी नन्दन की पत्नी सुबह जागी, तब देखा कि पति और भाते का डिब्बा दोनों नदारद ! इधर-उधर देखा, पर कहीं नजर नहीं आए। उसे बहुत ही दुःख हुआ। वह रोने लगी कि मैं अब पति के बिना कहाँ जाऊँगी ? क्या करूँगी ? किसका शरण लूँगी ? अगर वापस पिता के यहाँ जाऊँ तो भी वह मुझे शायद ही रखें ! नन्दन-पत्नी बहुत ही चतुर और समझदार थी। पर यहाँ उसे कोई बुलाता नहीं और न ही कोई पूछता ही। फिर भी मन को मजबूत करके अपने शील के रक्षण के लिए नगर में जाकर इधर-उधर घूमने लगी। **जब मनुष्य का पुण्य पलायन कर जाता है और पापकर्म उदय में आता है, तब दुःखरूपी सागर की तरंगे ऐसी उछलती हैं, कि वे दबाई नहीं जा सकतीं।**

वह बाला इस नगर में अपरिचित, अनजान थी। उसके कपड़े मैले हैं और फट गए हैं। ऐसी निर्धन अवस्था में कौन उसका भाव पूछे ? हीरों से जगमगाती हो तो कोई

बिगड़ने लगा । उसके माता-पिता अपने नालायक पुत्र की दुःखभरी ज्वाला लेकर परलोकवासी हो गए । अब वह पिता की पूंजी पर तागड़धिन्ना करने लगा । वह बीस मित्रों के साथ आवारा की तरह फिरता है । जो अच्छा मित्र था, वह खिसक गया । अब केवल अवारागर्दी टोला रहा । जो अच्छा मित्र था, वह बहुत गरीब था । उसकी माँ अत्यन्त बीमार पड़ी । घर में दाल-रोटी का जयगोपाल था । नौकरी कहीं मिलती न थी ।

दिनेश के पास नौकरी की मांग : वह दिनेश के पास आकर कहने लगा - "मित्र ! तू इस समय बहुत सुखी है । अमुक मिलमालिक के साथ तेरा घर जैसा सम्बन्ध है । मेरी इस समय बहुत खस्ता हालत है । अगर तू उस मिल-मालिक पर चिट्ठी लिखकर दे तो मुझे वह नौकरी रख सकता है । आखिरकार वह मिल में प्युन के रूप में भी मुझे रख ले तो मैं रहने को तैयार हूँ ।" यों कहते-कहते उसकी आँख से आंसू उमड़ पड़े । किन्तु धन के मद में छका हुआ दिनेश उसके सामने भी नहीं देखता । शराब के नशे से भी बढ़कर भयंकर होता है - धन का नशा । आज नौकरी पाने के लिए भी सिफारिश की जरूरत पड़ती है । कोई उसका हाथ पकड़नेवाला हो तो उसका काम जल्दी हो जाता है । ऐसे गरीब आदमी का कोई हाथ पकड़नेवाला नहीं है, इस कारण वह भटकता है । गरीब आदमी किसी धनिक के पास किसी आशा से जाता है, कलेजा कंपा देनेवाली अपनी करुण कहानी उसके सामने कहता है, किन्तु वह (धनिक) सुनता नहीं । कदाचित् सुनता भी है तो दो गालियाँ सुना देता है, मगर दो रुपये नहीं देता । आज समाज में ऐसी परिस्थिति है ।

धनवानों को धन का कैसा नशा चढ़ता है ? : वस्तुतः गरीबी तिनके से भी हलकी है । वह गरीब मित्र बहुत गिड़गिड़ाया तब दिनेश ने कहा - "जा एक महीने बाद आना ।" रमेश की पत्नी ने सुना तो कहने लगी - "ऐसे भिखारी को कहाँ तक द्वार पर बुलाते रहोगे । कह दो, दो महीने बाद आना ।" देवी के द्वारा नचाया हुआ देव भी नाचने लगा - कह दिया उस बेचारे को - "जा, दो महीने बाद आना ।" उसे क्या पता कि उसकी गरीबी कैसी है ? दो महीने के बदले दो दिन भी निकालने मुश्किल है । यह मित्र दिनेश को पहले खूब सीख देता था । इस कारण वह दिनेश को आँख में पड़े हुए रजकण की तरह खटकता था । अशुभ-कर्मोदय से उस गरीब की कहीं नौकरी नहीं मिली । इसलिए वह वापस दिनेश के पास आया और अपनी हालत की ओर उसका ध्यान खींचा । किन्तु दिनेश ने चिट्ठी लिखकर नहीं दी । दो महीने पूरे हुए, वहाँ तक पाँच चक्कर काट लिये, तब दिनेश ने अपने सम्बन्धी मिल-मालिक पर चिट्ठी लिखकर दी - "यह मेरा मित्र है। यह बहुत गरीब है । इसे आपकी मिल में अच्छी नौकरी देना ।" उस चिट्ठी को लेकर गरीब मित्र मिल-मालिक के पास आया । उसके हाथ में वह चिट्ठी दी, परन्तु उसने उसके सामने भी नहीं देखा । जब वह बहुत गिड़गिड़या, तो बोला - "आज मुझे टाइम नहीं है, कल आना ।" यों लटकाते-लटकाते उसने भी इसे सात चक्कर खिलाये । फिर दिनेश की चिट्ठी पढ़ी और मिल-मालिक के दिल में भगवान् बसे, उसने उस गरीब मित्र को नौकरी

कर) भी जीवन में पवित्रता नहीं लाओगे और प्रगतिपथ पर प्रयाण नहीं करोगे तो अनार्य मनुष्यों और पशुओं के जीवन की अपेक्षा तुममें क्या विशेषता आई ? मृत्यु होने पर यहीं धरे रह जानेवाले जड़ पदार्थों को प्राप्त करने के लिए जीवन जीना आत्मा को क्या लाभ पहुँचाते हैं ? कुछ नहीं, उलटे ये तो आत्मा के लिए हानिकारक हैं । जो अपवित्र जीवन जीता है, हिंसा, झूठ, चोरी तथा इन्द्रिय-विषयों में आसक्त बनकर परिग्रह (अधिकाधिक ममत्वपूर्वक धनादि संग्रह) करने के लिए अन्याय, अनीति और दुराचरण आदि सब करता है, वह अन्त (अन्तिम समय) में चिन्ता, सन्ताप और अशान्ति की आग में झुलस जाता है । परिणामस्वरूप इस लोक में राजदण्ड, अप्रतिष्ठा और लोकनिन्दा वगैरह का भय उत्पन्न करता है, और परलोक में भी अनेक प्रकार के दुःख भोगता है । अतः तुम एक बात भलीभांति समझ लो कि संसार-समुद्र में अनादि-अनन्तकाल से भटकते हुए इस जीव को जो मनुष्यभव की प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, वह मिल गई है, तो उसमें आत्म-साधना कर लो । पुनः मानवभव पाना दुर्लभ है । अत्यन्त मुसीबत और महान् पुण्योदय से मानवभव मिल गया, परन्तु उसमें भी सबको धर्म करने की अनुकूलता प्राप्त नहीं होती । अगर जीव के गाढ़ अशुभ कर्मो का उदय होता है, 'आचारांग सूत्र' (श्रु-१, अ-२, उ-३) के अनुसार उस जीव को निम्नोक्त बदतर स्थितियाँ प्राप्त होती हैं -

"से अंधत्तं, बहिरत्तं, मूयत्तं, काणत्तं, कुंटत्तं, खुज्जत्तं, वडहत्तं, सामत्तं, सबलत्तं, सहलत्तं, सहपमाएणं अणेगरुवाओ जोणीओ संधेइ विरुवरुवे फासे पडिसंवेदेइ ।"

(पूर्वकृत पापकर्म के उदय से) वह जीव (प्रमाद के कारण) अन्धा होना, बहरा होना, गूंगा होना, काना होना, ठूंठा होना, बौना होना, कुबड़ा होना, काला होना, चितकबरा-पन होना, रोगयुक्त होना, (इत्यादि प्रतिकूल अवस्थाओं) में तथा अनेक प्रकार की योनियों में वह जन्म धारण करता है और विविध प्रकार की यातनाएँ सहन करता है, अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं के कारण दुःखानुभव करता है ।

इस संसार में मनुष्य की परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहतीं, आज एक मनुष्य लखपति या करोड़पति हो गया है, कल को अशुभ कर्मोदयवश भिखारी बनते देर नहीं लगती; आज वह सुन्दर वस्त्राभूषणों से लदा है, कल अंग ढकने के लिए उसके पास कपड़ा भी नहीं होता । इस प्रकार धनसम्पन्नता, विपन्नता, निर्धनता, दरिद्रता, पराधीनता, ग्लानि और व्याधियों की उत्पत्ति इत्यादि विविध स्थितियाँ बदलती रहती हैं । प्रश्न होता है - इन स्थितियों में बार-बार परिवर्तन होने का क्या कारण है ? मूल कारण यह है कि जिसने पूर्वभवों में या इस जन्म में पहले अविवेकपूर्वक आरम्भ-परिग्रह में आसक्त होकर अन्य जीवों को दुःख उपजाया हो, असत्य आचरण किया हो, दूसरों की सम्पत्ति, लूट ली हो, चुरा ली हो, दूसरे के साथ धोखाधड़ी की हो, ये और इस प्रकार के पूर्वभवों में बाँधे हुए पापकर्मो के कारण ये अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं ।

ऊँचे पद पर पहुँच गया हूँ, यह उसी का प्रताप है।' वह दिनेश के बंगले पर गया तो वहाँ दूसरे लोग थे। उनसे पूछा - "दिनेशभाई कहाँ गए ?" उन्होंने कहा - "उनके घर-बार आदि सब बिक गये हैं। वे इस पास वाली झोंपड़ी में रहते हैं।"

ओह भगवान् ! मित्र की यह बेहाल दशा कैसे हो गई ? : दिनेश के मित्र को मित्र की यह दुर्दशा जानकर बहुत आघात लगा। अहो ! मेरे उपकारी मित्र की यह दशा ? वह झोंपड़ी के द्वार के पास आया, तो अंदर से करुण विलाप सुनाई दिया। उसने दरवाजा खटखटाया। उसने तिराड़ में से देखा तो दिनेश नजर आया। दरवाजा खोला। मित्र अंदर गया। उसे देखते ही जैसे छोटा बच्चा माता को देखते ही चिपट पड़ता है, वैसे मित्र से चिपटकर दिनेश फफक-फफक कर रोने लगा, फिर बोला - "मित्र ! तू मेरा सच्चा हितैषी है। तूने मुझे बहुत ही हितशिक्षा दी, मगर धन के मद में छके हुए मुझको तेरी हितशिक्षा उस वक्त कड़वी लगती थी। तू भी आँख में पड़े हुए रजकण की तरह मुझे खटकता था। परन्तु अब मुझे तेरी वह हितशिक्षा याद आती है। तू ही मेरा सच्चा मित्र था और है, इसीलिए तो दुःख के वक्त तू दौड़कर आया है। वे बीस मित्र तो मकोड़े जैसे थे। जबतक धनरूपी गुड़ था, तबतक वे आते रहे, मुझे चूसकर खा गये। अब तो मैं उनके घर जाऊँ तो वे पीठ फिराकर खड़े रहते हैं, कुछ बोलते नहीं।"

मित्र की प्रामाणिकता : दिनेश ने मित्र की गोद में मस्तक रखकर खूब रो लिया। मित्र ने उसे बैठा करके प्रेम से कहा - "देखो, मित्र दिनेश, अब तुम्हें इस झोंपड़ी में नहीं रहना है। यह झोंपड़ी बंद करके मेरे घर चलो। मेरा बंगला, मोटर और धन आदि साधन जो कुछ मेरे पास हैं, वे सब तुम्हारे हैं। मेरा कुछ नहीं है। यह सब तुम्हारे प्रताप से मुझे मिले हैं।" दिनेश ने मन में सोचा - 'मैंने तो इसे कितना हैरान किया था, फिर भी इसकी कितनी उदारता है ? दूसरे सब मित्रों ने तो मेरा शोषण करके मुझे साफ कर दिया, किन्तु इस मित्र ने मेरे से कुछ लिया ही नहीं था, फिर भी इसकी ऐसी उदारता है !' दिनेश का मित्र दोनों को अपने घर ले गया। उन्हें वह खूब प्रेम से रखने लगा। वह बार-बार दिनेश से कहता - "दिनेश ! यह सब तुम्हारा है। मेरा कुछ नहीं है।" मित्र ने उसे आर्थिक सहायता दी, जिससे पुनः अपना व्यवसाय शुरू किया। थोड़े ही अरसे में उसने व्यापार में खूब कमाया। अपनी पहले जैसी आर्थिक स्थिति थी, वैसी पुनः हो गई। किन्तु अब दिनेश की आँखें खुल गई। उसने कुसंग छोड़कर गुरुजनों और सज्जनों का सत्संग किया तो उसका जीवन देव-गुरु-धर्म की कृपा और उनके प्रति दृढ़ श्रद्धा से सुधर गया।

बन्धुओं ! मित्र करो तो ऐसा करना, जो दुःख के समय काम आए। महाबलराजा के छह मित्र थे, उन्होंने मिलकर ऐसा निर्णय किया कि प्रत्येक कार्य हम सबको साथ-साथ रहकर करना है, यों परस्पर वे वचनबद्ध हुए। अब वहाँ किनका पदार्पण होगा ? इसके भाव यथावसर कहे जायेंगे।

नहीं लगता। माल-मसाले खाना अच्छा लगता है, किन्तु उपवास करना अच्छा नहीं लगता। मतलब यह है कि प्रायः जीव को धर्माचरण करना नहीं सुहाता। उसका क्या कारण है?

आत्मा मोहराजा की कैद में फंसा हुआ है : अनादिकाल से बंधी हुई मिथ्यात्व को मानव तोड़े, तभी उसके जीवन में वास्तविक धर्म का आगमन समझा जाता है। आज बहुत से तर्कवादी ऐसा तर्क करते हैं कि तुम कहते हो कि अनादिकाल से जीव मिथ्यात्व की गांठ से जकड़ा हुआ है, तो वह गांठ दिखाई क्यों नहीं देती ? भला, यह तो सोचो कि तुम्हारे पेट में गांठ हो गई हो, तो क्या वह तुम्हें दिखाई देती है ? नहीं, इसीलिए तो उसके लिए एक्स-रे लेना पड़ता है। अतः सोचो, यह शरीर तो रूपी है, फिर भी शरीर के अंदर की गांठ कई बार नहीं दिखाई देती, तब फिर अरूपी आत्मा पर हुई मिथ्यात्व की - अज्ञान की गांठें कैसे दिखाई देंगी ? बन्धुओं, जरा सोचो, समझो; जैसे अंधा मनुष्य है, उसके शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो गई हैं। उन व्याधियों से होनेवाली पीड़ा-वेदना वह भोगता है, परन्तु उन व्याधियों व वेदनाओं को देख नहीं सकता। वैसे की आत्मा में अनादिकाल से बंधी हुई (मिथ्यात्वादि की) गांठ किसे कहते हैं ? इसे जीव नहीं जानता।

देवानुप्रियों ! कर्म कितने प्रकार के हैं ? आठ प्रकार के हैं। उन आठ कर्मों का कोई सेनाधिपति हो तो वह है - मोहनीय कर्म। उस मोहनीय कर्म की स्थिति कितनी है ? बोलो, भाईयो ! कर्मप्रकृति का थोकड़ा आता है ? (श्रोताओं में से जवाब - ७० कोटा-कोटि सागरोपम की) इस मोहनीय कर्म की ६९ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम की स्थिति क्षय कर दी, अब सिर्फ एक कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति का क्षय करना शेष रहा, वहाँ यह गांठ (ग्रन्थी) आड़ी आती है, यह जीव को आगे बढ़ने में बाधक बनती है। इसका क्या कारण है ? समझ में आता है, इसका रहस्य ? जहाँ किला पार करके घुसना होता है, वहाँ परस्पर मारामारी होती है। देखो, सरकार मिलिट्री को कहाँ तैनात करती है ? जहाँ निर्जन वन हो, क्या वहाँ सरकार मिलिट्री तैनात करती है ? नहीं, किन्तु जहाँ राज्य की सीमा (सरहद) होती है, वहाँ मिलिट्री तैनात करती है। क्यों ? क्योंकि जहाँ सरहद होती है, वहाँ एक इंच भर जमीन भी शत्रु न दबा ले, इसके लिए सरकार की मिलिट्री को वहाँ सजग रहना पड़ता है। अगर शत्रु एक इंच भर जमीन दबा ले, तो आमने-सामने से गोलियाँ चलती हैं, उससे कितने ही जवानों की लाशें बिछ जाती हैं और रक्त की नदियाँ बहती हैं। यहाँ (सरहद पर) एक इंच जमीन के लिए खूंख्वार युद्ध होता है, परन्तु वन में जहाँ अनेकों बीघा जमीनें खाली पड़ी होती हैं, वहाँ कोई धांधली या धमाल होती है क्या ? नहीं होती। क्योंकि वहाँ तो बचाव के लिए अस्त्र-शस्त्रादि या अन्य समान ले जाने हों तो वहाँ तक पहुँचने के लिए सड़कें और पुलें होती हैं, वहाँ शत्रु के खिलाफ लड़ा जा सकता है। अतः जहाँ बचाव का स्थान (सरहद) नहीं है, वहाँ (वन में) शत्रु आए तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु सरहद पर शत्रु चढ़ आए तो डर होता है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म की ६९ क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की स्थिति पार की, वहाँ तक तो जीव ने

यह जीव संसारचक्र के हिंडोले में चढ़ा है। छोटा बालक तो हिंडोले में बैठकर आनन्द मानता है, हंसता है, वैसे ही यह जीव भी नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव, इन चारों ओर की हिंडोले की बैठक में बैठकर आनन्द मानता है। हिंडोला एक कुतूहल होने से बालक को उसमें आनन्द आता है। एक बात ध्यान में रखें कि बालक को हिंडोले में बैठने के बाद जब वह १५-२० चक्कर लगाता है, तो उसे प्रायः चक्कर आने लगता है। परन्तु यह जीव तो बालक से भी बढ़चढ़ कर है। यह जीव संसार के हिंडोले में चढ़ता है, और उसमें आनन्द मानता है। संसारी जीव अनन्तकाल से संसाररूपी हिंडोले में बैठा हुआ है। उसने इस हिंडोले में बैठकर चतुर्गति के कितने ही चक्कर लगाये हैं, फिर भी आश्चर्य है, इसे चक्कर नहीं आता।

बन्धुओं ! घाणी के साथ जोड़ा हुआ तेली का बैल एक ही जगह पर गोल-गोल फिरता है, फिर भी उसे चक्कर नहीं आते। किन्तु यदि मनुष्य इस तरह एक ही जगह पर गोल-गोल फिरे तो उसे चक्कर आने लगता है। क्या आपको समझ में आया इसका कारण ? इसका कारण यह है कि तेली के बैल की आँखों पर पट्टी बंधी होने से चक्कर नहीं आते, जबकि मनुष्य की आँखों पर पट्टी नहीं बंधी होती, इस कारण उसे चक्कर आ जाते हैं। परन्तु इस संसारचक्र में भ्रमण करने से चक्कर किसको आते हैं ? मनुष्य को। मगर जहाँ तक जीव अज्ञान से अन्ध है, उसके सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र पर अज्ञान का - मिथ्याज्ञान का पर्दा पड़ा हुआ है, उसे सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र खुले नहीं हैं, वहाँ तक संसाररूपी हिंडोले में चाहे जितना घूमे-चक्कर लगावे, उसे विचार नहीं आते। इस चक्कर का भान होने का स्थान है - मनुष्यभव। क्योंकि सम्यग्ज्ञान पाने का स्थान मनुष्यभव है। मनुष्यभव के सिवाय अन्य भव में (खास करके तिर्यंच भव में) जन्म पाना तो मालिक की मजदूरी करने के समान है। जैसे मजदूर मनुष्य मालिक की मजदूरी करके पेट भरता है और जिंदगी (आयु) पूरी होते ही चल देता है। कुत्ते, बिल्ली, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गाय, भैंस, बकरी आदि (पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यच) को ज्ञानरूपी चक्षु खोलने का अवसर मिलना मनुष्य की अपेक्षा से बहुत ही दुर्लभ है। उन पंचेन्द्रिय संज्ञीतिर्यचों में योग्यता है, किन्तु उसके अनुरूप संयोग-प्राप्ति अत्यन्त अल्प है। कदाचित् यहाँ (मनुष्यगति या तिर्यंचगति) से सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके भी नारक, तिर्यच या देवभव में गया, और वहाँ कदाचित् उसे भवचक्र में भ्रमण से घबराहट हो, तो भी वह उस (संसाररूपी) हिंडोले से उतर नहीं सकता। हिंडोले में बैठे हुए को नीचे उतरना हो तो जो नीचे की बैठक में बैठा हो, वह उतर सकता है। वैसे ही आत्मा का स्वरूप और गुणों को जानता हो, अवगुणों को दूर करके गुणों को प्राप्त करना हो तो उसकी जोगवाई मनुष्यभव जितनी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

देवानुप्रियों ! संसारचक्र में भ्रमण करने से तुम्हें चक्कर आते हों, संसारचक्र-भ्रमण से घबराहट होती हो और इस संसार-हिंडोले में से नीचे उतरना हो तो यह अमूल्य अवसर है। तुम अभी-अभी सुन चुके [illegible] मनुष्यभव के जितनी अन्यत्र कहीं सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने की [illegible] यह [illegible] प्राप्त हो चुकी है। कहा भी है -

बचाव का कोई बंदोबस्त नहीं किया । बचाव का बंदोबस्त शेष रहे एक क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम पर किया है ।

बन्धुओं ! मजबूत किले तो राज्य की सरहद पर होते हैं । राज्य में जगह-जगह किले नहीं होते । इसी प्रकार मोहराजा की सरहद एक कोटाकोटि सागरोपम पर है, वहीं इसका मोर्चा है । यह जीव ६९ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम की स्थिति का क्षय करके मोहराजा की सरहद तक तो अनेकबार आ गया । किन्तु वहाँ (मोर्चे पर) मोहराजा की सेना को देखकर भाग गया है । भव्य या अभव्य सभी जीव इस सरहद तक तो आते हैं, किन्तु सरहद को पार करके आगे बढ़ना मुश्किल होता है । जीव पुद्गलानन्दी था, तो भी इसने ६९ कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति का क्षय कर ली । मतलब यह है कि जब यह जीव पुद्गलों में आनन्द मानता था । अच्छे मनोज्ञ विषयों को प्राप्त करने की और खराब अमनोज्ञ विषयों को दूर करने की इच्छा में आनन्द मानता था, ऐसा जीव (आत्मविकास विरोधक तत्त्वों से) लड़े बिना यहाँ तक आ सका, क्योंकि वह स्थिति वीरान जंगल जैसी है, जिससे बिना लड़े ही वश की जा सकती है । किन्तु जहाँ सरहद पर मजबूत किला बंधा हुआ हो, वहाँ तो मरजीवा बनकर जान पर खेल कर जूझना पड़ता है न ? वैसे ही एक क्रोड़ाक्रोड़ी सरहद के आगे मोहराजा का मजबूत बंदोबस्त है । वहाँ पर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, ईर्ष्या, अभ्याख्यान, परपरिवाद, मायामृषा, ममता और पाँचों इन्द्रियों और मन के विविध विषय; ये सब मोहराजा के शस्त्रों से सुसज्ज सैनिक सावधान होकर खड़े हैं । वहाँ अनेक जीव अनन्त बार आए, अपना घेरा डालकर बैठे, परन्तु सफल नहीं हुए । इसलिए वे पीछे हट गए, क्योंकि उनके लिए मोहराजा की सीमा पार करके आगे बढ़ना मुश्किल था । जैसे १४ की लड़ाई में तुर्किस्तान का गेलीपोली का किला तोड़ने में कितनी कठिनाई हुई थी ? यह तो ऐतिहासिक घटना है, जिसे आप जानते हैं न ? वैसे यहाँ भी मोहराजा का मजबूत किला तोड़कर धर्मराजा की सरहद पर जाना मुश्किल है । क्योंकि एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम के आगे ही मोहराजा का मोर्चा तैनात है । इस मोर्चे के खिलाफ जूझकर उसे जीतने का उत्तम कार्य मानवभव के सिवाय अन्य किसी भव में नहीं हो सकता । मोहराजा के खिलाफ मोर्चा तैनात करने, अर्थात् सेना की व्यूहरचना करने के लिए क्षमा, दया, समता, अहिंसा, सहिष्णुता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि धर्मराजा के सैनिकों को तैयार करना पड़ता है, तभी मोहराजा के मोर्चे के खिलाफ युद्ध करके उसे जीता जा सकता है । एक जबर्दस्त मोहरूपी सेनापति को जीत लें तो अपना कार्य सिद्ध हो सकता है । देवानुप्रियों ! मोह को जीतने का यह अमूल्य अवसर है । बार-बार ऐसा अवसर नहीं मिलेगा । नौका नदी को पार करके किनारे आ जाए, वहाँ अचानक, हवा का प्रबल झोंका आ जाए तो वह वापस दूर चली जाती है । वैसे ही अपनी आत्मा की नौका भवसागर पार करके किनारे तक आ गई थी, परन्तु मोहनीय कर्म प्रबल अन्धड़ आते ही वापस संसारसागर में फंस गई । अभी तक वह डूबी नहीं है, यहाँ तक अच्छी बात है । अतः आत्मा से कहो कि हे आत्मन् ! महापुरुष मोह की सरहद पार करके मोक्ष में चले गए, पर तू अभी तक संसार में क्यों भटक रहा

पास सोने जाएँ और सर्प काट खाए तो ? सर्प काटे तो क्या होता है ? सर्प का जहर चढ़ जाता है। उस जहर को उतारनेवाला कोई मिल जाय तो मनुष्य जी जाता है और जहर उतारनेवाला न मिले तो मनुष्य मर जाता है। मैं तुमसे पूछती हूँ, सर्प काटे और वह मनुष्य मर जाए तो उसके कितने भव बिगड़ेंगे ? यह एक ही भव न ? तुम भी तो कहा करते हो कि दाल या साग बिगड़े तो दिवस बिगड़ जाता है, अचार बिगड़े तो वर्ष बिगड़ जाता है और पत्नी बिगड़े तो, बोलो न जिंदगी बिगड़ जाती है, सांप काटे तो जिंदगी चली जाय । ज्ञानी कहते हैं - हे जीव ! अगर तू समझे तो यह संसार सर्प की बांबी के समान है। धन-दौलत, कुटुम्ब-कबीले या घर-परिवार में गाढ़ आसक्ति रखना सर्प के जहर के समान है।

बन्धुओं ! आज तुम सांप से डरते हो, अरे ! उसके बिल के पास जाने में भी डर लगता है, क्योंकि तुम्हें पता है कि सांप विष से भरा है, वह काटे तो आदमी मर जाता है। परन्तु तुम इतना तो अवश्य समझ लो कि सांप तो इस एक भव मारनेवाला है, जब कि संसार में रहे हुए पदार्थो के ममता भव-भव में मारनेवाली है। अगर तुम्हें सर्प से डर लगता है तो पाप से डरो। जो मनुष्य यह मानता है कि संसार सर्प का दर है, वह तो प्रतिक्षण पाप (करने) से डरता रहता है। परन्तु अभी तक तुम्हें संसार सर्प के विल जैसा लगा नहीं, इसलिए निर्भयतापूर्वक इसमें आमोद-प्रमोद करते हो। परन्तु अगर तुम्हारे हृदय में यह बात बराबर उतर जाए कि यह संसार सर्प का दर है, तो जीवन में संसार के भौतिक सुखों का आनन्द कम हो जाए, पापाचरण करते हुए तुम्हारा तन-मन-वचन भयभीत रहे, क्योंकि संसार सर्प का बिल है, ऐसा जिसे हृदयंगम हो जाता है, उसे इतना विवेक तो अवश्य हो जाता है कि पाप के फल कड़वे हैं। पाप के कटुफल भोगने के लिए नरकगति या तिर्यंच गति में जाना पड़ेगा। तथैव नरक का कम से कम आयुष्य दस हजार वर्ष का और अधिक से अधिक तैंतीस सागरोपम का है । यहाँ की हुई गलती, भूल या अपराध का परिणाम वहाँ इतने लम्बे समय तक भोगना पड़ेगा । ऐसा जो मनुष्य समझ जाता है, वह पाप से प्रतिक्षण डरता रहता है। सर्प के दंश की अपेक्षा भी पाप का दंश उसे अधिक चुभता है । परन्तु मोह में पड़े हुए जीवात्मा को ऐसी समझ आनी कठिन है। ऐसी मनःस्थिति एक छोटे-से बालक जैसी है। बालक को अच्छे-बुरे का, खरे-खोटे का भान नहीं होता, वैसे मोहग्रस्त आत्मा को भी सार-असार का भान नहीं होता ।

जैसे किसी छोटे बालक को उसकी माता स्नान कराकर, धुले हुए तथा इस्त्री किए हुए कपड़े पहनाकर बाहर भेजे, परन्तु वह जहाँ रेत देखता है, वहाँ खेलने लग जाएगा, क्योंकि उसे यह भान नहीं है कि मेरी माँ ने अभी मुझे नहलाया, धुलाया, अच्छे कपड़े पहनाए हैं, तो इस प्रकार धूल में खेलने से मेरे कपड़े खराब व मैले हो जाएँगे। यही कारण है कि अबोध बच्चा उस रेती में बारबार खेलता है, दौड़ता है, लोटता है, उसे वहाँ खेलने में इतना मजा आ जाता है कि वह माता-पिता आदि सबको भूल जाता है, भूख-प्यास

हे मेरे श्रमण-श्रमणियों ! दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करो, दूसरे प्रहर में ध्यान करो, तीसरे प्रहर में भिक्षाचरी करो और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करो । बोलो ! भगवान् द्वारा निर्दिष्ट समाचारी में बताए अनुसार भगवदाज्ञा में साधु वर्ग चले तो तुम्हारे साथ सांसारिक बातें करने का अधिकार कहाँ रहता है ? तुम्हारे यहाँ विद्यापीठ में तो पौन पौन घंटे का पीरियड होता है, परन्तु हमारे भगवान् की विद्यापीठ में तो एक-एक प्रहर के पीरियड हैं । इस निर्दिष्ट पीरियड के अनुसार इस युग में अगर साधु वर्ग साधना करे, परम पुरुषार्थ करे तो तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है । फिर उसे भव-भ्रमण किस लिए करना होता है ? ऐसे साधु या साध्वी के लिए मोक्ष निकट है । किन्तु जो साधु होकर संसार के राग में रंग जाता है, उसके लिए मोक्ष बहुत दूर है । जैसे कोई जवान पुरुष बबूल की गांठ को चीरने का निश्चय करता है । किन्तु वह बबूल की गांठ ऐसी मजबूत है कि उस पर पच्चीस चोट करे, तब बड़ी मुश्किल से उसका छिलका उखड़ता है । परन्तु उस युवक का निश्चय अटल है कि मुझे इसकी गांठ चीरनी ही है, तो वह चीर कर ही दम लेता है । इसी प्रकार साधक-आत्मा यदि निश्चय करे कि मुझे इस मनुष्यभव में क्या करना है ? जैसे कि -

"महावीर मेडिकल कोलेज में मुझे सत्य का सर्जन बनना है । महामिथ्यात्वभाव की ग्रन्थी का मुझे सफल ओपरेशन करना है । सबको तप, त्याग एवं संयम की टेबलेटें दूंगा, भवरोग मिटाने के लिए...धर्म....।"

ऐसा निश्चय करे कि महामिथ्यात्व का ग्रन्थीभेद करके मुझे शीघ्र भवसागर पार कर जाना है । अब मुझे भव (जन्म-मरण) का चक्कर नहीं काटना है । ऐसी जिज्ञासावाला साधक संयम (रत्नत्रय) में पुरुषार्थ करके एक कोटाकोटि सागर की सरहद पार कर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में चला जाता है ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

अब हम 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन के चालू अधिकार पर आ रहे हैं । जिन्हें स्व-पर कल्याण की लगन लग गई थी, वे बलराजा संसार त्यागकर संयमी हो गए । उनके सांसारिक पुत्र महाबलकुमार न्याय-नीतिपूर्वक राज्य-संचालन कर रहे हैं । एक दिन उनकी पटरानी कमलश्री ने अर्ध-जागृत और अर्धनिद्रित अवस्था में एक स्वप्न देखा । स्वप्न में सिंह देखा कि वह तुरंत जग गई, धर्माराधना में लग गई । तत्पश्चात् अपने पति महाबलराजा के समक्ष उसने स्वप्न-अवलोकन की बात कही । महाबलराजाने स्वप्न-पाठकों को बुलाया । स्वप्नपाठकों ने स्वप्न का फल बताया - "हे महाराजा ! आपकी महारानी की कुक्षि में सिंह जैसे एक पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा ।" स्वप्न का शुभ फल जानकर सबको बहुत आनन्द हुआ । शास्त्रकार कहते हैं - कमलश्री के गर्भ को सवा नव महीने पूरे हुए तब *'जाव बलभद्दो कुमारो जाओ'* अर्थात् कमलश्री ने एक

चलता । किये हुए कर्मों का फल भोगने के बाद ही उसके कर्ज से जीव मुक्त हो सकता है । मुझे इस विषय में एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

धनिक व्यापारी का दृष्टांत : एक बड़ा प्रतिष्ठित धनिक व्यापारी था । राजा के यहाँ उसका बहुत ही आदर-सम्मान था । एक बार उसको व्यापार में बहुत ही घाटा लगा । उसकी जहाँ-जहाँ फर्में थी, उनमें भी बहुत घाटा लगा । इस कारण उसके सिर पर बहुत ही कर्ज चढ़ गया । कर्ज देनेवाले ऋण दी हुई रकम चुकाने के लिए बहुत ही माथापच्ची करने लगे । यह देखकर सेठ बहुत ही घबरा गया । वह रोता-रोता राजा के पास आकर कहने लगा - "राजासाहब ! मेरी ऐसी खराब दशा हो गई है । मैं बहुत ही व्यथित हो गया हूँ । आप मुझे अमुक रकम दो तो मैं कर्ज देनेवालों को उनकी रकम चुका दूं । मैं व्यापार में कमाकर आपकी रकम वापस चुकता कर दूंगा ।" राजा के मन में सेठ के प्रति बहुत ही सम्मान भाव था । उन्हें सेठ के प्रति दया आई । सोचा - 'अहो ! ऐसे बड़े व्यापारी की ऐसी चिन्ताजनक परिस्थिति है ! ऐसे समय में मुझे इसकी सहायता करनी चाहिए ।' अतः राजा ने कहा - "सेठ ! तुम चिन्ता मत करो । मैं अपने भंडारी को आदेश देता हूँ । वह मेरे भंडार को खोल देगा । उसमें से तुम्हें जितना धन चाहिए, ले जाओ और समय आने पर वापस भरपाई कर देना ।"

राजा का भंडारी उस व्यापारी को राजा के भंडार के पास ले गया । भंडारी ने भंडार खोला । राजा का भंडार देखकर तो व्यापारी की आँखें फटी की फटी रह गई । अहा-हा ! इतना अपार धन ! हीरा, माणिक, मोती आदि बहुमूल्य वस्तुएँ हैं, इनमें से क्या लूँ और क्या न लूँ ? आज तो राजा मेरे पर सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं, फिर इस दाव को खाली क्यों जाने दूँ ? ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलेगा । यह बनिया था ! बनियाभाई लोभाविष्ट हो गया । अत्यन्त मूल्यवान चीजें भंडार में से बटोरी, गांठ बांधी और ले जाकर राजा को बताई । राजा ने पूछा - "क्या तुम्हें इतने अधिक धन की जरूरत है ?" इस पर व्यापारी ने कहा - "हाँ है ।" राजा ने कहा - "अच्छा, ले जाओ !" लोभी बनिया बहुत-सा धन लेकर राजा के महल से बाहर निकला । अब उसकी नियत बिगड़ी । वह विचार करने लगा - 'यह इतना अधिक धन है कि मैं जीऊँगा, तबतक सुख से खाऊँगा, लीलालहर करूँगा, तो भी खत्म नहीं होगा । अगर इस धन में से कर्ज देनेवाले साहूकारों को दे दूंगा तो मैं भिखारी बन जाऊँगा, मुझे फिर कमाने की चिन्ता लगी रहेगी । अतः इस धन में से न तो राजा को वापस देना है और न ही साहूकारों को कर्ज चुकाना है । कदाचित् मैं मर भी गया तो मेरा कोई पुत्र नहीं है कि राजा उससे मेरे द्वारा लिया हुआ धन मांग सके । अतः मैं इस गाँव को छोड़कर अन्यत्र चला जाऊँ तो ऋणदाताओं को या राजा को, किसी को भी इस धन में से देने की चिन्ता नहीं रहेगी और न ही कमाने-धमाने की झंझट रहेगी । शान्ति से निश्चिन्त होकर जिंदगी भर खा-पीकर मौज करूँगा ।"

बन्धुओं ! विचार करो, धन मनुष्य की वृत्ति कितनी अधम करा देता है ? उक्त व्यापारी सारा धन लेकर अपना गाँव छोड़कर दूसरे गाँव जाने के लिए रवाना हुआ । उस

उसका भविष्य बिगड़ जाय । सेठ के पुत्र का नाम था - दिनेश । दिनेश धीरे-धीरे बड़ा हुआ । बड़ा होने पर वह २१ मित्रों की सोहबत में रहने लगा । इन २१ मित्रों में एक मित्र अच्छा था, बाकी के सब मित्र दिनेश जैसे ही आवारा फिरनेवाले और माल खाने में आगे रहनेवाले थे । दिनेश ऐसे मित्रों की सोहबत में मन चाहे वहाँ जहाँ-तहाँ आवारा की तरह भटकने लगा । अब वह शराब भी पीने लगा । मात-पिता कुछ कहें तो सुना-अनसुना कर देता । कमाता-धमाता भी बिलकुल नहीं था । उसका ऐसा बर्ताव देखकर माता-पिता को बहुत दुःख होता था । इसलिए वे उसे पास में बिठाकर प्रेम से हितशिक्षा देते थे । उसका एक अच्छा मित्र था, वह था तो बहुत गरीब, किन्तु संस्कारी था । वह बहुत-सी दफा दिनेश से कहता - "मित्र ! तू ऐसे खानदान कुटुम्ब का लड़का है, तुझे यह अकार्य शोभा नहीं देता । तू तेरा यह असद् आचरण छोड़ दे, खराब मित्रों का संग छोड़ दे । तेरे माता-पिता को तेरा यह खराब आचरण देखकर कितना दुःख होता है ?" परन्तु दिनेश को किसी की अच्छी बात गले नहीं उतरती ।

बन्धुओं ! कई दफा पति अगर खराब रास्ते चढ़ जाता है, परन्तु यदि घर में पत्नी सुशील हो तो वह अपने पति को सुधार देती है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के १४वें अध्ययन में इषुकार राजा और कमलावती रानी की बात आती है । राजा के पुरोहित, उसकी पत्नी तथा उसके दोनों पुत्रों ने अपार वैभव छोड़कर भागवती दीक्षा ले ली । अब लावारिस होने से पुरोहित का सारा धन बटोर कर राजा अपने राज्य में लाता है । धन इतना था कि गाड़ियों पर गाड़ियाँ भरकर लाया गया । कथाकार कहते हैं कि धन से भरी गाड़ियों के आने से इतनी अधिक धूल उड़ रही थी कि दिशाएँ भी धूल से ढक गई । वे साफ दिखाई नहीं देने लगी । आप सोचो कि वह कितना धन होगा ? रानी ने दासी से पूछा - "अपनी नगरी में आज क्या हो रहा है, इतनी अधिक धूल क्यों उड़ रही है ?" दासी ने कहा - महारानीजी ! अपने माननीय पुरोहित, उनकी पत्नी और उनके दोनों पुत्र ने दीक्षा ले ली हैं । उनके द्वारा त्याग किया हुआ सारा धन गाड़ियों में भरवाकर राजाजी भंडार में मंगवा रहे हैं ।" यह सुनकर कमलावती रानी का खून खौल उठा । उसने तुरंत राजा के पास जाकर कठोर शब्दों में कह दिया : *"मरिहिसि राय ! जया तया वा !"* राजन् ! ब्राह्मण, ब्राह्मणी और उनके दोनों पुत्र इतनी धन-सम्पत्ति छोड़कर गये, उसे आप राज्य के भंडार में ला रहे हैं । तो क्या यह सारा धन परलोक में साथ में ले जाएँगे ? जब-तब मरोगे, तब यह धन बिलकुल साथ में नहीं आएगा । उस समय एकमात्र धर्म आपके साथ आएगा । बात काफी लंबी है । संक्षेप में, कमलावती रानी से उद्‌बोधक वचन सुनकर राजा को वैराग्य आ गया । उसी समय राजा और रानी दोनों ने सबकुछ धन-धाम, राजपाट छोड़कर दीक्षा ले ली । संक्षेप में मुझे तो तुम्हें यह बात कहनी थी कि पत्नी सुशील और संस्कारी हो तो पति को सुधार देती है ।

दिनेश के व्यवहार से माता-पिता को लगा आघात : दिनेश की पत्नी भी उसके ही जैसी थी । जैसे को तैसी मिल गई । कौन किसे सुधारे ? दिनेश दिनोदिन अधिकाधिक

तिर्यंच कितना पराधीन होता है ? उसे भूख लगती है, तब खुद गेहूँ के खलिहान में होता है, फिर भी मुँह पर छींका बंधा होने से वह खा नहीं सकता । पानी की प्यास लगती है, लेकिन मालिक न पिलाए, तब तक पी नहीं सकता, क्योंकि वह एक जगह खूंटे से बंधा रहता है । वह बैल कहता है - "मैंने पाप करते समय आगा-पीछा देखा-सोचा नहीं, इसी कारण मुझे यह बैल का जन्म मिला है ।"

वह बैल अपनी दर्दभरी दास्तान अपने साथी बैल को आगे कहता है - "भाई ! मैंने अपने कुटुम्ब के लिए धन इकट्ठा करने में बहुत पाप किया । मेरे घर में खानेवाले दस व्यक्ति थे, मैंने उन सबके भरण-पोषण के लिए पाप करके धन अर्जित किया । माल तो सबने खाया, किन्तु मार कोई नहीं खाता । मुझे अब सन्तोष है कि मैं अब मालिक के ऋण चुकाकर बैल की जिंदगी से मुक्त हो जाऊँगा ।" यों एक बैल की रामकहानी पूरी हुई ।

दूसरा बैल कहने लगा - "भाई ! तेरा कर्ज तो चुकता हो गया, परन्तु मेरे सिर पर अभी तक पाँच हजार का कर्ज चुकाना बाकी है । मैंने भी ऐसे पाप कर्म किए हैं । हंस-हंस कर आनन्दपूर्वक बांधे हुए कर्म अत्यन्त शोकपूर्वक रो-रोकर भोगने पर भी नष्ट नहीं होते । मेरा भी जल्दी छुटकारा होने का एकउपाय है । जैसे रेस में घोड़ों को दौड़ाने की स्पर्धा की जाती है, वैसे ही कल इस गाँव के राजा बैलों को दौड़ाने की स्पर्धा करानेवाले हैं । अगर अपना मालिक मुझे इस स्पर्धा में ले जाय, तो मैं अवश्य ही जीत जाऊँगा और पहले नंबर की इनाम पाऊँगा । उस इनाम के पाँच हजार रुपये जैसे ही मालिक के हाथ में आ जाएँगे, कि मैं उनके कर्ज से मुक्त हो जाऊँगा और तत्काल मेरा इस पशुयोनि से छुटकारा हो जाएगा ।"

इस प्रकार दोनों बैलों की बातचीत उस वणिक ने सुनी । बैलों ने जो बातचीत की, उसे सुनकर उक्त वणिक का हृदय हिल उठा । 'अहो ! बैल जैसे तिर्यंच प्राणी भी पूर्वकृत कर्मों के लिए कितना पश्चात्ताप करते हैं ? इन्होंने पूर्वभव में माया (छल) कपट किए, दगा-प्रपंच किए, इस कारण इन्हें बैल का जन्म मिला । तब मैंने तो ऐसे कितने ही छल-प्रपंच किए हैं, धोखेबाजी की है । मेरे पूर्वकृत कर्म के उदय से मेरे व्यापार में नुकसान हुआ और राजा के पास याचक बनकर धन लेने हेतु जाना पड़ा । राजा ने मुझ पर दया करके मुझे पर्याप्त धन दिया । ऐसी स्थिति में ऋण दाताओं को लिया हुआ ऋण चुकाने के बदले, राजा से लिया हुआ धन वापस नहीं देने की नियत से स्वयं धन का धनी बन कर बैठा और गाँव छोड़कर चल पड़ा । मेरे ये अशुभ कर्म मुझे कैसे छोड़ेंगे ? कर्मराजा का कायदा तो ऐसा कठोर है कि वह तो तीर्थंकरो, चक्रवर्तियों, राजाओं और सत्ताधीशों या धनाधीशों अथवा दीन-हीन-गरीब किसी को भी नहीं छोड़ता । कहा भी है -

छे कायदो कर्मराजनो, हिसाब छे पाई-पाईनो ।
वोरंट वगड़े आवशे, राज्य नथी पोपाबाईनुं ॥

यहाँ कोई सरकार का गुनाह करता है तो उसे कोर्ट में हाजिर होना पड़ता है । जिसका जैसा अपराध होता है, उसके अनुसार उसे सजा भोगना पड़ता है । फिर भी आज तुम देखते

पर रखा । नौकरी पाकर वह राजी-राजी हो गया । यद्यपि मिल-मालिक ने नौकरी तो सामान्य स्तर की दी, परन्तु यह लड़का जी तोड़कर काम करने लगा । उसका काम देखकर सेठ की आँखें खुल गई । सोचा - 'ओहो ! यह लड़का कितना काम करता है ?' इसकी ईमानदारी और मेहनत देखकर सेठ खुश हो गए और इसे ऊँचे स्तर पर ले गए । फिर धीरे-धीरे सेठ ने इसे मिल का मुख्य मैनेजर बना दिया । इस लड़के ने सेठ का दिल जीत लिया । इस कारण सेठ को यह अतिप्रिय हो गया ।

विनय शत्रु को भी वश करने का वशीकरण मंत्र है : बन्धुओं ! किसी भी व्यक्ति का दिल जीतने के लिए विनय वशीकरण मंत्र है । इस गरीब मनुष्य ने विनय के वशीकरण मंत्र से सेठ का हृदय जीत लिया था । सात वर्ष हुए कि सेठ ने इसे अपनी मिल में पार्टनर (हिस्सेदार) बना लिया । इसे रहने के लिए बंगला दे दिया; मोटर आदि सभी साधनों की सुविधाएँ जुटा दीं । एक खानदानी संस्कारी कन्या के साथ इसका विवाह हो गया । इसके पुण्य का सितारा चमका । इधर उस धनवान् दिनेश के यहाँ तिजोरी का पेंदा दिखने लगा । एक लाल पाई भी उसके पास नहीं रहे । इसलिए उसके पिछलगू स्वार्थी मित्रों ने उससे किनाराकसी कर ली । जैसे गुड़ की भेली पर मकोड़े आते हैं, वे धीरे-धीरे सारा गुड़ चट कर जाते हैं, अन्त में खाली बारदान पड़ा रह जाता है, वे मकोड़े अब उसके पास भी नहीं फटकते । वैसे ही उन स्वार्थी मित्रों ने जहाँ तक दिनेश के पास धन था, वहाँ तक उसके साथ मोहब्बत रखी, मौज उड़ाकर उसका सारा धन चौपट कर दिया । जब वह निर्धन हो गया, तब उसके साथ मोहब्बत छोड़ दी । दिनेश का बंगला बिक गया । उसकी पत्नी के गहने, कपड़े तक बिक गए । अब वह पास में ही एक झोंपड़ी बांधकर रहने लगा । तीन-तीन दिवस हो गए, रोटी का टुकड़ा भी नहीं मिला । फाकेकशी होनी लगी । यह देख उसकी पत्नी ने कहा - "स्वामीनाथ ! आपके इतने मित्र हैं, उनके पास जाइए न !" दिनेश बोला - "वे सब स्वार्थ के सगे हैं । मेरे पास पैसा था, तबतक मेरे चारों ओर मंडराते थे । अब वे मेरे सामने देखने भी नहीं आते । अब तो अपना सच्चा सम्बन्धी भगवान् है । भगवान् के सिवाय दूसरा कोई अपना नहीं है ।" जब आदमी शराब पीता है, तब उसे कुछ भी भान नहीं रहता, नशे में वह चाहे जो बक देता है । किन्तु जब नशा उतर जाता है, तब पछताता है । वैसे ही दिनेश का धन का नशा उतर गया, अब उसे भगवान् याद आए । मनुष्य को सुख में भगवान् याद नहीं आते । कहावत है - **'सुखमां सांभरे सोनी, दुःखमां सांभरे राम'** (मनुष्य सुख में होता है, तब आभूषण घड़ाने हेतु सुनार को याद करता है, किन्तु दुःख में होता है, तब राम को याद करता है ।) ऐसी दशा में दिनेश अब भगवान् से प्रार्थना करता है - "भगवान् ! इस संसार में सभी मतलब के साथी हैं । तेरे सिवाय दुनिया में अब कोई मेरा हाथ पकड़ने वाला नहीं है ।" यों प्रभु से प्रार्थना करते हुए पति-पत्नी दोनों झोंपडी का दरवाजा बंद करके जोर-जोर से रोते हैं ।

ठीक उसी समय दिनेश का मित्र गाड़ी लेकर अपने घर जा रहा था । उसके मन में सहसा यह विचार स्फुरित हुआ कि 'चलूं, आज दिनेश से मिलता जाऊँ । आज मैं इतने

आ वळद थईने रे, गालीड़ा गोजो खेंचशो रे जी,
अरे खावा पडशे, आरडीया केरा मार,
आ मनुष्य-देहनुं टाणुं रे, वालीड़ा पाछुं नहि मळे ।
आवो मनखो तुजने नहि मळे वारंवार... आ मनुष्य - देहनुं...

उस सेठ को पाप का भय लगा । बैलों के बनाव ने उसके जीवन में पलटा ला दिया । उसकी आँखें खुल गई । वह उस धन को वापस लौटाने के लिए राजा के पास पहुँचा । फिर जितना धन राजा के यहाँ से लिया था, वह सबका सब वापस सौंपकर बोला - ''महाराजा ! आपका धन संभाल लें ।'' राजा ने पूछा - ''क्यों सेठ ! एक ही दिन में यह धन वापस देने हेतु आए ?'' तब सेठ ने कहा - ''महाराजा ! इस धन ने तो मेरी बुद्धि बिगाड़ दी । आपके पास से धन लेकर गया और मेरे मन में ऐसे-ऐसे कुविचार आए । मैं इस कुविचार से प्रेरित होकर धन लेकर गाँव छोड़कर चल पड़ा । रास्ते में मैं एक रात एक किसान के यहाँ बिताई । वहाँ मैंने दो बैलों की आपबीती सुनी तो मेरा हृदय-परिवर्तन हो गया । वे बैल मेरे गुरु (प्रेरक) बने । मैं अपने पूर्वभव के अशुभ कर्म के कारण इस भव में तो कर्जदार बना । फिर मैं आपका धन रखूं तो आगामी भव में इस कर्ज को चुकाते-चुकाते मेरी कमर टूट जाए । इस दुष्कर्म का कर्ज चुकाने में मुझे कितने जन्म लेने पड़ें और कर्म भोगने पड़ें । अतः मुझे आपका धन नहीं चाहिए ।'' यों कहकर राजा का धन वापस देकर व्यापारी न्याय-नीतिपूर्वक जीवन-यापन करने लगा।

देवानुप्रियों ! इस सेठ को यह बात भलीभांति समझ में आ गई कि 'संसार सर्प की वांबी है ।' इसलिए वह अब पापकर्म का बंध न हो, इस रीति से बहुत सावधानीपूर्वक संसार में रहता है । तुम्हें भी यह संसार सर्प की वांबी जैसा लगता हो तो प्रतिक्षण पापरूपी सांप से डरते रहो । तुम्हें तो संसार कंसार जैसा मीठा लगता है न ? इस कारण बहुत ही उमंग से सांसारिक सुख में आनन्द मानते हो, मगर ज्ञानीपुरुष तो संसार को भंगार मानते हैं । वास्तव में संसार सर्प का बिल है ।

दूसरा सर्प के समान कुटुम्ब-परिवार है : जहाँ तक तुम्हें संसार के सुख की सुखड़ी (गुड़ पापड़ी) का स्वाद मिलता रहे, तबतक क्या बात कहना, खम्मा-खम्मा करता है, लेकिन जब संसार-सुख की सुखड़ी मिलनी बंद हो जाती है, तब सर्प की तरह वह तुम्हें डसने के समान दगा देगा । अतः कुटुम्ब-परिवार के प्रति राग (आसक्ति) छोड़ो । सर्प का जहर कौन-सा है ? वह है कुटुम्ब-परिवार और परिग्रह में मूर्च्छा रखना। वह द्रव्यविष तो मनुष्य को एक ही वक्त मारता है, परन्तु विषयों के प्रति आसक्ति का यह भाव-विष जीव भव-भव में मारनेवाला हैं । अतः संसार को सर्प के बिल के समान समझकर तथा सगे-सम्बन्धियों को सर्पतुल्य मानकर उनके प्रति ममत्व का त्याग करो । ऐसी बातें सद्गुरुओं से सुनकर, हृदयंगम करके, आचरण में लाओ, इस प्रकार राग के बन्धन तोड़ो ।

पहले के साधु-साध्वियों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए कितनी तमन्ना थी ? जैसे छोटा बच्चा बरफी, पेड़ा आदि का पुड़ा देखकर उसे खाने के लिए कितना आतुर होता (तरसता)

व्याख्यान - २१

आषाढ़ वदी १४, रविवार ता. २५-७-७६

ऋणानुबन्ध पूरे हुए बिना कर्म से छुटकारा नहीं

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, शास्त्र प्ररूपणाकार, शासनपति, भगवन्त ने अनन्तकाल से संसार चक्र में परिभ्रमण करते हुए जगत् के जीवों को परिभ्रमण से बचाने हेतु शास्त्र-सिद्धान्त की प्ररूपणा की। भगवन्त के मुखारविन्द से झरी हुई जो शाश्वती वाणी, उसी का नाम सिद्धान्त है। 'ज्ञाताधर्मकथा शास्त्र' के आठवें अध्ययन की बात चल रही है। उसमें मल्लिनाथ भगवान् के जीवन का वर्णन आगे आएगा। अभी वर्णन यह चल रहा है कि मल्लिनाथ भगवान् पूर्व में कौन थे ? मल्लिनाथ किस प्रकार से भगवान् बने ?

महाबलराजा के एक पुत्र हुआ, उसका नाम रखा गया - बलभद्रकुमार। महाबलराजा के ६ मित्र थे - अचल, धरण, पूरण, वसु, वैश्रमण और अभिचन्द। वे ऐसे जिगरी दोस्त थे कि वे एकदूसरे के लिए प्राण देने को तैयार रहते, ऐसे थे। आज के स्वार्थी मित्र तो ऐसे होते हैं, कि जबतक मित्र की जेबें भरी हों, वहाँ तक मित्र रहते हैं, जेबें खाली हो जाने पर तू कौन और मैं कौन ? इस प्रकार से अनदेखी कर देते हैं, मानो, उनके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं था। ऐसे मित्र इस जीव को संसारचक्र में भ्रमण कराते हैं। तत्त्वज्ञ पुरुषों ने तो इस संसार को हिंडोले की उपमा दी है।

संसार एक हिंडोला है : भगवान् कहते हैं - यह जीवात्मा अनादिकाल से संसार में चक्कर काटता आ रहा है। तुमने वह हिंडोला देखा है न ? बहुत-सी जगह, खासतौर से मेलेठे में हिंडोला लेकर मनुष्य खड़े रहते हैं। वह पालने जैसी डोली का बना नीचे-ऊपर चक्कर खानेवाला एक झूला-सा होता है। नन्हे-नन्हे बच्चें पैसा देकर उस हिंडोले में बैठकर राजी होते हैं। स्थिर जमीन पर से वे अस्थिर हिंडोले में बैठकर ऊपर-नीचे घूमने जाते हैं, पैसा खर्च कर वे आनन्द मानते हैं। परन्तु इस प्रकार से चक्कर खाना तो छोटे-छोटे नासमझ बच्चों को शोभा देता है। परन्तु समझदार बड़ी उम्र के लोग पैसा खर्च कर हिंडोले में बैठकर चक्कर खायें, आनन्द मानें, यह शोभा नहीं देता। अब इस बात को हम आत्मा पर घटित करें।

आ वळद थईने रे, गालीड़ा गोजो खेंचशो रे जी,
अरे सावा पडशे, आरडीया केरा मार,
आ मनुष्य-देहनुं टाणुं रे, वालीड़ा पाछुं नहि मळे ।
आवो मनखो तुजने नहि मळे वारंवार... आ मनुष्य - देहनुं...

उस सेठ को पाप का भय लगा । बैलों के बनाव ने उसके जीवन में पलटा ला दिया । उसकी आँखें खुल गई । वह उस धन को वापस लौटाने के लिए राजा के पास पहुँचा । फिर जितना धन राजा के यहाँ से लिया था, वह सबका सब वापस सौंपकर बोला - "महाराजा ! आपका धन संभाल लें ।" राजा ने पूछा - "क्यों सेठ ! एक ही दिन में यह धन वापस देने हेतु आए ?" तब सेठ ने कहा - "महाराजा ! इस धन ने तो मेरी बुद्धि बिगाड़ दी । आपके पास से धन लेकर गया और मेरे मन में ऐसे-ऐसे कुविचार आए । मैं इस कुविचार से प्रेरित होकर धन लेकर गाँव छोड़कर चल पड़ा । रास्ते में मैं एक रात एक किसान के यहाँ बिताई । वहाँ मैंने दो बैलों की आपवीती सुनी तो मेरा हृदय-परिवर्तन हो गया । वे बैल मेरे गुरु (प्रेरक) बने । मैं अपने पूर्वभव के अशुभ कर्म के कारण इस भव में तो कर्जदार बना । फिर मैं आपका धन रखूं तो आगामी भव में इस कर्ज को चुकाते-चुकाते मेरी कमर टूट जाए । इस दुष्कर्म का कर्ज चुकाने में मुझे कितने जन्म लेने पड़ें और कर्म भोगने पड़ें । अतः मुझे आपका धन नहीं चाहिए ।" यों कहकर राजा का धन वापस देकर व्यापारी न्याय-नीतिपूर्वक जीवन-यापन करने लगा।

देवानुप्रियों ! इस सेठ को यह बात भलीभांति समझ में आ गई कि 'संसार सर्प की बांबी है ।' इसलिए वह अब पापकर्म का बंध न हो, इस रीति से बहुत सावधानीपूर्वक संसार में रहता है । तुम्हें भी यह संसार सर्प की बांबी जैसा लगता हो तो प्रतिक्षण पापरूपी सांप से डरते रहो । तुम्हें तो संसार कंसार जैसा मीठा लगता है न ? इस कारण बहुत ही उमंग से सांसारिक सुख में आनन्द मानते हो, मगर ज्ञानीपुरुष तो संसार को भंगार मानते हैं । वास्तव में संसार सर्प का बिल है ।

दूसरा सर्प के समान कुटुम्ब-परिवार है : जहाँ तक तुम्हें संसार के सुख की सुखड़ी (गुड़ पापड़ी) का स्वाद मिलता रहे, तबतक क्या बात कहना, खम्मा-खम्मा करता है, लेकिन जब संसार-सुख की सुखड़ी मिलनी बंद हो जाती हैं, तब सर्प की तरह वह तुम्हें डसने के समान दगा देगा । अतः कुटुम्ब-परिवार के प्रति राग (आसक्ति) छोड़ो । सर्प का जहर कौन-सा है ? वह है कुटुम्ब-परिवार और परिग्रह में मूर्च्छा रखना। वह द्रव्यविष तो मनुष्य को एक ही वक्त मारता है, परन्तु विषयों के प्रति आसक्ति का यह भाव-विष जीव भव-भव में मारनेवाला है । अतः संसार को सर्प के बिल के समान समझकर तथा सगे-सम्बन्धियों को सर्पतुल्य मानकर उनके प्रति ममत्व का त्याग करो । ऐसी बातें सद्गुरुओं से सुनकर, हृदयंगम करके, आचरण में लाओ, इस प्रकार राग के बन्धन तोड़ो ।

पहले के साधु-साध्वियों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए कितनी तमन्ना थी ? जैसे छोटा बच्चा बरफी, पेड़ा आदि का पुड़ा देखकर उसे खाने के लिए कितना आतुर होता (तरसता)

मानवनो जन्म मळ्यो, महावीरनो धर्म मळ्यो,
आवो संयोग नहीं आवे फरीवार (२)
संतोनो संग मळ्यो, भक्तिनो रंग मळ्यो, आवो संयोग...
मानवनो जन्म छे, मुक्तिनुं गारणुं; महावीरनो धर्म छे, मुक्तिनुं पारणुं।
सुन्दर आ देह मळ्यो, गुरुवरनो स्नेह मळ्यो,... आवो संयोग...॥

मनुष्यभव, महावीर का धर्म, संतों का योग, वे सब संयोग मिले हैं, तो प्रमाद को त्यागकर आत्म-साधना करो। सबलोग इकट्ठे मिलकर व्यर्थ की गप्पें मारने की अपेक्षा आत्म-साधना की बातें करो। संसार की असारता समझो।

महाबलराजा और उनके ७ मित्रों ने एकत्रित होकर ऐसा निर्णय किया कि - 'कोई भी कार्य छोटा हो या बड़ा, संसार का हो, चाहे धर्म का हो, हम सब साथ-साथ मिलकर करेंगे। यदि कोई सद्गुरु मिल जाएँ और हमें प्रवचन सुनकर संसार असार लगे तो दीक्षा लेनी हो तो साथ ही लेनी है। ऐसा हमारा पक्का निश्चय है।' आप सब यहाँ आकर बैठे हैं। उनमें से कइयों के मित्र भी साथ में होंगे। तो आज तुमने क्या विचार किया है? बोलो! (यह सोचा है कि) आज रविवार है तो हमें किस गार्डन में घूमने जाना है? कौन-सा पिक्चर देखने जाना है? या किससे मिलने जाना है? ऐसे प्रोग्राम निश्चित किये होंगे। पर किसी दिन ऐसा निर्णय किया है कि छुट्टी के दिन हमें अमुक तप करना है? सभी एकत्र मिलकर एक घंटा धर्म की चर्चा करनी है? ऐसा भी एक प्रोग्राम आत्मा के लिए होना चाहिए। बन्धुओं! तुम संसार में सुख मानकर सगे-सम्बन्धियों के प्रति ममत्व का सम्बन्ध बांधकर बैठ गए हो। पर याद रखो, ये सांसारिक वृत्तियाँ भयंकर जहरीले सर्प से भी जहरीली हैं। महान् पुरुषों ने संसार को एक उपमा दी है - सर्प की बांबी (दर) की। अब मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हें इन तीनों में से कौन-सा अच्छा लगता है? - सर्प, सर्प का जहर या सर्प का दर (बांबी)? बोलो कौन-सा अच्छा है, इन तीनों में से? तुम नहीं बोलते हो तो मैं ही कह दूं? इन तीनों में एक भी अच्छा नहीं है। क्योंकि इन तीनों में एक भी जगह अच्छी नहीं है, जहाँ तुम निश्चयतापूर्वक रह सको। तुम्हें कोई कहे कि सर्प की बांबी के पास जाकर सो जाओ, तो क्या वहाँ सोने के लिए तैयार हो जाओगे? (श्रोताओं में से आवाज - एक भी व्यक्ति वहाँ सोने के लिए तैयार नहीं होगा), क्यों, किसलिए? तुम समझते हो कि जहाँ सर्प का बिल (बांबी) है, वहाँ भय है। कब सांप बिल में से बाहर निकले और डस ले, उसका पता भी नहीं पड़ेगा। अतः कोई वहाँ सोने के लिए तैयार नहीं होगा। कोई कहे कि सर्प की दाढ़ निकाल लाओ, तो उसे भी निकाल लेने के लिए कोई तैयार नहीं होगा। अथवा खसखस के दाने जितना जरा-सा सर्प का जहर देकर कोई कहे कि इतना-सा जहर खा जाओ, कोई हर्ज नहीं होगा। तो भी उसे खाने को कोई तैयार नहीं होगा। कारण यह है कि सर्प की बांबी के पास निश्चित होकर सो जाना, सर्प की दाढ़ में हाथ डालना तथा सर्प का जरा-सा ज़हर खा जाना, ये तीनों विषम कार्य हैं। क्योंकि सर्प की बांबी के

धर्म अंगीकार करना इस समय मेरे लिए अशक्य है। अतः मैं पाँच-अणुव्रत, तीन-गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत यों बारह व्रतवाला श्रावकधर्म अंगीकार करूँगी।' फलतः उसने गुरुदेव से श्रावक के १२ व्रत अंगीकार किए। उसके पश्चात् वह छट्ठ (बेला), अट्ठम (तेला), पचोला, अट्ठाई, सोलह और मासखमण आदि तपश्चर्या करके पुराने कर्मों का क्षय करने (निर्जरा करने) लगी। यों बहुत-से-उत्कट तप करने से, उसके शरीर की कान्ति कुम्हला गई, किन्तु आत्मा की तेजस्विता बढ़ गई। अतः उसने सर्व जीवों से क्षमापना करके, १८ पापस्थानों का, चारों प्रकार के आहार का एवं शरीर के प्रति ममत्व का त्याग करके यावज्जीवन संथारा (अनशन) किया और शुभ ध्यान में स्थिर होकर समाधिमरणपूर्वक शरीर का विसर्जन करके कालधर्म प्राप्तकर तू सौधर्म देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुई। वहाँ देवभव दिव्य सुखों का अनुभव करके देवायुष्य पूर्ण कर वहाँ से च्यवकर तू अग्निशर्मा ब्राह्मण के यहाँ पुत्रीरूप में उत्पन्न हुई।

इधर तुझे आश्रय देनेवाले माणिभद्र सेठ धर्माराधना करके समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्तकर सौधर्मदेवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यवकर श्रावककुल में मनुष्यरूप में उत्पन्न हुए। मानवभव में धर्म के रंग में रंजित होकर आयुष्य पूर्णकर समाधिमरणपूर्वक मरकर नागकुमार देव हुए। उस नागकुमार देव ने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर पूर्वभव का सर्ववृत्तान्त जाना। इसलिए पूर्वभव के स्नेह के कारण नागकुमार देव को तेरे पर वात्सल्यभाव जागा। कुलधर सेठ के घर में अज्ञानवश तेरे से जो पाप हुआ, उसके दुष्टविपाक से तू दुःखी हुई। फिर माणिभद्र सेठ के यहाँ तूने धर्माराधना, तप, त्याग आदि करके बहुत ही पुण्योपार्जन किया, इस कारण तू सुखी हुई। इन माणिभद्र सेठ के यहाँ तू रही, इसलिए वे तेरे पितातुल्य होकर तेरे सिर पर छत्रसमान (सिरछत्र) थे। यही कारण है कि उनका तेरे प्रति वात्सल्यभाव होने से इस भव में नागकुमार देव बनकर तेरे मस्तक पर छत्राकार बगीचा रखा। तूने बहुत तप-त्याग किए, साधु-साध्वियों की सेवा-भक्ति की, उसके फलस्वरूप अब तेरा कर्मरोग निर्मूल (समूल नष्ट) होने आया है। इसलिए अब तू क्रमशः मोक्ष के अनुपम सुख को प्राप्त करेगी।

मुनि के मुख से पूर्वभव सुनकर जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ : वीरभद्रसूरि महाराज के मुख से अपना पूर्वभव का वृत्तान्त सुनकर विद्युत्प्रभा रानी मूर्च्छित होकर एकदम धरती पर धड़ाम से ढल पड़ी। दास-दासीगण उसे शीतल पवन से होश में लाए। रानी भान में आई, तब कहने लगी - "गुरुदेव ! आपने जो कुछ फरमाया, वह मैंने जातिस्मरण ज्ञान से जान लिया। अहो ! यह संसार कैसा विषम है ? यह संसार जाज्वल्यमान दावानल है। उसकी ज्वालाओं में से मुक्त होकर चारित्र अंगीकार करके अब मैं भवभ्रमण का भंजन करना चाहती हूँ।"

विद्युत्प्रभा ने वैराग्य पाकर दीक्षा की आज्ञा मांगी : विद्युत्प्रभा ने विरक्त होकर राजा जितशत्रु से दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति मांगी। इस पर राजा ने कहा - "हे

का भी उसे भान नहीं रहता, उसकी माता पुकारती है - "बेटा, चल, भोजन कर ले।" परन्तु उसे खेलने में इतना आनन्द आ गया है कि वह उस समय माँ-बाप, खाना-पीना आदि सबकुछ भूल जाता है। किन्तु मेरे भगवान् महावीर के संघ के मेम्बर घर छोड़कर वीतरागवाणी सुनने हेतु धर्मस्थानक में आते हैं, लेकिन इतने समय के लिए भी संसार को भूलते नहीं, संसार को साथ में लेकर आते हैं। मगर तुम अपने संसार के कार्य में धर्म को साथ में नहीं ले जाते। वह नन्हा बच्चा तो सबकुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाता है, वैसे ही तुम भी यहाँ धर्मस्थान में आकर बैठो, उतनी देर तो अगर संसार को भूलकर वीतरागवाणी श्रवण में मस्त और दत्तचित्त हो जाओगे तो मैं मानती हूँ कि तुम्हें मुक्ति मिले बिना न रहेगी। मगर तुम्हारे हृदय से संसार कहाँ छूटता है ? कदाचित् बहुत होगा तो संसार को सुरक्षित रखकर धर्मध्यान कर लोगे, किन्तु संसार से छूटने का मन नहीं होगा। संसार के कुंडाले में फंसे हुए रहोगे, वहाँ तक मुक्ति बहुत दूर रहेगी।

सर्पिणी बच्चों को जन्म देती है, तब कुंडाला बनाती है। फिर उस कुंडाले में रहे हुए बच्चों को वह खा जाती है। परन्तु जो बच्चा कुंडाले में से छटककर बाहर निकल जाते हैं, वे बच जाते हैं। वैसे ही संसार के कुंडाले में से आत्मा को बचाना हो तो मोह, माया और ममता का कुंडाला तोड़कर बाहर निकल जाओ। साधु-साध्वी तुम्हें पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मोह, ममता, परनिन्दा एवं ईर्ष्यारूपी सर्पिणियाँ आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, क्षमा, दया, विनय आदि गुणों को खा रही हैं, इनसे बचना हो तो छलांग लगाकर इस कुंडाले से बाहर निकल जाओ। लेकिन यह बात ठीक-ठीक समझ में आ जाए तभी बाहर निकला जाय न ? हाँ, माना कि तुम्हें धर्म करना अच्छा लगता है; परन्तु कैसा ? संसार की गाढ़ ममता रखकर। जैसे सर्पिणी कुंडाले में अंडे देती है और उन्हें कुंडाले में ही रखती है और अन्त में उन्हें खा जाती है। इसी तरह संसार की वासना एवं क्रोधादि कषाय तथा हास्यादि नोकषाय आत्मा के गुणों को खा जाते हैं। फिर भी संसार के कुंडाले में रहकर सांसारिक वासनावश माता-पिता, पत्नी-पुत्र, मित्र-बन्धु आदि सब को रखते हुए धर्म हो जाय तो करते हैं। संसार की ममता छोड़कर धर्माचरण करना अच्छा नहीं लगता। 'मेरापन' रखकर जो हो जाय, वही सत्य है, किन्तु मैंने जिसे मेरा माना है, उसमें जरा-सी भी अड़चन नहीं आनी चाहिए। प्रायः जीवों की ऐसी मनःस्थिति है, फिर कल्याण कैसे हो ? ऐसी दशा देखकर मुझे तो तुम लोगों पर दया आती है कि यहाँ तो तुम्हारे पुण्य प्रबल हैं, इसलिए लीलालहर करते हो, पापकर्म बांधते हो, तो भी हर्षित होते हो। पर-भव में तुम्हारा क्या होगा ? तुम्हें कितना चाहिए ? एक जीव को थोड़ा मिले तो भी काफी है। लेकिन इस कुटुम्ब-परिवार के लिए दगा-प्रपंच करते हुए जीव पीछे मुड़कर विचार नहीं करता। तुमने अन्याय-अनीति, बेईमानी, ठगी करके अशुभ कर्म बांधे, उनका फल भोगने के लिए तुम्हारे घर-परिवार के मनुष्य नहीं आएँगे। कर्मों का कर्ज तो करनेवाले को ही चुकाना पड़ेगा। किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना कर्ज से मुक्त नहीं हुआ जाता। कर्मों के आगे दीनता बताने से या प्रार्थना करने से काम नहीं

मिल-बैठकर करना है, ऐसा उन्होंने निश्चय किया था। समझपूर्वक की हुई धर्माराधना उत्तम फलदायिनी होती है।

बन्धुओं ! आज कई आत्माएँ उत्तम-फलदायक देव-गुरु-धर्म की आराधना करते हैं, सद्गुरुओं का समागम करते हैं, फिर भी वे ईर्ष्या, निन्दा, द्वेषभाव आदि (दुर्गुणों) को नहीं छोड़ते। उत्तम आराधना करते हुए भी वे दोषदृष्टि के कारण विराधक बन जाते हैं; कितने ही व्यक्ति धर्मक्रियाओं की विधि करने में प्रमाद करते हैं, लापरवाही करते हैं, उससे भी वे विराधक बनते हैं। कई व्यक्ति आचरण (आचार) में शिथिलता अपनाकर, फिर अपना बचाव करने के लिए उन दोषों को देश, काल की दुहाई देकर अपनी गलत मान्यता का पोषण करते हैं। ऐसे आत्मा विराधक की कोटि में आ जाते हैं। ऐसी विराधना करने से जीव के संसार की वृद्धि होती है। उसके कारण जीव को दुर्गति में जाकर नानाविध दुःखों को सहना पड़ता है। मोक्ष प्राप्त करानेवाली उत्तम क्रियाएँ और शुभ अनुष्ठान करते हुए भी ऐसे जीव विराधक भाव को पाकर संसार में परिभ्रमण करते हैं, और जन्म-मरण की परम्परा बढ़ाते हैं। उत्सूत्र की प्ररूपणा करनेवाला व्यक्ति भी अनन्त संसार बढ़ाता है। जैसी। जैसी विराधना होती है, तदनुसार फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार कई बार जीव प्रमाद में पड़कर भी संसार की वृद्धि करता है। अतः ऐसा उत्तम मनुष्यजन्म पाकर यह खास ध्यान रखना जरूरी है कि भले ही मुझ से धर्म की आराधना कदाचित् कम हो, तो उसका हर्ज नहीं, किन्तु भूले-चूके भी विराधना करूँगा तो मुझे अनन्तकाल तक जन्म-मरण के चक्र में पड़कर भव-भ्रमण करना पड़ेगा। सम्यक्दृष्टि आत्मा को भव-भ्रमण खटकता है, इसलिए वह विराधना करने से बचता है। उसे आराधकता अच्छी लगती है, विराधकता अच्छी नहीं लगती।

'रायप्पसेणी (राजप्रसेनी) सूत्र' में प्रदेशी राजा के जीवन का वर्णन है। इस सूत्र को पढ़ते हुए अपना हृदय पिघल जाता है। एक वक्त प्रदेशी राजा कितने क्रूर थे ? चिड़ियों की जीभें खींच डालते थे। जिनके हाथ रक्त से रंगे हुए रहते थे, ऐसे प्रदेशी राजा को एक बार केशीश्रमण का समागम हुआ, अपना जीवन आमूलचूल बदल डाला। हिंसक न रहकर वह अहिंसक बन गए, परदेशी से स्वदेशी बन गए, पापी से पवित्रात्मा बन गए। छट्ठ (बेले) के पारणे छट्ठ (बेल) करने लगे। यों तेरह छट्ठतप किए। तेरह छट्ठ और पारणे के १३ दिन, यों कुल मिलाकर ३९ दिवस की उनकी तपःसाधना हुई। सूरिकान्ता रानी सोचने लगी - पति धर्म का पुतला बन गया। अब वह मुझे भौतिक सुख नहीं देता। अपना मनचाहा स्वार्थ भंग हो गया। इसलिए सूरिकान्ता रानी ने राजा के तेरहवें छट्ठ (बेले) के पारणे के दिन जहर दे दिया। उसने खाने-पीने में तथा कपड़ों में सबमें जहर डाल दिया। राजा को पता लग गया कि मुझे जहर दिया गया है, फिर भी रानी के प्रति उन्हों ने जरा भी रोष नहीं किया। अपने अशुभ कर्मों का उदय मानकर समभाव से स्थिर रहे, संथारा करके समाधिपूर्वक देहविसर्जन किया। वे तो संसारी थे। धर्म के मार्ग पर चढ़ने की शुरूआत ही थी। फिर भी (मरणान्त प्रसंग पर भी) कितनी समता

दिन बहुत चला। चलते-चलते बहुत थक गया था। एक गाँव में पहुँचा। गाँव के बाहर ही एक छोटी वस्ती में गरीब किसान का झोंपड़े जैसा एक घर नजर आया। वहाँ आकर उस किसान से पूछा - "भाई ! मैं बहुत थक गया हूँ। मुझे आज रातभर तुम्हारे यहाँ रहने दोगे क्या ?" तब किसान बोला - "भाई, हम परिवार में आठ मनुष्य हैं। घर में तो सोने की जगह नहीं है।" इस पर बनिये ने कहा - "भाई ! मुझे बहुत गर्मी लगती है। अतः सोने के लिए एक खाट दे दोगे तो मैं बाहर ही सो जाऊँगा।" वणिकभाई बहुत होशियार था। उसे घर के अंदर तो सोना ही नहीं था। उसे लगा कि अगर घर के अंदर सोऊँगा तो इतना धनमाल देखकर किसी की नियत बिगड़ जाय ! अतः इसकी अपेक्षा तो बाहर सोना अच्छा। बाहर सोऊँगा और रातभर जागता रहूँगा, फिर मेरे पास का यह धन कौन ले जाएगा ?

बैलों की बातचीत सुनकर सेठ का जीवन-परिवर्तन : जहाँ ममता और माया होती है, वहाँ भय लगा रहता है। जेब में पैसे हों तो हाथ बार-बार कहाँ जाता है ? बार-बार वह देखता रहता है, कि कहीं जेब तो नहीं कट गई है ? जेब कट जाय तो हृदय हाथ में नहीं रहता। पास में जोखिम होती है तो मनुष्य की नींद भी उड़ जाती है। उक्त व्यापारी को किसान ने एक खाट और एक गुदड़ी देकर जहाँ उसके बैल बंधते थे, वहाँ सो जाने को कहा। अत: वह वहाँ खाट डालकर सो गया। परन्तु उसे नींद कहाँ से आती ? पास में जोखिम जो थी। देर रात को वहाँ बंधे हुए दो बैल परस्पर अपनी भाषा में बात करने लगे। वह व्यापारी बहुत होशियार था, वह पशुओं की भाषा जानता था। अत: दो बैलों में परस्पर होनेवाली बातचीत कान लगाकर सुनने लगा।

एक बैल दूसरे बैल से कह रहा था - "भाई ! मेरे सिर पर इस किसान का पूर्वजन्म का भारी कर्ज था। उसे चुकाने के लिए मैंने इस किसान की जिंदगीभर सेवा की। अब मेरा कर्ज चूकता हो गया है, इसलिए सूर्योदय होने से पहले मैं इस मालिक के कर्ज से मुक्त होकर बैल की पराधीन जिंदगी से मुक्त हो जाऊँगा। पूर्वभव में मैंने बहुत पाप किये, इस कारण मुझे तिर्यंच का जन्म मिला। पाप करते समय इस जीव ने आगे-पीछे का विचार नहीं किया।" यों कहते-कहते बैल की आँखों से दर-दर आँसू बहने लगे। यह देख दूसरे बैल ने पूछा - "भाई ! तूने पूर्वभव में कौन-सा पाप किया था ?" तब पहले बैल ने कहा - "पूर्वजन्म में मैं मनुष्य था। अनाज का बड़ा व्यापारी था। व्यापार करने में मैंने झूठ-कपट करने में कुछ भी बाकी नहीं रखा। मैं ग्राहक को अच्छा अनाज बताकर सड़ा हुआ अनाज दे देता था। झूठा तौल-माप रखता था। गरीबों को ठगने में पीछे नहीं रहा। कोई दीन-हीन भूखा-प्यासा गरीब आदमी अनाज के लिए मेरी दूकान पर आकर गिड़गिड़ाता तो भी मैं उसे मुट्ठीभर अनाज नहीं देता था। इस किसान ने मेरे यहाँ ब्याज पर अपनी पूंजी गिरवी रखी थी, मैंने उसकी रकम नहीं दी, हड़प कर गया। इस कारण मेरे सिर पर उसका कर्ज रह गया। उसे चुकाने के लिए मुझे इसके घर में बैल-बनकर रहना पड़ा, और जिंदगीभर भूख-प्यास सहकर इसका काम करना पड़ा।"

ऐसा है। इसके साथ ही दुनिया में समधारण (मध्यम प्रकार का सन्तुलन) रहना मुश्किल है। प्रकृति के कषाय पतले हों, वहाँ समधारण मुश्किल है; जबकि देवता में उत्पन्न होने के लिए बताये गये चार कारणों में अकाम निर्जरा (बिना इच्छा से दुःख सहना) स्वाभाविक है। परन्तु प्रकृति से कषायों को पतले करना, वहाँ मुश्किल है। देवपन का कारण पराधीनता से भी मिल जाता है, जबकि मनुष्यपन के कारण पराधीनता से नहीं मिलते। इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - मनुष्यपन देवपन से भी मुश्किल है। फिर इसे व्यर्थ ही क्यों खो रहे हो ? इस जीव की दशा कैसी है ? उसी की जबानी सुनिए -

नचावी जे भवोभवथी, मळी छे आ भवे मूडी,
विचारीने करुं धंधो, कमाणी थाय तो रूडी।
परन्तु मोज करवामां, मूडीने हुं उड़ावुं छुं;
मळ्यो छे आ जन्म मोंघो, नकामो हुं गुमावुं छुं;
सरोवर हंसने प्यारुं, कीचडमां हुं घुमावुं छुं ॥ ओ...मळ्यो छे आ जन्म...

भव-भव में साधना करके पुण्यरूपी पूंजी इकट्ठी करके जीव ने मनुष्यभव पाया है। मगर अज्ञान दशा के कारण इस मानवभव की महंगी पूंजी को मौज-शौख करने में साफ कर देता है। जैसे अबोध बालक रेत के ढेर बनाकर खेल खेलता है। उस रेत के ढेर में से दूसरा लड़का अगर एक मुट्ठी ले जाये तो वे बालक परस्पर लड़ते हैं, धूल उछालते हैं, पथ्थर फेंकते हैं और लड़ते हैं। यह देखकर तुम्हें हंसी आती है। पर गहराई से सोचो, तुमलोग इससे नीचे नहीं उतरते। उन लड़कों का खेल पूरा होते ही, रेत के ढेर वहीं के वहीं पड़े रहते हैं। वैसे तुम लोग भी रेत, चूना, सिमेंट, ईंट और लोहा डालकर लाखों रुपयों के बंगले बंधाते हो, वह इस जिंदगी के २५, ५० या १०० वर्ष का खेल खेलने के लिए ही न ? वे लड़के तो खेलते हुए एक मुट्ठी रेत के लिए परस्पर लड़े, झगड़े, मारामारी की, और खेल खत्म होते ही अपने-अपने घर चले गए, रेत के वे ढेर वहाँ के वहाँ ही पड़े रहे। वैसे ही इस संसार में जन्मे हुए प्रत्येक मनुष्य को एक दिन यह सब छोड़कर चले जाना है। इन घर-बार, धन-सम्पत्ति आदि प्राप्त करने लिए जो पाप किये, उन्हें साथ लेकर जीव को अकेले ही जाना होगा, परन्तु जिन वस्तुओं या व्यक्तियों के लिए पापकर्म बांधे, वे वस्तुएँ या व्यक्ति तो यहीं पड़े रहनेवाले हैं न ? वे पदार्थ तुम्हें बिदा करने हेतु गाँव के बाहर तक नहीं आते, जिनके लिए इतनी मेहनत की है।

इन सब (झंझटों) को छोड़कर जितना समय मिले, उतना धर्माराधना करो तो कितना लाभ हो ? धर्माराधना करके जो कमाई की है, वही (परलोक में) साथ में आनेवाली है। लेकिन एक बात ध्यान में रखना, कि आराधना करते हुए विराधना न हो जाए। अरे ! कई तो ऐसे माई के लाल हैं कि वे विराधना करके उस विराधना को आराधना के खाते में खतियाकर विराधना का पोषण करते हैं। ऐसा करके वे अपना अनन्त संसार बढ़ा लेते हैं। बहुत-सी बार उत्सर्ग-अपवाद के नाम पर शिथिलाचार का पोषण किया जाता है, वह भी उचित नहीं है। अपनी कमजोरी या कमी को, कमजोरी या कमी

हो कि वकील की जेब भर दे तो गुनाह से बरी हो जाता है, दोषी होने पर भी निर्दोष सिद्ध होकर छूट जाता है और केस अपने पक्ष में हो जाता है। परन्तु कर्मराजा की कोर्ट में कोई घूंस या रिश्वत नहीं चलती। वहाँ वे सबको एक सरीखा न्याय देते हैं। वह सेठ भूतकाल में अपने द्वारा किए गए पापों को याद करने लगे और वर्तमान में जिस पाप को करने को उद्यत हो रहे हैं, उसे याद करते हुए उसका हृदय हिल उठा। हे भगवान्! मैंने तो ऐसे अनेक क्रूर कर्म किए हैं और कैसे-कैसे पापकर्म बांधे हैं? पर-भव में उसके प्रतिघोष कैसे पड़ेंगे? अतः मुझे अब राजा का धन नहीं लेना है। मुझे अब एक लाल पाई भी नहीं चाहिए। यदि मैं एक पाई भी कर्ज लेता हूँ तो परभव में मुझे चक्रवृद्धि-व्याज-सहित वह रकम चुकानी पड़ेगी।'

इस बैल का सुबह क्या होता है? यह देखकर फिर चला जाऊँ। इस सेठ को तो प्रभात होते ही चले जाना था, लेकिन बैल की बातचीत सुनकर रुक गया। सूर्योदय होते ही वह बैल धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। जोर की आवाज होते ही किसान एकदम दौड़कर बाहर आया। सेठ भी वहीं खड़ा था। किसान ने पूछा - "मेरा बैल तो एकदम हृष्टपुष्ट था, उसे अचानक यह क्या हो गया?" तब व्यापारी ने कहा - "भाई! तुम्हारा इस बैल से जो लेना था वह पूरा हो गया, इस कारण अपना ऋण अदा करके चला गया।" यों कहकर रात को सेठ ने दोनों बैलों की बात सुनी थीं, वह किसान को कह सुनाई। फिर कहा कि - "अगर तुम्हें इसकी प्रतीति करनी हो तो आज यहाँ के राजा बैलों को दौड़ाने की स्पर्धा का आयोजन करनेवाले हैं, इस प्रतिस्पर्धा में तुम्हारे इस दूसरे बैल को ले जाओ।"

ऐसा है। इसके साथ ही दुनिया में समधारण (मध्यम प्रकार का सन्तुलन) रहना मुश्किल है। प्रकृति के कषाय पतले हों, वहाँ समधारण मुश्किल है; जबकि देवता में उत्पन्न होने के लिए बताये गये चार कारणों में अकाम निर्जरा (बिना इच्छा से दुःख सहना) स्वाभाविक है। परन्तु प्रकृति से कषायों को पतले करना, वहाँ मुश्किल है। देवपन का कारण पराधीनता से भी मिल जाता है, जबकि मनुष्यपन के कारण पराधीनता से नहीं मिलते। इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - मनुष्यपन देवपन से भी मुश्किल है। फिर इसे व्यर्थ ही क्यों खो रहे हो ? इस जीव की दशा कैसी है ? उसी की जबानी सुनिए -

बचावी जे भवोभवथी, मळी छे आ भवे मूडी,
विचारीने करुं धंधो, कमाणी थाय तो रूडी।
परन्तु मोज करवामां, मूडीने हुं उड़ावुं छुं;
मळ्यो छे आ जन्म मोंघो, नकामो हुं गुमावुं छुं;
सरोवर हंसने प्यारुं, कीचडमां हुं घुमावुं छुं ॥ ओ...मळ्यो छे आ जन्म...

भव-भव में साधना करके पुण्यरूपी पूंजी इकट्ठी करके जीव ने मनुष्यभव पाया है। मगर अज्ञान दशा के कारण इस मानवभव की महंगी पूंजी को मौज-शौख करने में साफ कर देता है। जैसे अबोध बालक रेत के ढेर बनाकर खेल खेलता है। उस रेत के ढेर में से दूसरा लड़का अगर एक मुट्ठी ले जाये तो वे बालक परस्पर लड़ते हैं, धूल उछालते हैं, पथ्थर फेंकते हैं और लड़ते हैं। यह देखकर तुम्हें हंसी आती है। पर गहराई से सोचो, तुमलोग इससे नीचे नहीं उतरते। उन लड़कों का खेल पूरा होते ही, रेत के ढेर वहीं के वहीं पड़े रहते हैं। वैसे तुम लोग भी रेत, चूना, सिमेंट, ईंट और लोहा डालकर लाखों रुपयों के बंगले बंधाते हो, वह इस जिंदगी के २५, ५० या १०० वर्ष का खेल खेलने के लिए ही न ? वे लड़के तो खेलते हुए एक मुट्ठी रेत के लिए परस्पर लड़े, झगड़े, मारामारी की, और खेल खत्म होते ही अपने-अपने घर चले गए, रेत के वे ढेर वहाँ के वहाँ ही पड़े रहे। वैसे ही इस संसार में जन्मे हुए प्रत्येक मनुष्य को एक दिन यह सब छोड़कर चले जाना है। इन घर-बार, धन-सम्पत्ति आदि प्राप्त करने लिए जो पाप किये, उन्हें साथ लेकर जीव को अकेले ही जाना होगा, परन्तु जिन वस्तुओं या व्यक्तियों के लिए पापकर्म बांधे, वे वस्तुएँ या व्यक्ति तो यहीं पड़े रहनेवाले हैं न ? वे पदार्थ तुम्हें विदा करने हेतु गाँव के बाहर तक नहीं आते, जिनके लिए इतनी मेहनत की है।

इन सब (झंझटों) को छोड़कर जितना समय मिले, उतना धर्माराधना करो तो कितना लाभ हो ? धर्माराधना करके जो कमाई की है, वही (परलोक में) साथ में आनेवाली है। लेकिन एक बात ध्यान में रखना, कि आराधना करते हुए विराधना न हो जाए। अरे ! कई तो ऐसे माई के लाल हैं कि वे विराधना करके उस विराधना को आराधना के खाते में खतियाकर विराधना का पोषण करते हैं। ऐसा करके वे अपना अनन्त संसार बढ़ा लेते हैं। बहुत-सी बार उत्सर्ग-अपवाद के नाम पर शिथिलाचार का पोषण किया जाता है, वह भी उचित नहीं है। अपनी कमजोरी या कमी को, कमजोरी

हो कि वकील की जेब भर दे तो गुनाह से बरी हो जाता है, दोषी होने पर भी निर्दोष सिद्ध होकर छूट जाता है और केस अपने पक्ष में हो जाता है । परन्तु कर्मराजा की कोर्ट में कोई घूंस या रिश्वत नहीं चलती । वहाँ वे सबको एक सरीखा न्याय देते हैं । वह सेठ भूतकाल में अपने द्वारा किए गए पापों को याद करने लगे और वर्तमान में जिस पाप को करने को उद्यत हो रहे हैं, उसे याद करते हुए उसका हृदय हिल उठा । हे भगवान् ! मैंने तो ऐसे अनेक क्रूर कर्म किए हैं और कैसे-कैसे पापकर्म बांधे हैं ? परभव में उसके प्रतिघोष कैसे पड़ेंगे ? अतः मुझे अब राजा का धन नहीं लेना है । मुझे अब एक लाल पाई भी नहीं चाहिए । यदि मैं एक पाई भी कर्ज लेता हूँ तो परभव में मुझे चक्रवृद्धि-व्याज-सहित वह रकम चुकानी पड़ेगी ।'

इस बैल का सुबह क्या होता है ? यह देखकर फिर चला जाऊँ । इस सेठ को तो प्रभात होते ही चले जाना था, लेकिन बैल की बातचीत सुनकर रुक गया । सूर्योदय होते ही वह बैल धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा । जोर की आवाज होते ही किसान एकदम दौड़कर बाहर आया । सेठ भी वहीं खड़ा था । किसान ने पूछा - "मेरा बैल तो एकदम हृष्टपुष्ट था, उसे अचानक यह क्या हो गया ?" तब व्यापारी ने कहा - "भाई ! तुम्हारा इस बैल से जो लेना था वह पूरा हो गया, इस कारण अपना ऋण अदा करके चला गया ।" यों कहकर रात को सेठ ने दोनों बैलों की बात सुनी थीं, वह किसान को कह सुनाई । फिर कहा कि - "अगर तुम्हें इसकी प्रतीति करनी हो तो आज यहाँ के राजा बैलों को दौड़ाने की स्पर्धा का आयोजन करनेवाले हैं, इस प्रतिस्पर्धा में तुम्हारे इस दूसरे बैल को ले जाओ ।"

व्यापारी सेठ की बात सुनकर किसान अपने दूसरे बैल को बैलों की दौड़ की प्रतिस्पर्धा में ले गया । उस व्यापारी को इसे देखने की बहुत जिज्ञासा थी, इसलिए वह भी साथ में गया । गाँव के बाहर मैदान में बैलों को दौड़ाने की प्रतिस्पर्धा की शुरूआत होने जा रही थी, वहाँ यह किसान भी अपने बैल को लेकर पहुँच गया और अपने बैल को भी प्रतिस्पर्धा में छोड़ दिया । इस प्रतिस्पर्धा में राजा ने ऐसी घोषणा की थी कि इस दौड़ में जो बैल पहले नंबर में विजयी होगा, उसे पाँच हजार रुपये इनाम दिये जाएँगे । बौलों की दौड़-प्रतिस्पर्धा शुरू हुई । उसमें उस किसान का बैल जीत गया । घोषणा के अनुसार राजा की ओर से किसान को पाँच हजार रुपये दिये गए । जैसे ही किसान के हाथ में पाँच हजार रुपये आए कि तुरंत वह बैल धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा, गिरते ही उसके प्राणपखेरू उड़ गए । दोनों बैल अपने मालिक (किसान) का कर्ज चुकता होते ही एक क्षण भी रुके नहीं । इस पर से सोचो - समझो । कोई किसी का नहीं है । अपना-अपना पूर्वजन्म का लेन-देन निपटाने के लिए सभी प्राणी यहाँ आते हैं, आए हैं । यही तथ्य को समझने का समय है । अब भी समझकर माया-छल-कपट नहीं छोड़ोगे, तो इन बैलों की तरह कष्ट सहने पड़ेंगे । कहा है -

रहे और विराधना से विरत रहे, यानी दूर रहे, बचे । 'समवायांग सूत्र' में भगवान् ने कहा है कि - सूत्र-सिद्धान्त की विराधना करके अनन्तजीव चतुर्गतिक संसार में परिभ्रमण करते (भटकते) हैं, भविष्य में भी अनन्तजीव विराधना करके परिभ्रमण करेंगे । इसके विपरीत सूत्र-सिद्धान्त की आराधना करके तथा भगवान की आज्ञा के अनुसार आचरण करके अनन्तजीव भूतकाल में संसारसागर को पार कर गए, वर्तमानकाल में संख्यात जीव पार कर रहे हैं, और भविष्य में भी अनन्त आत्मा तिर जाएँगे ।

बन्धुओं ! इस पर से यह तथ्य हम समझ सकते हैं कि विराधना कितनी भयंकर है और आराधना कितनी कल्याणकारिणी है ? अतः इस दुर्लभ मानवभव को पाकर जितनी हो सके आराधना करके मानवजीवन को उज्ज्वल बनाओ । आज मैंने आराधना पर इतना भार क्यों डाला है ? इसका कारण यह है कि बहुत-से जीव कदम-कदम पर विराधना कर रहे हैं । ऐसा उत्तम मनुष्यभव और वीतरागप्रभु-प्ररूपित उत्तम धर्म प्राप्त होने पर भी यदि आराधना न हो तो मानवजन्म निष्फल चला जाए और भविष्य में भव-भव में भटकना भी रुके नहीं ।

अब अपनी मूल शास्त्रीय चर्चा पर आएँ । महाबलराजा ने अपने छह मित्रों के साथ निर्णय किया कि - 'हम संसार से सम्बन्धित जो कोई कार्य करेंगे अथवा धर्म की आराधना करेंगे, सब साथ में मिलकर करेंगे ।' इस पर छह मित्रों ने एक स्वर में कहा - "हे महाबलराजा ! हम उम्र में तो समवयस्क हैं, किन्तु समृद्धि से, बल से और गुण से आप हमसे बड़े (बढ़कर) हैं, इसलिए आप हमारे हेड हैं । आप जो कुछ भी करेंगे या कहेंगे, तदनुसार हम करेंगे और कहेंगे ।" इस प्रकार सबने निश्चय किया और सब हिलमिलकर, परस्पर एक होकर आनन्द से रहने लगे । वहाँ क्या हुआ ? इस विषय में शास्त्रकार कहते हैं -

"तेणं कालेणं, तेणं समएणं, धम्मघोस थेरा, जेणेव इंद कुंभे उज्जाणे तेणेव समोसढे ।"

उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविरमुनि ग्रामानुग्राम विचरण करते-करते एक दिन वीतशोका नगरी के बाहर इन्द्रकुम्भ नाम के उद्यान में पधारे ।

संतों के पदार्पण के समाचार मिलते ही महाबलराजा का रोम-रोम पुलकित हो उठा, उनका हृदय प्रसन्नता से खिल उठा । जैसे इलेक्ट्रिक करंट लगने पर सारा शरीर झनझना उठता है वैसे ही महाबलराजा को स्थविर मुनिराज के पदार्पण के समाचार मिलते ही उनके दर्शन-वन्दन-प्रवचन श्रवण के लिए हृदयवीणा के तार झनझना उठे । वे अपने सिंहासन से उठे और नीचे उतरकर खड़े हो गए ।

देवानुप्रियों ! आपको कोई कहे कि वजुभाई ! उपाश्रय में महासतीजी पधारी हैं, तो सोफे पर बैठे हों तो खड़े हो जाएँगे या बैठे रहेंगे ? श्रेणिकराजा को जब-जब भगवान् महावीर के पदार्पण के समाचार मिलते, तब-तब वे सिंहासन से उठकर खड़े होकर

है ?, वैसे ही महान् पुरुष मुक्ति के मेवों को लेने हेतु आतुरता करते हैं । मुक्ति प्राप्त करने के लिए देह का राग (ममत्व) भी छोड़ना पड़ेगा । खंधकमुनि के ५०० शिष्य प्रसन्न मुख से घाणी में पिराते हैं । उनका शरीर घाणी में पिराया जा रहा था, किन्तु मन तो नवकार मंत्र में रम रहा था । अपने पुष्प-सम कोमल शिष्यों को घाणी में पिलते देख उनके गुरु को दुःख होता है, तब शिष्य कहते हैं - "गुरुदेव ! यह शरीर नहीं पिल रहा है, हमारे कर्म पिल रहे हैं ।" उन्होंने शरीर के प्रति ममता कितनी जीत ली होगी ? मुक्ति कोई यों ही नहीं मिल जाती । वे साधु मुक्ति प्राप्त करने हेतु बेसब्र हो रहे थे ।

आज घाटकोपर संघ के प्रांगण में बोरीवली, कांदीवली और दौलतनगर, ये तीन संघ आए हैं । और चोथा है : घाटकोपर संघ । ये चारों संघ चार गतियों का परिभ्रमण टालने के लिए एकत्र मिले हैं । इन तीन संघों के दिल में भी संतों के चातुर्मास लेने की चटपटी लगी है । आपको साधु-साध्वियों के प्रति इतना अधिक प्रेम किसलिए है ? साधु वर्ग आपके विषयों का विष उतारनेवाले हैं । वे भी महावीर के वचनामृतों का पान कराकर विषयों का वमन कराते हैं और आत्मा की अमरता का भान कराते हैं; संसारसागर से पार उतरने का मार्ग बताते हैं । जैसे नदी सागर में मिलने जाती है तब मार्ग में जितनी जमीन आती है, उसे उपजाऊ बना देती है । वैसे ही साधु-साध्वी भी एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहरण करते हैं, तव रास्ते में पड़नेवाले छोटे-बड़े क्षेत्रों को लाभान्वित करते हैं । जहाँ-जहाँ नदी पहुँचती (जाती) है, वहाँ-वहाँ वातावरण हराभरा हो जाता है; वैसे ही जिन-जिन क्षेत्रों में संत-सतीजी पधारते हैं, वहाँ धर्माराधना से वातावरण हराभरा हो जाता है । ऐसे महाभाग संत-सतीवर्ग के चातुर्मास के लिए संघ (अपने क्षेत्र की विनती मंजूर कराने हेतु) धक्कमपेल करते हैं । आज तीन संघ विनती करने हेतु आए हैं । उनको (संघ-प्रमुखों को) बोलना है, यहाँ के संघ-प्रमुख वजुभाई को भी बोलना है । किन्तु विद्युत्प्रभा के पूर्वभव का वृत्तान्त जो चल रहा है, वह थोड़ा बाकी है, उसे पूर्ण कर दें, यही उचित होगा ।

पुण्य-पाप के खेल की कथा

कुलधर सेठ की पुत्री के शील के प्रभाव से सूखा बगीचा हराभरा हो गया, इस कारण उसका घर-घर में गुणगान होने लगा । माणिभद्र सेठ का प्रेम भी उसके प्रति बढ़ने लगा । एक दिन रात्रि में कुलधर-पुत्री विचार करने लगी - 'जिन्हें संसार की सुख-सामग्री मिली, उन्होंने उसका उपभोग किया और फिर उसकी असारता समझकर उसका त्याग करके चारित्र अंगीकार किया । मैंने पूर्व (भव) में कैसे पाप किए होंगे कि मुझे इस भव में संसार में कहीं भी सुख नहीं मिला । माता-पिता के लिए मैं सौतेली (अपर) पुत्री जैसी रही । शादी की तो पति ने भी मेरा त्याग कर दिया । उसमें भी कुछ पुण्य का उदय होगा, जिससे पवित्र पिता के समान इन सेठजी ने मुझे आश्रय दिया । इसमें भी महान् पुण्योदय से मुझे जिनेश्वर-प्रभु-कथित धर्म मिला । लेकिन चारित्र

छूटा - "हे भव्य जीवों ! अनादिकाल से तुम पैसे को परमेश्वर मानकर बैठे हो । धन की लालसा में धर्म को भूलकर संसार के झूले में झूल रहे हो । लेकिन याद रखना, पैसे की आसक्ति जीव को संसारसागर में डूबाएगी और परमेश्वर तारेगा । धन डूबाएगा, धर्म तारेगा । अगर संसार के गड्ढे में पड़े रहोगे तो मोक्ष नहीं मिलेगा ।" इस प्रकार मुनिवर ने बहुत ही सुन्दर धर्मोपदेश दिया ।

बन्धुओं ! जैन साधु-साध्वियों के त्याग जैसा त्याग अन्य धर्म के साधुवर्ग में नहीं है । जैन साधुवर्ग संसार के बंधनों को तोड़कर, कंचन-कामिनी का त्याग करके भागवती दीक्षा ग्रहण करता है । वह स्वयं भौतिक वस्तुओं पर से ममत्व-मूर्च्छा का त्याग करके तत्पश्चात् तप, त्याग, संयम और नियम का उपदेश देता है । जिनके रोम-रोम तप-त्याग-संयम से भावित हों, जो वीतरागप्रभु की आज्ञा-पालन में तत्पर रहता हो, उनकी अमृतवाणी का शीघ्र प्रभाव पड़ता है । जैन संत-सतियों में राग, द्वेष, मोह, कषाय एवं काम का जैसा त्याग होता है, वैसा अन्य धर्मों के साधुवर्ग में नहीं होता; ऐसा त्याग और कषायों व आस्त्रवों से पूर्ण विरति न होने से वे पूर्ण विरतिधर न कहलाकर अल्पविरति (बाल) साधु कहलाते हैं । इस सम्बन्ध में मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

बादशाह का दृष्टांत : एक गाँव के बादशाह को एक बार ऐसा विचार आया कि मैंने राजवैभव का बहुत उपभोग कर लिया है, अब मुझे राजवैभव का त्याग करके खुदा की बंदगी करने के लिए मुझे फकीरी ले लेनी है । किन्तु फकीरी लेकर मैं अपने राज्य में रहूँगा तो मेरी प्रजा यों कहेगी कि यह तो अपने बादशाह हैं । इसलिए सभी मेरा आदर-सत्कार करेंगे । सभी मेरे पास आकर बैठ जाएँगे । इस कारण मुझ से खुदा की बंदगी भलीभांति नहीं की जा सकेगी । अतः मैं कुछ दूर जाकर फकीर बनूं, यह ठीक रहेगा । यों सोचकर अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर बादशाह अपने गाँव से बहुत दूर चले गए और वहाँ रहकर एकान्त में जाकर फकीर बन गए । फिर वे जंगल में, खंड़हरों में रहने लगे । वहाँ रहकर वे आसपास के गाँव में से भिक्षा लाकर रूखा-सुखा खाकर खुदा की बंदगी में मस्त होकर रहने लगे । यों बादशाह को फकीर बने हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गए ।

बादशाह का शरीर सूख गया । उन्हें कोई भी पहचान न सके, ऐसा शरीर अस्थिपिंजर हो गया । बादशाह मन में यह विचार करते रहते थे कि मुझे कोई पहचाने नहीं तो ठीक रहेगा; क्योंकि उन्हें सम्मान-सत्कार की परवाह नहीं थी । आज कतिपय अज्ञानी मनुष्य संसार त्यागकर साधु बनने के बाद यों सोचते रहते हैं कि मेरे पास अधिक लोगों का जमघट कैसे हो ? मेरे भक्त या अनुयायी कैसे बढ़ें ? जबकि ज्ञानी साधक यों कहते हैं कि आत्म-स्वरूप की पहचान करने हेतु घर-बार छेड़कर निकले हुए साधु को दुनिया की पहचान का मोह किसलिए होना चाहिए ? इस अधिक पहचान का और प्रसिद्धि का मोह क्यों होना चाहिए ? यह परिचय का मोह आत्मा को मोक्ष में जाने से रोकता है । इस बादशाह को पहचान और प्रसिद्धि का मोह बिलकुल नहीं था।

महारानी ! तुम्हें जो संसार को असार जानकर दीक्षा लेने की भावना जगी है, तो अब मैं भी किसलिए इस संसारचक्र में भ्रमण करने हेतु गृहस्थवास में बैठा रहूँ ? यदि तुम प्रव्रज्या ग्रहण करने को तैयार हुई हो तो मुझे इस संसार में रहकर क्या सार निकालना है ? अतः हम दोनों ही दीक्षा ग्रहण कर लें ।" यों निश्चय करके गुरुदेव से विनती की - "भगवान् ! हम घर जाकर इस विद्युत्प्रभा महारानी के पुत्र मलयसुन्दर कुमार को राजगद्दी पर बिठाकर दीक्षा लेने हेतु आएँ वहाँ तक आपश्री यहीं स्थिरता करियेगा ।" राजा और रानी दोनों राजमहल में आए । मलयसुन्दर कुमार को राज-सिंहासन पर बिठाकर उसके हाथ में राज्य-संचालन का भार सौंपकर दीक्षा लेने के लिए उद्यत हुए । अनाथों को अन्न तथा दीनहीनों को दान दिया । मुक्त हस्त से लक्ष्मी का सदुपयोग करके राजा-रानी दोनों ने धूमधाम से भागवती दीक्षा अंगीकार की ।

दोनों आत्मा संयम-साधना में तल्लीन हुए : जितशत्रु राजा दीक्षा लेने के बाद राजा न रहकर अब राजर्षि बन गए । उन्होंने बहुत ही शास्त्रज्ञान प्राप्त किया और निरतिचार चारित्र पालते हुए अनेक जीवों को प्रतिबोध दिया । उनकी योग्यता देखकर गुरु ने उन्हें आचार्यपद देकर अपना पट्टधर बनाया ।

इस तरफ विद्युत्प्रभा साध्वीजी प्रचुर सिद्धान्तज्ञान प्राप्त करके प्रवर्तिनी बनीं । ग्रामानुग्राम विचरण करके धर्मजागृति की, अनेक धर्मप्रेमी जीवों को प्रतिबोध दिया । अन्तिम समय में अनशन करके समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त करके देवलोक में देव बनी। वहाँ आयुष्य पूर्ण करके च्यवकर मनुष्यभव प्राप्त करके संयमाराधना कर केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करके मोक्षसुख प्राप्त करेंगी । आगे के भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - २२

आषाढ़ वदी अमावस्या, सोमवार — ता. २६-७-७६

सम्यक् आराधना करो, विराधना से बचो

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी भगवान् ने घातीकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान की ज्योति प्रकट की । तत्पश्चात् भव्य जीवों के समक्ष आगमवाणी प्रस्तुत की । 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार चल रहा है । महाबलराजा के ६ मित्र थे । वे सब साथ में बैठकर धर्म की चर्चा-विचारणा करते थे । जो कुछ भी प्रवृत्ति करना है, वह परस्पर

क्षमा के झुले पर झूलते हुए अवधूत : बन्धुओं ! फकीर के जीवन में कितनी उत्कृष्ट क्षमा होगी ? उन्होंने क्रोध को कितना जीता होगा ? अहंकार पर कितनी विजय पाई होगी ? तभी तो इस प्रकार रहा जा सकता है न ? इस प्रकार फकीर की परीक्षा २१ दिन तक लगातार चली, फिर भी फकीर के मन में जरा-सा भी रोष नहीं उमड़ा । वह मन ही मन विचार करने लगे कि १२ वर्ष के बाद मेरी फकीरी की यह परीक्षा है । विद्यार्थी स्कूल में वर्षभर पढ़ता है, वर्ष के अन्त में परीक्षा न हो तो उसकी पढ़ाई की क्या कीमत ? इसी प्रकार मैंने फकीरी धारण की, उसके पश्चात् मेरी परीक्षा न हो तो क्या पता चले कि मुझमें कितनी क्षमा है ? समय आने पर मेरी समता भंग न हो, तभी मैं सच्चा फकीर कहलाऊँगा । उस दौरान वह अपनी आत्मा से कहते थे - हे आत्मन ! तेरी बारह वर्ष की फकीरी की यह परीक्षा चल रही है । देखना, इस परीक्षा में (सिद्धान्त से) विचलित न हो जाना । इक्कीस दिन हो गए, लेकिन फकीर के एक अणु में भी क्रोध नहीं आया । तब वह (परीक्षक) मनुष्य उनके चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा - "हे महात्मा ! आप तो खुदा के भी खुदा हैं । मैंने आपको बहुत हैरान किया, किन्तु आप बिलकुल शान्त रहे । मुझे माफ करिए ।" यों कहकर वह रोने लगा । यह देखकर फकीर ने कहा - "बेटा ! तूने मुझे बिलकुल हैरान नहीं किया, बल्कि मुझे अपनी फकीरी में मजबूत बनाया है । रो मत ।" यों कहकर उसे शान्त किया । फिर उसके अत्यन्त आग्रह से उसके घर से भिक्षा ली । और उसके मस्तक पर हाथ रखकर कहा - "बेटा ! जीवन में अच्छे कार्य करना । किसी का बुरा मत करना ।" इतना कहकर अपने स्थान में आकर खुदा की बंदगी में मस्त हो गए ।

अब फकीर के मन में निश्चय हो गया कि मैं सारे नगर में घूमा, मैंने राजमहल भी देखे, नगरजनों को भी देखे, किन्तु अब मुझे किसी का स्मरण नहीं सताता । फिर मेरा इतना अपमान होने पर भी मन में क्रोध नहीं आया । अतः अब मेरे में फकीरी सुशोभित हो, ऐसे गुण आ गए हैं । इसलिए अब कोई अड़चन नहीं आएगी । मेरी आत्मा का अवश्य कल्याण होगा ।

बन्धुओं ! जहाँ तक हमारे सामने कषाय का निमित्त न आए, तथा क्रोध न करें, वहाँ तक यह नहीं कहा जा सकता कि क्रोध पर विजय प्राप्त कर लिया है । किन्तु क्रोध का प्रबल निमित्त मिलने पर भी क्रोध न आए तो कहा जा सकता है कि क्रोध को जीत लिया है । इस फकीर बने हुए बादशाह ने जब से वह फकीर बने, तब से निश्चय कर लिया था कि चाहे जैसा प्रसंग आए, मुझे क्रोध नहीं करना है, क्योंकि क्रोध भयंकर राक्षस है । वह आत्मा के गुणों को खा जाता है । प्रीति को चौपट कर देता है । कहा भी है - *'क्रोधो हि शत्रु, प्रथमो नाराणाम्'* क्रोध मनुष्य का अव्वल शत्रु है । अतः कदापि

और कितनी उत्कृष्ट धर्माराधना ! ऐसी समता साधु-साध्वियों में रहनी भी कठिन है। साधु के दशविध श्रमणधर्म बताए गये हैं, उनमें पहला धर्म उत्तम क्षमा है। परन्तु वर्षों से दीक्षा ली होने पर भी संयम आने पर ऐसी समता और क्षमा रखनी कठिन प्रतीत होती है।

अपूर्व क्षमाधारी प्रदेशी राजा कालधर्म पाकर प्रथम देवलोक में सूर्याभ नामक विमान में सूर्याभ नामक देव हुआ। एक बार सूर्याभ देव प्रभु के दर्शन के लिए गया। उसने प्रभु को वन्दन करके पूछा - "भगवन् ! मैं आराधक हूँ या विराधक ?" मुझे आप लोगों को यह तथ्य समझाना है कि सम्यक्दृष्टि आत्मा को आराधकता अच्छी लगती है; विराधक भाव अच्छा नहीं लगता। वह विराधना से दूर भागता है। अतः बन्धुओं ! बड़ी मुश्किल से इस मनुष्यभव में धर्मराधना करने का अमूल्य अवसर मिला है। उसमें भी संसार के जंजाल में से बड़ी मुश्किल से दो-चार घड़ी धर्माराधना करने का समय मिलता है। यदि इस आराधना करने के समय में भी विराधना की तो आत्मा की कैसी विषम स्थिति होगी? अतः समझो। ऐसा उत्तम मनुष्यजन्म बार-बार मिलना मुश्किल है। उसमें विराधना करके यदि भवभ्रमण बढ़ाओगे तो फिर यह मनुष्यजन्म पुनः-पुनः मिलना कठिन है।

मनुष्यजन्म देवों को भी दुर्लभ है। वह किस अपेक्षा से दुर्लभ है ? यह समझाती हूँ। जैसे - व्यवहार में जिस वस्तु के उम्मीदवार अधिक होते हैं, उस स्थान में चांस कम मिलता है। देवगति के उम्मीदवार की अपेक्षा मनुष्यगति के उम्मीदवार ज्यादा हैं, क्योंकि नारक और देव मरकर नारक और देव नहीं होते। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीव तक तथा असंज्ञी जीव देवता में नहीं जाते। संज्ञी पंचेन्द्रिय का अमुक भाग देवलोक में जाता है, इसलिए देवगति के लिए अर्जी देनेवाले कम ही कहलाएँगे न ? प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय में इने-गिने हैं, जबकि मनुष्य नारक, देव अथवा सभी मरकर मनुष्य बन सकते हैं। एकेन्द्रिय (तेजस्काय, वायुकाय के सिवाय) द्विन्द्रीय, त्रिन्द्रीय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रीय ये सब मरकर मनुष्य हो सकते हैं। इसलिए मनुष्यपन प्राप्त करने हेतु प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार अधिक ज्यादा हैं, जबकि देवताओं के लिए इनेगिने ही उम्मीदवार हैं। मनुष्यपन के लिए जो उम्मीदवार हैं, उसका बहुत अल्प भाग भी देवपन की योग्यता नहीं रखता। इस कारण देवपन पाने के लिए प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार बहुत कम हैं, जबकि मनुष्यपन के लिए प्रतिस्पर्धी बहुत अधिक हैं।

दूसरी दृष्टि से सोचें तो जिसमें जगह ज्यादा हों, वहाँ मिलने का चांस आसान होता है, किन्तु जहाँ कम हो, वहाँ उसे मिलने का चांस बहुत ही कम होता है। मनुष्य कितने हैं ? गर्भज मनुष्य संख्यात हैं। कम से कम संख्या हो तो वह मनुष्य की है। गर्भज मनुष्य की अपेक्षा देवपन के स्थान असंख्यात गुणे हैं। मनुष्य के स्थान मुट्ठीभर हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि जिसके उम्मीदवार बहुत हैं, उसके स्थान बहुत कम हैं। उम्मीदवार बहुत और स्थान कम, इन दोनों में से कौन-सा मुश्किल है ? गर्भज मनुष्य के स्थान संख्यात होने के कारण उसमें आना कठिन है। प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा से मनुष्यपन बहुत ही कम मिले,

साद्धर्म भारत का मोटा अधिपति रे, अर्धांगी जिनके सोलह हजार ।
हय, गय, रथ बैयालीस लख को धणी रे, पायदल अड़तालीस क्रोड़ सुमार रे ॥ श्रोता...

अर्धभरत के महाधिपति थे श्रीकृष्ण वासुदेव । वे गुणानुरागी थे । छोटी से छोटी और खराब से खराब चीज में से भी वे गुण ग्रहण कर लेते थे । ऐसे श्रीकृष्ण वासुदेव के अन्तःपुर में सोलह हजार रानियाँ थीं । ४२ लाख घोड़े, ४२ लाख हाथी और ४२ लाख रथ का सैन्य था, तथा ४८ करोड़ पैदल सैन्य था । श्रीकृष्ण वासुदेव की सोलह हजार रानियों में से पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुषीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी, ये आठ मुख्य पटरानियाँ थी । ये सब पटरानियाँ बहुत ही विनयवान् और रूपवती थी ।

बन्धुओं ! श्रीकृष्ण वासुदेव की रानियाँ तो सौन्दर्यवती थी ही, इतना ही नहीं, द्वारिका नगरी में रहनेवाली रमणियाँ भी अत्यन्त सुन्दर, विनयवती और देवांगनाओं से भी अधिक सुन्दर दिखाई देती थीं । वहाँ के छप्पन कोटि यादव भी यौवन-सम्पन्न और देवतुल्य शोभायमान थे । एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'जहाँ लक्ष्मी हो, वहाँ सरस्वती नहीं रहती'; परन्तु इस द्वारिका नगरी में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का अपूर्व संगम हो गया था । अतएव इस प्रकार के विरोध को द्वारिकावासियों ने मिटा डाला था । द्वारिका नगरी के नागरिक स्वदार-सन्तोषी और परोपकार-परायण, तथा शीलव्रत के यथाशक्ति पालन करने में तत्पर थे ।

छप्पन कोटि यादवों तथा ऐसे पवित्र नगरजनों पर श्रीकृष्ण वासुदेव की कृपा बरसती थीं । जहाँ राजा की कृपादृष्टि हो, वहाँ प्रजा आनन्द से लीलालहर करती है । द्वारिका नगरी धन, धान्य और ऋद्धि-सिद्धि से समृद्ध थी । कोई भी मनुष्य दुःखी नहीं था । नगरी का आधिपत्य करनेवाले श्रीकृष्ण वासुदेव स्वयं धर्मप्रेमी थे । इस कारण साधु-साध्वियों का भी वहाँ बारबार आगमन होता रहता था । इस कारण नगरी के लोग भी खूब धर्मिष्ठ थे । जहाँ धन, धान्य और धर्म, इन तीनों का त्रिवेणी-संगम हो, वहाँ कौन-सा दुःख हो सकता है ? कृष्ण वासुदेव की मीठी नजर से द्वारिका नगरी में छप्पन कोटि यादव और नगरजन आमोद-प्रमोद कर रहे थे ।

श्रीकृष्ण वासुदेव की आठ पटरानियों में से सत्यभामा उनकी मुख्य और प्रिय पटरानी थी । किन्तु जब श्रीकृष्ण वासुदेव ने रुक्मिणी के साथ विवाह किया, उसके पश्चात् उन्होंने रुक्मिणी को मुख्य पटरानी बनाई । नारी जाति में ऐसे प्रसंगों पर सहज ही ईर्ष्या आ जाती है । सत्यभामा अत्यन्त रूपवती थी, किन्तु उसमें अभिमान कूट-कूटकर भरा था, जब कि रुक्मिणी अत्यन्त सरल एवं विनयी थी । विनय ऐसा वशीकरण मंत्र है, कि वह वैरी को भी वश में कर लेता है । अतः रुक्मिणी ने अपने विनय, नम्रता और सरलता आदि गुणों से श्रीकृष्ण वासुदेव को ऐसे वश में कर लिये थे कि सत्यभामा आदि

और कितनी उत्कृष्ट धर्माराधना ! ऐसी समता साधु-साध्वियों में रहनी भी कठिन है। साधु के दशविध श्रमणधर्म बताए गये हैं, उनमें पहला धर्म उत्तम क्षमा है। परन्तु वर्षो से दीक्षा ली होने पर भी संयम आने पर ऐसी समता और क्षमा रखनी कठिन प्रतीत होती है।

अपूर्व क्षमाधारी प्रदेशी राजा कालधर्म पाकर प्रथम देवलोक में सूर्याभ नामक विमान में सूर्याभ नामक देव हुआ। एक बार सूर्याभ देव प्रभु के दर्शन के लिए गया। उसने प्रभु को वन्दन करके पूछा - "भगवन् ! मैं आराधक हूँ या विराधक ?" मुझे आप लोगों को यह तथ्य समझाना है कि सम्यक्दृष्टि आत्मा को आराधकता अच्छी लगती है, विराधक भाव अच्छा नहीं लगता। वह विराधना से दूर भागता है। अतः बन्धुओं ! बड़ी मुश्किल से इस मनुष्यभव में धर्मराधना करने का अमूल्य अवसर मिला है। उसमें भी संसार के जंजाल में से बड़ी मुश्किल से दो-चार घड़ी धर्माराधना करने का समय मिलता है। यदि इस आराधना करने के समय में भी विराधना की तो आत्मा की कैसी विषम स्थिति होगी? अतः समझो। ऐसा उत्तम मनुष्यजन्म बार-बार मिलना मुश्किल है। उसमें विराधना करके यदि भवभ्रमण बढ़ाओगे तो फिर यह मनुष्यजन्म पुनः-पुनः मिलना कठिन है।

मनुष्यजन्म देवों को भी दुर्लभ है। वह किस अपेक्षा से दुर्लभ है ? यह समझाती हूँ। जैसे - व्यवहार में जिस वस्तु के उम्मीदवार अधिक होते हैं, उस स्थान में चांस कम मिलता है। देवगति के उम्मीदवार की अपेक्षा मनुष्यगति के उम्मीदवार ज्यादा हैं, क्योंकि नारक और देव मरकर नारक और देव नहीं होते। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीव तक तथा असंज्ञी जीव देवता में नहीं जाते। संज्ञी पंचेन्द्रिय का अमुक भाग देवलोक में जाता है, इसलिए देवगति के लिए अर्जी देनेवाले कम ही कहलाएँगे न ? प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय में इने-गिने हैं, जबकि मनुष्य नारक, देव अथवा सभी मरकर मनुष्य बन सकते हैं। एकेन्द्रिय (तेजस्काय, वायुकाय के सिवाय) द्विन्द्रीय, त्रिन्द्रीय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रीय ये सब मरकर मनुष्य हो सकते हैं। इसलिए मनुष्यपन प्राप्त करने हेतु प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार अधिक ज्यादा हैं, जबकि देवताओं के लिए इनेगिने ही उम्मीदवार हैं। मनुष्यपन के लिए जो उम्मीदवार हैं, उसका बहुत अल्प भाग भी देवपन की योग्यता नहीं रखता। इस कारण देवपन पाने के लिए प्रतिस्पर्धी उम्मीदवार बहुत कम हैं, जबकि मनुष्यपन के लिए प्रतिस्पर्धी बहुत अधिक हैं।

दूसरी दृष्टि से सोचें तो जिसमें जगह ज्यादा हों, वहाँ मिलने का चांस आसान होता है, किन्तु जहाँ कम हो, वहाँ उसे मिलने का चांस बहुत ही कम होता है। मनुष्य कितने हैं ? गर्भज मनुष्य संख्यात हैं। कम से कम संख्या हो तो वह मनुष्य की है। गर्भज मनुष्य की अपेक्षा देवपन के स्थान असंख्यात गुणे हैं। मनुष्य के स्थान मुट्ठीभर हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि जिसके उम्मीदवार बहुत हैं, उसके स्थान बहुत कम हैं। उम्मीदवार बहुत और स्थान कम, इन दोनों में से कौन-सा मुश्किल है ? गर्भज मनुष्य के स्थान संख्यात होने के कारण उसमें आना कठिन है। प्रतिस्पर्धी की अपेक्षा से मनुष्यपन बहुत ही कम मिले,

व्याख्यान - २३

श्रावण सुदी १, मंगलवार ता. २७-७-७६

भवभ्रमण मिटाने में सक्षम है - वीतरागवाणी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

भव के भेदक, समता के साधक और ममता के मारक वीतराग तीर्थकर भगवन्त ने अपने पर परम उपकार करके शास्त्र-सिद्धान्त प्ररूपित किए। शास्त्र के प्रत्येक अक्षर में अक्षय शान्ति और प्रत्येक शब्द में शाश्वत सुख निहित है। यदि श्रद्धापूर्वक रुचि जागे तो कर्मों की निर्जरा होती है। श्रद्धापूर्वक वीतराग परमात्मा का नाम-स्मरण करने से भी जीव के कर्मों का क्षय हो जाता है। एक बात याद रखो, तुम्हारे (गृहस्थ) संसार में ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हें करोड़ रुपयों की जरूरत हो, तब करोड़ करोड़, यों करोड़ के (सिर्फ) नाम-जप से करोड़पति नहीं हुआ जा सकता। परन्तु यहाँ (आध्यात्मिक जीवन में) श्रद्धापूर्वक भगवान् का नाम-स्मरण करने से भगवान के तुल्य बना जा सकता है। तुम (भगवत्प्ररूपित) शास्त्रों पर श्रद्धा रखो। कदाचित् तुम्हें शास्त्रों की बातें समझ में न आए तो श्रद्धा और रुचिपूर्वक समझने का प्रयत्न करो। मैं तुम्हें इस बात को एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ।

मान लो, एक लड़के को सर्प ने डस लिया। उसे बहुत जहर चढ़ा है। मालूम हुआ कि अमुक आदमी भयंकर से भयंकर सर्प का जहर उतार देता है। तो उसके सम्बन्धी तुरंत ही उस लड़के को उस (सर्पविष उतारनेवाले) के यहाँ ले जाते हैं। सर्प का जहर उतारनेवाला मनुष्य मंत्र का उच्चारण करता है। वह लड़का तो बेहोश पड़ा है। वह (मंत्र) सुनता नहीं है, फिर भी सर्प का जहर उतर जाता है। इस विषय में तुम्हें कितनी श्रद्धा है कि इस व्यक्ति ने मंत्र बोलकर सर्प का जहर उतार दिया; लेकिन वीतराग-प्रभु के वचनों रूपी मंत्रों पर अगर ऐसी दृढ़ श्रद्धा हो तो संसार का (विषय-कषायादि) जहर उतर जाता है। हम साधुवन्दना में बोलते हैं न ?

एक वचन जो सद्गुरु केरो, जो ध्यावे दिलमांय रे प्राणी !
नरकगति में ते नहिं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी !...साधुजीने वंदना...

वीतराग-प्रभु के एक वचन पर भी यथार्थ श्रद्धा बैठ (जम) जाए तो जीव नरकगति में नहीं जाता, उसका संसार का (विषय-कषाय आदि) जहर उतर जाएगा। वास्तव में, जिनवचन सत्य है, निःशंक है, मुझे तारनेवाले हैं, ऐसी अनन्य श्रद्धा होनी चाहिए। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में स्पष्ट निर्देश किया है -

माननेवाला फिर भी आराधक है, परन्तु अपनी कमजोरी या कमी को ढांपना और उसका बचाव करना तो महाविराधना है । बहुत विराधना करने की अपेक्षा थोड़ी भी आराधना सुन्दर सुफल देती है । जैसे नंगे पैर चलनेवाला मनुष्य, मुझे कांटे, कंकर न चुभ जांय, इसका ध्यान रखकर नीचे देखकर चलता है, इसी प्रकार हमें साधना के मार्ग में विराधना के कांटे-कंकर न चुभ जांय, इसका ध्यान रखकर उपयोगपूर्वक आराधना करनी है ।

देवानुप्रियों ! यह बात बहुत समझने जैसी है । विराधना तो घड़ी-दो घड़ी की होती है, किन्तु उसके कड़वे फल दीर्घकाल तक भोगने पड़ते हैं । अतः जहाँ तक हो सके, आराधना करो, लेकिन विराधना न हो जाए इसका ध्यान रखो । बहुत-सी दफा धर्म के शुभ अनुष्ठान भी अयोग्य आत्मा के लिए विराधना के कारण बन जाते हैं । जैसे कि देव-गुरु-धर्म पर (श्रद्धा रखते हुए भी) बार-बार शंका-कांक्षा-विचिकित्सा करना । ये मेरे गुरु और ये मेरे गुरु नहीं, ऐसा भेदभाव या पक्षपात रखनेवाले, अकारण ही दूसरों के दोष देखनेवाले, निन्दा-चुगली या विकथा करनेवाले, अपने माने हुए गुरु में दिखाई देनेवाले दोषों को ढांपना और दूसरे निर्दोष (पवित्र) संतों में दोष न होते हुए भी उन्हें दोषी सिद्ध करना, ऐसी साधकात्माएँ तप, त्याग आदि क्रियाकाण्ड करते हुए भी शास्त्रों में भगवान् के कथनानुसार विराधक हो जाती हैं । अतएव उनके लिए संवर के स्थान आस्रव के स्थान बन जाते हैं । जैसे कि आचारांग सूत्र (श्रु. १) में भगवान् ने फरमाया है -

"जे आसवा, ते परिसवा; जे परिसवा ते आसवा ।"

इसका तात्पर्य यह है कि कई ऐसे आराधक आत्माएँ होती हैं, जिनके लिए आस्रव के स्थान भी संवर के स्थान बन जाते हैं, इसके विपरीत विराधक आत्माओं के लिए संवर के स्थान भी आस्रव के स्थान बन जाते हैं । शीशमहल तो आस्रव का स्थान था न ? फिर भी भरतचक्रवर्ती के लिए वह संवर का स्थान बन गया । वह संवरभाव में चढ़ते हुए अनित्य-भावना में तल्लीन हो गए और वहीं के वहीं उन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हो गया । जबकि 'उत्तराध्ययन सूत्र' की ८४ कथाओं में कुलवालक नामक एक मुनि का उदाहरण है, जिसने गुरु की घोर आशातना की, अविनीतता के कारण विराधकभाव को प्राप्त किया । अतः (संवर के स्थान रूप) गुरुदेव के समागम में आने पर भी वह आराधक न बन सका, अपितु (आस्रवी एवं) विराधक बनकर दुर्गति में चला गया । अतः देव-गुरु-धर्म की आराधनापूर्वक उपासना करके अनन्तजीव इस अगाध-संसारसमुद्र से तिर गये हैं, जबकि अनन्तजीव इनकी विराधना करके संसारसमुद्र में डूब गए हैं ।

'प्रतिक्रमण आवश्यक' में पाँचवां श्रमणसूत्र में क्या बोलते हैं ? -

'अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए ।"

अर्थात् - "मैं आराधना के लिए उद्यत हुआ हूँ और विराधना से विरत हो गया हूँ ।" आशय यह है कि प्रतिदिन यह सूत्र बोला जाए तो साधक/साधिका आराधना में उद्यमवान्

'जो खाता है, उसका पेट भरता है', इस न्याय से केवल भोजन की थाली देखने मात्र से भूख नहीं मिटती, भोजन का सेवन करने से ही भूख मिटेगी । इस प्रकार जो मोक्ष की विधिपूर्वक सम्यग्ज्ञान-दर्शनपूर्वक साधना करता है, उसी का कल्याण होगा । इसमें हमें क्या लाभ हुआ ? ऐसा करनेवालों को भी भगवान् ने कहा था कि साधना में मार्गदर्शन, प्रेरणा तथा सावधानी रखने की, अतिचारों से बचने का स्पष्ट निर्देश वीतरागदेव एवं निर्ग्रन्थ गुरु करते हैं, चलना और संयम में पुरुषार्थ करना तो तुम्हें ही है । अतः तुम्हें संसारसागर से तरना-पार उतरना है तो देवाधिदेव और निर्ग्रन्थ गुरु के वचनों पर श्रद्धा रखकर, उनके द्वारा बताए हुए मार्ग के अनुसार चलो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा और तुम्हारा कर्तृत्व देखकर परिवार, समाज और समष्टि के जीव भी अपना कल्याण कर सकेंगे ।

अतः चौदह रज्जू-परिमित इस लोक में आरम्भ-परिग्रह और विषय-कषायों से बचानेवाला कोई होता तो (देव और गुरु की अनुपस्थिति में) वीतराग का वचन है, और उनके द्वारा कथित आत्मधर्म (आत्महितलक्षी धर्म) है । उन पर श्रद्धा रखोगे और तदनुसार आचरण करोगे, तो तिर जाओगे । बाकी साधु तो स्वयं तरे और दूसरों को तारे वह है, जो स्वयं डूबे और दूसरों को तारे, वह साधु नहीं होता । इस संसार में तुम चाहे जहाँ दृष्टिपात करो, ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है, कि जो स्वयं डूबे और दूसरों को तार दे । पानी पर एक पत्ता रखा जाता है, तो वह तिरता है, किन्तु उस पत्ते पर कोई चीज रखी जाए तो वह चीज भले ही डूब जाये, मगर स्वयं पत्ता डूबता नहीं है । वह तो तिरता है, क्योंकि इसका स्वभाव (पानी पर) तिरने का है । इस जगत में ऐसे अनेक पदार्थ हैं, परन्तु ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो स्वयं डूबे और दूसरों को तारे । वैसे ही सच्चे साधु भी कैसे होते हैं ? जो भगवान् के वचनों को सत्य मानकर उस पर श्रद्धा और यथाशक्ति तदनुसार आचरण करके तिर जाते हैं ।

तुम्हें (संसारसागर) तिरना (पार उतरना) है न ? यदि तिरना है तो प्रभु के वचनों पर श्रद्धा करो-रखो । भगवान् के मिष्ट-मधुर वचनामृत सुनानेवाले संत स्वयं उन पर श्रद्धा करते हैं और दूसरों की श्रद्धा सुदृढ़ करते हैं । किन्तु तुम्हारे साथ आरम्भ-समारम्भ के प्रवाह में बहकर स्वयं का जीवन नहीं बिगाड़ते । पानी के प्रवाह में पत्ता तिरता है, वैसे सच्चा साधु संसारसागर तर जाता है । प्रश्न होता है - तरना तो है, पर किसको किसके माध्यम से तरना है और कौन (संसारसागर को) तरा (पार हुआ) है ? वही बताते हैं -

संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ।

इस संसार को महाज्ञानियों और तत्त्व-चिंतकों ने अलग-अलग प्रकार की उपमा से उपमित किया है । उनमें मुख्यतया संसार को सागर की उपमा दी है । जिसे महर्षिगण तर जाते हैं । किस माध्यम से तरते हैं ? इसके लिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ.-२३, गा.- ७३) की वह गाथा देखिए -

शरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो ।।

भगवान् जिस दिशा में होते, उस दिशा में 'तिक्खुत्तो' का पाठ बोलकर तीन बार वन्दन करते । हाँ, आपलोग उपाश्रय में हों, उस समय संत या सतीजी को आते हुए देखें तो खड़े हो जाते हैं, परन्तु उनके उपाश्रय में पदार्पण के समाचार घर में मिलें तो शायद ही खड़े होते हैं, क्योंकि अभी तक इतना उल्लास नहीं है । हाँ, तुम्हारी दुकान में कोई व्यापारी आ रहा हो, उस वक्त दूर से ही उसे आते देखकर सोफे पर से उठकर खड़े होकर सामने जाओगे, हाथ मिलाओगे, और 'पधारो' कहकर उसका स्वागत करोगे । फिर भले ही वह मत्स्यभोजी (मांसाहारी) हो, लेकिन तुम्हें धन कमाने का चांस मिलता है, वहाँ कितना विनय - विवेक करते हो ? कितनी नम्रता दिखाते हो ? इतना विनय या विवेक अगर देव और गुरु की भक्ति के बारे में आ जाए तो बेड़ापार हो जाए ।

महाबलराजा को वनपालक धर्मघोषमुनि के पधारने की बधाई देने आया, तो उसे राजा ने स्वर्णमुद्राओं से तरबतर कर दिया । तुम्हें तुम्हारा छोटा बालक कहने आए कि 'पिताजी ! पिताजी ! महासतीजी पधारी हैं ।' ऐसे शुभ समाचार देने आए तो उसे खुश करते हो या नहीं ? वहाँ तो आप उसे 'बहुत अच्छा बेटा !' कहकर निपटा देते हो । परन्तु कोई ऐसे समाचार देने आए कि तुम्हारे पुत्र के पुत्र हुआ है, तो खुश-खुश हो जाओगे और शायद उसे पाँच या दश का नोट भी दे दोगे । तुम्हारी यह वृत्ति-प्रवृत्ति बताती है कि तुम्हें संसार के प्रति कितना प्रेम (रागभाव) है ? जबकि देव-गुरु-धर्म का नाम या पदार्पण सुनते ही धर्मिष्ठ आत्मा की छाती गज-गज फूल उठती है । वास्तव में धर्मनिष्ठ जीव देव-गुरु-धर्म के प्रति पूर्ण वफादार होता है, होना ही चाहिए । अवसर आने पर देव-गुरु-धर्म के लिए अपने प्राण अर्पण करने लिए वह तैयार रहता है । उसके हृदय में देव-गुरु-धर्म के प्रति प्रथम स्थान होता है । वह चाहे जहाँ और चाहे जब (चाहे जैसी परिस्थिति में) हो, देव-गुरु-धर्म को कभी नहीं भूलता । वह देव-गुरु-धर्म का अनुरागी होता है । देव-गुरु-धर्म के प्रति राग प्रशस्त राग है । इनके प्रति प्रशस्त राग होने से, संसार का राग कट जाता है या मंद हो जाता है, क्योंकि प्रशस्त राग अप्रशस्त राग को काटनेवाला है, यह मोहनीय कर्म को शिथिल कर देता है । संक्षेप में कहें तो, देव-गुरु-धर्म के प्रति श्रद्धाभक्ति से कर्म छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

महाबलराजा देव, गुरु और धर्म के प्रति अनुरागी हैं । वह धर्मघोष अनगार के पधारने का समाचार सुनकर उनके दर्शनार्थ जाने के लिए तैयार हुए ।

शास्त्रकार कहते हैं -

"परिसा निग्गया । महबलोवियराया निग्गओ । धम्मो कहिओ ।"

धर्मघोष अनगार का पदार्पण सुनकर नगरजन भी बड़ी संख्या में अपने-अपने घरों में से निकलकर उनके दर्शनार्थ पहुँचे । महाबलराजा भी अपने राज-परिवार के साथ मुनिवर के दर्शनार्थ इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान में पहुँचे । उनको तथा उस विशाल परिषद को धर्मघोष अनगार ने धर्मोपदेश दिया । भव्यजीव उस समवसरण (धर्मसभा) में वीतरागवाणी सुनने के लिए एकाग्रचित्त होकर बैठे हैं । मुनि के मुखारविन्द से हृदयस्पर्शी वाणी का प्रवाह

पाँच वर्ष तक पीहर रखना ? पत्नी के मन में यह विचार स्फुरित हुआ कि मुझे अपने पति का इतने लम्बे काल तक वियोग कैसे सहन करना ? रोगी युवक को भी दुःख होता है, परन्तु उसे अगर रोग को जड़मूल से मिटाना हो तो अच्छा लगे या न लगे, लेकिन डोक्टर की आज्ञानुसार अपनी पत्नी को ५ वर्ष तक पीहर भेजना ही पड़ेगा । उसमें जरा-सी भी छूट नहीं चलेगी । बताओ ! इस सांसारिक बात में डॉक्टर पर कितनी श्रद्धा होती है ? चाहे जितना कष्ट हो, फिर भी ऐसे सांसारिक कामों में उनके जानकार लोगों के कहे अनुसार करना ही पड़ता है, तो अब आत्मा के लिए भी विचार करो ।

अपना आत्मा (जीव) भी भव का रोगी है । उसे *भव-भ्रमण रोग नष्ट करने की चटपटी* (आतुरता) लगी है । ऐसा वीर्योल्लास जगा है कि मैं शीघ्रातिशीघ्र भवरोग का जड़मूल से नाश कर दूं । इसके लिए वीतराग-प्रभु के संतरूपी डोक्टर के शरण में गया । वीतरागी संतों ने वीतराग-वाणीरूपी दवा दी कि *'खाणी अणत्थाण हुकामभोगा'* - हे भव्य जीवों ! संसार के ये कामभोग अनर्थ की खान के समान हैं । अगर भव (-भ्रमण) रोग को समूल नष्ट करना हो तो भोगों के त्यागी और त्याग के रागी बनो । अतः जो भवरोग से ऊब गया है, क्या वह संसार में खड़ा रह सकता है ? नहीं, संसार त्याग करके उसका तो यथाशीघ्र संयमी बनने का मन होता है । वह दीक्षा लेने को तैयार होता है, उस समय उसके माता-पिता, पत्नी आदि चाहे जितना विलाप करें, रोयें, झूरें, किन्तु जिसे भवरोग दुःखदायी लगता है, वह सर्वज्ञ के वचन से कैसे पीछे हट सकता है ? नहीं करता । वह तो संसार छोड़कर ही छुटकारे का दम लेता है; वह किसी की परवाह नहीं करता । जैसे रोगी डोक्टर का वचन तथाऽस्तु कहकर मान लेता है, वैसे ही भवरोग समूल नष्ट करने की इच्छावाला धर्मिष्ठ जीव भी प्रभु की आज्ञा को तथाऽस्तु कहकर स्वीकारता है, और तदनुसार चलता है, मगर पीछे नहीं हटता ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

कई दिनों से आपको 'ज्ञाता धर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का अधिकार सुनाया जा रहा है । धर्मघोष नामक स्थविर भगवान् इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान में पधारे हैं । उनके *पदार्पण के समाचार वीतशोका नगरी में वायुवेग से पहुँच गए । महाबलराजा धर्मघोष* अनगार के दर्शनार्थ आए । धर्मघोष अनगार महाबलराजा प्रमुख विशाल परिषद को धर्मोपदेश देने लगे । बन्धुओं ! उपदेश तो अनेक लोग सुनते हैं, पर उसे अन्तर में तो विरले ही उतार पाते हैं । महाबलराजा ज्यों-ज्यों उपदेश सुनते हैं, त्यों-त्यों उनकी अन्तरात्मा में उल्लास बढ़ता जाता है । वह मन में विचार करते हैं - अहो भगवन् ! अनन्तकाल से इस संसार में भ्रमण कर रहा हूँ, इसका कारण मैंने अभी तक जो जानने योग्य था, उसे नहीं जाना, और जो नहीं जानने योग्य था, उसे जाना । जो करने योग्य था, उसे नहीं किया और जो न करने योग्य था, उसे किया । मेरी आत्मा अखण्ड ज्ञान, दर्शन, सुख और आनन्दमय, उसमें परमात्मा बनने की (अनन्त) शक्ति है, इसे नहीं जाना । मोह के उदय

एक दिन फकीर बने हुए बादशाह के मन में यह विचार स्फुरित हुआ कि मुझे फकीर बने हुए १२ वर्ष पूर्ण हो गए। मगर अभी तक मुझे अपने गृहस्थजीवन के वैभव-विलासों का स्मरण तक नहीं हुआ। अतः इस बात की विशेष जांच पड़ताल के लिए मैं अपने नगर में जाऊं, नगर के व्यक्तियों को देखूं, और यह भी देखूं कि वहाँ मुझे संसार का एक भी स्मरण नहीं होता न ? इस बात की भी प्रतीति करूँ कि वहाँ मुझे कोई पहचानता तो नहीं है न ? अतः वह फकीर अपने नगर में आए। वह प्रतिदिन भिक्षा लेने के लिए नगर में जाते हैं। भिक्षा लाकर नगर के बाहर एक खंडहर जैसे मकान में जाकर रहते हैं। शरीर सूखकर लकड़ी-सा हो गया था कि नगर का एक भी मनुष्य बादशाह को पहचान नहीं सकता था। एक दिन फकीर नगर में भिक्षा लेने के लिए जा रहे थे। तभी एक होशियार मनुष्य की दृष्टि फकीर पर पड़ी। उसने मन ही मन सोचा - 'हो न हो, यह अपने बादशाह हैं। इतना विशाल राज्य छोड़कर फकीरी ली है, तो अब मैं भी देखूं कि इनका त्याग अन्तर से है या दुनिया को दिखाने भर का है ?' इस प्रकार उसने मन में फ़कीर की परीक्षा करने की ठानी।

फकीरी में मस्त बने हुए बादशाह की की गई परीक्षा : इस कारण वह मनुष्य बादशाह के पीछे पीछे चलकर खण्डहर में गया। वहाँ जाकर फकीर के चरणों में पड़कर विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर बिनती की - "साहब ! आप मेरे घर भिक्षा लेने हेतु पधारना।" बहुत विनती करने पर तब फकीर ने कहा - "आज तो भिक्षा आ गई है, अब कल बात !" दूसरे दिन फकीर उस मनुष्य के साथ भिक्षा लेने के लिए वहाँ से चल पड़े। उस मनुष्य का घर अभी आधा माइल दूर था, तब उस मनुष्य ने एकदम गुस्से होकर फकीर से कहा - "क्या तू मेरे (से रोटी लेने के) लिए फकीर बना है ? हराम का खाने के लिए निकल पड़ा है ? हमारी चमड़ी टूट जाती है, तब कहीं रोटी मिलती है। चला जा यहाँ से, तुझे रोटी नहीं मिलेगी।" ऐसे कठोर शब्द कहकर उस मनुष्य ने फकीर का अपमान किया, फिर भी फकीर ने बहुत ही मधुरता से उत्तर दिया - "अच्छा बेटा ! अब मैं वापस चला जाता हूँ।" यों कहकर जरा भी खिन्न हुए बिना फकीर अपने स्थान पर आकर बैठ गए। दूसरे दिन वही मनुष्य फिर फकीर के पास आया और बोला - "कल मैंने आपका अविनय किया, उसके लिए मैं क्षमा मांगता हूँ।" फिर पुनः भिक्षा लेने हेतु पधारने की विनती करके कहा - "आप मेरे घर पधारेंगे, तभी मैं भोजन करूँगा।" इस पर फकीर ने कहा - "अच्छा बेटा ! मैं आऊँगा।" यों कहकर फकीर उस मनुष्य के साथ भिक्षा लेने हेतु निकले। जब उसका घर थोड़ी-सी दूर रह गया, तब कल की तरह आज भी उनका अपमान करके उन्हें निकाल दिया। फिर तीसरे दिन अविनय के लिए माफी मांगकर फकीर को भोजन के लिए आमंत्रण दे आया। फकीर पुनः भिक्षा लेने के लिए गये।

प्राप्त कर लिया । आकाश में देवदुन्दुभि वजने लगी । कूरगडुमुनि का केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए सैंकड़ो देव स्वर्ग में से नीचे उतरकर आए । यह देखकर वे तपस्वीमुनिगण स्तब्ध हो गए । अहो ! उग्र तप करनेवाले हम रह गए और प्रतिदिन घड़ेभर भात खानेवाले केवलज्ञान पा गए, कृत-कृत हो गए । कूरगडुमुनि रोज आहार करते थे, किन्तु आहार करने की अपेक्षा उनके मन में पश्चात्ताप प्रवल था । पश्चात्ताप की आग में उनके पाप जल गए, क्षमा तो थी ही ।

बन्धुओं ! कूरगडुमुनि की तरह आत्मा से पश्चात्ताप करके कषायों की मन्दता करना । कूरगडुमुनि ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया, वैसे हमें भी केवलज्ञान पाना है । कूरगडुमुनि को दूसरे मुनियों ने कैसे-कैसे अपमानजनक शब्द कहे थे, फिर भी वे अपने संयमभाव से जरा भी विचलित नहीं हुए । चाहे जैसी परिस्थिति और संयोग में समभाव को नहीं छोड़ना, इसीका नाम है – साधुत्व ।

महावलराजा ने धर्मघोषमुनि की वाणी सुनकर उनको संसार से विरक्ति हो गई है । ऐसा कठोर साधुजीवन अंगीकार करने के लिए उनकी आत्मा तत्पर हुई है । अब तो उनका मन घर जाने का भी नहीं होता, क्योंकि वैरागी के मन में एक-एक सैकंड का मूल्य है । श्रावक वर्षों तक साधना करके जिन कर्मो का क्षय करता है, उनसे अधिक कर्मों का क्षय सच्चा साधु क्षण-क्षण में कर लेता है । सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों का आयुष्य तैतीस सागरोपम का है, उनको तैतीस हजार वर्षो में आहार की इच्छा होती है, फिर भी उनका (इतने वर्षों तक निराहार रहना) तप नहीं कहलाता । कर्मों का अत्याधिक निर्जरा तो साधुजीवन में होती है । ऐसी सच्ची समझ (सम्यग्दृष्टि) पूर्वक महावलराजा ने धर्मघोष अनगार से कहा – "भगवन् ! मैं अपने (गृहस्थाश्रमपक्षीय पुत्र) बलभद्रकुमार को राजगद्दी सौंपकर, मेरे छह मित्रों को पूछकर आपके पास आर्हती दीक्षा लेना चाहता हूँ ।" यह सुनकर धर्मघोषमुनि ने कहा – "राजन् ! आपको जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु सत्कार्य में विलम्ब मत करो ।" अब महावलराजा अपने महल में जायेंगे । अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर अपने मित्रों से दीक्षा के सम्बन्ध में बात करेंगे, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

श्रीकृष्णजी द्वारा रुक्मिणी को दिया गया पटरानी का पद : सत्यभामा कृष्ण वासुदेव की प्रिय पटरानी थी तथा सती (पतिव्रता) थी, उसका रूप अनुपम था । रूप के साथ ही उसे अपने रूप का गर्व भी था । जबकि रुक्मिणी में सत्यभामा की अपेक्षा विशिष्ट रूप था । रूप के साथ ही उसमें विनय, नम्रता, मृदुता, सरलता आदि गुणों की भी विशेषता थी । इसलिए कृष्ण ने उसे मुख्य पटरानी का पद दिया । रुक्मिणी ने कहा – "नाथ ! मुझे यह पद नहीं चाहिए । आप मेरी बड़ी बहन को मुख्य पटरानी का पद दें ।"

क्रोध नहीं करना है। यों वह फकीर कसौटी आने पर अपने निर्णय में दृढ़ रहे, तो उनका प्रभाव दूसरे पर भी पड़ा।

जैनमुनियों का त्याग तो बहुत ही कठिन है। वीतरागप्रभु के कानून भी कठोर हैं। उनका यथार्थ रूप से पालन करनेवाला साधु जो कुछ कहता है, उसका दूसरों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। धर्मघोष मुनिवर इन्द्रकुम्भ नामक उद्यान में पधारे हैं। उनके दर्शन, वन्दन और वाणी का लाभ लेने हेतु महाबलराजा और उनके छह मित्र तथा वीतशोका नगरी के प्रजाजन आए हैं। जिस राज्य के राजा धर्मिष्ठ होता है, उसकी प्रजा भी धर्मिष्ठ होती है। धर्मसभा में सभी एकाग्रचित्त होकर धर्मघोष अनगार का प्रवचन सुन रहे हैं। उनकी अमृतवाणी किसके हृदय में आरपार उतरेगी, यह यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

आज से मैं प्रद्युम्नकुमार का चरित्र शुरू कर रही हूँ। प्रद्युम्नकुमार मोक्षगामी जीव हैं। उनके जीवन से बहुत कुछ जानने की तथा आचरण करने की प्रेरणा मिलेगी। आप सब शान्ति से सुनिए।

प्रद्युम्नकुमार कोई सामान्य मानव नहीं थे। वह त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव का लाडला पुत्र था। उसका चरित्र जानने योग्य है। उसमें आगे बहुत ही रसप्रद बातें आएँगी। उसका चरित्र कहा जाए, उसके विषय में सर्वप्रथम तो यह जानना आवश्यक है कि उसका जन्म किस नगरी में हुआ था? उसके माता-पिता कौन थे?

सोरठ जनपद में नगरी द्वारिका रे, द्वादशयोजन लम्बी विस्तार रे,
सुवर्ण का कोट, रतनका कांगुरा रे, सुरपुर की औपम सूत्र मंझार रे।
श्रोता तुम सुन जो, प्रद्युम्नकुमार का चरित्र सुहावना (२)॥

सोरठ देश में द्वारिका नाम की नगरी थी। वह द्वारिका नगरी १२ योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। इस समय जो द्वारिका नगरी है, उसकी यह बात नहीं है। किन्तु जब अरिष्टनेमिनाथ भगवान् इस भूमण्डल पर विचरण कर रहे थे, और त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी बसाई थी। उस समय इस द्वारिका नगरी की रौनक ही अलग थी। त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव के ऐसे प्रबल पुण्य थे कि कुबेर आदि देवों ने एक रात्रि में द्वारिका नगरी का निर्माण किया था। उस द्वारिका नगरी के सोने के कोट और रत्न के कंगुरे थे। ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्रपुरी हो। पृथ्वी पर मानो अमरावती (स्वर्गपुरी) उतर आई हो। ऐसी वह द्वारिका नगरी इन्द्रपुरी के समान सुशोभित हो रही थी। वहाँ न्याय-नीति सम्पन्न श्रीकृष्ण वासुदेव की आन (आज्ञा) प्रवृत्त थी। सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा उनके आज्ञानुवर्ती थे। श्रीकृष्ण वासुदेव के ऐसे प्रबल पुण्य थे कि तीन-तीन खण्ड में उनका अखण्ड प्रभाव पड़ता था। उनकी आज्ञा का अनादर करने में कोई भी समर्थ नहीं था।

असत्य बन गया सत्य : पति की बात सुनकर सत्यभामा विचार करने लगी - 'अहो ! मैंने तो ईर्ष्यावश माया करके झूठी बात कही, किन्तु पतिदेव ने तो मेरी बात सच्ची मानकर मुझे कहा - तेरे एक प्रभावशाली पुत्र होगा । अतः अब असत्य कथन भी सत्य हो जाएगा । क्योंकि इनका वचन कभी असत्य नहीं होता, मुझे इसकी पूर्ण प्रतीति है ।' अतएव सत्यभामा अत्यन्त खुश हो गई । कारण यह है कि महिलाओं को पुत्रजन्म की बात बहुत अच्छी लगती है । फिर यहाँ तो खोटी बात भी खरी होने जा रही थी, इसलिए आनन्द का क्या पूछना ? सत्यभामा को कृष्णजी के इस वचन पर श्रद्धा थी । कुदरत का योग ऐसा बना कि वह गर्भवती हो गई । अब तो रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों गर्भवती हो गई । अतः सत्यभामा के आनन्द का पार नहीं है । परन्तु रुक्मिणी को नीची दिखाने के लिए कौन-सा रास्ता लूँ कि वह (रुक्मिणी) रो-रोकर हाथ मलती रह जाए और श्रीकृष्णजी उसके सामने भी न देखे । ऐसे कुविचार कर रही है । बहुत सोचने के बाद उसे एक उपाय सूझा । वह क्या ?

आई सत्यभामा रुक्मिणी पास में रे, बैठे हरि हलधर तिहाँ ठोड़ रे ।
बोली बाई सुण मोरी वारता, लेवां (करां) आपां आपस में होड़ रे ॥... श्रोता...

रुक्मिणी के साथ सत्यभामा ने किया करार : एक दिन सत्यभामा रुक्मिणी के महल में आई । रुक्मिणी तो अत्यन्त सरल थी । सत्यभामा को अपने महल में आती हुई देखकर प्रसन्न हुई । जिसके मन में ईर्ष्या या माया-कपट नहीं होता, उसे तो सभी अच्छे दिखाई देते हैं । रुक्मिणी ने सत्यभामा का खूब सत्कार किया । दोनों बहनें प्रेम से साथ में बैठीं । कृष्णजी और बलरामजी भी वहाँ बैठे थे । सत्यभामा ने बात छेड़ी - "देखो बहन ! हम दोनों गर्भवती हैं । अतः मुझे एक बात सूझी है कि अपने दोनों एक होड़ (शर्त) लगाएँ ।" रुक्मिणी ने पूछा - "किस बात की होड़ ?" तब सत्यभामा ने कहा - "बहन ! अगर प्रभुकृपा से पहले तुम्हारे पुत्र हो जाए और उसका विवाह पहले हो, तो विवाह के प्रसंग पर मैं अपने मस्तक के बाल उतारकर तुझे दे दूंगी, इतना ही नहीं, तुम्हें वे बाल पैर के नीचे दबाकर कुचलना है । और यदि मेरा पुण्य प्रबल हो, और मेरे (तुम से) पहले पुत्र हो जाए, और उसका विवाह पहले हो जाए, तो तुम अपने मस्तक के बाल उताकर मुझे दे देना, और उन बालों को मैं अपने पैर के नीचे दबाकर कुचलूंगी ।" यह सुनकर रुक्मिणी ने कहा - "अच्छा, मेरी बड़ी बहन, जिसमें तुम राजी, उसमें मैं राजी हूँ ।" यों कहकर सत्यभामा की शर्त का रुक्मिणी ने स्वीकार किया । सत्यभामा अत्यन्त खुश हो गई । कृष्ण और बलराम भी वहीं बैठे थे । उन्हें सत्यभामा ने कहा - "देखिए, हम दोनों बहनों ने ऐसी शर्त की है । इसके आप दोनों साक्षी हैं ।" तब श्रीकृष्णजी और बलरामजी ने कहा - "बहुत अच्छा ! हमें तुम दोनों का विवाद देखने में मजा आएगा । हम दोनों तुम्हारी इस शर्त के साक्षी हैं ।"

बन्धुओं ! ईर्ष्या क्या नहीं कराती ? दोनों भाई सत्यभामा की ऐसी शर्त पर हंसने लगे । स्त्री का स्वभाव कैसा ईर्ष्यालु होता है ? अभी तो उन दोनों के गर्भ को दो महीने

कोई भी रानियाँ उन्हें याद नहीं आती थीं । यही कारण था कि श्रीकृष्ण (रुक्मिणी के सिवाय) दूसरी रानियों के महलों में कम जाते थे, इस कारण सत्यभामा को रुक्मिणी के प्रति वहुत ही ईर्ष्या रहा करती थी ।

रुक्मिणी को सुखी देखकर सत्यभामा के दिल में लगी ईर्ष्या की आग : श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के प्रति अत्यन्त प्रेम बढ़ गया । अतएव रुक्मिणी सुखसागर में मग्न रहने लगीं । रुक्मिणी को ज्यों-ज्यों सुख-सागर में नहाती देखती, त्यों-त्यों सत्यभामा दुःख के दावानल में जलती रहती थीं । 'हाय ! यह मेरे से छोटी होने पर भी श्रीकृष्ण उसे मानते हैं, उसे अधिक पूछते हैं । मैं बड़ी हूँ, फिर भी श्रीकृष्ण मेरे सामने तक भी नहीं देखते । अतः रुक्मिणी किसी मुसीवत में आ पड़े तो मैं श्रीकृष्ण की प्रिय बन सकती हूँ ।' ऐसा सोचकर सत्यभामा रुक्मिणी का बुरा चिन्तन करने लगी । उसे नीचा दिखाने के लिए कोई न कोई उपाय ढूंढने लगी । इसी वीच क्या वनाव वनता है ?

रानी रुक्मिणी ने देखा सूर्य का स्वप्न -

रानी रुक्मिणी सूती हरि-सेज में, देखा सपने में दिव्य दिनन्द रे,
सुपना संभलाया पति को पद्मणी रे, हर्षोचित फरमावे गोविन्द रे ॥ ...श्रोता...

एक दिन रात्रि में रुक्मिणी सुखशय्या में सो रही थी । उस समय अर्धनिद्रित और अर्धजागृत अवस्था में उसने स्वप्न देखा । स्वप्न में उसने एक तेजस्वी सूर्य देखा । उस समय एक महर्धिक देव महाशुक्र देवलोक से च्यवकर रुक्मिणी की कुक्षि में अवतरित हुआ । स्वप्न देखकर रुक्मिणी जागृत हुई और धर्माराधना करने लगी । प्रभात होते ही कृष्णवासुदेव के पास जाकर उसने विनयपूर्वक कहा - "स्वामीनाथ ! आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने एक तेजस्वी सूर्य को स्वप्न में देखा ।" यह सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव को वहुत प्रसन्नता हुई । उन्होंने स्वप्नशास्त्र तथा बुद्धि से विचार कर कहा - "देवी ! तुम्हारे स्वप्न की बात सुनी । उस पर से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम सूर्य के समान तेजस्वी, अत्यन्त पराक्रमी और मोक्षगामी एक पुत्र की माता बनोगी । और वह पुत्र छप्पन कोटि यादवों में मुकुट समान (सर्वोपरि) होगा । वह अपने समस्त यादवकुल में कलश के समान होगा । सचमुच ऐसे पवित्र पुत्र की माँ बनकर तू भाग्यशालिनी होगी ।" पति के मुख से इस प्रकार स्वप्नफल की वात सुनकर रानी रुक्मिणी अत्यन्त आनन्दित हुई । श्रीकृष्ण वासुदेव के वचन पर उसे अत्यन्त श्रद्धा थी । इधर रुक्मिणी के आनन्द का कोई पार नहीं, उधर सत्यभामा रुक्मिणी का सुख देखकर ईर्ष्या की आग में जल जाती है । अब रुक्मिणी को ऐसा सुस्वप्न आया, यह वात सत्यभामा जब जानेगी, तव उसके मन में क्या होगा ?, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - २४

श्रवण सुदी २, बुधवार | ता. २८-७-७६

आध्यात्मिक एवं भौतिक ज्ञान में अन्तर

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, शास्त्रकार भगवान् ने परम पुरुषार्थ करके घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान रूपी दीपक प्रकट किया । जगत् में ज्ञान तो बहुत अधिक है । ज्ञान-प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ भी बहुत होता है, परन्तु वह भौतिक ज्ञान है । आध्यात्मिक ज्ञान के समक्ष भौतिक ज्ञान का कुछ भी महत्त्व नहीं है, क्योंकि भौतिक ज्ञान से भौतिक सुख की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु आत्मिक सुख उससे नहीं मिलता; न ही उससे आत्मा कर्मों से मुक्त हो सकता है । जबकि आत्मा को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है, तब ज्ञान सच्चा कहलाता है ।

बन्धुओं ! भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर है । भौतिक ज्ञान भले ही तुम्हें आकाश में उड़ा सकता है, पानी पर चला सकता है, सुख के साधनों की प्राप्ति करा सकता है एवं इस लोक में प्रशंसा का पात्र बना दे, किन्तु वह ज्ञान चिरस्थायी नहीं है । इस शरीर के छूटते ही वह ज्ञान विशेषतः चला जाता है । वह ज्ञान परलोक में सहायक नहीं होता । जबकि आध्यात्मिक ज्ञान अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करता है । कषायों से मुक्त कराता है । पापों को जड़मूल से उखेड़ डालता है और आत्मा को चिरस्थायी आनन्द और सुखशान्ति प्रदान करता है । यह शरीर तो यहीं रह जाता है, किन्तु आत्मा यदि सम्यक्त्व का वमन न करे तो यह ज्ञान आत्मा के साथ ही साथ रहता है । जन्म-जन्म (यानी ६६ सागर जाझेरा) तक साथ रहकर संसाररूपी विषय अटवी में से जीव का पार कराकर अन्तिम ध्येय - मोक्ष को प्राप्त कराता है । इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान कल्याणकारी है । इसी कारण ज्ञानीपुरुष कहते हैं -

"न ज्ञानतुल्यः किल कल्पवृक्षो, न ज्ञानतुल्या किल कामधेनुः ।
न ज्ञानतुल्यः किल कामकुम्भो, ज्ञानेन चिन्तामणि रत्नतुल्यः ।।"

ज्ञान कल्पवृक्ष से भी अधिक फलप्रदायक है, कामधेनु से भी अधिक अमृतप्रदाता है, कामकुम्भ भी आत्मिक ज्ञान की तुलना नहीं कर सकता । मनवांछित फल देनेवाला चिन्तामणिरत्न आत्मिक ज्ञान के आगे किसी गणना में नहीं है । अरे ! अधिक तो क्या कहूँ ! हजारों सूर्य और हजारों चन्द्रमा नेत्ररहित मनुष्य के लिए निरर्थक हैं । परन्तु उस अन्धे मनुष्य को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाय तो उसका अन्तर दिव्य प्रकाश से जगमगा है । 'आवश्यक निर्युक्ति' में भी कहा है -

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी ॥ - उत्तरा. ३६/२६४

जो जिनवचन अर्थात् आगमों पर अनुरक्त-श्रद्धा विश्वास रखनेवाले हैं, और जो जिनवचन (आगम) के अनुसार भावपूर्वक क्रियानुष्ठान करते हैं, वे मिथ्यात्व वादिमल से और रागादि क्लेशों से रहित होने से नवीन कर्मों का बन्धन नहीं करते, सत्रागत कर्मों की निर्जरा करके अल्प संसारी होकर शीघ्र ही मोक्ष चले जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो जिनवचन पर अनुरक्त हो जाता है, एकतार हो जाता है, जैसे दूध में शक्कर मिलकर एकमेक हो जाती है, वैसे ही जिनवचन में अनुरक्त बने हुए जीव के कर्म नष्ट हुए विना नहीं रहते। अतः जिनवचन पर श्रद्धा करो। ज्ञानीपुरुष कहते हैं -

"जं सक्कं तं कीरइ, जं न सक्कइ, तयम्मि सद्दहणा।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं ॥"

जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिए और जिसका आचरण न हो न सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिए। श्रद्धा करता हुआ (श्रद्धावान्) जीव जन्म, जरा और मरण से रहित होकर अजर-अमर स्थान (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है। जिनवचन पर श्रद्धा-निष्ठा रखने से ज्ञानादि का आचरण करके जीव मुक्ति का अधिकारी बनता है।

बन्धुओं! अधिक तो क्या कहूँ! भगवान् पार्श्वनाथ के जीव ने लक्कड़ में जलते हुए नाग-नागिन युगल को एकमात्र नवकारमंत्र सुनाया, उसके प्रभाव से वे दोनों जीव देवलोक में गए। नवकारमंत्र में कितनी शक्ति है, उसका कितना प्रभाव है? इतनी ताकत है कि नवकारमंत्र के मीठे मधुर शब्द देवगति में पहुँचा देते हैं। नवकारमंत्र के प्रभाव से जलते हुए नागयुगल मरकर देवलोक में जाते हैं, और धरणेन्द्र-पद्मावती बन गए। नवकारमंत्र वीतरागता का मंत्र है। इसमें अरिहंत और सिद्ध ये दो पूर्ण वीतरागदेव हैं, तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये तीन वीतरागता के पथ पर उत्तरोत्तर आरोहण करनेवाले गुरु (पद) हैं। इस मंत्र में अन्तिम पद *'नमो लोएसव्व साहूणं'* है। इस पद में ढाई द्वीपगत लोक में जितने साधु-साध्वी हैं, उन सबको हमारा नमस्कार हो जाता है।

साधु का अर्थ क्या है? जो मोक्ष को साधे, वह साधु है। अर्थात् जो स्वयं मोक्ष की साधना करे और दूसरों को मोक्षमार्ग (ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप) की साधना करावे वह साधु है। परन्तु तुम्हारी दृष्टि में साधु कौन? जो तुम्हें धन दिला दे, पैसा कमाने के लिए व्यापार की सिद्धि बता दे या कर दे, अथवा जो संसार-सुख का मार्ग बताए, वह साधु है। क्यों प्रायः वही साधु है न? ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "वैसा व्यक्ति साधु नहीं है। जो केवल मोक्ष की साधना करे, करावे तथा करते हुए की अनुमोदना करे, वही वास्तव में साधु है।"

आज बहुत से बुद्धिजीवी लोग ऐसा तर्क करते हैं कि मोक्ष को साधे, वह साधु, इसमें साधक ने अपने ही स्वार्थ की सिद्धि की न? उसमें हमारा क्या (भला) हुआ?

में तो प्रतिसमय देखरेख रखनी पड़ती है न ? चार ज्ञान और चौदह पूर्व के ज्ञाता भगवान् के पट्टशिष्य गौतम गणधर जैसे पवित्र पुरुष को भगवान् ने क्या कहा था ? *"समयंगोयम ! मा पमाणए* - "हे गौतम ! समयमात्र भी प्रमाद मत करो ।"

कर्म के साथ युद्ध के लिए निकले महाबलवान् योद्धा को भी भगवान् महावीर ने जहाँ ऐसी सूचना की, वहाँ प्रमाद के बिछौने में सोये हुए की क्या बात करनी ? यह सूत्र भगवान् ने सिर्फ गौतमस्वामी को ही कहा है, ऐसा नहीं है, किन्तु हम सब पर यह लागू पड़ता है । जैसे एक घर में चार बहुएँ हों, वहाँ सासू बड़ी बहू को उद्देश करके चेताती हो तो दूसरी तीन बहुएँ भी चतुर हो तो वे समझ जाती हैं कि हमारी जेठानी तीनों इतनी चतुर, गंभीर और होशियार हैं, फिर भी सासूजी इन्हें चेताती हैं तो हमें भी समझ लेना चाहिए । इसी प्रकार भगवान् ने १४ हजार साधुवर्ग के बीच में गौतमस्वामी को चेतावनी दी है, तब छोटे साधु-साध्वी भी समझ जाते हैं । जातिवान् घोड़े को केवल चाबुक ही दिखाना बस होता है, उसे मारने की जरूरत नहीं होती । कहावत है - तेजी को केवल एक चेतावनी ही बस है,' चाबुक तो गधे के लिए होते हैं । तुम सब तो मेरे वीतराग प्रभु के तेजस्वी, जातिवान् श्रावक हो न ? मुझे तुम्हें बारबार कहने की जरूरत है क्या ? एक बार कहूँ तब तुम्हें समझ जाना है ! इस मानवजीवन का एक अमूल्य क्षण प्रमाद में व्यतीत करते हैं तो हम कितनी अमूल्य अवसर खो देते हैं ? इतना सूत्र भलीभांति समझ में आ जाए तो आत्मा जागृत हो जाय । कहावत है -

'जागृति जितना जीवन, और प्रमाद जितना पतन ।
सावधानी इतनी सलामती और गफलत इतनी गलती ॥'

आज तो आप गफलत की गाड़ी में बैठे हुए हैं । अगर जागृत नहीं होंगे, तो आपका क्या होगा ? जिसका उपादान शुद्ध होता है, अन्तर में बैठा हुआ चेतनदेव जागृत होता है, वह एक चेतावनी में चकोर बनकर चल देता है ।

एक बार सोमचन्द्र नामक राजा की रानी राजा के मस्तक में (बालों में) कंधी कर रही थी । उस समय वह जोर से चिल्लाकर बोल उठी - "महाराजा ! दूत आ गया है ।" यह सुनकर राजा चौंककर सोचने लगे - 'अहो ! यह तो राजमहल है, उसमें भी यह मेरा अन्तःपुर है । यहाँ तो मेरा भी कोई मनुष्य बिना आज्ञा के प्रवेश नहीं कर सकता । तब फिर दूसरे राज्य का राजदूत मेरी आज्ञा के बिना, किसी प्रकार की सूचना दिये बिना यदि मेरे अन्तःपुर में प्रविष्ट हो जाय तो मेरी राज्यसत्ता ही खत्म हो जाए ।' राजा ने चारों ओर दृष्टिपात किया तो कोई दूत नजर नहीं आया । अतः राजा ने कहा - "रानीजी ! क्या तुम मेरी मजाक कर रही हो ?" रानी ने कहा - "नहीं, स्वामीनाथ ! क्या आपकी मजाक मेरे से की जा सकती है ?" इस पर राजा ने कहा - "तो फिर कोई दूत मुझे क्यों नहीं दिखाई देता ?" रानी बोली - "आपको नहीं दिखाई देता, पर मैं देख रही हूँ ।" यों कहकर उनके (राजा के) मस्तक में से एक सफेद केश तोड़कर बताते हुए रानी ने कहा - "देखिए,

यह शरीर नौका है और जीव (आत्मा) इस नौका को चलानेवाला नाविक है । संसार को सागर कहा है, जिसे पार करके आगे जानेवाले महर्षिगण हैं । नौका (शरीररूपी) सागर को तरने (पार करने) का अमोघ साधन है । सामनेवाले किनारे नहीं पहुँचे, वहाँ तक इसकी महत्ता है, इसका सहारा लेना आवश्यक है । तुम जिस समुद्र को देखते हो, वह तो द्रव्य-समुद्र है, संसार भाव-समुद्र है । द्रव्य-समुद्र कितना लम्बा, कितना चौड़ा और कितना गहरा है ? कदाचित- इसका माप निकाला जा सकता है; किन्तु इस भाव-समुद्र का कोई माप नहीं निकाला जा सकता । वह अमाप है, अपरिमेय है । नौका भी समुद्र पर रहे तो तिर सकती है, परन्तु नौका में अगर समुद्र (आस्तव जल) प्रविष्ट हो जाय तो नौका तिरेगी या डूब ही जाएगी ? नौका सागर पर रहे तो वह तिर सकती है, किन्तु यदि सागर नौका में प्रविष्ट हो जाए तो नौका डूब जाएगी ।

अब भलीभांति समझ लो, इस मानव-देहरूपी नौका द्वारा संसारसागर के सामनेवाले किनारे तक पहुँचा जा सकता है । इसी कारण से मानव-देह का महत्त्व है । समझ लो, अच्छी तरह-संसार में देह रहे तो कोई हर्ज नहीं है, किन्तु देह में संसार नहीं रहना चाहिए। मानव-देह में मोक्ष प्राप्त करने की शक्ति है, इसी कारण इसका महत्त्व है । मुक्ति प्राप्त हो जाए, फिर यह शरीर भाररूप है, त्याज्य है । मुक्ति नहीं मिले, वहाँ तक इसका आभार मानना है । देवानुप्रियों ! तुम्हें संसारसागर को तिरने का अमूल्य अवसर और साधन मिला है । ध्यान रखना । धर्मस्थान में धर्मगुरुओं के पास आओ तब वासना और विकार (विषय-वासना और कषायादि विकार) छोड़कर आना । अगर तुम्हारे जीवन में विषय-विकारों का पानी प्रविष्ट हो गया तो समझ लो नौका डूब जाएगी । अज्ञानी जीव धर्मस्थानक में भी भौतिक सुख की भीख मांगता है । उन्हें ध्यान ही नहीं है कि हम क्या मांग रहे हैं ? वास्तव में देवाधिदेवों और धर्मगुरुओं से क्या मांगना है ? कहा भी है -

"कृपालु देव ! मारी वासना निवारजो, भूला पड़ेलाने पंथ बतावजो ।"

भगवन् ! अनन्तकाल से भव-भव में भटककर मैं हैरान हो गया हूँ । अब मैं तेरे मार्ग पर चढ़ा हूँ । प्रभो ! अब मेरी दुष्ट वासनाओं को दूर करना । भव-भव में मार्ग भूले हुए मुझको यथार्थ मार्ग पर चढ़ाना और (आपकी कृपा से) मेरे कषाय मंद हों, बस इतना ही मुझे चाहिए । अब मुझे दूसरी कोई इच्छा या आकांक्षा नहीं है । जिसे भवरोग नष्ट करने की लगन लगी है, वह चाहे जितनी कठिन साधना हो, तो भी उसका पालन करने में कदापि पीछे नहीं हटता । तुममें अभी भवरोग को मिटाने की जागृति नहीं आई । किन्तु सांसारिक काम के लिए तुम कितना त्याग करते हो ? गहराई से सोचो । एक दृष्टान्त द्वारा इसे समझाती हूँ -

एक जवान लड़के को धातुक्षय का रोग लग गया । डोक्टर को बताया तो डोक्टर ने उसके पिता से कहा - "अगर तुम्हारे पुत्र के रोग [illegible] से मिटाना हो तो इसकी पत्नी को पाँच वर्ष तक उसके पीहर [illegible] ।" यह [illegible] की पत्नी रोई, माँ-बाप रोयें । उनके मन में विचार आए [illegible] महीने हुए हैं; फिर इसे

के होते हुए भी तुझे अपने सुख को तिलांजलि देनी है ? परन्तु धर्म को समझनेवाली महिला पति का कैसे हित हो, यही चाहती है। उद्धत युवक की तरह अगर रानी का जीवन होता तो राजा को वह दूत आया, ऐसा न कहती। परन्तु रानी समझती थी कि धर्मरूपी जहाज अनायास ही मिला है, फिर भी डूब जाए तो जीवन धूल-समान वन जाता है। डूबते हुए को देखनेवाले का जीवन भी धूल के समान है। डूबते हुए मनुष्य को देखते हुए भी अगर किनारे खड़ा हुआ मानव उसे बचाए नहीं, तो मानवता नहीं कहलाती। वस्तुतः जो डूब गया, वह तो उसकी मौत आई और मर गया, किन्तु डूबते हुए को देखनेवाला (तैराक) भी लोगों के द्वारा दिये गये उपालम्भ से बिना मौत ही मर जाता है। यह उसकी **Moral death** (नैतिक मृत्यु) है। इसी प्रकार जो मनुष्य ऐसे उत्तम धर्म को पाकर भी धर्माचरण नहीं करता, विषय-कषायों को नहीं छोड़ता, वह तो संसारसागर में डूबनेवाला है। किन्तु किनारे खड़े हुए के समान धर्माचरण करनेवाला मानव, जो (कोई) संसार में डूबने के मार्ग पर चढ़ गया हो, उसे सावधान करके सही मार्ग पर नहीं चढाये तो कहना होगा, वह अभी तक धर्म के स्वरूप को यथार्थ रूप से समझा नहीं है। इस दृष्टि से देखें तो रानी स्वयं धर्म को भलीभांति समझी हुई है। इसलिए अपने पति को डूबने से बचाने के लिए कहती है - 'दूत आया है।' वर्तमान युग की कोई नारी अपने पति के मस्तक पर सफेद बाल देखकर चेताती है क्या ? इस समय नहीं चेताऊँगी तो परभव में इनका (पति का)क्या होगा ? क्या ऐसा शुभ विचार किसी (महिला) को आता है ? कदाचित् कोई पत्नी अपने पति को चेतावे कि स्वामीनाथ ! अब चेतो। चेतने की नोटिस आ गई है ! तो [illegible] ऐसा भी [illegible], अपितु तुम क्यों नहीं चेतते ? क्या यह [illegible] ? [illegible] तुम्हें समझाती हूँ।

वे मुनि त्रैमासिक, द्विमासिक और मासिक उपवासवाले तपस्वियों के पास गए । सभी तपस्वी मुनिवर कूरगडुमुनि के प्रति घृणा करने लगे – "अरे खाउधरा ! तुम्हें आज महान् पर्व के दिन भी खाते हुए शर्म नहीं आती ?" यों कहकर सभी थू-थू करने लगे, फिर भी कूरगडुमुनि के मन में जरा-सा भी ऐसा विचार नहीं आया कि ये सब तपश्चर्या करके मेरे पर इतना क्रोध करते हैं, इनका इस प्रकार के वर्ताव से कैसे कल्याण होना है ? मेरे खाने के भात में इन्होंने थूक दिया, यह इनकी कैसी रीति है ? ऐसा विचार बिलकुल नहीं आया । बल्कि मन में ऐसा विचार आया कि 'अहो ! मैं तो सुस्त बैल की अपेक्षा भी खराब हूँ । सुस्त बैल को एक चाबुक मारने पर थोड़ी देर तो ठीक चलता है, परन्तु मेरे बुजुर्ग (बड़े) संत मुझे तप करने के लिए बार-बार चेतावनी देते हैं, फिर भी मैं ऐसा ढीठ हूँ कि ऐसे पवित्र दिन में भी उपवास नहीं करता, नहीं कर पाता । यह मेरी भारी भूल है । दूसरे, मैंने उन्हें थूकने के लिए भाजन सामने लाकर नहीं रखा, तभी तो उन्हें मेरे पात्र में थूकना पड़ा न ?' यों उन्हें अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ ।

अन्त में भात का पात्र लेकर कूरगडुमुनि आहार करने हेतु बैठते हैं । तभी एक मुनि उनकी बाँह पकड़कर कहते हैं – "अरे निर्लज्ज ! तेरे में कुछ शर्म है या नहीं ?" इस समय भी कूरगडुमुनि ने विचार किया कि 'मेरे बुजुर्ग मुनियों की मेरे पर कितनी कृपा है ? मुझे इतना समझाया, फिर भी मैं नहीं समझा, तब मेरा हाथ पकड़कर मुझे तप में प्रवृत्त करने के लिए मेहनत करते हैं ! किन्तु मेरी आत्मा कितनी बेशर्म है कि मेरे महान बुजुर्ग साधु चार, तीन, दो और एक महीने के उपवास करते हैं, मैं उन महान तपस्वियों की तपश्चर्या देखकर भी तप में मैं विर्योल्लासवाला नहीं होता । वास्तव में, जो इशारे से समझ जाता है, वह मानव है, जो बड़ी लाठी से समझता है, वह ढोर है, और जो बड़ी लाठी से भी नहीं समझता, वह ढोर से भी कठोर दिल का है । तप के बिना कर्मों का क्षय नहीं हो सकता । फिर भी मैं (बाह्य) तप नहीं कर सकता । यह मेरी सबसे बड़ी खामी है । मैं पशु से भी गया बीता हूँ । मैं नहीं समझा इसी कारण इन तपस्वीराज को कष्ट करके यहाँ आना पड़ा न ? मैंने उनकी कितनी आशातना कर दी ? मैंने पूर्वजन्म में कैसे कर्म किए होंगे कि मैं तप नहीं कर सकता ।' यों भात खाते-खाते वह मुनि पश्चात्ताप (आत्मनिन्दा) करने लगे । उनकी ऐसी क्षमा और पश्चात्तापयुक्त भावना देखकर एक देव प्रसन्न हुआ और पास में आकर उनके चरणों में पड़ा । यह देख वे तपस्वीमुनि कहने लगे – "देव ! यह तो खाउधरा है, तपस्वी मुनिवर तो यहाँ विराज रहे हैं ।" वे तपस्वी यों मान रहे थे कि हमारी ऐसी उग्र तपस्या देखकर देव हम पर प्रसन्न हुआ है । इस कारण वे तपस्वीमुनियों कहने लगे । किन्तु देव ने उनसे कहा – "आपने चाहे कितनी तपश्चर्या की हो, परन्तु अभी तक आपकी आत्मा इतनी उज्ज्वल नहीं हुई । आहार करते-करते भी इन मुनिवर को कितना पश्चात्ताप होता है ?" यों कहकर देव कूरगडु के चरण में पड़ता है। इधर कूरगडुमुनि पश्चात्ताप करते-करते क्षपकश्रेणी पर चढ़कर बारहवें गुणस्थान में आरूढ हो गए । वहाँ चार घातिकर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में जाकर उन्होंने केवलज्ञान

देवानुप्रियों ! विचार करो, ये मित्र कैसे थे और तुम्हारे मित्र कैसे-कैसे हैं ? इन छह मित्रों ने निर्णय किया था कि संसार का या धर्म का कोई भी कार्य होगा, प्रत्येक कार्य हम साथ रहकर करेंगे । तुमलोग संसार का कार्य तो साथ रहकर करते हो, परन्तु धर्म की बात आती है, वहाँ खिसक जाते हो । परन्तु यहाँ तो निर्णय अर्थात् निर्णय ! संसार में रहकर धर्म का काम करना हो तो फिर भी करने को तैयार हो जाते हो, किन्तु दीक्षा लेने को कोई तैयार होते हो ? यहाँ तो महाबलराजा ने जब कहा कि 'मैं दीक्षा लेनेवाला हूँ,' तब पहले ही धड़ाके में उन्होंने कह दिया - 'मित्र ! यदि तुम्हें संसार दावानल-सा लगा है तो हम क्यों इस दावानल में रहेंगे ? तुम्हारा जो मार्ग होगा, वही हमारा मार्ग होगा । हम तो परस्पर वचनबद्ध हैं । इस संसार में से हमें भी तुम्हारी तरह सार ग्रहण करना है । हमें भी इस दावानल में नहीं रहना है ।' जैसा कि 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ.-१९ गा.- २२/२३) में कहा है -

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सार - भंडाणि निणेइ, असारं अवउज्जइ ।।
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाणं तारइस्सामि, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ।।

मृगापुत्र कहता है - जैसे आग से घर प्रज्वलित होने पर घर का मालिक उसमें सार-सार पदार्थों को लेकर बाहर निकाल लेता है और असार पदार्थों को छोड़ देता है । इसी प्रकार बुढ़ापा और जन्म-मरण आदि से प्रज्वलित हो रहे इस संसार में से सर्वस्व सारभूत आत्मा को आप सभी (माता-पिता आदि) की अनुमति मिलने पर तारूँगा - संसारसागर से पार करूँगा ।''

घर में आग लगती है, तब घर का मालिक विचार करता है कि मुझे रेडियो, टी.वी., पलंग, गद्दे और तकिये बिना काम नहीं चलेगा, अतः चलो, इन्हें ले लूं । अगर वह इन वस्तुओं को लेकर बाहर आता है, तो तुम उसे क्या कहोगे ? ओ बुद्धू, ये वस्तुएँ लाया, इनकी अपेक्षा तो मूल्यवान वस्तुएँ लाया होता तो; उनसे कितने ही रेडियो, टी.वी. आदि वस्तुएँ (खरीदकर) ला सकता था । इस बात का तुझे कहाँ भान है ? आज तुम दूसरे को यों बुद्धू कह देते हो, पर यह सोचो कि हम स्वयं कितने अज्ञानी और भोंदू हैं; इसकी खबर नहीं है ? भगवान् कहते हैं कि - ''यह संसार जन्म, जरा, मरण और रोगरूपी दावावल से प्रज्वलित हो रहा है, उसमें से अगर तुम्हें बचना हो तो संयमरूपी सार पदार्थ को ले लो, तो पुनः पुनः संसार के जन्म-मरणादिरूप दावानल में जलना नहीं पड़ेगा ।''

महाबलराजा के छहों मित्रों ने उनसे कह दिया - 'ऐसा कौन मूर्ख होगा, जिसका नायक दावानल में से सार वस्तु लेकर बाहर निकल जाय, और उसके साथी (मित्र) दावानल में रह जांय ? आप हमारे नायक (नेता) हैं, हमारे परामर्शक हैं और सच्चे मित्र हैं, आपके बिना हमें अच्छा नहीं लगेगा; अतः आपका जो मार्ग होगा, वही हमारा मार्ग

परन्तु श्रीकृष्णजी नहीं माने । अन्ततोगत्वा उनके आग्रह से रुक्मिणी ने मुख्य पटरानी-पद का स्वीकार किया । जहाँ सुगन्ध होती है, वहाँ भौंरे का मन आकर्षित होता है, वैसे ही रुक्मिणी के गुणरूपी सौरभ से श्रीकृष्णजी का मन उसके प्रति अधिकाधिक आकर्षित हुआ । फलतः वह रुक्मिणी के पास अधिक रहने लगे । सत्यभामा आदि दूसरी रानियों के पास खास नहीं जाते-आते थे । यह देखकर सत्यभामा के दिल में ईर्ष्या की आग जल उठी । प्रथम तो, उसे रुक्मिणी के प्रति ईर्ष्या थी, दूसरी विशेष बात उसने यह जानी कि रुक्मिणी को उत्तम स्वप्न आया है और वह गर्भवती हैं । इस कारण उसकी ईर्ष्याग्नि और बढ़ गई कि अहो ! यह मेरे से छोटी है, फिर भी कृष्णजी इसके पीछे पागल बने हैं । मेरे सामने भी नहीं देखते । फिर जब रुक्मिणी के पुत्र हो जाएगा, तब फिर उसका सम्मान कितना बढ़ जाएगा ? उसने सोचा -

"जब से आ सोकलड़ी आई यहाँ रे, मुझ पर हुई हरि की नजर करूर रे ।
प्राणों से प्यारी वही प्रेमदा रे, कीन्हा इण जादू मंतर जरूर रे ॥" श्रोता...

इस रुक्मिणी ने कोई जादू या वशीकरण मंत्र करके मेरे पति को वश में कर लिये हैं । अब तो यह मेरे सामने प्रेमभरी दृष्टि से देखते भी नहीं । ऐसे ऊलजलूल विचारों से सत्यभामा का मन बहुत ही व्यथित एवं व्यग्र रहने लगा । इस पर भी रुक्मिणी गर्भवती है, यह जानकर तो और दुःख हुआ । अब तो रुक्मिणी को किसी भी तरह से नीचा दिखाना, इसके लिए उपाय ढूंढने लगी ।

इस तरफ रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण से जब स्वप्न की बात कही तो श्रीकृष्ण ने कहा - "रुक्मिणी ! तेरे भाग्य उत्कृष्ट हैं । दुनिया में किसी के नहीं होगा, ऐसे पराक्रमी और तेजस्वी पुत्र की माता बनेगी ।" पति के मुख से स्वप्न का फल जानकर रुक्मिणी के हृदय में अलौकिक आनन्द हुआ । वह बोली - "स्वामीनाथ ! आपका वचन अक्षरशः सत्य है । आप कहते हैं, वैसा ही मेरा पुत्र होगा । ऐसे पुत्र को देखकर मेरी आँखों से अमृत की धारा बहेगी ।" यों कृष्णजी और रुक्मिणी के आनन्द का पार नहीं है ।

सत्यभामा द्वारा की गई माया : रुक्मिणी की गर्भवती होने की बात सत्यभामा को ज्ञात होते ही वह बहुत दुःखी हो गई । सोचने लगी - 'अब मुझे क्या करना ?' बहुत विचार के अन्त में, एक असत्य बात उठाने का विचार किया । योगानुयोग से उस रात्रि को श्रीकृष्णजी सत्यभामा के महल में आ गए । इसलिए सवेरा होते ही सत्यभामा ने कहा - "स्वामीनाथ ! मैंने आज रात को स्वप्न में एक सुन्दर हाथी देखा ।" उसके बोलने का रंगढंग देखकर कृष्णजी समझ गए कि 'यह बिलकुल झूठ बोलती है । परन्तु वह मन ही मन समझ गए कि मैं रुक्मिणी को अधिक सम्मान देता हूँ, इस कारण यह बेचारी (ईर्ष्या के मारे) जल रही है । अगर मैं इसे सच-सच कह दूंगा तो इसे दुःख होगा । इसे व्यर्थ ही क्यों दुःखी करूँ ?' यों सोचकर श्रीकृष्ण ने उसे कहा - "सत्यभामा ! तुमने जो स्वप्न देखा है, वह उत्तम है । इस स्वप्न के प्रभाव से तेरी कुक्षि से एक अत्यन्त प्रभावशाली पुत्र का जन्म होगा ।"

रुक्मिणी के मन में ऐसे दोहद उत्पन्न होने लगे कि मैं निर्ग्रन्थ मुनिराजों के दर्शन करने जाऊँ, उन्हें सुपात्रदान दूं; तप करूँ । गरीबों को दान दूं, षट्कायिक जीवों की रक्षा करूँ । ऐसे पवित्र दोहद उत्पन्न होने लगे । अतः उसने त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव से कहा - "स्वामीनाथ ! मेरी एक इच्छा है ।" श्रीकृष्णजी को रानी रुक्मिणी के प्रति अत्यन्त प्रीति थी । अतः उन्होंने पूछा - "देवी ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम्हारी जो भी इच्छा हो, उसे निःसंकोच कहो, मैं उसकी पूर्ति करने को तैयार हूँ ।" अतः रुक्मिणी ने कहा - "मेरी एक इच्छा है कि जितने क्षेत्र में आपकी आण प्रवर्तित है, उतने क्षेत्र में आप हमारी-पटह बजवाकर घोषणा करायें कि जहाँ-जहाँ कृष्ण वासुदेव की आण वर्त रही है, वहाँ किसी भी जीव की कत्ल नहीं होनी चाहिए; मांसाहार नहीं होना चाहिए । जो भी मनुष्य जीवहिंसा करेगा या मांसाहार करेगा, उसे कठोर दण्ड दिया जाएगा ।" रुक्मिणी के कहने से श्रीकृष्णजी ने तीनों खण्डों में अमारीपडह बजवाकर जीवों की हिंसा बंद कराई । इस प्रकार रानी रुक्मिणी की इच्छा पूर्ण की ।

बन्धुओं ! यह भारत भूमि कितनी पवित्र है ? इस भूमि में रहनेवाले मनुष्यों के दिल में इतनी दया थी कि वे (अपने गाँव में) तालाब में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ने नहीं देते थे । हम विहार करते हैं, तब रास्ते में छोटे-छोटे गाँव आते हैं । उन गाँवों में तालाब की पाल पर शिलालेख अंकित किए हुए देखने को मिलते हैं, उन पर अंकित होता है - 'इस तालाब में कोई जाल न डाले, न ही मछली पकड़े । जो मछलियाँ पकड़ेगा, उसे दण्ड दिया जाएगा ।' भूलेचूके अगर कोई मछुआ आकर मछली पकड़ने के लिए तालाब में जाल डालता तो, सारा गाँव उस पर टूट पड़ता । बैलगाड़ी के नीचे कोई कुत्ता आ जाता तो लोगों का हृदय चीख उठता और बैलगाड़ी या गाड़ी चलानेवाले की लापरवाही के लिए उसे सजा देते थे । अंग्रेजों का राज्य होने पर भी ऐसे धर्म के कार्य में अंग्रेज सरकार भी किसी को रोकती नहीं थी । आज तो कितनी हिंसा बढ़ गई है ? मत्स्योद्योग, मछलियों का निर्यात तथा बड़े-बड़े कत्लखाने चल रहे हैं । अरर ! कितने घोर पाप हो रहे हैं ? अहिंसा-प्रधान इस देश में हिंसा का ताण्डव-नृत्य बढ़ गया है । ऐसी भयंकर हिंसा देखकर भी आप लोगों को वैराग्य नहीं आता, और न ही इसे सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय या राजनैतिक तौर पर इन क्रूर एवं अमानुषिक हिंसा काण्डों को बंद करने का खास प्रयत्न हो रहा है ।

हमारे खंभात-सम्प्रदाय में एक महान् संत पूज्य हरखचंदजी महाराज हो गए हैं । वे मुम्बई में रहते थे । रास्ते में मछलियों से भरे टोकरे देखकर उन्हें वैराग्य आ गया । सोचा - 'ऐसी घोर हिंसा जहाँ हो रही है, उस क्षेत्र में मैंने व्यापार-धंधा किया ? मेरी दुकान पर माल लेने आनेवालों में ऐसे पाप करनेवाले नहीं आते होंगे ?' यों विचार करते करते उन्हें जन्म-मरणादि रूप संसार से विरक्ति हो गई । फलतः भगवती दीक्षा लेकर वे महान् पवित्र संत बने । हजारों जीवों को तारनेवाले महान् साधु हो गए । (पू. हरखचंदजी महाराज की जीवनी बहुत ही भाववाही सुन्दर शब्दों में सतीजी ने कही, जिसे सुनकर श्रोता मुग्ध हो गए थे ।)

हुए थे । फिर दोनों के पुत्र ही होगा, ऐसा भी कोई निश्चित नहीं था । फिर भी ऐसी शर्त लगा बैठीं । यह तो वैसी ही कहावत हुई - "भैंस भागोले ने छाश छागोले..." (भैंस आई ही नहीं, उससे पहले ही दूध के लिए लट्ठमलट्ठा) यह एक तरह से शेखचिल्ली के विचार जैसी बात हुई ।

एक सेठ-सेठानी थे । उनका विवाह हुए बीस वर्ष हो चुके थे । इतने वर्षों में दोनों (पति-पत्नी) के बीच में कभी मतभेद नहीं हुआ था, और न ही कभी आँख का कोना लाल हुआ था, ऐसा उन दोनों में परस्पर प्रेम था । परन्तु एक दिन उन दोनों में बहुत झगड़ा हुआ । फलतः एक कोने में सेठ उदास बैठे हैं, दूसरे कोने में सेठानी उदास बैठी हैं । इस समय सेठ का एक मित्र वहाँ आ पहुँचा । सेठ-सेठानी दोनों को रोते देख मित्र ने पूछा - "आज तुम्हारे घर में यह क्या हो रहा है ? मैंने पिछले बीस वर्षों में कभी तुम्हारे घर में शोर-शराबा या आँख का कोना लाल हुआ हो, ऐसा नहीं देखा, किन्तु आज यह क्या हो गया ?" सेठ ने कहा - "कुछ भी नहीं है ।" मित्र ने बहुत पूछा, तब सेठ ने कहा - "भाई ! बात ऐसी है कि मेरा बहुत बड़ा व्यवसाय है । उसमें भी सरकार के ये सेलटेक्स और इन्कमटेक्स के लफड़े चलते हैं । इसलिए बात-बात में मुझे वकील की जरूरत पड़ती है । जिससे वकील के घर जाना और उनकी आजीजी करनी पड़ती है । इस कारण मैंने (अपनी पत्नी से) कहा - "मुझे अपने लड़के को वकील बनाना है । पर यह (मेरी पत्नी) इन्कार करती है ।" इस पर मित्र ने कहा - "जरा मैं भाभी से पूछ लूं कि उन्हें अपने लड़के को वकील बनाने में क्या आपत्ति है ?" सेठ के मित्र ने पूछा - "भाभी ! तुम क्यों रोती हो ? क्यों इनकी बात का विरोध करती हो ?" उसने कहा - "भाई ! मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता । मुझे डायबिटीज है और बी.पी. बढ़ जाती है । इसलिए थोड़े-थोड़े दिनों के बाद डोक्टर के यहाँ जाना पड़ता है । वहाँ दो-दो, तीन-तीन घंटे व्यर्थ बैठे रहना पड़ता है । इससे मैं घबरा जाती हूँ । इसलिए मैंने कहा - मुझे अपने लड़के को वकील नहीं, डोक्टर बनाना है । किन्तु ये इन्कार करते हैं । इस कारण हम दोनों के परस्पर झगड़ा चलता रहता है ।"

मित्र बहुत चतुर और समझदार था । उसने कहा - "भाई-भाभी ! आप दोनों शान्ति से बैठो और लड़के को बुलाओ । उसे मैं पूछ लूं कि तुझे वकील बनना है या डोक्टर ?" तब सेठ-सेठानी बोले - "लड़के के जन्म लेने में अभी छह महीने की देर है ।" (हँसाहँस) मित्र बोला - "अरे भले मानुषों ! लड़ले का जन्म भी अभी तक हुआ नहीं है, उससे पहले ही यह झगड़ा क्यों लिए बैठे हो ? गर्भ से बच्चे का जन्म होगा या बच्ची का ? उसका पता नहीं है, और दोनों झगड़ा करने लगे ?" वैसे ही यहाँ सत्यभामा के कहने से रुक्मिणी ने उसकी शर्त मंजूर कर ली । अब दोनों रानियों में से पहले किसके गर्भ से पुत्र जन्मेगा और क्या बनेगा ? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

ओर नजर जाती है, और सिद्ध भगवन्तों की याद ताजी हो जाती है। चारों ओर पवित्रता का प्रकाश फैलाते हुए किसी अपूर्व सहस्त्ररश्मि के पवित्र दर्शन हो जाते हैं। मेरुपर्वत-से अचल स्थिर सिद्ध परमात्मा के परमात्मतत्त्व की झांकी हो जाती है। पूर्णता के शिखर पर विराजमान पूर्ण आत्मा पूर्ण बनने की प्रेरणा देते रहते हैं।

अ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के ८वें अध्ययन का वर्णन चल रहा है। महाबलराजा को भी आत्मस्वरूप की पहचान हो गई है। इसलिए अब संसार की सीमा को लांघकर सिद्धि के शाश्वत सुख प्राप्त करने हेतु उनका मन आतुर हो रहा है। इसलिए वे आत्मा को सम्बोधित करके कहते हैं -

अविनाशी अनुपम पद तारुं, मेळव मुक्तिनुं गारूं।
सिद्धिनुं सुख छे अनेरूं (२), एनी शोभा अपरम्पार ॥...
सजी ले समजणनो शणगार, बनी जा साचो तुं अणगार ॥ एनी शोभा...॥१॥
साचा सद्गुणनो भंडार, सत्य शियळनो शणगार ॥ एनी शोभा...॥२॥

हे आत्मन् ! तू अविनाशी है, तू कदापि नष्ट होनेवाला नहीं है। तू अनुपम है। तेरे महान् पुण्य के उदय से तुझे अनुपम वीतराग-शासन मिला और धर्मघोष जैसे सद्गुरु का योग मिला है। तुझे शीघ्र ही सिद्धि के सुख पाने हों तो विभावों के बवंडर दूर करके समझ का श्रृंगार सजकर तू सच्चा अनगार बन जा। महाबलराजा अनगार बनने के लिए तैयार हो गए हैं। वह धर्मघोष अनगार के पास से निकलकर अपने राजमहल में आए और अपने मित्रों को बुलाकर उनके समक्ष अपना दीक्षा लेने का निर्णय प्रगट किया। इस पर उनके मित्रों ने भी कहा - "मित्रवर ! आप हमारे पूजनीय हैं, बुजुर्ग हैं, आप संसार छोड़कर संयमी बन रहे हैं, तब हम किसके आधार पर रहेंगे ? अतः हम भी आपके साथ ही दीक्षा लेंगे। हमें अब संसार (गृहस्थवास) में नहीं रहना है।" महाबलराजा ने अपने मित्रों से कहा - "मित्रों ! तुम सब मेरे साथ दीक्षा लेने के लिए तैयार हो रहे हो, यह तो बहुत आनन्द की बात है। परन्तु जैसे कि हमने निर्णय किया है कि हमें सभी कार्य साथ-साथ करने हैं, इस रीति से तो दीक्षा नहीं ले रहे हो न ? देखो, संयम तलवार की धार समान है, अतः बहुत ही सोच-समझकर कदम उठाना।" मित्र कहते हैं -"महाराजा ! हम भी आपकी तरह समझकर संयम ग्रहण करने को तैयार हुए हैं। कहा भी है -

दुःखना दरिये संतजन बेट छे, आश्रय लेवानो हो (२), एक ज आधार छे।...
संयम लेवानो हो (२), एक ज आधार छे ॥

"हे मित्र ! यह संसार दुःख का सागर है। दया करके उसमें से हमें बचानेवाले महान् संतपुरुष हैं। यह संसारूपी समुद्र में तूफान आ रहा है, उसमें आधि-व्याधि और उपाधि की तरंगे उछल रहे हैं। उसमें से तरने के लिए संयम आधाररूप है। यह बात हमें भलीभांति समझ में आ गई है। इसलिए हम आपके साथ ही संयम अंगीकार करेंगे।"

"दव्वुज्जो उज्जोओ, पगासइ परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
भावुज्जो उज्जोओ, लोगालोगं पगा सेइ ॥"

सूर्य और चन्द्र का द्रव्य-प्रकाश परिमित क्षेत्र को प्रकाशित करता है, जबकि ज्ञान का भाव-प्रकाश तो समस्त लोक-आलोक को प्रकाशित करता है । इसीलिए ज्ञानीपुरुष बार-बार चेतावनी देते हैं कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है । जितना हो सके, उतना अधिक आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करो । ज्ञान का प्रकाश अलौकिक है । इस प्रकाश में जीव-जगत के समग्र चराचर पदार्थों को हस्तरेखा की तरह देखा जा सकता है ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

भगवान ने सर्वद्रव्यों और सर्वपर्यायों को जाननेवाले ऐसे केवलज्ञान प्रकट करने के बाद शास्त्र-सिद्धान्तवाणी प्रकाशित की है, उसमें छठ्ठा अंगशास्त्र 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' हैं । जिसके आठवें अध्ययन का वर्णन आपको सुनाया जा रहा है । उसमें बताया गया है कि महाबलराजा ने एक बार धर्मघोष अनगार की वाणी सुनी और उनके रोम-रोम में आनन्द व्याप्त हो गया । उनके ज्ञानचक्षु खुल गए और उनका हृदय-परिवर्तन हो गया ।

महाबलराजा को यह भलीभांति समझ में आ गया कि संसार में परिभ्रमण करानेवाला कोई है तो वह कर्म ही है । कर्मराजा की सेना बहुत बड़ी है । उससे बहुत ही सावधान रहना जरूरी है । जगत् के सभी जीव कर्म की सेना से घिरे हुए हैं । कर्म की इस फौज को हटाने के लिए आन्तरिक खोज करनी पड़ेगी । एक लेखक ने कहा है कि हिण्डनवर्ग की हलचल से भी कर्मराजा की हलचल अधिक अजब-गजब की है । सन् १४ की लड़ाई हुई, तब ऐसा कहा कि हिण्डनवर्ग की हलचल देखनी हो तो आँख में तेल डालना आवश्यक है । अगर तेल डाले बिना उसे देखा जाय तो यह कब कर बैठेगा, इसका पता नहीं लगेगा । हिण्डनवर्ग की सेना इतनी अधिक जबर्दस्त थी कि शाम को वहाँ की 'डान्यूब' नाम की नदी किसी ने लांघी, तब वहाँ कुछ भी न था; किन्तु रातोरात तीन लाख सैन्यदल वहाँ लाया गया, नदी पर पुल बांध दिया, खाई पाट दी गई और सेना में कभी किसी को रोगादि कष्ट हो जाय तो उसकी राहत के लिए दवाखाने में सभी सामग्री आ गई । इस प्रकार रात ही रात में सुरक्षा की सारी सामग्री जुटा ली गई । परन्तु याद रखना कि हिण्डनवर्ग की हलचल की अपेक्षा भी कर्मराजा की हलचल भारी जबर्दस्त है । शत्रु के प्रति पूर्ण देखरेख न रखी जाए तो कब क्या हो जाएगा इसका पता नहीं लगता । अतः बन्धुओं ! सोचो-समझो ! कर्मराजा (एक दृष्टि से) तो आत्मा का कट्टर शत्रु है । अतः उसकी हलचल के सामने अगर समय-समय पर पूरी देखरेख नहीं रखी जाएगी तो क्या होगा ? सेना में तो इशारे की जरूरत पड़ती है । जैसे गाय या भैंस को उसका मालिक टिच-टिच करे तो तुरंत समझ जाती है, वैसे ही लश्कर में उसका केप्टन जो सूचना करता है, उसे उसका सैन्य तुरंत समझाता है । तब कर्मराजा के कठिन हलचल

जीव इसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं करेगा तो पापकर्म बांधेगा ही। किन्तु संसार में रहता हुआ भी जीव सम्यग्दृष्टिपूर्वक चार शरण को स्वीकार कर लेता है, फिर भी कष्ट आएँ तो कायोत्सर्ग (काया के प्रति ममत्व-त्याग-कुर्बानी) करना, दुःख समभाव से सहना, किन्तु धर्म को मत छोड़ना। यदि ऐसा करोगे तो (सकाम निर्जरा करके) संसारसागर तिर सकोगे। किन्तु अफसोस है कि आज तो जीवों को जरा-सी भी बीमारी आए, या कष्ट या उपाधि आ पड़े तो धर्म को प्रायः पहले ही छोड़ बैठते हैं, तब फिर आत्मा का कल्याण कहाँ से हो ?

महाबलराजा अपने मित्रों से कहते हैं - "मित्रों ! इस संसारसमुद्र में अपनी नौका डगमगा रही है, परन्तु उसमें संयमरूपी पाटिया हाथ में आ गया है। इस संयमरूपी पाटिये के सहारे से समुद्र को पार करते हुए २२ परिषहरूपी बिच्छू कभी-कभी डंक मारेंगे, कोई कटु वचन कहेंगे, कोई मारपीट करने पर उतारू होंगे, कभी आहार लेने जाते हुए मार पड़ेगी। उस समय आकुल-व्याकुल होकर उलझन में नहीं पड़ना है, न ही संयमरूपी पाटिये को छोड़ना है। मन में ऐसा विकल्प भी नहीं करना है कि इतना विशाल भवसमुद्र पार किया जा सकेगा क्या ?" इस पर मित्र कहते हैं - "संयम-साधना में हम पर चाहे जैसे उग्र परिषह आयेंगे, तो भी हम उन्हें सहर्ष सहन करेंगे, कदापि व्यथित नहीं होंगे। आप जैसे परामर्श के धनी वकील साथ में होंगे, फिर हमें व्यथित होने की क्या जरूरत होगी ? हम आपके साथ दीक्षा लेने के लिए तैयार हैं।" महाबलराजा को अत्यन्त आनन्द हुआ कि मित्र भी समझपूर्वक सहर्ष दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गए हैं। अतः महाबलराजा ने मित्रों से कहा -

"तएणंसे महब्बले राया ते छप्पिय बालवयंसए एवं वयासी - जइणं तुब्भे मए सद्धिं जाव पव्वयह तो णं गच्छह जेट्ठे पुत्ते सएहिं सएहिं रज्जेहिं ठावेह, पुरिस-सहस्स-वाहिणीओ सीवियाओ दुरुढा जाव पाउब्भवंति।"

तत्पश्चात् महाबलराजा ने अपने ६ बालमित्रों से कहा - "मेरे प्यारे मित्रों ! अगर तुम राजीखुशी से सब मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो जल्दी से जल्दी अपनी-अपनी राजधानी में जाकर अपने-अपने जेठ पुत्रों को राजगद्दी पर बिठाकर पुरुष-सहस्त्र-वाहिनी (हजार पुरुष वहन कर सकें ऐसी पालखी) में बैठकर यहाँ आ जाओ।" यह सुनकर वे छहों मित्र अपनी अपनी शिविका में आरूढ़ होकर वहाँ पहुँच गए।

बन्धुओं ! जिसकी आत्मा जागृत हो जाती है, उसे संसार कारागृह जैसा लगता है। उसे संयम (पालन) में सुख दिखाई देता है। संसार में चाहे जितने सुख मिलें, तो भी उसे अच्छे नहीं लगते। फिर तो भव को ठोकर मारते हैं - महाबलराजा और छह मित्र, जो सभी राजा हैं। वस्तुतः जिसे संसार पर से निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है, उसे संयम सुखरूप लगता है। जैसा कि 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में गौतमस्वामी ने निर्वेद के सम्बन्ध में भगवान् से प्रश्न किया है -

यह रहा राजदूत !" यह देखकर सोमचन्द्र राजा विचार में पड़ गए । सोचिए, यह रानी कितनी चेतनावती और जागृत होगी ।

देवानुप्रियों ! आप सब इतने लोग बैठे हैं, शायद ही किसी के मस्तक पर सफेद बाल नहीं हो ! प्राचीनकाल में तो मनुष्य की उम्र बढ़ जाती, तब स्वभावतः मस्तक पर सफेद बाल आ जाते थे । परन्तु आजकाल तो छोटे-से लड़के के मस्तक पर सफेद बाल आ जाते हैं । हमारी ये श्राविकाएँ क्या आपको किसी दिन कहती हैं कि स्वामीनाथ ! अब आपके मस्तक पर सफेद बाल आ गए हैं, अतः अब आप संसार की मजदूरी कम करके धर्मध्यान करिए । विचार करो, राजऋद्धि में रंगी हुई, रंगमहल में रानीपन के सुख में मशगूल होती हुई रानी ने पति के मस्तक पर एक सफेद बाल देखकर परलोक की प्रेरणा देती समझ की छड़ी मारते हुए कहा – "आप लड़ाई के अवसर पर नहीं चेते, तभी तो (प्रकृति को अपना) दूत भेजना पड़ा न ?" जैसे कोई अच्छा साहूकार मनुष्य हो, उसे मालूम हो जाय कि मेरे घर हुंडी आनेवाली है, तो तुरंत ही वह उसके लिए धन पहुँचता कर देता है । अगर वह उसके लिए धन पहुँचता नहीं करे तो हुंडीवाला तकादा (तकाजा) करेगा न ? वह उगाही (तकादा) करे तो साहूकार की इज्जत जाएगी न ? तकादा न आए, इससे पहले ही रकम चुका दी जाये तो साहूकार की इज्जत बरकरार रहती है । मान लो, हुंडीवाला मनुष्य पहले तुम्हें सावधान करने आया और आप उस (हुंडी) की रकम भरना भूल गए, बाद में याद आया तो याद आने के साथ ही रकम भर दो तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु अगर हुंडीवाला पुनः सावधान करने आए, फिर भी सावधान न हुआ जाय तो साहूकार की सफाई नहीं रहती ।

इस प्रकार छुट्टी (रुखसत) करना और त्यागपत्र देना : मान लो, कोई सेठ अपने नौकर को रुखसत करना चाहता है । जिसे नौकरी से रुखसत करना है, अगर उसे जरा भी गंध आ जाए कि सेठ मुझे छुट्टी करनेवाले हैं, तो वह विचार करेगा कि सेठ मुझे छुट्टी करें, उससे पहले ही मैं स्वयं नौकरी से त्यागपत्र दे दूं तो ? मैं त्यागपत्र दे दूं तो लोगों में यों कहा जाएगा कि नौकर ने स्वयं त्यागपत्र दे दिया है । और सेठ मुझे नौकरी से छुट्टी कर देंगे तो यों कहा जाएगा कि इसके सेठ ने इसकी छुट्टी करके इसे निकाला है । अतः समझो, नौकरी से स्वयं छूट जाने और छुट्टी किये जाने में [illegible] ? इसी प्रकार

जीव इसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं करेगा तो पापकर्म बांधेगा ही । किन्तु संसार में रहता हुआ भी जीव सम्यग्दृष्टिपूर्वक चार शरण को स्वीकार कर लेता है, फिर भी कष्ट आएँ तो कायोत्सर्ग (काया के प्रति ममत्व-त्याग-कुर्बानी) करना, दुःख समभाव से सहना, किन्तु धर्म को मत छोड़ना । यदि ऐसा करोगे तो (सकाम निर्जरा करके) संसारसागर तिर सकोगे । किन्तु अफसोस है कि आज तो जीवों को जरा-सी भी बीमारी आए, या कष्ट या उपाधि आ पड़े तो धर्म को प्रायः पहले ही छोड़ बैठते हैं, तब फिर आत्मा का कल्याण कहाँ से हो ?

महाबलराजा अपने मित्रों से कहते हैं - "मित्रों ! इस संसारसमुद्र में अपनी नौका डगमगा रही है, परन्तु उसमें संयमरूपी पाटिया हाथ में आ गया है । इस संयमरूपी पाटिये के सहारे से समुद्र को पार करते हुए २२ परिषहरूपी बिच्छू कभी-कभी डंक मारेंगे, कोई कटु वचन कहेंगे, कोई मारपीट करने पर उतारू होंगे, कभी आहार लेने जाते हुए मार पड़ेगी । उस समय आकुल-व्याकुल होकर उलझन में नहीं पड़ना है, न ही संयमरूपी पाटिये को छोड़ना है । मन में ऐसा विकल्प भी नहीं करना है कि इतना विशाल भवसमुद्र पार किया जा सकेगा क्या ?" इस पर मित्र कहते हैं - "संयम-साधना में हम पर चाहे जैसे उग्र परिषह आयेंगे, तो भी हम उन्हें सहर्ष सहन करेंगे, कदापि व्यथित नहीं होंगे । आप जैसे परामर्श के धनी वकील साथ में होंगे, फिर हमें व्यथित होने की क्या जरूरत होगी ? हम आपके साथ दीक्षा लेने के लिए तैयार हैं ।" महाबलराजा को अत्यन्त आनन्द हुआ कि मित्र भी समझपूर्वक सहर्ष दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गए हैं । अतः महाबलराजा ने मित्रों से कहा -

"तएणंसे महब्बले राया ते छप्पिय बालवयंसए एवं वयासी - जइणं तुब्भे मए सद्धिं जाव पव्वयह तो णं गच्छह जेट्ठे पुत्ते सएहिं सएहिं रज्जेहिं ठावेह, पुरिस-सहस्स-वाहिणीओ सीवियाओ दुरुढा जाव पाउब्भवंति ।"

तत्पश्चात् महाबलराजा ने अपने ६ बालमित्रों से कहा - "मेरे प्यारे मित्रों ! अगर तुम राजीखुशी से सब मेरे साथ दीक्षित होना चाहते हो तो जल्दी से जल्दी अपनी-अपनी राजधानी में जाकर अपने-अपने जेष्ठ पुत्रों को राजगद्दी पर बिठाकर पुरुष-सहस्त्र-वाहिनी (हजार पुरुष वहन कर सकें ऐसी पालखी) में बैठकर यहाँ आ जाओ ।" यह सुनकर वे छहों मित्र अपनी अपनी शिविका में आरूढ़ होकर वहाँ पहुँच गए ।

बन्धुओं ! जिसकी आत्मा जागृत हो जाती है, उसे संसार कारागृह जैसा लगता है । उसे संयम (पालन) में सुख दिखाई देता है । संसार में चाहे जितने सुख मिलें, तो भी उसे अच्छे नहीं लगते । फिर तो भव को ठोकर मारते हैं - महाबलराजा और छह मित्र, जो सभी राजा हैं । वस्तुतः जिसे संसार पर से निर्वेद (वैराग्य) हो जाता है, उसे संयम सुखरूप लगता है । जैसा कि 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २९वें अध्ययन में गौतमस्वामी ने निर्वेद के सम्बन्ध में भगवान् से प्रश्न किया है -

को संसार के नाटक विडम्बना जैसे लगते हैं। और हीरा, माणिक, मोती और सोने के आभूषण भाररूप प्रतीत होते हैं। एवं कामभोग तो नरक की खान जैसे दुःखरूप लगते हैं। किन्तु तुम्हें संसार शक्कर के टुकड़े जैसा मीठा लगता है, कि इसे छोड़ने का मन नहीं होता। यहाँ तो तुम बड़ी मुश्किल से एक घंटे के लिए आते हो; यहाँ तुम्हें अधिक बैठना पड़े तो ऊब जाते हो। परन्तु मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हें प्रतिदिन घाटकोपर से मुंबई जाना पड़ता है। ट्रेन में इतनी भीड़ होती है, मानो बकरों को ठसाठस भरे हों। कई दफा तो ऐसी परिस्थिति होती है कि डिब्बे के बाहर लगी हुई छड़ पकड़कर बाहर लटकना होता है। एक्सीडेंट हो जाने के भय से मुक्त होकर घर आते हो, तो क्या तुम्हे ऐसा लगता है कि इस प्रकार लटकते हुए आने में किसी दिन मर जाऊँगा, ऐसा कभी मन में आता है कि अब ऊब गया हूँ, इसलिए कल से मुझे नौकरी पर नहीं जाना है। वहाँ तो टाइम हुआ कि तैयार होकर सहर्ष दौड़े जाते हो न ? परन्तु इतनी भावना का आवेग व्याख्यान में आने का या धर्माराधना करने का कभी आया है क्या ?

महाबलराजा के मन में एक लगन लगी है कि कब मैं आस्रव के घर से छूटूं और शाश्वत सुखशान्ति के स्थानरूप संवर के घर में जाऊँ ? इसके लिए स्थविर भगवंतों से निवेदन किया - "भगवन् ! मैं तो यहाँ दीक्षा ले लूं, ऐसा चाहता हूँ, परन्तु मैं अपने ६ मित्रों के साथ वचनबद्ध हूँ कि हम जो कुछ (प्रवृत्ति) करेंगे, साथ-साथ करेंगे, अतः मैं अपने मित्रों के साथ बात करता हूँ। दूसरी बात, मुझे अपने पुत्र को भी राजगद्दी पर बिठाना है। तदनन्तर-फौरन आपके पास भागवती दीक्षा अंगीकार करनी है।" इस प्रकार राजा के वचन सुनकर स्थविरों ने कहा - "राजन् ! आपकी भावना उत्तम हैं। अतः अब *"मा विलम्बं कुरु, शुभस्य शीघ्रम'*-देर न करो। कहा भी है - शुभ कार्य में विलम्ब न करो।" स्थविरमुनि के वचनामृत सुनकर राजा अपने महल में आए। उन्होंने अपने ६ ही मित्रों को बुलाए और उन्हें इस प्रकार पूछा -

"जाव छप्पिय बाल-वयंसए आपुच्छइ।"

हे मेरे प्रिय मित्रों ! धर्मघोष अनगार की वाणी सुनकर मुझे यह संसार जाज्वल्यमान दावानल जैसा प्रतीत हुआ है, अतः अब एक क्षण भी मुझे संसार-दावानल में रहना अच्छा नहीं लगता। हम सबने यह निश्चय किया है कि धर्म का या संसार का प्रत्येक काम हम सबको साथ-साथ रहकर करना है, तो बोलो - अब तुम्हें क्या करना है ? मेरे साथ तुम्हें भी संयम लेना है या क्या करना है ?" इस पर मित्रों ने क्या कहा ? यह सुनो -

संवत् १९१८ में जर्मनी के मित्र-राजा ने जर्मनी पर चढ़ाई की, और जर्मनी को हराकर उसके सब शस्त्र-अस्त्र ले लिये । उसका किला तहस-नहस कर डाला और जर्मनी के राज्य पर कब्जा कर लिया । उस समय जर्मनी के चांसलर ने जाहिर किया कि "भले ही तुमने जर्मनी को जीत लिया, हमारे सब शस्त्र-अस्त्र ले लिये, हमें निराधार कर दिये, किन्तु अब भी हमारे पास एक अमोघ शस्त्र है, जिस पर मित्रराज्यों द्वारा कदापि कब्जा किया नहीं जा सकेगा । वह शस्त्र कभी भोथरा नहीं हो सकता । भले ही हमारा सर्वस्व ले लिया, किन्तु हमारे पास एक अमोघ हथियार है, वह कदापि मित्रराज्यों के हाथ में नहीं आएगा । वह हथियार कौन-सा है ? वह है - 'दुश्मन के प्रति धिक्कार की नजर ।' मेरी प्रजा में दुश्मन के प्रति जो धिक्कार की दृष्टि जमी हुई है, वह कभी भी दुश्मन मित्रराजा के कब्जे में नहीं आएगी; और वही एक दिन मेरे देश का उद्धार करेगी ।"

देवानुप्रियों ! मैं तुम्हें इसी घटनाको आध्यात्मिक दृष्टि से घटाकर समझाती हूँ - ज्ञानी भगवंत कहते हैं कि मोहराजा ने अपनी आत्मा को जीत लिया है, उस पर कब्जा कर लिया है, आत्मा की सर्वस्व सत्ता पर उसने कब्जा जमा लिया है । इस कारण मोहराजा की जेल में बंद आत्मा अभी दुनियादारी की दखल में डूब गया है । किन्तु यदि आत्मा के पास एक हथियार हो तो एक दिन उस (मोह) से छुटकारा हो सकेगा और आत्मा का उद्धार हो जाएगा । वह शस्त्र ऐसा होना चाहिए, जिसे मोहराजा न ले सके । जानते हो, वह शस्त्र कौन-सा है ? वह शस्त्र है - पाप के प्रति धिक्कार - यानी दुष्कृत की निन्दा । मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, प्रमाद और राग-द्वेष एवं कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) आदि पाप हैं, जो आत्मा के गुणों को खा जाते हैं । ये और ऐसे सर्व पापों को धिक्कार की नजर से देखोगे, तो मोहराजा की ताकत नहीं है कि वह तुम्हारे (आत्मा) पर चढ़ाई कर सके । कदाचित् इन (पापरूपी) शत्रुओं की चढाई से चार-शरण रूपी चार किले घिर जाएँ, तो भी तुम्हारे पास पाप-धिक्काररूपी शस्त्र होगा, तो दुश्मन तुम्हारा बाल भी बांका नहीं कर सकेगा । देखो, एक वक्त की पराजित जर्मनी आज कितनी उन्नत हो गई है ? जिस राज्य में नेताओं और अमलदारों को सार्वजनिक मकानों की दीवालों की तरफ एक कतार में खड़े करके गोलियों से बींध डाले थे । अग्रगण्य लोग गलियों से बींधे गये, फिर भी जनता में तथा राज्य में किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं हुई । उसका एक ही कारण था - दुश्मनों के प्रति तिरस्कारभरी दृष्टि । समग्र जर्मनी की जनता एक ही बात सीखी हुई थी कि शत्रु के प्रति प्रेमभरी दृष्टि से नहीं देखना । यह एकमात्र एक शस्त्र होने के कारण हारी हुई जर्मनी, अपने चले गए शस्त्रों, बिखरे हुए किले और सैन्य आदि सबको एकत्र करने में जुट गया । इसी प्रकार आत्मा भी अगर पाप को दुश्मन मानकर उसके प्रति धिक्कार की दृष्टि से देखे तो मोहराजा की ताकत नहीं है कि उसे दबा सके, हरा सके।

महाबलराजा और उसके छह मित्रों की समझ में आ गया कि यह जीव अनन्तकाल से मोहराजा की कैद में फंस गया है । अब उससे छूटने (मुक्त होने) का अगर कोई मार्ग

होगा ! हम आपसे अलग रहना नहीं चाहते । हम भी आपके साथ-साथ भागवती दीक्ष ग्रहण करेंगे ।" छहों मित्रों दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गए । अब महाबलराजा उन्हें क्य जवाब देंगे ? यह बात यथावसर बताई जाएगी ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

सत्यभामा के दिल में रुक्मिणी के प्रति अत्यन्त ईर्ष्या थी । जबकि रुक्मिणी अत्यन सरल थी । इस कारण उसने सत्यभामा के द्वारा प्रस्तुत शर्त मंजूर कर ली । साथ हं रुक्मिणी के द्वारा इस शर्त की स्वीकृति के साक्षी के रूप में श्रीकृष्णजी को औ सत्यभामा द्वारा स्वीकृति के साक्षी के रूप में बलभद्रजी को रखा । श्रीकृष्ण इस बा को भलीभांति समझ गये थे कि यह सब जाल सत्यभामा के मन में ईर्ष्या के कारण रचा गया है, किन्तु इस बारे में स्वयं कुछ कहूँगा, तो सत्यभामा को दुःख लगेगा, इस कारण श्रीकृष्ण मौन रहे । किन्तु दोनों भाई मन ही मन बहुत हंसे कि नारी जाति अपनी ईर्ष्या की आग को ठंडी करने के लिए कैसे-कैसे उपाय खोजती है ? सत्यभामा को उसक (अन्धकारमय) भविष्य भुलावे में डाल रहा है । अन्यथा, ऐसी चतुर महिला ऐसी शर्त नहीं लगाती । किसके पहले पुत्र जन्म होगा ? किसका पहले विवाह होगा ? अथवा पुत्र होगा या पुत्री ? यह क्या किसी की हाथ की बात है ? भाग्ययोग से सत्यभामा को ऐसा विचा नहीं आया कि कदाचित रुक्मिणी के पुत्र होने के पश्चात मेरे पुत्र का जन्म होगा और उसका विवाह उसके पुत्र के विवाह के बाद होगा, ऐसी स्थिति में मेरा कितना अपमान होगा ? पहले तो कृष्ण का मेरे प्रति प्रेम कम हो गया है और उसमें भी ऐसा कुछ हो गया तो मेरा क्या मान-सम्मान रहेगा ? ऐसा विचार भी उसे नहीं सूझा और वह (सत्यभामा) ऐसी शर्त लगा बैठी । सत्यभामा के दिल में यों हर्ष है कि मैं बड़ी हूँ और मुझे अवश्य ही पुत्र होगा । तथा मैं अपने पुत्र का विवाह पहले कर दूंगी, तब रुक्मिणी का मस्तक मुण्डित करा दूंगी । अब पहले किसके पुत्र होगा और किसे मस्तक मुंडाना होगा ? यह बात तो भविष्य के गर्भ में है । यह तो बाद की बात है, लेकिन सत्यभामा ने तो मन से किस प्रकार मान लिया कि मेरे अवश्य ही पुत्र होगा ?

रुक्मिणी को उत्पन्न हुआ दोहद : रुक्मिणी के गर्भ को तीन महीने हो गए । उसके गर्भ में पवित्र आत्मा का आगमन हुआ है । वह मोक्षगामी जीव है । श्रीकृष्णजी के प्रद्युम्नकुमार आदि पुत्रों की बात 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में आती है । शास्त्र के पन्नों पर जिनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है, उनमें से यह पवित्र उत्तम आत्मा (जीव) है । इसलिए उसकी माता को पवित्र विचार आएँ, इसमें कोई शंका नहीं है । तीन मास हुए तभी रुक्मिणी को दोहद उत्पन्न होते हैं ।

उपना शुभ डोहला महिने तीसरे, पोषा सत्पात्र गुरु निर्ग्रन्थ रे,
अमारीपट फेरा सारा शहर में, अभ्यागत तुष्ट किया सब पंथ रे !... श्रोता...

सत्संग का लाभ लेते थे । परन्तु गाँव का एक पटेल कभी सत्संग में नहीं आता था । वह स्वयं तो आता नहीं था, किन्तु गाँव के लोगों को भी कहता कि "तुम सब लोग निठल्ले मालूम होते हो कि प्रतिदिन उस साधु के पास जाकर बैठते हो । रोज-रोज क्या सुनने का होता है ? उस साधुड़ा के भी कोई कामधंधा नहीं मालूम होता ।" यों कहकर वह उन साधुमहात्मा की निन्दा करता था । गाँव के युवकों ने सोचा - 'गाँव के सभी लोग महात्मा के पास आते हैं, किन्तु यह पटेल नहीं आता, बल्कि यह इनकी निन्दा करता है । अतः चाहे जिस तरह से भी इस पटेल को महात्मा का उपदेश सुनने के लिए लाना है । अगर यह महात्मा का उपदेश सुन ले तो इसका उद्धार हो जाय ।' एक दिन गाँव के वे युवक पटेल के पास गए और बहुत ही मधुर शब्द में विनती करने लगे - "काका ! आज तो आपको संतमहात्मा का उपदेश सुनने के लिए आना पड़ेगा । क्या महात्मा का उपदेश है ! उनकी वाणी में अमृत-रस झरता है । सारा गाँव इस अमृत-रस के घूंट पीता है, और केवल आप ही बाकी रह जाओ, यह हमें अच्छा नहीं लगता । आज तो चाहे जैसे भी आपको वहाँ ले जाना है ।" पटेल ने मन में सोचा - 'ये युवक आज मुझे ले जाए बिना छोड़ेंगे नहीं, तो चलूं, दस-पंद्रह मिनीट जा आऊँ । इन जवानों के सहयोग की मुझे जरूरत पड़ेगी । अतः इन्हें खुश रखने के लिए जाऊँ तो इन्हें भी ऐसा लगेगा कि काका ने हमारी बात मानकर हमारा मान रखा ।'

बन्धुओं ! विचार करो । मनुष्य दूसरों को खुश रखकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जाने को तैयार हो जाता है । परन्तु अपना आत्महित साधने के लिए तैयार नहीं होता । पटेल युवकों से कहता है - "बेटा ! तुम्हारा अत्यन्त आग्रह है तो मैं आज अवश्य आऊँगा ।" वे युवक तो महात्मा को पहले से कह आए थे - "जो किसी दिन नहीं आता था, वह पटेल आज आपका व्याख्यान सुनने को आएगा । इसलिए उसे रुचिकर लगे, ऐसा कुछ उपदेश देना, ताकि दूसरे दिन भी आने लगे । यह आएँगे, तब हम आपको इशारा करेंगे ।" पटेल आज महात्मा का उपदेश सुनने के लिए आए । पटेल को आते देखकर महात्माजी बोले - **"आओ भाई आओ ।"** पटेल हाथ जोड़कर बैठने लगे, तब फिर महात्मा बोले - **"बैठो भाई बैठो ।"** थोड़ी देर बाद पटेल प्रवचन सुनकर उठने लगे, तब महात्माजी ने कहा - **"उठो भाई उठो ।"** और जब पटेल उठकर चलने लगे, तब पुनः महात्मा बोले - **"जाओ भाई जाओ ।"** इस प्रकार महात्माजी ने चार वाक्य बोले थे, उन्हें पटेल घर जाकर रटने लगा । यह देखा जाता है कि सारे दिन जिस बात का रटन हो, वह नींद में भी, स्वप्न में भी प्रायः बोली जाती है । अनेक व्यापारियों को रात में नींद में भी बड़बड़ाने की आदत होती है । सारे दिन व्यापार-धंधे में जिस चीज का रटन होता है, वे व्यापारी रात में भी बोलते हैं । कितने लोग तो नींद ही नींद में माल के भाव बोल जाते हैं ।

उक्त पटेल ने सारे दिन महात्मा से सुने हुए चार वाक्यों का रटन किया. संयोगवश उसी रात में उसके घर में चोरी करने के लिए चोर आ गए । घर के

व्याख्यान - २५

श्रावण सुदी ३, गुरुवार — ता. २९-७-७६

शुद्ध आत्मा का मूल्यांकन करो

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, शास्त्रकार भगवन्तों ने चतुर्गतिक संसार में भटकते हुए जीवों को आत्म-स्वरूप की पहचान कराने के लिए आगमवाणी प्रकाशित की । आगम में कहा है - हे भव्य जीवों ! इस जगत् में मुख्यतः दो पदार्थ हैं - एक चेतन (जीव) और दूसरा - अचेतन (अजीव) । इस विश्व में जो अगणित पदार्थ दिखाई देते हैं, उन (जड़) सबका समावेश इन दो पदार्थों में हो जाता है । चेतन, प्राणी, भूत, जीव, सत्व आदि सब आत्मा के अलग-अलग नाम हैं । इस जगत् में आत्मा जैसी कोई भी महान् वस्तु नहीं है । तमाम जड़ (अचेतन-अजीव) पदार्थों का न्यूनाधिक मूल्यांकन करनेवाला सचेतन पदार्थ आत्मा है । परन्तु आत्मा की कीमत कोई जड़ पदार्थ नहीं आंक सकता । इसलिए वह अमूल्य कहलाता है । आत्मा के गुण अपार हैं । उसकी शक्ति अनन्त है । उसका ज्ञानदर्शन असीम है, उसका अव्यावाध सुख (आनन्द) अनन्त है । उसकी पवित्रता भी अद्‌भुत है ।

ऐसा पवित्र आत्मा (निश्चयनय की दृष्टि से शुद्ध होते हुए भी) अनन्तकाल से संसार के चार गतिवाले चक्र में परिभ्रमण कर रही है, मोहजाल में फंसा हुआ है और जन्म-मरण के जंजाल में भटक रहा है । आत्मा स्वयमेव अपने-आपको भूलकर जड़ पदार्थों में जकड़कर जड़ जैसा बन गया है । उसने जड़ को कीमती माना, उसका अधिक मूल्य आंका एवं जड़ के प्रति ममत्व करके कर्मबन्धन में बंधा । आत्मा की ऐसी दुर्दशा देखकर महान् पुरुषों का दिल करुणार्द्र हो गया । इस कारण उन्हों ने उपदेश दिया कि - हे आत्मन ! तू स्वयं को पहचान और विचार कर कि तू कौन है ? और तेरे गुण और स्वभाव को जान-समझ । देवानुप्रियों ! जिसको 'मैं' कहते हो, वह कौन है ? 'मेरी' कहते हो वह कौन-सी चीज है ? इस बारे में जब विचार करते हैं तो इस (आत्मा) की दशा अलौकिक प्रतीत होती है । इसे आत्मा की याद आते ही अनन्तशक्ति का स्मरण हो आता है, आत्मा का स्मरण आते ही अनन्तशक्ति का पूँज दृष्टि समक्ष खड़ा हो जाता है, असीम अनन्त बलवीर्य का सागर आनन्द की लहरें उछालता हुआ और उत्साह में वृद्धि करता दिखाई देता है । आत्मा का शुद्ध स्वरूप आँख के सामने आकर आनन्द की लहरों की भेंट दे देता है । अनन्त सुख के सिन्धु में सैर करता हुआ कोई मस्त मौजी दृष्टि समक्ष तैरने लगता है । यहाँ से सात रज्जूलोक ऊँची निरंजनों (सिद्ध परमात्माओं) की नगरी की

भयंकर सर्प भी भगवान् के एक वचन से सुधर गया । अग्नि की एक चिनगारी लाखों मन रूई के ढेर को जलाकर साफ कर देती है ।

महाबलराजा ने एक बार संत-समागम किया और दीक्षा लेने को तैयार हो गए । उनके साथ में ६ मित्र भी दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गए । छहों मित्र-राजा महाबलराजा की आज्ञा से अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी पर बिठाने हेतु गये हैं । इन छहों राजा (मित्रों) अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर हजार मनुष्य उठा सकें ऐसी बड़ी शिविका (पालखी) में बैठकर महाबलराजा के पास आएँगे । तदनन्तर महाबलराजा अपने पुत्र बलभद्रकुमार का राज्याभिषेक करेंगे । इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

रानी रुक्मिणी को दोहद में शुभ विचारों का प्रादुर्भाव : रुक्मिणी के गर्भ में बारहवें देवलोक से कोई पवित्र जीव आया है । इसलिए उसे संत-सतियों की सेवा-भक्ति, स्वधर्मी नर-नारियों की भक्ति करूँ, सुपात्र दान दूं, अभयदान दू, ये और ऐसे शुभ दोहद उत्पन्न होते हैं । रुक्मिणी श्रीकृष्ण वासुदेव की अतिप्रिय प्रियतमा थी, इसलिए उसे जितने दोहद उत्पन्न होते हैं, उन सबको वे पूर्ण करते हैं । तीन खण्ड के विशाल राज्य में किसी भी जीव की हिंसा न हो, इसके लिए वे अमारीपडह बजवा कर सार्वजनिक घोषणा कराते हैं, और रानी रुक्मिणी को सन्तुष्ट करते हैं ।

एक प्रसिद्ध कहावत है - 'पुत्र के लक्षण पालने में मालूम हो जाते हैं ।' इस कहावत के अनुसार ऐसे पवित्र जीवों का लक्षण गर्भ में ही परख लिये जाते हैं । बन्धुओं ! गर्भस्थ जीव में कितनी शक्ति होती है ? इस सम्बन्ध में 'भगवती सूत्र' में श्री गौतमस्वामीजी भगवान् महावीर से पूछते हैं - "भंते ! गर्भस्थ जीव गर्भ में ही कालधर्म प्राप्त करके क्या देवलोक में जा सकते हैं ? नरक में भी जा सकता है ?" इसके उत्तर में भगवान् ने फरमाया - *"हंता गोयमा !* - हाँ, गौतम ! जा सकता है ?" यह बात बहुत लम्बी है । मगर मेरे कहने का आशय यह है कि गर्भस्थ जीव की शक्ति भी कम नहीं है !

रानी रुक्मिणी ने पुत्र को जन्म दिया : रुक्मिणी को शुभ विचार आने से सबको ऐसी प्रतीति हुई कि गर्भस्थ जीव लघुकर्मी (हलुकर्मी) है । सारी द्वारिका नगरी में सर्वत्र आनन्द-आनन्द हो रहा है । रुक्मिणी भी यातनापूर्वक गर्भ का पालन करती हुई आनन्द में दिवस व्यतीत कर रही है ।

सवा नौ मास पूर्ण होते ही रुक्मिणी ने एक तेजस्वी और स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का जन्म होते ही सर्वत्र तेज (प्रकाश) फैल गया । जैसे आकाश में से चन्द्र के बाहर निकलते ही पृथ्वी पर प्रकाश फैल जाता है, वैसे ही इस पुत्र का जन्म होते ही मानो नीलम-मणि का प्रकाश-पुंज हो, तदनुसार रानी के शयनकक्ष में प्रकाश-प्रकाश फैल गया।

दीन्ही बधाई धायी मातजी रे, माधव सुन दीन्हा नवसेरा हार रे ।
नगरी सिणगारी नवरंग फूल से रे, मांडयो आनन्द-उत्सव भीकार रे । श्रोता...

बन्धुओं ! यह तो महाबलराजा के मित्र महाबलराजा से कह रहे हैं । परन्तु क्या तुमने कोई ऐसा मित्र ढूँढा है ? ऐसे कल्याणमित्र मिल जाएँ, तो शीघ्र बेड़ा पार हो जाय !' इस पर मैं तुम्हें एक दृष्टांत देकर समझाती हूँ -

मान लो, एक जलयान अथवा स्टीमर से बहुत-से लोग समुद्रीमार्ग से यात्रा कर रहे हैं । अकस्मात् समुद्र में जोर का तूफान आ गया । उससे स्टीमर छिन्नभिन्न हो गई, कई मुसाफिर समुद्र में डूब गए, कुछ यात्री अपना प्राण बचाने के लिए उछलकूद रहे हैं । वहाँ अचानक पुण्ययोग से काष्ठ का एक पाटिया उनके हाथ में आ गया । किन्तु उस पाटिये पर एक बिच्छू बैठा है । पाटिये को उन्होंने दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ रखा है । मगर बिच्छू बारबार डंक मारता है । हाथ को यदि वे जरा-सा खिसकाएँ तो पाटिये की फांस हाथ में घुस जाती है । बोलो, ऐसी स्थिति में मुसाफिर की कैसी हालत हो जाती है ? वे पाटिया पकड़कर रखें या बिच्छू के डंक की पीड़ा सहन करें ? जवाब दो ! यहाँ बिच्छू काटे तो, 'ओ बाप रे !' चिल्लाने लग जाएँ, किन्तु ऐसी दुःस्थिति में समझदार मुसाफिर को बिच्छू काटे तो उसकी वेदना सहन करता है, तथा पाटिये की फांस हाथ में लग जाए तो भी हर्ज नहीं, किन्तु पाटिये को वह नहीं छोड़ता, मजबूती से पकड़े रखता है । क्योंकि वह समझता है कि इस तूफानी समुद्र में ज्वार आने से तरंगे बहुत ऊँची उछल रही हैं । उनमें तैरने के लिए इस पाटिये के सिवाय हमें और कोई आधार नहीं है । अतः कष्ट सहकर भी पाटिये को पकड़े रखते हैं ।

यह तो द्रव्य-समुद्र की बात हुई । अब हम भव-समुद्र की बात सोचें । इस संसार-समुद्र में जन्म-मरणादि दुःख का ज्वार आए, तब जीव को कोई भी शरणभूत हो तो वे हैं - अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म । इन चार के सिवाय जगत में दूसरा कोई भी शरण नहीं है । चौदह रज्जूपरिमित लोक में आत्मा को दुःख से बचानेवाला अदिति से बचाकर हित के मार्ग पर चढ़ानेवाला, निरुपद्रव करनेवाला कोई हो तो ये चार शरण हैं । मंगलपाठ (मांगलिक) में हम बोलते-सुनते हैं -

"संसारमांही चार शरणां, अवर शरण नहि कोय ।
जे नर-नारी आदरे तेने, अक्षय-अविचल पद होय ।।"

इस संसार में डूबने की नोक पर जीव को कोई आधारभूत हों तो ये चार शरण हैं । इन चार शरणों को जिसने ग्रहण नहीं किया, उसकी आत्मा निराधार है । संसार में चाहे जितने कष्ट आएँ, फिर भी इस चतुःशरणरूपी पाटिये को मजबूती से पकड़कर रखें, तो अवश्य ही संसारसमुद्र तरकर उस पार जाया जा सकता है । ज्ञानी महापुरुष भी कहते हैं - *"जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणिय । अहो दुक्खो हु संसारे, जत्थ किस्संति जंतवो ।।"*

यह संसार जन्म-मरणादि दुःखों से भरा हुआ है । उसमें (मोहमूढ़) जीव नाना क्लेश पाते हैं, फिर भी (मोहवश) इस संसार को छोड़ते नहीं । संसार के दुःखों से त्रस्त होकर

व्याख्यान - २६

श्रावण सुदी ४, शुक्रवार — ता. ३०-७-७६

आस्रव से विरति का कारण बनी - प्रभुवाणी

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी शास्त्रकार भगवन्त के मुखकमल से निःसृत शाश्वती का नाम है - सिद्धान्त (आगम या शास्त्र)। भगवान् केवलज्ञान-केवलदर्शन द्वारा संसार के समस्त पदार्थों को जान-देख सकते हैं। अतीन्द्रिय, अर्थात्-इन्द्रियों से जो जाने न जा सकें, ऐसे पदार्थों को सर्वज्ञ के सिवाय कोई जान-देख नहीं सकता। ऐसे इन्द्रियातीत पदार्थों को वीतराग-सर्वज्ञ प्रभु के केवलज्ञान द्वारा जानकर दूसरों को बताते हैं। ऐसे सर्वज्ञ भगवान् का वचन त्रिकाल-सत्य होता है। उनके वचनों पर श्रद्धा-निष्ठा रखकर तदनुसार जो आचरण करता है, वह जीव सर्वकर्म-मुक्तिरूप मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

देवानुप्रियों ! ऐसा ज्ञान प्राप्त करके सर्वज्ञ बनना अच्छा लगता है न ? हाँ, यह तो तुम्हें, हमें और सबको अच्छा लगता है। परन्तु सर्वज्ञ बनने के लिए क्या करना चाहिए ? यह तुम्हें पता है ? 'तत्त्वार्थ सूत्र' में वाचकवर्य उमास्वातिजी ने कहा है -
"मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ।"

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, इन चार घातिकर्मों का क्षय हो जाने से केवलज्ञान प्राप्त (प्रकट) होता है। यों तो (निश्चय दृष्टि से) प्रत्येक जीव (आत्मा) में सत्ता में केवलज्ञान पड़ा है। किन्तु सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की शुद्ध (निरतिचार) आराधना-साधना किये बिना यह ज्ञान (केवलज्ञान) प्रकट नहीं होता। वीतराग-प्रभु की आज्ञानुसार जीवन जीया जाए तो ऐसा ज्ञान (सर्वज्ञत्व) प्रकट होता है। अपनी आत्मा में कर्मरूपी मिट्टी के नीचे ऐसा अनन्तज्ञान दबा हुआ है। हमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी साधनों द्वारा कर्मरूपी मिट्टी हटानी है। कर्मरूपी मिट्टी के हटते ही ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठेगा, क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। आत्मा के मूल-स्वरूप में अज्ञान (मिथ्याज्ञान) है ही नहीं।

आत्मा में अनन्तकाल का उजाला झलक रहा है। हजारों ट्युब-लाइटों का प्रकाश कहो या सहस्त्ररश्मि (हजारों किरणोंवाले सूर्य) का प्रकाश कहो, यह सब प्रकाश केवलज्ञान के प्रकाश के आगे धुंधला (निस्तेज) है। ऐसा प्रकाश आत्मा की सत्ता (अस्तित्व) में पड़ा है, वह अपने स्वामित्व (मालिकी) का है, क्या उसे लेने के लिए आप लोगों ने पुरुषार्थ किया है ? बोलो, कौन-सा पुरुषार्थ है, इसके लिए ? इसका एक ही

वन्धुओं ! यह तो महावलराजा के मित्र महावलराजा से कह रहे हैं। परन्तु क्या तुमने कोई ऐसा मित्र ढूँढा है ? ऐसे कल्याणमित्र मिल जाएँ, तो शीघ्र वेड़ा पार हो जाय !' इस पर मैं तुम्हें एक दृष्टांत देकर समझाती हूँ -

मान लो, एक जलयान अथवा स्टीमर से वहुत-से लोग समुद्रीमार्ग से यात्रा कर रहे हैं। अकस्मात् समुद्र में जोर का तूफान आ गया। उससे स्टीमर छिन्नभिन्न हो गई, कई मुसाफिर समुद्र में डूब गए, कुछ यात्री अपना प्राण वचाने के लिए उछलकूद रहे हैं। वहाँ अचानक पुण्ययोग से काष्ठ का एक पाटिया उनके हाथ में आ गया। किन्तु उस पाटिये पर एक बिच्छू बैठा है। पाटिये को उन्होंने दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ रखा है। मगर बिच्छू वारवार डंक मारता है। हाथ को यदि वे जरा-सा खिसकाएँ तो पाटिये की फांस हाथ में घुस जाती है। वोलो, ऐसी स्थिति में मुसाफिर की कैसी हालत हो जाती है ? वे पाटिया पकड़कर रखें या बिच्छू के डंक की पीड़ा सहन करें ? जवाव दो ! यहाँ बिच्छू काटे तो, 'ओ वाप रे !' चिल्लाने लग जाएँ, किन्तु ऐसी दुःस्थिति में समझदार मुसाफिर को बिच्छू काटे तो उसकी वेदना सहन करता है, तथा पाटिये की फांस हाथ में लग जाए तो भी हर्ज नहीं, किन्तु पाटिये को वह नहीं छोड़ता, मजबूती से पकड़े रखता है। क्योंकि वह समझता है कि इस तूफानी समुद्र में ज्वार आने से तरंगे वहुत ऊँची उछल रही हैं। उनमें तैरने के लिए इस पाटिये के सिवाय हमें और कोई आधार नहीं है। अतः कष्ट सहकर भी पाटिये को पकड़े रखते हैं।

यह तो द्रव्य-समुद्र की वात हुई। अव हम भव-समुद्र की वात सोचें। इस संसार-समुद्र में जन्म-मरणादि दुःख का ज्वार आए, तव जीव को कोई भी शरणभूत हो तो वे हैं - अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म। इन चार के सिवाय जगत में दूसरा कोई भी शरण नहीं है। चौदह रज्जूपरिमित लोक में आत्मा को दुःख से वचानेवाला अदिति से वचाकर हित के मार्ग पर चढ़ानेवाला, निरुपद्रव करनेवाला कोई हो तो ये चार शरण हैं। मंगलपाठ (मांगलिक) में हम वोलते-सुनते हैं -

"संसारमांही चार शरणां, अवर शरण नहि कोय।
जे नर-नारी आदरे तेने, अक्षय-अविचल पद होय ॥"

इस संसार में डूवने की नोक पर जीव को कोई आधारभूत हों तो ये चार शरण हैं। इन चार शरणों को जिसने ग्रहण नहीं किया, उसकी आत्मा निराधार है। संसार में चाहे जितने कष्ट आएँ, फिर भी इस चतुःशरणरूपी पाटिये को मजवूती से पकड़कर रखें, तो अवश्य ही संसारसमुद्र तरकर उस पार जाया जा सकता है। ज्ञानी महापुरुष भी कहते हैं - *"जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणिय। अहो दुक्खो हु संसारे, जत्थ किस्संति जंतवो ॥"*

यह संसार जन्म-मरणादि दुःखों से भरा हुआ है। उसमें (मोहमूढ़) जीव नाना क्लेश पाते हैं, फिर भी (मोहवश) इस संसार को छोड़ते नहीं। संसार के दुःखों से त्रस्त होकर

महाबलराजा ने अपने मित्रों से कहा कि आप सब अपनी-अपनी राजधानी में जा कर अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर, एक हजार मनुष्य उठा सकें, ऐसी शिविका में बैठकर मेरे पास आओ । इस प्रकार की महाबलराजा की बात सुनकर वे छहों मित्र वहाँ से चलकर अपने-अपने घर आए । एवं अपने स्थान पर आए और अपने अपने बड़े पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर पुरुष-सहस्त्रवाहिनी पालखी में बैठकर महाबलराजा के पास आए । शास्त्रकार कहते हैं -

''तएणं से महब्बल अंतिए छप्पिय-बालवयंसए पाउब्भूए पासइ पासइत्ता हठ्ठतुठ्ठे... कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ ।''

तदनन्तर वह महाबलराजा अपने पास उन छहों बालमित्रों को आये हुए देखकर अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए । तभी महाबलराजा ने शीघ्र ही अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाए ।

''सद्दावेइत्ता एवं वयासी - ''गूच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया । बलभद्दकुमारस्स महयारायाभिसेणं अभिसिंचेह, ते वि तहेव... जाव बलभद्दकुमारं अभिसिंचति ।''

विरक्त महाबलजी ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर आदेश दिया - ''देवानुप्रियों ! तुम जाओ और बलभद्रकुमार का बड़े भारी ठाठबाठ से अभिषेक विधि से राज्याभिषेक करो ।'' अतः कौटुम्बिक पुरुषों ने बहुत ही धूमधाम से बलभद्रकुमार का राज्याभिषेक किया ।

देवानुप्रियों ! महाबलराजा को शीघ्र संयम अंगीकार करने की कैसी लगन लगी है ? जिसके मन-मस्तिष्क में वैराग्यभाव जागृत हो जाता है, उसे जल्दी से जल्दी दीक्षा लेने की और आस्त्रव का घर छोड़ने की चटपटी लगती है । संसार (गृहवास) में मनुष्य चाहे जितनी सावधानी से रहे, फिर भी आस्त्रव का सर्वथा विरोध नहीं हो पाता । जैसे कोई व्यक्ति कोयले के गोदाम में जाए, भले ही वह कुछ भी न करे, तो भी उसे कोयले की जरा-सी काली रज तो जरूर लग जाएगी । वैसे ही संसार में चाहे जितने सावधान होकर रहे, तो भी सांसारिक आस्त्रवरूपी रज तो अवश्य लग जाएगी । जिस रूम में काम नहीं होता, उसे झाड़बुहार कर, पोचा लगाकर सुखी मनुष्य सब खिड़की दरवाजे बंदकर देता है । वह ऐसा क्यों करता है ? ताकि खिड़की-दरवाजे खुले रहें तो बाहर से धूल उड़कर अन्दर भर जाने का अंदेशा है । कितना विवेक है वहाँ ? सिमेंट-चूना और मिट्टी के घर को स्वच्छ रखने की कितनी कड़ी चौकसी है ? आत्मगृह में भी पाप की रज न आवे, वह भी स्वच्छ और शुद्ध रहे इसके लिए आस्त्रव के खिड़की-दरवाजे बंद करने की सावधानी है क्या ?

बन्धुओं ! आस्त्रव की गुलामी से मुक्त होकर संवर की शरण ग्रहण करने के लिए यह मनुष्यभव मिला है ? आस्त्रव आत्मा के गुणों का शोषण करता है, जबकि संवर आत्मा के गुणों का पोषण करता है । विचार करो । तुम्हारे चोबीस घंटे कहाँ बीतते हैं ? आस्त्रव

...हेसु विरज्जमाणे आरंभ-परिग्गह-परिच्चायं
...ह-परिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिंदइ,
... हवइ" ॥२॥

...रे जीव को क्या लाभ होता है ?" इसके उत्तर में भगवान्
...द का अर्थ है - संसार के प्रति विरक्ति । उससे जीव देव-
...-भोगों से शीघ्र ही निर्वेदता (उपरामता) हो जाती है, फिर
...क्त हो जाती है । विषयों से विरक्त होता हुआ जीव आरम्भ-
... । आरंभ-परिग्रह का परित्याग करता हुआ जीव संसारमार्ग
... है और सिद्धि (सर्व कर्ममुक्ति) मार्ग को ग्रहण कर लेता
...रम्परा से जीव भव-परम्परा का अन्त करता हुआ मोक्षमार्ग
...लब यह है कि संसार की असारता समझ में आने के बाद
...ता है, फिर उसे संयम में और उसके फलस्वरूप मोक्षमार्ग
..., अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं आता ।

... घर में ऊब जाते हो तो सोचते हो - चलो, गार्डन में एक
...लोगों के शरीर में मोटापा (स्थूलता) बढ़ जाता है तो प्रतिदिन
...सरत करते हैं । भगवान् कहते हैं कि - "संसार में से विरक्त
... कहीं चक्कर नहीं लगाता ।" यदि शरीर का वजन या (स्थूलता)
...गवान् सीमंधरस्वामी को १०८ बार वन्दना करो, एकाशन,
..., उपवास आदि तप करो, आहार-संयम करो, ऊनोदरी तप
...से शरीर भी ठीक (नीरोग) होगा, मन भी स्वस्थ होगा और
...द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से लाभ होगा । परन्तु शुद्ध धर्म
...है ? अज्ञानी जीव को तो जन्म-मरणादि रूप संसार की
... सच्चा विरक्तात्मा संसार में रहता है, परन्तु उसके भाव तो
...क्त करने का होता है । मैं पहले कह चुकी हूँ कि जो मनुष्य
...ता है, वह संसार (-समुद्र) में नहीं डूबता । यह बात सत्य
...कार के साथ 'दुष्कृत-निकन्दन' (पाप का तिरस्कार) न करे
...ग्रहण करने पर भी सद्गति प्राप्त करना कठिन हो जाता है।

...उसे धिक्कारो : धर्माचरण करते हुए भी पाप का तिरस्कार
... तो आत्मा का कल्याण नहीं होता । अतः पापशत्रु के प्रति
...में भी न फरकने दो, खदेड़ दो । मुझे इस सम्बन्ध में एक
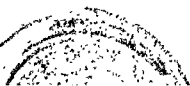
आत्मकल्याण करने का यह अमूल्य अवसर है। इस पंचमकाल में थोड़ी-सी करणी (साधना) से अधिकतम लाभ है। एक उपवास शुद्ध मन से, निःस्वार्थभाव से शुद्धभाव सुध्यानपूर्वक करो तो मासखमण करने जितना लाभ हो सकता है। इसी प्रकार धर्माचरण करने में थोड़ा-सा कष्ट सहन करो तो कर्मों की महानिर्जरा हो जाती है।

महाबलराजा ने सहज आए हुए अवसर को पहचान लिया। अपने पुत्र बलभद्रकुमार को यथोचित उपदेश देकर उसका राज्याभिषेक करके राजगद्दी पर बिठाया। इसके पश्चात् उनके मुख से सहर्ष ये उद्‌गार निकले - "मुझे अब प्रसन्नता है कि अब मेरे मस्तक पर से पाप का भार उतर गया। अब मैं यथाशीघ्र दीक्षा अंगीकार करूँ।" मस्तक पर से बोझ उतरे तो हृदय हल्का हो जाता है न ? किसी महिला के सिर पर पानी से भरे हुए घड़े हों, उसे उन घड़ों का बोझ लग रहा हो, तब कोई घड़े उतरवाकर उसका बोझ हलका करवा दे तो उसे कितना आनन्द होता है ? उसे कितनी शान्ति होती है ? यह तो पानी से भरे घड़ों का बोझ था, परन्तु यहाँ (अध्यात्म जगत में) जिसके सिर पर पापों के घड़ों का बोझ हो, और वह उतर जाए तो उसे कितनी और कैसी शान्ति हो ? महाबलराजा को भी ऐसा आनन्द हुआ कि ओह ! मेरे मस्तक पर से पाप के घड़ों का बोझ उतर गया।

देवानुप्रियों ! यह तो बड़े राजा थे। उनका राज्य स्वतंत्र था। किसी शत्रुराजा का भी भय नहीं था। उनके सुख में कोई विघ्न डाल सके, ऐसा भी नहीं था, फिर भी वह सुख उन्हें खटका, अतएव उसका त्याग करके भागवती दीक्षा अंगीकार करने के लिए तैयार हो गए। परन्तु मेरे बन्धुओं ! मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम चाहे जितना धन कमाओ, चाहे करोड़पति भी बन जाओ, फिर भी क्या तुम्हारा सुख स्वतंत्र है ? मान लो ब्लेकमार्केट करके तुमने एक करोड़ रुपये कमा लिये, पर सरकार का कितना डर है तुम्हें ? तुम अपने घर, अपने सुख-साधन, अपने कमाये हुए धन और आभूषण का क्या स्वतंत्र रूप से उपभोग कर सकते हो ? संक्षेप में, कितनी मेहनत करके धन और साधन अर्जित करते हो, किन्तु उनका उपभोग सुखपूर्वक कर सकते हो ? तुम्हारे सुख में क्या तुम्हें कहीं भी स्वतंत्रता नजर आती है ? नहीं, फिर भी उस (सांसारिक वस्तुओं) में सुख मानकर मुस्कराते हो ! परन्तु तुम्हारे ये सुख कैसे हैं ? पता है क्या ? तुम्हारे शो-केश या अलमारी में सेब, सीताफल, संतरे, आम, अनार सजाकर रखे होते हैं, वे ऐसे लगते हैं मानो सच्चे ही हों, परन्तु उन्हें उठाकर खाने जाओ तो तुम्हारे दांत टूट जाएँगे। वैसे ही तुम्हारे सुख शो-केश में रखे हुए फ्रूट जैसे हैं। तुम जिन पदार्थों में सुख मानते हो उन्हें भोगते हो, किन्तु उनका फल भोगते समय हड्डियाँ टूट जाएँगी, नानी याद आ जाएगी। अतः सांसारिक विषय-सुखों का स्वरूप समझकर उनका समभावपूर्वक अन्तःकरण से त्याग करो। इस समय समझ-बूझकर हृदय से इन्हें नहीं त्यागोगे तो मृत्यु आने पर तो छोड़ना पड़ेगा ही। उसके बजाय समझपूर्वक स्वयं अभी छोड़ देने में रस है। बहुत-से लोग तो स्वेच्छा से शरीर पर से ममत्व छोड़कर उसका विसर्जन करने से मरण से भी भयभीत होते हैं।

है तो वह है - संयम का अंगीकार और पाप का धिक्कार। यह संसार तो जीव को फंसाने का पींजरा है । घर में चूहों की हैरानी बढ़ जाती है तो चूहों को पकड़ने के लिए लोहे के पींजर में रोटी का टुकड़ा रखकर उसे खुला छोड़ दिया जाता है, रोटी के लोभ में चूहा ज्यों ही पींजरे में घुसता है, त्योंही उसके वजन से पींजरा बंद हो जाता है, चूहा फंस जाता है। इसी प्रकार मछुआ मछली को पकड़ने लिए जाल (जल में) डालता है, उस जाल में आटे की गोलियाँ डाल देता है । आटे की गोली खाने के लोभ से मछली जाल में फंस जाती है । इसी प्रकार जीव जिंदगी के अन्त तक संसार की, सांसारिक पदार्थों और विषयभोगों की ममता नहीं छोड़ता । और उनमें आसक्त होकर चार गति की चक्की में पिसाता हुआ बारबार जन्म-मरण करता रहता है । अतः समझने का समय है । इसे समझकर इसमें से झटपट खिसक जाओ । संसार से पूरी तरह से नहीं खिसक सको तो थोड़ी-सी देव-गुरु-धर्म की आराधना अवश्य करो । आत्मा को कर्म की कैद से मुक्त कराने के लिए वीतरागवाणी सुनो । सामायिक, प्रतिक्रमण, तप, त्याग, प्रत्याख्यान, पौषध आदि कुछ तो जरूर करो । कुछ भी न कर सको तो गाँव में संत-सतीजी विराजमान हों, उनके पास जाकर एक घंटा वीतरागवाणी तो अवश्य श्रवण करो । इच्छा से या अनिच्छा से वीतरागवाणी के सुने हुए चार शब्द या वाक्य भी जीव को पापादि अनिष्टों से बचा देता है । इस विषय में मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

नगर सेठ का दृष्टांत : एक गाँव में एक बड़े नगरसेठ के पास धन तो बहुत था, फिर भी वह अधिकाधिक धन प्राप्त करने रातदिन मशगूल रहते थे । धर्म करने में उनकी बिलकुल रुचि नहीं थी । गाँव में चाहे जैसे संत पधारें, पर वह उपाश्रय में पैर नहीं रखते थे, तथैव सत्कार्य में एक पैसा भी खर्च नहीं करते थे । ऐसे कंजूस सेठ थे वह । इस गाँव में एक युवकमण्डल था । गाँव में जब भी कोई संत-सती पधारते तब युवकमण्डल के युवक गाँव में घर -घर जाकर सत्संग या व्याख्यान का लाभ लेने के लिए बिनती करते थे । बहुत-से संत गाँव में आए और चले गए, पर नगरसेठ कभी उपाश्रय में नहीं आते थे ।

एक बार गाँव में एक महान् ज्ञानी प्रखरवक्ता संत पधारे । युवकमण्डल के युवकों ने गाँव के प्रत्येक मुहल्ले में घूमकर संत की वाणी का लाभ लेने की विनती की और संघ में यह निर्णय किया कि महाराजश्री का व्याख्यान पूरा हुए बिना किसी को अपनी दुकान नहीं खोलनी है । नगरसेठ को भी इस बात की खबर दी गई । व्याख्यान का समय होते ही व्याख्यान होल खचाखच भर गया था । ठीक उसी समय महाराजश्री प्रसंगोपात्त एक विनोदप्रद दृष्टान्त सुनाने लगे -

एक महात्मा एक गाँव में पधारे । यह महात्मा गाँव की चौपाल पर बैठकर प्रतिदिन गाँव के लोगों को धर्मोपदेश देते थे । उनके उपदेश गाँव के लोगों को बहुत ही रुचिकर (दिलचस्प) लगने लगे । इसलिए उपदेश में बहुत मानव-मेदिनी उमड़ती थी । उस महात्मा की वाणी सभी लोग आनन्द से सुनते थे । सारे गाँव के लोग महात्मा के पास आकर

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

सारी द्वारिका नगरी में रुक्मिणी के पुत्र का जन्मोत्सव बहुत ही धूमधाम से मना जा रहा है । मंगल-वाद्य बज रहे हैं । पुत्र का सूर्य-समान तेजस्वी मुखमण्डल देख श्रीकृष्ण ने उसका नाम प्रद्युम्नकुमार रखा । प्रद्युम्नकुमार को अपनी गोद में लेकर रुक्मि सोई है । अब क्या घटना घटित होती है ? कर्म की गति कैसी विचित्र है ? इसे सुनो

प्रद्युम्नकुमार का जन्म होने के बाद यह छट्ठी रात्रि थी । वह अपनी मां की गोद निश्चिंत सोया हुआ था । पुत्र को देख-देखकर रुक्मिणी का हृदय हर्षित हो रहा थ उसने पुत्र पर कितने ही आशा के मिनारे बांधे थे । परन्तु वहीं अचानक क्या बन बना ? यह सुनो -

उस समय प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभव का वैरी धूमकेतु नाम का एक देव आकाशम से विमान लेकर जा रहा था । उसका विमान रुक्मिणी के महल पर आते ही र गया । बन्धुओं ! कर्म किसी को नहीं छोड़ता । इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "कर्म बां से पहले खूब विचार करना । दूसरों का हनन करोगे तो तुम्हें दूसरे के द्वारा घात शिकार होना पड़ेगा, तुम दूसरों को छेदोगे, तो तुम्हें दूसरे के द्वारा छिन्न होना पड़ेगा । रस से और जैसे परिणाम से कर्म बांधे होंगे, उसी प्रकार भोगने पड़ेंगें । इसमें किसी साथ रियायत नहीं होगी ।"

उक्त देव का विमान जब रुक्मिणी के महल पर आते ही रुक गया, तब उसके में विचार हुआ - 'क्या नीचे कोई अवधिज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी या केवलज्ञानी म आत्मा विराजमान हैं या कोई महान् पवित्र सती है, अथवा किसी सती की लज्जा ज जा रही है ? क्या कारण है कि मेरा विमान आगे जाने से रुक गया है ?' जहाँ प आत्माएँ विराजमान हों, उनके मस्तक पर से विमान आगे बढ़ नहीं सकता, वहाँ रुक ज है । उक्त देव विचार करने लगा कि 'अगर कोई पवित्र आत्मा होगी तो मैंने उनके उ होकर विमान चलाया, इस कारण मैंने उनकी घोर आशातना की है । देखूँ तो सही है ?' यों सोचकर देव ने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर देखा । जहाँ तक उस ने अवधिज्ञान का उपयोग नहीं लगाया था, वहाँ तक उसकी भावना पवित्र थी । वि अब वह क्या विचार करता है ?

ज्यों ही उक्त देव ने अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर देखा, त्यों ही उसके अंग- में क्रोध की ज्वाला फूट पड़ी । मन ही मन बड़बड़ाया - 'अहो ! यह तो मेरा पूर्व का शत्रु है ! यह तो मेरी पत्नी का अपहरण करके उठा ले गया था । यह यहाँ अ पुत्र रूप में जन्मा है । अब मैं इसे जिंदा कैसे छोड़ दूं ? इस वैरी के वैर का पूरा ब लूंगा । वैर का बदला लेने का यह अवसर मिला है ।'

बन्धुओं ! वैर का विपाक विषम होता है । इसीलिए भगवान् ने कहा - "किस साथ वैर मत बांधना । अन्यथा, जिसके साथ वैर बांधी है, वह वैर वसूल किये

भाग में सुराख करके वे चोर घर में घुसने का ज्यों ही विचार करते हैं, त्यों ही पटेल नीं में बड़बड़ाने लगे - "आओ भाई आओ।" चोर यह सुनकर चौंके कि पटेल जाग रह मालूम होता है। इसलिए वे नीचे बैठने की तैयारी करते हैं, अतः पटेल बड़बड़ाए "बैठो भाई बैठो।" यह सुनकर चोरों ने सोचा - 'निश्चय ही पटेल जाग रहे हैं, ह पकड़े जाएँगे।' इसलिए डर के मारे भाग जाने के लिए उद्यत हुए कि पटेल बड़बड़ा - "उठो भाई उठो।" फिर वे उठकर जाने लगे कि पटेल पुनः बोला - "जाओ भा जाओ।" यह पटेल तो नींद में ही बड़बड़ाए थे, किन्तु चोरों ने मन ही मन सोचा, 'पटेल ने हमें देख लिया है, इसलिए कल राजा के पास हमारी शिकायत करके ह जेल में बंद करवा देंगे, क्योंकि सरकार में उनका बहुत अच्छा सम्मान है। इसलिए अभ उनके पास जाकर हम क्षमा मांग लें, यही बेहतर है।

बड़े सबेरे उठकर वे चोर पटेल के पास आए और उनके पैरों में पड़कर कहने लग - "पटेल बापा ! आप हमारे माँ-बाप हैं। हम आपके पुत्र हैं। हमारा अपराध क्षम करें। हम अब ऐसा गुनाह नहीं करेंगे।" पटेल तो विचार में पड़ गए कि कौन-सा गुना और क्या बात ? ये लोग किस बात की माफी मांगते हैं ? पटेल होशियार था, इसलि समझ गया कि बात में कुछ तथ्य है ? इसलिए चोरों के पास से सारी बात सुनकर उसक मर्म समझ गया। फिर बोला - "तुमने गुनाह तो भयंकर किया है, पर आज मैं तुम्हें माफ करता हूँ। परन्तु भविष्य में फिर ऐसा अपराध किया तो तुम्हें ज़िंदा नहीं छोडूंगा। अत फिर ऐसा अपराध न हो, इसका ध्यान रखना।" चोर तो पटेल के चरणों में पड़कर, उनक उपकार मानते हुए चले गए।

संत के चार वाक्यों ने पटेल का जीवन पलट दिया : चोरों के जाने के बाद पटेल मन में विचार करने लगा - 'युवकों के आग्रह से अनिच्छा से ही पाँच-दश मिनीट महात्मा का उपदेश सुनने के लिए गया तो मेरे घर में चोरी होती हुई रुक गई। महात्मा के चार वाक्यों से कैसा चमत्कार हुआ ? यदि सचमुच मैं अपनी आत्मा के शुद्ध भाव से स्वेच्छापूर्वक संत-समागम करूँ तो मुझे कितना महान् लाभ हो ? मेरा यह भव और पर-भव सुधर जाए।' फिर तो पटेल प्रतिदिन महात्मा का प्रवचन सुनने के लिए जाने लगा और अपना जीवन सुधार लिया। इस पटेल का दृष्टान्त सुनकर उक्त नगरसेठ, जो कभी उपाश्रय में नहीं आते थे, अब प्रतिदिन आने लगे। लक्ष्मी का दान-पुण्य में सदुपयोग करने लगे और अपना जीवन सफल किया। वास्तव में ठीक ही कहा है -

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधुकी, कटे कोटि अपराध॥

देवानुप्रियों ! पटेल और नगरसेठ ने संत-समागम किया तो उनका जीवन सुधर गया, तो फिर जो प्रतिदिन संत-समागम करे और वीतरागवाणी का श्रवण करे, उसका जीवन तो कितना पवित्र बनना चाहिए ? एक घड़ी का सत्संग भी कितना लाभदायक है ? संत के समागम से पापी से पापी जीव भी पावन बन गए। चण्डकौशिक जैसा

देवानुप्रियों ! मानवभव, आर्यदेश, उत्तमकुल, जैनधर्म, पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता, मन की स्वस्थता, दीर्घायुष्यता, आरोग्य, देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ और सर्वज्ञ वीतराग-कथित दयामय धर्म आदि भवसागर को पार करने और धर्म-धन की कमाई करने के लिए इतनी सब उत्तम सामग्री मिली है। फिर भी आपने जिंदगी के इतने वर्ष किसकी साधना में बिताये ? धर्म की कमाई के पीछे या पाप की कमाई के पीछे ? क्या कभी इस पर विचार किया है ? मानवभव पाकर तुम्हारा कर्तव्य क्या है ? भोग या त्याग ? सत्य या असत्य ? हिंसा या अहिंसा ? विरति या अविरति ? एकमात्र खाना या तपस्या करना ? ऐसे प्रश्न तुम्हारे अन्तर में उठते हैं क्या ? जिस मानवभव द्वारा नर से नारायण, जीव से शिव, जन से जनार्दन और आत्मा से परमात्मा बना जा सकता है, जिस मानवभव द्वारा सर्व कर्ममुक्तिरूपी मोक्ष में जाया जा सकता है, उस मानवभव का क्या और किसमें उपयोग कर रहे हो ? बोलो, जवाब दो। तुम जवाब नहीं दोगे, क्यों ठीक है न ? जवाब नहीं दो तो खैर, पर इतना तो अवश्य सोचो कि इस जीव ने अज्ञानावस्था में बहुत-से अशोभनीय कार्य किये, उनके फलस्वरूप नीच गति में, नीच कुल में और हलकी जातियों में अनन्त बार जाना पड़ा; किन्तु अब मुझे ऐसे (निन्दनीय) कुकृत्य नहीं करने हैं। ऐसा उत्तम मानवभव पाकर (अभी) उत्तम कार्य नहीं करूँ तो फिर कब करूँगा ? विवेकी आत्मा तो ऐसा विचार करता है कि इस मानवभव को पाकर धर्मोपार्जन करने का जितना लाभ लिया जा सके, उतना ले लूं। कहा भी है -

मन-मान्यो मळ्यो छे मनखो (२) लाभ एनो पूरो हुं लई लऊं...हो...
वारे - वारे क्यां पासुं छुं ?, नकामो जावा नहीं दऊं...हो...
भव मळ्यो जे जीवने तारे, चार गतिना फेरा टाळे,
एवी रीते हुं आराधुं, मुजने पार उतारे...हो...

ऐसा सुन्दर मानवभव बार-बार कहाँ मिलेगा ? इस भव में मेरे चार गतियों में बार-बार आवागमन मिट जाय, ऐसी अलौकिक साधना कर लूं। अगर मैं धर्म की कमाई-रूपी आराधना नहीं करूँगा तो चार गति, चौवीस दण्डक और चौरासी लाख जीवयोनियों में पुनः कहाँ का कहाँ भटक जाऊँगा कि फिर मेरा पता लगना भी कठिन हो जाएगा। अगर किसी अवसर पर धर्मकरणी नहीं हो सकी तो उसका अफसोस होना चाहिए। जैसे किसी बहन की हीरे की सलाई खो जाए तो उसे कितना दुःख और पश्चात्ताप होता है कि अहो ! बड़ी मेहनत से उसे प्राप्त की थी, वह खो गई ? इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि पूर्व-भवों में कितनी सरलता, विनय, नम्रता, अनुकम्पा, अभिमान-विहीनता इत्यादि गुण अर्जित किये, तब बड़े परिश्रम से तुझे मानवभव मिला है। हीरे की सलाई खो गई, वह तो कदाचित बहुत ढूंढने से मिल भी जाय, परन्तु यह आत्मा चौरासी लाख जीवयोनि में खो जाएगी तो क्या होगा ? उसमें भी अगर वह निगोद के गोल घेरे में उतर गई तो उसका महान् विनाश सम्भव है। निगोद में जीव की कैसी स्थिति होती है, यह तो तुम जानते हो न ? यह जीव दुकान में, घर में, व्यवसाय तथा सम्पत्ति में सर्वत्र

रुक्मिणी ने पुत्र को जन्म दिया कि तुरंत उसकी खास दासी दौड़ती हुई श्रीकृष्णजी को पुत्रजन्म की बधाई देने आई ।

पुत्र जन्मोत्सव का आनन्द : पुत्रजन्म की बधाई देने हेतु आनेवाली दासी को श्रीकृष्णजी ने अपने राजचिह्नों के सिवाय कण्ठ में धारण किया हुआ नवसेरा हार आदि सर्व आभूषण तथा मूल्यवान वस्त्र भेंट दे दिए । नगरी के अधिकारिओं को नगरी को श्रृंगारित करने के लिए श्रीकृष्णजी ने आदेश दिए कि 'मेरी आज्ञा से तुमलोग सारे बाजा को ध्वजा, तोरण आदि से श्रृंगारित-सुशोभित करो, स्थान-स्थान पर नृत्य-गीत-वाद्य क आयोजन करो ।' भंडारी को उन्होंने आदेश दिया कि 'दीन, दुःखी, निर्धन आदि को प्रचु धन देकर सन्तुष्ट करो ।' पुलिसकर्मिओं से कहा कि 'जिन अपराधियों को कारागार में डाल रखा, उनके गुनाह माफ करके उन्हें बन्धन-मुक्त कर दो । राज्य में कर आदि माफ कर दो । जिस-जिस व्यक्ति पर राज्य का कर्ज हो, उसे ऋणमुक्त कर दो । याचकों को मुक्त हस्त से दान दो । घर-घर में पुत्रजन्म की खुशी में बाजे बजवाकर धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाओ ।' इस प्रकार श्रीकृष्ण की आज्ञा से सर्वत्र आनन्द और उल्लास के साथ धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया जा रहा है । सारी द्वारिका नगरी में आनन्द छाया हुआ है । नगरजन प्रमुदित और पुलकित हैं । अनेक लोग राजपुत्र के जन्म की खुशी में राजा को अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेंट के रूप में देने हेतु आ रहे हैं । सारी नगरी आनन्दविभोर हो गई । केवल एक सत्यभामा के दिल में आनन्द नहीं है, कि रुक्मिणी के पुत्रजन्म हुआ है, किन्तु स्वयं के अभी तक पुत्रजन्म नहीं हुआ, इस कारण सत्यभामा को अपार दुःख है

पुत्र-मुख देखकर श्रीकृष्ण को हुआ आनन्द : सारी द्वारिका नगरी में आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है । पुत्रजन्म के छठे दिन श्रीकृष्णजी रुक्मिणी के महल में गए । वहाँ जाकर सिंहासन पर बैठकर पुत्र को रमाने हेतु मंगाया । पुत्र को अपनी गोद में लिटाकर वह रमाने लगे । उसके मुख के सम्मुख देखकर वह सोचने लगे कि 'अहो ! क्या यह जयन्त है या *अश्विनीकुमार है ? या फिर यह तेजस्वी सूर्य-बिम्ब है ? क्या पूर्व दिशा ने तेजःपुंज* के समान सूर्य को जन्म दिया है ? अथवा उसके शरीर में से निकलता हुआ तेज सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहा है ?' यह देखकर श्रीकृष्ण ने उसी समय उस शिशु का नाम प्रद्युम्नकुमार रखा । श्रीकृष्णजी ने पुत्र को बहुत देर तक रमाया । उन्हें उस शिशु को छोड़ने का मन नहीं हो रहा था । इतने में दासी ने आकर कहा - "महाराजा ! यह तो फूल है । बहुत रमाने से यह फूल कुम्हला जाएगा । अतः दीजिए, मैं इसकी माता की गोद में इसे दे आती हूँ ।" यों कहकर दासी ने पुत्र को लेकर उसकी माता को सौंप दिया ।

सारी द्वारिका नगरी में, और घर-घर में आनन्द-आनन्द हो रहा है । महिलाएँ मंगल-गीत गा रही हैं । श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के आनन्द का पार नहीं है । अत्यन्त आनन्द और उत्साहपूर्वक प्रद्युम्नकुमार का द्वारिका नगरी में जन्म-महोत्सव मनाया जा रहा है । इस आनन्द में कैसा विघ्न उपस्थित हो जाएगा ? उसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

काश्यपगोत्री भगवान महावीरस्वामी जो कह गये हैं, वह मैं तुझे कहता हूँ।" अहा ! सुधर्मास्वामी में कितनी सरलता है ? जबकि अपनी दशा कैसी है ? थोड़ा-सा कुछ किसी विषय की जानकारी मिल जाए, तब ऐसा हो जाता है कि मैं भी प्रखर ज्ञाता-वक्ता हूँ। मुझे सब कुछ आता है। इसलिए मैं ऐसा कहती हूँ। भगवान् कहते हैं - 'अहम्गले नहीं, 'मम' मरे नहीं, और वासना से विरत न हो, वहाँ तक जीव को मोक्ष नहीं मिलता।"

गौतमस्वामी चार ज्ञान और चौदह पूर्व-शास्त्रों के ज्ञाता थे। गौतमस्वामी के विषय में जब पूछा गया कि "भगवन् ! सर्वज्ञ के ज्ञान के आगे गौतमस्वामी का ज्ञान कितना है ?" भगवान् ने फरमाया - "एक ओर स्वयम्भूरमण समुद्र है, उसके किनारे एक चिड़िया बैठी हो। उस चिड़िया की चोंच में जितना पानी आए, उतना सर्वज्ञ के ज्ञान के आगे गौतमस्वामी का ज्ञान था।" अर्थात् -सर्वज्ञ का ज्ञान सिन्धु जितना है, जबकि गौतमस्वामी का ज्ञान बिन्दु जितना है। चार ज्ञान और चौदह पूर्व का ज्ञान होते हुए भी वह केवलज्ञान के आगे तो बिन्दु जितना ही है। अतः विचार करो कि इसमें अपना नम्बर कहाँ लगेगा ? अगर ज्ञान प्राप्त करना हो तो आत्मा में से 'अहम्' निकालकर आत्मा को नम्र बनानी होगी।

बहनें रोटी बनाती हैं, तब गूंथे हुए आटे की कनकी कठिन बांधती हैं, बाद में उसे मसल-मसल कर नरम बनाती हैं। कनकी को मसलने से जितनी नरम बने उतनी ही रोटी नरम बनती है। वैसे ही अभिमान से अक्खड़ बनी हुई आत्मा को नम्र बनाकर जन्म-मरण का चक्र टालना हो और केवलज्ञान पाना हो तो संयम और तप द्वारा आत्मा का दमन करना पड़ेगा। जैसे कनकी अधिक मसलने से रोटी नरम बनती है, वैसे ही तप और संयम द्वारा आत्मा का जितना अधिक दमन होगा, आत्मा उतनी ही नम्र बन जाएगी। पत्थर की शिला को तोड़ने के लिए दारुगोला रखा जाता है, और उससे शिला चूर-चूर हो जाती है। वैसे ही भगवान कहते हैं - "हे भव्यजीवों ! तुम इस उत्तम मनुष्यभव पाकर कायरता छोड़कर सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का ऐसा पावरफुल दारुगोला रख दो कि आत्मा पर (बंधकर) रहे हुए चार घातिकर्म चूर-चूर हो जाएँ।"

जरा समझो ! मूसलधार वर्षा बरसे तो रास्ते साफ हो जाते हैं, तथा कच्चे रास्ते में बड़े-बड़े गड्ढे पड़ जाते हैं। और धीमी-धीमी वर्षा बरसे तो रास्ते कीचड़वाले (चीकने) हो जाते हैं। क्यों यह बात ठीक है न ? इसी प्रकार जो आत्माएँ वीतरागवाणी का प्रपात हृदय में झेल (ग्रहण) कर उत्कृष्ट भाव से धर्माराधना करती हैं, उनके कर्मों के खड्डे पड़ जाते हैं, यानी कर्मों के बन्धन टूट जाते हैं। परन्तु रेंगते हुए चलते हैं, उनके कर्म धुल सकते हैं क्या ? नहीं।

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं - "मैंने भगवान् के श्रीमुख से जो सुना था, वह मैं तुझे कहता हूँ। *'अणुपुव्वेण महाघोरं'*-जैसे व्यापारी जलयान द्वारा समुद्र को पार करता है और अपने निर्धारित स्थान पर पहुँच जाता है। इसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् द्वारा बताए गए मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर अतीतकाल में अनेक जीवों ने संसारसागर

जैसे – तुमने आस्रव तत्त्व को जान लिया । इसे जान लेने के पश्चात् बैठे नहीं रहना है । अपितु आस्रव मेरा कट्टर शत्रु है, मुझे इसको दूर भगाना है, नष्ट करना है, यों समझकर आस्रव का नाश करने के लिए पुरुषार्थ करना है, कमर कसना है । क्या शत्रु को जानने के बाद कोई उसे घर में घुसने देता है ? नहीं, तो आस्रव जब आत्मा का कट्टर शत्रु है तो उसे पास में फटकने दिया जा सकता है क्या ? संवररूपी सैनिक की सहायता से आस्रव का नाश करो, उसे पास में आते ही खदेड़ दो । संवर आस्रव का शत्रु है । अतः आस्रव को नष्ट करने-भगाने हेतु संवर की शरण स्वीकार करनी पड़ेगी । संवर की शरणागति स्वीकारे बिना आस्रवरूपी शत्रु का नाश होना कठिन है । ऐसा किसके समझ में आ गया है ? तुम्हें पता है न ? जिसका अधिकार व्याख्यान में चल रहा है, उस महाबल-राजा को समझ में आ गया है कि अनन्तकाल से आस्रवरूपी शत्रु ने मेरी आत्मा का अहित किया है । आस्रवराजा ने मेरे आत्मगृह में पापरूपी चोरों को घुसने दिया है और मेरा आत्मिक धन लुटा दिया है । अब इसे निकालने के लिए मुझे संवर की शरण स्वीकार करनी चाहिए । अगर संवर की शरण नहीं स्वीकारूँगा तो मेरा आत्मगुणरूपी धन लूट कर ये चोर मुझे दुर्गति की खाई में फेंक देंगे । मेरे आत्मिक धन की पूर्णतया रक्षा करने के लिए अगर कोई सुरक्षित स्थान हो तो वह है – संयम । संयम अंगीकार करूँ, तभी आस्रव-शत्रु की हार हो सकती है । धन्य है, मेरे गुरुदेव धर्मघोष अनगार को, वे पधार गए तो मैं अब आस्रवशत्रु के चंगुल से मुक्त हो जाऊँगा ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

बन्धुओं ! महाबलराजा स्वयं तो आस्रव को छोड़कर संवर के स्थान में आने के लिए तैयार हुए । साथ में उनके छ मित्र भी तैयार हुए । इस कारण महाबलराजा को अत्यन्त आनन्द हुआ, क्योंकि ज्ञानी से ज्ञानी मिलते हैं तो आनन्द होता है । इसके विपरीत कोई गप्पीदास मिल जाए तो आनन्द नहीं होता । अतः महाबलराजा के मित्र अपने साथ संवर के घर में जाने के लिए तैयार हुए । इस कारण अपूर्व आनन्द हुआ । आस्रव में रहने से सतत पाप का प्रवाह आता रहता है । कदाचित् पूर्व कर्म के उदय से अविरति सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत-प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं कर सकता । परन्तु उसके हृदय में इस बात का खटका बना रहता है । श्रीकृष्ण वासुदेव अविरति थे, किन्तु संयम के प्रति उनके हृदय में आदर, बहुमान था । वे संयम के प्रेमी थे । जब-जब वे नेमिनाथ प्रभु के समवसरण में जाते थे, तब उनकी अन्तरात्मा रो उठती थी और वे कहते थे – "प्रभो ! मैं और आप साथ में रहे, साथ में खेले, परन्तु आप तो संयम अंगीकार करके अनेक अनेक जीवों को तारनेवाले प्रभु बन गए, जबकि मैं तो संसार में भटकता रह गया । मैं आपकी तरह अविरति का त्याग करके विरति के घर में कब आऊँगा ? इस चौदह रज्जू लोक के पाप को कब वोसराऊँगा (त्याग करूँगा) ?" अन्तःकरणपूर्वक ऐसा पश्चात्ताप होगा, तो कर्मों का क्षय होगा ।

माल हमारा है, किन्तु पैसा (परिश्रम) तुम्हारा है। जितना अधिक माल खरीदोगे, उस से उतना ही अधिक तुम्हारा कल्याण है। माल हमारा है, पर जो उसे खरीदता है, उसे बहुत लाभ होता है। संत प्रकाशस्तम्भ बनकर तुम्हें सच्ची राह बताते हैं। यथार्थ में कल्याणकारी हमारा तप-त्याग-ब्रह्मचर्यरूपी सच्चा माल खरीदने की भावना महाबलराजा के मन में जगी है, वह स्वयं तो दीक्षा के लिए तैयार हुए ही हैं। साथ में छह मित्र राजाओं को भी उन्होंने तैयार किये हैं। उनका वैराग्य कितना उत्कृष्ट होगा ? थावच्चाकुमार ने दीक्षा ली, तब, उनके साथ १००० पुरुषों ने, जमालिकुमार के साथ ५०० पुरुषों ने दीक्षा ली थी। बोलो, तुममें से कितने भाईयों को दीक्षा लेनी है ? (हँसाहँस) महाबलराजा ने अपने पुत्र बलभद्रकुमार का राज्याभिषेक किया। यानी बलभद्रकुमार राजा बने। अब महाबलराजा का मन यथाशीघ्र दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हुआ है। अतएव वे क्या करते हैं ? शास्त्रकार कहते हैं -

"तए णं से महब्बले राया, बलभद्दं कुमारं आपुच्छइ।"

उस समय महाबलराजा अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठाकर पुत्र से दीक्षा की अनुज्ञा मांगते हैं। जब पिता ने दीक्षा की आज्ञा मांगी, तब पुत्र की आँख में आंसू आ गए। रानियाँ भी रोने लगीं। परन्तु जिसके रग-रग में वैराग्य का पक्का रंग लग गया है, उसका हृदय (परिवार के मोहभरे वचनों से) नहीं पिघलता कि ये सब रो रहे हैं तो अभी रुक जाऊँ, दीक्षा न लूं। जिसे संसार के प्रति विरक्ति हो जाती है, उसे किसी के प्रति ममत्व नहीं होता। उसे तो अपनी आत्मा में रमणता की लगन होती है। भगवान् ने हमें भी कहा है - "हे साधक ! तू अपने में मस्त रहना। स्वाध्याय-ध्यान करना; जहाँ तक हो सके, गृहस्थ के संसर्ग से दूर रहना।" 'दशवैकालिक सूत्र' में भगवान् ने कहा है -

"गिहि-संथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं।"

"तू संग (संस्तव = संसर्ग) करे तो साधुओं का करना, पर गृहस्थों का संग मत करना।" गृहस्थ का अधिक संग, संसर्ग या परिचय संयम की साधना के लिए हानिकारक है। संसार सेवाल का किनारा है, उस पर पैर रखने से फिसल जाता है और चार गति का चक्कर काटनेरूपी हड्डियाँ टूट जाती हैं। जिसने संसार (गृहस्थवास) छोड़ दिया, क्या उसे संसार के प्रति राग रखना उचित है ? जितना-जितना संसारी का अधिक संसर्ग, उतनी-उतनी चारित्र में शिथिलता आती है। अतः चारित्र में रमणता करो। ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "दूसरों को बोध प्राप्त कराने जाते, यदि तेरा चारित्र लूटा जाय, ऐसा मत करना।" अतः तू संग करे तो सज्जनों-संतजनों का करना। सज्जन का संग जीवन को सुधारता है, जबकि दुर्जन का संग मानव को पतन के पथ पर ले जाता है। मुझे इस विषय में एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

पत्नी के संग से सेठ ने धर्म प्राप्त किया : धर्मवीर नामक एक धनाढ्य सेठ थे। उनकी पत्नी का नाम धर्मवती था। धर्मवती अत्यन्त धर्मिष्ठ और संस्कारी थी। जैसा नाम

की गुलामी में ही न ? मान लो, तुमने एक सामायिक की, किन्तु मन-वचन-काया की कितनी स्थिरता रखी ? कदाचित् तुम वचन और काया को स्थिर कर दोगे, मगर मन का घोड़ा तो कूदफांद करता है न ? एक भक्त ने भजन में गाया है -

तनने दकुं दबावी, पण मनडुं ना दबातुं (२)
एने कूदवुं बहु गमे छे ।
भगवान् ! तुजने भजतां, मारुं हैयुं क्यां भमे छे ?
भगवान् ! तुजने भजतां, अंतरमां शुं रमे छे ? ॥ भगवान् !...

सामायिक में दो घड़ी तक आत्म-स्वरूप का चिन्तन करने बैठे, पर मन तो कहाँ से कहाँ चक्कर लगा आता है और कैसे-कैसे विचार करता है ? जिसे ज्ञान-भान नहीं होता, उसके तो सामायिक में भी मोह-माया और ममता का तूफान चालू रहता है । सामायिक में असत्य कर्कश और सावद्य भाषा न बोली जाए, उसका उपयोग रखते हो क्या ? और काया की स्थिरता कितनी रखते हो ? दो घड़ी की सामायिक में भी हाथ-पैर कितने हिलाते-चलाते हो ? अरे ! बहुत-से लोग तो सामायिक में हाथ में पूंजनी लेकर बिना ही जरूरत के इधर से ऊधर व्यर्थ चक्कर लगाते हैं । बोलो, सामायिक में भी तुम्हारे मन-वचन और काया में कितनी चंचलता है ?

ज्ञानी भगवन्त कहते हैं - "मन, वचन और काया की जितनी चंचलता उतना ही आस्रव, और मन, वचन और काया की जितनी स्थिरता, उतना ही संवर ! सामायिक में द्रव्य से सावद्य योग के, क्षेत्र में चौदहरज्जू प्रमाण लोक के पापों को प्रत्याख्यान करना होता है, अतः ध्यान रखना, (दश मन के, दश वचन के और बारह काया के) इन बत्तीस दोषों में से कोई भी दोष न लगे । अभी तक जो कुछ भी हुआ सो हुआ, पर अब तो आत्मा के साथ दृढ़ निश्चय करो कि 'मैं दो घड़ी तक चारित्र की साधना में संलग्न हो रहा हूँ। अतः दो घड़ी तक संसार को भूलकर आत्मभावों में झूलकर शुद्ध सामायिक करूँ ।'

सामायिक साधना में बैठने के पश्चात् मन से सम्बन्धित कोई भी दोष न लगे, इसकी देखभाल रखो । सांसारिक भाव को साथ में रखने से सच्ची (शुद्ध) सामायिक होती । दो घड़ी तो संसार को भूलकर सामायिक करो । दुनिया में ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो व्यापार करे, किन्तु मुनाफे की इच्छा न रखे ? ऐसा कौन विद्यार्थी होगा, जिसे परीक्षा में पास होने की तमन्ना न हो ? तुम्हें सामायिक में आत्मकल्याण का लाभ लेना है न ? अगर सामायिक का सही माने में लाभ लेना हो तो संसार को भूलकर सामायिक करो। संसार के दावानल में जलता-झुलसता आत्मा (जीव) समताभाव की शीतलता प्राप्त करने के लिए बड़ी मुश्किल से तो सामायिक में बैठा, वहाँ भी पाप न छूटे, फिर तो पाप की भट्टी में ही जलना है या और क्या होगा ? बन्धुओं ! सामायिक का अर्थ क्या है ? जरा समझो । सामायिक यानी पापरूपी गुंडों को भगाने के लिए, सामने तानी हुई मशीनगन है । अगर इस मशीनगन का उपयोग करना न आए, सामायिक के दौरान भी पापरूपी गुंडे आकर तुम्हें सता जाएँगे, समता से विचलित कर देंगे । अतः गहराई से सामायिक का मूल्य समझो ।

शरण हो गई। स्वयं को धर्माचरण में जोड़नेवाली पवित्र धर्मपत्नी के चले जाने से सेठ को अत्यन्त दुःख हुआ। धर्माचरण करने का साथ छूट गया। सेठ की उम्र छोटी थी, परन्तु उन्होंने निर्णय किया कि मुझे अब दूसरी बार विवाह नहीं करना है।

पत्नी की मृत्यु के बाद सेठ छोटे भाई के यहाँ भोजन करने लगे : धर्मवीर सेठ अब छोटे भाई के यहाँ भोजन करने लगे। अपने पास धन तो बहुत था, इसलिए प्रतिमास हजार रुपये भाई के यहाँ देते थे। छह महीने तक तो छोटे भाई की पत्नी ने सेठ की ठीक सारसंभाल रखी। सेठ के अनेक नियम थे। प्रतिदिन चौविहार करना, नवकारसी करना, पौषध करना, पारणा हो उस दिन देर से आना, शाम को सेठ को चौविहार करना होता है, इसलिए जल्दी रसोई बनाना, ये सब काम छोटे भाई की पत्नी को बन्धनरूप लगने लगे। अतः ये सब कठिन और अरुचिकर काम कौन करे ? अतः छोटे भाई की पत्नी ने अपने पति से कहा - "आप अपने बड़े भाई से कह दें कि वे पुनर्विवाह कर लें। जिंदगीभर ऐसी कटकट मेरे वश की बात नहीं है।"

बन्धुओं ! मानव की प्रकृति कैसी विचित्र होती है ? एक धर्मिष्ठ आत्मा की सेवा करना, उसे सुखसाता उपजाना, उसे उसके धर्म के नियमों में सहयोग देना, उसको (अनुज बहू को) बन्धन प्रतीत हुआ। अतः छोटे भाई ने अपने बड़े भाई के समक्ष बात की। इस धर्मवीर सेठ को पुनर्विवाह करने की जरा भी इच्छा नहीं थी, परन्तु उनके समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ। अब क्या करना ? सेठ एकबार तो बहुत ही व्यथित हुए। बहुत विचार के अन्त में उन्होंने पुनः विवाह करने का निश्चय किया।

दूसरी अच्छे घर की कन्या के साथ सेठ का विवाह हुआ। वह कन्या बी.ए. पास थी। लिपस्टिक लगाना, पफ से पाउडर चेहरे पर पोतना इत्यादि अनेक फैशन में पारंगत थी। ऐसी कन्या धर्मवीर सेठ की सेठानी बन कर आई। सेठ धर्मिष्ठ और सादगी से रहनेवाले थे, इस कारण फैशनेबल सेठानी को यह अच्छा नहीं लगता था। पहले सेठ धर्म के सम्बन्ध में समझते नहीं थे, किन्तु पहली सेठानी धर्मवती थी, जिसने सेठ को धर्माराधना की ओर मोड़ा। पत्नी धर्मनिष्ठ और विवेकी होती है तो पति की इज्जत-आबरू और शोभा बढ़ाती है। कहा भी है -

शील भारवती कान्ता, पुष्प भारवती लता।
अर्थ भारवती वाणी, भजते कामपि श्रियम्॥

शील-सदाचार के भारवाली सुन्दर स्त्री, पुष्पों के भारवाली लता और अर्थ के भारवाली (सार्थक) वाणी, ये तीनों कोई अपूर्व शोभा पाते हैं।

इस सेठ की पूर्वपत्नी धर्मवती अत्यन्त सदाचारी और शीलवती थी और जो दूसरी नवविवाहिता पत्नी आई, वह तो फैशनपरस्त होकर घूमनेवाली थी। इसे तो धर्म का नाम भी नहीं सुहाता था। वह सेठ को कहने लगी - "इतनी छोटी उम्र में आप यह क्या धर्म के पुतले बनकर बैठ जाते हैं। इस उम्र में तो संसार की मौज-शौक मनाना होता है।"

किसान और संन्यासी का दृष्टांत : एक किसान ने एक संन्यासी से पूछा - "महाराज ! मेरी मृत्यु किस जगह होगी ?" इस पर संन्यासी ने कहा - "तेरे खेत में जो कुँआ है, उसके पास तेरी मृत्यु होगी ।" यह सुनकर किसान ने निश्चय किया कि मुझे खेत में जाना ही नहीं है । वहाँ जाऊँगा तो मेरी मौत होगी न ? दूसरा उपाय उस मूर्ख ने यह किया की उसने घुटने सहित दोनों पैर (टांगें) कटवा दिये, यह सोचकर कि पैर होंगे, तो भूलेचूके कभी खेत पर जाना पड़े । परन्तु मेरे दोनों पैर ही नहीं होगे, तो वहाँ जाना ही कहाँ से होगा ? फलतः मरने का भी वहाँ मौका नहीं आएगा । देखो, जीव की कैसी अज्ञान-दशा है ? मनुष्य चाहे जितने उपाय कर ले, पर जिस भूमि पर मृत्यु लिखी (होती) है, वहाँ येन-केन-कारेण जाना ही पड़ता है । मरना न पड़े, इसके लिए किसान ने अपने पैर कटवा डाले, उन्हें २० वर्ष हो गए । एक दिन ऐसा हुआ कि किसान का जवान पुत्र कुँए के आगे किसी काम से गया । कुँए पर कठड़ा बंधा हुआ नहीं था । अतः लक्ष्य चूक जाने से वह कुँए में गिर पड़ा । ऐसा होते ही खेत में काम करनेवाले दूसरे मनुष्य वहाँ दौड़कर पहुँचे और उसे कुँए से निकालने का प्रयत्न करने लगे । उसके पिता को इस बात की खबर दी गई । यह सुनते ही उसका पिता बैलगाड़ी में बैठकर जल्दी से आया । परन्तु तबतक उसके पुत्र के प्राणपखेरू उड़ चुके थे । कुँए से मृतपुत्र का शव निकालने के बाद उसे देखते ही वह किसान उस आघात को न सह सकने के कारण बेसुध होकर कुँए के पास गिर पड़ा और वहीं उसका आयुष्य पूरा होते ही उसके प्राणपखेरू उड़ चुके । कहने का मतलब यह है कि मनुष्य मृत्यु से बचने के चाहे जितने उपाय करे, चाहे जहाँ चला जाये, मृत्यु को कोई झुठला नहीं सकता ।

श्रीकृष्ण वासुदेव का दृष्टांत : श्रीकृष्ण वासुदेव ने भगवान् अरिष्ट नेमिनाथ से पूछा - "प्रभो ! मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी ?" तब भगवान् ने कहा - तुम्हारे पास में खड़े तुम्हारे छोटे भाई जराकुमार के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी ।" यह सुनकर जराकुमार को बहुत दुःख हुआ । इस कारण वह वहाँ जंगल में चला गया । संयोग ऐसा बना कि द्वारिका नगरी जब भस्म होने लगी, तब श्रीकृष्ण को चलकर जंगल में जाने का समय आया । वह जंगल में गए, और वहीं जराकुमार के हाथ से उनकी मृत्यु हुई । सर्वज्ञ वीतराग भगवान् अपने ज्ञान में जो जाना और कहा, वह कदापि मिथ्या नहीं होता । अगर मृत्यु नहीं चाहते हो, मृत्यु का डर लगता हो, तो पुनः जन्म न लेना पड़े, ऐसा पुरुषार्थ करो । जहाँ जन्म है, वहाँ मरण अवश्यंभावी है । अगर आपको जन्म-मरण का चक्कर काटने से थकान लगती हो तो आस्रवों को छोड़कर संवर की साधना में लग जाओ ।

महाबल राजा और उनके छह मित्रों को जन्म-मरण का डर लगा है, इसलिए वे आस्रवों का त्याग कर संवर के घर में जाने लिए तैयार हुए हैं । महाबलराजा के ज्येष्ठ पुत्र बलभद्रकुमार का राज्याभिषेक खूब धूमधाम से किया गया । अब महाबलराजा अपने छह मित्रों के साथ आर्हती दीक्षा लेंगे, यह बात यथावसर कही जाएगी ।

जरूर, किन्तु पास में नहीं गई । वह मन ही मन दांत पीसने लगी कि 'यह साधुड़ा आया है, वह मेरे पति को (धर्म के) वहम में डालेगा और मेरे संसारसुख में आग लगाएगा ।' संत तो सेठ को योग्य सीख देकर चले गए । सेठ को संत की कही हुई बात अच्छी लगी, सोचा - उस बात को एक बार अजमा तो लेना ही चाहिए । किन्तु कुछ दिन तो सेठ पत्नी के प्रति जैसा प्रेमभाव और हावभाव (इन दोनों में) था, वह चालू रखा । एक दिन सेठ ने सेठानी की परीक्षा लेने की ठानी । सेठ पलंग पर सो गए । परन्तु चार घंटे हो गए, फिर भी जगे नहीं । तब सेठानी ने मन में सोचा - 'सेठ अभी तक उठे क्यों नहीं ? दिन में वे कभी इतनी देर सोते नहीं । देखूँ तो सही ।' यों सोचकर सेठानी सेठ के पास आई । बारीकी से देखा कि सेठ बिलकुल हलन-चलन नहीं कर रहे हैं । आँखें कौड़ी की तरह खुल्ली रह गई हैं । फिर हाथ लगाकर ठीक से देखा तो लगा कि सेठ के प्राण निकल गये लगते हैं । अब क्या करना ? सेठानी संसार के काम में बहुत होशियार थी । इसलिए उसने सेठ की अंगुलियों में पहनी हुई हीरे की अंगूठियाँ, गले में डाली हुई सोने की चेन वगैरह गहने निकाल लिए । सभी कीमती वस्तुएँ कब्जे में की । अन्त में, लड्डू और दहीं खाने लगी । उसके पश्चात् सेठ के दांत पर लगी सोने की मेरू को हथोड़ा मारकर ज्यों ही निकालने जाती है, तभी सेठ जोर से चिल्लाते हैं । सेठानी अपना बचाव करने का प्रयत्न करती हैं । किन्तु सेठ की आँखें खुल जाती हैं । वह संसार के प्रेम या सुख की असलियत भलीभांति समझ जाते हैं । तुरंत संसार को छोड़कर सद्गुरु के चरण-शरण में चले जाते हैं । इस दृष्टान्त पर से आपको यही बात समझनी है कि धर्महीन आत्मा के संग में सेठ कितने धर्म-विमुख हो गए थे ? अतएव सदैव धर्मात्मा जीवों का संग करना चाहिए । महाबलराजा के पास छह मित्र एक हजार पुरुष उठा सकें ऐसी शिविका में बैठकर आ गए । देखिए, महाबलराजा जैसे धर्मिष्ठ मित्र मिले तो उनके साथ छह मित्र दीक्षा लेने को तैयार हो गए । इसका नाम है सच्चे मित्र ! यह सच्चा संग कहलाता है । अब यह सातों ही मित्र दीक्षा लेने जायेंगे, यह बात यथावसर कही जाएगी ।

आज मासखमण के धर का पवित्र दिवस है । आज का पवित्र और मंगल दिवस भव्य जीवों को प्रेरणा देता है कि हे भव्य जीवों ! तुम उठो, जागो, प्रमाद मत करो । जिसकी आत्मा जागृत हो गई हो, वह तपश्चर्या की आराधना में जुट जाए । तपस्या के द्वारा इन्द्रियों और मन का नियंत्रण करो । तप करने - बाह्य-आभ्यन्तर तपश्चरण से महान लाभ होता है, पूर्वसंचित (बद्ध) कर्मों की निर्जरा होती है, आत्मा तेजस्वी बनती है, शरीर नीरोग और स्वस्थ होता है । तपश्चर्या से अनाहारक दशा प्राप्त करने का अभ्यास हो जाता है । तप से-सम्यक् तप की आराधना से सकाम निर्जरा होती है । 'तत्त्वार्थ सूत्र' में कहा है - ***"तपसा निर्जरा च"*** - बाह्य-भ्यन्तर तप से संवर और निर्जरा दोनों ही हो जाते हैं । तपश्चर्या से इन्द्रियों के घोड़े शान्त हो जाते हैं । अतः मासखमण के धर के दिवस से तप की आराधना में जुट जाओ । अधिक भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

नहीं रहेगा।" जिसके साथ तुम्हारा वैर बंधा हो, उसके साथ तुम प्रेम से क्षमायाचना कर लो। अगर वैर रह गया तो इस भव में महान् भय उत्पन्न होगा और दूसरे भव में भी भय उत्पन्न होगा। शास्त्र में कहा है - *"वेराणुबंधीणि महब्भयाणि"* - वैर की परम्परा महाभयंकर होती है। जितना वैर उतना ही अधिक भय उत्पन्न होता है। अतः किसी जीव के साथ वैर बांधना नहीं। यह देव रोषवश आगबबूला होकर विमान से नीचे उतरा। रुक्मिणी निद्राधीन है। उसके बगल में प्रद्युम्नकुमार भी नींद ले रहा है। उसे उठाया और दबाकर पकड़ा, मानो मार ही डालेगा। यम की तरह क्रोध से दांत कचकचाते हुए प्रद्युम्नकुमार को उठाकर वह देव विमान में बैठ गया। उसे मार डालने के लिए वह कैसे प्रयत्न करेगा। यह यथावसर कहा जाएगा।

कल मासखमण के धर का पवित्र दिवस है। आत्मा पर लगे हुए चिकने कर्मों का क्षय करने की आराधना-साधना करने हेतु तैयार होना। कल से एक महीने पर 'संवत्सरी' का पवित्र दिन आएगा। उसकी स्थापना का रोपण कल से हो जाएगा। उस स्थापना को मनाने के लिए कल से आराधना करने का हमारा भावभरा आमंत्रण है। अन्य सब भाव यथावसर कहा जाएगा।

व्याख्यान - २७

श्रावण सुदी ५, शनिवार, ता. ३१-७-७६

मानवभव मिला है, धर्मधन कमाने के लिए

महीना का धर

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी भगवंत फरमाते हैं - हे चेतन-आत्मा ! चौरासी लाख जीवयोनियाँ पार करके बड़े कष्ट से तुझे यह मानवभव मिला है। मानवभव प्राप्ति से क्या तात्पर्य है ? मानवभव धर्म-कमाई का बाजार है। मानवभवरूपी बाजार में आकर धर्म का धन कमाना चाहिए। तुमलोग धर्मरूपी धन कमा रहे हो या गंवा रहे हो ? गहराई से सोचना कि हमने मानवभव पाकर धर्म-धन कमाया है या आत्मा पर पापों का एक के बाद एक ढेर लगाया है ? जो आत्मा ऐसा उत्तम मनुष्यभव पाकर विषयों में आसक्त बन जाते हैं, वे पापों की कमाई करते हैं। धर्मरूपी धन की कमाई करने के लिए तो विषयों के प्रति वैराग्य लाने की जरूरत है।

और दूसरा प्रतिकूल उपसर्ग । इनमें से प्रतिकूल उपसर्गों के समय तो तू जैसे दृढ़ रहता है, वैसे ही अनुकूल उपसर्गो के समय भी दृढ़ रहना, क्योंकि अनुकूल उपसर्ग तुझे पछाड़ डालेगा ।" जैसे कोई जवान मनुष्य ने अपने माता-पिता, पत्नी और पुत्र-पुत्रियों आदि का मोह छोड़कर भागवती दीक्षा ले ली । वह दस वर्ष के बाद अपने (भू.पू.) गाँव में आया । गाँव में अनेक घरों से गौचरी करते-करते जहाँ उसका गृहस्थावस्था का घर था, वहाँ गौचरी के लिए आया । वहाँ पूर्व-अवस्था की पत्नी आकर कहती है - "स्वामीनाथ ! आप वृद्ध माता-पिता को छोड़कर गए, इस कारण वे बहुत झूरते हैं - रोते कलपते हैं । मुझे भी आपका वियोग बहुत ही खटक (दिल में चुभ) रहा है ।" पुत्र तो पैर पकड़कर रोते-रोते कहते हैं - "पिताजी आप छोटे-छोटे बालकों को छोड़कर कहाँ चले गए ?" वृद्ध माता-पिता भी रोते-रोते कहते हैं - "बेटा ! तूने इतने वर्षो तक संयम-पालन किया, इससे तेरे कर्मों का क्षय हो गया, अतः अब तू (दीक्षा छोड़कर) घर आ जा । अब तो तुझे हमारी (बूढे माँ-बाप की) सेवा करनी चाहिए ।" यों कहकर सभी पारिवारिक जन रोते-बिलखते हैं । ऐसे समय में तप-संयम-वैराग्यनिष्ठ साधक विचार करे कि यह अनुकूल उपसर्ग है । इस समय मुझे इनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आकर फंसना-फिसलना नहीं चाहिए ।

जो व्यक्ति संसार का स्वरूप ठीक-ठीक समझकर गृहत्याग करके दीक्षित हुआ है, वह उसमें नहीं फंसता । जिस साधक में राग-द्वेष-मोह की चिकनाई है, वह फंस जाता है । शास्त्र में कहा है -

"विरत्ता उ न लग्गंति, जहा से सुक्केव गोलए ।।"

जैसे मिट्टी का सूखा गोला दीवार पर नहीं चिपकता । इसी प्रकार जिन जीवों (आत्माओं) को संसार के प्रति बिलकुल आसक्ति नहीं है, जो संसार को नाक का मैल समझकर उसे छोड़कर निकला है, उस साधक को कोई चाहे जितना सांसारिक प्रलोभन दे, अथवा संसार में फंसाने के लिए चाहे जितने प्रयत्न करे, फिर भी वह उसमें आसक्त नहीं होता । संक्षेप में, जहाँ अन्तर की गहराई में भी सांसारिक (वैषयिक) सुखों की आसक्ति रही हुई है, वे ऐसे (अनुकूल) उपसर्ग आने पर फंस जाते हैं । इसके विपरीत जिसका चारित्र मेरुपर्वत की तरह अडोल है, वे सांसारिक प्रलोभनों में नहीं फंसते । एक श्लोक द्वारा नीतिकार कहते हैं -

"वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां, गृहेऽपि पंचेन्द्रिय-निग्रहस्तवः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते, निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् ।।

रागी मनुष्यों को वन में दोष घेर लेते हैं, जो विषम जीव हैं, उनके घर में भी पंचेन्द्रिय निग्रहरूप तप की प्राप्ति हो जाती है । जो अनिन्द्रित कार्य-धर्मकार्य में प्रवृत्त रहते हैं । राग से विरत उस विरक्त गृहस्थ के लिए घर भी तपोवन जैसा है ।

हिस्सेदारी (पार्टनरशिप) करता है, परन्तु यह जीव निगोद में गया, वहाँ पर तो वह एकमात्र एक ही शरीर में अनन्त जीव एक साथ भागीदारी करके रहा था। यहाँ तो जरा-सी संकड़ी जगह मिले तो जीव घबरा जाता है, बेचैनी हो जाती है, जबकि निगोद में एक शरीर में अनन्त जीवों के साथ कैसे रहा होगा ? और नरक-तिर्यंच-गति में भी कैसे-कैसे दुःख सहे होंगे ? उसका विचार करो। ऐसे दुःख भोगने के लिए (ऐसी गतियों-योनियों में) नहीं जाना हो तो मनुष्यभव की सार्थकता को समझो। मोह के पैर मजबूत हो जाएँ, कुसंस्कारों का कचरा आत्मा को मलिन बनाये, और मस्तक पर कर्मों का कर्जा बढ़े, ऐसा एक भी कार्य मानवभव पाकर तुम्हारे हाथों से न हो, इसका ध्यान रखो।

अनन्त पुण्य-राशि के प्रभाव से भवसागर तिरने की उत्तम सामग्री मिली है, मगर क्या उसकी कीमत तुमने समझी है ? कोई मनुष्य समुद्र में डूब जाने के सिरे पर हो,उस समय कोई नौकावाला मनुष्य (नाविक) डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए दौड़ता हुआ नौका लेकर आया, किन्तु वह पागल आदमी था, नौका की कीमत नहीं समझा, उलटा नौका की उपेक्षा करने लगा। भला बताइए उसका क्या हाल होगा ? इसी प्रकार भव-समुद्र में डूबने से उबारने के लिए तुम्हारे सामने भी एक नौका आकर खड़ी है। बोलो, वह कौन-सी नौका होगी ? जिसे तरना हो, उसे नौका का पता होता है न ? वह नौका है धर्म की। धर्मरूपी नौका तुम्हें डूबने से बचाने के लिए सामने आकर खड़ी है। किन्तु मोहरूपी मद्य के नशे में उन्मत्त बना हुआ जीव उस (धर्म-) नौका को ठोकर मारता है, उसी की हंसी उड़ाता है।

बन्धुओं ! जिस मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल होता है, उसे सन्तों, धर्मगुरुओं की सीख के प्रति रुचि होती है; तप, त्याग, वैराग्य की बातें अच्छी लगती हैं, उसके विपरीत जिसका भविष्य अन्धकारमय होता है, उसे धर्मगुरुओं, संत-सतियों द्वारा कही हुई धर्म की बातें रुचिकर नहीं लगती। उसे तप, त्याग और वैराग्य की बातों में रुचि नहीं होती। साधु-साध्वी (धर्मगुरु) तुम्हें अच्छी लगें या न लगें, उनकी सीख में तुम्हारी रुचि हो या न हो, वे तो तुम्हें आत्महित-आत्मकल्याण का उपदेश देंगे। भगवान् महावीर ने 'सूत्रकृतांग सूत्र' में फरमाया है -

अणुपुव्वेण महाघोरं, कासवेण पवेइयं ।
जमादाय इओ पुव्वं, समुद्दं ववहारिणो ॥ - सूत्र. सू., अ.-११, गा.-५

यह वाणी तो भगवान् महावीर स्वामी की है। परन्तु यहाँ सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी आदि संतों से कहते हैं - "भगवान् महावीर के द्वारा प्ररूपित मोक्षमार्ग को मैं बताता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो।" देखो, सुधर्मास्वामी के जीवन में कितनी नम्रता है ? सुधर्मास्वामी के लिए तो हम यों कहते हैं -

"जिन नहीं पण जिन-सरीखा, सुधर्मास्वामीने जाणीए ।"

वे केवलज्ञानी नहीं थे, फिर भी उन्हें केवलज्ञानी से उपमित किया गया है। अतः विचार करो, उनका ज्ञान कितना विशाल होगा ? फिर भी वे कहते हैं - "हे जम्बू !

का सत्कार करने की तैयारी की जाने लगी। राजा ज्यों ही नगर के सदर दरवाजे के निकट आए, त्यों ही एकाएक दरवाजा टूटकर गिर पड़ा। अतः मंत्री आदि राजपुरुषों ने कहा - "यह तो अपशुकन माना जाएगा। अतएव राजा नगर में प्रवेश न करके वहाँ से वापस लौटे। राजा और प्रजा विचार करने लगे कि दरवाजा तो बहुत ही मजबूत था। वह एकाएक कैसे टूट पड़ा ? गिरा हुआ टूटे हुए दरवाजे की मरम्मत करवा दी गई। दूसरे दिन राजा ज्योंही सेना के सहित पुनः नगर में प्रवेश करने के लिए दरवाजे के निकट आए, त्योंही फिर वह दरवाजा टूटकर गिर पड़ा। इस प्रकार तीन-चार बार दरवाजे की मरम्मत कराई, फिर भी ज्यों ही राजा दरवाजे के नजदीक आते, त्योंही वह दरवाजा टूटकर गिर पड़ता। राजा को चिन्ता हुई कि बार-बार ऐसा क्यों होता है ? राजा ने मंत्री से कहा - "दरवाजा बारबार क्यों टूटकर गिर पड़ता है ? तुम इसकी जांच पड़ताल करो।" राजा की आज्ञा होने से मंत्री ने एक ज्योतिष को बुलाया। मंत्री और ज्योतिषी दोनों राजा के पास आए। राजा ने दरवाजा टूटकर गिर पड़ने का कारण पूछा। ज्योतिष ने ठीक-ठीक देखकर कहा - "महाराजा ! अपने नगर की अधिष्ठात्री देवी आप पर कोपायमान हुई है। इस कारण दरवाजा टूटकर गिर पड़ता है।" राजा ने पूछा - "देवी को प्रसन्न करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ?" इस पर ज्योतिषी ने कहा : साहब ! आप अथवा किसी पुत्र के माता-पिता अपने पुत्र का रक्त छींटे तो देवी का कोप शान्त हो।" धर्मिष्ठ राजा ने कहा - "तो फिर मैं गाँव में नहीं आऊँगा। ऐसा पाप तो मैं हर्गिज नहीं करने दूंगा।" अन्त में गाँव का महाजन इकट्ठा हुआ। सबने विचार करके राजा को बहुत समझाया. परन्तु राजा किसी भी मूल्य पर इसके लिए अपनी स्वीकृति नहीं देते। फिर भी महाजन अपना निर्धारित कार्य करने के लिए तैयार होता है, कि हमारे राजाजी गाँव के बहार क्यों रहें ? प्रधान तथा महाजन ने हठाग्रह करके कहा - "जो व्यक्ति अपनी इच्छा से बालक देगा तो लेंगे।" दूसरी ओर राजा भगवान् से प्रार्थना करता है - "भगवान् ! सबको सद्‌बुद्धि दो। हमारी ओर से किसी भी जीव का वध न हो और यह आफत टल जाए।" अन्त में, गाँव के अग्रगण्य लोगों ने एक सोने का बालक बनवाया। उसे गाड़ी में रखकर उसके बगल में एक करोड़ स्वर्णमुद्राओं की हुंडी रखकर वह गाड़ी नगर में घुमाई और घोषणा करवाई कि 'जो माता-पिता अपने हाथ से अपने पुत्र को मारकर उसका रक्त सदर दरवाजे पर छींटेंगे, उन्हें यह सोने का बालक तथा एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दी जाएँगी।' इस गाड़ी को लेकर गाँव में फिराते-फिराते महाजन के आदमी वरदत्त नामक एक गरीब ब्राह्मण के घर के पास से गुजरे। घोषणा सुनकर वरदत्त ने सोचा - 'मेरे, सात पुत्र हैं। उनमें से एक की बलि दे दूं तो मेरा जिंदगीभर का दारिद्रय मिट जाए।' इस ब्राह्मण ने अपना विचार अपनी पत्नी रुद्रसोमा को बताते हुए कहा - "हमारा सारा परिवार दुःखी है। अतः एक लड़के की बलि देकर क्यों न सुखी हो जांय ?" रुद्रसोमा पति का विचार सुनकर गहरे चिन्तन में पड़ी कि क्या करना चाहिए ? यह देख उसका पति बोला - "तू क्या विचार कर रही है ? देख, मेरी बात

को पार किया है। अर्थात् निर्धारित स्थल सिद्धगति प्राप्त की है। सिद्धगति को प्राप्त करने में मोक्ष के बीजरूप सम्यक्त्व की जरूरत है। और सम्यक्त्व को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु का आश्रय लेना पड़ता है। अनन्तानुबन्धी चौकड़ी (क्रोध, मान, माया, लोभ) और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ; इन सात प्रकृतियों के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। तथा अनन्तानुबन्धी चौकड़ी, एवं अप्रत्याख्यानी तथा प्रत्याख्यानी की एक-एक चौकड़ी, यों १२ चौकड़ियों की १२ प्रकृतियाँ तथा दर्शन-मोहनीय तीन प्रकृतियाँ, यों कुल पन्द्रह प्रकृतियों के क्षयोपशम से चारित्र की प्राप्ति होती है। जहाँ केवल सम्यक्त्व हो, वहाँ चारित्र की भजना है, किन्तु जहाँ सम्यक् चारित्र हो, वहाँ सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) और सम्यग्ज्ञान की नियम (अवश्यम्भाविता) है। जहाँ सम्यक्त्व हो, वहाँ ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। और जहाँ सम्यग्ज्ञान है, वहाँ सम्यक्त्व अवश्यम्भावी है। मनुष्यजन्म में वीतरागवाणी, धर्म का सुयोग, सम्यक्त्व और चारित्र, इन चारों की आराधना से जब केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रकट होता है, तब (सर्वकर्म-मुक्तिरूप) मोक्ष प्राप्त होता है।

जैसे ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियों का सहारा है, वैसे ही मोक्ष की मंजिल तक पहुँचने के हेतु चढ़ने के लिए सिद्धान्त-(शास्त्र-) वचन आश्रयरूप है। यह सिद्धान्त का वचन है कि जिसे शीघ्र मोक्ष में जाना हो, वह चारित्र अंगीकार करे। सम्यक् चारित्र मोक्ष की उत्कृष्ट साधना है। अगर यह साधना शक्य न हो तो मध्यम साधना है - बारह व्रत (श्रावक के १२ व्रत)। श्रावक (श्रमणोपासक) को बारह व्रत अंगीकार करने चाहिए। जैसे ब्राह्मण को यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण किये बिना नहीं चलता, वैष्णव धर्म में कण्ठी के बिना नहीं चलता, वैसे जैनकुल में जन्मे हुए (वयस्क) व्यक्ति को बारह व्रत अंगीकार किये बिना नहीं चलता। यदि तुम बारह व्रत भी ग्रहण न कर सको तो आखिरकार सामायिक, पौषध, दया, संवर करो, रात्रिभोजन-त्याग, ब्रह्मचर्यपालन करो, यथाशक्ति बाह्य-आभ्यन्तर तप करो। जैसे - तुम्हारी दुकान में अनेक प्रकार का माल भरा हुआ है, वैसे ही हमारे वीतराग भगवान् की दुकान में विविध प्रकार का बढ़िया माल भरा हुआ है। एक जगह कपड़े की बड़ी दुकान में, सेठ-सेठानी खरीदी करने आए। सेठानी को देखकर व्यापारी ने खुश होकर कहा - "आओ बहन ! तुम्हें क्या चाहिए ?" सेठानी ने कहा - "मुझे साड़ी चाहिए।" रंगीला व्यापारी रंग में आकर एक से एक बढ़िया मूल्यवान साड़ियाँ खोलकर बताता है। व्यापारी ने ५०-६० साड़ियाँ खोलकर बताईं। मगर सेठानी ने एक भी साड़ी नहीं खरीदी। डेढ घंटा हो गया, किन्तु एक भी साड़ी नहीं बिकी। तब व्यापारी क्या कहता है ? 'अरर ! तू ही बोवणी वेला में कहाँ से आ गई ? मेरा दिवस बिगड़ गया और मेहनत माथे पर पड़ी।' यों व्यापारी निःश्वास छोड़ता है। धनिक सेठानी के प्रति बड़ी आशा थी कि यह बहुत खरीदी करेगी। परन्तु हुआ उलटा ही। सेठानी ने कुछ भी नहीं खरीदा। मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम तो ऐसे ग्राहक नहीं हो न ? मैं आप लोगों से वीतराग प्रभु की दुकान का भिन्न-भिन्न प्रकार का माल बताती हूँ। बोलो, खरीदना है न ?

धन दो।" महाराज ने ब्राह्मण को स्वर्णमय बालक तथा एक करोड़ सौनेया ब्राह्मण को प्रदान किया। तत्पश्चात् इन्द्रदत्त को स्नान कराया, अच्छे वस्त्राभूषण पहनाए। इस कारण वह एक राजकुमार के समान शोभायमान होने लगा। महाजन उसके माँ-बाप के साथ इन्द्रदत्त को लेकर महाराजा के पास पहुँचा। राजा को सारी हकीकत से अवगत कराया। महाजन की बात सुनकर राजा का हृदय कांप उठा। उस लड़के के माता-पिता के प्रति राजा के मन में तिरस्कार का भाव उत्पन्न हुआ कि ये कैसे निर्दय माँ-बाप हैं, जो धन के लोभ में पड़कर अपने लाडले लाल का अपने हाथ से वध करने को उतारू हो रहे हैं? अश्रुपूरित नेत्रों से राजा कहते हैं - "अरे पुत्र! थोड़ी देर बाद तेरी मृत्यु होनेवाली है, फिर भी तेरे मुख पर मुस्कान क्यों है? क्या तुझे मरने का दुःख नहीं होता?" इस पर इन्द्रदत्त ने कहा - "महाराजा! मृत्यु से क्या घबराना? क्या घबराने से मृत्यु मुझे छोड़ देगी? जो जन्मा है, वह देर-सबेर एक दिन अवश्य ही मरण-शरण होगा। तब फिर मृत्यु से क्यों डरना चाहिए? तथा जब बाड़ ही ककड़ी को खाने लगती है, तब उसकी रक्षण कौन करे? ऐसी ही बात मेरे लिए बनी है। मेरे माता-पिता धन पाकर सुखप्राप्ति के लिए मेरा वध करने हेतु तैयार हुए हैं। महाजन आपको नगरप्रवेश कराने के लिए पैसे देकर मुझे खरीद रहा है और आप प्रजापालक होते हुए भी मेरा वध रोक नहीं सकते। तब फिर मैं किसकी शरण में जाऊँ? अगर मेरा आयुष्य पूर्ण होने आया होगा तो मेरी मृत्यु हो जाएगी और अगर मेरा आयुष्य लम्बा होगा तो कोई भी मुझे मार नहीं सकेगा। मुझे अपने नवकार मंत्र पर पूर्ण श्रद्धा है। इसका स्मरण करता हुआ श्रद्धापूर्वक आपके पास आया हूँ। आपके समक्ष खड़ा हूँ।"

वस्तुतः जिसके हृदय में नवकार मंत्र का स्मरण हो, उसका कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता। यों इन्द्रदत्त को निर्भयतापूर्वक बोलता देखकर सभी उपास्थित जन स्तब्ध हो गए। एक छोटे-से फूल-से कोमल बालक के उद्‌गारों ने राजा का हृदय बींध डाला। उनकी अन्तरात्मा पुकार उठी - "ऐसा अधर्म मत करो। मेरा नगर में प्रवेश न हो तो कोई हर्ज नहीं। मैं ब्राह्मण पुत्र की हत्या नहीं करने दूंगा। मुझे नगर में नहीं आना है।" राजा के अन्तर से उठे करुण शब्दों को सुनकर सभी रुक गए। इन्द्रदत्त की नवकार महामंत्र के प्रति दृढ़ श्रद्धा तथा राजा की अहिंसा के प्रति प्रीति के कारण नगर की अधिष्ठात्री देवी प्रसन्न होकर अदृश्य रूप से बोली - "हे राजन्! तुम्हारी अहिंसक वृत्ति से और इस बालक की पंच परमेष्ठी के प्रति श्रद्धा से मैं प्रसन्न हुई हूँ। अब तुम खुशी से नगर-प्रवेश करो।" अधिष्ठात्री देवी बोल रही थी, तभी आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और तत्पश्चात् राजा ने अपनी सेना-सहित नगर में प्रवेश किया। राजा ने वरदत्त ब्राह्मण को धन प्रदान कर दिया और कहा - "इन्द्रदत्त अब मेरा पुत्र है। इस प्रकार धर्म का प्रभाव देखकर (अश्रद्धालु) प्रधान श्रद्धावान् बना।

देवानुप्रियों! अहिंसा-दया-प्रधान धर्म की कैसी अद्‌भुत महिमा है? कोई मनुष्य करोड़ों रुपयों का दान दे, उसकी अपेक्षा भी दयाधर्म का महत्त्व अधिक है। समस्त दानों

था, वैसे ही उसमें गुण थे। परन्तु सेठ तो नाम के ही धर्मवीर थे। उनके जीवन में धर्म का नाम-निशान नहीं था। यह देखकर सेठानी के दिल में बहुत दुःख होता था। एक दिन धर्मवती ने अपने पति से कहा - "स्वामीनाथ ! धर्मविहीन जीवन प्राणरहित कलेवर जैसा होता है। जिस घर में सामायिक, प्रतिक्रमण, चौविहार आदि होते हों, वह घर स्वर्गतुल्य होता है। जहाँ धर्म नहीं, वह घर मेरी राय में जंगल के समान है।"

पत्नी के वचन सुनकर सेठ ने मन में सोचा - 'बात तो सच्ची है।' इसलिए सेठ कहते हैं - "मैं अब से धर्मध्यान करूँगा।" सेठ की बात सुनकर सेठानी के मन में आनन्द-आनन्द हो गया। सेठ ने प्रतिज्ञा की - "जबतक मैं सामायिक-प्रतिक्रमण नहीं सीख लूंगा, तबतक मेरे दूध और दूध से बनी तमाम चीजों को खाने का त्याग है।" धर्मवीर सेठ ने तीन महीने में सामायिक-प्रतिक्रमण सीख लिया। अब तो सेठ-सेठानी दोनों साथ बैठकर धर्मध्यान करने लगे। सेठ ने रात्रिभोजन, कंदमूल, प्याज आदि का भी त्याग कर दिया। महीने में दस तिथियों को वे पौषध करते थे। इस प्रकार पति को धर्म के रंग में रंगे हुए देख सेठानी को अलौकिक आनन्द हुआ - 'अहो ! अब मेरा जीवन सफल हुआ। गृहस्थ-रथ के दो पहिये वीतरागमार्ग पर चलने में एक समान हो गए।

देवानुप्रियों ! क्या तुम्हारे घर में भी ऐसी श्राविका है, जो तुम्हें धर्म के मार्ग की ओर मोड़ सके ? सेठ और सेठानी दोनों धर्म के झूले में झूलने लगे। सेठ-सेठानी दोनों स्वयं तो धर्माचरण करते ही थे, किन्तु अपने घर में और दुकान में काम करनेवाले नौकरों को भी रात्रिभोजन का त्याग कराया। सेठ-सेठानी ने निश्चय किया कि गाँव में साधु-साध्वीजी पधारें, तब घर और दुकान के सब नौकर-चाकरों को भी साथ में लेकर व्याख्यान सुनने जाना। धर्मवीर सेठ ऐसा विचार करते थे कि इतने नौकरों में से यदि एक भी धर्म को प्राप्त कर लेगा तो मेरा जीवन धन्य बन जाएगा। सेठ के जीवन का इतना अधिक परिवर्तन देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गए। लोग सेठ से पूछने लगे - "सेठ ! आपको कौन-से गुरु मिल गए, जिससे आप धर्म-मार्ग में इतने अधिक जुट गए।" तब सेठ कहते हैं - "मुझे सद्गुणी पत्नी मिली है, जिसने मेरा जन्म सुधार दिया। पाप में पड़कर पतित बने हुए मेरे जीवन का उसने उद्धार करा दिया।" धर्मवीर सेठ छोटी उम्र में ही धर्माचरण में इतने अधिक लग गए। उन्हें देख-देखकर अनेक व्यक्ति धर्म को प्राप्त हुए। संत-सतीजी के दर्शन, श्रवण और तप, त्याग, प्रत्याख्यान आदि धर्मध्यान का लाभ लेते हुए पति-पत्नी दोनों धर्माराधना में दिवस व्यतीत कर रहे हैं। पाँच वर्ष आनन्द में गुजर गए। एक दिन सेठानी ने कहा - "स्वामीनाथ ! अब मेरा आयुष्य पूर्ण होने आया है। इसलिए दो दिन बाद मैं चली जाऊँगी।" सेठ कहते हैं - "यह तू क्या कह रही है ? मुझे तेरी बात नहीं सुननी है।" सेठानी ने कहा - "आप सुने या न सुने, किन्तु आयुष्य पूरा होने पर एक दिन सबको जाना है। इसमें किसी का वश नहीं चलता। बस, आपने धर्म को प्राप्त कर लिया, इसका मुझे बहुत सन्तोष है। आप जीवनभर धर्माराधना करते रहना।" ऐसी हिदायत करके सेठानी दो-तीन दिन में मरण-

कर डालूं । शास्त्रों में बालहत्या का पाप बहुत महान् बताया गया है । अतः मैं अपने हाथ से बालहत्या का पाप नहीं करूँगा । परन्तु ऐसा उपाय करूँ ताकि यह अपने आप मर जाए ।' यों विचार करके देव ने क्या किया ?

आकाशवाणी हुई, उसे देव ने सुनी भी, फिर भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ । इसलिए उसने सोलह गज लंबी, मोटी और २०-२५ मन वजनवाली एक विशाल शिला लाकर ६ दिवस के कोमल बालक पर रख दी । सोचा कि 'बस, अब यह इसके नीचे दबकर मर जाएगा ।' यों सोचकर वह देव अपने स्थान पर चला गया ।

देवानुप्रियों ! वैर के विपाक (बद्ध कर्मफल) कितने विषम होते हैं । कर्म किसी को छोड़ते नहीं हैं । प्रद्युम्नकुमार मोक्षगामी जीव है । फिर भी छही दिनों में कैसे कर्म उदय में आए हैं ? प्रद्युम्नकुमार को एक बड़ी शिला के नीचे दबा दिया है । अब उसका क्या होगा ? रुक्मिणी जागेगी, तब अपने पुत्र को वहाँ न देखकर कितना विलाप करेगी ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ५९

श्रावण सुदी ७, सोमवार — ता. २-८-७६

प्रज्ञानेत्र खुले तो संयम पथ पर चले

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

त्रिलोकीनाथ वीतराग-प्रभु की शाश्वतीवाणी का नाम सिद्धान्त (शास्त्रकथन) । प्रभु की वाणी कैसी है ? वह है आपदाओं को भेदन करनेवाली और सम्पदाओं को देनेवाली है । वीतराग की वाणी में अनन्त हेतु निहित हैं । तीर्थंकर की वाणी में इतना अधिक सामर्थ्य है कि इसे सुनते-सुनते अपूर्व भाव आए तो अनन्त भावों का छेद हो सकता है और जन्म-जरा-मरण के भय से मुक्त हुआ जा सकता है ।

महाबल राजा और उनके छह मित्रों ने संसार (गृहस्थ संसार) का त्याग करके संयम ग्रहण किया । एक ही बार वीतरागवाणी का पान करके महाबलराजा अपने छह मित्रों-सहित अनगार बन गए । उनकी समझ में आ गया कि संसार स्वार्थ से परिपूर्ण है । 'आचारांग सूत्र' में भगवान् ने फरमाया है -

"जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा तं पुव्विं परिहरंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिहरेज्जा, नालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा, तुमं पि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा ।"

- आचा. श्रु-१, अ-२, उ-१

परन्तु सेठ उसकी बात पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे । विवाह करने के बाद कुछ समय तो अपना धर्मध्यान चालू रखा । परन्तु यह नई पत्नी तो मोह का कीड़ा थी । इसी कारण सेठ को मोह की ओर घुमाती थी, और मोहित करने का लटका-चटका करती थी । एक तो जवानी, दूसरा एकान्त और तीसरा मोहजन्य हावभाव, इन और ऐसे समग्र वातावरण में रहने से सेठ भी मोह के रंग में रंग जाने लगे । सेठ दुकान जाते तो एक दूसरे का मुँह देख सकें, इसके लिए एक बारी (खिड़की) बनवाई । इससे घर में बैठी-बैठी सेठानी सेठ का मुँह देख सके और सेठ सेठानी का मुख देख सके । फलतः सेठानी ने सेठ के धर्ममय जीवन में विषय-वासना की आग जला दी । अतः अब सेठ की सामायिक, प्रतिक्रमण और चौविहार वगैरह सभी धर्मक्रियाएँ बंद हो गई । अब वह नाटक, नृत्य, गीत, सिनेमा वगैरह देखने-सुनने में मशगूल हो गए । मोह की मदिरा पीकर मदोन्मत्त बने हुए धर्मवीर सेठ विचार करने लगे कि 'सुख तो इन बातों में है ! इस (नई सेठानी) ने मुझे संसार-सुख का भान कराया ।' धर्मवीर सेठ अब कर्मवीर बनकर संसार की मौज उड़ाने लगे । उनका जीवन अब भोग-विलासमय बन गया ।

एक बार एक संत गाँव में पधारे । ये संत पहले आये थे, तब धर्मवीर सेठ रोज उपाश्रय आते थे । इस बार जब वे संत पधारे और उन्हें गाँव में आठ दिन हो चुके थे, परन्तु धर्मवीर सेठ उपाश्रय नहीं आए, इस कारण संत ने किसी से पूछा - "आजकल वह धर्मवीर सेठ क्यों नहीं दिखाई देते ?" लोगों ने कहा - "गुरुदेव ! वह धर्मवीर सेठ अब कर्मवीर (कर्म बांधने में वीर) बन गए हैं । नई पत्नी के साथ शादी की, उसके बाद धर्म को छोड़ दिया है ।" संत ने सोचा - 'एक समय धर्म के रंग में रंगे हुए जीव की यह दशा ! आत्मा का पूजारी अब शरीर का पूजारी बन गया ? चलो, मैं ही उसे जगाने हेतु जाऊँ !' यों विचार कर संत धर्मवीर सेठ के घर पहुँचे । सेठ तो सोफे पर बैठे थे । संत को आते देखा । पर अब संत अच्छे नहीं लगते, किन्तु पहले जिन संत से धर्म प्राप्त किया था, उन परिचित संत को आते देख सोफे पर से उठकर खड़े हो गए और दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहे । संत ने पूछा - "सेठ ! अब आप उपाश्रय में क्यों नहीं आते ?" इस पर सेठ ने कहा - "गुरुदेव ! मेरी पहली पत्नी के गुजर जाने के बाद मैंने पुनः विवाह किया । नई पत्नी देवी जैसी है । इसका मेरे पर अत्यन्त प्रेम है । वह एक क्षण भी मुझे न देखे तो मेरे बिना जी नहीं सकती । इसने मुझे यह भान कराया कि संसार में स्वर्ग जैसा सुख है । ऐसी स्थिति में अब इस स्वर्ग का सुख छोड़कर उपाश्रय में कैसे आ सकता हूँ ? अर्थात् - अब उपाश्रय में आने का टाइम नहीं है ।"

संत बहुत ही पवित्र थे । उन्होंने कहा - "सेठ ! तुम यह क्या कर रहे हो ? इस संसार के सुख तो घोर नरक में ले जानेवाले हैं । यह संसार स्वार्थमय है । तुम जिसके पीछे पागल बनकर धर्म को छोड़ बैठे हो, उसका तुम्हारे प्रति कैसा मन है, इसे देखने-परखने के लिए मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ । इसे अजमाकर देखो तब फिर कहना कि इस संसार का प्रेम और सुख कैसा है ?" सेठ की नई पत्नी तो दूसरे कमरे में थी । उसने संत को देखा

ली। संयम अंगीकार करके उन्होंने ११ अंगशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। तथा एक, दो, तीन आदि उपवास करते एवं गुरुदेव की विनय-वैयावृत्य करते हुए संयम यात्रा में आगे से आगे बढ़ते गए। आगे उनके जीवन में क्या बनता है ? -

"तए णं तेसिं महब्बल-पामोक्खाणं सत्तण्हं अणगाराणं अन्नया कयाइं एगयओ सहियाणं इमेयारुवे मिहोकहा समुल्लावे समुप्पज्जित्था, जण्णं अम्हे देवाणुप्पिया एगे तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, तण्णं अम्हेहिं सव्वेहिं तवोकम्मं उवसंप्पज्जित्तए त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पड़िसुर्णेति।"

तदनन्तर एक दिन महाबल - प्रमुख वे सातों अनगार एक जगह सम्मिलित होकर बैठे, तब उन्हें एक विचार स्फुरित हुआ, अर्थात् - वे परस्पर इस प्रकार बातचीत करने लगे - "देवानुप्रियो ! हममें से कोई भी एक व्यक्ति जिस प्रकार का तपःकर्म का स्वीकार करके अपनी आत्मा को भावित करे, हम सभी उसी प्रकार का तपःकर्म स्वीकार करके विचरण करेंगे।" इस प्रकार वे सब एक दूसरे के साथ परस्पर वचनबद्ध होते हैं।

महाबल अनगार के छह मित्र अनगार उनसे कहने लगे - "आप हमारे बुजुर्ग हैं, पूज्य हैं, आपके निमित्त से हमने वैराग्य पाया और दीक्षा ले ली है। अतः संयम-तप-साधना के विषय में भी आप जैसे कहेंगे, वैसे ही हम करेंगे। आप जिस प्रकार का तपश्चरण करेंगे, उसी प्रकार का तप हम करेंगे।" इस प्रकार का निश्चय करके वे छहों अनगार महाबल अनगार का अनुसरण करते हैं। अर्थात् वह जैसे कहते हैं, वैसे ही वे करते हैं। वे उनका बहुत विनय करते हैं। छहों संत बहुत ही विनयी और सरल थे। इसलिए महाबल अनगार की बात का स्वीकार करके आनन्दपूर्वक तप - संयम द्वारा आत्मा को भावित करते हुए एक-सरीखी साधना करने लगे। भगवान् ने कहा - "हे जीव ! तुझे स्वयं संसारसागर से तरना हो और दूसरों को तारना हो तुझे अपने जीवन में साधुता, सरलता, विनय, नम्रता आदि गुणों का अभ्यास करना पड़ेगा। तेरे में गुण होंगे तो तू दूसरों को भी सुधार सकेगा।"

एक पुत्रवधू का दृष्टांत : एक सेठ-सेठानी बहुत ही धर्मिष्ठ और श्रावक के गुणों से सुशोभित थे। उनके एक पुत्री थी। वह भी बहुत धर्मिष्ठ थी। पुत्री बड़ी (वयस्क) हुई तो सेठ ने विचार किया कि 'कोई धर्मिष्ठ घर-वर होगा वहीं मैं अपनी पुत्री की शादी करूँगा।' अतः सेठ-सेठानी अपनी लाडली, रूपवती, धर्मानुरागिणी और सुसंस्कारी पुत्री की सगाई के लिए वर की तलाश करने लगे। साथ ही इस बात की भी बारीकी से तलाश करने लगे कि वर में तथा उसके कुटुम्ब में धर्म की विरासत कितनी और कैसी है ? उनकी पुत्री गुणवती और विनयवती है। फिर भी उसके योग्य कोई [illegible] वर तक मिला नहीं, इस कारण उसके माँ-बाप की चिन्ता बढ़ती जा रही थी।

व्याख्यान - २८

श्रावण सुदी ६, रविवार — ता. १-८-७६

कुसंग से बचने में मानवभव की सार्थकता

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

परम उपकारी करुणा के सागर भगवान ने जगत् के जीवों पर अनुकम्पा करके आगम की वाणी फरमाई । उसमें भी 'सूत्रकृतांग सूत्र' में भगवान ने कहा -

एए संगा मणुसाणं, पायाला व अतारिमा ।
कीवा जत्थ य कीसंति, नाइ संगेहिं मुच्छिया ।। -सू.सू.अ.-३,उ-२ गा.-१२

इन माता-पिता आदि स्वजनों का संग समुद्र के समान दुस्तर है । ज्ञातिजनों के संगों में मूर्च्छित क्लीब (नपुंसक-नामर्द) इस विषय में क्लेश पाते हैं ।

पहले तो सोचना है कि संग किसे कहते हैं ? जीव मोहरूपी पाश में बंधता है, तब उसे 'संग' कहा जाता है । वह संग कर्मबन्ध का हेतु है । यह जीव जहाँ भी (जिस किसी भी गति या योनि में) गया है, वहाँ इसने संग किया है । परपदार्थ के संग में चढ़कर जीव दुःखी हुआ है । माता-पिता, पुत्र, पत्नी, पैसा और ज्ञातिजन, इन सबका संग अन्त में तो छोड़ना है । अतः इन पर आसक्त न बनो । सोचो-समझो, मक्खी शक्कर या पकवान पर बैठती है, तो वह स्वाद लेती हुई भी उन पर से उड़ सकती है । परन्तु यदि चिकनाईवाले पदार्थो पर बैठे तो क्या वह उड़ सकती है ? नहीं । उसी प्रकार जो जीव संसार के भोग-विलास में आसक्त होता है, वह उसमें चिपक जाता है । इस लोक में कर्मवर्गणा के पुद्‌गल ठूंस-ठूंस कर भरे हुए हैं । वे जीवा यों तो (बिना कारण) चिपकते नहीं है । परन्तु जब वह राग-द्वेष, कषाय आदि से जुड़ जाता है, तब वे (कर्मपुद्‌गल) चिपकते हैं । जहाँ चिकनाई है, वहाँ चिपकना है, जहाँ चिकनाई नहीं है, वहाँ चिपकनापन नहीं है ।

बन्धुओं ! ऐसा उत्तम मानवभव पाकर जो जीव संसार में आसक्त (रमे) रहते हैं, वे जीव क्लेश पाते हैं, दुःखी होते हैं । दो भुजाओं बगैर समुद्र पर तैरना मुश्किल है । कदाचित् दैवी-सहायता से दो भुजाओं से समुद्र तिरा भी जा सकता हो, किन्तु मोहपाश में पड़े हुए जीव को संसारसागर तैरना बहुत ही कठिन है । जो आत्माएँ संसार को दुस्तर समुद्र जैसा अथवा दुःख की खान समझ कर छोड़ देते हैं, (सकल चारित्र अंगीकार कर लेते हैं) वे उसमें नहीं फंसते । कदाचित् उपसर्ग आ जाए, तो भी वे उस समय दृढ़ रहते हैं । 'सूत्रकृतांग सूत्र' में भगवान् ने साधकों को एक निर्देश दिया है "कि हे साधक ! संयम अंगीकार करने के बाद तेरे पर दो प्रकार के उपसर्ग आएँगे - एक अनुकूल उपसर्ग

सेठ को अपनी पुत्री के लिए धर्मिष्ठ युवक को देखकर उनका हृदय उसके प्रति आकर्षित हुआ । परन्तु मेरे वन्धुओं ! तुम्हें अपनी लड़की के लिए कैसा वर पसंद आता है ? कोई फोरेन-रिटर्न दामाद मिल जाए तो तुम्हारे हर्ष का पार नहीं रहता । फिर भले ही उसके जीवन में धर्म का नामोनिशान न हो ! और तो और, वह नवकार मंत्र भी न जानता हो तो चलेगा ! ऐसी स्थिति में वह स्वयं तो हर्षित होता ही है, अपने हर्ष को व्यक्त करने के लिए वह उक्त भावी दामाद को साधु के पास लेकर आता है, भावी दामाद के गुणगान करते हुए थकता नहीं है । (हँसाहँस) अगर इतने गुणगान साधु-साध्वियों के करो तो तुम्हारा कल्याण हो जाय ।

इस जैनधर्मी सेठ ने उक्त युवक को बुलाकर उसके नाम-ठाम, गाम, माता-पिता वगैरह के बारे में पूछा । दो दिन उसे अपने घर में रखकर उसकी निरीक्षण-परीक्षण किया । सेठ को वह युवक प्रत्येक प्रकार से पसंद आ गया । इसलिए अल्प समय में ही उस युवक के साथ अपनी पुत्री की शादी कर दी । विवाह के बाद लड़की को ससुराल भेजी । श्वसुरगृह में आते ही लड़की ने देखा कि यहाँ तो रात्रिभोजन होता है । प्याज और आलू तो छींके में भरे पड़े हैं । यह सब देखकर नवपरिणीत लड़की विचार में पड गई : यह क्या ? इन्हें दृढ़धर्मी देखकर मेरे माता-पिता ने इनके साथ मेरी शादी की । परन्तु मेरे साथ शादी करने के लिए शायद इस युवक ने धर्मपालन का ढोंग किया हो । लड़की बहुत चतुर और विवेकी थी । इसलिए उसने सोचा कि 'मेरे पूर्व ऋणानुबन्ध ने मुझे यहाँ भेजी है । उसके लिए हर्ष-शोक क्या करना ? परन्तु एक बात निश्चित है कि मेरा चाहे जो हो, मैं अपना धर्म हर्गिज नहीं छोड़ूँगी ।'

वह अब प्रतिदिन अपना नित्य-नियम सामायिक-प्रतिक्रमण, रात्रिभोजन-त्याग आदि करने लगी । कुछ दिनों तक तो सासु कुछ नहीं बोली, किन्तु बाद में कहने लगी - "बहू ! तुम मेरे यहाँ शादी करके आई हो, तो अब हमारे धर्म का स्वीकार करो ।" बहू सासुजी की बात प्रेम से सुनती जरूर थी, किन्तु अपनी धर्मक्रिया में वह रत रहती थी । बहुत-सी दफा सासु-जेठानी और ननंद आदि न कहने योग्य शब्द कह देतीं थीं कि बड़ी धर्म की पूंछड़ी आई है । क्या इसे धर्म कहा जा सकता है ?' इतने अयोग्य वचन सुनने पर भी वह अत्यन्त समभाव से सहन कर लेती थी । वह मन ही मन विचार करती थी कि जिस धर्म में इन्द्रियों पर नियंत्रण करने हेतु तप, त्याग और संयम का विधान नहीं है, जिसमें जन्म-जरा-मरण के दुःख से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करने का लक्ष्य नहीं है, वह सच्चा धर्म (आत्म धर्म) नहीं है । तथैव जहाँ दया और दान की हंसी उड़ाई जाती है, जहाँ पाप का कोई डर नहीं है, शुद्ध पवित्र वीतराग-परमात्मा की उपासना नहीं है, त्यागी धर्मगुरुओं की पूजा नहीं है, वहाँ धर्म कदापि नहीं हो सकता ।

वन्धुओं ! धर्म कोई वाहर की बाजारू वस्तु नहीं है, वह है - आत्मा की अन्तरंग वस्तु । आत्मा का धर्म वाहर नहीं, किन्तु अंदर है । जिसका हृदय सरल, चित्त निर्मल तथा विचार उच्च और पवित्र होता है, वहाँ धर्म है । धर्मक्रियाएँ विचार और व्यवहार को सुधारने

मानता नहीं था। जो धर्म (शुद्ध आत्मधर्म) को नहीं मानता, वह पुण्य-पाप, न्याय-नीति, एवं पुनःजन्म-पूर्वजन्म को तो मानता ही कहाँ से ? वह इन सबको मिथ्या एवं कपोल-कल्पित मानता था। खाना-पीना और मौज करना ही उसकी मान्यता थी। इन्हीं में वह जीवन का आनन्द मानता था। राजा उसे अनेकबार सद्धर्म की बातें समझाने का प्रयत्न करते थे, मगर उसके दिल-दिमाग में ये धर्म की बातें जमती ही नहीं थीं। अतः उसे बार-बार कहना अच्छा नहीं समझते थे। वे इसी प्रतीक्षा में थे कि समय आने पर किसी न किसी कर्मजन्य चोट खाकर व्यक्ति संभलता है, फिर धर्म-कर्म को मानने को उद्यत हो जाता है।

एक राजा का दृष्टांत : एक बार महाबल[1] नाम का राजा ने सुधर्माराजा के नगर पर चढ़ाई कर दी। राजा को मालूम हुआ कि महाबल नामक शत्रुराजा नगर पर चढ़ आया है; अतः राजा ने कहा – "भले ही आए। मुझे कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि मुझे अपने धर्म, न्याय, नीति और पुण्य पर विश्वास है। जिसका पुण्य प्रबल हो, उसको कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता।" हाथी चाहे जितना बड़ा डिलडौल से ऊँचा और अलमस्त व मदोन्मत्त हो कर फिरता हो, पर कहाँ तक ? जबतक सिंह न आए, तभी तक जहाँ सिंह आकर जोर की गर्जना करेगा, वहाँ हाथी टिक नहीं सकेगा, भाग जाएगा। अन्धकार कहाँ तक टिकता है, जबतक पृथ्वी पर सूर्य की किरणें नहीं पड़ी, तबतक। सूर्योदय होते ही अन्धकार को चले जाना पड़ता है। इसी प्रकार अपनी आत्मा पर मिथ्यात्व का मदोन्मत्त हाथी कहो, या गाढ़ अन्धकार कहो, कहाँ तक टिक सकेगा ? जहाँ तक सम्यक्त्व का सूर्य प्रकट नहीं हुआ है, वहीं तक ! जहाँ सम्यक्त्व का सूर्य उदित हो जाए, तब मिथ्यात्वरूपी मदोन्मत्त हाथी को भागना ही पड़ता है।

सुधर्माराजा ने शत्रु राजा का सामना करने के लिए सेना को सुसज्ज होने का आदेश दिया। राजा का आदेश होते ही शस्त्र-अस्त्र सहित सेना सुसज्जित होकर तैयार होती है। रणभेरी बज उठी। तभी प्रजा ने 'सुधर्माराजा की विजय हो', इस प्रकार की सद्भावना सहित प्रभु-प्रार्थना की। सुधर्माराजा अपनी चतुरंगिनी सेना-सहित रणभूमि पर आए। दोनों राजाओं में परस्पर भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में सुधर्माराजा की विजय हुई। महाबलराजा हार गया। सुधर्माराजा का जैसा नाम था, तदनुसार उनमें वैसे ही सद्धर्म के गुण थे। उनके अन्तःकरण में आत्मिक सद्धर्म एवं जैनधर्म पर कूट-कूटकर श्रद्धा थी। वे अनीति से या राज्यलिप्सावश कभी युद्ध नहीं करते थे। आत्मलक्षी धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी। इसीलिए धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा होने से सुधर्माराजा के गले में विजयश्री ने युद्ध में उनके गले में वरमाला पहना दी।

राजा के नगरप्रवेश के समय दरवाजा गिर गया : सुधर्माराजा विजय का डंका बजाकर अपने नगर की ओर वापस लौटने लगे। प्रजा को ये समाचार मिलते ही राजा

१ 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' में अभी जिस विरल महाबलराजा की कथा चल रही है, वह महाबल यह नहीं है। सं.

किया कि हम सब तप आदि क्रियाएँ एक-सरीखी और साथ-साथ करेंगे । अतः शास्त्रकार कहते हैं - *"पडिसुणित्ता बहूहिं चउत्थ जाव विहरंति ।"* इस प्रकार परस्पर वचनबद्ध होकर वे सातों अनगार उपवास, छट्ठ (बेला), अट्ठम (तेला) आदि तपश्चर्या साथ-साथ करने लगे । आगे क्या बनता है ? इसके लिए शास्त्रकार कहते हैं - *तए णं से महब्बले अणगारे इमेणं कारणेणं इत्थिनामगोयं कम्मं निव्वत्तिंसु ।*

इसके पश्चात् महाबल अनगार ने इस कारण से स्त्रीनामकर्म का उपार्जन किया, यह बात हम लगे हाथों बता रहे हैं । बात यह हुई कि महाबल अनगार ने अपने छह मित्र अनगारों के साथ एक सरीखा तपश्चरण आदि करने का निश्चय किया था । किन्तु बाद में उनके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं पूर्वावस्था (संसार-अवस्था) में भी सबसे बड़ा था और इस अनगार-अवस्था में भी सबसे बड़ा हूँ । अतः अब हम सभी एक सरीखी क्रिया करेंगे तो हम सभी एक समान हो जाएँगे । तब फिर मेरा बड़पन (मोटापन) कैसे रह सकेगा ?' यों महाबल के मन में मान (अभिमान) आया और मान माया को खींच लाता है । यानी मान माया कराता है । इस मान के कारण अच्छे-अच्छे महान् साधकों को केवलज्ञान होता रुक गया । भारत और बाहुबली के बीच बारह-बारह वर्ष तक शस्त्रयुद्ध, दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, मुष्टियुद्ध आदि अनेक प्रकार के युद्ध चला । उस युद्ध को रोकने के लिए देवों को नीचे (पृथ्वी-मध्य लोक) में आना पड़ा । अन्त में बाहुबलीजी ने भरत के साथ मुष्टियुद्ध के संदर्भ में उन पर मुष्टि उठाई । तभी उनके विचार ने नया मोड़ लिया कि मैं मुष्टिप्रहार से किसे मार रहा हूँ । आखिर तो इससे मेरा भाई ही मारा जाएगा न ? अतः भाई को मारने के लिए उठाई हुई मुष्टि द्वारा बाहुबली ने पंचमुष्टि (केश) लोच किया और दीक्षा अंगीकार कर ली, किन्तु दीक्षा ग्रहण करके वह भगवान् ऋषभदेव के पास (वन्दनार्थ) नहीं गए । जंगल में अकेले रहकर घोर तपस्या करने लगे । जिनके पिता तीर्थंकर हों, वे अकले क्यों रहें ?

किन्तु बाहुबलीजी अकेले ही रहे, इसके पीछे कारण यह था कि बाहुबलीजी के मन में यह विचार उठा कि 'अगर मैं भगवान् ऋषभदेव के पास जाऊँगा, मेरे से पहले दीक्षा लिये हुए (रत्नाधिक) छोटे (९८) भाईयों को मुझे वन्दन करना पड़ेगा । मैं उन सबसे बड़ा (उम्र में बड़ा) हूँ, अतः उन छोटे भाइयों के चरणों में नमन करूँ ? इसकी अपेक्षा तो यह बेहतर होगा कि मुझे केवलज्ञान हो जाए, फिर मैं भगवान् के पास जाऊँ तो मुझे (केवलज्ञानी होने से) उन्हें वन्दन नहीं करना पड़ेगा ।' परन्तु केवलज्ञान कैसे होता ? उन्होंने राज्यवैभव छोड़ा, परन्तु मानरूपी हाथी पर बैठे हुए को मान का त्याग किये बिना केवलज्ञान नहीं हो सका । भगवान् ने उनके मान से कलुषित भावों को जानकर ब्राह्मी-सुन्दरी साध्वी बहनों को बाहुबलीजी को उद्बुद्ध करने हेतु भेजा । उन्होंने उद्बोधन दिया तब बाहुबली ने मान को तिलांजलि देकर ज्यों ही भगवान् के पास जाने के लिए पैर उठाया, त्योंही उन्हें केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रगट हो गए । संक्षेप में बाहुबली के मन

सुन । हमारे पास धन होगा तो समाज में हमारी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । फिर सभी हमें नमन करेंगे । बोल, अब मुझे दुःख भोगना है या सुख ?" ब्राह्मणी ने पुत्र को बलि देने की हामी भरी ।

पुत्र की अपेक्षा पैसे से प्यार करने चले माँ-बाप : ब्राह्मणी द्वारा पुत्र की बलि देने की स्वीकृति पाने पर ब्राह्मण ने गाड़ी के पास आकर कहा - "मुझे यह सोने का लड़का और एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ दो । मैं अपना पुत्र देने को तैयार हूँ ।" यह सुनकर महाजन के आदमियों ने महाजन को ये समाचार दिये । अतः महाजन ने जहाँ गाड़ी खड़ी थी, वहाँ आकर विप्र दम्पति से कहा - "सर्वप्रथम तुम्हें और तुम्हारी पत्नी को, अर्थात् दोनों को अपने पुत्र का वध करके उसका रक्त उक्त दरवाजे पर छांटना पड़ेगा, उसके पश्चात् ही तुम्हें यह सोने का बालक और एक करोड़ सोनैये मिलेंगे ।" ब्राह्मण ने कहा - "हमें यह मंजूर है ।" यों कहकर ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों घर पर आए । ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से पुनः पूछा तो उसने अपनी स्वीकृति उक्त कृत्य के लिए दे दी । ब्राह्मणी ने पूछा - "हमें किस पुत्र का वध करना है ?" तब ब्राह्मण ने कहा - "हमारा जो सबसे छोटा पुत्र इन्द्रदत्त है, उसी की बलि दे दें तो ठीक रहेगा ।" ब्राह्मणी इस बात से सम्मत हो गई । यह बात उनके कोमल पुष्प जैसे छोटे पुत्र इन्द्रदत्त ने सुन ली । यह सुनकर वह अत्यन्त घबरा उठा । क्योंकि मरना किसे अच्छा लगता है ? फिर भी उसने मन को मजबूत किया । साथ ही यह विचार किया कि यह संसार सर्वत्र स्वार्थ की सगाई है । इस स्वार्थ भरी दुनिया में कौन किसका है ? माँ-बाप को अपना छोटा पुत्र कितना लाडला होता है ? कितना प्रिय होता है ? उसके बदले मेरे माता-पिता मेरी बलि देकर सुखी बनने के लिए तैयार हुए हैं, तो कोई बात नहीं । मरना तो एक बार है ही । यों मन ही मन निर्णय करके वह माता-पिता के पास आया । माता-पिता ने कहा - "बेटा ! हमने तेरे लिए ऐसा विचार किया है ।" माता-पिता के बीच जो बात अपने विषय में हुई थी, उसे यह बालक स्वयं सुन चुका था और इस बारे में स्वयं निश्चय करके आया था । अतः उसने कहा - "माता-पिता ! मेरा वध करके आप और मेरे ६ भाई अगर सुखी होते हों तो मुझे मरने का आनन्द होगा । मैं आपके ऋण से उऋण (मुक्त) हो जाऊँगा । तथा मेरा आयुष्य अगर बलवान् होगा, तो मुझे दुनिया में कोई मार नहीं सकेगा । मुझे भगवान् पर पूर्ण श्रद्धा है । मुझे एक बार जैनमुनि मिले थे, उन्होंने मुझे *'नवकार मंत्र'* सिखाया था । मैं उसका स्मरण करूँगा । अतः वे पंच परमेष्ठी भगवन्त मेरी रक्षा करेंगे ।" यद्यपि इन्द्रदत्त छोटा-सा बालक था, फिर भी उसमें कितनी गहरी समझ है ? उसने कहा - "चलो, माँ और पिताजी ! मुझे ले चलो, मैं मरने के लिए तैयार हूँ । मेरे रक्त के बदले में आप बहुत-सा धन प्राप्त करके सुखी हों ।"

दरिद्रता के दुःख से त्रस्त और धन [illegible] में लुब्ध बने [illegible] के माता-पिता उसे लेकर महाजन के पास आए । उस [illegible] किया - "[illegible] का रक्त नगर के द्वार पर छांटो और महाराजा को [illegible] । त[illegible] [illegible]दे के अनुसार

व्याख्यान - ३०

श्रावण सुदी ८, मंगलवार ता. ३-८-७६

साधना की सिद्धि का द्वार : मानवजीवन

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, ज्ञानरूपी दिव्यचक्षुदाता भगवन्त फरमाते हैं कि "भव्यजीवों ! यह संसार क्या है ? संसार एक महासागर है । यह ऐसा भयानक है कि इस संसारसमुद्र में राग-द्वेष, मोह, माया तथा विषय-विकार की प्रबल तरंगे उछल रही हैं। उसमें से पार उतरने के लिए इस मानवजीवन का महत्त्व है ।" संसारसमुद्र को तैरकर पार करने के लिए मनुष्यभव के सिवाय अन्य कोई भी स्थान नहीं हे । मनुष्यभव से (नरभव में) स्वर्ग, मोक्ष या नरक की टिकट मिलती है । तुम्हें कहाँ की टिकट लेनी है ? (श्रोताओं में से आवाज - मोक्ष की) अगर मोक्ष की टिकट चाहिए तो, विषयों का राग छोड़ो, वैराग्य भाव लाओ और वैराग्य सम्पन्न में से त्यागी बनने का पुरुषार्थ करो ।

बन्धुओं ! मोक्ष में जाने के लिए फस्ट क्लास की एयर कंडिशन्ड टिकट होती है और वह है चारित्र । यदि (सकल) चारित्र अंगीकार लेने की शक्ति न हो तो पूर्ण-ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा ले लो, या श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करो । ब्रह्मचर्य-पालन में पैसे (धन) की जरूरत नहीं है और न शारीरिक शक्ति की जरूरत है । किन्तु इन्द्रियों पर काबू पाने की आवश्यकता है । (बाह्य) तपश्चर्या से कदाचित् शरीर दुर्बल पड़ता है, किन्तु ब्रह्मचर्य-पालन से तो शारीरिक बल बढ़ता है ।

प्रश्न होता है : ब्रह्मचर्य किसे कहते हैं ? 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में कहा है -

"कायेन मनसा वाचा, सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुन-त्यागो, ब्रह्मचर्य प्रचक्षते ॥"

मन, वचन और काया से समस्त अवस्थाओं में सर्वदा और सर्वत्र (सब प्रकार के) मैथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं । ब्रह्मचर्य जीवन है और वीर्यनाश मृत्यु है । 'वेद' में भी कहा है - *"तपो वै ब्रह्मचर्यम्"* 'सूत्रकृतांग सूत्र' में कहा गया है - *"तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं"* - समस्त तपस्याओं में उत्तम तप ब्रह्मचर्य है । प्राय: सभी धर्म-सम्प्रदायों में ब्रह्मचर्य की महत्ता बताई गई है । तुम प्रतिदिन उपाश्रय में आते हो, साधु-साध्वियों को वन्दन-नमस्कार करते हो, तब तुम्हारे मन में ऐसी भावना होती है कि मैं भी इनके जैसा संयमी बनूं । अब मुझे सांसारिक सुख की भूख नहीं है । जिनकी शरण में जाता हूँ उनके जैसा बनूं । बोलो, ऐसे भाव आते हैं ? (हँसाहँस), बनिये के पुत्र

में अभयदान श्रेष्ठ है। राजा ने ब्राह्मण-पुत्र को अभयदान दिया। तथैव उस बालक की नवकार मंत्र के प्रति श्रद्धा और राजा के द्वारा की गई दया (अभयदान) के प्रभाव से देवी प्रसन्न हुई और वह ब्राह्मणपुत्र राजा का पुत्र बन गया।

अब महाबल - प्रमुख सात विरक्तात्मा संसार का त्यागकर षट्कायिक जीवों को अभयदान देने हेतु तत्पर हुए हैं। वे सब शिबिकाओं में बैठकर इन्द्रकुम्भ उद्यान में धर्मघोष स्थविर के समीप आए। आकर सब ने गुरुदेव को वन्दन किया। तत्पश्चात् वे क्या करते हैं? शास्त्रकार कहते हैं -

"ते वि सयं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ....जाव पव्वइए।"

तदनन्तर वे स्वयं पंचमुष्टिक लोच करते हैं, यावत् प्रव्रजित हुए। गुरुदेव ने दीक्षा का पाठ पढ़ाया। दीक्षा लेकर उन्होंने किस तरह अपने जीवन को तप-संयम एवं शास्त्रज्ञान के सांचे में ढाला? शास्त्रकार कहते हैं -

"एक्कारस-अंगाइं अहिज्जित्ता, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम...तवेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

दीक्षित होकर सातों ही मुनिवर सामायिक से लेकर ग्यारह ही अंगों का अध्ययन करते हैं। ज्ञानप्राप्ति के साथ वे उपवास, छट्ठ (बेला), अट्ठम (तेला) आदि विविध तपश्चर्या करते हुए तप और संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। आगे का भाव यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

प्रद्युम्नकुमार का अपहरण: पूर्वभव के शत्रु देव ने रुक्मिणी की गोद में से प्रद्युम्नकुमार को उठाया और यमराज की तरह उसके समक्ष क्रोध करता हुआ बोलने लगा - "बस, अब तुझे मार डालूंगा?" यों कहकर शीघ्र गति से उस विमान को चलाया।

लाया तक्षकपर्वत के पास में रे, पटकूं शिला पर करूं विनाश रे।
चरमशरीरी यह मरता नहीं है रे, ऐसा ही शब्द हुआ आकाश रे॥ श्रोता...

वह देव बालक प्रद्युम्न को तक्षकपर्वत पर ले गया फिर उसने क्रूरभाव से सोचा - 'इसे इस बड़ी शिला पर पटककर चूरचूर कर डालूं।' अतः वह उस बालक को हाथ में लेकर ज्यों ही शिला पर पछाड़ने जाता है, त्यों ही आकाशवाणी हुई - "यह चरमशरीरी जीव है। इसे मारने के लिए तू चाहे जितने प्रयत्न करेगा सभी निरर्थक सिद्ध होगा। वह (अकाल में) मरनेवाला नहीं है। इसे तू पर्वत पर से लुढकाएगा, शिला पर पटकेगा, या तू उसे पैरों से रौंद डालेगा, परन्तु यह (बालक) निकाचित आयुष्य बांधकर आया है। यह पवित्र मोक्षगामी जीव है।" ऐसी आकाशवाणी सुनकर वह देव रुक गया। किन्तु उसके साथ इस देव का पूर्वभव का वैर था, इस कारण उसका कोप शान्त नहीं हुआ। उसका यह रौद्र विचार चालू रहा कि 'चाहे जैसे भी इसका विनाश तो अवश्य

भटकवुं क्यां लगी तारे, प्रवासी ! पंथ बदली ले (२)
पहोंचवा मुक्तिना द्वारे, प्रवासी ! पंथ बदली ले (२)

अगर तुम्हें मोक्ष में जाना हो तो अब अपनी राह बदलो। विषयों की ओर जानेवाली (निकृष्ट) वृत्ति को वैराग्य की ओर मोड़ो। तुम्हारे अपना निजी घर न हो तो विचार करते हो न कि कब मैं इस घर को बदलूंगा ? परन्तु क्या कभी ऐसा विचार होता है कि कहाँ तक मैं एकगति से दूसरी गति में गमनागमन करूँगा ? और इस शरीररूपी बड़े थैले में कहाँ तक भरा रहूँगा। जब ऐसा विचार आएगा, तब आत्मा की रौनक बदल जाएगी। जैसे कोई मनुष्य पहले अत्यन्त गरीब हो और फिर धनाढ्य बन जाए, तब उसके, खानपान, पहनावे और स्तर आदि की समस्त रौनक बदल जाती है। वैसे ही जब आत्मा मिथ्यात्व के घर में से सम्यक्त्व के घर में आता है, तब पुद्‌गलभाव के प्रति प्रीति छोड़कर उसमें परमात्मा के प्रति सच्ची प्रीति उत्पन्न हो जाती है।

देवानुप्रियों ! इस संसार में आत्मा ने पुद्‌गल भाव के प्रति जो प्रीति बांधी है, जिस में रचापचा कर वह आनन्द मानता है, वह सब अनित्य है। जो अनित्य-अशाश्वत वस्तु है, उसमें से कदापि शाश्वत-नित्य सुख नहीं मिलता। नित्य क्या है और अनित्य क्या है ? यह तो तुम जानते हो न ? मैं तुमसे पूछती हूँ कि इस भव्य भूतल पर सुरम्य प्रतीत होनेवाली भव्य वस्तुएँ, नित्य हैं या अनित्य ? जगत् को जीतनेवाली, दुनिया में देवी के रूप में मान्य और मानव-हृदय में सनसनी पैदा करनेवाली लक्ष्मी क्या सदैव स्थिर रहनेवाली है ? रमणीय रूप के अवतार के समान यह कंचनवर्णी शरीररूपी पुष्प क्या सदा विकसित रहेगा ? जब काया का कुसुम, वैभव के कूप सदैव स्थिर नहीं है, तो फिर मानव द्वारा कल्पित अन्य सुखों और साधनों का तो पूछना ही क्या ? सांसारिक सुख स्वप्नवत् काल्पनिक है, वह नित्य और शाश्वत नहीं है। मानव की जिंदगी अमर नहीं है तो लक्ष्मी की तो बात ही क्या ? यौवन, वैभव-विलास या कीर्ति के कल्पित सुखों के लिए तो पूछना ही क्या ? अतः तुम इतना तो निश्चित समझ लो कि संसार अनित्य और स्वप्नवत् है तो स्वप्न के सुख की मिथ्या भ्रान्ति में, मोह की चकाचौंध में और कामिनी के कमनीय रूप में क्यों आसक्त होना चाहिए ? जो ध्रुव, नित्य और अमर है, उसे पकड़ो कि जिसमें कोई ठगाने की, हारने की और भूलने की बात न रहे। विश्व में अगर कोई नित्यरूप है तो वह अपना आत्मा है, परमात्मा है। उसे पहचानो और उसमें रमण करो।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

जिन्हें नित्य - अनित्य का स्वरूप समझ में आ गया है, ऐसे महाबल प्रमुख सात अनगार नित्य-शाश्वत सुख को प्राप्त करने के लिए संसार (गृहस्थावस्था) को छोड़कर संयमी, अनगार बने। संयम में अनुरक्त बनकर वे ज्ञान और ध्यान के झूले में झूल रहे हैं और तप के तपोवन में विचरण कर रहे हैं। वे अत्यन्त शुद्ध निरतिचार संयम का पालन

हे आत्माओं ! तुम जिनके साथ निवास कर रहे हो, जिन का पालन-पोषण करके बड़े किये हैं, वे आत्माएँ जब वृद्धावस्था में आती हैं, तब उस वृद्ध की निन्दा-अवगणना करते हैं। उन्हें छोड़ देते हैं अथवा वह वृद्ध भी उन कुटुम्बियों की निन्दा करने लगता है। वे कुटुम्बीजन तुझे दुःख से बचाने और शरण देने में समर्थ नहीं हैं; तू भी उन्हें बचाने (रक्षण करने) या आश्रय देने में समर्थ नहीं है। इसे भलीभांति समझकर संसार से किनाराकसी कर लो, उदासीन हो जाओ। ऐसे संसार में तुम्हारा मन कहाँ तक लगाओगे ?

मैं तुम्हें एक रूपक द्वारा समझाती हूँ। तुमलोग अपने घर में दीवारों पर एक कलेंडर लगाते हो न ? उस कलेंडर का प्रतिदिन एक पन्ना फाड़ते हो। उस कलेंडर की कीमत कबतक होती है ? जबतक उस कलेंडर का अन्तिम पन्ना नहीं फट जाता है, तबतक। अन्तिम पन्ना फाड़ लिया गया, अब वह कलेंडर एक पुट्ठा बन गया। अतः तुमने उसे दीवाल पर से उतार दिया और दूसरा (नये वर्ष का) कलेंडर लगा दिया। बोलो, अब किस कलेंडर का मान रहा और भविष्य में रहेगा ? इसी प्रकार, तुम भी समझ लेना कि इस संसार में तुम्हारा मान (सम्मान) कबतक है या रहेगा ? जबतक तुम कमा-कमा कर लाते हो तबतक। यानी तुम्हारा शरीर क्षीण नहीं हुआ और इन्द्रियाँ जर्जरित नहीं हुई तबतक ! अतः इस बात को समझो और संसार की ममता छोड़ो।

अब दूसरे पहलू से तुम्हें समझाती हूँ : एक मनुष्य जवान है, किन्तु उसे चेपी रोग लग गया है। ऐसी स्थिति में उसके माता-पिता, पत्नी-पुत्र, भाई-बहन आदि सब ऐसा सोचने लगते हैं कि 'इसे चेपी बीमारी लग गई है। यदि हम इसकी सेवा करेंगे, तो हमें भी यह रोग लग जाएगा। अतः इसे दवाखाने में भर्ती करा दो, वहीं रख आओ।' बोलो, अब तुम्हें समझ में आता है न कि यह संसार कैसा स्वार्थी है ? कहा भी है -

मानव सुखड़ाना दूर छे मीनारा, माता-पिता, बन्धु कोई ना सहारा,
दुःखना समये ए तो छोड़ी जनारा... माता-पिता...
प्रपंचोमां खोई दुर्लभ मानव-काया, मिथ्या वाहवाहमां तमे सौ फुलाया,
दुर्गतिमां मळशे दुःखद उतारा.... माता-पिता...

माता-पिता, पत्नी-पुत्र इत्यादि बहुत बड़ा कुटुम्ब देखकर मनुष्य सोचता है - 'मेरे जैसा सुखी कोई नहीं है।' परन्तु ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तुझे कहाँ खबर है कि दुःख-दर्द के समय तेरा कौन सच्चा सम्बन्धी है ? जबतक बाह्य सांसारिक सुख मिलता रहता है, तबतक सभी नजदीक रहते हैं और दुःख के समय वे ही छोड़कर दूर चले जाते हैं।" इसीलिए ज्ञानीजन कहते हैं - "मृत्यु या रोग आदि के समय में कोई सम्बन्धी शरणभूत नहीं होते। किये हुए कर्मों के कटुफल स्वयं को ही भोगने पड़ते हैं।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

संसार का सम्बन्ध ऐसा स्वार्थमय है। ऐसा जिन आत्माओं को समझ में आ गया, वे महाबल तथा उनके छह मित्रों ने संसार का राग छोड़कर आर्हती दीक्षा धारण कर

भटकवुं क्यां लगी तारे, प्रवासी ! पंथ बदली ले (२)
पहोंचवा मुक्तिना द्वारे, प्रवासी ! पंथ बदली ले (२)

अगर तुम्हें मोक्ष में जाना हो तो अब अपनी राह बदलो । विषयों की ओर जानेवाली (निकृष्ट) वृत्ति को वैराग्य की ओर मोड़ो । तुम्हारे अपना निजी घर न हो तो विचार करते हो न कि कब मैं इस घर को बदलूंगा ? परन्तु क्या कभी ऐसा विचार होता है कि कहाँ तक मैं एकगति से दूसरी गति में गमनागमन करूँगा ? और इस शरीररूपी बड़े थैले में कहाँ तक भरा रहूँगा । जब ऐसा विचार आएगा, तब आत्मा की रौनक बदल जाएगी । जैसे कोई मनुष्य पहले अत्यन्त गरीब हो और फिर धनाढ्य बन जाए, तब उसके, खानपान, पहनावे और स्तर आदि की समस्त रौनक बदल जाती है । वैसे ही जब आत्मा मिथ्यात्व के घर में से सम्यक्त्व के घर में आता है, तब पुद्गलभाव के प्रति प्रीति छोड़कर उसमें परमात्मा के प्रति सच्ची प्रीति उत्पन्न हो जाती है ।

देवानुप्रियों ! इस संसार में आत्मा ने पुद्गल भाव के प्रति जो प्रीति बांधी है, जिस में रचापचा कर वह आनन्द मानता है, वह सब अनित्य है । जो अनित्य-अशाश्वत वस्तु है, उसमें से कदापि शाश्वत-नित्य सुख नहीं मिलता । नित्य क्या है और अनित्य क्या है ? यह तो तुम जानते हो न ? मैं तुमसे पूछती हूँ कि इस भव्य भूतल पर सुरम्य प्रतीत होनेवाली भव्य वस्तुएँ, नित्य हैं या अनित्य ? जगत् को जीतनेवाली, दुनिया में देवी के रूप में मान्य और मानव-हृदय में सनसनी पैदा करनेवाली लक्ष्मी क्या सदैव स्थिर रहनेवाली है ? रमणीय रूप के अवतार के समान यह कंचनवर्णी शरीररूपी पुष्प क्या सदा विकसित रहेगा ? जब काया का कुसुम, वैभव के कूप सदैव स्थिर नहीं है, तो फिर मानव द्वारा कल्पित अन्य सुखों और साधनों का तो पूछना ही क्या ? सांसारिक सुख स्वप्नवत् काल्पनिक है, वह नित्य और शाश्वत नहीं है । मानव की जिंदगी अमर नहीं है तो लक्ष्मी की तो बात ही क्या ? यौवन, वैभव-विलास या कीर्ति के कल्पित सुखों के लिए तो पूछना ही क्या ? अतः तुम इतना तो निश्चित समझ लो कि संसार अनित्य और स्वप्नवत् है तो स्वप्न के सुख की मिथ्या भ्रान्ति में, मोह की चकाचौंध में और कामिनी के कमनीय रूप में क्यों आसक्त होना चाहिए ? जो ध्रुव, नित्य और अमर है, उसे पकड़ो कि जिसमें कोई ठगाने की, हारने की और भूलने की बात न रहे । विश्व में अगर कोई नित्यरूप है तो वह अपना आत्मा है, परमात्मा है । उसे पहचानो और उसमें रमण करो ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

जिन्हें नित्य - अनित्य का स्वरूप समझ में आ गया है, ऐसे महाबल प्रमुख सात अनगार नित्य-शाश्वत सुख को प्राप्त करने के लिए संसार (गृहस्थावस्था) को छोड़कर संयमी, अनगार बने । संयम में अनुरक्त बनकर वे ज्ञान और ध्यान के झूले में झूल रहे हैं और तप के तपोवन में विचरण कर रहे हैं । वे अत्यन्त शुद्ध निरतिचार संयम का पालन

इसी अर्से में ऐसा हुआ कि किसी अन्य धर्म के युवक ने इस सेठ की पुत्री को देखी, इसलिए उसने मन ही मन सोचा कि अगर इस लड़की के साथ मेरा विवाह हो जाए तो मेरा जन्म सफल हो जाए। उसने अड़ोस-पड़ोस के लोगों से यह पता लगाया कि 'वह लड़की कुंआरी है या शादी-शुदा है ? अतः उसे ज्ञान हुआ कि लड़की अभी तक कुंआरी है, उसके माता-पिता किसी धर्मिष्ठ वर की तलाश में हैं, किन्तु किसी अन्यधर्मी लड़के को तो वे अपनी पुत्री को देना हर्गिज नहीं चाहते। अन्य धर्मो के तो वे कट्टर विरोधी हैं।' यह जानकर वह युवक जरा निराश हो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने सोचा - 'मुझे निराश होने की आवश्यकता नहीं है, मुझे इस लड़की के साथ विवाह करना हो तो जैनधर्मी बन जाना चाहिए।'

बन्धुओं ! मनुष्य को किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति प्रीति जागती है, या आकर्षण होता है तो उसे येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करने की तमन्ना होती है। उसके लिए वह कठिन से कठिन कार्य करने के लिए प्रेरित और उद्यत हो जाता है। देखिए, इलायचीकुमार जैन नगर सेठ का पुत्र था, किन्तु उसे एक नटी के प्रति प्रीति जागी। अतः उस नटी के पिता की कठोर शर्त स्वीकार करके नटविद्या सीखकर नाट्यकला में प्रवीण हुआ। वैसे ही इस युवक के दिल में भी इस जैन-सेठ की पुत्री के साथ शादी करने की तमन्ना जागी। अतः उसके साथ विवाह करने के लिए वह जैनधर्मी बना। उसने सामायिक, प्रतिक्रमण, नवकार मंत्र छकाय के बोल, थोकड़े, नवतत्त्व, भक्तामर आदि स्तोत्र वगैरह सब अल्प-समय में ही सीख लिया। साथ ही वह प्रतिदिन उपाश्रय में आकर सामायिक तथा दोनों वक्त प्रतिक्रमण करने लगा, जप-तप भी यथाशक्ति करता, गाँव में संत-सती हों तो व्याख्यान सुनता, उनके साथ धर्मचर्चा भी करता। अष्टमी तथा पक्खी को पौषधोपवास भी करता था, एवं धर्म के जानकार श्रावकों के साथ धर्मचर्चा भी करता था। इस प्रकार वह जैनधर्मी है और अच्छा धर्मसंस्कारी तथा धर्म के रंग में रंगा हुआ युवक है, ऐसी अच्छी छाप जनता पर डाली। लोगों के मन में भी ऐसा विचार होता कि यह जवान लड़का कितना धर्मिष्ठ है ? दुनिया में असली वस्तु की अपेक्षा नकली वस्तु की चमकदमक अधिक मालूम होती है। यह कहावत भी प्रसिद्ध है -

'नमन नमन में फेर है, बहुत नमे नादान।
दगाबाज दुगुना नमे, चिता, चोर कमान ॥'

इस प्रकार वह लड़का जैन न होते हुए भी जैन की अपेक्षा अधिकाधिक धर्मध्यान करने लगा। उसके मन में जो रंग या उमंग था, वह जैन सेठ की कन्या के साथ शादी करने का था। उसके अन्तर में धर्म का सच्चा रंग नहीं था। इस युवक को प्रतिदिन उपाश्रय में आकर इस प्रकार धर्मध्यान करते देखकर लड़की के माता-पिता के मन में विचार हुआ कि यह कोई अपरिचित युवक है, किन्तु धर्म के रंग में बहुत रंगा हुआ है और व्यापार में भी खूब होशियार है। परन्तु यह कौन है ? कहाँ का है ? इस बात की ठीक-ठीक छानबीन करने के बाद ही अपनी पुत्री की सगाई करना ठीक रहेगा। देखिए !

अनगार के मन में अभिमान को जन्म दिया था और इस अभिमान ने माया उत्पन्न की। जिस कर्म के उदय से जीव स्त्रीत्व-पद को प्राप्त करता है, वह स्त्रीनामकर्म है। तथैव जो जो कर्म जाति-कुल-निर्वर्तक होते हैं, वे गोत्र हैं। माया के सद्भाव के कारण महाबल अनगार ने स्त्रीनामकर्म का उपार्जन किया। पूर्वोक्त छह अनगार मित्रों ने एक उपवास किया, जबकि महाबल अनगार छट्ठ तप (दो उपवास) किये। महाबल अनगार में माया आगे से आगे किस प्रकार चलती रही -

जइणं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, तओ से महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरति ।

जब महाबल के सिवाय वे छह अनगार (मित्र) छट्ठ तपश्चरण (बेला) करते, तब वह महाबल अनगार अट्ठमतप (तेला) कर लेते थे।

ऐसे होता कि जिस दिन पारणा का दिवस होता, तब वे छह अनगार गोचरी करके आते, तब वे (महाबल अनगार) कुछ न कुछ बहाना कर पारणा न करके उपवास बढ़ा देते और उन छह अनगारों से कहते - "तुमलोग सुखपूर्वक पारणा कर लो।" इस प्रकार माया से युक्त तपश्चर्या करते थे।

बन्धुओं ! तप करना श्रेष्ठ अनुष्ठान है। तप से कर्मों की निर्जरा होती है, किन्तु महाबल अनगार माया करके तप करते थे, इस कारण उन्होंने स्त्रीनामकर्म बांध लिया। इस सम्बन्ध में एक और दृष्टान्त है :

शंखराजा और यशोमती रानी महल की आगासी (अगले भाग) में खड़े थे, उस समय उन्होंने एक संत को दूर से आते हुए देखा। तभी उनके हृदय में इतना हर्ष हुआ कि न पूछो बात। ज्यों ही संत को महल के निकट आते हुए देखा, वे दोनों महल की आगासी से नीचे उतरे। किन्तु तुम छत (मेडी) पर से (संत को देखकर) नीचे नहीं उतरोगे ! ऊपर खड़े खड़े ही कहोगे : "पधारो, लाभ दो।" ये तो राजा और रानी थे, फिर भी नीचे उतर कर आए। सात-आठ कदम संत के सामने गए। सामने जाकर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से उन्होंने संत को वन्दन-नमस्कार किया। संत (उनकी विनती पर) पधारे। राजा-रानी दोनों के अत्यन्त उत्कृष्ट भाव संत को कल्पनीय वस्तु बहराने के थे। परन्तु राजमहल में बहराने योग्य कोई संत के योग्य (कल्पनीय-एषणीय) वस्तु नहीं थी। सिर्फ एक कड़ाही में द्राक्षा धोया हुआ पानी पड़ा था। 'आचारांग सूत्र' (श्रु-२) में साधु के लिए २१ प्रकार का धोवन (पानक) कल्पनीय बताया है। इसलिए द्राक्षा धोया हुआ पानी भी अचित्त (प्रासुक) होने से राजा-रानी दोनों उस पानी को संत को वहराने (देने) जाते हैं। किन्तु रानी ने मायावश कड़ाई अत्यधिक नीचे झुका दी। (इस कारण वह पानी साधु के पात्र में नहीं पड़ सका) राजा के भाव पवित्र हैं। यशोमती रानी ने माया करके बहराने की क्रिया की, जिसके फलस्वरूप रानी को स्त्री का जन्म मिला। अतः धर्म के कार्य में भी माया नहीं करनी चाहिए। 'दशवैकालिक सूत्र' (अ.-५, उ.-१, गाथा-१००) में सुपात्रदान के दाता और आदाता दोनों की दुर्लभता और सुपात्रदान का फल बताते हुए कहा है -

के लिए है। जिस मनुष्य के विचार और व्यवहार से जगत् के जीवों को सन्तोष, अभय और शान्ति मिले, वहाँ सच्चा धर्म है। जिस धर्म में मांस, अंडे और शराब का सेवन का निषेध नहीं है, परस्त्री-गमन का त्याग नहीं है, शिकार और जुए पर प्रतिबन्ध नहीं है, भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक नहीं है, दया, दान, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य का अनिवार्य विधान नहीं है, मोक्ष का कोई ध्येय नहीं है, सत्य तत्त्वों का प्रतिपादन नहीं है, वहाँ सत्य धर्म के दर्शन कहाँ से हो सकते हैं? सुख-सुविधावाला, कष्टविहीन तथा तप, त्याग और व्रत-नियम से रहित धर्म किसे अच्छा नहीं लगता? बोलो, क्या तुम्हें भी ऐसा ही धर्म अच्छा लगता है न? किन्तु इतना जरूर याद रखना कि जैसे नकली दवा के सेवन से रोग नहीं मिटता वैसे ही नकली धर्म के आचरण से भव-रोग नहीं मिटता। सद्धर्म तो भव-(भ्रमण के) रोग को निर्मूल करनेवाला रामबाण औषध है। नकली दवा से रोग मिटता नहीं, अपितु बढ़ जाता है। वैसे ही नकली धर्मरूपी औषधि के सेवन से भव-रोग घटता नहीं, अपितु बढ़ता है। उक्त सुसंस्कारी नववधू को अपने निरवद्य धर्मानुष्ठानों को छोड़कर सावद्य अनुष्ठानों में प्रवृत्त होना अच्छा नहीं लगता। जो असली हीरे को पहचानता है, उसे जगमगाता नकली काच का टुकड़ा अच्छा लगेगा क्या? नहीं लगेगा। किन्तु वह अपने सद्धर्म की रक्षा हेतु समभावपूर्वक सबकुछ सहन करती है। अन्ततोगत्वा उस बहू को बहुत ही कष्ट सहना पड़ा। उसकी कठोर कसौटी की गई, मगर वह धर्म से जरा भी विचलित नहीं हुई। यों समभाव से सहन करने से अन्त में सत्य की विजय हुई। अग्नि-परीक्षा में सोने के पास होने पर उसकी कीमत होती है, वैसे ही अग्नि-परीक्षा में बहू के पास होने पर सब ने उसका महत्त्व समझा, उसकी धर्मपरायणता के आगे सबके मस्तक झुक गए। सासु ने प्रसन्न होकर पूछा – "बेटी! तुझे ऐसा तत्त्वज्ञान किसने दिया?" इस पर बहू ने कहा – "माँ! यह तो मेरे गुरुदेव का प्रताप है, जो पंच-महाव्रत के धारक हैं, कंचन-कामिनी के तथा कीर्ति और काया के प्रति राग के त्यागी हैं। उन्होंने मुझे यह धर्मतत्त्व समझाया है, एवं धर्म के सुसंस्कार प्रदान किये हैं। उनके प्रताप से मैं धर्म पर इतनी सुदृढ़ रह सकी हूँ।" इसके बाद बहू ने अपनी सासुमाँ को धर्मध्यान में लगाया, धर्माचरण में प्रवृत्त किया। इस कारण अब सासुमाँ कहने लगी – "बेटी! अब मुझे तेरे धर्मगुरु के पास ले चल, जहाँ जाकर उनका धर्मोपदेश सुनकर मैं अपना मानवजीवन सफल बनाऊँ।" फिर तो उसके पति, श्वसुर, जेठानी आदि सारा परिवार जैनधर्म के रंग में रंग गए। सच है, धर्म के रंग में गाढ रंगी हुई एक बाला ने समग्र कुटुम्ब का हृदय-परिवर्तन करवाकर उसे जैनधर्म की प्राप्ति कराई।

बन्धुओं! तुम भी अपनी सन्तानों में ऐसे धर्मसंस्कारों का सिंचन करना, ताकि वे भविष्य में अन्य जीवों को भी धर्ममार्ग में लगा सकेंगी। घर-घर में ऐसे धर्मसंस्कार और धर्म के प्रति श्रद्धा हो तो मैं मानती हूँ कि जिनशासन अत्यन्त उज्ज्वल बन सकेगा।

महाबल आदि सात राजाओं ने भवभ्रमण का चक्कर मिटाने के लिए दीक्षा ग्रहण की है। वे सब शुद्ध चारित्र का पालन कर रहे हैं। एक दिन सबने मिलकर यह निश्चय

से गुजरते हुए विमान एकदम रुक गया । विद्याधर ने विमान को आगे चलाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु आज वह विमान न तो सीधा चल रहा था, न ही ऊँचा जाता था । इस पर उक्त विद्याधर राजा को विचार हुआ कि किसी दिन नहीं और आज मेरा विमान क्यों रुक गया ? क्या नीचे कोई सर्वज्ञ भगवान् विराजमान हैं ? अथवा तो कोई कायोत्सर्ग में लीन मुनि खड़े हैं ? या किसी सती महिला पर संकट आ पड़ी है ? अथवा कोई पवित्र सज्जन पुरुष कष्ट में हैं ? कोई न कोई कारण होना चाहिए, उसके बिना मेरा विमान कभी रुकता नहीं है । यों सोचकर यमशम राजा ने अपना विमान पर्वत पर उतारा तो देखा कि प्रद्युम्नकुमार के श्वासोच्छ्वास से सोलह गज लम्बी और चार गज मोटी शिला उछल रही है । यह देखकर विद्याधर के मन में विचार हुआ कि 'यह क्या ? इतनी मोटी वजनदार शिला क्यों हिल रही है ? यह क्या तूफान है ? चलूं - निकट जाकर जांच-पड़ताल करूँ ।' इस विचार से प्रेरित होकर राजा ने बड़ी कठिनाई से उस वजनदार शिला को खिसकाई तो उसके नीचे से देवकुमार जैसा सुन्दर कुंवर निकला । राजा ने उसे तुरंत हाथों में उठा लिया और मानो अपना ही पुत्र हो, इस तरह उसे छाती के साथ दबा लिया । कुंवर को देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसे अपनी रानी की गोद में रख दिया ।

इस विद्याधर राजा के कोई संतान नहीं थी । इसलिए राजा ने रानी के कहा - "प्रिय ! तुम महाभाग्यशाली हो । देख, तुम्हारे पुत्र नहीं था, इस कारण भगवान् ने तुम पर कितनी कृपा की है ? नौ महीने गर्भ का भार वहन किये बिना तथा प्रसववेदना भोगे बिना ही तुम्हें ऐसे सूर्यसमान तेजस्वी पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है । आज अपना जीवन धन्य हो गया ! अब शीघ्र ही अपने नगर में चलें और पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाएँ ।" अब वह विद्याधर राजा उस प्रद्युम्नकुमार को लेकर अपने नगर में जाएँगे । आगे क्या होगा ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ३१

श्रावण सुदी ९, बुधवार | ता. ४-८-७६

भोगों की भयंकरता : त्याग की श्रेयस्करता

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त उपकारी त्रिलोकीनाथ की ... हित करनेवाली है । भावपूर्वक वीरवाणी श्रवण करने से ... है । ... देवतत्त्व, गुरुतत्त्व और धर्मतत्त्व की पहचान ... अनन्त

में भी मान का प्रादुर्भाव हुआ, इस मान के कारण वे कैसी माया करते हैं ? आगे क्या होता है ? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

बन्धुओं ! मान आत्मा बहुत बड़ा शत्रु है । इसीलिए ज्ञानी कहते हैं - *''माणंमद्दवया जिणे'* मान को मृदुता-कोमलता-नम्रता से जीतो । मान के जाने पर आत्मा में मृदुता और नम्रता आती है । नम्रता श्रमण जीवन का महान् गुण है ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

प्रद्युम्नकुमार कठोर कसौटी पर : प्रद्युम्नकुमार को देव उठाकर पर्वत पर ले गया और उस पर बड़ी शिला रखकर बोला - ''पापी ! तेरे कर्म का फल तू भोगना। तू मेरी पत्नी को उठाकर ले गया था, इस कारण मैं तुझे उठाकर लाया । अब यहाँ तेरी सार-सम्भाल करनेवाला कौन है ? इस शिला के नीचे कुचल कर तू मर जाएगा ।'' यों उस देव ने उसपर अपना रोषपात्र को खाली करके, स्वयं ने उसे नहीं मारा, किन्तु स्वयं मर जाय, ऐसा काम करके चला गया । सचमुच, कर्मराजा किसी को नहीं छोड़ता ।

एक ओर जिस कुमार का जन्म-महोत्सव चल रहा है, उस कुमार की देव ने कैसी दुर्दशा की ? उसके जन्म से द्वारिका नगरी में अपूर्व आनन्द छाया था । जन्म की बात तो बाद में, वह गर्भ में आया, तब से ही द्वारिका नगरी में आनन्द-आनन्द था । महान् पुरुष माता के गर्भ में आते हैं, तब से ही उनका प्रभाव पड़ता है । किन्तु जन्म के बाद ६ दिन में ही कर्मराजा ने कैसी जादुई लीला सृजित की ! किन्तु जिसका प्रबल पुण्य जीवित और जागृत होता है, उसका कोई कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता । कहा भी है -

'जेना पुण्य पाधरा होय, तेने दुश्मन पण शुं करी शके ?'

पूर्वकृत अशुभकर्म के उदय से उसे माता का वियोग हुआ । किन्तु उसके पुण्य प्रबल थे, वैरी देव ने उस पर बड़ी भारी शिला रखी, फिर भी उसके शरीर को कुछ भी हानि नहीं हुई । जैसे बीस वर्ष के जवान की छाती पर कोई पाव भर वजन का खिलौना रख दे तो उसका उसे कुछ भार लगता है क्या ? नहीं लगता । वैसे ही इस प्रद्युम्नकुमार की छाती पर देव ने १६ गज की लम्बी, वजनदार शिला रखी, मगर उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ । उसे जरा भी आंच नहीं आई । वह हाथ-पैर हिलाता है, तब वह शिला हिलती है । कुमार (क्षुधानिवृत्ति हेतु) अपने हाथ का अंगूठा मुँह में लेकर चूसता है ।

दूसरी ओर, रुक्मिणी के पुण्यवान् पुत्र का जन्म हुआ, अतः सत्यभामा अफसोस करने लगी कि मुझे पुत्र का जन्म नहीं हुआ । अतः प्रद्युम्नकुमार के जन्म के बाद सत्यभामा ने एक पुत्र को जन्म दिया । वह पुत्र तेजस्वी था । उसका नाम रखा गया - भानुकुमार ! प्रद्युम्नकुमार अपना अंगूठा चूसता है, (इससे उसकी यत्किंचित् क्षुधानिवृत्ति होती है) अब आगे उसके पुण्य बल से कौन आएगा ? क्या होगा ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

देवानुप्रियों ! जो आत्मार्थी संत हैं, आत्मा का श्रेय साधने के लिए सांसारिक जीवन (विषयों) से मुक्त हुए हैं, उनकी तो एक ही इच्छा होती है कि मुझे अपने कर्मों का क्षय करके शीघ्र मोक्ष में जाना है। अभी तक किसी-किसी भव में किसी समय चारित्र तो अंगीकार किया, साधना की, किन्तु मोक्षपद की प्राप्ति के ध्येय से आत्मलक्षी साधना नहीं की। इसी कारण मैं संसार में भटका हूँ। अब मुझे इस जन्म-मरणादि-रूप संसार में नहीं भटकना है। मैं अब ऐसी श्रद्धापूर्वक साधना करूँ, ताकि कर्मों से मेरा शीघ्र छुटकारा हो। अभव्य जीव साधु दीक्षा लेता है, किन्तु उसे तत्त्वों के प्रति सम्यक् श्रद्धा नहीं है, इस कारण उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता। वह साधुपन का तो इतना बारीकी से पालन करता है कि पूंज-पूंज (प्रमार्जन) करता हुआ चलता है, आहार भी रूखा-सूखा करता है, उग्र तप करता है, संयमपालन में परिषह आ जाए तो समभाव से सहन करता है। कोई उस पर चाबुक से प्रहार करता है या वसूले से बींध डालता है तो भी आँख का कोना भी लाल नहीं होने देता, अणुमात्र भी क्रोध नहीं आने देता, फिर भी उसका मोक्ष नहीं होता। इसका पहला कारण है - उसे तत्त्व के प्रति सुश्रद्धा नहीं, उसकी दृष्टि सम्यक् नहीं है। उसे लोकैषणा की प्रबल भूख है और उसमें सम्मान और प्रशंसा पाने की कामना है। अन्तर में लौकिक कामनाएँ-वासनाएँ हैं। हम उग्र चारित्र का पालन करें तो देवलोक के दिव्य सुख मिलेंगे। ऐसी लौकिक-भौतिक कामनात्मक भावना से अभवी जीव ऐसा कठोर चारित्र-पालन करता है, कष्ट सहता है, इससे उसके कर्मों की निर्जरा नहीं होती, केवल पुण्यबन्ध होता है; क्योंकि उसके मन में मोक्ष के प्रति रुचि व श्रद्धा नहीं है। (केवल मुख से कहता है - संवर निर्जरा से मोक्ष होता है। मैं मोक्ष चाहता हूँ।) इसके विपरीत भव्यजीव ऐसा विचार करता है कि मैं समताभाव में रहकर सम्यक् शंका, क्रोधी, विचिकित्सा तथा नामना-कामना से दूर रहकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की आराधना-साधना करूँ, जिससे मेरे कर्मों का शीघ्र क्षय हो, संवर-निर्जरा द्वारा मोक्ष के निकट पहुँचूँ और शाश्वत सुख को प्राप्त करूँ। निष्काम भाव से, ज्ञाता-द्रष्टा रहकर श्रद्धा-निष्ठापूर्वक जो चारित्र का पालन करता है, वह अवश्य ही कर्मों की तप, जप, स्वाध्याय, ध्यान एवं संवर, निर्जरा से, परिषहगम से अपने कर्मों का शीघ्र क्षय करके मोक्ष में जाता है। आत्मार्थी संत लोकैषणा में पड़कर किसी प्रकार की कामना, वासना, तृष्णा, लिप्सा, आसक्ति या राग-द्वेष-मोह में पड़कर चारित्र में दोष नहीं लगाता। चारित्रवान् साधु आहार करता है, तो भी उसके पीछे का उद्देश्य और भाव होता है। देखिए उसके लिए 'प्रश्नव्याकरण सूत्र' में भगवान् के उद्गार -

"अक्खो वंजणाणुलेवणभूयं, संजम-जाया-माया-णिमित्तं।
संजम-भार-वहणट्ठाए, भुंजेज्जा पाण - धारणट्ठाए ॥"

जैसे बैलगाड़ी चलाने के लिए उसके पहिये की धुरी में अंजन (कज्जल-सा काला औंगा) डालना पड़ता है, तथा घाव पर कोई लेप या मल्हम आदि दवा लगानी पड़ती

पक्के होते हैं। वे कभी मूंग का कालीमिर्च नाम नहीं रखेंगे। तुम्हें ऐसे भाव नहीं आते, इसका कारण यह है कि तुम त्याग की भूमि में संसार के रागरंग को साथ में लेकर आते हो। जब तुम्हारे यहाँ किसी सांसारिक प्रोग्राम या पार्टी का आयोजन करते हो, तब क्या वहाँ धर्म की बातें करते हो ? नहीं। वहाँ तो सिर्फ संसार की बात होती है। तब त्याग की भूमि में संसार की बात क्यों होनी चाहिए ? यहाँ संसार की गंदगी नहीं होनी चाहिए। तुम्हें पहनने के कपड़े स्वच्छ अच्छे लगते हैं, शरीर भी स्वच्छ अच्छा लगता है, भोजन करने की थाली वगैरह भाजन भी स्वच्छ पसंद करते हो, बैठने का स्थान भी स्वच्छ पसंद करते हो, तो केवल एक आत्मा ही मलिन पसंद करते हो न ? तुम वर्षों से धर्मध्यान करते हो, धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हो, परन्तु अभी तक धर्म के स्वरूप को समझे नहीं। जब तुम्हें वीतराग-परमात्मा का शासन प्रिय लगेगा, तब यह संसार (जन्म-मरणादि रूप संसार) खारा लगेगा। संसार के भौतिक सुखों के प्रति आसक्ति मनुष्य को नरक में ले जानेवाली है।

सच्चा सुख कहाँ है ? : 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है - *"धम्मारामे चरे भिक्खू।"* आरम्भ-रहित धर्मरूपी उद्यान में विचरण करना। पब्लिक और प्राइवेट बगीचे की तरह अन्तर का भी एक बगीचा है। उस धर्मरूपी बगीचे में आत्मा को अपूर्व शान्ति और सुख की अनुभूति होती है। इसमें कोई गड़बड़झाला या धमाचौकड़ी (धांधल या धमाल) नहीं है। वहाँ तो शान्तिरूपी शीतल हवा लहराती रहती है। वहाँ किसी की निन्दा-चुगली करनी या सुननी नहीं होती।

एक बार एक राजा धर्मरूपी बगीचे में बैठा था। उस समय इसे विचलित करने के लिए एक आदमी आया। वह कहने लगा - "राजन् ! तुम्हारी नगरी में आग लगी है।" यह सुनकर राजा ने क्या जबाब दिया ? "मेरी नगरी तो मेरे अंदर है और वह शान्त और शीतल है। इसे आग कैसे लग सकती है ?" उस मनुष्य ने दूसरी बार आकर कहा - "तुम्हारा खजाना लुट गया है।" इस पर राजा ने कहा - "मेरा आत्मिक खजाना तो पूर्णतया सुरक्षित है।" उस मनुष्य ने तीसरी बार आकर कहा - "राजन् ! जल्दी उठो। शत्रु चढाई करने हेतु आ गए हैं।" तब भी राजा ने खूब शान्ति से जवाब दिया - "मैं तो अजातशत्रु हूँ। जब मेरा कोई शत्रु नहीं है। तब फिर चढ़ाई कौन करेगा ?" यों यह राजा किसी भी प्रकार से आत्मभाव से विचलित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी आत्मा धर्मरूपी बगीचे में बैठी थी। अतः अन्त में विचलित करनेवाला व्यक्ति थक गया, किन्तु राजा विचलित नहीं हुआ। भगवान् महावीर को विचलित करने के लिए अनेक उपसर्ग और विघ्न (उनपर) आए फिर भी वह अपनी साधना से जरा भी विचलित नहीं हुए। वीरप्रभु ने न तो किसी पर क्रोध किया और न ही अपनी समता खोई। धर्म के बगीचे में तो शान्ति होती है। उसमें बैठनेवाला निज घर का आनन्द और सुख का उपभोग कर सकता है।

बन्धुओं ! एकबार आतुरता (चटपटी) पैदा होनी चाहिए, कि कब मैं आत्म-गृह (निज घर) में प्रवेश करूँ ?

संक्षेप में साधुवर्ग की गौचरी बहुत मर्यादित और विवेकपूर्ण होती है। पहले वह गरीब के घर में भिक्षा के लिए गया, वहाँ रुखा आहार मिले और बाद में किसी धनिक के घर में गया, वहाँ सरस-स्वादिष्ट आहार मिला, उसे समय ऐसा विचार न करे कि चलो, 'यह सरस आहार यहाँ मिल रहा है तो इस मात्रा से अधिक ले लूं।' परन्तु उसे जितना चाहिए, उतनी मात्रा में आहार ले, और उस मर्यादित एवं निर्दोष आहार लेकर समभाव से सेवन करके क्षुधा वेदनीय का शमन करे। इस प्रकार की गौचरी और आहार सेवन करने से निर्जरा होती है। इसी तथ्य को 'मनुस्मृति' में व्यक्त किया है - *अलाभेन विपादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ।* अर्थात्-साधुवर्ग भिक्षा मिलने पर हर्ष न करे। लाभ और अलाभ दोनों परिस्थितियों में समभाव रखे। पूर्वोक्त गाथा के दूसरे चरण में कहा गया है - *"सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धि ।"* साधु किसके साथ, किस प्रकार रहे ? इसके उत्तर में कहा गया है - हे विवेकी श्रमण ! तुझे संयम-साधना में सहायक की इच्छा हो तो ज्ञान-ध्यान में निपुण बुद्धिवाला हो, ताकि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और स्वाध्याय, ध्यान में सहयोगी बन सके। अथवा शिष्य भी ऐसा करना चाहिए, जो यथाशक्ति उच्च चारित्र का पालन करने में उद्यमी हो, जो तप-संयम द्वारा कर्म-पर्वत को तोड़ने का पुरुषार्थ कर आत्मकल्याण कर सके। ऐसे प्रखर विवेकबुद्धिवाले मुमुक्षु को तू अपना सहायक बनाना।

आगे तीसरे चरण में कहा है - *"निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोगं ।"* - तुझे ऐसे स्थान में रहना चाहिए, जो पवित्र हो, निर्दोष हो, एकान्त (कोलाहल या अश्लील बातों से रहित) हो। जहाँ तेरा संयम सुरक्षित रहे, ऐसे स्थान में रहना। ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ में से प्रथम बाड़ में कहा गया है - ब्रह्मचारी साधक -स्त्री-पशु-पंडक-रहित स्थान में और साध्वियाँ पुरुष-पशु पंडक-रहित स्थान में रहे। साधु हों, वहाँ स्त्री और साध्वियाँ हों, वहाँ पुरुष रात्रिनिवास न करता हो, ऐसा स्थान होना चाहिए। कहा भी है-

जेम कुकुट-बच्चांने बिलाडीनो सदा भय ।
तेम छे ब्रह्मचारीने स्त्रीना संसर्गनो भय ॥

जैसे मुर्गे के बच्चे को बिल्ली का भय रहता है, वैसे ब्रह्मचारी पुरुष को स्त्री का सदा भय रहता है। अतः ब्रह्मचारी पुरुषों को स्त्री के अतिपरिचय (संस्तव) से दूर रहना चाहिए। संक्षेप में, मोह उत्पन्न हो, ऐसे स्थान में साधु को नहीं रहना चाहिए। 'दशवैकालिक सूत्र' में इस सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए भगवान् ने कहा है -

"हत्थ-पाय-पड़िच्छिन्नं, कण्ण-नास-विगप्पियं ।
अवि वाससयं नारीं, बंभयारी विवज्जए ॥"

सौ वर्ष की वृद्धा माता हो, जिसके हाथ, पैर, कान और नाक कटे हुए हों, ऐसी नारी जहाँ हो, वहाँ भी, हे साधु ! तू एकान्त में उससे दूर रहना, क्योंकि एकान्त स्थान में स्त्री का संग बुरा है।

ब्रह्मचर्य एक अमूल्य रत्न है। उसकी सुरक्षा करने के लिए भगवान् ने कितनी हिदायतें दी हैं ? हे साधक ! चारित्र की रक्षा के लिए तू रूखा-सूखा और मर्यादित (प्रमाणोपेत)

पक्के होते हैं। वे कभी मूंग का कालीमिर्च नाम नहीं रखेंगे। तुम्हें ऐसे भाव नहीं आते, इसका कारण यह है कि तुम त्याग की भूमि में संसार के रागरंग को साथ में लेकर आते हो। जब तुम्हारे यहाँ किसी सांसारिक प्रोग्राम या पार्टी का आयोजन करते हो, तब क्या वहाँ धर्म की बातें करते हो ? नहीं। वहाँ तो सिर्फ संसार की बात होती है। तब त्याग की भूमि में संसार की बात क्यों होनी चाहिए ? यहाँ संसार की गंदगी नहीं होनी चाहिए। तुम्हें पहनने के कपड़े स्वच्छ अच्छे लगते हैं, शरीर भी स्वच्छ अच्छा लगता है, भोजन करने की थाली वगैरह भाजन भी स्वच्छ पसंद करते हो, बैठने का स्थान भी स्वच्छ पसंद करते हो, तो केवल एक आत्मा ही मलिन पसंद करते हो न ? तुम वर्षों से धर्मध्यान करते हो, धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हो, परन्तु अभी तक धर्म के स्वरूप को समझे नहीं। जब तुम्हें वीतराग-परमात्मा का शासन प्रिय लगेगा, तब यह संसार (जन्म-मरणादि रूप संसार) खारा लगेगा। संसार के भौतिक सुखों के प्रति आसक्ति मनुष्य को नरक में ले जानेवाली है।

सच्चा सुख कहाँ है ? : 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है - *"धम्मारामे चरे भिक्खू ।"* आरम्भ-रहित धर्मरूपी उद्यान में विचरण करना। पब्लिक और प्राइवेट बगीचे की तरह अन्तर का भी एक बगीचा है। उस धर्मरूपी बगीचे में आत्मा को अपूर्व शान्ति और सुख की अनुभूति होती है। इसमें कोई गड़बड़झाला या धमाचौकड़ी (धांधल या धमाल) नहीं है। वहाँ तो शान्तिरूपी शीतल हवा लहराती रहती है। वहाँ किसी की निन्दा-चुगली करनी या सुननी नहीं होती।

एक बार एक राजा धर्मरूपी बगीचे में बैठा था। उस समय इसे विचलित करने के लिए एक आदमी आया। वह कहने लगा - "राजन् ! तुम्हारी नगरी में आग लगी है।" यह सुनकर राजा ने क्या जवाब दिया ? "मेरी नगरी तो मेरे अंदर है और वह शान्त और शीतल है। इसे आग कैसे लग सकती है ?" उस मनुष्य ने दूसरी बार आकर कहा - "तुम्हारा खजाना लुट गया है।" इस पर राजा ने कहा - "मेरा आत्मिक खजाना तो पूर्णतया सुरक्षित है।" उस मनुष्य ने तीसरी बार आकर कहा - "राजन् ! जल्दी उठो। शत्रु चढाई करने हेतु आ गए हैं।" तब भी राजा ने खूब शान्ति से जवाब दिया - "मैं तो अजातशत्रु हूँ। जब मेरा कोई शत्रु नहीं है। तब फिर चढ़ाई कौन करेगा ?" यों यह राजा किसी भी प्रकार से आत्मभाव से विचलित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी आत्मा धर्मरूपी बगीचे में बैठी थी। अतः अन्त में विचलित करनेवाला व्यक्ति थक गया, किन्तु राजा विचलित नहीं हुआ। भगवान् महावीर को विचलित करने के लिए अनेक उपसर्ग और विघ्न (उनपर) आए फिर भी वह अपनी साधना से जरा भी विचलित नहीं हुए। वीरप्रभु ने न तो किसी पर क्रोध किया और न ही अपनी समता खोई। धर्म के बगीचे में तो शान्ति होती है। उसमें बैठनेवाला निज घर का आनन्द और सुख का उपभोग कर सकता है।

बन्धुओं ! एकबार आतुरता (चटपटी) पैदा होनी चाहिए, कि कब मैं आत्म-गृह (निज घर) में प्रवेश करूँ ?

पीड़ाकारी दुःखद अहंभाव है कि मैं भी कुछ हूँ। यदि (मन से) यह निकल जाय तो जीवन में शान्ति स्थापित हो जाए। अगर तुम्हें शान्ति चाहिए तो कषायों का त्याग करो। त्याग में जो आनन्द है, वैसा आनन्द दूसरे किसी में नहीं है। संसार में जितना सुख है, उतना ही दुःख है। संसार की जितनी मौज-मजा है, उतनी ही कर्म की सजा है।

श्रेणिकराजा का दृष्टांत : श्रेणिकराजा के जीवन की एक घटना है। एक बार महाराजा श्रेणिक राजमहल के झरोखे में बैठे-बैठे सबके साथ आम चूस रहे थे। वह आम चूस-चूसकर उनके छिलके और गुठलियाँ नीचे फेंक रहे थे। बड़े आदमी आम चूसकर फेंक देते हैं, उनमें आधा माल होता है। कहावत भी है कि 'हाथी के मुँह का कौर नीचे गिरे तो चीटियों के पेट भर जाते हैं।' ऐसे समय में एक भूखे आदमी की नजर उन (फेंके हुए आम के छिलकों और गुठलियों) पर पड़ी। और भूख से पीड़ित वह व्यक्ति वहाँ आकर फेंके हुए छिलके और गुठलियाँ उठाकर चूसने लगा। अपनी भूख उनसे मिटाकर खुशी मनाने लगा। इसी बीच राजा के सिपाही ने उसे देख लिया। अतः उसने उसकी पीठ पर लाठी फटकारता हुआ बोला - "हरामखोर ! यहाँ क्यों खड़ा है ?"

मार खाकर राजा को जगाया : बन्धुओं ! कर्म की कैसी विचित्रता है ? बेचारा भिखारी राजा के महल में नहीं गया, नहीं उसने कुछ चुराया था। राजा के द्वारा चूसकर फेंके हुए छिलके और गुठलियाँ उठाकर चूसता था। वहाँ भी कर्म ने लाठी की मार खिलाई। भिखारी की पीठ पर लाठी की मार लगी। वेदना होने लगी, पर वह तो सिपाही के सामने देखकर खिलखिला कर हंसने लगा। महाराजा श्रेणिक ने महल के झरोखे से यह दृश्य देखा। उनके मन में आश्चर्य हुआ कि यह कैसा मनुष्य है ? सिपाही इसे मारता है, फिर भी वह हंस रहा है ! राजा ने सिपाही से कहा - "तू उस मनुष्य को मेरे पास ला।" इस कारण सिपाही उस भिखारी को राजा के पास लाया। महाराजा ने उससे पूछा - "अरे भिखारी ! तुझे यह सिपाही मार रहा है, फिर भी तू हंसता है, तो क्या तू पागल है ?" तब भिखारी ने कहा - "महाराजा ! मैं पागल तो नहीं हूँ, मगर मुझे आपके सिपाही ने लाठी मारी, तब मुझे एक विचार आया, इस कारण मैं हंसता हूँ।" राजा ने पूछा - "तुझे क्या विचार आया ?" इस पर भिखारी ने कहा - "आप मुझे अभयदान दें, तो मैं कहूँगा।" राजा ने कहा - "अच्छा, जा मेरी तरफ से तुझे अभयदान है।" तब भिखारी ने कहा - "महाराजा ! मुझे मार पड़ी, तब ऐसा विचार स्फुरित हुआ कि मैं तो राजा द्वारा चूसकर फेंके हुए आम के छिलके और गुठलियाँ चूसता हूँ, फिर भी मुझे मार खानी पड़ी, तो रस से परिपूर्ण और ताजे पके आम खानेवाले राजा को कितनी मार खानी पड़ेगी।" राजा समझ गया। अहो ! आज भिखारी ने मुझे कितनी सुन्दर बात कही है ? राजा ने भिखारी को अच्छा इनाम देकर उसकी जिंदगी का दारिद्र्य दूर कर दिया और स्वयं चिंतन करने लगे कि यह जीवन माल-मिष्टान्न खाकर पूरा करने के लिए नहीं है किन्तु जीवन में त्याग-तप का आचरण करना जरूरी है।

कर रहे हैं, परन्तु महाबल अनगार के मन में मान (अभिमान) का कीड़ा प्रविष्ट हुआ कि 'मैं सबका नायक (नेता) हूँ; अतः यदि मैं इन सबके साथ एक-सरीखी क्रिया करूँगा तो दूसरे भव में मुझे ऐसा बड़प्पन (मोटापन) नहीं मिलेगा। अतः मैं इनसे कुछ विशिष्ट क्रिया करूँ।' इस कारण महाबलमुनि क्या करने लगे ? शास्त्रकार कहते हैं -

"जइणं ते महब्बलवज्जा छ अणगारा चउत्थं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति, तओसे महब्बले अणगारे छट्ठं उवसंपज्जित्ताणं विहरति।"

जब महाबल अनगार के सिवाय वे छह अनगार चतुर्थभक्त (एक उपवास) करते, तब महाबल अनगार छट्ठभक्त (बेला दो उपवास) करते थे। यों तो सभी (७) अनगारों ने मिलकर निश्चित किया था कि हम जो कुछ तप करेंगे, वह साथ-साथ रहकर एक सरीखा तप करेंगे, अतः महाबलमुनि सबके साथ तो एक उपवास के पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करते थे, किन्तु जब पारणे का दिवस (समय) आता, तब कोई कारण बताकर दूसरा उपवास कर लेते थे। इस कारण वे छह अनगार भी छट्ठ तप (दो उपवास-बेला) करते थे।

महाबल अनगार ने सबके साथ एकसरीखा तप करने का निश्चित किया था, परन्तु उन्होंने तदनुसार आचरण नहीं किया। उन्होंने कुटिल भाव से दूसरी तरह से तपश्चरण किया। 'उत्तराध्ययन सूत्र' में इस विषय में कहा गया है : *"माया गइ-पडिग्घाओ।"* अर्थात् - माया सद्गति का नाश (घात-प्रतिघात) करती है। माया में कितने दुर्गुण हैं ? इसे ध्यान से सुनो - 'दशवैकालिक सूत्र' *'माया मित्ताणि नासेइ'* - माया मित्रता का नाश करती है। *'माया करण्डी नरकस्य, हंडी तपो विखण्डी, सुकृतस्य भण्डी।'* - माया नरक की पिटारी है, तप को खण्डित करनेवाली है, सुकृत को बदनाम करनेवाली है। अन्य ग्रन्थों में भी कहा है - *"दुर्भाग्य-जननी माया, माया दुर्गति कारणम्।"* माया दुर्भाग्य को जन्म देनेवाली जननी है और वह दुर्गति का कारण है। ऐसा समझकर व्यापार-धंधों में, धर्म-कार्य में तथा परस्पर व्यवहार में माया मत करना। विशेष तो क्या कहें - *'नृणां स्त्रीत्वप्रदा माया।'* पुरुषों को स्त्रीत्व-प्रदायिनी माया है।

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' में मल्लिनाथ भगवान् तीर्थंकर पद प्राप्त होने पर भी पूर्वकृत माया के कारण उनके स्त्रीत्व प्राप्ति का कारण माया बनी। 'तत्त्वार्थ सूत्र' में भी कहा है - *"माया तैर्यग्योनस्य"* - तिर्यंचयोनि प्राप्त होने का कारण माया (गूढमाया, दम्भ, ठगी, दिखावा, वंचना, छलकपट, धोखाधड़ी, प्रतारणा आदि है। जिनका यहाँ अधिकार चल रहा है उन मल्लिनाथ भगवती को तीर्थंकरत्व में स्त्री का पद दिलानेवाली माया है। अर्थात् - माया स्त्रीत्व-प्राप्ति का कारण बनती है। महाबलमुनि के मन में पहले तो ऐसा अभिमान आया कि मैं इन सबका नायक (नेता-अग्रणी) हूँ। ये सब (मित्र) मेरे आधीन हैं, यानी अनुनायक हैं। मेरे में उनकी अपेक्षा कुछ भी उत्कृष्ट (विशेषता) न हो तो नायक और अनुनायक में क्या अन्तर रहा ? इस प्रकार की भावना ने महाबल

मन में पुत्र की प्राप्ति और उसके जन्मोत्सव मनाने का वहुत ही आनन्द था । परन्तु इस प्रचुर आनन्द में एक दुःख रानी के मन में खटकने लगा । अतः अवसर देखकर रानी राजा से कहती है - "स्वामीनाथ ! देखिये, यह पुत्र कितना सुन्दर है, तेजस्वी है ? बड़ा होने पर यह महान पराक्रमी होगा, ऐसा उसके उन्नत ललाट पर से मालूम होता है ! किन्तु दूसरी रानियों के पुत्र होगा, और जव यह बात फूट जाएगी, यह रानी का (मेरा) औरस पुत्र नहीं है, यह तो कहीं से मिला हुआ है, ऐसी स्थिति में उनके पुत्र को राजगद्दी मिलेगी, तव मेरे इस पुत्र की राज्य में क्या और कितनी कद्र होगी ? ऐसे (तेजस्वी) पुत्र को राजगद्दी नहीं मिलेगी, तो इसे यहाँ लाने का अर्थ क्या होगा ? अतः आपसे मेरी प्रार्थना यह है कि मेरे इस पुत्र को ही राजगद्दी मिलनी चाहिए ।" यह सुनकर राजा ने कहा - "तू चिन्ता मत कर । यह पुत्र अत्यन्त पुण्यवान है । इसके पुण्य ही इसे राजगद्दी दिलायेंगे । मैं उसके लिए सारी व्यवस्था करूंगा ।" अव राजा रानी को क्या कहेगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ३२

श्रावण सुदी १०, गुरुवार — ता. ५-८-७६

साधना में माया : सिद्धि में सिद्धकारिणी

सुज्ञ वन्धुओं, सुशील माताओं और वहनों !

राग-द्वेष-विजेता, मोक्ष-मार्ग-प्रणेता, अनन्त-करुणानिधि भगवान् महावीरस्वामी ने अपने ज्ञान में जो भाव देखे, उन्हें जगत् के जीवों को वताए-समझाए । भगवान् ने कहा - "हे जीवात्मन् ! तू अनन्तकाल से स्व और पर की पहचान किये विना भटक रहा है ।" हितैषी माता-पिता सदैव अपने वालकों का हित चाहते हैं, वैसे ही जगत् के जीव कैसे आत्म-सुख प्राप्त करे, इसके लिए भगवान् ने भी कहा - "हे भव्यजीवों ! तुम जन्म-जरा-मरण के दुःख मिट जाएँ, ऐसी साधना करो, ताकि तुम्हें शाश्वत सुख प्राप्त हो ।"

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन का वर्णन आपके सामने किया जा रहा है। महावल अनगार ने मामूली त्याग नहीं किया । उन्होंने ५०० रानियाँ तथा पुत्रों का प्रेम (मोह) छोड़ा । सारे नगर के लोग महावलकुमार को पिता के रूप में पूजते थे । अतः नगरजनों द्वारा ऐसी पूजा-प्राप्ति का मोह छोड़ा । सर्वस्व त्याग करके संयम अंगीकार किया । किन्तु उनके मन में मान-कषाय का कंटक खड़ा हो गया । छहों मित्र जैसे

"दुल्लहाओ मुहा दाई, मुहाजीवी विदुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुगई ॥"

सुपात्रदान देनेवाले दाता दुर्लभ हैं और सुपात्रदान लेनेवाले आदाता - पवित्र संत भी दुर्लभ हैं। वास्तव में दान देनेवाला, दान लेनेवाला और दान देने की वस्तु तथैव दान देने की विधि, ये सब शुद्ध हो तो देनेवाला और लेनेवाले दोनों सद्गति प्राप्त करते हैं।

शंखराजा और यशोमती रानी दोनों ने संत को द्राक्षा धोया हुआ पानी बहराया। पानी निर्दोष था, कल्पनीय और एषणीय था। लेनेवाले संत भी पवित्र थे। राजा के भाव भी निर्दोष थे। इसलिए राजा ने तीर्थंकरनामकर्म का उपार्जन किया। कहा है -

"शंखराजा ने यशोमती राणी, जेणे वहोराव्युं द्राक्षतणुं पाणी ॥"

वह द्राक्षा का रस नहीं था, द्राक्षा का धोया हुआ पानी था। फिर भी शंखराजा ने उसे सरल और उत्कृष्ट भाव से बहराया, जिसके फलस्वरूप तीर्थंकर(गोत्र)नामकर्म बांधा और रानी ने माया की, इस कारण वह मनुष्यभव पूर्ण करके देवगति में गई, वहाँ रानी का जीव (आत्मा), देवी बनी।

महाबल अनगार माया-सहित तप करते हैं। महाबलमुनि जब पारणा नहीं करते, तब छह (मित्र) मुनियों के मन में विचार होता है कि 'अपने महाबल अनगार आज आहार नहीं करेंगे और हमें आहार करना पड़ेगा।' ऐसा सोचकर वे पश्चात्ताप करते हैं; किन्तु मन में महाबलमुनि के प्रति वे कोई शंका नहीं लाते। सचमुच, वे मुनिवर कितने सरल, पवित्र और गम्भीर थे ? 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा गया है कि साधु कैसे होने चाहिए ?

"पुढवी-समं मुणी हवेज्ज ।"

मुनि को पृथ्वी के समान होना चाहिए। पृथ्वी की कोई पूजा करे, कोई उस पर मल-मूत्र डाले कोई उसे लाठियों से पीटे या मारे अथवा कोई उसकी निन्दा करे या प्रशंसा, पृथ्वी तो समभाव से सहन करती है। इसी प्रकार साधु की भी कोई निन्दा करे या प्रशंसा, कोई सत्कार-सम्मान करे या कोई मारने के लिए आए, दोनों ही अवस्था में वह समभाव से सहन करते हैं, किसी पर गुस्सा नहीं करते, नहीं शाप या वरदान देते हैं। महाबल राजा इस प्रकार माया सहित तप करते हैं, जबकि वे छहों अनगार सरलभाव से तप करते हैं। आगे क्या होगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

प्रद्युम्नकुमार के पुण्योदय से विद्याधर का आगमन : रूपाचल पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर मेघकूट नामक सुन्दर नगर था। वहाँ यमशमर नाम के विद्याधर राजा अत्यन्त न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करते थे। वह राजा एक बार अपनी कनकमाला नाम की रानी के साथ विमान में बैठकर सैर करने के लिए जा रहे थे। फिरते-फिरते उनका विमान तक्षक पर्वत पर एक शिला के नीचे जहाँ प्रद्युम्नकुमार रहा हुआ था, उसके ऊपर

भी चीज उसके काम की नहीं होती। एकमात्र रसना का विषय होने से, उसे सारा जगत् (जगत् के सर्व पदार्थ) रसना का विषय प्रतीत होता है। उसे कोई भी वस्तु दो, वह उसे मुँह में डालकर खुश होता है। अतः बालक के मन में आहार-संज्ञा प्रबल है और तुम्हारे मन में है - परिग्रह-संज्ञा। बालक के मन में मिल्कियत, महाजन, कुटुम्ब-परिवार, प्रतिष्ठा या इज्जत की कोई कल्पना नहीं होती। वह आहार के पीछे पागल है, जबकि तुमलोग बहुधा परिग्रह के पीछे पागल हो। जीव माता के गर्भ में उत्पन्न हुआ, तब उसने सर्वप्रथम (पहले समय में) आहार लिया। आहार लेने के पश्चात् शरीर, इन्द्रियाँ आदि छह पर्याप्तियाँ क्रमशः बंधती गई। अक्खा भगत कहता है -

"वस्तु पामवा गयो नवी, पण पेट पड्या ले भोगवी"

ऐसी स्थिति में (आहार-प्राप्ति की धून में) आत्मा अपने स्वरूप को कहाँ से निहार सकता है ?

बन्धुओं ! किसी व्यक्ति की आँख चली गई हो, तो उसे अंधेपन का दुःख कितना खटकता है ? आँख तो जिंदगी का जवाहर है। परन्तु उसमें एक दोष है। एक बहुत बड़ा अवगुण है। पता है, तुम्हें उसका कि वह कौन-सा अवगुण है ? आँख सारे विश्व (जगत् के जड़-चेतन पदार्थों) को देखती है। वह घर-बार, धन-माल, थंभे, हाट-हवेली तथा समस्त नर-नारियों को देखती है, पर वह (आँख) अपने-आपको नहीं देखती। इसी प्रकार आत्मा पुत्र, परिवार, धन-सम्पत्ति, ग्राम-नगर और कुटुम्ब की, इससे भी आगे बढ़कर कहूँ तो शरीर आदि की बहुत चिन्ता करती है, परन्तु दिन-रात के चौबीस घंटों में - 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरी क्या स्थिति है ? किसके साथ मेरा क्या और कितना सम्बन्ध है ?' ऐसी चिन्ता कभी की है क्या ? आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल, उत्तम देवाधिदेव, सद्गुरु संयोग और आत्मधर्म-प्राप्ति, जैनदर्शन, वीतरागवाणी के श्रवण का सुयोग इत्यादि अनुकूल दशा में, उच्च दशा में भी आत्मा अपने-आपको पहचानता नहीं तो फिर अनार्यक्षेत्र, नीच कुल, बोधि लाभ से वंचितता, कुदेव-कुगुरु-कुधर्म के संयोग इत्यादि हीनदशा में अपने-आपको पहचानेगा भी कैसे ? आपके मन में कभी ऐसा प्रश्न उठता है क्या कि आत्मा अनादिकाल से क्यों संसार में भटक रहा है ? स्वयं स्वयं को देखता-जानता क्यों नहीं ? वास्तव में, जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त पुद्गलों (जड़ वस्तुओं) की माया में प्रवृत्त रहे, उसके मन में ऐसा प्रश्न उत्पन्न ही कहाँ से हो ? जब आत्मा को अपने सम्बन्ध में ये और ऐसे विचार उत्पन्न होंगे, तब ही वह (आत्मा) पुण्य-पाप, धर्म और अधर्म को, श्रेय और अश्रेय (प्रेम) को सही माने में समझकर पाप, अधर्म, अहित और अश्रेय से दूर हटेगा, इनको करने से रुकेगा।

स्वप्न में देखे हुए सांप के जितना भी पाप का भय नहीं है : मान लो, तुम रात को सोये हो और स्वप्न में तुमने अपने पैर से लिपटे हुए सर्प को देखा, तब तुरंत घबराकर जाग गए। प्रकाश में देखा तो मालूम पड़ा कि वह सांप नहीं है, ऐसा होने पर

गुणमयता का भान होता है। संसार की माया मिथ्या और संयोग वियोगशील प्रतीत होने लगते हैं। भोगों की भयंकरता और त्याग की श्रेष्ठता समझ में आ जाती है। व्रत-नियमों के प्रति प्रीति जागती है और अत्मस्वरूप की पहचान होती है। पैसे, पत्नी और परिवार का मोह कम हो जाता है, पाप का भय बढ़ता है। जगत् के पदार्थों की क्षणभंगुरता प्रत्यक्ष दिखाई देती है, और यह संसार कारागार जैसा लगने लगता है। ऐसी स्थिति में मैं कौन और मेरा क्या है ? इसका यथार्थ भान हो जाता है। जन्म-मरण के त्रास से छुटकारा मिलता है। संसार में जहाँ-तहाँ स्वार्थ का साम्राज्य व्याप्त दिखाई देता है। जगत् के जड़ पदार्थों में सच्चा सुख नहीं है, किन्तु आत्मा में ही सच्चा सुख निहित है, इसकी दृढ़ प्रतीति होती है। इतना हो जाय तो समझना कि मानवजीवन का सही मूल्यांकन हुआ है। जिसे इस जीवन का मूल्य भलीभांति समझ में आ गया, उसका आत्मिक-सद्गुणरूपी अध्यात्म-बगीचा विकसित हो उठता है। ऐसे महान अनगार की साधनामयी जीवनी का निरूण आपके समक्ष किया जा रहा है।

"एवं अट्ठमतो दसमं, जह दसमतो दुवालसमं।"

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

वे सब छह अनगार जब अट्ठम तप (तेला) करते तब महाबल अनगार दसम तप (चौला) करते, यानी इसके लिए वे कुछ न कुछ कारण बताकर दसम(चार उपवास) करते, और छह संत चार उपवास करते तो वे बारभाग (पाँच उपवास-पचौला) करते थे।

महाबल अनगार के जो छह मित्र अनगार थे, वह ऐसे पवित्र संत थे कि पारणे का दिन आता, तब शुद्ध-निर्दोष आहार की गवेषणा करने हेतु निकलते। उस समय उनके मन में ऐसी पवित्र भावना होती थी कि आज तो हम ऐसे शुद्ध भाव से गौचरी लेकर आएँ कि अपने बुजुर्ग साथी महाबल अनगार अपने साथ पारणा करके हमें पावन करें। वे छह संत बहुत ही उपयोगपूर्वक निर्दोष आहार की गवेषणा करते थे। साधुमार्ग के प्रत्येक कार्य में अत्यन्त विवेक होता है। साधु किस तरह गौचरी करे ? इस सम्बन्ध में भगवान् ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३२वें अध्ययन की चौथी गाथा में कहा है -

"आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थ-बुद्धिं।
निकेय मिच्छेज्ज विवेगजोगं, समाहिकामे समणे तवस्सी॥"

ज्ञान-दर्शन-चारित्र की समाधि के चाहनेवाले तपस्वी श्रमण को आहार की इच्छा हो तो मर्यादापूर्वक एषणा के ४२ या ९६ दोषरहित शुद्ध, परिमित एवं एषणीय आहार की गवेषणा करे। अगर उसे सहायक (साथी) साधु की इच्छा हो तो जीवादिनों तत्त्वों के ज्ञाता, आगम-सिद्धान्तों के अर्थ में जिसकी बुद्धि निपुण (प्रखर) हो, उसे ढूंढे अथवा चारित्र में दृढ़ गुणवान् सहायक बनाने की इच्छा करे। और रहने का स्थान भी शुद्ध, शान्त, विविक्त (स्त्री-पशु-पंडकरहित-पवित्र एकान्त) चारित्र रक्षण योग्य स्थान में निवास करने की इच्छा करे।

• • • •

अकबर बादशाह को लगन लगी थी, तानसेन के गुरु का संगीत सुनने की। इसी प्रकार तुम्हें भी आत्मा की लगन लगेगी, तब प्रतिदिन उपदेश की जरूरत नहीं रहेगी। इंजिन (रेलगाड़ी का ऐंजिन) पटरी पर नहीं चढ़ता, तभ तक अड़चन है। किन्तु जब वह पटरी पर चढ़ जाता है, तब लाखों और करोड़ों मन वजन को खींच ले जाता है। अकबर बादशाह भी दूर, निर्जन स्थान में, जहाँ तानसेन के गुरु मठ बांधकर रहते थे, वहाँ पहुँच गए। तानसेन के गुरु का संगीत सुनने की लगन लगी थी, अतः उन्हें वहाँ पहुँचने में हिंसक प्राणियों का भय भी नहीं लगा। उस समय संगीतकार अपनी आत्मा में मस्त बनकर पूर्ण तन्मयता से गा रहे थे। उन्हें दुनिया की कोई चिन्ता नहीं थी। दूसरी ओर अकबर बादशाह तानसेन दोनों संगीतकार गुरु की झोंपड़ी के बाहर खड़े रहकर आत्मानन्द के लिए गानेवाले संगीतकार की मधुर स्वरलहरी का रसास्वादन करने लगे। जिसे सुनकर अकबर बादशाह के मन में विचार स्फुरित हुआ कि क्या लाजवाब है इनका संगीत ! कितनी मधुरता और रमणीयता है इनके संगीत में ? इनके गीत में कितने सुन्दर भाव भरे हैं ? अकबर बादशाह तानसेन के गुरु का संगीत सुनकर इतने आनन्दित हुए कि उनकी आँखें हर्षाश्रु से छलक उठीं। मन ही मन उनका मस्तक गुरु के चरणों में झुक गया।

तानसेन और अकबर बादशाह दोनों संगीत सुनकर घर गए। परन्तु बादशाह का मन आज संगीत-सम्राट गुरु के संगीत में रमण कर रहा है। एक दिन अकबर बादशाह ने तानसेन से पूछा - "तानसेन ! आजतक तो मैं तुम्हारी संगीतविद्या पर मुग्ध था, तेरा गीत सुनकर मेरा मन-मयूर नाच उठता था। परन्तु तुम्हारे गुरु का संगीत सुनने के बाद तुम्हारा संगीत मुझे फीका और नीरस लगता है। गुरु की संगीतकला में जो आनन्द और सरसता मुझे प्राप्त हुई है, उसमें और तुम्हारे द्वारा गाये जानेवाले संगीत में इतना अधिक अन्तर क्यों है ? संगीत-विद्या तो तुमने गुरु के पास से ही सीखी है। फिर भी गाने में इतना अन्तर क्यों है ?"

तानसेन ने सरलता से कहा - "जहाँपनाह ! मेरे गुरु जब गाते हैं, तब उनका मन स्वतः आनन्द से परिपूर्ण होता है। वे प्रभु के निकट अपनी आत्मा की पुकार पर गाते हैं और स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं। परन्तु मैं आपके तथा दूसरों के कहने से गाता हूँ। इसी कारण मुझे आनन्द तभी आता है, जब चारों ओर मेरी प्रशंसा और वाहवाही होती है, आप खुश होकर मुझे इनाम देते हैं, और पब्लिक राजी होकर धन्य-धन्य पुकार उठती है कि कैसा गजब का संगीत है ? लोग मेरा जयजयकार बोलें, इस फिराक में मैं रहता हूँ। सच कहूँ तो मेरे संगीत में यश-कीर्ति की प्राप्ति की, वाहवाह की चाहना है, साथ ही धन-प्राप्ति की आशा का विष भी भरा हुआ है, जबकि मेरे गुरु को यश-कीर्ति की, प्रतिष्ठा और प्रशंसा की तथा धन की कोई आशा या अपेक्षा नहीं है। उन्हें तो केवल भगवान् से भेंट करनी है, वे अन्तरहृदय के भाव से ओतप्रोत होकर गाते हैं। मैं यश,

है, साधुवर्ग को भी अपनी संयमयात्रा वहन करने के लिए, संयम-यात्रानुरूप भावों की यात्रा के लिए तथा दशविध प्राणों को धारण करने के लिए साधु आहार करे।

'भगवती सूत्र' में आहार करने की रीति-नीति के विषय में निर्देप दिया गया है - *"संजम-भार-वहणट्ठाए, बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारमाहारेइ।"* साधु-साध्वी संयम का भार वहन करने के लिए आहार करते हैं। पर वह कैसे करना ? जैसे सर्प अपनी बांबी (बिल) में सीधा प्रवेश करता है, वह उस समय कहीं इधर-उधर नहीं जाता, वैसे ही साधुवर्ग भी स्वाद की इच्छा से रहित होकर अन्न के कौर को मुँह में इधर-उधर फेरे विना केवल उदरपूर्ति के लिए आहार करे। साथ ही गरीब, धनवान का भेदभाव किये विना ऊँच-नीच-मध्यम कुल के यहाँ गौचरी (भिक्षाचरी) करे। इसी तथ्य को 'अन्तकृद्दशांग सूत्र' में बताया है - *'उच्च-नीय-मज्झिम-कुलेसु अडमाणे।'*

साधु-साध्वी जब भिक्षा के लिए निकले तब यह न सोचे - यह गरीब घर है या मध्यम घर है, यहाँ न जाऊँ, बल्कि उच्च कुल की तरह नीच और मध्यम कुल के घरों में भी भिक्षाचरी करे। शास्त्र में बताया है कि ऊँच, नीच और मध्यम, यों बारह कुल की गौचरी साधुवर्ग के लिए कल्पनीय है। अर्थात् साधु का भिक्षाटन भी समभाव से युक्त हो। संत के मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। साधु का तो निर्दोष एषणीय और कल्पनीय आहार की गवेषणा करने की भावना है। जैसे रेलगाड़ी को चलाने के लिए एंजिन में भाप को एकत्र करना होता है। भाप को एकत्र करने के लिए चाहे नीम की, चाहे बबूल की अथवा चन्दन की लकड़ी के कोयले हों। कोयले किस लकड़ी के हैं, इससे उसे कोई मतलब नहीं। उसे तो बोईलर में भाप एकत्र करनी है। इसी प्रकार साधु को आहार के लिए ऊँच-नीच-मध्यम कुल में घूमते हुए रोटी, दाल, चावल, कोदरी या खीर चाहे जो मिले, उसे तो अपनी उदरपूर्ति के लिए आहार की जरूरत होती है, फिर वह आहार स्वादिष्ट सरस हो, या रूखा-सूखा हो, भिक्षा प्राप्त आहार के प्रति उसके मन में रागभाव (आसक्ति) या द्वेषभाव (घृणा, अरुचि) नहीं होनी चाहिए। पू. गुरुदेव रत्नचन्द्रजी महाराज साहब के भिक्षापात्र में एक बार कड़वी लौकी का साग आ गया। समभाव से प्रसन्नतापूर्वक उस आहार का सेवन कर लिया, परन्तु दाता को जब यह पता लगा कि कड़वी लौकी का साग मैंने महाराजश्री को बहरा दिया, तब उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुआ। वह गुरुदेव के पास आकर अपनी गलती के लिए बहुत रोया। गुरुदेव ने उसे आश्वासन देते हुए कहा - "साधुमार्ग में जैसे मीठे को पचाना धर्म है, वैसे कड़वे को पचाना भी धर्म है। अतः तुम किसी बात की चिंता मत करो।" ऐसे समर्थ गुरुदेव के पास दाता का मस्तक झुक गया। 'आचारांग सूत्र' में कहा है - *"लाभुत्ति न मज्जेज्जा, अलाभु न सोएज्जा।"* साधु को इष्ट वस्तु प्राप्त हो जाए तो मद (अहंकार) न करे और न मिले तो शोक करे।

जव अन्तरात्मा वीतरागवाणी का श्रवण करने में तन्मय हो जाता है; तब जैसे तैराक समुद्र में डुवकी लगाता है, वैसे ही आत्मा प्रभु-आज्ञा में डुवकी लगाता है, और उसका वेड़ा पार हो जाता है।

महावल अनगार के छह मित्र-शिष्य गौचरी लेकर आए, तब महाबलमुनि कहने लगे - मैंने आज चौथा उपवास किया है।" वे छह शिष्य नहीं जानते कि महावलमुनि मायापूर्वक उपवास करते हैं। अब आगे क्या भाव आएगा, इसे यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

पुण्ययोग से प्रद्युम्नकुमार को रक्षणदाता मिल गए। विद्याधर राजा और रानी के हृदय में वहुत आनन्द है। इस आनन्द के साथ रानी के मन में यह चिन्ता हो रही है कि मेरे इस पुत्र को राज्य मिलेगा या नहीं ? मेरी सौत के पुत्र होगा तो इस पुत्र की कद्र नहीं होगी, और (शायद) इसे राज्य नहीं मिलेगा। यह सुनकर राजा उत्साह और उमंग में आ गए और वोले - "इस लड़के का पुण्योदय ऐसा है कि वह भविष्य में राज्य का उत्तराधिकारी वनेगा।" इस पर रानी कहने लगी - "इसकी क्या प्रतीति है ? मेरा हृदय किस तरह हर्षित हो ?" वन्धुओं ! यह उस वालक की जन्मदात्री माता नहीं, फिर भी उसका हृदय पुत्रवात्सल्य के लिए कितना विह्वल हो रहा है ? रानी के वचन सुनकर राजा ने आनन्द में आकर क्या किया ? -

किन्हा तम्बोल-तिलक राजा तदारे, मेरा गादीधर यह युवराज रे।
रानी का हिरदा हरिया हो गया रे, मैं तो हुई पुण्यवन्ती प्रभु ! आज रे॥ श्रोता...

राजा अपने मुख में तम्वुल खा रहे थे, उसकी पीक लेकर सूर्यदेव की साक्षी से उन्होंने वालक के कपाल पर तिलक किया और कहा - "यह पुत्र मेरा गद्दीधर होगा। इसे मैं आज से मेरे राज्य का उत्तराधिकारी बनाता हूँ।" यह सुनकर रानी का हृदय हर्षित हो गया। यह रानी उक्त वालक की जन्मदात्री नहीं है, फिर भी उसका हृदय अतिहर्षपूर्वक वात्सल्यभाव से छलछला उठा, इसके पीछे पूर्वजन्म का कोई न कोई सम्बन्ध (संकेत) है। आज भी कई जगह देखा जाता है कि औरस-पुत्र काम नहीं करता, जितना दूसरों का या कुटुम्व का पुत्र काम करता है। एक भाई अपना दूसरा भाई, जो कर्मयोग से दुःखी हो तो उसकी सारसंभाल नहीं लेता और दूसरे किन्हीं कुटुम्वों का पोषण करता है। ये सव कर्म के खेल हैं। पहले के लेन-देन-सम्वन्ध (ऋणानुवन्ध) जैसा होता है, वैसा लिया जाता है। राजा ने इस पुत्र के कपाल पर थूक से तिलक करके उसे अपनी राजगद्दी का उत्तराधिकारी बनाया। इससे रानी का हृदय हर्षविभोर हो गया। वह वोली - "प्रभो ! आज आपने मुझे भाग्यशालिनी वनाई है। मैं आज पुण्यशालिनी हो गई। मेरा जीवन आपने सफल वना दिया है।" अव आगे क्या वनाव बनेगा ? उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

आहार करना। यथाशक्ति तप करना। शास्त्र एवं सिद्धान्तों के पठन-पाठन में रत रहना। यों करते हुए भी तेरे चारित्र में मलिनता आए, या आने की आशंका हो तो क्या करना? इसके लिए ज्ञानी महापुरुष क्या कहते हैं? 'आचारांग सूत्र' (श्रु-१, अ.-५ उ-४) में कहा गया है -

"उवाहिज्जमाणे गामधम्मे हिं अवि निब्बलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा, अवि गामाणुगामं दुइज्जिज्जा, अवि आहारं वुच्छिदिज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं।"

ओ आत्मार्थी शिष्य! वासनाओं का त्याग करने के लिए संयम में प्रवृत्ति करने पर भी साधक को इन्द्रियों के विषय पीड़ित करें, अर्थात् - विकार उत्पन्न हों तो उन साधकों को रूखा-सूखा और कम (भूख से आधा) आहार करना चाहिए। अथवा एक स्थान पर खड़े होकर कायोत्सर्ग करें, ऐसा करने पर भी विकार का शमन न हो तो दूसरे गाँव चले जाना या ग्रामानुग्राम विहार करें, इतना करने पर भी मन वश में न रहे तो आहार का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए, किन्तु अब्रह्मचर्य का सेवन तो कदापि नहीं करना चाहिए, स्त्रियों के प्रति मन को सर्वथा हटा लें।

जैसा कि भगवान् ने कहा है - "एक स्थान में खड़े रहकर कायोत्सर्ग करना।" यह प्रयोग शरीर को कसने के लिए है। शरीर को कसने से इन्द्रियों का वेग कम हो जाता है। मतलब यह है कि ऐसा प्रयोग साधक को पतन से बचा लेता है। इतना करने पर भी अगर वासना पर विजय प्राप्त न किया जा सके तो ज्ञानियों ने क्या कहा? तुम्हारी समझ में आया न? एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव चले जाना, क्योंकि विकार उत्पन्न होने में जो (विजातीय) व्यक्ति निमित्तभूत होता है, उसके परिचय या संसर्ग से दूर रहा जाय तो उससे मन पर संयम आ जाता है। इतना करने पर भी यदि विकार शान्त न हो तो भगवान् कहते हैं कि "आहार का सर्वथा त्याग करके साधना में बैठकर आयुष्य पूर्ण करना श्रेष्ठ है, मगर अब्रह्मचर्य का सेवन करना अहितकर है।" अब्रह्मचर्य का सेवन करने से आत्म (गुणों का) घात होता है। शरीरघात की अपेक्षा आत्मघात भयंकर है।

शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले सात अनगारों में से महाबल अनगार के मन में मान (अहंकार) का कीड़ा कुलबुलाने लगा; इस कारण वह माया (कपट) सहित तप करते हैं। जबकि वे छह (साथी) अनगार यों विचार करते हैं कि 'अरर! हम कैसे अभागे हैं कि अपने महान् उपकारी, अपनी जीवन-नैया के कर्णधार, जीवन-रथ के सारथी, जीवन के सच्चे सहारे, अपने जीवन में प्रकाशस्तम्भ के समान बुजुर्ग सन्त को हम अपने साथ पारणा नहीं करा सकते।' इस प्रकार महाबल अनगार के बारे में वे चिन्ता करते रहते थे, जबकि महाबल अनगार पर-(आगामी) भव में बड़े बनने का मनोरथ करते रहते थे।

बन्धुओं! जीव को अभिमान कितना पीड़ित करता है? कई लोग यों कहते हैं कि हमें राहूग्रह अथवा शनि, मंगल या बुध-ग्रह की पीड़ा है। परन्तु सबकी अपेक्षा अधिक

अन्तराय हैं। विघ्न-बाधाएँ आती हैं। ५०-६० या १०० वर्ष के आयुष्य में भी यह शरीर - *'वाही-रोगाण आलए'* व्याधियों और रोगों का घर है। इस शरीर में कब टी.बी., डायबिटीज, टाईफायड, न्युमोनिया, अल्सर, कैन्सर, जलंधर, भगंधर अपचार आदि रोगों का उपद्रव होगा ? इसका पता नहीं है। आज जो मनुष्य स्वस्थ, तंदुरस्त है, उसे हार्टएटेक का हमला आ जाता है। ऐसी बात जिसे समझ में आ जाती है, वह संसार का मोह छोड़ देता है। सोचो, यह जीवन विश्वास करने योग्य नहीं है। जबतक शरीर स्वस्थ है, तबतक कूदाकूद है। जब शरीर रोग से घिर जाएगा, तब खाना-पीना, चलना-फिरना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। जीवन पराधीन बन जाएगा, तब चुपचाप स्थिर होकर बैठोगे, इसकी अपेक्षा तो जबतक शरीर अच्छा है, तबतक समझ-बूझकर शुद्ध धर्म की आराधना कर लो।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महाबलकुमार आदि सातों अनगारों ने संसार की असारता और अनित्यता समझकर संयम लिया है। संयम लेने के बाद कर्म क्षय करने के लिए ज्ञान, तप, वैयावृत्य, स्वाध्याय आदि साधना में लीन बनाना है। सभी संत पाँच-पाँच उपवास साथ-साथ करते हैं। जिस दिन पारणा होता है, उस दिन बाकी के सभी अनगार गौचरी ले करके आते हैं, तब महाबल अनगार कुछ न कुछ कारण बताकर पारणा नहीं करते। तब इन छहों अनगारों के दिल में बहुत ही दुःख होता है कि 'अहो ! अपने नायक आहार नहीं करते और हमें आहार करना पड़ता है। वे तपसमाधि में कैसे लीन रहते हैं ? हम तो आहार करते हैं।' ऐसा पश्चात्ताप करते थे। जबकि महाबल अनगार के मन में यह भाव है कि 'मुझ से ये सब छोटे हैं, और मैं बड़ा हूँ। अतः मेरा बड़प्पन कायम रहना चाहिए।' वे ऐसी मायासहित तपस्या करते हैं।

देवानुप्रियों ! आप संसार में भी देखते हैं न कि मनुष्य धनवान् होने से व सत्तावान् होने से बड़ा कहलाता है, वह भी स्वयं को बड़ा मान लेता है। उसे अपने महान् होने का कितना अभिमान होता है कि मैं कुछ हूँ ? उसकी सत्ता के नीचे रहनेवाले मनुष्य की *जरा-सी भूल हो जाय, या उसके कहने अनुसार न करे तो वह (तथाकथित) सत्ताधीश* अपनी सत्ता के नशे में उन गरीब मनुष्य को कुचल डालता है। ज्ञानीपुरुष कहते हैं, "शराब के नशे से भी बढ़कर सत्ता का, धनाढ्यता का नशा खतरनाक है।" तुम्हें सत्ता मिली है तो उससे दूसरों का भला करो। लक्ष्मी मिली हो तो किसी गरीब के आंसू पोंछो, तुम्हारी बुद्धि प्रखर और तीव्र हो तो दूसरों को अच्छी सलाह दो, तत्त्वज्ञान में बुद्धि लगाओ। किन्तु उसका गर्व करके दूसरों को दबाओ, सताओ या कुचलो नहीं।

भगवान् कहते हैं कि "मेरे साधकों ! तुम मानी (अभिमानी) और मायावी (कपटी) मत बनो।" मान मीठा जहर है, वह भव-परम्परा बढ़ानेवाला है। मान और माया, ये सब पर-भाव हैं। परभाव में पड़ते हुए आत्मा को बचा लो। कहा भी है -

जिन्होंने संसार के समस्त सुखों का त्याग करके संयम लिया है, जो संयम की दुष्कर साधना कर रहे हैं; ऐसे महाबल अनगार की दूसरे (साथी) मुनि चिन्ता कर रहे हैं। अब आगे क्या होगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

पुण्य का चमत्कार : प्रद्युम्नकुमार का पुण्य प्रबल था, इस कारण वैरी देव ने उसे मारने के चाहे जितने प्रयत्न किये, वे सब निष्फल हो गए। कहावत है – **'जिसे राम रखे, उसे कौन चखे'**। इस प्रकार प्रद्युम्नकुमार के लिए भी पुण्य की रखवाली थी, इस कारण उसका बाल भी बांका नहीं हुआ। संयोगवश विद्याधर और विद्याधरी विमान में बैठकर जा रहे थे, अकस्मात् उनका विमान वहाँ रुक गया। विमान से नीचे उतरकर प्रद्युम्नकुमार को उक्त विद्याधर ने शिला के नीचे से बाहर निकाला। उसे देखकर यमसमर विद्याधर के मन में विचार आया कि 'अहो ! इस बालक का मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहा है, तथा इसके शरीर की कान्ति साक्षात् सूर्य के समान देदीप्यमान है !' इस कारण विद्याधर ने भी उस बालक का नाम प्रद्युम्नकुमार रखा।

बन्धुओं ! प्रद्युम्नकुमार का पुण्य अपार है। किन्तु पूर्वकृत अशुभकर्म के उदय से (वैरी) देव ने उसका अपहरण किया और माता रुक्मिणी से उसका वियोग हुआ। परन्तु पुण्य के प्रबल उदय के कारण विद्याधर राजा और उसकी रानी उसे मिल गए। ऐसे पुत्र को देखकर दोनों के आनन्द का पार न रहा। राजा हर्षाविष्ट होकर कहता है – "महारानी ! तू कितनी भाग्यशालिनी है ? तूने पूर्वभव में बहुत तपश्चर्या की होगी, अथवा सुपात्र साधु-साध्वियों को उत्कृष्ट भाव से सुपात्रदान दिया होगा। उसके फलस्वरूप तुझे किसी प्रकार के (प्रसवादि) कष्ट के बिना यह चिन्तामणिरत्न जैसा पुत्र मिला है। अभी तक तेरे पुत्र नहीं था। आज से तू पुत्रवती माता बन गई।" यों कहकर (उस शिशु को लेकर) विमान में बैठकर विद्याधर राजा और रानी अपने नगर में आए। विद्याधर राजा ने रानी को महल में ले जाकर पलंग पर सुला दी। फिर राजा ने घोषणा करवाई – "महाराजा के इतनी सब रानियाँ होते हुए भी पुत्र नहीं होने से, यह महारानी गर्भवती थी, यह बात गुप्त रखी थी। आज महारानी ने देवकुमार जैसे पुत्र को जन्म दिया है।" यह बात वायुवेग से सारे नगर में फैल गई।

वियाधर राजा ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाया : अपने महाराजा की रानी ने पुत्र को जन्म दिया है, यह समाचार जानकर प्रजाजनों को बहुत ही प्रसन्नता हुई। राजा ने बहुत ही सुचारुरूप से पुत्र का जन्म-महोत्सव मनाया। याचकों को दिल खोलकर दान दिया। बंदियों को कारागार से मुक्त कराया। सारे नगर में मिठाई बांटी। सारा नगर श्रृंगारित किया गया। इतने वर्षों बाद राजकुमार का जन्म हुआ, उसकी खुशी में नगरजन अनेक भेंट लेकर आए। राजा ने गरीब और अमीर सब की भेंट प्रेम से स्वीकार की। प्रजाजनों ने भेंट के रूप में जितना दिया, उससे दुगुना धन राजा ने उन्हें दिया। इस प्रकार बहुत ही धूमधाम से प्रद्युम्नकुमार का जन्म-महोत्सव मनाया गया। राजा-रानी दोनों के

कहा गया है - **"पल्ला उपर हल्लो करीने गुणगाणथी भरजो गल्लो ।"** भगवान् इस विषय में कहते हैं - "तुझे गुण गाने का मन हो तो तू अपने गुणगान करने हेतु मत बैठना; अथवा जगत का गाना गाने के लिए मत बैठना । अपितु अरिहन्तों के, सिद्धों के तथा गुरुदेवों के अथवा महापुरुषों के गुणगान करना, तो महान् पुरुषों में निहित (रहे हुए) गुण तेरे में आएँगे । और एक दिन आत्मा गुणगान का भंडार बन जाएगी ।" इस प्रकार गुणों (सद्गुणों) से गल्ला भर जाएगा । किन्तु पर के गुण गाने से तो गुण का गल्ला खाली हो जाएगा । यह जगत् तो तुझे एक बार ऊँचा चढ़ा देगा, और कभी ऊपर (ऊँचे) से नीचे पटक देगा । अतः जगत्-भाव में नहीं जुड़कर, यानी जगत् की गुलामी न करके वीतराग-परमात्मा के कानूनों (नियमों) का अनुसरण करो । उनकी आज्ञा में रहोगे तो कल्याण हो जाएगा । महापुरुषों के गुणगान करके आत्मा ने जो (पुण्यरूपी) गल्ला भरा (जमा किया) है, उसे स्थिरता-सावधानीपूर्वक संभालना । उसमें कभी कषायरूपी डाकू प्रविष्ट न हो जाएँ, उसके लिए जागरूक रहना । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "गुणगान से गल्ला भरकर देखना, किन्तु पुनः पाप का पल्ला पकड़ने की भूल नहीं करना ।"

दो मित्रों का दृष्टांत : दो मित्र थे । एक बार दोनों मित्रों ने विद्याभ्यास करने के लिए एक गुरु के पास गए । गुरु बहुत ज्ञानी थे । दोनों मित्रों ने लंबे समय तक गुरु के पास रहकर बहुत ज्ञान प्राप्त किया । दोनों मित्र बहुत बुद्धिशाली थे । दोनों ने एक सरीखा ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु दोनों के हृदय में वह ज्ञान पृथक्-पृथक् रूप से परिणत हुआ । मनुष्य दूध पीए तो शरीर पुष्ट होता है, किन्तु वही दूध सर्प के मुख में जाए तो विषरूप में परिणत होता है । उन दोनों में एक मित्र अत्यन्त सरल था । उसके पास जो कोई आता, उसे सरलतापूर्वक ज्ञान का लाभ देता था, जबकि दूसरे मित्र को ज्ञान प्राप्त होने पर उसमें गर्व आ गया । 'स्थानांग सूत्र' के चौथे स्थानक में भगवान् ने चार प्रकार के अजीर्ण बताये हैं - (१) ज्ञान की अजीर्ण है - अभिमान, (२) तप का अजीर्ण है - क्रोध, (३) भूख के बिना अधिक खाने से पेट में वायु-विकार होता है, अतः वह है - पेट का अजीर्ण, और (४) काम का अजीर्ण है - परनिन्दा या चुगली ।

उस मित्र को ज्ञान का अजीर्ण हुआ । अतः वह अहंकारी बन गया । उससे कोई कुछ पूछता तो वह सीधे रूप से बात नहीं करता था । पूछनेवाले की मजाक करके उसे नीचा दिखाता रहता । अपने मित्र में अहंकार का पारा चढ़ा हुआ देख सरल मित्र के मन में बहुत दुःख हुआ । सोचा - 'अहो ! जो ज्ञान तरने का साधन है, उसके द्वारा मेरा मित्र डूब जाएगा । गर्व के नशे में रहकर मेरा मित्र ज्ञान का उपयोग नहीं कर सकेगा । इससे उसकी आत्मा का पतन होगा ।' सरल मित्र बहुत ही सज्जन और अच्छा था । उसने सोचा-'चाहे जैसे भी मुझे अपने मित्र को ठिकाने लाना है, उसके अभिमान का पारा उतारना है ।'

एक दिन अभिमानी मित्र से सरल मित्र ने कहा - "चलो, आज हम समुद्र में स्नान करने जाएँगे ।" यों कहकर दोनों मित्र समुद्र के किनारे स्नान करने के लिए आए । दोनों ने समुद्र में स्नान किया । थोड़ी देर तैरकर फिर बाहर निकले । चतुर मित्र ने अपने धोबे

तेरे संगीत में ? मैं तो सुनकर मुग्ध हो जाता हूँ ! मुझे ऐसा लगता है कि मैं सुनता रहूँ !" सचमुच, तानसेन के गीत सुनते-सुनते रात बीत गई। दूसरे दिन भी बादशाह ने तानसेन का गीत शुरू कराया। मन को मुग्ध कर देनेवाला संगीत सुनकर अकबर बादशाह बोल उठे - "तानसेन ! तुम इतना सुन्दर गा सकते हो, यह सुनकर मुझे विचार आता है कि तुमने जिस गुरु से संगीत का इतना सुचारु ज्ञान प्राप्त किया है, वे तुम्हारे गुरु तो कितना सुन्दर और मधुर गीत गाते होंगे ?" बेटा अच्छा होता है, तो उसके पिता को याद किया जाता है; शिष्य अच्छा हो तो उसके गुरु को याद किया जाता है। इसी दृष्टि से अकबर बादशाह ने तानसेन से कहा - "तुम इतना सुन्दर गवैया है, तो तुम्हारे गुरु कैसे होंगे ? उनका संगीत-ज्ञान कितना बढ़ा-चढ़ा होगा ?"

गुरु गाते हैं, आत्मरस के लिए, मगर शिष्य गाता है - कंचन-कीर्ति के लिए : तानसेन ने कहा - "मेरे गुरु में अलौकिक शक्ति है। उस शक्ति का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।" बादशाह ने कहा - "वे अगर जीवित हों तो एक दिन अवश्य उन्हें मेरे दरबार में लेकर आओ। मुझे उनके संगीत का अवश्य ही रसास्वादन करना है, क्योंकि वे तो तुम से बढ़कर सुरुचिकर एवं सुन्दर गीत गाते होंगे।" तानसेन ने कहा - "हुजूर! वे अभी जीवित हैं। परन्तु वे आपके दरबार में कभी आयेंगे नहीं।" बादशाह ने पूछा - "ऐसा क्यों ?" तानसेन बोला - "हुजूर ! किसी के देखते वे नहीं गाते। वे सिर्फ अपनी आत्मा के आनन्द के लिए स्वेच्छा से गाते हैं। वे सदैव एकान्त में गीत गाते हैं। यहाँ तक कि अगर कोई संगीतप्रेमी उनका गीत सुनने के लिए पहुँच जाय तो वे गाना बंद कर देते हैं। मैं गाता हूँ - कीर्ति और कंचन के लिए और मेरे गुरु सिर्फ आत्मा के आनन्द के लिए गाते हैं। आपको उनका गीत सुनने की तीव्र तमन्ना हो तो उनका जहाँ निवास है, वहाँ हम दोनों जाएँ। फिर वे अपने देखते तो गायेंगे नहीं। अतः वे जिस मठ में गाते हैं, हम उस मठ के पीछे चुपचाप छिप जाएँ तो उनके संगीत का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।"

अकबर बादशाह को तानसेन के गुरु का संगीत सुनने की तमन्ना लगी, तो वे आधी रात को जंगल में जाने के लिए तैयार हुए। मेरे श्रोता भाइयों को सिद्धगति में प्राप्त होनेवाले सच्चे और शाश्वत सुख प्राप्त करने की जब तीव्र लगन लगेगी तो वे भौतिक और जड़ से प्राप्त होनेवाले (दुःख बीजरूप) सुख में रचे-पचेंगे नहीं। परन्तु मालूम होता है, अभी तक वैसी लगन नहीं लगी। छोटे बालक के साथ तुम्हारी तुलना करूँ तो तुम उससे बढ़कर नहीं उतरोगे। बालक में आहारसंज्ञा का जोर है, जबकि तुममें जोर है- परिग्रह-संज्ञा का। छोटे बच्चे को लकड़ी के चूसने का खिलौना दोगे, चांदी का घूघरा दोगे अथवा सोने का खिलौना दोगे तो वह उन सबको मुँह में डालेगा। उसके मन में चूसने का खिलौना चाहे चांदी का हो, सोने का हो या लकड़ी का; सभी एक सरीखे हैं। उसे एक ही संज्ञा है, दूसरी संज्ञा नहीं है। एक संज्ञा कौन-सी है, तुम्हें पता है न ? वह है - खाऊँ, खाऊँ और खाऊँ की। उसे दर्पण दोगे तो उसे भी वह मुँह में लेकर काटने के लिए लपकेगा। बस, यही एक संज्ञा प्रबल है, उसके मन में। खाने के सिवाय कोई

। मनुष्य संसार में गाढ़ (गूढ़) माया करता है, उसकी क्या दशा होगी ? ऐसा सुनकर का त्याग करना । अब आगे क्या होगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

द्युम्नकुमार का पुण्यबल प्रबल है । विद्याधर राजा ने ताम्बूल से उसके कपाल पर लक कर दिया । रानी को बहुत ही प्रसन्नता हुई । दस दिन तक विद्याधर राजा ने जन्मोत्सव मनाया । स्वजन, परिजन आदि सभी को राजा ने दिल खोलकर द्रव्य सन्तुष्ट किया । उसके जन्मोत्सव में राजा ने प्रचुर दानखर्च किया । देखिए, पूर्व का कितना संवादी होगा ? श्रीकृष्ण वासुदेव ने उसका मुख और कान्ति देखकर उसका द्युम्नकुमार रखा था, इधर इस विद्याधर राजा ने भी इसकी कान्ति और रूप देखकर कुमार नाम रखा । यहाँ कोई उसे मदनकुमार कहता है, कोई कहता यह तो साक्षात् व है । बहुत-से लोग कहते हैं - मानो यह गिरधर गोपाल दिखाई देता है, कोई कहता यह गिरिधर-गोपाल-सा शोभता है । यों अनेक नामों से लोग उसे बुलाते हैं और ही लाड करते हैं । उसका लालन-पालन भी किस प्रकार हो रहा है ? देखिए-

ना की सांकल गांध्यो पालणो रे, रत्न की झुमरियां लटकंत रे...
में सुवर्ण का घाल्या झांझरिया रे, करती ललुआ का लाड़ अत्यन्त रे...

सके सोने के लिए सोने की सांकल से पालना बांधा । उस पालने पर रत्नों के लटकाये गए हैं । साथ ही सोने की रत्नजटित डोरी बांधी है । माता-पिता के मन श्रृंगारित करने की अत्यन्त उमंग थी । इसलिए उसके पैर में सोने के घूघरेवाले ये पहनाए । साथ ही, अलग-अलग देशों की दासियाँ उसका रक्षण तथा लालन-करने के लिए रखी गई । वे दासियाँ भी उसका बहुत लाड-प्यार करती हैं ।

न्धुओं ! जब जीव के पुण्य की प्रबलता होती है, तब जहाँ से संभावना नहीं होती, । अकल्पनीय सुख उसे मिल जाता है । कहाँ तो प्रद्युम्नकुमार के जीने की भी आशा ी । वैरी देव ने ६ दिन के नाजुक बच्चे की छाती पर शिला रख दी थी, फिर भी छ भी पीड़ा नहीं हुई । इसके पुण्यबल से संयोगवश यह विद्याधर राजा वहाँ आ । उसका विमान रुक जाने से वह नीचे उतरा और यह सब संयोग मिल गया । जैसे पृथक्-पृथक् फूल पर जाकर बैठता है, वैसे ही यह प्रद्युम्नकुमार भी एक हाथ में रे हाथ में घूम रहा है । इसे रमाने (खेलाने) के लिए सभी पड़ापड़ी करते हैं, अर्थात् णभर भी इसे नीचे नहीं सुलाया जाता । यह सबको अत्यन्त प्रिय लगता है । पूर्णिमा न्द्रमा जैसे प्रतिदिवस वृद्धि पाता जाता है, वैसे ही प्रद्युम्नकुमार भी यहाँ पर पा रहा है । अब यह तो यहाँ सुख से पल रहा है । इसे पालक माता-पिता मिल । परन्तु उधर रुक्मिणी का क्या हुआ ? इसे यथावसर आगे बताया-जाएगा । णी तो गाढ़ निद्रा में थी, उस समय वह (वैरी) देव ले था । जब रुक्मिणी निद्रा से जागी, तब क्या हुआ ?

भी छाती में भय से कितनी धड़कन बढ़ जाती है । स्वर में और शब्द बोलने में कितना परिवर्तन हुआ ? इसकी स्वयं जाँच-पड़ताल करना । सर्प वहाँ आया नहीं है, फिर भी तुम्हें सर्प के आने का भय बताकर वहाँ सोने का कहे तो तुम वहाँ सो सकते हो क्या ? नहीं सोते न ! क्योंकि तुम्हारे मन में सांप का डर घूस गया है । मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारे मन में जितना सर्प का डर है, क्या उतना स्वप्न में देव-धर्म-गुरु की अशातना करने का स्वप्न देखा, फिर जाग गए, तब हृदय में (आशातनाजन्य) पाप का डर लगता है क्या ? पाप भय से हृदय की धड़कन बढ़ जाती है क्या ? नहीं बढ़ती । इसका मतलब है - आपके मन में जितना सांप का डर है, उतना पाप का नहीं है । परन्तु याद रखना - **सांप तो शरीर को मारता है, परन्तु पाप तो आत्मा को मारता** (नैतिक-आध्यात्मिक मृत्यु कर डालता) है । किन्तु सम्यग्दृष्टि-सम्पन्न आत्मा को सांप के भन् की अपेक्षा, पाप का भय अधिक होता है ।

इस जगत् में विवेकवान् मनुष्य पाप से डरते हैं । यों तो वैष्णव, शैव, मुस्लिम, क्रिश्चियन इत्यादि जन पाप से नहीं डरते, ऐसा एकान्तरूप से नहीं कहा जा सकता । ये भी पाप से डरते हैं, तुमलोग भी पाप से डरते हो, परन्तु सम्यक्त्वी मनुष्य जिन पापों से डरता है, उनमें और मिथ्यात्वी मनुष्य जिन पापों से डरता है, उनमें बहुत अन्तर है।

सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी के पाप के डर में क्या अन्तर है ? : सम्यक्त्वी सम्यग्दृष्टि-सम्पन्न जीव १८ प्रकार के पाप के स्थानों (कारणों) का स्वरूप यथार्थ रूप से जानता है । वह सच्चे (सम्यक्) देव, गुरु और धर्म का स्वरूप जानता है । तथैव संक्षेप से १४ और विस्तार से ५६३ जीवों के भेद को यथार्थ रूप से जानता है । समस्त जीवों को अपनी आत्मा के समान जानता है, इस कारण जान-बूझकर राग-द्वेष या अज्ञान से किसी भी जीव की किसी प्रकार से हिंसा (दशविधप्राणों का वियोग या क्षति) नहीं करता । किसी भी जीव की हिंसा करते हुए उसे पाप का पूरा डर रहता है । जबकि मिथ्यात्वी-मिथ्यादृष्टि-सम्पन्न जीव १८ प्रकार के पापस्थानों को यथार्थ रूप से नहीं जानता-मानता । उसके देव-गुरु-धर्म भी सच्चे नहीं हैं । प्रायः भय या प्रलोभन के आधार पर इस त्रिपुटी की मान्यता है । जीव के स्वरूप तथा जीवों के भेद-प्रभेद को भी वह पूर्ण रूप से नहीं जानता-मानता । यही कारण है कि वह पाँच-स्थावर (एकेन्द्रिय) आदि जीवों की हिंसा को हिंसा के रूप में नहीं मानता-जानता । अतः उसके मन-वचन-तन में पाप का डर ही कहाँ से होता ? इन और ऐसे कारणों से सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी जीव के पाप से डर में बहुत अन्तर रहा हुआ है । सम्यग्दृष्टिसम्पन्न आत्मा में रात-दिन ऐसी लगन और चटपटी (तड़फन) होती है, कि कब मैं घातिकर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान-केवलदर्शन पाकर मोक्ष, ब्रह्मपद या परमात्मपद प्राप्त करूँ, आत्मा की पूर्णता की मंजिल तक पहुँचूँ ।

सेठ-सेठानी का दृष्टांत : एक नगर में एक धनिक सेठ रहते थे । सेठ श्रावक थे, किन्तु वे धन के पीछे पागल थे । उनका पुण्य प्रबल था, इस कारण व्यापार में नफा ही नफा होता रहता था । पैसे की विपुलता थी । सेठ व्यापार के कार्य में ओतप्रोत रहते थे । परन्तु धर्म का नाम उन्हें अच्छा नहीं लगता था । वे खाली बैठे होते, तब भी उनके दिमाग में व्यापार की उथलपुथल चलती रहती थी । उनके दिमाग में ये ही बातें घुमती रहतीं कि बही खाते लिखने हैं, बही खाते टटोलने हैं, किसे मिलने जाना है ? किससे सौदा करना है ? जहाँ पे सब बातें दिमाग में घूमती हों, वहाँ आत्मा की चिन्ता या धर्म की बातें कहाँ से सूझतीं ? धर्माचरण करना तो बहुत दूर की बात है ।

बन्धुओं ! लक्ष्मी की ममता कितनी भयंकर वस्तु है कि वह धर्म को भुला देती है । इतना ही नहीं, परलोक में मेरी आत्मा का क्या हाल होगा, इसकी चिन्ता भी नहीं करने देती । इस सेठ का नाम तो सुखलाल था, परन्तु पैसा कमाने के और पुद्‌गलों के सुख में मस्त रहते थे, आत्मा के सुख की तो बात ही नहीं सोचते थे । धन-प्राप्ति के सिवाय दूसरी बात ही नहीं सोचते थे । सेठ के सद्‌भाग्य से पत्नी बहुत ही धर्मिष्ठ सुश्राविका थी । सेठानी को धर्म बहुत ही अच्छा लगता था, मगर सेठ को धर्म अच्छा नहीं लगता था । उसे इस विषय में बहुत चिंता रहती थी । वैभव का सुख होते हुए भी यह सुख सेठानी को जरा भी अच्छा नहीं लगता था । जब देखो तब, सेठानी का मन उदास रहता था । एक बार सेठानी की सखियाँ पूछ बैठीं - "बहन ! तुम्हारे घर में इतना सब सुख है, किसी प्रकार का दुःख नहीं है, फिर भी तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता क्यों नहीं दिखाई देती ? क्या कोई निजी गुप्त चिन्ता के कारण उदास रहती हो ?" इस पर सेठानी ने कहा - "बहन ! तुम्हारी दृष्टि से मैं सुखी हूँ । मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं है । सेठ के मेरे पर चार हाथ हैं । परन्तु वास्तव में मैं सुखी नहीं हूँ ।" सखी ने पूछा - पर उस (दुःख) का कारण क्या है ?" सेठानी बोली - "बहन ! मेरे पति को धर्म में बिलकुल रुचि नहीं है । मैं उपाश्रय जाती हूँ, तब वहाँ वृद्धों, युवकों और बालकों को सामायिक, पौषध, दया, उपवास आदि धर्मक्रियाएँ करते हुए देखती हूँ तो मेरा हृदय हर्ष से नाच उठता है । किन्तु साथ ही यह अफसोस होता है कि ये सब कैसे पुण्यवान् जीव हैं कि सुन्दर धर्माचरण करके अपना जीवन सफल बना रहे हैं, जबकि मेरे पति को धर्म का शब्द ही अच्छा नहीं लगता ।"

सेठानी सेठ को धर्ममार्ग पर चढ़ाने का बहुत प्रयत्न करती है, परन्तु सेठ किसी भी मूल्य पर मानते नहीं हैं । अन्त में, सेठानी सेठ से कहती है - 'आप सिर्फ दर्शन करके वापस आ जाना ।" सेठ कहते हैं - "मुझे टाइम ही कहाँ है ?" सेठानी ने कहा - "अरे सेठ ! यह सब सुख पूर्व की कमाई के कारण मिला है । यह पुण्य समाप्त ... फिर आपका क्या होगा ? इसका विचार करो ।" परन्तु सेठ लक्ष्मी के मद

प्रतिष्ठा और धन पाने की आशा और अपेक्षा से गाता हूँ।" बादशाह यह सुनकर गदगद हो गए और बोले - "धन्य है तानसेन तुझे !" अकबर अपने प्रिय संगीतकार तानसेन की स्पष्टता सुनकर उसकी सरलता और नम्रता के सामने झुक गए कि अभिमान छोड़कर कौन व्यक्ति कह सकता है कि मैं कंचन व कीर्ति के लिए गाता हूँ। धन्य है तानसेन तुम्हें ! तानसेन की स्पष्टोक्ति सुनकर उसे (बादशाह के) समझ में आ गया कि किसी भी क्रिया या प्रवृत्ति का सच्चा फल कब मिलता है ? जब वह क्रिया या प्रवृत्ति आत्मानन्द और संतोष के लिए आकांक्षा-रहित होकर पवित्र भाव से की जाती है।

इस दृष्टान्त पर से हमें भी यह बोधपाठ मिलता है कि हम जो भी तप, त्याग, प्रत्याख्यान, व्रत, नियम या परिषह-सहन आदि शुभ क्रियाएँ करते हैं, वे किसी भी फल की आकांक्षा से रहित, यश-कीर्ति की इच्छा से रहित और दृढ़ श्रद्धा व निष्ठापूर्वक की जाएँ तो वे तप, त्याग आदि क्रियाएँ महान् लाभ प्रदान कराती हैं, उसके फलस्वरूप संवर-निर्जरा और अन्त में सर्वकर्म-मुक्तिरूप मोक्ष का सुख मिलता है।

मुक्तिपुरी का सुख मिल सकता है - इस मानवभव से ही। ज्ञानी भगवंतों ने कहा - *"दुल्लहे खलु माणुसे भवे"* - मनुष्यभव दुर्लभ है। यद्यपि जन्म होना अच्छा नहीं; फिर भी ज्ञानियों ने मनुष्यजन्म को इसलिए अच्छा कहा है कि इस जन्म द्वारा जन्म-रहित बना जा सकता है। जीवन को मूल्यवान बनाने के लिए मानवजन्म की कीमत समझो। जन्म का दुःख है, वहाँ शरीरजन्य दुःख है, क्योंकि सिद्ध भगवंतों के शरीर नहीं है, तो कोई उपाधि नहीं है। हमारे शरीर है, इस कारण सभी उपाधियाँ हैं। शरीर पर तुम्हें प्रेम है या द्वेष ? अगर प्रेम हो तो शरीर जो मांगे, उसे देने का मन हो जाता है, यदि द्वेष हो तो उससे छूटने का मन होता है। इन्द्रियों की गुलामी से मुक्त होने के लिए शरीर और संसार की ममता को त्यागकर संयम-मार्ग पर आ जाओ। अशरीरी अवस्था प्राप्त करने का जिसे मन ही नहीं होता, उसे जन्म-मरण का चक्कर खराब नहीं लगे। ये खराब नहीं लगेंगे, वहाँ तक इन्द्रिय-विषयों से मुक्ति प्राप्त करने का मन नहीं होगा और वहाँ तक जीवन भी अच्छा नहीं बन सकता। अतः पाँच इन्द्रियों की गुलामी छोड़ो। महान् पुरुष इन्द्रियों को आज्ञा करते हैं कि मैं तुम्हारा उपयोग करूँगा, परन्तु तुम (स्वच्छन्दता से) जहाँ जाना चाहोगी, वहाँ जाने नहीं दूंगा। यों समझो कि इन्द्रियाँ अपने पर नियंत्रण रखें तो मान लेना - उलटी गंगा बह रही है। तुम्हें सर्वज्ञ वीतराग-प्रभु की वाणी सुनकर, उलटी बात को सीधी करने का यह अमूल्य अवसर आया है।

इस अमूल्य अवसर पर तानसेन के गुरु के समान प्रभुस्मरण में लीन बनना है। जिसे प्रभु की आज्ञा प्रिय लगती है, वह उसमें मस्त बन सकता है। तब आत्मा बोल उठेगी -

> प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे, भक्तिना रसमां मारे न्हावुं छे। ... प्रभु तारुं...
> तुं वीतरागी, हुं अनुरागी; तारा भजननी रट मने लागी।
> प्रभु ! तारा जेवुं मारे बनवुं छे। ... प्रभु तारुं... ॥

पूर्वकृत पुण्य से मिले हुए गाड़ी, बंगला इत्यादि भौतिक सुखों (सुख-साधनों) के भोगने मात्र से कोई सद्गति नहीं मिलनेवाली है, या उससे पुण्य भी होनेवाला नहीं है। किन्तु पुण्य से प्राप्त हुई सुख-सामग्री से (संवर-निर्जरा रूप या ज्ञान-दर्शन चारित्र रूप) धर्म-आराधना-साधना हो तो वह सद्गति, पुण्य तथा धर्मलाभ दिलानेवाला है। पुद्‌गलानन्दी जीव भले ही भौतिक सुख में आनन्द मानते हों, परन्तु सच्चा सुख तो धर्म-साधना-आराधना करके आत्मानन्दी बनने में है। आत्मा में जो सुख निहित है, वह बाहर नहीं है। उक्त सेठानी सेठ के विषय में चिन्ता करती रहती हैं, मगर सेठ साहब समझते ही नहीं। एकबार ऐसा हुआ कि एक महान् ज्ञानी पवित्र संत गाँव में पधारे। सेठानी उन्हें वन्दन करने के लिए गई। वन्दन करते-करते सेठानी की आँखों से आंसू छलक पड़े। सेठानी की आँख में आंसू देखकर संत ने पूछा - "बहन ! तुम्हारी आँख में आंसू क्यों ?" तब सेठानी ने सेठ से सम्बन्धित सारी बात खोलकर कही। यह सुनकर संत के मन में भी विचार हुआ कि 'यह श्राविका कितनी धर्मिष्ठ है कि इसका पति धर्म को नहीं पा सका, इस बात का इसके दिल में कितना खेद है, कितना दुःख है ?' सेठानी ने कहा - "गुरुदेव ! आप चाहे जिस तरह से मेरे पति को धर्म के रास्ते लगा देंगे तो मेरी आत्मा को सन्तोष होगा।"

देवानुप्रियों ! ऐसी धर्म की तड़फनवाली पुण्यवती श्राविकाएँ आज भी इस पृथ्वी पर हैं। संत ने सेठानी से कहा - "बहन ! सेठ से कहना कि महाराजश्री का आप से खास काम है। इसलिए एकबार आप अवश्य आ जाएँ।" संत का संदेशा पाकर सेठ ने सोचा - 'मुझे संत ने सामने चलाकर काम कहलाया है तो मुझे जरूर जाना चाहिए।' अतः सेठ उपाश्रय में पहुँचे। गुरुदेव को वन्दन करके पूछा - "महाराजश्री ! मेरे लिए क्या सेवा है, आप निःसंकोच फरमाइए।" महाराज ने कहा - "सेठ ! मेरी यह एक लकड़ी है। इसे आपके घर ले जाओ। इसे सुरक्षित रूप से तुम्हारे घर में रख देना। मेरी अब काफी उम्र हो गई है। मेरा आयुष्य कब पूरा हो जाए इसका पता नहीं। तो जब मैं कालधर्म पा जाऊँ, तब यह लकड़ी तुम्हें मुझे पर - भव में पहुँचानी है। इसलिए आप आएँ तब परलोक में साथ में मेरी यह लकड़ी लेते आना।" यह सुनकर सेठ ने मन में सोचा - 'कैसी पागलपन की बातें कर रहे हैं ?' सेठ ने कहा - "महाराज साहब ! यह कैसे सम्भव है ? परभव में मैं लकडी कैसे ला सकता हूँ ?" महाराज ने कहा - "इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? आप तो इतनी सारी मिल्कियत, हीरा, मोती, माणिक वगैरह सब लेकर यहाँ से जानेवाले हो, तो मेरी यह इतनी छोटी-सी लकड़ी ले जाना भारी नहीं पड़ेगा।" सेठ ने कहा - "करोड़ों की सम्पत्ति में मैं एक लाल पाई भी साथ में ले जानेवाला नहीं हूँ। मेरे बाप-दादे भी सबकुछ यहीं छोड़कर गये हैं, तो मैं भी साथ में क्या ले जानेवाला हूँ ?" संत ने कहा - "उन्हें (बाप-दादों को) माल-मिल्कियत पर मोह नहीं होगा, इसलिए वे छोड़कर गये होंगे, आपको तो लक्ष्मी का बहुत मोह-ममत्व है, इसलिए आप तो ले जाएँगे।" सेठ बोले - "अरे भगवान् ! कोई नहीं ले गए परलोक में, सबको यही छोड़कर जाना है।" संत बोले - "तो फिर अन्त काल

व्याख्यान - ३३

श्रावण सुदी ११, शुक्रवार | ता. ६-८-७६

संयम किसे प्यारा ? संसार जिसे लगे खारा

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञान के धारक, अहिंसा का उद्घोष करके भव्यजीवों को जगाकर सन्मार्ग पर मोड़नेवाले वीतराग-प्रभु ने जगत् में अशुभ-कर्मों के उदय के कारण दुःखी होनेवाले जीवों को उपदेश दिया कि "हे भव्यजीवों ! अगर तुम्हें अखण्ड आत्मसुख चाहिए तो जो अखण्ड सुख प्राप्त कर चुके हैं, उनकी शरण स्वीकार करो ।"

शाश्वत सुख सर्वज्ञ भगवंतों ने प्राप्त किया है । इस समय हमारे समक्ष सर्वज्ञ भगवन्त हाजिर नहीं हैं । हमें अगर कोई संसारसागर से तारनेवाला हो तो इस समय सर्वज्ञ भगवन्तों की वाणी है । इस वाणी पर जीव की श्रद्धा हो जाए तो बेड़ा पार हो जाय । भगवान् कहते हैं - "हे भव्यजीवों ! यह संसार असार है । इस संसार में रचेपचे रहना उचित नहीं है ।" जिसे संसार असार लगता है, वह संसार के बन्धनों को तोड़कर निकल जाता है । 'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में ७ अनगारों के जीवन की घटना वर्णित है । उन सातों ने संसार छोड़कर दीक्षा ली । उन्हें संसार कैसा लगा होगा ? इसके लिए शास्त्रकार कहते हैं -

"असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहु अंतरायं, न च दीहमाऊ।"

बन्धुओं ! यहाँ बताया गया है कि दीक्षा कौन ले सकते हैं ? जिन्हें संसार अशाश्वत और कड़वा लगता है, वे ही ले सकते हैं । दीक्षा ग्रहण करने मात्र से कल्याण नहीं होता, परन्तु जीवन में परिवर्तन लाना पड़ता है । वीतराग-प्रभु के शासन के प्रति जो पूर्ण वफादार रहता है, वह चारित्रभाव में टिका रहता है, वह चारित्ररूपी उद्यान में रमण कर सकता है । जिसे संसार के प्रति मन में आनन्द उठ जाता है, वही चारित्र का आनन्द ले सकता है । तुम्हें तो जिस स्थान में आनन्द नहीं आता, उसे छोड़ देते हो । इसके विपरीत जिसे संसार में आनन्द नहीं आता वह संसार को त्याग करके संयमी बन जाता है । क्या तुम्हें समझ में आता है कि इस संसार के समस्त सुख नाशवान् हैं और जीवन भी अनित्य है । 'दशवैकालिक सूत्र' की पहली चूलिका में भगवान् ने कहा है -

"अणिच्चे खलुभो ! मणुयाणजीविए, कुसग्गे जलबिंदुचंचले ।"

ओ भव्यजीवों ! मनुष्यों का जीवन अनित्य है और कुश के अग्रभाग (नोक) पर रहे हुए जलबिन्दु के समान चंचल है । आयुष्य बहुत ही अल्प है । उसमें भी बहुत-से

अरिहंत...सिद्ध...पवयण : ये क्रमशः तीन बोल हैं। तीर्थंकर-नाम कर्म के उपार्जन करने के बीस बोलों में से सर्वप्रथम बोल है - (१) अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करना। अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करने हेतु उनके स्वरूप का चिन्तन करना, अरिहन्त भगवान् कैसे थे ? स्वरूप चिन्तन के दौरान-सोचना।

(१) अरिहंत भगवन्त के गुणग्राम करना : प्रभो ! आप कैसे हैं, मैं कैसा हूँ ? आपने चार घनघाती कर्मों का क्षय किया और रागद्वेष-मोह पर विजय प्राप्त किया और मैं अभी इन सबसे मैं जीता जा रहा हूँ। ये सब मेरे पर हावी हो रहे हैं।'

प्रभो ! एक समय ऐसा था, जब आप मेरे जैसे थे। आप मेरी तरह भव-भव में भटके जरूर, परन्तु आपने ऐसी आराधना की, तप किये, सम्यक्त्व सहित शुद्ध संयमपालन किये और कर्मशत्रुओं के खिलाफ युद्ध करके विजय प्राप्त किया। अरिहन्त का अर्थ ही है - शत्रुओं का हनन करना। हनन का रहस्यार्थ है, अपनी आत्मा पर कर्मों को हटाना। आपने तप-संयमादि की साधना की, जिससे कर्म स्वतः हट गए। आप वास्तव में अरिहन्त बन गए और मैं अभी तक भव-भ्रमण कर रहा हूँ। प्रभो ! मैं आपके जैसे (अरिहन्त) पद को प्राप्त करूँगा ? भगवन् ! आपके जैसा पुरुषार्थ करने का मेरे में भाव उमड़े और मैं कर्मबन्धन को तोड़कर - घातीकर्म रूपी पर्वतों का भेदन करके कब अरिहन्त बनूंगा ? अहो प्रभो ! कैसी आपकी (आत्म-) निर्मलता ? कैसे थे आपके अद्भुत गुण ? इस प्रकार शुद्ध श्रद्धाभक्तिपूर्वक अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करने से तीर्थंकर नाम-गोत्र-कर्म का बन्ध होता है।

(२) सिद्ध भगवन्त के गुणग्राम करना : यह दूसरा बोल है : "प्रभो ! आपने तो आठों ही कर्मों को जड़मूल से उखाड़ दिये और शाश्वत (मोक्ष) स्थान में विराज गए और मैं अभी चार घातिकर्मों को नष्ट करके अरिहन्त पद भी प्राप्त न कर सका। परन्तु मुझे आशा है कि आपकी तरह कर्मकलंक से सर्वथा रहित पूर्ण शुद्ध आत्मपद परमात्मपद अथवा सिद्ध अवस्था को कब प्राप्त करूँगा ? आप कितनी अगाध शान्ति में विराज रहे हैं। कवि कहता है -

मुक्तिपुरीना आप निवासी (२), संसारभूमिनो हुं छुं प्रवासी (२)
मारे साधवी छे (२), साधना वीतरागनी।.....नथी रे परवा...

प्रभो ! आप शाश्वत स्थान - मोक्षनगर के निवासी, मोक्षनगर के स्वामी हो गए हैं, जबकि मैं तो अभी संसार में प्रवास कर रहा हूँ। मैं प्रवासी न रहकर, वहाँ का निवासी कब बनूंगा ? शाश्वत सुख को कब प्राप्त करूँगा ?" इस प्रकार महाबल अनगार अरिहन्त और सिद्धप्रभु के गुणगान करते हैं। अब आगे क्या बनेगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

"पल्ला उपर करजो हल्लो, गुण गाणाथी भरजो गल्लो ।
स्थिरताथी संभाळजो गल्लो, कदी न पकड़ो पापनो पल्लो ॥"

सच्चे साधु कैसे होते हैं ? जो आत्मा की मस्ती में झूमते हों ! उनके भला पा
कैसा ? जो साधु बनता है, वह संसार की गुलामी या पराधीनता की बेड़ी तोड़व
निकलता है । जिसको किसी की गुलामी नहीं होती । किन्तु अगर साधु साधुपन से भू
या चूके तो वह गुलाम बन जाता है । परन्तु जो साधक वीतराग की आज्ञा का यथा
रूप से पालन करता हो, वह गुलाम नहीं बनता । किसी भी वस्तु, व्यक्ति या क्षेत्र व
बन्धन (प्रतिबन्ध) वह पराया पल्ला है । साधु को किसी वस्तु के प्रति ममत्व नहीं हो
कि यह मेरा है, मैं इसका (स्वामी) हूँ । वह (साधु) तो 'मैं और मेरा' इनको संसार
छोड़कर आया है । अब 'मैं' और 'मेरा' यह कल्पना किसी वस्तु, व्यक्ति या क्षेत्र के प्र
नहीं होनी चाहिए । यह घाटकोपर क्षेत्र मेरा है, ये श्राविकाएँ और श्रावक मेरे हैं इत्या
ममत्व कैसा ? अरे ! जिन्हें छोड़कर आये हैं, उनपर इतना अधिक ममत्व ? इसीव
नाम पल्ला है । जैसे किसी मनुष्य पर व्यन्तरदेव का उपद्रव होता हो, तो प्रायः क
जाता है, इसके शरीर में पराया पल्ला है और वह इसे हैरान करता है । इसी प्रकार जो सा
किसी वस्तु, व्यक्ति और क्षेत्र के ममत्व में पड़ता है, और माया का सेवन करता है, उ
पराया पल्ला कहलाता है ।

सच्चा साधु राग में रंजित नहीं होता, न ही पर का संगी (आसक्त) हो, तथै
पराधीनता के बंधन में बद्ध न हो । वह तो वैराग्य के रंग में रंगकर संयम की धारा
चले । संयम का स्थान महाश्रेष्ठ है । ऐसा श्रेष्ठ स्थान पाने के बाद साधु का (एकमात्र
एक ध्येय होता है कि इस चतुर्गति की विषम घाटी को जल्दी से जल्दी पार कर जान
है । संसार के गीत को बहुत ललकारे, अब तो मुझे वीतराग के गीत ललकारने हैं
पुद्गल के पोटले तो अनन्त भवों से उठाए हैं, अब तो इस पोटले का भार उतारक
आत्मा को हल्का फूल बनाना है और बन्धन से मुक्ति प्राप्त करनी है । बस, साधु क
यही ध्येय होता है । ऐसे उत्तम ध्येय को छोड़कर जो साधु क्रोध, मान, माया और लाभ
तथा राग और द्वेष से जुड़ जाता है, वह पराये पल्ले से चिपटा है । भगवान् कहते हैं
"जब यह (पराया) पल्ला तेरे पर आक्रमण करे, तब क्षमा, निर्लोभता, सरलता आदि शस्
हाथ में लेकर तुम इस (पराये) पल्ले पर करना हल्ला (हमला) । ऐसा करने से यह पल्ला तु
में प्रवेश नहीं कर सकेगा ।" जब मान (अभिमान) आने लगे, तब ऐसा विचार करन
कि 'भगवान् महावीर के चरणों में बड़े-बड़े इन्द्र और देव नमन करते थे, उनकी सेव
में हाजिर रहते थे । बड़े-बड़े राजा-महाराजा उनके पास आते थे, फिर भी उनमें 'अहं' नह
था, फिर मैं किस सीमा का मनुष्य हूँ ? मैं तो उन (भगवान्) से बहुत क्षुद्र हूँ ।' ऐस
विचार करने से 'अहं' गल जाएगा ।

अरिहंत...सिद्ध...पवयण : ये क्रमशः तीन बोल हैं। तीर्थंकर-नाम कर्म के उपार्जन करने के बीस बोलों में से सर्वप्रथम बोल है - (१) अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करना। अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करने हेतु उनके स्वरूप का चिन्तन करना, अरिहन्त भगवान् कैसे थे ? स्वरूप चिन्तन के दौरान-सोचना।

(१) अरिहंत भगवन्त के गुणग्राम करना : प्रभो ! आप कैसे हैं, मैं कैसा हूँ ? आपने चार घनघाती कर्मों का क्षय किया और रागद्वेष-मोह पर विजय प्राप्त किया और मैं अभी इन सबसे मैं जीता जा रहा हूँ। ये सब मेरे पर हावी हो रहे हैं।'

प्रभो ! एक समय ऐसा था, जब आप मेरे जैसे थे। आप मेरी तरह भव-भव में भटके जरूर, परन्तु आपने ऐसी आराधना की, तप किये, सम्यक्त्व सहित शुद्ध संयमपालन किये और कर्मशत्रुओं के खिलाफ युद्ध करके विजय प्राप्त किया। अरिहन्त का अर्थ ही है - शत्रुओं का हनन करना। हनन का रहस्यार्थ है, अपनी आत्मा पर कर्मों को हटाना। आपने तप-संयमादि की साधना की, जिससे कर्म स्वतः हट गए। आप वास्तव में अरिहन्त बन गए और मैं अभी तक भव-भ्रमण कर रहा हूँ। प्रभो ! मैं आपके जैसे (अरिहन्त) पद को प्राप्त करूँगा ? भगवन् ! आपके जैसा पुरुषार्थ करने का मेरे में भाव उमड़े और मैं कर्मबन्धन को तोड़कर - घातीकर्म रूपी पर्वतों का भेदन करके कब अरिहन्त बनूंगा ? अहो प्रभो ! कैसी आपकी (आत्म-) निर्मलता ? कैसे थे आपके अद्‌भुत गुण ? इस प्रकार शुद्ध श्रद्धाभक्तिपूर्वक अरिहन्त भगवान् के गुणग्राम करने से तीर्थंकर नाम-गोत्र-कर्म का बन्ध होता है।

(२) सिद्ध भगवन्त के गुणग्राम करना : यह दूसरा बोल है : "प्रभो ! आपने तो आठों ही कर्मों को जड़मूल से उखाड़ दिये और शाश्वत (मोक्ष) स्थान में विराज गए और मैं अभी चार घातिकर्मों को नष्ट करके अरिहन्त पद भी प्राप्त न कर सका। परन्तु मुझे आशा है कि आपकी तरह कर्मकलंक से सर्वथा रहित पूर्ण शुद्ध आत्मपद परमात्मपद अथवा सिद्ध अवस्था को कब प्राप्त करूँगा ? आप कितनी अगाध शान्ति में विराज रहे हैं। कवि कहता है -

मुक्तिपुरीना आप निवासी (२), संसारभूमिनो हुं छुं प्रवासी (२)
मारे साधवी छे (२), साधना वीतरागनी ।.....नथी रे परवा...

प्रभो ! आप शाश्वत स्थान - मोक्षनगर के निवासी, मोक्षनगर के स्वामी हो गए हैं, जबकि मैं तो अभी संसार में प्रवास कर रहा हूँ। मैं प्रवासी न रहकर, वहाँ का निवासी कब बनूंगा ? शाश्वत सुख को कब प्राप्त करूँगा ?" इस प्रकार अनगार अरिहन्त और सिद्धप्रभु के गुणगान करते हैं। अब आगे क्या बनेगा ? भाव यथावसर कहा जाएगा।

मान लो, एक मनुष्य को खांसी की बीमारी है। उसे वैद्य के पास ले गये। वैद्य ने उसकी नब्ज देखकर कह दिया कि 'इसके शरीर में कफ बढ़ गया है। इसलिए इसे तेल और मिर्च की गन्ध भी न आने देना।' इसके लिए तेल और मिर्च की गंध भी हानिकारक है, यह बात उस रोगी ने सुनी। उसके घर के लोग उसको इन चीजों से परहेज रखाते हैं। उसके लिए तेल-मिर्च आदि चीजों से रहित सादी रसोई बनाते हैं। रोगी इस रोग को भयंकर समझता है। किन्तु जब वह भोजन करने बैठता है, तब दूसरों को स्वादिष्ट भोजन करते देखकर उसका मन काबू में नहीं रहता। वह मिर्च-मसालेवाला भोजन खाने जाता है, तब सभी उसे रोकते हैं। परन्तु रसेन्द्रिय का रसिक बनकर वह सब बातें भूल जाता है। उसे रोकटोक करनेवाले हितैपियों पर वह गुस्सा करने लग जाता है, क्योंकि वे उसे अच्छे नहीं लगते। जहाँ एक इन्द्रिय का घोड़ा दौड़ता है, वहाँ ऐसी दशा होती है, तो जहाँ पाँचों इन्द्रियों के घोड़े खुलकर दौड़ेंगे, वहाँ जीव की क्या दशा होगी? उसका विचार करना। अब मैं आपको इसी तथ्य को दूसरी तरह से समझाती हूँ।

किसी व्यक्ति के शरीर में खुजली हो जाय तो डोक्टर, वैद्य आदि उसे खुजलाने की मनाई करते हैं। परन्तु ज्यों ही खाज चलती है, त्यों ही वह खुजलाए बिना रह नहीं सकता। वह स्वयं समझता है कि अगर खुजलाते समय नख लग गया तो विकार बढ़ेगा और अधिकाधिक खाज चलेगी। वैद्य उसे उपालम्भ देगा और मैं खुद भी हैरान हो जाऊँगा। उसे खाज खुजलाते देखकर उसके हितैषी जन उसका हाथ पकड़कर खुजलाश बंद कराने जाते हैं, तो भी उसे अच्छा नहीं लगता। वे हितैपी उसे दुश्मन जैसे लगते हैं। खुजली के कारण वह इतना पराधीन हो गया कि उसने अपना हित जाना, समझा है फिर भी उसके हितैपी उसे कड़वे लगते हैं। बन्धुओं! इसी प्रकार इस जीव के आरम्भ, परिग्रह, विपयासक्ति, कपाय वगैरह सभी खुजली की तरह चिपके हुए हैं। ये सब भव-चक्र में भटकानेवाले हैं; जीव यह सब जानता-समझता है, सद्‌गुरु इनमें प्रवृत्त होने से रोकते हैं; फिर मोहदशावश गुरुजन भी उसे कड़वे लगते हैं। गुरुजनों की हित-शिक्षा माननी नहीं है, फिर उद्धार कहाँ से होता? ज्ञानीजन कहते हैं कि "कर्मों को काटने की शक्ति मिली है तो सम्यक् पुरुपार्थ करके कर्मशत्रुओं को जीत लो।"

महाबल अनगार ने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था, फिर भी मानरूपी महाशत्रु ने उन्हें पराजित किया, उस मान का पोपण करने के लिए उन्होंने माया की, यानी मायायुक्त तप किया। छह अनगार अट्ठमतप (तेला) करते हों तो वह चार उपवास करते और जब वह छह अनगार चार उपवास (चौला) करते तो वह पाँच उपवास कर लेते। इस प्रकार बड़े (महान्) होने के ममत्व से उक्त ६ अनगारों से एक-एक उपवास आगे बढ़कर तप किया। ऐसा मायासहित तप करने से, जिस नामकर्म के उदय से स्त्रीत्व की प्राप्ति होती है, ऐसे स्त्रीनामकर्म का तथा वैसा जाति-कुल प्राप्त करानेवाले गोत्रकर्म का बन्ध किया। इस प्रकार महाबल अनगार ने माया करके स्त्रीनामकर्म का बंध किया। धर्माचरण में जरा-सी माया की, उसके फलस्वरूप भविष्य में उन्हें तीर्थंकर पद में भी स्त्री बनना पड़ेगा।

ामा से शर्त करी सिर - मूंडणी, यह दुःख खटके कंटक-तूल ।
ची ले पटकी गुझ पाताल में, किन्हा, सुख-वृक्ष-विनाश समूल रे !...

मेरे लाल ! तेरी आशा से मैने सत्यभामा की शर्त स्वीकारी थी । सत्यभामा के पहले तेरा जन्म हुआ । इस कारण तेरा विवाह भी पहले होता, तो मुझे सिर मुंडाना ;ता । तेरे चले जाने से मुझे सिर मुंडाने की नौवत आएगी । वेटा ! यह दुःख तो ांटे की तरह चुभ रहा है । तेरे पिता के मुझ पर चार हाथ हैं । मेरा स्थान सबसे ; । पर यह ऊँचा स्थान कुदरत को पसंद नहीं आया । मुझे ऊँची चढ़ाकर नीचे े ।" इस प्रकार रुक्मिणी वहुत ही कल्पान्त और विलाप कर रही है । सारी द्वारिका ं ये समाचार वायुवेग से फैल गये हैं कि कृष्ण वासुदेव के पुत्र का अपहरण हुआ री तो उसका जन्मदिवस मनाया जा रहा था । उसका ही अपहरण हो जाने से वाजे बंद हो गए । समग्र द्वारिका नगरी में उदासीनता का वातावरण छा गया।

क्मणी कहती है – मेरे लाल को कौन ले गया ?" यों बोलती-बोलती वेहोश होकर ़ पड़ी । वड़ी मुश्किल से उसे होश में लाए । फिर वह उठकर महल के बाहर जैसे भिखारी रोटी की भिक्षा मांगता है, वैसे वह सबसे पूछती है - "मेरे लाल ा ? मुझे मेरा लाल ला दो न ?" रुक्मिणी की ऐसी स्थिति देखकर दास-दासियाँ ाई । वे रुक्मिणी को हिम्मत बंधाने लगीं । दासियाँ अव कृष्ण को समाचार फेर कृष्णजी आयेंगे और प्रद्युम्न की खोज करायेंगे । रुक्मिणी अभी और कैसा- वलाप करेगी और क्या होगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ३५

ण सुदी १४, रविवार | ता. ८-८-७६

चारित्रगुणों के दोस्त बनो, दोषों के दोस्त नहीं

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

नन्तकरुणा के सागर, त्रिलोकीनाथ के मुख से प्रवाहित शाश्वती वाणी का - सिद्धान्त । उसे ही आगम या शास्त्र कहते हैं । महावल अनगार बीस स्थानक राधना कर रहे हैं । उसमें पहला स्थानक है - अरिहन्त का । अरिहन्त प्रभु के गुणगान ाए जीव को उत्कृष्ट रसायन आए तो वह तीर्थंकर-नामकर्म का उपार्जन कर लेता हावल अनगार पुण्यात्मा अरिहन्त प्रभु के गुणगान करने में मस्त एवं मग्न हो जो पुण्यवान् अरिहन्त प्रभु के गुणगान करने में तन्मय हो जाते हैं, उनका संसार

से कुछ कम है । उसमें भी जिंदगी (आयुष्य) सुखपूर्वक भोगी जा सकेगी, ऐसा सब जीवों के लिए नहीं होता । क्योंकि संसार अनेक आदि-व्याधि-उपाधियों से भरा है।

प्रथम तो आयुष्य ही अल्प है, फिर कब कौन-सा रोग आ धमकेगा इसका कुछ पता नहीं है । फिर ज्ञानियों ने यह भी बताया है कि सात कारणों से आयुष्य टूट जाता है । मान लो, कदाचित् किसी का परिपूर्ण आयुष्य हो, तब भी देवों के आयुष्य की अपेक्षा कितना अल्प है ? देवों का आयुष्य कम से कम १० हजार वर्ष का और अधिक से अधिक ३३ सागरोपम का होता है । फिर उनका आयुष्य टूटता नहीं है । इन्हें कोई नहीं आता । देवों के सागरोपम के आयुष्य काल की अपेक्षा मनुष्य का आयुष्य तो आँख की पलक झपकने जैसा है और सिन्धु में बिन्दु जितना है । इसलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "दूसरे भव की बात तो दूर रखो, किन्तु इस मनुष्य भव में सकल सुख के स्थान - ऐसे अपने जीवन की ओर सबसे पहले दृष्टिपात करो । यह जीवन अनित्यता से युक्त है और आवीचि-मरण द्वारा क्षण-क्षण में विनाशी है ।"

आवीचि-मरण का अर्थ क्या है ? जैसे समुद्र की तरंगे क्षण-क्षण में ऊपर उठती हैं और वापस (समुद्र में) समा जाती हैं। वैसे ही क्षण-क्षण में आयुष्य का क्षीण होना आवीचि-मरण है । ऐसा क्षणिक है - मनुष्य का जीवन । फिर भी आप सब निश्चिंत होकर क्यों बैठे हैं ? जहाँ मस्तक पर मौत की चमचमाती तीक्ष्ण तलवार लटक रही हो, क्या वहाँ निश्चिंत होकर बैठा जा सकता है ? कच्चे सूत के धागे से बांधी हुई तलवार कब टूट पड़ेगी इसका पता नहीं है । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "तेरा आयुष्य कच्चे सूत के धागे से बंधी हुई तलवार जैसा है ।" संतों के मुख से भी आपने ऐसा अनेकबार सुना होगा, फिर भी मोह के कीचड़ में पड़कर अमूल्य आयुष्य को वृथा खो रहे हो । मानवभव का प्रत्येक क्षण हीराकणी से भी अधिक कीमती है । इसका ख्याल आता है आपको ? कुछ होशियार मनुष्य तो कह देते हैं कि बुढ़ापे में गोविन्द के गुणगान कर लेंगे । परन्तु जरा सोचो - बुढ़ापे में गोविन्द के गुण गाओगे या (आसक्ति आदि पापों के) गुनाहों के बोरे भरोगे । उसका क्या पता है ? यह कर्मराजा किसे कब कैसी हालत में डाल देगा तथा बुढ़ापे में कैसी परिस्थिति आएगी ? इसका कहाँ पता है तुम्हें ? बहुत-सी दफा देखते हैं कि जो माता-पिता पुत्रों के लिए सर्वस्व कर छूटते हैं, उनकी वृद्धावस्था में कर्मराजा कैसी स्थिति कर डालता है ? पुत्र के हाथ में सत्ता आ जाती है, तब (कृतघ्न होकर) वह माँ-बाप को दास बना देता है और नौकर की तरह काम कराता है । ऐसा कई परिवारों में बनता है । बोलो, वृद्धावस्था में ऐसी मजदूरी करने का वक्त आ जाए तो उसे बोरे उठाना ही कहा जाएगा न ? ऐसा समय आए, उसकी अपेक्षा तो अभी से समझ-बूझकर सत्कर्म-सद्धर्म कर लो तो कल्याण हो जाय ! ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा । घर में यदि एक मनुष्य भी धर्मिष्ठ होगा तो वह घर मनुष्यों को सच्चे मार्ग पर मोड़ सकेगा । किन्तु घर में किसी को भी धर्म के प्रति श्रद्धा तथा तदनुसार आचरण नहीं होगा तो संसार की मजदूरी करके कर्म बांधेंगे और विराधक बनकर जायेंगे । इस सम्बन्ध में मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है -

हे आत्मन् ! देवलोक में रहे हुए उच्चतम पदवीवाले इन्द्रों तथा सामानिक देवों, मनुष्यों में उच्च पदवी प्राप्त हुए चक्रवर्ती, बलदेवों, वासुदेवों, माण्डलिक नृपों तथा भोगभूमि में रहनेवाले यौगलिक मानवों, तथा सामान्य मानवों और तिर्यंच आदि को एक दिन तो अपने-अपने स्थानों को छोड़ना पड़ता है; अर्थात् मृत्यु पाकर परलोक में जाना पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। देवलोक के दिव्य सुख तथा मनुष्यलोक के समस्त सुख भी अशाश्वत हैं, अल्पकाल-अस्थायी हैं, ऐसा समझकर उन पर से ममत्वभाव त्यागो। और तो और यह शरीर भी कैसा है ?

अनित्याणि शरीराणि, वैभावो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्म-संचयः ॥

जिस शरीर पर तुम्हारा गाढ़ रागभाव है, जिसका पोषण करने के लिए पाप करते हुए भी विचार नहीं करते, वैसा यह शरीर अशाश्वत है। इस शरीर को भी यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। यह एक कदम भी तुम्हारे साथ नहीं जाएगा। जीवन जब शाश्वत स्थानरूप मोक्ष में जाता है, तब शरीर आदि सबको यहीं छोड़कर जाता है। यहाँ तुम्हारा निवास या तुम्हारा अपना माना हुआ धन-वैभव, मकान, बंगला, कार आदि समस्त अशाश्वत पर-वस्तुओं को छोड़कर जाना पड़ेगा। 'उत्तराध्ययन सूत्र' (के ३६वें अध्ययन गा. ५५/५६) में कहा गया है -

कहिं पडिहया सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ?
कहिं बोंदिं चइत्ताणं, कत्थ गंतूण सिज्झइ ?
अलोए पडिहया सिद्धा, लोग्गगेय पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥

सिद्ध जीव कहाँ जाकर रुक जाते हैं, या अटक जाते हैं और वे कहाँ स्थित होकर रहते हैं ? शरीर का त्याग कहाँ करते हैं और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ? इसके जवाब में प्रभु ने फरमाया -

सिद्ध भगवान् अलोक के सिरे (अन्त या सीमा) पर अटक जाते हैं। यानी वे लोक के अग्रभाग पर रहते हैं। यहाँ मृत्युलोक में शरीर को छोड़कर लोक के अग्रभाग पर जाकर सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं।

संक्षेप में मेरे कहने का आशय समझ गए न ? प्रिय से प्रिय, इष्ट और कान्त शरीर भी सबको यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा। शरीर के लिए पापकर्म करके प्राप्त किया हुआ धन-वैभव आदि सब अशाश्वत है। पुत्र, पत्नी, माता-पिता, स्वजनों और मित्रों आदि सबके साथ सहवास भी अनित्य है। क्योंकि इन सबके साथ चिरकाल तक रहकर गाढ़ स्नेह किया जाता है, फिर भी अन्तिम समय में सबका सहवास छोड़कर यहाँ से बिदा होना पड़ता है। भोगों को लम्बे समय भोगने पर भी जीव को तृप्ति नहीं होती। परन्तु

देते - "तुझे चिन्ता करनी हो तो कर, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।" फिर भी सेठानी ने कहा - "अरे नाथ ! एक बार तो व्याख्यान में आओ।" पर जिसे मोह का नशा चढ़ा है, वह सेठ कहता है - "मैं उपाश्रय में आऊँगा तो तुम्हें हीरों से कौन सुसज्जित करेगा ?" सेठानी के रग-रग में धर्म का रंग था। उसे अच्छे कपड़ों या हीरे के गहनों का कतई मोह न था। अत- एव उसने कह दिया - "मुझे हीरे के गहनों का और फोरेन की साड़ी का कोई मोह नहीं है। अगर आप धर्म-ध्यान करते हों तो मेरे लिए धर्म को छोड़कर या खोकर व्यापार करने की आवश्यकता नहीं हैं। अगर आप धर्माराधना में जुड़ते हों तो मैं सादी बंगड़ी और मोटी खादी की साड़ी पहन लूंगी, घर के सब काम अपने हाथ से कर लूंगी।" "तुम्हें हीरे की बंगड़ी नहीं पहननी हो, परन्तु मैं तुम्हें हीरे की बंगड़ी नहीं पहनाऊँ तो समाज में मेरी इज्जत क्या रहेगी ? तुम्हें तो केवल बोलना है, मुझे समाज के बीच में रहना है।" इस प्रकार कहकर सेठ सेठानी की बात का खण्डन कर डालते। जो कान से सुनना ही नहीं है, उसे उपदेश क्या कर सकता ? सेठानी सेठ को बहुत उपदेश देती, परन्तु जिसे उपदेश जरा भी रुचिकर नहीं लगता उसका क्या किया जाए ?

परिग्रह के प्रति मूर्च्छा धर्म के प्रति रुचि और लगन नहीं होने देती। संसार की माया आत्मा को धर्म की ओर मुड़ने नहीं देती। लक्ष्मी की माया जीव को ऐसी प्रभावित कर देती है कि उसे धन के सिवाय दूसरी बात सूझती ही नहीं। जैसे अंधेरी रात में रास्ते पर सामने से आती हुई मोटर की डेझलिंग लाइट आँख पर पड़ते ही आँख इतनी चुंधिया जाती है कि दूसरा कुछ भी दिखता नहीं, वैसे ही प्यारा-प्यारा परिवार, मान-सम्मान, धन की प्रचुरता आदि संसार की मायारूपी लाइट की चकाचौंध में पड़े हुई जीव को कोई चाहे जितना समझाए, फिर भी उसके दिल-दिमाग में धर्म करने की रुचि नहीं होती। सुखलाल सेठ की ऐसी ही दशा थी।

सेठानी सेठ को बहुत समझा-समझाकर थक गई, पर सेठ नहीं समझे। कभी-कभी सेठानी अकेली बैठी-बैठी इस प्रकार पश्चात्ताप करती थी - 'ओह ! मेरे पुण्य में कैसी कमी है कि मेरे पति धर्म के विषय में समझते नहीं। मेरे पति धर्मात्मा बनें, तभी मैं समझूंगी कि मैं पुण्यवान हूँ।' धर्मप्रेमी पति नहीं मिला, इसमें धर्मिष्ठा महिला अपने पुण्य की न्यूनता समझती है। इसका कारण आपको समझ में आता है ? **'संसार-सुख का रसिक जीव भौतिक सुख की सामग्री न मिले तो यों मानता है कि मेरे पुण्य में खामी है, जबकि धर्मप्रेमी जीव धर्मसामग्री न मिले तो, यों मानता है कि मेरे पुण्य में कमी है।'**

इस पर आपलोग सच्चे धर्मप्रेमी हो या नहीं, इसका माप निकलता है। जो यह खामी मालूम होती हो तो समझ लेना कि आप संसार-सुख के रसिक हैं, किन्तु धर्मप्रेमी नहीं हैं और इस सेठानी की तरह करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति होने पर भी धर्म के अभाव में पुण्य की खामी है, यों प्रतीत होता हो तो समझ लेना कि हम धर्मप्रेमी हैं।

पुरुप कहते हैं "जहाँ तक तन स्वस्थ है, वहाँ तक तप, त्याग, संयम आदि की साधना कर लो।" शरीर मोक्ष में जाने के लिए एक साधन है। जहाँ तक आयुष्यरूपी दीपक जल रहा है, वहाँ तक इस शरीर का सदुपयोग कर लो। सरकार यदि ऐसी घोपणा कर देती है कि आज से प्रतिदिन ६ वजे लाइट बंद हो जाएगी, तो मेरे भाई-बहन दिन रहते ही सव काम पूरे कर लेंगे, क्योंकि तुम जानते हो कि अंधेरे में कुछ काम नहीं होगा, बहुत-सा काम बाकी रह जाएगा। इसी प्रकार ज्ञानी कहते हैं - "तेरे आयुष्य की लाइट कब बंद हो (बुझ) जाएगी, इसका पता है या निश्चिंतता से बैठे हो ?" कहीं बाहरगाँव जाना हो और छह बजे की ट्रेन है तो पाँच बजे ही स्टेशन पर पहुँच जाते हो। वहाँ कितनी जागृति होती है ? परन्तु जीवरूपी गाड़ी कब रवाना होगी, इसकी कोई गारंटी है ? कोई तुम्हारे घर के दरवाजे पर एक पत्रिका चिपका गया है कि तुम्हारे घर पर रेड पड़ेगी। उसे जानकर कितने सावचेत रहतो हो। धन-सम्पत्ति सब ठिकाने करके जागृत रहते हो। परन्तु आत्मा पर कालरूपी राजा की धाड़ कब धमधमाट करती आ धमकेगी ? इसका पता नहीं है। जीवनरूपी लाइट कब चली जाएगी ? यह पता नहीं है। अतएव भवरूपी वन में से शीघ्र छुटकारा मिले, इसके लिए धर्माराधना कर लो। अगर शरीर की सारसंभाल करने में ही रह गए तो परभव में क्या दशा होगी ? इसका भलिभांति विचार करके मिले हुए साधनों द्वारा सत्कर्म व सधर्म की साधना करके इन साधनों का सदुपयोग कर लो।

अब दूसरा वोल है - **तू भूल जा**। क्या भूल जाना है ? तूने यदि किसी का भला किया हो तो उसे भूल जाना। उसे तू याद मत करना। कोई मनुष्य संकट में आ पड़ा हो, उस समय तुमने उसकी मदद की हो, उसकी जाती हुई इज्जत तुमने बचाई हो, तो समय आने पर तू यों मत कहना कि -"उस समय तेरी कैसी स्थिति थी ? यह तो मैं था कि तेरी आवरू रह गई। मैंने तुझे दुःख में मदद करके बचाया है ! तू मेरे कारण से ही उजला है।" ऐसा मत कहना। किन्तु ऐसा भाव रखना कि मैंने क्या किया है ? दुःखी को सहायता करना, यह तो मेरा कर्तव्य है। मैंने मानव के रूप में अपना कर्तव्य अदा किया है। किन्तु मैंने तो कुछ नहीं किया। तुम तीन-चार घंटे लाइट जलाते हो तो उसका बिल भरना पड़ता है, जबकि सूर्य बिना कुछ चार्ज लिए सबेरे से शाम तक कितना प्रकाश देता है ? वृक्ष ताप-धूप सहकर थके हुए पथिक को ठंडी छाया देता है; आम का पेड़ पत्थर की मार सहकर भी मीठे फल देता है, दो तटों के बीच में बहती नदी तृष्णातुर मानव को ठंडा पानी देती है। मेघ समुद्र से खारा पानी लेकर मीठा पानी देता है। ये सब निःस्वार्थभाव से किसी भी प्रकार का चार्ज लिए बिना इतना देते हैं। मैं मानव हूँ, एक मानव दूसरे मानव को मदद करे - इसमें उपकार किस बात का ? बन्धुओं ! किसान खेत की जमीन में पाँच सेर अनाज बोता है, तो उसके बदले में 'उसे हजारों कण मिलते हैं। बोने की अपेक्षा वह हजारगुना फल प्राप्त करता है। तुम भी अगर कीर्ति और वाहवाही का मोह छोड़कर दान करोगे तो तुम्हें उसका हजारगुना फल मिलेगा।

तक इतनी सारी मेहनत (लक्ष्मी बटोरने के लिए) क्यों कर रहे हो ? जरा, विचार तो करे - मैं कौन हूँ और मेरा क्या है ? जरा सुनिए - झूठा प्रपंच करके करोड़ों की सम्पत्ति इकट्ठी करके जो पापकर्म बांधा है, वह तो पापकर्ता को भोगना होगा, उसमें कोई हिस्सा नहीं बंटा सकेगा ।" सेठ की आँखें खुल गई । वे बोले - "गुरुदेव ! आपकी बात सच्ची है । मेरी पत्नी तो बहुत कहती थी, किन्तु मुझे लक्ष्मी का इतना अधिक मोह था कि मैं उसकी बात नहीं सुनता था और परलोक का भी विचार नहीं करता था । आपकी वाणी सुनकर अब मुझे समझ में आ गया है कि मैंने सारी जिंदगी पाप में व्यर्थ ही नष्ट कर डाली । गुरुदेव ! अब मेरा क्या होगा ?" इतना बोलते-बोलते सेठ की आँखों से आंसू उमड़ पड़े । यह सुनकर संत ने आश्वासन देते हुए कहा - "सेठ ! व्यथित मत होइए । **'जब से जागे तब से सबेरा'** इस कहावत के अनुसार अब भी आप पिछली भूल का पश्चात्ताप करते हुए सच्चे दिल से धर्माराधना करिए । जिंदगी के अन्त में संयम की साधना हो जाय तो भी उत्तम है । यदि संयम ग्रहण न किया जा सके तो संसार में रहकर यथाशक्य धर्माराधना करिए ।" सेठ बोले : "गुरुदेव ! मैं संयम तो अंगीकार नहीं कर सकता, किन्तु संसार में रहकर यथाशक्ति धर्माराधना करूँगा ।" सुखलाल सेठ के मन में समाधान पाकर अपूर्व आनंद हुआ । संत ने उन्हें श्रावक के १२ व्रतों का स्वरूप समझाया । सेठ ने उन से बारह व्रत अंगीकार किये । सेठ ने घर आकर निश्चय किया - 'अब मुझे नया धंधा नहीं करना है तथा जो-जो संपत्ति है, उसका ५० प्रतिशत दान में उपयोग करना है ।' सेठ ने धर्म को पा लिया । वे हर्षित होते हुए घर आए और सेठानी से सारी आपवीती बताई । यह सुनकर सेठानी का हृदय नाच उठा । पति के चरणों में पड़कर बोली - "नाथ ! आज मेरी जिंदगी और मेरी वर्षों की भावना सफल हुई ।" इसके बाद पति-पत्नी दोनों ने साथ-साथ धर्माराधना करते हुए जीवन सफल बनाया । सेठानी धर्मसंस्कारों से ओतप्रोत थी, इसलिए पति को सुधार दिया । इस प्रकार तुम (बहनें) भी इस सेठानी जैसे बनकर पति को धर्ममार्ग पर लगाना ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महाबल अनगार ने माया के सेवन करके तप किया, इसके फलस्वरूप स्त्रीनामकर्म बांधा । देखो ! कर्म किसी को छोड़ता है क्या ? फिर भी जीव का मोह छूटता नहीं । अब महाबल अनगार ने क्या किया ? इस पर विचार करें -

"इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेविय बहुलीकएहिं तित्थयर नाम-गोयं कम्मं निव्वतिसुं, तंजहा ।"

उसके पश्चात् महाबल अनगार ने शास्त्र-प्रसिद्ध वीस स्थानक, जो कि आसेवित और बहुलीकृत थे, अर्थात् - उनका सेवन किया । उससे तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म का बंध किया । प्रत्येक स्थानक एक बार सेवन करना । आसेवित और अनेकबार सेवन करना बहुलीकृत कहलाता है । वे बीस स्थानक कौन-कौन से हैं ? ये कहा जाएगा -

अपनी बहन को छोड़ दी । सात-सात वर्ष व्यतीत हो गए, किन्तु भाई ने बहन को कभी बुलाई नहीं । आज तो जमाना ऐसा आया है कि -

'साली आवे तो लाड करे, ने नहेनी रडती जाय ।'

अगर भाई की साली आई हो तो भाई चाहे जिस तरह से उस दिन छुट्टी ले सकता है और सारी मुंबई घूम फिर कर बताता है । नित्य नये प्रोग्राम रखता है और बहन आए तो भाई कहेगा कि मुझे टाइम नहीं है । साली नई साड़ी पहनकर जाती है, जबकि बहन अश्रुपात करती जाती है । ऐसी दशा है संसार की । इस प्रकार माता के मन में तो बहुत भावना होती है कि मैं अपनी पुत्री को चार दिन के लिए बुलाऊँ । परन्तु अपने पति के चल बसने के बाद घर और परिवार का सारा तंत्र बेटा-बहू के हाथ में था । पति के गुजर जाने के बाद कर्मयोग से उसकी (माँ की) घर में कुछ चलती नहीं । इस कारण माता अपनी पुत्री को कैसे बुलाए ?

यहाँ तो बालकों ने आग्रह किया - "माँ ! हमें मामा के यहाँ जाना है ।" माता कहती हैं - "बेटे ! कुछ दिन बाद हम मामा के यहाँ जायेंगे ।" पर यह तो बालक कहलाते हैं, बालहठ पर चढ़कर झगड़ा करने लगे । घर में उसकी सासु थी, वह बोली - "छोकरों ! तुम्हारे मामा ने कभी तुम्हें भोजन के लिए बुलाया है ? उसने सगाई-सम्बन्ध रखा ही कहाँ है ? वह बहुत सुखी है, कभी तुम्हारी सुध ली है ? तुम्हारा मामा तो नालायक है ।" सासु के उद्गार सुनकर बहू बोली - "माँ ! मुझे आपको जो कुछ कहना हो, वह कहना । मैं सुन लूंगी । किन्तु मेरे भाई के विषय में ऐसे कुवचन न कहें ।" इस पर सासू ने कहा - "अरी बहू ! तेरा भाई तेरे सामने भी देखता नहीं । फिर भी अभी तक तुझे अपने भाई पर मोह है ? खड्डे में पड़े तेरा भाई ?" तब बहू ने कहा - "माँ ! मेरे भाई के लिए ऐसे वचन-कुवचन क्यों कहती हैं ? मेरा भाई तो मेरा भाई है । वह तो बहुत अच्छा है, किन्तु मेरे कर्म ऐसे हैं, जिसके कारण मेरा भाई मुझे बुला नहीं सकता ।"

बन्धुओं ! देखिए, भाई बहन को बुलाता नहीं, फिर भी बहन को भाई कितना प्यारा है ! वह भाई के सम्बन्ध में जरा भी ऊँची-नीची बात सुनने को तैयार नहीं है । सासूजी ने जो ताना मारा वह उसके अन्तर में आरपार उतर गया । अतः बहन कागज-कलम लेकर भाई को पत्र लिखने बैठी : "ओ मेरे प्यारे वीरा !" इतने शब्द लिखते हुए बहन की आँखों में आंसू उमड़ पड़े । कागज पर जहाँ श्याही के अक्षर पड़े, वहाँ बहन की आँखों से आंसू की बूंदें पड़ी । रोते हृदय से बहन ने लिखा - "वीरा ! मैं तेरे पास से कपड़े या गहने नहीं मांगूँगी । मिठाई नहीं मांगूँगी, या पाँच रुपये भी नहीं मांगूँगी । तेरे घर आऊँ तो सिर्फ रोटी और दाल खिला देना । परन्तु तेरे भानजे हठपूर्वक झगड़ा करते हैं कि हमें मामा के घर जाना है । और दूसरी ओर मेरी सासू ताना मारती है । अतः सासू के तानों को काटने के लिए एक बार तो मुझे अवश्य तेरे यहाँ बुला ले । मैं सिर्फ एक दिन तेरे यहाँ रहूँगी । परन्तु तू मुझे जल्दी बुलाना । पत्र अवश्य लिखना ।" यह सब लिखकर बहन ने पत्र रवाना किया । पत्र भाई के यहाँ पहुँचा । पर कुदरत का संयोग ऐसा बना कि

तक इतनी सारी मेहनत (लक्ष्मी बटोरने के लिए) क्यों कर रहे हो ? जरा, विचार तो
- मैं कौन हूँ और मेरा क्या है ? जरा सुनिए - झूठा प्रपंच करके करोड़ों की सम्पत्ति इ
करके जो पापकर्म बांधा है, वह तो पापकर्ता को भोगना होगा, उसमें कोई हिस्सा
बंटा सकेगा ।" सेठ की आँखें खुल गई । वे बोले - "गुरुदेव ! आपकी बात स
है । मेरी पत्नी तो बहुत कहती थी, किन्तु मुझे लक्ष्मी का इतना अधिक मोह था वि
उसकी बात नहीं सुनता था और परलोक का भी विचार नहीं करता था । आपकी व
सुनकर अब मुझे समझ में आ गया है कि मैंने सारी जिंदगी पाप में व्यर्थ ही नष्ट
डाली । गुरुदेव ! अब मेरा क्या होगा ?" इतना बोलते-बोलते सेठ की आँखों से अ
उमड़ पड़े । यह सुनकर संत ने आश्वासन देते हुए कहा - "सेठ ! व्यथित मत होइ
'जब से जागे तब से सबेरा' इस कहावत के अनुसार अब भी आप पिछली भूल
पश्चात्ताप करते हुए सच्चे दिल से धर्माराधना करिए । जिंदगी के अन्त में संयम की सा
हो जाय तो भी उत्तम है । यदि संयम ग्रहण न किया जा सके तो संसार में रहकर यथाश
धर्माराधना करिए ।" सेठ बोले : "गुरुदेव ! मैं संयम तो अंगीकार नहीं कर सकता, वि
संसार में रहकर यथाशक्ति धर्माराधना करूँगा ।" सुखलाल सेठ के मन में समाधान प
अपूर्व आनंद हुआ । संत ने उन्हें श्रावक के १२ व्रतों का स्वरूप समझाया । सेठ ने
से बारह व्रत अंगीकार किये । सेठ ने घर आकर निश्चय किया - 'अब मुझे नया ध
नहीं करना है तथा जो-जो संपत्ति है, उसका ५० प्रतिशत दान में उपयोग करना है
सेठ ने धर्म को पा लिया । वे हर्षित होते हुए घर आए और सेठानी से सारी आपब
बताई । यह सुनकर सेठानी का हृदय नाच उठा । पति के चरणों में पड़कर बोली
"नाथ ! आज मेरी जिंदगी और मेरी वर्षों की भावना सफल हुई ।" इसके बाद प
पत्नी दोनों ने साथ-साथ धर्माराधना करते हुए जीवन सफल बनाया । सेठानी धर्मसंस्क
से ओतप्रोत थी, इसलिए पति को सुधार दिया । इस प्रकार तुम (बहनें) भी इस सेठ
जैसे बनकर पति को *धर्ममार्ग पर लगाना ।*

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महाबल अनगार ने माया के सेवन करके तप किया, इसके फलस्वरूप स्त्रीनाम
बांधा । देखो ! कर्म किसी को छोड़ता है क्या ? फिर भी जीव का मोह छूटता नहीं ।
महाबल अनगार ने क्या किया ? इस पर विचार करें -

"इमेहि य णं वीसाएहि य कारणेहिं आसेविय बहुलीकएहिं तित्थ
नाम-गोयं कम्मं निव्वतिसुं, तंजहा ।"

उसके पश्चात् महाबल अनगार ने शास्त्र-प्रसिद्ध बीस स्थानक, जो कि आसेवित
बहलीकृत थे, अर्थात् - उनका सेवन किया । उससे तीर्थकर नाम-गोत्रकर्म का
किया । प्रत्येक स्थानक एक बार सेवन करना । आसेवित और अनेकबार सेवन क
बहुलीकृत कहलाता है । वे बीस स्थानक कौन-कौन से हैं ? ये कहा जाएगा -

न ? भाई ने बाजार से बहन और भानजों के लिए दो-दो जोड़ी कपड़े और मिठाई के तीन-चार बोक्स खरीदे । उन्हें लेकर जिस झोंपड़ी में बहन रहती थी, वहाँ आया ।

बहन के दोनों बच्चे झोंपड़ी के आगे आंगन में खेल रहे थे । उन्होंने मामा को कभी देखा नहीं था । परन्तु उनके हाथ में मिठाई के बोक्स देखकर अंदर जाकर अपनी माँ से कहते हैं - "माँ ! मामाजी आए हैं । साथ में इतनी सारी मिठाई लाए हैं ।" बहन दौड़कर बाहर आई, और देखा कि अपना भाई आया है । वह दौड़कर अपने भाई से गले लगकर मिली । भाई ने बहन और भानजों को कपड़े दिये, मिठाई दी । बालक तो एकदम खुश-खुश हो गए, बोले - "मामा ! आप हमारे लिए प्रतिदिन मिठाई लेकर आना ।" भाई अपने भानजों की बालपन की भाषा सुनकर खुश हुआ । दोनों भानजों को प्यार से अपनी गोद में बिठा लिया । फिर भाई ने कहा - "बहन ! तेरे इस पापी भाई को माफ कर !

सचमुख मैंने तुझे सात-सात वर्ष से बुलाया नहीं । आज तेरा पत्र पढ़कर मेरा हृदय फट-सा गया ।" यों कहते-कहते भाई बहुत रो पड़ा । बहन कहती है - "भैया ! इसमें तेरा कोई भी दोष नहीं है । मेरे कर्मों का दोष है ।" प्रेम से भाई-बहन परस्पर मिले । भाई बहन को लेकर अपने घर आया । किन्तु ननद को देखते ही भाभी के दिमाग का पारा चढ़ गया । वह अकारण ही कठोर वचन बोलने लगी । उस समय भाई ने अपनी पत्नी से कहा - "बहुत हो गया । अब तो बंद कर अपनी जबान ! तेरे पाप के कारण मैंने अपनी बहन को सात-सात वर्ष से छोड़ दी थी । मेरी बहन के तीन-तीन पत्र आए, तूने वे पत्र मुझे बताए तक नहीं । जरा विचार कर । तुझे अपने भाई-बहन कितने प्यारे हैं ? मुझे भी मेरी बहन प्यारी होती है न ?" भाई ने उसे बहुत कुछ खरी-खोटी सुनाई, फिर भी भाभी की बोलती बंद नहीं हुई । भाभी का एक-एक वचन बहन के हृदय को जला डालने जैसा निकल रहा था ।

बहन मन में सोचने लगी - 'भले ही यह भाई का घर है । भाई का मेरे और बालकों के प्रति प्रेम बहुत है । किन्तु भाभी को मैं जरा भी नहीं सुहाती, फिर यहाँ रहकर क्या करूँ ? कहावत है -

'आव नहीं आदर नहीं, नहीं नयनों में नेह ।
वा घर कबहूं न जाइए, कंचन बरसे मेह ।।'

जहाँ आव-आदर नहीं हो, आँखों में स्नेहधारा न हो, वहाँ चाहे सोने की वर्षा होती हो, फिर भी वहाँ कदापि नहीं जाना चाहिए । इस घर में भाभी का मेरे प्रति आदर या प्रेम नहीं । भाई सारे दिन मेरे पास थोड़े ही रहनेवाला है ? रोटी तो भाभी के हाथ में है । यह खाने नहीं देती; ऐसी स्थिति में मैं यहाँ रहकर क्या करूँ ? इतने में तो भाभी जोश में आकर बोली - "वाघरण ! तू मेरे घर में कहाँ आ धमकी ? चली जा यहाँ

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

अपहरण हुए पुत्र की शोध : प्रद्युम्नकुमार का अपहरण होने से रुक्मिणी सिसकती हुई जोर-जोर से रुदन कर रही है। रोती हुई कहती है - "हे पुत्र ! तू कहाँ जाकर छिप गया है ? हे मेरी प्यारी दासियों ! मेरे पुत्र को तुमने कहाँ छिपा दिया है ? तुमने मेरी मजाक करके मेरे लाल को छिपा दिया हो तो झटपट उसे लाकर मुझे सौंप दो ! पुत्रवियोग से मेरा कलेजा फट रहा है। बहनों ! मैं तुम्हारे आगे अपनी गोद पसार रही हूँ - मुझे मेरा पुत्र दे दो।"

यह सुनकर दासियाँ कहती हैं - "महारानीजी ! इस समय पुत्रवियोग के कारण आपके होश उड़ रहे हों, उस समय क्या हम आपकी मजाक करके पुत्र को छिपाकर रख सकती हैं ? हम ऐसी मजाक नहीं करतीं। परन्तु रात में आप उसे अपनी गोद में लेकर सो रही थी, यह बात निश्चित है। फिर आपके निद्राधीन होने के बाद कोई पापी देव उसे उठाकर ले गया लगता है। किन्तु यहाँ कोई आदमी नहीं आया।" यह सुनकर रुक्मिणी कहती है - "अरेरे ! मेरे जैसी अभागिनी स्त्री इस दुनिया में कौन होगी कि ऐसे रत्न से पुत्र को जन्म देकर उसको सुरक्षित रख न सकी। मेरे इस पुत्र को कौन ले गया होगा ?

हे पुत्र ! मैंने तो तेरे लिए मन में कितने मनोरथ किये थे ? अरे पुत्र ! मैंने आशा के मिनारे बांधे थे, उन मिनारों को किस पापी ने तोड़ डाले ? अरे ! पूर्वजन्म का कौन दुश्मन तेरा अपहरण करके ले गया ? अरे पापी देव ! तूने शत्रुता करके मेरे मन के मनोरथ को जड़मूल से उखाड़ डाला ! अरे तूने मेरी आशा के मिनारें तोड़कर चूरचूर कर डाले।" इस प्रकार दुश्मन को उलहना देती है। फिर थोड़ी देर बाद पुत्र का उपालम्भ देती हुई कहती है - "हे पुत्र ! तूने मेरी कूख से जन्म लिया, मुझे प्रसन्न करके तुने यह क्या किया ? भगवन् ! इसकी अपेक्षा तो मैं बांझ रही होती तो अच्छा था। फिर यही होता कि मुझे पुत्र नहीं हुआ। हे पुत्र ! तुझे जन्म दिया तो इस प्रकार विलाप करने का वक्त आया न ?" इस प्रकार पुत्र को उपालम्भ देती हुई वह स्वयं को उपालम्भ देने लगी।

बन्धुओं ! माता का वात्सल्य-प्रेम कैसा है ? संतान के प्रति माता की कितनी अधिक ममता होती है ? पुत्र के मोह में रुक्मिणी कैसे-कैसे करुण उद्‌गार निकाल रही है ? अब वह अपने आप से कहती है - "पापिनी ! तू स्वयं किसलिए जिंदी रही है ? तेरे पर बिजली क्यों नहीं गिर गई ? अरेरे ! कालनाग ! तुमने मुझे क्यों नहीं काट लिया ? झूले में झूलते हुए झूला टूट पड़ता और मैं मर जाती, ऐसा क्यों नहीं हुआ ? मैं कृष्ण की सभी रानियों में छोटी हूँ, किन्तु मुझे पटरानी बनाकर उन्होंने मुझे बड़ी बना दी। इस कारण से मेरी बहनों के दुःख की पार नहीं है। अगर मैं यहाँ न आई होती तो मेरी बहनों को भी दुःख न होता !

हे पुत्र ! तेरे बिना यह स्वर्ण-महल भी स्मशान जैसा भयावना लगता है। तेरे वियोग में मैं अपने दिन कैसे बिताऊँगी। हे पुत्र ! मुद्दे की बात तो कहनी भूल ही गई -

बहन की उदार भावना : भाभी को पता लगा कि मेरी ननद पैसेवाली हो गई है। इसलिए पति से कहा - "आप अपनी बहन के यहाँ जाइए। ऐसा होने पर कम से कम हम सुख से रोटी तो खा सकेंगे।" पति बोला - "तूने बहन के घर जाने जैसा व्यवहार रखा ही कहाँ है ? कल तो तूने मेरी बहन को वाघरण और खराब कदमों की कहकर उसे भूखी-प्यासी निकाल दी। वह दुःखी थी, और तू सुखी थी, किन्तु तूने उसको किसी भाव भी नहीं पूछा, न ही रखा। अब मैं किस मुँह से बहन के घर जाऊँ ? मैं भले ही भूखे मर जाऊँगा, पर बहन के घर तो किसी हालत में नहीं जाऊँगा।"

इस ओर बहन को पता लगा कि मेरा भाई गरीब हो गया है, और सारे परिवार को भूखों मरने की नौबत आ गई है। बहन तुरंत तैयार हो गई भाई के पास जाने के लिए। जिस दिन वह भाई के यहाँ पहुँची, ठीक उसी दिन 'रक्षाबन्धन' का पर्व था। धनाढ्य बहन गरीब भाई को राखी बान्धने के लिए चल पड़ी। भाई-भाभी और भतीजों के लिए अच्छे-अच्छे कपड़े और कुछ आभूषण लिए। खाने के लिए मिठाई के डिब्बे भर लिए। सभी चीजें गाड़ी में रखकर गाड़ी में बैठकर बहन भाई की झोंपड़ी पर आ पहुँची। बहन को गाड़ी में से उतरती देखकर लड़के झोंपड़ी में से दौड़कर आए और अपने माता-पिता से कहने लगे - "मम्मी-पापा ! भुवाजी आई हैं, भुवाजी आई हैं ! वह बहुत-सी सामग्री लेकर आई हैं।" एक दिन वह था, जब भाई बहन के पास गया था, तब बहन के बच्चे मामाजी आए, मामाजी आए, यों बोले थे। आज बहन को आए देख भाई दौड़कर बाहर आया, और मधुर शब्दों में बोला - "मेरी प्यारी बहन ! तू आई, आओ।" परन्तु भाभी तो घर के कोने में बैठकर रोने लगी, क्योंकि उसे अभिमानपूर्वक बोले हुए अपने कड़वे वचन याद आ गए।

ननद को देखकर भाभी के मन में हुआ पश्चात्ताप : ननद बोली - "भाभी ! रोना नहीं, मेरे सामने देखो ! अब आपके दुःख के दिन गए। अब मैं आपको इस झोंपड़ी में नहीं रहने दूंगी। मैं आप सबको अपने घर ले चलूंगी और मेरे भाई को मैं अपनी मिल का मैनेजर बना दूंगी। आप चिन्ता न करें।" ननद के अमृततुल्य मधुर वचन सुनकर भाभी का मन शान्त हुआ। ननद को अपने द्वारा कहे गए कटुवचनों को याद करके ननद के चरणों में पड़कर माफी मांगी। फिर कहा - "बहन ! आप तो रत्न-तुल्य हैं। मेरे हजार अपराधों को भूलकर आपने हमारे सामने देखा, उपकार पर उपकार किया। आपके जैसी ननद मिलनी बहुत मुश्किल है।" ननद ने कहा - "भाभी ! आपका कोई दोष मैं नहीं मानती, दोष तो सिर्फ मेरे कर्मों का था। मेरे कर्मों ने आपको ऐसी बुद्धि सुझाई। परन्तु अब एक बात अवश्य लक्ष्य में लेना - लक्ष्मी का मिलना तो पुण्य का खेल है। सुख प्राप्त होने उसमें हर्षित या आसक्त न होना, साथ ही दुःख आ पड़ने पर दीन मत बनना। जब सुखी हों, तब दुःखग्रस्त को मदद करना, किन्तु सुख के घमंड में आकर किसी को दुत्कारना या धिक्कारना नहीं।"

परिमित (कट) हो जाता है। इसके विपरीत जो आत्मा दोषों से भरी दुनिया में खो जाता है, वह चतुर्गति के संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

बन्धुओं ! अनन्तकाल से आत्मा दोषों से भरी हुई दुनिया में खो जाता है, ऐसा दोषों का दोस्त बना हुआ आत्मा दुःख भोगने के लिए दुर्गति में जाता है; क्योंकि वह अपने मन-वचन-काया को दोषों के साथ जोड़कर दोषों का दोस्त (दुर्गुणी) बन जाता है। इसके विपरीत, यदि आत्मा मन-वचन-काया से अरिहन्त भगवान् के गुणगान करे तो अनन्त आत्म-गुणों की निधि बनकर सदा-सदा के लिए अनन्त-सुख का स्वामी बन जाता है। अतः अरिहन्तपद प्राप्त करना हो तो बार-बार अरिहन्त के गुण का स्मरण करना आवश्यक है।

महाबल अनगार अरिहन्त प्रभु के गुणों का स्मरण करता है। वह अन्तःकरण से प्रार्थना करता है - "प्रभो ! आप में अनन्त गुण निहित हैं। आप में रहे हुए अनन्त गुणों को मेरे अन्तर में आए, प्रकट हो। मैंने सिद्धान्त और शास्त्र द्वारा जबसे आप में रहे हुए अनन्त गुणों का वर्णन पढ़ा है, सुना है, जाना है; तब से मुझे उन गुणों को प्राप्त करने की अन्तर से लगन लगी है। जैसे मालिक की सेवा करनेवाला सेवक निहाल हो जाता है, वैसे ही प्रभो ! आप हमारे मालिक हैं, मैं आपका सेवक हूँ। आप अनन्त गुणों के स्वामी हैं, तो क्या मुझे भी एक दिन आपके जैसा अनन्त गुणों का स्वामी नहीं बनायेंगे ? मुझे श्रद्धा है, विश्वास है कि आप मुझे अपने जैसा बनायेंगे। हे करुणा सिन्धु ! आप मेरा हाथ पकड़कर इन दोषों से भरी सृष्टि से बाहर निकालकर अपने पास ले जाएँ ! अब मुझे एक क्षण भी आपसे दूर रहना अच्छा नहीं लगता। मैं सदैव आपके पास रहकर आपका ध्यान करूँगा, आपके गुणों की स्तुति करूँगा और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। आपके पवित्र नाम का निरन्तर जाप करूँगा। अब मैं कदापि दोषों के साथ दोस्ती नहीं करूँगा। मैं अब सतत दोषों के प्रति जुगुप्सा-भाव रखूँगा और आप में रहे हुए अद्‌भुत गुणों को प्राप्त करने हेतु अत्यन्त पुरुषार्थ करूँगा। साथ ही मैं आपके (जिन) शासन के प्रति पूर्ण वफादार रहूँगा। चाहे जितने भी लोभ-लालच या भय के प्रसंगों में भी मैं आपके शासन (संघ-तीर्थ) को कभी नहीं छोड़ूँगा।" इस प्रकार महाबल अनगार अरिहन्त प्रभु के गुणगान करते हुए ऐसी पावन भावना करता है। आप भी प्रातःकाल प्रतिदिन प्रार्थना करते हो न ? उस प्रार्थना को करते हुए प्रभु में तल्लीन बन जाओ और अरिहन्त-सिद्ध भगवान् के गुणों का स्मरण करके ऐसी भावना से वासित हो जाओ तो कदाचित् तुम्हारा नम्बर भी इस पद में लग सकता है।

बन्धुओं ! इस प्रकार हम अरिहन्त प्रभु के केवल गुणगान करके रह जाएँ, उनकी आज्ञा का पालन न करें तो उनके गुणों की प्राप्ति नहीं होगी। अतः ऐसा विचार करो कि भगवान् की क्या आज्ञा है ? भगवान् कहते हैं कि "हे जीव ! इस संसार में तेरा निवास शाश्वत नहीं है।" 'सूत्रकृतांग सूत्र' (अ.-८, गा.-१२) में भगवान् ने कहा है -

"ठाणी विविह-ठाणाणि, चइस्संति णं सव्वस्सो।
अणियए अयं वासे, णायएहिं सुहीहिय ॥"

सकता है । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "हे आत्मन् ! तुझे नरकगति के दुःख सहने के लिए नहीं जाना हो तो सिद्धान्त का आश्रय लेकर चल । इस काल में सिद्धि के सोपान पर चढने के लिए यदि कोई सीढ़ी हो तो वह है - वीतराग-प्रभु की वाणी । इस वाणी के सहारा लेकर मुक्ति की मंजिल तक पहुँचने के लिए सद्गुरुदेव तुम्हें मुक्ति का मार्ग बताते हैं ।" इस वाणी के प्ररूपक भगवान् कैसे थे ? वे थे *'तिन्नाणं तारयाणं'* स्वयं ने संसारसमुद्र को पार किया (तिरे) और भव्यजीवों को तिरने (पार करने) का मार्ग बता गए हैं । उन वीतराग-परमात्मा का अपने पर कितना महान् उपकार है ? उनकी वाणी के प्रति हमें कैसा बहुमान होना चाहिए ? बोलो ! तुम किसका बहुमान करोगे ? वीतराग-प्रभु की वाणी का या लक्ष्मीदेवी का ? जीव लक्ष्मी का और लक्ष्मीवान का जितना बहुमान करता है उतना वीतरागवाणी का और वीतरागी-संतों का बहुमान नहीं करता । अगर जीव ने वीतरागवाणी का बहुमान किया होता तो आज तक संसार में भटका न होता । जैसे छोटा बच्चा इधर-उधर भटकने जाता है, तब उसकी माँ जोर से चिल्लाकर उसे बुलाती है, मगर वह खेल छोड़कर नहीं आता । खेलते-खेलते थक जाता है, तब वह अपने आप घर आ जाता हैं । वैसे ही धर्म-स्थानक में आने के लिए संत आप लोगों को समझाते हैं कि हे जीवों ! अनन्तकाल से तुम संसार में भटके हो, मस्तक का एक बाल रखा जाय, इतनी भी जगह स्पर्श किये बिना खाली नहीं रखी । शास्त्र में कहा है -

न सा जाई, न सा जोणी, न तं कुलं, न तं ठाणं ।
न जाया, न मुया तत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ।।

पाँच जातियों में से एक भी जाति, चौरासी लाख जीवयोनियों में से एक भी योनि, तथा एक भी कुल या एक भी स्थान ऐसा नहीं है कि जहाँ अपना जीव (आत्मा) ने जन्म न लिया हो, अथवा जहाँ मरण न हुआ हो । इतना ही नहीं, संसार के सभी जीवों ने इन सब स्थानों में एकबार नहीं, अनन्तबार जन्म-मरण किया हो । वह इतना भटका है, फिर भी अभी तक उसे थकान नहीं लगी; उसे अभी तक (जन्म-मरणादि रूप संसार-निवारक) धर्म के प्रति रुचि नहीं जागी । उसे वीतरागवाणी श्रवण करने का मन नहीं होता । सचमुच, वीतरागवाणी ऐसी अमृतमयी है कि जो जीव (आत्मा) उसका आश्रय लेता है, वह अमर हो जाता है ।

महाबल अनगार बीस स्थानक की आराधना करते हैं । उनमें से आज निम्नोक्त सात के विषय में कहना है -

"अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए तवस्सीसुं ।
वच्छलयाई तेसिं अभिक्खणं नाणोवओगे य ।।१।।"

अरिहन्त भगवान्, सिद्ध भगवान्, प्रवचन, गुरु, स्थविर, बहुश्रुत और तपस्वियों के प्रति वात्सल्यभाव रखना, इनकी भक्ति करनी और इनके गुणों का कीर्तन करना ।

आज इन सातों के विषय में प्रकाश डालना है -

याद रखना, एक दिन, इच्छा से या अनिच्छा से इन सबको छोड़ना पड़ेगा । इसकी अपेक्षा तो स्वेच्छा से इन्हें छोड़ दोगे तो महान् लाभ होगा । शान्ति और धैर्यपूर्वक धर्म का सेवन करो । धर्माचरण करोगे तो इहलोक और परलोक में सच्चा सुख प्राप्त कर सकोगे । अपनी जिन्दगी बहुत ही अल्प है । अतः धर्माराधना में जुट जाना चाहिए ।

आज का मनुष्य वर्षगांठ आती है, तब माल-मिष्टान्न (बनाकर) उड़ाता है और आनन्द मानता है । इस पर ज्ञानीजन कहते हैं - "संसार के मोह में पागल बने हुए हे पामर जीव ! तेरा आयुष्य क्षण-क्षण में कट या घट रहा है और तेरी मृत्यु नजदीक आती जा रही है । अतः सावधान हो जा और जीवन में धर्म का संचय कर ।" मैं तुमसे पूछती हूँ - तुम किसका संचय करते हो ? धन का या धर्म का ? बोलो - तुम्हें तो धन अत्यन्त प्रिय है न ? इसीलिए तो रात-दिन धन का संचय करते हो न ? पागल आदमी रास्ते में चलते-चलते कागज, चीथड़े और कंकर आदि को इकट्ठे करता है । गर्दन में हंडिया का गला पहन कर चलता है और चतुर मनुष्यों को देखकर वह हर्षित होता है, नाचता है, गाता है, कूदता है और कहता है - 'देखो, मैंने कितनी चीजें इकट्ठी कर लीं ?' वैसे ही मोह के नशे में मुग्ध बने हुए जीव धर्म को भूलकर धनादि को इकट्ठे करने के मोह में पड़े हैं । वे सत्य-असत्य को भी भूल जाते हैं, और मानवधर्म को भी भूल जाते हैं । वह भी एक प्रकार का पागलपन है । जहाँ प्रतिक्षण आयुष्य की डोरी कट रही हो, मरणरूपी राक्षस सामने से वेग से आगे बढ़ा आ रहा हो, वहाँ पुद्गल की शय्या में आनन्द कहाँ आएगा ? ज्ञानी कहते हैं कि "संसार का प्रत्येक काम करते हुए तुम मृत्यु को दृष्टि-समक्ष रखोगे तो पाप करते हुए डर लगेगा ।" एक तत्त्वचिन्तक ने तत्त्व का बहुत चिन्तन करके चार बोलों का चयन करके जगत् के समक्ष रखे हैं ।

उनमें से पहला बोल है - तुम एक बात समझ लो कि **'देर-सबेर एक दिन मुझे यह सब छोड़कर जाना है ।'** जब कभी भी यहाँ से जाऊँगा, तब इस धन के ढेर में से मेरे साथ एक लाल पाई भी आनेवाली नहीं है । एक भक्त ने एक भजन में गाया है -

धन साथे नहि आवे, तन पाछल रही जावे ।
पाप ने पुण्य जे आवशे साथमां,...धन साथे नहि आवे...
धन काजे हुं ज्यां त्यां दोडुं, धर्मक्रिया करवानुं छोडुं;
हुं एमांथी पामुं थोडुं, बाकी स्वजनो पचावे,...धन साथे नहि आवे...

यह धन और तन साथ में नहीं आएँगे । साथ में तो जीव के द्वारा किये गए पुण्य और पाप तथा शुभाशुभ कर्म आनेवाले हैं । फिर भी जीव धन के लिए धर्म को भूल जाता है, धन का गुलाम बन जाता है । फिर प्राप्त किये हुए धन में से तुम कितना भोग सकोगे ? अन्त में तो पीछे रहे हुए लोग ही खाते हैं, दावत उड़ाते हैं और पाप तो करनेवाले को भोगना पड़ेगा; उसका फल भोगने में कोई दूसरा हिस्सा नहीं बटाएगा । अतः ज्ञानी

है। आपका उपकार जरा भी नहीं भूलूंगा। इस प्रकार हृदय के शुद्धभावपूर्वक गुरु के तथा स्थविर साधु-भगवंतों के गुणगान करने से जीव तीर्थंकर-नामकर्म का उपार्जन कर लेता है। जो तपस्वीगण इन्द्रियों का दमन करके तप कर रहे हैं, उनके भी गुणगान करना। तप बारह प्रकार का है। छह प्रकार का बाह्य तप है और छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है। आभ्यन्तर तप के साथ बाह्य तप की भी जरूरत होती है। जैसे एक हीरा कागज की पुड़िया में रखा हुआ है, किन्तु उसे अंगूठी में जड़ दिया जाए तो उसकी शोभा बढ़ती है। वैसे ही आभ्यन्तर तप हीरा जैसा है। परन्तु उसे बाह्य तपरूपी खोखे में जड़ दिया जाए तो उसकी शोभा और अधिक बढ़ जाती है। किसी भी प्रकार की प्रशंसा की आशा से रहित, माया-कपट-रहित, कर्म-निर्जरा के हेतु से जो तपस्वीगण तप करते हैं, उनका वह तप शुद्ध है। ऐसे तपस्वी संतों की सेवा-भक्ति और गुणगान करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है।

आज इन सात स्थानकों के विषय में चर्चा की गई है। महाबल अनगार ऐसे तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करने के २० बोल की आराधना कर रहे हैं। बाह्य तप के साथ-साथ वह आभ्यन्तर तप भी करते थे। अपने यहाँ भी मासखमण की तपश्चर्या के मंडप बंध गए हैं। तपस्वियों के मुख पर तप का तेज चमक रहा है।

आज रक्षाबन्धन का दिन है। आज बहुत-से भाई अपनी कलाई पर राखी बंधवाकर आये हैं। यह तो एक लौकिक पर्व है। वैरभाव को दूर करके प्रेम-वात्सल्य भाव से यह पर्व मनाया जाता है। जैनधर्म के नियमानुसार रक्षाबन्धन किसे कहा जाता है? उसपर हम विचार करें -

रक्षाबन्धन शब्द के ५ अक्षर हैं, **'र, क्षा, बं, ध, न'**। ये ५ अक्षर आपको क्या सूचना, प्रेरणा या सन्देश देते हैं? क्रमशः हम इस पर चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं -

'र' र का अर्थ है - रमणता। अर्थात् - हे चेतन! तू रमणता कर! यह रमणता किसकी करनी है? जड़-रत्नों की नहीं, जड़-पुद्गलों की रमणता नहीं, किन्तु आत्मा में रमणता यानी आत्मरमणता। आत्मभाव में रमणता करने से जीव रत्नत्रय (सम्यग्ज्ञानादि तीन भावरत्नों) की प्राप्ति कर सकता है। छह खण्ड के अधिपति भरत चक्रवर्ती शीशमहल में आत्म-रमणता करके आत्मा (शुद्ध आत्मा) के अधिपति बन गए। उसका क्या कारण था? वह संसार में रहते थे, परन्तु संसार में रमण नहीं करते थे, निर्लेप विरासक्त हो गए थे। मतलब यह है कि वह आत्मभाव में रहे हुए थे। आप सब संसार में रहते हैं या उसमें रमण करते हैं। कदाचित् संसार में रहना पड़े तो रहो, मगर उसमें रमण मत करो! संसार में रहो तो विरागभाव से रहो। विराग से विरति का बीजारोपण होगा और संसारभाव नष्ट हो जाएगा, यानी संसारभाव विराम पाएगा। संसारभाव का विराम होने से परपदार्थ की विस्मृति और स्व-(आत्म-) गृह की स्मृति होगी। अतएव ज्ञानी कहते हैं - तू 'स्व' (आत्मा) को भूलना मत। 'स्व' को भूल जाएगा और 'पर' में झूल जाएगा तो संसार

तीसरा बोल है - **मेरे द्वारा एकान्त में कृत पाप को भगवान् देखते हैं, उसका फल मुझे भोगना पड़ेगा।** अपने जीवन का ख्याल रखो और सोचो कि मैं चाहे जितना पाप एकान्त कोने में बैठकर या पाताल में बैठकर भी करूंगा तो चाहे कोई दूसरा देखे या न देखे, मगर सर्वज्ञ भगवान् तो उनके केवलज्ञान में सबकुछ जानते और देखते हैं। जघन्य दो करोड़ और उत्कृष्ट नौ करोड़ केवली, तथा जघन्य २० तीर्थकर, उत्कृष्ट १७० तीर्थकर भगवन्त और अनन्त सिद्ध भगवन्त मेरे द्वारा किये जाते हुए पापों को देख रहे हैं और उन कृत पापकर्मों का फल मुझे ही भोगना पड़ेगा। इस बात का ख्याल रखकर पाप करने से दूर रहो, पीछे हटो।

चौथा बोल है - **तेरे पर कोई उपकार करे तो तू उसका बदला उपकार से देना।** इस चौथे बोल पर मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। 'रक्षाबन्धन' तो कल है। किन्तु तुम इस दृष्टान्त को सुनकर सच्चे भाई बनकर बहन को संभालना। पुराने वैरभाव को भूल जाना।

एक गाँव में अशुभ कर्म के उदय से एक अत्यन्त गरीब बहन रहती थी। वह वहाँ झूंपड़पट्टी जैसे एक घर में रहती थी। एक दिन अत्यन्त जोर की बरसात होने से उसके घर के आसपास पानी भर गया था। उसके घर के बगल में एक धनिक का बंगला था। रमझम करता हुआ रक्षाबन्धन पर्व का दिन आया। उस धनिक ने अपनी बहन को भोजन के लिए आमंत्रित की। इसलिए वह बहन अपने छोटे-छोटे बालकों को लेकर (उक्त धनिक) भाई के घर आई। भाई के घर सैकड़ों मिठाई के बोक्स आए हैं, बहन के परिवार के सिवाय भी दूसरे अनेक सगे-स्नेहीजन वहाँ भोजन के लिए आनेवाले थे। लगभग १०० मनुष्य भोजन करनेवाले थे। सेठानी ने एक बड़े थाल में मिठाई निकालकर उसके खाली हुए। बोक्सों पैकेट बाहर फेंक दिये। झोंपड़ी में रहनेवाली गरीब बहन के बच्चों ने उन खाली पैकेटों को देखकर तथा धनिक के घर लोगों की भीड़ देखी तो बोले - "माँ! अपने बगलवाले काका के यहाँ हमारे जैसे बालक भोजन करने आए हैं। वे यों कहते हैं - 'आज रक्षाबन्धन का दिन है। इसलिए हम अपने मामा के यहाँ भोजन करने आए हैं।' तो मम्मी! क्या हमें भी अपने मामा के यहाँ भोजन करने नहीं जाना है? क्या हमारे मामाजी नहीं हैं?" उनकी माँ कहती है - "बेटे! मामा हैं।" इस पर बच्चे बोले - "मम्मी! चलो न, हम भी अपने मामा के यहाँ भोजन करने जाएँ। माँ! तू हमें मामा के यहाँ क्यों कभी ले जाती नहीं है?"

बच्चों के मीठे बोल सुनकर माँ का हृदय भर आया : निर्दोष बालकों की बात सुनकर माता की आँखों से अश्रु छलक पड़े। बात ऐसी थी कि इस बहन का भाई बहुत ही धनाढ्य था। परन्तु घर में ऐसी कुभार्या स्त्री आ गई कि, जिसने अपने पति को ऐसा बहका दिया कि तुम्हारी बहन के चरण अशुभ हैं। देखो; शादी करके आई कि सम्पत्ति चली गई। अगर अपने घर में इसके चरण पड़ेंगे तो हम भी गरीब हो जाएँगे। यद्यपि भाई को बहन के प्रति बहुत प्रेम था, मगर श्रीमतीजी की बहकावट में आ गया और

में अहंकाररूपी सिग्नल चालू (डाउन) हो तो अपनी आत्मारूपी गाड़ी मोक्षरूपी स्टेशन में प्रवेश नहीं कर सकेगी । जीवन में नम्रता और विनय होगा तो हम क्षमा, सरलता, ज्ञान आदि गुणों की प्राप्ति कर सकेंगे तथा नर से नारायण व अपूर्ण से पूर्ण बनकर शाश्वत सुख के स्वामी बन सकेंगे ।

यह तो हमने भाव-रक्षाबन्धन की बात कही । रक्षाबन्धन के ५ अक्षरों में गूढ़ भावार्थ निहित है । इसे हम बराबर समझें । इस पर अधिकाधिक चिन्तन-मनन करें तो इसमें से नये-नये अर्थों की स्फुरणा होगी । यों रक्षाबन्धन का यथार्थ भाव और महत्त्व समझा जा सके तो आत्मा की भलीभाँति रक्षा की जा सकती है ।

रा'नवघण की कथा

श्रोताओं की अत्यन्त मांग होने से अब आपको रक्षाबन्धन पर रा'नवघण की एक ऐतिहासिक कहानी सुनाती हूँ ।

रा'नवघण जूनागढ का राजपुत्र था । यहाँ बैठे हुए भाइयों और बहनों में बहुत-से सौराष्ट्र के हैं । रा'नवघण भी सौराष्ट्र का कैसा वीर था ? उसका जन्म किस प्रकार हुआ ? उसका नाम नवघण कैसे पड़ा ? वह किसके यहाँ, कैसे-कैसे पला-पुसा और बड़ा हुआ ? यह सब बातें जानने योग्य हैं । जूनागढ की गद्दी पर रा'ध्यास नामक राजा राज्य करता था । उसका दूसरा नाम था - महीपाल । कितना सुन्दर नाम है यह ? मही+पाल मिलकर महीपाल शब्द बना है । मही का अर्थ है - पृथ्वी और पाल का अर्थ है - पालन-रक्षण करनेवाला । संक्षेप में अर्थ हुआ - पृथ्वीपालक । इस महीपाल राजा के तीन रानियाँ थीं, उनमें एक सोनलदेवी और दूसरी सोलंकी रानी, ये दो मुख्य रानियाँ थीं । यों तो महीपाल राजा सभी रानियों के प्रति एकसरीखी प्रीति रखता था । किन्तु सोनलरानी बहुत पवित्र थी । वह राजा की सेवा में अहर्निश तत्पर रहती थी । उसकी बुद्धि बहुत तीव्र थी । इस प्रकार सेवा और बुद्धि की दृष्टि से सोनलदेवी श्रेष्ठ थी । इस कारण महीपाल राजा की उसके प्रति अधिक प्रीति थी । उसपर राजा के चार हाथ थे । प्रकृति का यह एक नियम है कि जिसमें विनय, नम्रता, विवेक और सेवा का गुण होता है, उसके प्रति सामनेवाले व्यक्ति का कुदरती तौर पर आकर्षण होता है । कमल में सुवास होती है तो भौंरा बिना बुलाए उसके पास दौड़कर चला जाता है, कमल भ्रमर को बुलाने नहीं जाता । वैसे ही गुणवान मनुष्य को, कोई उसके पास आए, यों कहने की आवश्यकता नहीं होती । किन्तु उसके गुणों से सामनेवाला व्यक्ति स्वतः आकर्षित होता है । सोनलदेवी के गुणों के प्रति राजा का अनुराग था । जैसा उसका रूप और उसकी आकृति थी, वैसे ही उसमें गुण थे । वह जब बोलती थी, तब मानो फूल खिल रहे हों, ऐसा उसका मुख था । यद्यपि सोनलदेवी महीपाल राजा की अत्यन्त प्रियपात्र रानी थी, फिर भी वह अपनी सभी बहनों (दूसरी रानियों) के प्रति प्रेम रखती थी । उसके दिल में किसी के प्रति द्वेष

भाई घर पर हाजिर नहीं था । पत्र भाभी-साहिबा के हाथ में आया । वह ननद के अक्षर पहचान गई । इसलिए लिफाफे को खोलकर पढ़ा और फाड़कर गटर में फेंक दिया । उसके (ननद के) भाई के हाथ में पत्र जाय तो आपत्ति आए न ?

भाई को बिलकुल पता नहीं कि बहन का पत्र आया है । बहन को श्रद्धा थी कि भले ही मेरे भाई ने सात-सात वर्ष से मुझे नहीं बुलाया, किन्तु मेरा पत्र पढ़कर उसका हृदय अवश्य पसीज जाएगा और मुझे अवश्य बुलाएगा । बहन भाई के प्रत्युत्तर का इंतजार कर रही है । तीन-चार दिन करते-करते आठ दिन बीत गए, फिर भी भाई का पत्र नहीं आया । तब सासू ने कहा – "भाई...भाई करती है । परन्तु देख, आया तेरे भाई का पत्र ? वह तो तुझे बिलकुल भूल गया है । अतः भूल जा अपने भाई को !" सासू के इन तानों से बहू का कलेजा चिरा जा रहा है, पर क्या करे ? बन्धुओं ! बहन को भाई न बुलाए, तो उसे अपनी ससुराल में कितना सहन करना पड़ता है ? इस पर विचार करना । और जो भाई अपनी बहन को भूल गया हो, वह कल 'रक्षाबन्धन' (पर्व) के दिन बहन को जरूर याद करे । रक्षाबन्धन के दिन भ्रातृविहीन बहन रोती है । दीपावली के दिन लोग अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने पहनकर सैर-सपाटा करने निकलते हैं, मेवा-मिष्ठान्न उड़ाते हैं । तब गरीब के घर में गुड़ की छोटी-सी डली भी नहीं होती । इसलिए गरीब रोता है । जबकि पर्युषण पर्व में गरीब, अमीर, मध्यमवर्गीय आदि सब के घर में आनन्द-आनन्द होता है ।

इस बहन ने भाई को तीन पत्र लिखे, परन्तु वे सब भाभी के हाथ में पड़ गए, अतः उसने फाड़कर फेंक दिये । परन्तु उसके भाई को पत्र की गन्ध तक न आने दी । रक्षाबन्धन का दिन भी चला गया । बहन की आँख में आंसू सूख नहीं रहे थे । एक दिन उसके गाँव का कोई आदमी आया । उसके साथ बहन ने पत्र लिखकर भेजा । उससे यह भी कहा कि पत्र मेरे भाई के हाथ में रूबरू देना । इस पत्र में बहन ने लिखा – "भैया ! मैने तुम्हें तीन-तीन पत्र लिखे, परन्तु तेरा कोई जवाब नहीं मिला । भाई ! मुझे तेरी कोई चीज नहीं लेनी है । परन्तु मेरी सासू मुझे ताना मारती हैं, वह मुझसे सहन नहीं होते । अतः मेरी सासू के तानों का उसे अकाट्य जवाब मिल जाए, तू मुझे एकबार तेरे घर अवश्य बुलाना ।"

उक्त भाई बहन के भाई की दुकान पर जाकर पत्र उसके हाथ में दिया । पत्र पर बहन के आंसू की बुंदे पड़ी थीं । पत्र पढ़ते ही भाई का हृदय भर आया । उसका दिल पसीज गया । वह समझ गया कि बहन के आये हुए तीन-तीन पत्र उसकी भाभी के हाथ में पड़ गये होंगे । उसने मुझे उन पत्रों का पता तक न लगने दिया । चाहे जो हो, बहन-भाई का एक रक्तसम्बन्ध है न ? भाई अत्यन्त रो उठा । मुझ पापी ने सात-सात वर्ष तक बहन की कोई खोज-खबर नहीं ली, तभी तो उसे सासू का ताना सुनना पड़ा न ? बस, अब तो चाहे जैसे भी मैं अपनी बहन को बुला लाऊँ । अब मुझे यहाँ से घर नहीं जाना है । यहाँ से सीधा बहन के घर रवाना हो जाऊँ । घर जाऊँगा तो व्यर्थ की पंचायत होगी

आई है और जूनागढ के चारों ओर घेरा डाला है । महीपाल राजा तुरंत सावधान हुए और जल्दी से जल्दी शस्त्रों से सुसज्जित सेना लेकर रणभूमि में लड़ने के लिए आए । घमासान लड़ाई हुई । अनंगपाल की सेना विशाल थी । कुछ दिन तो महीपाल राजा साहसपूर्वक लड़े । किन्तु प्रायः अपनी सारी सेना युद्ध में मारी गई । महीपाल राजा भी जिंदगी का मोह छोड़कर लड़े और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए । फलतः अनंगपाल ने जूनागढ पर कब्जा किया । अपने पति की मृत्यु के बाद मुझे जीकर क्या करना है ? सती नारियाँ शील की रक्षा के लिए प्राण दे देती हैं । यदि वह जीने का मोह करेगी, तो मुस्लिम राजा उसका शील लूटेंगे । इसलिए पति की चिता पर ही स्वयं जल मरने के लिए तैयार हुई। सोचा पति परलोक सिधारे हैं, तो मैं भी उनके पीछे सती होकर चली जाऊँ । अतः सोनलरानी ने सोचा - 'यदि यह नवघण जिंदा रहेगा तो किसी दिन अपने पिता का राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा ।' यों विचार कर अपनी एक विश्वस्त और वफादार दासी को बुलाकर उसके हाथ में अपने पुत्र (नवघण) को सौंपकर उसे सारी हिदायत दी और स्वयं । पति की चिता पर चढ़कर अग्निस्नान करके मृत्यु का आलिंगन किया ।

वह दासी अत्यन्त वफादार थी । यद्यपि नवघण को लेकर जूनागढ से बाहर कहीं जाना, अपने प्राणों को खतरे में डालने जैसा काम था । फिर भी उसने साहस करके अपने भावी राजा के प्राणों की रक्षा करने के लिए उसे (नवघण को) एक टोकरे में डाला, ऊपर से पत्तों वगैरह से उसे ढंक दिया और लुकछिपकर एक भोंयरे में से होकर जूनागढ के दरवाजे से बाहर निकल गई । अनंगपाल का सख्त आदेश था कि महीपाल राजा का एक भी वंशज जिंदा नहीं रहना चाहिए । दासी छह महीने के कुंवर को टोकरे में डालकर इधर-उधर लपकती छिपती चली जा रही थी । इस ओर सूबेदार के आदमी महीपालराजा के कुंवर को ढूंढने लगे । परन्तु उसका पता नहीं लगा । आगे चलकर दासी सोचने लगी कि अब मैं कुंवर को लेकर कहाँ जाऊँ, क्या करूँ और किसको सौंपूं ? ताकि यह सहीसलामत रहे । यों चिन्ता करती-करती वह प्राणों को खतरे में डाले, आगे जा रही थी । चलते-चलते गिर के नाके पर अलिदार बोड़ीदार नामक गाँव में आ पहुँची । इस गाँव में देवायत नाम का एक आहीर रहता था । उसकी आसपास के गाँवों में काफी अच्छी प्रतिष्ठा थी । दासी ने सोचा - 'इस गाँव का मुख्य व्यक्ति देवायत आहीर है, वह अच्छा आदमी है, उसके यहाँ कुंवर को सौंप दूं । वह कुंवर की रक्षा करेगा, पालन-पोषण भी करेगा ।' यों विचार करके वह दासी देवायत आहीर के यहाँ पहुँची । देवायत को एक कोने में ले जाकर उसने कहा - "वीरा ! यह (भविष्य में) जूनागढ की राजगद्दी को सुशोभित करनेवाला नवघणकुमार है । (जिसे मैं अपने प्राणों को खतरे में डालकर मृत्यु के साथ जंग खेलकर) तुम्हारे यहाँ ले आई हूँ । तुम इसका रत्न की तरह जतन (रक्षण) करना ।"

अपने राजा का कुमार सहीसलामत जीवित है और अपने यहाँ इसका भलीभांति पालन-पोषण करना है, यह जानकर आहीर को बहुत आनन्द हुआ । उसने दासी से

से !" ये शब्द सुनते ही बहन भूखी-प्यासी ही उठ खड़ी हुई और अपने बालकों को लेकर चल पड़ी । भाई भी रोता रह गया ।

बहन विचार करने लगी - 'आज दुनिया में किसका सम्मान और यश है ? जहाँ देखो, वहाँ पैसे की प्रतिष्ठा है, सम्मान है ! आज अगर मैं पैसेवाली होती तो भाभी यों कहती - ननदबाई आई, ननदबाई आई । और मुझे खम्मा-खम्मा कहती । मैं अपने अशुभ कर्म के उदय से गरीब हूँ । इस कारण भाभी ने मेरे सुख-दुःख की कोई बात भी नहीं पूछी । पैसा ही जगत् में मान-सम्मान कराता है । जगत् में पैसे की जय-जयकार है ।

पैसानी जगमां जय-जय...धनपतिनी जगमां जय-जय...
अरे, वाह रे वाह ! पैसानी जगमां जय-जय जय-जय जय...॥

बहन के हृदय में बहुत दुःख हुआ । वह अपने बच्चों को लेकर घर आई । छोटे-छोटे फूल-से बच्चे भी समझ गए और कहने लगे - "माँ ! अब हमें मामा के घर नहीं जाना है ।" यह बहन घर आई, तब सासू ने ताना मारा - "क्यों ! भाई ने चार दिन भी नहीं रखा ?" बहन क्या बोलती ? वह मन मसोस कर रह गई । सासू के तानों को शक्कर की मिठास की तरह पी जाती है । प्रभु से प्रार्थना करती है - 'प्रभो ! मुझे सहन करने की शक्ति देना ! चाहे जैसी परिस्थिति में भी मेरे मुँह से भाभी के जैसे कुवचन न निकलें ।' इस प्रकार बहन मन को मनाकर स्वस्थ होकर रहती है ।

देवानुप्रियों ! प्रत्येक मनुष्य का समय एक सरीखा नहीं जाता । इस दुनिया में आज का रोडपति कल करोड़पति बन जाता है, और आज का करोड़पति कल रोडपति हो जाता है । इसी प्रकार आज का शूरवीर और सत्ताधीशजन, कल फटेहाल हो जाता है, और आज फटेहाल दिखाई देनेवाला कल धनाधीश, सत्ताधीश या शूरवीर बन जाता है। यों समझकर कोई भी व्यक्ति लक्ष्मी या सत्ता का गर्व न करे । यह बहन बहुत पवित्र, पतिव्रता स्त्री थी । स्वयं दुःखी होने पर मन से भी किसी का बुरा चिन्तन नहीं करती थी । एक दिवस ऐसा आया कि इस बहन के पुण्य का सितारा जगमगाने लगा। इसके पति को सेठ ने नौकर में से अपना पार्टनर (भागीदार) बना दिया । कमाई अच्छी हो गई । इसलिए झोंपड़ी की जगह बड़ा बंगला बंध गया । घर में मोटर आ गई । सारा परिवार आनन्द से रहने लगा । पैसा बढ़ा, सुख के साधन बढ़े, किन्तु बहन के मन में इसका जरा भी अभिमान नहीं होता । इस तरफ बहन के पुण्य का सितारा चमक उठा, जबकि दूसरी ओर भाई के यहाँ पुण्यरूपी सूर्य अस्त हो गया । उसके पापकर्म का उदय ऐसा हुआ कि व्यवसाय में घाटा लगने से घरबार आदि सब बिक गए और बंगले के बदले में झोंपड़े में रहने का वक्त आ गया । एक दिन जो दिवस बहन के थे, वैसे ही दिवस भाई-भाभी के आ गए । भाई-भाभी और बालक को अब खाने-पीने के लाले पड़ गए ।

अतः अनंगपाल राजा को कहीं इस बात का पता न लगे, इसकी देवायत को सदैव चिन्ता रहती थी ।

देवायत की कठोर कसौटी : देवायत नवघणकुमार का रक्षण और पालन-पोषण करता है । एक बार देवायत की उसके भाई के साथ किसी बात में जरा-सी तकरार हो गई । देवायत अपने से जहाँ तक हो सके किसी को भले करने में कभी पीछे नहीं हटता था, इतना परोपकारी था । जबकि उसका भाई अतिस्वार्थी था । देवायत शान्त, गम्भीर और विचारशील था, जबकि उसका भाई क्रोधी, छिछोरपनवाला और अविचारपूर्वक कार्य करनेवाला था । एक ही माता के उदर में लोटे हुए और एक ही माता का दूध पीये हुए दोनों भाइयों में रात-दिन जितना अन्तर था । कहा भी है -

एक बापना बे बेटडा, गुणमां होए फेर ।
उदरमां अमृतजीवन, मरण प्रगट्युं झेर ॥

एक ही पिता के दो पुत्र हों, किन्तु उन दोनों के गुणों में जमीन-आसमान जितना अन्तर होता है । अमृत मनुष्य को जीवन प्रदान करता है, जबकि विष जीवन का नाश करनेवाला होता है । इसी प्रकार एक ओर देवायत राजा (भावी राजा) का रक्षक बना है, जबकि दूसरी ओर उसका भाई राजा का भक्षक बनने के लिए तैयार हुआ है ।

बन्धुओं ! ईर्ष्या की आग और अविचारपूर्वक किया गया काम कैसे-कैसे अनर्थ का सृजन करता है ? देवायत के साथ तकरार होने से उसका भाई ईर्ष्याग्नि से जलने लगा और देवायत का कैसे नाश हो और स्वयं कैसे सुखी हो ? ऐसा उपाय वह ढूंढने लगा । बहुत-से विचार के अन्त में उसे एक उपाय सूझा - देवायत ने महीपाल राजा के कुंवर को घर में रखा है, इस बात की खबर अनंगपाल राजा को दूं । अतः देवायत का नाश होगा और मेरा काम बनेगा ।' ऐसा विचार करके देवायत का भाई जूनागढ गया और किसी भी प्रकार से अनंगपाल से मिलकर कहा - "बादशाह ! आप अंधेरे में क्यों बैठे हैं ? मैं आपका हितैषी हूँ । आपका हित सोचकर आपको एक समाचार देने के लिए आया हूँ ।" बादशाह बोला - "भाई शीघ्र कहो, ऐसा क्या समाचार है ?" तब उसने कहा - "आपके शत्रु महीपाल राजा का पुत्र नवघणकुमार बड़ा हो रहा है ।" सूबेदार ने पूछा - कहाँ है वह मेरा शत्रु ?" वह बोला - अलिदार बोडीदार का देवायत आहिर, जो मेरा सगाभाई है, उसके यहाँ गुप्त रूप से वह पल रहा है ।"

जूनागढ का सूबेदार तो बहुत ही ध्यान रखता था कि मेरे राज्य में महीपाल राजा का एक भी बच्चा न रहे । उसे पता लग जाए कि दुश्मन का पुत्र अपने राज्य की सीमा में पल रहा है, फिर क्या बाकी रहता ? सूबेदार ने कहा - "मैं तो मानता था कि शत्रु का पुत्र मर गया है, वह तो जिंदा है ।" आते हुए रोग और बढ़ते हुए शत्रु इन दोनों का शीघ्र ही नाश कर देना चाहिए । अतः सूबेदार के क्रोध का पार न रहा । सैनिकों को लेकर झटपट सूबेदार देवायत के घर पहुँचा । देवायत को इस बात की भनक लग गई थी कि

ननद के वचन सुनकर भाभी के जीवन में परिवर्तन आ गया। भाभी-ननद से गले लगकर मिली। बहन ने भाई को अपनी मिल में रख लिया। वापस पहले जैसे दिन आ गए! बन्धुओं! आप सबमें से इस प्रकार जो अपनी बहन को भूल गए हों, उसे याद करना, और जिनके बहन न हो तो समाज में जो निर्धन, निराधार व विधवा बहनें हों, उनके आंसू पोंछना और अपना जीवन सफल बनाना। विशेष भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ३६

श्रावण सुदी १५, सोमवार ता. ९-८-७६

रक्षाबन्धन का सन्देश

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों!

जगत् के त्रिविध ताप के हर्ता, डूबते हुए को तारनेवाले, श्रीजिनेश्वर भगवन्त मोक्ष का मार्ग बताते हुए कहते हैं - "हे भव्यजीवों! तुम अनन्तकाल से जड़ के संग चढ़कर तथा पर-भाव में पड़कर संसारचक्र में परिभ्रमण कर रहे हो। इस परिभ्रमण का अन्त लाना हो तो मन-वचन-काया के योग को धर्म (शुद्ध आत्मधर्म) में प्रवृत्त करो, क्योंकि मन-वचन-काया के तीन योग कर्मबन्ध करने के कारखाने हैं।" ये तीन योग एक-एक से बढ़ चढ़कर हैं। कारण यह है कि अकेली काया से थोड़े कर्म बंधते हैं। एकेन्द्रिय जीवों के तो एकमात्र काया ही है। (मन और वचन का योग नहीं है।) एकेन्द्रिय जीव अधिक से अधिक कर्म बांधे तो एक सागरोपम की स्थिति का बांधते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी-पंचेन्द्रिय जीवों के काया और वचन ये दो योग हैं। यदि वे जीव अधिक से अधिक कर्म बांधे तो एक हजार सागर की स्थिति का बांधते हैं और जिनके मनोयोग है, ऐसे संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव (नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव) अधिक से अधिक तीव्र रस से यदि कर्म बांधें तो ७० कोटाकोटी सागरोपम की स्थिति का बांधते हैं।

जैनेतर दर्शनों में भी बताया गया है - *'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः'* - मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है।' दुष्ट मन जीव को कर्मबन्ध कराता है, जबकि शुभ मन कर्मबन्धन से मुक्त कराने में सहायक होता है। किन्तु मोक्ष प्राप्त करने में तो कारणभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप है। यों तो मन-वचन-काया, ये तीनों योग संज्ञी मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच के भी होते हैं। विशेषतः यह मनुष्यभव जन्म-जरा-मरण की श्रृंखला तुड़वाकर मोक्ष के उच्च स्टेज पर आत्मा को ले जाने के लिए मिला है। अगर आत्मा सीधा सत्पुरुषार्थ करे तो मोक्ष का अनन्त सुख प्राप्त कर

और तुच्छ सुखों के मोह में मूढ़ बना हुआ जीव उन्हें उत्तम मानकर उनमें आसक्त हो जाता है।

देवानुप्रियों ! मोक्ष के सुख के आगे संसार के उत्तमोत्तम प्रकार के सुख भी तुच्छ हैं, क्योंकि संसार में मिलनेवाले सुख पौद्‌गलिक हैं और पौद्‌गलिक सुख नाशवान होते हैं, वे दिखने में अच्छे लगते हैं, किन्तु परिणाम में महादुःख देनेवाले होते हैं। जबकि मोक्ष का सुख आत्मिक सुख है। वह आठ कर्मों के सर्वथा क्षय से प्रकट होता है। मोक्ष सुख के एक बार प्रगट होने के बाद उसका कभी नाश नहीं होता और उसमें दुःख लेशमात्र भी नहीं होता। जिन आत्माओं को यह सत्य बात समझ में आ जाती हैं, उन्हें संसार में मिले हुए अच्छे से अच्छे सुख भी दुःखरूप लगते हैं। उनकी आन्तरिक इच्छा मोक्षसुख प्राप्त करने की होती है, इस कारण वे जीव संसार के सुखों में लुब्ध नहीं होते। जो जीव संसार के सुखों में लुब्ध हो जाते हैं, वे मोक्षसुख को प्राप्त नहीं कर सकते। मोह में मूढ बने हुए जीव अपने (आत्म) स्वरूप का विचार भी नहीं कर सकते।

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र' के आठवें अध्ययन में महाबल अनगार का वर्णन किया गया है। वह महाबल अनगार एक बड़े महाराजा थे। उनके ५०० रानियाँ थीं। भौतिक सुख भी अपार था। उन सबका मोह छोड़कर मोक्ष का सुख प्राप्त करने के लिए उन्होंने संयम अंगीकार किया। फूल हो, परन्तु उसमें सुगन्ध न हो तो उस फूल की कोई कीमत नहीं होती। इसी प्रकार संयम ग्रहण करने के बाद संयमी जीवन में विनय, नम्रता, क्षमा, सरलता, तप आदि गुण न हों तो उस संयमी जीवन की भी कीमत नहीं होती। महाबल अनगार के जीवन में संयम के साथ ये सब गुण थे। वे चारित्र की महक संयमी जीवन में सुशोभित हो रहे थे। वे बीस स्थानक की आराधना कर रहे थे। अरिहन्त, सिद्ध, प्रवचन, गुरु, स्थविर, बहुश्रुत और तपस्वी, इन सात बोलों (स्थानकों) पर पिछले व्याख्यानों में प्रकाश डाला गया, जिसे आप भलीभांति समझ चुके हैं। अब इनसे आगे के बोलों पर विचार करेंगे। बहुश्रुत (बहुसूत्री) संत को देखकर उनके गुणगान करें कि अहो भगवन् ! आपने कितना विपुल ज्ञान प्राप्त किया है ? ज्ञानप्राप्ति के लिए आपने कितना पुरुषार्थ किया है ? आप कितने गुणवान्, उदारदिल और महान् हैं कि प्राप्त ज्ञान दूसरों को भी प्रेमपूर्वक प्रदान करते हैं ?

किसी उग्र तपस्वी को देखकर उनके गुणगान करें कि अहा ! ये कितने महान् तपस्वी हैं ? मैं तो आहार छोड़ नहीं सकता, यह महान् आत्मा कर्मक्षय करने के लिए उग्र तपश्चर्या करके कैसी सुन्दर साधना कर रहे हैं ? यों तपस्वी के गुणगान करना और उनकी सेवा करनी !

अब जो आठवाँ स्थानक (बोल) कौन-सा है ? उस पर विचार करें **आठवाँ स्थानक है** - *'अभिक्खणं नाणोवओगे य ।'* उपर्युक्त महान् पुरुषों के ज्ञान में निरन्तर उपयोग करते रहना। भगवान् द्वारा उपदिष्ट (कथित) जो ज्ञान है, उस ज्ञान करने

दो दिनों से अरिहन्त और सिद्ध भगवान की बात चल रही है । अरिहन्त प्रभु का हम पर महान् उपकार है । उन्होंने हमें सिद्ध होने का मार्ग बताया है । ऐसे अरिहन्त प्रभु की वाणी के प्रति श्रद्धा रखनी और उनके प्रवचन का बहुमान करना । इस विषय में हम जो कुछ समझे हों, उसे दूसरे जीवों को समझाकर सद्धर्म के पथ पर मोड़ना, वीतराग-वाणी का बहुमान करना । इस प्रकार प्रवचन प्रभावना करनी और प्रवचन की प्रभावना करने में सहयोग देने से जीव तीर्थंकर-नामकर्म का उपार्जन करता है ।

चौथा बोल गुरु का है । सद्गुरुदेव भी हमारे अनन्त उपकारी हैं । वे संसार में भटकते हुए जीवों को आत्मा का भान कराकर कल्याण के मार्ग पर चढ़ा देते हैं । सद्गुरु भव-सागर पार करने (तिरने) के लिए जहाज हैं । जिन्हें भव-सागर पार करने की इच्छा होती है, वे मानव सद्गुरुरूपी जहाज में आकर बैठ जाते हैं । वे सद्गुरु कितने निःस्वार्थी हैं कि ऐसी लम्बी (मुक्तिपुरी जाने की) यात्रा मुफ्त में कराते हैं । तुमसे एक पाई का चार्ज (खर्च) नहीं मांगते । ऐसे सद्गुरु हमें तारते हैं । तुम्हें भवसागर तरना (पार करना) है न ? तो संतरूपी जहाज में आकर बैठ जाओ । इस जहाज में कोई बैठे या न बैठे, यह तो स्वयं तिरनेवाला है । वीतराग-प्रभु की आज्ञा में चलनेवाले पंचमहाव्रतधारी साधु-साध्वीगण भी *'तिन्नाणं तारयाणं'* हैं । वे स्वयं संसारसमुद्र तरते हैं और दूसरों को तारते हैं । वीतरागी संतों के पास जाकर यदि तुम दो घड़ी बैठोगे तो तुम्हारे समक्ष वे वैराग्य की बातें करेंगे । किन्तु सांसारिक-सम्बन्धी बातें नहीं करेंगे । स्त्री-कथा, भक्त-कथा, राज-कथा और देश-कथा, वे चार विक-थाएँ साधुवर्ग के लिए वर्जनीय हैं । वह धर्म-कथा अवश्य करेगा । धर्म-कथा करने से कर्मों की निर्जरा होती है और प्रवचन की प्रभावना भी होती है । प्रवचन की प्रभावना करने से जीव भविष्य में शुभ-कर्मों का बन्ध करता है । ऐसी (आत्म) धर्म की कथा सुनानेवाले तथा प्रवचन की प्रभावना करनेवाले और संसार के कीचड़ से बाहर निकालनेवाले धर्मगुरुओं का हम पर महान् उपकार है । विनयवान् शिष्य तो कोई भी कार्य करता है, उसमें अपने गुरु का उपकार मानता है । विनयी शिष्य के हृदय के उद्‌गार ऐसे ही निकलते हैं – जो कुछ भी होता है, उस सब में मेरे गुरु का उपकार है, उनकी कृपा का प्रभाव है । ये रहे विनयी शिष्य के उद्‌गार –

तमे मारा अनन्त उपकारी (२), गंदावनमां मारे माटे पावन केडी तमे पाडी ।
गुरुजी...गुरुजी...तमे मारा...।
आ दुनिया तो अंधारुं एक वन, किरणना क्यांये थाये ना दर्शन;
फांफा मारुं ज्यां त्यां अथडाउं, अंधा जेवुं करुं हुं वर्तन;
अनुकंपा जागी तमने, साची दिशा मने सुझाडी...गुरुजी...गुरुजी...तमे मारा...॥

हे गुरुदेव ! इस संसाररूपी गंदे वन में से आप मुझे कल्याण की पावन पगडंडी पर लाए । अज्ञानरूपी अमावस्या के घोर अन्धकार को मेरे जीवन में से मिटा करके आपने ज्ञानरूपी सर्चलाइट का प्रकाश फैलाया । ऐसे हे गुरुदेव ! आप मेरे अनन्त उपकारी

से आत्मा पाप के कचरे से मलिन होती है। पैसे के लिए चाहे जितना पाप करो, पर क्या पैसा परलोक में तुम्हारे साथ आएगा ? पैसा तो तुम्हारे साथ नहीं जाएगा, परन्तु मृत्यु तो एक दिन जरूर आनेवाली है, यह बात निश्चित है। फिर भी मनुष्य भान भूलकर रात-दिन पाप करता रहता है। अगर वह अपनी दृष्टि के समक्ष मृत्यु को हर समय रखे तो पापकर्म करते हुए रुक सकता है। इस विषय को एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ -

एकनाथजी का दृष्टांत : एक सेठ ने बहुत ही श्याह-सफेद करके करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति इकट्ठी की। इस सेठ को धन कमाने के नशे में खाने-पीने, सोने-जागने, चलने-फिरने। अच्छे कपड़े पहनने अथवा भोगविलास की कोई परवाह नहीं थी। अपने शरीर के प्रति भी कोई खास ममत्व नहीं था। उसे तो एक मात्र धन-सम्पति एकत्रित करने की मोह-ममता थी। पैसे के लिए चाहे जैसा पाप करना पड़े, वह करता था। वह धन का ढेर देख-देखकर हर्षित होता था। एक दिन एक सज्जन मनुष्य ने सेठ से कहा - "सेठ ! तुम स्वयं पैसे इकट्ठे कर सुख नहीं भोगते, फिर भी पाप करके पैसे इकट्ठे करते जा रहे हो ? परलोक में तुम्हारा क्या हाल होगा ? पाप के कटुफल भोगने के लिए जब दुर्गति में जाओगे, तब ये पैसे के ढेर तुम्हें कड़वे फल भोगने से बचाएँगे क्या ?" मगर जो मानव पैसे को ही अपना सर्वस्व मानता है, उसे यह सच्ची बात समझ में नहीं आती। आज दुनिया में अधिकांश लोग पैसे के पूजारी हैं। पैसा मिल जाए तो उन्हें दूसरी कोई बात या व्यक्ति या परिस्थिति याद नहीं आती ? मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हें पैसा प्रिय है या संसारसागर से तिरने का मार्ग बतानेवाले गुरु प्रिय हैं ? बोलो, तुम्हें कौन प्रिय है ? (श्रोताओं में से आवाज आई - गुरु) यह जवाब जीभ से दे रहे हो, या हृदय से ? मगर किसी भी उपाय से पैसा मिलता हो तो गुरु को भूल जाते हो न ? (हँसाहँस)

सेठ ने कहा - "इस दुनिया में किसको पैसे पर ममत्व नहीं है ? और पाप किये बिना कौन जी सकता है ?" यह सुनकर उस सज्जन मनुष्य ने कहा - "चलिए मैं आपको एक पवित्र संत के पास ले चलता हूँ। वह आपको भलीभांति समझायेंगे।" उस गाँव में एक पवित्र संत रहते थे। उनका नाम था "एकनाथ'। संत एकनाथ पवित्र और निष्पाप जीवन जीते थे। सेठ को वह सज्जन एकनाथ के पास लाए। संत को वन्दन करके सेठ उनके पास बैठे। संत से उन्होंने पूछा - "आपकी इच्छा हो तो एक प्रश्न पूछूँ।" संत ने कहा - "खुशी से पूछो।" अतः सेठ ने पूछा - "महाराज ! आप इस दुःख से भरे संसार में रहकर कैसे निष्पाप जीवन बिताते हैं, यह मुझे समझ में नहीं आता।" एकनाथ ने कहा - "यह बात मैं आपको बाद में समझाऊँगा। यह बात अभी स्थगित रखो। परन्तु मुझे ज्योतिषविद्या का अच्छा ज्ञान है। तो आपके भाग्य में भविष्य में कैसा सुख है ? आपका भविष्य कैसा है ? अपना हाथ बताएँ तो मैं आपको भविष्य देख दूँ।" यह सुनकर सेठ बहुत खुश हो गए और महाराज के हाथ में अपना हाथ रखा।

महाराज ने सेठ की हस्तरेखा देखकर कहा - "सेठजी ! आपका आयुष्य तो बहुत थोड़ा है। आज से एक महीने में आपकी मृत्यु होने की सम्भावना है।" यह सुनते ही

में डूल (डूब) जाएगा । भरत चक्रवर्ती संसार में रहते हुए भी 'स्व' को भूले नहीं थे । परिणामस्वरूप शीशमहल में उन्हें भाव-चारित्र आ गया और चार घातिकर्मों पर प्रहार करके केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया । तदनन्तर द्रव्य-चारित्र अंगीकार किया । कहने का आशय यह है कि आत्मरमणता करके ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी रत्नत्रय प्राप्त किये ।

'क्षा' : 'क्षा' से भगवान की प्रेरणा है : "जीव ! तू क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर। सम्यक्त्व पाँच प्रकार के हैं, उनमें क्षायिक सम्यक्त्व सर्वश्रेष्ठ हैं । क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व आने के बाद कभी जाता नहीं । वह सदाकाल स्थायी होता है । इस सम्यक्त्व के आने के बाद केवलज्ञान और मोक्ष की शाश्वत सिद्धि प्राप्त हो जाती है । हाँ, क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति से पहले यदि आयुष्य का बंध पड़ गया हो तो जिस गति का बन्ध पड़ा हो उस गति में जाना पड़ता है । बाकी तो क्षायिक सम्यक्त्वी जीव उसी भव में मोक्ष जाता है और आयुष्य का बंध पड़ने के बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हुआ हो तो तीसरे भव में मोक्ष जाता है ।

'बं' : 'बं' का अर्थ है : बंगला । आप जिसमें निवास करते हैं, वह आपका बंगला आपको क्या प्रेरणा देता है ? मानो, वह कहता है – हे जीवो ! मैं ईंट, चूना और मिट्टी का बना हुआ टूटा-फूटा मकान हूँ । परन्तु जो मनुष्य आकर मुझ में निवास करते हैं, उनका मैं बाहर की वर्षा, तूफान, अन्धड़, शर्दी-गर्मी, चोर, बदमाश आदि उपाधियों से बचाकर उनकी रक्षा करता हूँ और बाह्य शान्ति प्रदान करता हूँ । बन्धुओं ! बंगला तो जड़ है नाशवान् है, फिर भी इतना करता है, तब यदि हम अपने शाश्वत घर में वास करें तो असीम, अवर्णनीय और अलौकिक सुख प्राप्त कर सकते हैं । अतः हमें मोक्षरूपी शाश्वत बंगले को प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए ।

'ध' : 'ध' का अर्थ है – धर्म में तत्परता । यह पृथ्वी जिसकी शय्या है, आकाश जिसकी चादर है, दिशाएँ जिसका वस्त्र हैं, ऐसे निराधार और निर्धन मनुष्य की अपेक्षा तुम्हारे पास तो बहुत साधन और सम्पदा है । तुम सुखपूर्वक खा-पीकर मौज कर सको; इतना तो तुम्हें मिला है । यह सोचो कि यह सब किसके प्रताप से मिला है ? पुण्य से न ? तो विचार करो कि पुण्य किसके द्वारा उपार्जित किया गया ? धर्म से (शुद्ध आत्म धर्म से) । अतः जो धर्म लौकिक सुख प्रदान कर अन्त में लोकोत्तर – शाश्वत सुख दिलाता है, उस धर्म को कभी भुलाया जा सकता है ? धर्म तो आत्मा का सच्चा बन्धु है, मित्र है । वह सुख और दुःख में सदैव साथ रहनेवाला साथी है । तुम सुख में और दुःख में शान्ति से जी सकते हो, तो यह धर्म का प्रताप है, प्रभाव है । इसलिए तुम्हें चाहे जितना भौतिक-पौद्गलिक सुख मिले [illegible] न होकर [illegible] में दीन न होकर, सुख और दुःख के समय सदा धर्म में [illegible] ।

'न' : 'न' का अर्थ है : [illegible] में [illegible] । जैसे सिग्नल चालू [illegible] हुआ डाउन) हो तो गाड़ी [illegible] नहीं [illegible] ही [illegible] जीवन

जैसे कैंसर का नाम सुनते ही कैंसर-रोगी को कंपकम्पी छूट जाती है, वैसे ही उक्त सेठ मौत का नाम सुनते ही कांप उठा। जैसे कैंसर का रोग इतना भयंकर है कि इसका नाम सुनते ही मनुष्य कांप उठता है, वह सोचने लगता है, मुझे कैंसर हो गया, अब मैं दुनिया से जल्दी ही चला जाऊँगा, मेरी मृत्यु अब निकट ही है। ऐसे विचार से उसका होश-हवास गुम हो जाता है। मृत्यु के भय से जैसे मनुष्य कांप उठता है, वैसे ही पाप करते समय कांप उठे तो उसका जीवन सुधर जाय। कैंसर का रोगी विचार करता है कि मुझे कैंसर हो गया, इसलिए मेरी मृत्यु अब निकट है, वैसे ही जिसे अठारह पापस्थान का कैंसर हो गया, उसे दुर्गति में अवश्य जाना पड़ता है, जीव को यह समझ में आ जाए तो वह पाप करने से पीछे हट (रुक) सकता है।

उक्त सेठ तो मृत्यु का नाम सुनते ही कांप उठे हैं। न तो वह खाते-पीते हैं, ना ही दुकान में जाते हैं, उसे मृत्यु के सिवाय और कुछ नहीं दिखता। वह तो हाथ में माला लेकर राम-राम का जाप करता है और प्रार्थना करता है - "हे भगवान् ! मेरा क्या होगा ?" इस प्रकार भगवान् के नाम-स्मरण में उक्त सेठ के २८ दिवस पूरे हो गए। उनतीसवें दिन एकनाथजी महाराज सेठ के पास आए। देखा कि सेठ पलंग में सोये-सोये 'हे राम, हे राम !' यों भगवान् का नाम-स्मरण कर रहे थे। महाराज ने पूछा - "सेठजी ! कैसे हो ?" तब सेठ ने कहा - "महाराज ! अब तो मैं जाने की तैयारी में हूँ। चौवीस घंटे का मेहमान हूँ।" इस पर महाराज ने पूछा - "सेठजी ! यह तो बताइए कि इन २८ दिनों में आपने कितने पाप किये ? कितना झूठ बोले ? छल-प्रपंच करके कितने लोगों को ठगा ?" सेठ नम्र स्वर में बोले - "महाराज ! मेरे मस्तक पर तो मौत की तलवार लटक रही थी, मौत मेरे साथ झझूम रही हो, तब पापकर्म करना सूझता है क्या ? इन २८ दिनों में मैंने छल-प्रपंच, असत्य, ठगी, धोखाधड़ी, बेईमानी आदि एक भी पाप नहीं किया और तो और मैंने अपना व्यापार-धंधा भी नहीं किया, खाया-पीया भी नहीं। इन २८ दिवसों में मैंने एकमात्र राम का नाम लिया है। दूसरा कोई भी काम नहीं किया।"

इस पर संत एकनाथ ने कहा - "सेठजी ! मेरे विषय में भी आप ऐसे ही समझिए। मैं सदैव रात-दिन मौत को अपने मस्तक पर बैठी देखता हूँ। तब फिर मेरे से पाप हो सकता है क्या ? परन्तु सेठजी ! आपका हाथ दिखाइए तो जरा ! शायद मेरी भूल हो गई हो !" महाराज ने सेठ की हस्तरेखाएँ देखकर कहा - "सेठजी ! आपकी हस्तरेखा देखने में मेरी भूल हो गई है। अभी तो आपकी आयु बहुत लम्बी है। परन्तु आपने २९ दिवस तक मृत्यु को नजर समक्ष रखी तो कितने पापों से आप बच गए ? अब आप इसी तरह जीवन जीना।" सेठ एकनाथ संत के कहने का आशय समझ गए। वास्तव में मेरी मृत्यु एक महीने में होनेवाली नहीं थी, किन्तु मेरा जीवन सुधारने और मुझे पाप से बचाने के लिए महाराज ने ऐसा कहा। अब सेठ अच्छी तरह समझ गए और पवित्र जीवन बिताने लगे। उनका लक्ष्मी के प्रति मोह-ममत्व का नशा उतर गया। वास्तव में, मृत्यु प्रतिक्षण दृष्टि समक्ष रहे तो मनुष्य पापरहित जीवन जी सकता है। 'मैंने

या ईर्ष्याभाव नहीं था। किन्तु राजा उसका बहुत सम्मान करते थे, इस कारण दूसरी रानियों में सोनलदेवी रानी के प्रति ईर्ष्या रहती थी।

महीपाल राजा के तीन रानियाँ थी, परन्तु उनमें से एक के भी अभी तक कोई संतान नहीं थी। राजगद्दी का कोई उत्तराधिकारी न होने से राजा बहुत ही चिन्तित रहते थे। राजा सन्तान के लिए प्रभु से प्रार्थना करते रहते थे। समय बीतते रानी सोनलदेवी गर्भवती हुई। नव मास पूर्ण होने पर रानी ने पुत्र को जन्म दिया। दासी हर्षित होकर राजा को पुत्रजन्म की बधाई देने गई। राजा ने उसे इनाम देकर निहाल कर दी। फिर कुटुम्बीजनों को बुलाकर कहा - "मंगलगीत गवाओ और मंगलवाद्य बजवाओ। बंदीजनों को कारागार से मुक्त करो, समग्र राज्य में दस दिन तक कर माफ करो, भूखे लोगों को भोजन दो। सारा नगर ध्वजा-पताकाओं से सजाओ। दस दिवस तक पुत्र-जन्मोत्सव मनाओ।" यह समाचार वायुवेग से सारे जूनागढ़ में पहुँच गए। घर-घर में आनन्द-मंगल छा गया। नागरिकजन खुशी मनाने लगे। वे राजमहल में आकर अपनी ओर से अच्छी-अच्छी भेंट देने लगे। इस प्रकार कुंवर का जन्म-महोत्सव आनन्दपूर्वक मनाया गया।

एक दफा ऐसा हुआ कि दिल्ली के सम्राट अनंगपाल तुवर की माता तीर्थयात्रा करने निकली। यात्रा करती-करती वह जूनागढ आई। उसने सोचा कि आई हूँ तो जूनागढ़ की यात्रा भी करती जाऊँ। अतः वह जूनागढ उतरी। उस समय वहाँ यात्रियों से कर (टेक्स) लेने का रिवाज था। अनंगपाल तुवर उस समय में बड़ा सम्राट माना जाता था। उनकी माता से कर लेना, उनका अपमान करने जैसा था। परन्तु जूनागढ राजा के आदमियों ने अनंगपाल की माता से कहा - "कर दिये बिना यहाँ की यात्रा नहीं हो सकती।" अनंगपाल की माता ने कहा - "मैं राजमाता हूँ। मेरा पुत्र दिल्ली का बड़ा सम्राट है। मैं कर नहीं दूंगी।" यद्यपि इस समय में कर्मचारियों ने राजा से पूछा होता तो शायद इतना विरोध (तकरार) न होता। किसी कर्मचारी ने इस विषय में राजा से बात नहीं की और कर देने के लिए उन पर दबाव डाला। राजमाता ने सोचा - 'मैं बड़े सम्राट की माता! इसका राज्य हमारे राज्य के सामने तो बच्चा है, फिर मेरे से टेक्स लेने की इतना अधिक आग्रह! मैं किस बात का टेक्स दूं?' उसे लगा कि यह मेरा सरासर अपमान किया जा रहा है। राजमाता को यह बहुत बुरा लगा और वह यात्रा किये बिना ही वापस लौट गई। दिल्ली आकर किये गए अपने अपमान का बदला लेने के लिए अनंगपाल को प्रेरणा दी! माता की बात सुनकर अनंगपाल के क्रोध का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। 'मेरे राज्य के सामने यह राज्य तो बच्चे जैसा है। यह महीपाल अपने मन में क्या समझता है? इसे अपना पराक्रम बता दूं! इसने मेरी माता का ऐसा अपमान किया!' अपमान का बदला लेने के लिए किसी प्रकार की पूर्वसूचना किये बिना अनंगपाल ने बड़ी सेना लेकर एकाएक जूनागढ़ पर चढाई कर दी। जूनागढ के चारों ओर घेरा डाल दिया।

मनुष्य को पहले पता लग जाए तो वह सावधान हो जाता है, परन्तु यह हमला तो अचानक हुआ। महीपाल को खबर मिली कि अनंगपाल की प्रबल सेना जूनागढ पर चढ़

हेतु अपना सारा पैर काटकर तराजू के पलड़े पर रख दिया । अब दोनों पलड़े बराबर गए । शरणागत की रक्षा के नियम की उनकी दृढ़ता देखकर देव उनके चरणों में गिर ा, क्षमा मांगी । पैर जैसे थे, वैसे पुनः ठीक हो गए । पूर्वकालिक महापुरुष प्राण ाग देते थे, किन्तु प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते थे ।

देवायत प्राण देकर भी नवघणकुमार का रक्षण करने हेतु तैयार हो गया । सूबेदार उस पर बहुत गुस्सा आया, उसने देवायत को जूनागढ के कैदखाने में बंद कर या । सूबेदार रोज वहाँ आकर देवायत से नवघण के बारे में पूछताछ करता था, परन्तु ायत उसे कोई जवाब नहीं देता था, इस कारण सूबेदार क्रुद्ध होकर उसकी नंगी ठ पर चाबुक का प्रहार करा कर ऊपर से नमक का पानी छिड़कवाता था । इस प्रकार तिदिन उसकी पीठ पर सख्ती से प्रहार किया जाता और उससे सख्त मजदूरी कराई ती । उसकी पीठ से रक्त की धाराएँ फूटती थीं । ज्यों-ज्यों दिवस बीतते गए, ों-त्यों देवायत को अधिक से अधिक कष्ट दिया जाने लगा । फिर भी देवायत अपने ा पर अडिग था, वह एक इंच भी इधर-उधर नहीं होता था । प्रतिदिन मार पड़ने से के शरीर में असह्य पीड़ा होने लगी । अपने प्राण रहें या न रहें उसकी उसे परवाह नहीं , उसे एकमात्र चिन्ता थी नवघण के प्राण बचाये रखने, उसे जीवित रखने की । अन्त सूबेदार ने देवायत के पैर के टखने में सार (छेद करनेवाली एक औजार) ठुकवा । सार से उनके टखने की हड्डी बींध डाली । इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि को कैसी असह्य पीड़ा हुई होगी ?

परन्तु परोपकारी पुरुष प्राणान्त होने तक भी अपनी परोपकार भावना का त्याग नहीं ते । देवायत के पैर के टखने की हड्डी पर सार को आरपार करने पर उन्हें असह्य वेदना ने लगी । इसलिए उन्होंने सूबेदार से कहा - "आप मुझे इतना कष्ट मत दीजिए । झ से इतना कष्ट सहा नहीं जाता । मैं नवघण को आपके पास मंगवा देता हूँ ।"

यह सुनकर सूबेदार खुश हो गया । देवायत ने दुःख से घबराकर ये उद्गार नहीं काले, किन्तु नवघण को जीवित रखने हेतु यह युक्ति खोजी थी । देवायत ने अपनी नी पर एक पत्र लिखकर दे दिया । सूबेदार के आदमी उस पत्र को लेकर देवायत की नी के पास पहुँचे । देवायत ने पत्र में लिखा था - "अब मुझ से यहाँ दिया जानेवाला ख सहन नहीं होता, अतः **तू 'रा' को रखकर बात करना और नवघण को यहाँ ल्दी भेज देना ।"** देवायत का पत्र पढ़नेवाला, यों समझ गया कि नवघण को भेजने ी पत्र में लिखा है, परन्तु उसका गूढ़ आशय कोई समझ नहीं सकता था । देवायत की ली ने पति के हाथ का लिखा पत्र पढ़ा तो वह चतुरनारी पति के पत्र में लिखी बात ा आशय तुरंत समझ गई । उसने नवघण को तो छिपा दिया था । अपने पुत्र 'उगा' ी अंदर ले गई । सूबेदार के आदमियों से उसने कहा - "मैं थोड़ी-सी देर में नवघण ो तुम्हें सौंप देती हूँ । जहाँ मेरा पति जेल में इतना दुःख सहता हो, वहाँ मैं राजकुमार

कहा - "बहन ! तू जरा भी चिन्ता मत करना । इसका रक्षण एवं पालन-पोषण करना मेरे हाथ की बात है । मैं प्राण-प्रण से इसका रक्षण एवं पालन-पोषण करूँगा । राज्य का यह एक बीज सहीसलामत जीवित रहेगा तो भविष्य में हमे मुस्लिम राज्य के सिकंजे से छुड़ाएगा । अब तू भोजन करके यहाँ से शीघ्र चली जा । तुझे कोई देख लेगा तो उसके मन में वहम पड़ेगा ।" फिर देवायत ने अपनी पत्नी के समक्ष बालक को सौंपते हुए सारी बात कही । वह मातृवत्सला आहीर पत्नी भी बहुत गंभीर थी । गम्भीर व्यक्ति ही ऐसा गुप्त और दया का गुप्त सत्कार्य कर सकता है । देवायत आहीर के एक पुत्र और एक पुत्री थी । पुत्र का नाम था - ऊगो और पुत्री का नाम था - जाहल । ऊगो ढाई वर्ष का था और जाहल छह महीने की थी । नवघण और जाहल दोनों समान वय वाले थे। जाहल की माता जाहल को स्तनपान कराना बंद करके नवघण को स्तनपान कराने लगी । अपनी पुत्री को बाहर का दूध पिलाकर पालने लगी । इकलौती प्रीतिपात्र पुत्री को स्तनपान छुड़ाकर वात्सल्य भाव से नवघणकुमार को स्तनपान कराती है । आखिर तो नवघणकुमार राजकुमार था । बचपन से ही उसकी शूरवीरता की परख हो जाती है । जब वह दो वर्ष का था, तब बाहर खेलने जाता तो लकड़ी की तलवार बनाकर दूसरे लड़कों के साथ प्रेम से लड़ने का खेल खेलता था । वह इस खेल में कहता - "मैं राजा हूँ । मैं जीत गया" यों खेल खेलता था । देवायत ने उसे पढाने के लिए एक वृद्ध और गम्भीर ब्राह्मण को रखा । उसके साथ-साथ ऊगो और जाहल भी अभ्यास करते थे । इन तीनों में नवघण की बुद्धि तो विलक्षण थी । गुरु उसे जितना पढ़ाते थे उतना उसे तुरंत याद हो जाता । बार-बार घोखने की जरूरत नहीं पड़ती । नवघण, ऊगो और जाहल ये तीनों सगे भाई-बहनों की तरह रहते थे । परन्तु 'नवघण' तो कहीं छिपा नहीं रहता था । कहावत है - **'कर्म छिपे नहीं, भभूत लगाये ।'**

यद्यपि नवघण को आहीर के ग्रामीण जैसे कपड़े पहनाए जाते थे, फिर भी उसके ललाट पर से प्रतीत होता था कि आहीर के बालवेश में यह कोई राजकुमार है । जैसे चन्द्रमा और सूरज बादलों में छिपे नहीं रहते, वैसे ही यह नवघणकुमार भी छिपा नहीं रहता । बड़ा होने पर वह जंगल में जाने लगा । जंगल में यदि किसी सिंह को देखता तो सिंह के साथ भिड़ जाता । आजतक गुप्त रखा हुआ रत्न अब प्रकाश में आने लगा, अतः देवायत को चिन्ता होने लगी । नवघण को वह घर में ही गुप्त रखना चाहता था, परन्तु उसे स्वयं को अब घर में बंद होकर रहना अच्छा नहीं लगता था । घोड़े पर बैठना और जंगल में जाकर बाघ-सिंह से भिड़ना, ऐसी-ऐसी उसकी साहसभरी जिज्ञासाएँ बढ़ने लगीं । कभी-कभी देवायत की नजर बचाकर वह अकेला ही जंगल में चला जाता और ऐसे-ऐसे साहसभरे पराक्रम करता था । यद्यपि नवघण का देवायत के यहाँ अत्यन्त लाड-प्यार से पालन-पोषण हो रहा था । देवायत को भी अपने भावी राजा की रक्षा करने का मौका मिला, इसकी भी बहुत प्रसन्नता थी । परन्तु यह कहीं छीपा नहीं रह सकता,

चल पड़ा। देवायत की पत्नी ने भी यह मेरा पुत्र नहीं, अपितु नवघण है, ऐसी प्रतीति सूबेदार के आदमियों को हो, ऐसे उद्‌गार निकाले। आनेवाले मनुष्यों को भी प्रतीति हो गई कि यह नवघणकुमार ही है।

नवघण के वेश में उगा को लेकर सूबेदार के कर्मचारी जूनागढ पहुँच गए। देवायत को खबर मिली कि सूबेदार के आदमी 'रा'नवघण को लेकर आ गए हैं। यह सुनते ही देवायत के मन में शंका होने लगी कि 'मेरी पत्नी स्त्री जाति है। एक ही पुत्र है। तो कहीं पुत्र के मोह में पड़कर नवघण को तो नहीं भेज दिया ? ऐसा हुआ है, तब तो मेरी की-कराई सारी मेहनत व्यर्थ जाएगी ?' किन्तु दूसरे ही क्षण विचार आया - 'नहीं, नहीं, मेरी पत्नी पुत्र के मिथ्या मोह में पड़े, ऐसी नहीं है। वह सच्ची क्षत्रियाणी है। पुत्र के प्रति प्रेम को तिलांजलि देकर उसने अवश्य ही उगा को भेजा होगा।' थोड़ी देर बाद सूबेदार ने देवायत को भरी सभा में बुलाया। वहाँ नवघण के वेश में अपने पुत्र उगा को देखा। इससे उसे आनन्द हुआ। पिता-पुत्र की दृष्टि मिली। दोनों ने आँखों के इशारे से बात करके आनन्द माना। देवायत के मुख पर मानो आनन्द की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। सूबेदार ने पूछा - "यह नवघण ही है न ?" देवायत ने कहा - "जी हाँ, यह नवघण है।" सूबेदार ने तुरंत ही क्रोध से दांत कचकचाकर तलवार के एक झटके से नवघण के रूप में रहे हुए उगा का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। अपनी आँखों के समक्ष अपने पुत्र की हत्या हो, फिर भी मुख पर जरा-सी भी ग्लानि न आने देनी, जरा-सी भी धक्का मन पर नहीं आने देना, यह कोई मामूली बात नहीं थी। सूबेदार के कर्मचारी देवायत के सामने अनिमेष दृष्टि से टकटकी लगाकर बैठे थे। यदि देवायत को जरा-सा भी धक्का लगता देखते तो वे उसकी पोल पकड़ लेते। देवायत की नजर के सामने सूबेदार उगा का मस्तक तलवार से काटकर मन ही मन हर्षित हुआ और छुटकारे का उद्‌गार निकालते हुए कहा - "दुश्मन का पुत्र मर गया, अब मुझे किसी का डर नहीं है।"

ईर्ष्या ने बरसाया काला कहर : देवायत का भाई बहुत ही ईर्ष्यालु था। इतना बुरा करने पर भी देवायत के प्रति उसका वैर वसूल नहीं हुआ। इसलिए उसने सूबेदार से कहा - "साहब ! देवायत की पत्नी यानी मेरी भाभी, आकर तलवार की नोक से स्वयं नवघण की आँखों की कीकी बाहर निकालकर तथा आँख में सुरमा आंजकर, पैर में जूते पहनकर उससे नवघण की आँखें पैर के नीचे रखकर कुचले तो समझना कि यह नवघण है। यदि ऐसा न करे तो समझना - यह देवायत का पुत्र है।" सूबेदार ने तुरंत कर्मचारियों को भेजकर देवायत की पत्नी को बुलाकर कहा - "यदि सचमुच यह नवघण हो तो तुम आँखों में सुरमा आंजकर, पैर में जूते पहनकर उसके मस्तक पर खड़े रहकर उसके आँखों की कीकी तलवार की नोक से निकाल अपने पैरों से उसे कुचल डालो, तभी मैं समझूँगा कि यह नवघणकुमार ही है। किन्तु मुझे शंका है कि यह नवघण के बदले तेरा-ही पुत्र है।"

मेरा भाई जूनागढ पहुँच गया है। बुद्धिशाली मनुष्य इशारे में समझ जाते हैं। अतः देवायत ने नवघण को छिपा दिया था। सूबेदार ने सत्तावाही स्वर में कहा - "देवायत ! मुझे *पता लग गया है, कि तेरे घर में नवघणकुमार हैं।"* देवायत बोला - "साहब ! क्या मैं आपके शत्रु को भला कभी घर में रख सकता हूँ ? वह तो आपका दुश्मन कहलाता है। जो व्यक्ति दुश्मन को घर में रखता है, वह राजद्रोही कहलाता है ! मुझे जीवन का खतरा उठाकर दुश्मन को घर में रखने की क्या जरूरत पड़ी ?" सूबेदार ने कहा - "तू झूठ बोल रहा है। नवघण तेरे घर में है। मुझे जल्दी से जल्दी उसे सौंप दे।" देवायत बोला - "साहब ! है ही नहीं तो मैं कहाँ से दूं ?" इस पर सूबेदार ने उसे कहा : "देवायत ! अगर तू नवघण को मुझे सौंप देगा, तो मैं यह सारा गीराश तुझे दे दूंगा। तू कहेगा, वैसे ही होगा। राज्य में तेरा मान-मर्तबा बढ़ जाएगा। यदि तुझे इतने से सन्तोष न हो तो तू अपनी जबान से जो मांगेगा, उसे देने को मैं तैयार हूँ। पर तू अपनी हठ छोड़ दे और सहज में मिलनेवाले इस लाभ को मत छोड़ ! कदाचित् तू इसे पाल-पोषकर बड़ा कर देगा, तो भी उसकी ताकत नहीं कि वह जूनागढ का राज्य ले सके। तेरी पत्नी और लड़के की जिंदगी भी जोखिम में है। तुझे भी भयंकर दुःख भोगने पड़ेंगे।" सूबेदार के द्वारा दिये गए लोभ और धमकी का देवायत पर कोई असर नहीं हुआ। उसने कह दिया - "साहब ! यह गिर तो क्या जूनागढ का राज्य दे दें तो भी मेरे यहाँ कुंवर है ही नहीं, तो मैं कहाँ से दूं ? इस पर सूबेदार को बहुत गुस्सा हुआ, उसने उस पर राजद्रोही का आरोप लगाकर उसे कैद किया गया और जूनागढ ले जाया गया। वहाँ एक कैदी के रूप में कारागार में बंद किया गया। अब कैद में सूबेदार देवायत को कैसे-कैसे कष्ट देगा ? उस पर वह बहुत जुल्म ठहाएगा, फिर भी देवायत शरणागत का रक्षण करने में कैसा अडोल रहेगा। इसका भाव यथासर कहा जाएगा।

व्याख्यान - ३७

श्रावण वदी १, मंगलवार — ता. १०-८-७६

स्वाध्याय की सफलता : दर्शनविशुद्धि में

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकाल से संसार में भटकता हुआ जीव अनेक प्रकार के दुःख भोग रहा है। यद्यपि दुःख किसी को अच्छा नहीं लगता, फिर भी दुःख आता है और उसे भोगना पड़ता है। दुःख का कारण है - जीव के द्वारा इन्द्रियों की गुलामी। इन्द्रियों के वशीभूत होने से जीव हित-अहित, लाभ-हानि, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विचार नहीं कर सकता

देवायत के मुख पर आज किसी अलौकिक आनन्द की आभा चमक रही थी। उसे ऐसा लगता था, मानो अब अपना समस्त दुःख दूर हो गया और सुख का सूर्योदय हुआ हो। जब रात को गाँव के सभी लोग निद्राधीन हो गए, तब आधीरात के करीब देवायत, उसकी पत्नी और नवघण तथा जाहल, ये चारों वाड़े में गए और उस खड्डे में उतरकर वह शिला उठाई तो उसके नीचे स्वर्ण-मुद्राओं से भरा हुआ एक चरु निकला। सबने मिलकर उस चरु को घर में एक खास जगह में रख दिया। वह खड्डा मिट्टी डालकर वापस भर दिया। देवायत की पत्नी पति के आनन्द का कारण समझ गई। उसे लगा कि अब नवघण का भाग्य खुल गया, क्योंकि राजा बनने के लिए जिस धन या खजाने की जरूरत होती है, वह अनायास ही मिल गया था।

दूसरी ओर किले में नियुक्त उन आहीरों का काम देखकर किले का रक्षक सन्तुष्ट था, वह जब देवायत से मिलता था, तब इन आहीरों की प्रशंसा करता था। इस पर देवायत ने कहा - "ये तो गरीब लोग हैं। इनकी अपेक्षा भी उत्साही और निष्ठावान एवं सशक्त आहीर गीर प्रदेश में बहुत हैं। तुम्हें जरूरत हो तो उन्हें भेजूं।" किला-रक्षक ने स्वीकृति दी तो दूसरे चार आहीरों को भेजे। उन्होंने भी वफादारी और चतुराई से किला - रक्षक को सन्तुष्ट किया। अतः किला-रक्षक उनके अतिरिक्त अहीरों की मांग करने लगा। तब देवायत थोड़े-थोड़े आहीरों को भेजता रहा। यों एक वर्ष में तो जूनागढ के रक्षण-विभाग के काम में आहीरों का समूह बढ़ गया।

अब जाहल के विवाह और नवघण को राज्य दिलाने की सर्वाधिक चिन्ता देवायत को थी। अतः सब कार्य छोड़कर इन दोनों की तैयारी की। सूबेदार से देवायत ने उनके लिए योग्य साधनों की मांग की। अब आगे क्या होता है? इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ३८

श्रावण वदी २, बुधवार | ता. ११-८-७६

वीतरागवाणी से साधकजीवन का विकास

सुज्ञ बन्धुओं, सुशील माताओं और बहनों!

आज जगत् के जीव आधि, व्याधि और उपाधि रूप त्रिविध ताप की भट्ठी में प्रज्वलित हो रहे हैं। आधि का स्थान मन में है, व्याधि का स्थान शरीर है और उपाधि का स्थान है - बाहर के पौद्गलिक पदार्थ तथा घर, कुटुम्ब और परिवार आदि में है। इन त्रिविध तापों से संतप्त जीवों को संसार में कोई शीतलता देनेवाला हो तो वह है - वीतराग-

मनुष्य कर्म क्षय कर सकता है। इस प्रकार ज्ञान में बार-बार उपयोग लगाने से ज्ञानवृद्धि होती है और उत्कृष्ट रसायन आए तो तीर्थंकर-नामकर्म का भी बंध हो जाता है।

अब नौवां बोल है - **दर्शन विशुद्धि।** भगवान् कहते हैं - "साधक का दर्शन, दृष्टि, श्रद्धा या तत्त्वज्ञान विशुद्ध, स्पष्ट और सम्यक् होना चाहिए।" दर्शन की विशुद्धि होने से जीव को कितना महान् लाभ होता है? इसके लिए देखिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' का पाठ-

*"...दंसण-विसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झई, विसोहीए णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥"**

दर्शन विशुद्धि से विशुद्ध होने के बाद कोई तो उसी भव में सिद्ध हो जाता है। जो साधक इस भव में सिद्ध नहीं होते, वे विशुद्ध हुए साधक तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते। अर्थात् - वे तीसरे भव में तो अवश्य सिद्ध (मुक्त) हो जाते हैं। जब मिथ्यात्व हट जाता है, तब सम्यक्त्व-रत्न की प्राप्ति होती है। जबतक आत्मा में गाढ़ मिथ्यात्व की मलिनता होती है, वहाँ तक सम्यग्ज्ञान का प्रकाश नहीं मिलता। जब वीतराग-परमात्मा के वचनों पर जीव को दृढ़ श्रद्धा होती है, तब सम्यक्त्व प्राप्त होता है और मिथ्यात्व की मलिनता दूर हो जाती है। जब बरसात बहुत होती है, तब पानी गंदला आता है, इसके कारण उसमें कूड़ा-कचरा मिला होता है। परन्तु उस पानी में फिटकरी डाल कर घूमाने से कूड़ाकचरा अलग हो जाता है और पानी निर्मल बन जाता है। आजकल तो मशीनों द्वारा पानी को स्वच्छ बनाया जाता है। वैसे ही मिथ्यात्व के मैल से मलिन बने हुए आत्मा को शुद्ध बनाने की फिटकरी कहो, या मशीन कहो, वह है संवेगादि पुरुषार्थ, जिसके द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्त होने से आत्मा में निहित अज्ञानादि अन्धकार दूर हो जाता है और वह परित्त संसारी बन जाता है। अर्थात्: सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होने से अधिक से अधिक जीव तीसरे भव में अथवा पन्द्रहवें भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विनय : विनय-सम्पन्नता दसवाँ स्थानक (बोल) है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि के प्रति विनयभाव के साथ-साथ ज्ञानी, दर्शनी एवं चारित्रात्मा, गुरु, बुजुर्ग एवं स्थविरों आदि के प्रति विनयभाव रखना, उनका प्रतिक्षण विनय करना। ज्ञानादि एवं ज्ञानवान, एवं चारित्रात्मा पुरुषों को विनय करने से अल्प-प्रयास से बहुत ज्ञान प्राप्त होता है। विनय उत्तम प्रकार का वशीकरण मंत्र है। चाहे जैसा विरोधी या वैरी हो, विनय से उसे वश में किया जा सकता है, अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। विनय एक ऐसा गुण है कि उसके पीछे अनेक गुण आ जाते हैं। साधु-साध्वियों का उत्कृष्ट भाव से विनय करने से तीर्थंकर-नामकर्म की प्राप्ति होती है।

बन्धुओं! धर्म के कार्य में उद्यम करने से ऐसा महान् लाभ होता है। तुमलोग अपने सांसारिक सुखों के लिए चाहे जितना उद्यम या पुरुषार्थ करो, उससे क्या तुम्हारी आत्मा को ऐसा लाभ होता है? बोलो तो सही! सांसारिक सुख के लिए किये गए पुरुषार्थ

* देखिए २९ वें सम्यक्त्व - पराक्रम नामक अध्ययन के पहले बोल के अन्तर्गत पाठ

पहनने-ओढ़ने तथा विविध सुखोपभोग के उच्च कोटि के साधन प्राप्त हो जाते हैं। और कुछ मिलता है क्या ? क्या यह (भौतिक या लौकिक) ज्ञान तुम्हें मोक्ष दिला सकेगा ? नहीं। ठीक है, आजीविका के लिए इस ज्ञान की जरूरत है, परन्तु आत्मा को कर्मों, दुःखों और मिथ्यात्व व रागादि कारणों से मुक्त करने के लिए, संक्षेप में, मोक्ष-प्राप्ति के लिए तो सिद्धान्त (शास्त्र) के ज्ञान की आवश्यकता है।

बन्धुओं ! इस (सैद्धान्तिक) ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक है। चारित्र के बिना, यानी आचार (आचरण) के बिना कोरा ज्ञान शून्यवत् है। ज्ञान अल्प होगा तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु उसके साथ चारित्र तो अवश्य होना चाहिए। ज्ञानीपुरुषों ने कहा है -

जहा खरो चंदण-भारवाही, भारस्स भागी, न हु चंदणस्स।
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी, न हु सुग्गइए ॥"

जिस प्रकार गधे पर चंदन की लकड़ी लाद दिये जाने पर, वह गधा चन्दन का केवल बोझ उठाता है। अतः वह सिर्फ चन्दन के भार का भागी है, उसे चन्दन की सुगन्ध या शीतलता नहीं मिलती। इसी प्रकार चारित्र-हीन ज्ञानी का ज्ञान उसके मस्तक पर भाररूप है। वह चारित्ररहित कोरे ज्ञान से सुगति या मोक्षगति का भागी-अधिकारी नहीं बन सकता। कहा भी है - *'ज्ञानं भारं क्रियां विना'* चारित्र के आचरण के बिना कोरा ज्ञान भाररूप है। इसके विपरीत, चारित्राचारयुक्त शास्त्रज्ञान की महत्ता आगमों में बताई है। इस पर शास्त्रज्ञान का एक-एक वचन-कथन कितना उपयोगी है ? यह समझ सकते हैं।

शास्त्र भगवत्-कथित वचन है, रुचि और श्रद्धा के बिना अनिच्छा से भी भगवद्वचन सुननेवाला रोहिणेय चोर जैसा आत्मा तिर गया। यों अनिच्छा से भगवत्-कथित शास्त्र का एक भी वचन सुनने से जन्म-जरा-मरण की श्रृंखला टूट गई, तब फिर जो जीव (आत्माएँ) शुद्ध भावपूर्वक वीतरागवाणी सुनता है, उसे कितना महान् लाभ होता है ? इस कारण शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है। तुम्हें शास्त्र का ज्ञान होगा, तो तुम अन्य धर्मियों के सामने टिक सकोगे। अगर यह ज्ञान नहीं होगा तो तुम्हारी श्रद्धा का पटिया डगमगा जायेगा। जैसे - चिड़िया का बच्चा अभी बहुत छोटा है, उसके पंख अभी मजबूत नहीं हुए हैं, इसलिए वह उड़ने लायक नहीं है। वह अपनी माता को उड़ती देखकर यों सोचे - 'जब मेरी माँ इतनी ऊँची उड़ सकती है, तब मैं क्यों अपने घोंसले में पड़ा रहूँ ?' यों विचार करके अपनी शक्ति का खयाल किये बिना यदि छोटा बच्चा उड़ने जाएगा तो गिर जाएगा, चोट लगेगी और कदाचित गिरते ही उसके प्राणपखेरू उड़ जाएँगे। इसी प्रकार जिस जीव ने शास्त्र ज्ञान के साथ श्रद्धा के पंख मजबूत नहीं किये, वह दूसरों से पहले आत्मज्ञान की बातें सुनने दौड़ेगा तो उसकी श्रद्धा टूट जाएगी।

भगवान महावीर की वाणी महाभाग्य से मिली है। साधु-साध्वी अपने क्षयोपशम (शक्ति) के अनुसार शास्त्रों का मंथन करके समझाते-सुनाते हैं, परन्तु उस वाणी (आद्य) प्ररूपक तो भगवान् ही हैं। भगवान् के मुख से दिव्य वाणी का जो

सेठ अत्यन्त घवरा गए । कुछ भी वोले विना वह वहाँ से उठकर सीधे अपनी हवेली में पहुँच गए और शून्यमनस्क होकर पलंग पर सो गए । छाती में धड़कन बढ़ गई । बार-बार मन में एक ही बात उमड़घुमड़ कर आती रही - 'हाय ! अब तो मैं मर जाऊँगा ।' आपलोगों को भी मृत्यु का डर लगता है न ? 'सूत्रकृतांग सूत्र' में भगवान् कहते हैं - "प्राणीमात्र को मृत्यु का भय रहता है । मरण किसी को भी नहीं छोड़ता ।" देखिए 'सूत्रकृतांग सूत्र' (श्रु.-१, अ-२, उ-१ गा-२) में कहा है -

"डहरा वुड्ढाय पासह, गब्भत्था वि चयंति माणवा ।
सेणे जहा वट्टयं हरे, एवं आउक्खयम्मि तुट्टइ ।।"

बालक, युवक और वृद्ध जिसको भी देखो वह, यहाँ तक कि गर्भस्थ मानव भी एक दिन देह को छोड़ देते हैं, अर्थात् -सभी मृत्यु प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार बाजपक्षी वटेर (तीतर) को हरण करके मार डालता है, वैसे ही आयुष्य पूर्ण होते ही जीव को कालरूपी बाज पक्षी पकड़ लेता है, इस प्रकार मनुष्य की मौत निश्चित है ।

तात्पर्य यह है कि बालक हो, चाहे वृद्ध हो अथवा गर्भस्थ जीव हो, मृत्यु किसी को भी नहीं छोड़ती । इस गाथा का आशय यह है कि कोई मनुष्य बाल्या वस्था में, गर्भ में रहा हुआ हो, या वृद्धावस्था में आयुष्य-क्षय होने पर मरण-शरण हो जाता है । कोई मनुष्य भरयौवन में अभी ताजा विवाहित होकर आया है, अभी हाथ पर बंधा हुआ विवाह का मंगलसूत्र भी नहीं खुला है, उसे भी मृत्यु नहीं छोड़ती । कोई बुढापे या रोग से जर्जरित होकर मृत्यु के मुख में चला जाता है । कोई जीव गर्भावस्था में ही मरण-शरण हो जाता है । कारण यह है कि मनुष्य का आयुष्य अनेक विघ्नों से परिपूर्ण और सोपक्रम है । इस कारण किसी भी अवस्था में आयुष्य पूर्ण होते ही उसके प्राण निकल जाते हैं । अतः वन्धुओं ! अत्यन्त विवेकपूर्वक संसारी जीवों की इस स्थिति को समझो । जिस प्रकार बाजपक्षी तीतर को पकड़ कर ले जाता है, उसी प्रकार मृत्यु भी प्राणियों के प्राण को अपहरण करके ले जाती है । नीतिकार कहते हैं -

अशनं मे, वसनं मे, जाया मे वन्धुवर्गो मे ।
इति मे मे कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ।।

यह भोज्य-सामग्री मेरी है, ये वस्त्र मेरे हैं, यह पत्नी और वन्धुवर्ग सब मेरे हैं । इस प्रकार अज्ञानी मनुष्य 'मेरा-मेरा' करता रह जाता है और कालरूपी भेड़िया मनुष्यरूपी अज (बकरे) को पकड़कर मार डालता है ।

जैसे अगाध समुद्र में रही हुई मछलियों को माछीमार जाल में फंसाकर पकड़ लेता है, इसी प्रकार इस संसार में सदाचारी मानव हो या दुराचारी हो, मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता । कालराजा दूर से भी हाथ लंबा करके प्राणियों को पकड़ लेने में समर्थ है । ऐसा समझकर आप सभी पाप का त्याग करो ।

होता है।" सोने को आग में डालें, तो भी वह सोना ही रहता है। बल्कि सोने को अग्नि में डालने से वह नरम बन जाता है, वैसे ही साधुवर्ग की अग्निपरीक्षा होने पर सोने की तरह नम्र और निर्मल बन जाता है। किन्तु चारित्र से भ्रष्ट नहीं होता। उसी प्रकार भगवान के संतवर्ग के लिए कहा गया है -

"से गामे वा नगरे वा, रन्ने वा, एगओ वा परिसागओ वा, सुत्ते वा जागरमाणे वा।"

वह चाहे गाँव में हो, नगर में हो, या अरण्य (वन) में हो, अकेला हो या परिषद में बैठा हो, सोया हो या जाग रहा हो, किन्तु उसका आचरण तो भगवान् की आज्ञा अनुसार होना चाहिए। इसका आशय यह है कि साधु कहीं भी हो, कैसी भी स्थिति में हो, सदा एकरूप (मन-वचन-काया की एकरूपताअनुसारी) हो, हर हाल में भगवान् द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सत्य आदि व्रत-नियय-संयम के अनुरूप मन-वचन-काया से आचरण करे, प्रवृत्ति करे। ऐसा न हो कि धर्मसभा में श्रावक बैठे हों, वहाँ तो रजोगुण से पूंज-पूंज कर चले और श्रावक चले जाएँ, तब रजोगुण को खूंटी पर टांग दे। इस प्रकार मायाचार करना साधु का आचरणीय आचार नहीं है। वह (साधुवर्ग) चाहे जहाँ बैठा हो, चाहे जैसी स्थिति में हो, भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध एक कदम भी नहीं चले, ऐसा निर्देश है। श्रावकवर्ग पर भी जिम्मेवारी है कि वह स्वयं शास्त्रोक्त श्रावकव्रतानुसार अपना आचरण बनावे, तत्पश्चात् अगर वह साधु-समाज को पवित्र, शुद्ध और सुरक्षित रखना चाहता है तो वह शास्त्रानुसार साधुवर्ग का आचार जाने। साधुवर्ग का आचार-विचार जान लोगे, साधुवर्ग के चारित्राचार में उत्सर्ग-अपवाद दोनों पक्षों को जान जाओगे। ऐसा श्रावकवर्ग एकान्तवादी और हठाग्रही अथवा दोषदर्शी नहीं होगा। साधुवर्ग का इस प्रकार से आचार-विचार जान लेने पर उसके प्रति राग-द्वेष, निन्दा-स्तुति, पक्षपात या तेरे-मेरे में नहीं पड़ना। अगर राग-द्वेष, पक्षपात या निन्दा-स्तुति में पड़ जाओगे तो तुम स्वयं डूब जाओगे, श्रावक *'अम्मापिडसमाणा'* के आदर्श से दूर हटकर कषाय और मोह-ममत्व में पड़ जाओगे। मान लो, किसी साधु का आचार शास्त्रविरुद्ध मालूम हो तो, पहले अत्यन्त विनयभाव से, उसे ऐसा करने का कारण पूछो, तत्पश्चात् बहुत ही नम्रतापूर्वक उसे समझाओ, वह किसी शारीरिक या मानसिक व्याधिवश वैसा करता हो तो उस व्याधि को दूर कराने का प्रयत्न करो तथा शुद्ध आलोचनापूर्वक आराधना-साधना करने के सम्मुख बनाओ। आज तो स्वयं श्रावकव्रत का पालन करनेवाला व्यक्ति साधुवर्ग की निन्दा-चुगली करने लगता है, एक ओर वह 'वंदामि' भी करता है, दूसरी ओर 'निंदामि' का पार्ट भी अदा करता है। सुधार का वह तरीका नहीं है, कि पत्रपत्रिका में उसकी निंदा ही करते रहो। किसी में आचार-शैथिल्य देखो तो माता-पिता के समान उन्हें हित-शिक्षा दो, नम्रतापूर्वक शास्त्र की बात उसके गले उतारो, ऐसा करने से सुधरेगा, उसका कल्याण होगा। यदि समझाने-बुझाने पर भी न माने तो तटस्थभाव रखो, किन्तु राग-द्वेष में, या उसकी निन्दा-चुगली में मत

धन का ढेर करने के लिए जिंदगी में अनेक पाप के काम किये, किन्तु धर्म के कार्य नहीं किये । सेठ को अब पिछले किये हुए पापों का पश्चात्ताप होने लगा ।

> कार्यो धर्मकेरा, कर्या नहि आ हाथथी ।
> छूटती नथी लक्ष्मी, भेगी करी जे पापथी ॥
> कोई आपो मने सन्मति, या लई लो मारी सम्पत्ति ।
> आ हालतमां जो हुं मरूं तो, थाशे मारी अवगति ॥
> आ धनना ढगलामां, मने शान्ति नथी शान्ति नथी ॥

अहो ! पाप में अहर्निश रचे-पचे रहकर मैंने सम्पत्ति इकट्ठी की, किन्तु मैंने उसका किसी दीन-दुःखी की सेवा में सदुपयोग नहीं किया और तो और धर्म के कार्य में भी उसका उपयोग नहीं किया । एकनाथजी जैसे पवित्र संत मिले तो मेरा जीवन सुधर गया । सेठ को अब भलीभांति समझ में आ गया कि अन्याय-अनीति-अधर्म एवं पाप से धन कमाकर उसे जमा करते जाने में आत्मशान्ति नहीं है । यदि मैं धन के ढेर के मोह-ममता-आसक्ति में मरा होता तो दुर्गतिगामी होता । मुझे अब एक भी पाप नहीं करना है । इस प्रकार सेठ ने भूतकाल में किये हुए पापों का पश्चात्ताप किया और अपना वर्तमान और भविष्य सुधारा ।

बन्धुओं ! संत की सत्संगति और उपदेश मिला तो सेठ का जीवन सुधर गया । आपलोग भी मृत्यु को प्रतिक्षण दृष्टि समझ रखोगे तो पाप से बच सकोगे, आपका जीवन भी पवित्र बन जाएगा ।

महाबल अनगार भी बीस स्थानक की आराधना करके अपना जीवन पवित्र बना रहे हैं । आगे का वृत्तान्त यथावसर कहा जाएगा । अब रा'नवघण की जो कथा अधूरी रह गई थी, उसके आगे का वत्तान्त सुनिए -

रा'नवघण की कथा

रा'नवघण के रक्षण में देवायत के पैर के टखने में लोहे की सार डाल दी गई : देवायत को जूनागढ के सूबेदार ने बहुत धमकियाँ दीं, प्रलोभन भी दिये, परन्तु देवायत ने किसी भी मूल्य यह कबूल नहीं किया कि नवघण मेरे घर में है, क्योंकि देवायत का निश्चय था कि 'मेरी शरण में आये हुए राजकुमार का मुझे प्राणप्रण से रक्षण करना है । मेरे प्राण जाए तो मुझे मंजूर है, परन्तु मैं अपने जीतेजी नवघण का बाल भी बांका नहीं होने दूंगा ।' शान्तिनाथ भगवान् का आत्मा जब मेघरथ राजा के भव में था, तब उन्होंने नियम लिया था कि 'मुझे शरणागत का रक्षण करना है ।' एक देव ने इस नियम की परीक्षा ली । एक कबूतर उनकी शरण में आया, बाजपक्षी से बचने के लिए कबूतर की रक्षा के लिए वे पैर का मांस काटकर तराजू पर रखने लगे । देवमाया से तराजू में बाज का पलड़ा भारी रहा । तब उन्होंने उसके वजन के बराबर तौलकर मांस

रखे, समभावपूर्वक सहन करे तो मासखमण के तप जैसी कर्मनिर्जरा हो सकती है। ऐसा अवसर अल्प कष्ट सहन करके महान् लाभ प्राप्त करने का है, यह मत भूलना ।

जैनधर्म में तो विशेष रूप से कहा गया है - उपसर्ग आये तब भगवान् ने साधकों को क्षमाभाव रखने का निर्देश दिया है। किन्तु अन्य धर्म में भी कतिपय संन्यासी कैसे क्षमाशील होते हैं ? क्षमा जैसा कोई आध्यात्मिक शस्त्र नहीं है - सामनेवाले क्रोधी, उद्दण्ड एवं विरोधी तथा वैरी को भी शान्त करने का । एक दृष्टान्त द्वारा मैं इस तथ्य को समझा रही हूँ ।

एक संन्यासी के जीवन में क्षमा और अहिंसा, ये दो मुख्य गुण थे । कोई उन्हें चाहे जितना कष्ट दे, यहाँ तक कि काट डाले तो भी क्षमा का त्याग न करना, तथैव जहाँ अहिंसा है, वहाँ धर्म है, जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म नहीं है; ऐसी उनकी श्रद्धा एवं निष्ठा थी । एक विशेषता यह थी कि कोई मनुष्य जिज्ञासु बनकर उनके पास उपदेश सुनने आए, उसे उपदेश देना । इसके सिवाय चाहे जिसको चलकर उपदेश नहीं देना । आत्मरमणता में लीन रहना । ऐसे एक पवित्र और क्षमावान् संन्यासी घूमते-घूमते एक शहर के बाहर एक बगीचे में आया और वहाँ के बागवान की आज्ञा लेकर एक घटादार वृक्ष की शीतल छाया में बैठकर अपना आसन जमाया और प्रभुस्मरण में लीन हो गया । संयोगवश इस शहर का राजा भी अपनी रानी के साथ सैर करने निकला था । बहुत दूर आ जाने के कारण दोनों थक गए थे । इसलिए रानी ने कहा - ''हमलोग इस बगीचे में थोड़ी देर विश्राम लेकर फिर राजमहल में जाएँगे ।'' अतः राजा और रानी दोनों उस बगीचे में आए । और वे भी एक वृक्ष के नीचे विश्राम लेने हेतु बैठे । रानी के साथ आमोद-प्रमोद करते हुए राजा को थोड़ी देर में नींद आ गई । किन्तु रानी को निन्द नहीं आ रही थी । वह राजा के पास बैठी रही । इतने में, वहाँ एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ संन्यासी को रानी ने देखा । संन्यासी को देखकर उसके मन में बहुत आनन्द हुआ ।

संत के दर्शनार्थ इच्छुक रानी संत को देखते ही उनके पास जाकर बैठ गई : रानी कुंवारी थी, तब उसने संतों का सत्संग बहुत किया था । किन्तु राजा घोर नास्तिक था । उसे धर्म का नाम अच्छा नहीं लगता था । वह ऐसे साधु की तो मजाक उड़ाता था । इस कारण विवाह करने के बाद रानी को संत का दर्शन या सत्संग का कोई सुअवसर नहीं मिलता था । अनेक वर्षों बाद उसने संत को देखा, इसलिए अत्यन्त खुश हो गई और संत के पास जाकर उसने वन्दन किया और वहाँ बैठ गई । संत उस समय ध्यान में थे । ध्यान पूर्ण होते ही संन्यासी ने आँखें खोली तो देखा कि अपने सामने रूपवती नवयुवती महिला बैठी है । संन्यासी ने तत्त्व दृष्टि से मन में सोचा - 'यह तो हड्डी, मांस एवं रक्त से भरा हुआ चमड़ी की कोथली है । मुझे उसके सामने दृष्टि क्यों करनी चाहिए ?' अतः वह तुरंत आँखें मूंदकर पुनः ध्यान में बैठ गए । यह देखकर रानी अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोली - ''बापू ! मैं आपके पास किसी भौतिक आशा से नहीं आई हूँ । मुझे

का रक्षण कैसे कर सकती हूँ ?" यों कहकर अंदर जाकर अपने प्रिय पुत्र उगा को दोनों हाथों में लेकर कहने लगी - "बेटा ! आज तुझे बलिदान देने जाना है । तेरे पिता का लिखा पत्र आया है ।" माता ने उगा से कहा -

"उगा उगरवा तणी, मा रख मनमां आश ।
जाता प्रभु पासमां, आनन्द नाधे उरमां ॥"

"बेटा ! तू जीने की आशा छोड़कर राजीखुशी से जाने को तैयार है न ? तेरे हृदय में कोई दुःख तो नहीं हो रहा है न ?" माता के इस प्रश्न को सुनकर ऊगा ने क्या उत्तर दिया ? सुनो -

'रा'नो राखणहार, जगमां जश बहु वधशे ।
धीरजने मनमां धार, उगो, तुज कूंखे उपन्यो ॥"

शूरवीर उगा प्राणों का बलिदान देने हेतु तैयार हुआ : पुत्र के वचन सुनकर माता के हृदय में हर्ष हुआ । किन्तु अपने पुत्र को मृत्यु के मुख में धकेलने का दुःख बहुत है । माँ ने कहा - "बेटा उगा ! धन्य है तुझे ! पर आ इधर, तेरी अभागी माता को एक वार भेंट ले । तेरे जैसे शूरवीर पुत्र को आज मैं चलाकर मृत्यु के मुख में धकेल रही हूँ । दूसरा कोई उपाय नहीं है बेटा ! इस समय अपना धर्म है कि अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपने (भाठी) राजा का रक्षण करना । "इतना कहते-कहते माँ की आँख में आंसू छलक पड़े । यह देख - उगा बोला - "माँ ! तेरे जैसी वीरांगना क्षत्रियाणी की आँख में आंसू शोभे ? माँ ! मैंने तेरे स्तनों का दूध पीया है, उसी दूध को दीपाने के लिए जा रहा हूँ । राजा का रक्षण करने के लिए एक उगा तो क्या, मेरे जैसा हजार उगाओं का बलिदान देना पड़े तो देना चाहिए । मैं जिंदा रहा तो भी क्या कर सकता हूँ ? राजा जीवित रहेगा तो प्रजा का पालन करेगा, मुस्लिम राजा के हस्तगत गये हुए अपने राज्य को छुड़ाएगा । ऐसे राजा के लिए मुझे जो कुछ करना पड़े मैं करने को तैयार हूँ । मुझे उसमें प्रसन्नता है । माँ ! तू जरा भी चिन्ता मत करना ।" उगा के ये उद्‌गार सुनकर पुत्र को दोनों हाथों में लेकर माता बोल उठी - "शाबाश बेटा ! शाबाश ! तेरी हिम्मत देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तू जल्दी जाकर दुश्मनों के दुर्ग को नींव से उखाड़ डालना ।"

यों कहकर माता ने उगा को राजकुमार की पोशाक पहनाकर उसे बाहर लाई । फिर देवायत की पत्नी, सौराष्ट्र की वीरांगना सती देवी उसे नवघण के रूप में प्रसन्न मुख से बोली - "नवघण ! ये बादशाह के आदमी तुझे लेने के लिए आए हैं । तुझे इनको न सौंपूँ तो हम बिना मौत मर जाएँगे । तेरा रक्षण करने के कारण मेरे पति को जेल में जाना पड़ा । उनके पैर के टखने में सार घुसाया गया । हम अब कितना सहन करें ?" तब उगा ने कहा - "माँ ! तुमने मुझे रखा, इतना तुम्हारा महान् उपकार मानता हूँ । मेरी माँ होती तो मुझे मरने के लिए थोड़े ही भेजती ? तुम्हें दुःखी करके मुझे जीना नहीं है । मैं जा रहा हूँ ।" यों कहकर 'उगा' प्रसन्न मुख से सूबेदार के आदमियों के साथ

इस प्रकार संन्यासी रानी को उपदेश दे रहा था, उधर राजा की नींद खुल गई, वह जागृत हुआ। रानी को अपने पास नहीं देखी, इसलिए मन में सोचा - 'रानी मुझे अकेला छोड़कर कहीं जाती नहीं, पर आज कहाँ चली गई ? कदाचित् बगीचे में घूमने गई होगी। जरा इधर-उधर खोजूं ! यों विचार कर राजा रानी को ढूंढने लगा। देखा तो, रानी एक साधु का उपदेश सुनने में लीन है। राजा ने दूर से देखा कि रानी संन्यासी के सामने बैठी है। संन्यासी रानी को कुछ कह रहा है और रानी दत्तचित्त होकर सुन रही है। इस प्रकार परपुरुष के पास रानी को बैठी हुई देखकर राजा को बहुत ही क्रोध आया।

बन्धुओं ! मनुष्य की जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सारी सृष्टि उसे दिखाई देती है। यह राजा भी अत्यन्त कामी था, भोलविलास में रत रहता था। इस कारण उसकी दृष्टि में संन्यासी भी कामी नजर आया। अतः वह संन्यासी के पास जाकर बोला - "ओ पाखंडी ! तुझे इस जगत् में दूसरी कोई स्त्री नहीं मिली कि तू मेरी रानी के सामने गलत हावभाव कर रहा है। तू मेरी रानी को बिगाड़ने को उतारू हुआ है ? संन्यासी का वेश पहनकर झूठा ढ़ोंग कर रहा है। परन्तु तुझे पता नहीं है, मैं कौन हूँ ? मैं इस गाँव का राजा हूँ। यह मेरी रानी है ? उसके साथ एकान्त में बात करते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? अगर तू सच्चा साधु है तो मेरे साथ लड़ने के लिए आ जा मैदान में ! मैं भी देख लूं, तेरे में कितनी शक्ति है ?"

मरणान्त उपसर्ग में भी संन्यासी ने रखी अद्भुत क्षमा : राजा के ये अपशब्द सुनकर संन्यासी बिलकुल डरा नहीं। किन्तु रानी तो थर-थर कांपने लगी। वह राजा से कहने लगी - "स्वामीनाथ ! यह कोई खराब पुरुष नहीं है, पवित्र संत हैं। मुझे यह धर्म का उपदेश दे रहे हैं।" किन्तु राजा रानी की बात नहीं सुनता। संन्यासी ने राजा से कहा - "राजन् ! धर्म का उपदेश देना संन्यासी का कर्तव्य है। लड़ना मेरा कर्तव्य नहीं है। मैं अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करता हूँ। उससे मुझे आत्म-संतोष मिलता है। वह मेरा (आत्म-) धन है। और वैरी पर विजय प्राप्त करने के लिए मेरे पास एक अमोघशस्त्र है, उसका नाम क्षमा है। उस शस्त्र के बल से मैं निर्भय होकर विचरण करता हूँ। जो पापी होता है, वही डरता है, मैं पाप करता नहीं फिर क्यों किसी से डरूँ ?" इस पर आवेश में आकर राजा ने कहा - "तू निर्भय है तो देखता हूँ तुझे !" यों कहकर तलवार के एक झटके से संन्यासी का हाथ काट डाला।

यह दृश्य देखकर रानी तो कांप उठी। भय के मारे उसके मुँह से भयंकर चीख निकल गई - "अरर ! मुझे ऐसा पता नहीं था। मेरे कारण से ऐसे पवित्र संत का हाथ काट डाला गया !" रानी अधिक देर तक यह दृश्य देख नहीं सकी। वहाँ से दूर चली गई। संन्यासी पर राजा द्वारा ऐसा जुल्म ढहाया गया, फिर भी उन्होंने जरा भी क्रोध नहीं किया। अहा ! कितनी अद्भुत क्षमाभावना थी उनमें ! असह्य वेदना होने पर भी उफ

कड़ी-कसौटी में से पार हुई वीरांगना : यह सुनकर देवायत की पत्नी ने सोचा – 'मेरे पर यह धर्मसंकट आया है, अब क्या करना ?' इस संकट से पार होने के लिए हिम्मत रखने में ही छुटकारा है। उस वीर नारी ने विचार किया – 'मेरा पुत्र मार डाला गया। मैं पुत्रविहीन हो गई। जिसके रक्षण के लिए मैंने अपने इकलौते लाड़ले पुत्र का बलिदान दे दिया। अब अगर मैंने हिंमत हारी तो इस (नवघण) का भी बलिदान देना पड़ेगा।' अतः प्रभु से प्रार्थना करके हृदय पर पत्थर रखकर आँख में सुरमा आंजा, पैर में जूता पहनकर अपने लाड़ले पुत्र के शव के पास आकर हर्षयुक्त होकर मस्तक पर पैर रखा और छुरी की नोक से उसकी आँखें निकाली और उन पर पैर की पगथली रखकर कुचल डाली। इतना कठोर कृत्य करने पर भी आँख में आंसू या चेहरे पर उदासीनता न आने दी। इस पर से सूबेदार को प्रतीति हो गई कि अगर उसका पुत्र होता तो देवायत की पत्नी ऐसा कठोर कृत्य नहीं कर सकती थी। स्त्री जाति का हृदय कोमल होता है, अपना पुत्र होता तो उसका हृदय भर आता और आँख में आंसू आए बिना न रहते। अतः यह देवायत का पुत्र नहीं, किन्तु नवघण ही है। ऐसी प्रतीति हो जाने पर सूबेदार को शान्ति हुई कि अच्छा हुआ, दुश्मन का काँटा निकल गया। अतः देवायत को कारागर से मुक्त किया गया। पति-पत्नी दोनों ने छुटकारे की सांस ली। नवघण की सुरक्षितता से पति-पत्नी को इतनी प्रसन्नता हुई मानो दुनिया का राज्य मिल गया हो। पति-पत्नी दोनों हर्षित होकर घर आए और नवघण को छाती से लगाया। नवघण अब शैशवावस्था पार कर यौवन के प्रांगण में प्रवेश कर चुका था। अब देवायत नवघण को जूनागढ की राजगद्दी पर बिठाने का उपाय खोजने लगा। किन्तु इस जूनागढ के राजा के पास विशाल सेना लेकर बारह वर्ष तक लड़ा जाए, फिर भी जूनागढ़ को जीतना कठिन है।

देवायत नवघण को जूनागढ का राजा बनाने की चिन्ता में रात-दिन रहता था। उसने जूनागढ़ के मुख्य द्वार के पहरेदार के साथ मित्रता की और अपने चार आदमी उसके मातहत नौकर के रूप में रखे। दूसरी ओर देवायत ने एक दीवार चिनवाने के लिए कुछ मजदूर बुलाए। भींत बांधने के लिए घर के पीछे एक वाड़ा था, उसमें खड्डा खुदवा कर मजदूर मिट्टी लाते थे। दोपहर में सभी मजदूर काम करके अपने-अपने घर चले गए। उस समय नवघण सब की नजर बचाकर उस बाड़े में आया और उसे देख न ले, इस आशय से छिपने का उपाय कर रहा था। वहाँ वह खड्डा देखा तो नवघण उसमें उतर गया और कुदाली लेकर वहाँ खोदने लगा। थोड़ा गहरा खोदा तो वहाँ एक बड़ी शिला देखी। शिला को उठाकर वहाँ से हटाई तो अंदर कुछ दिखाई दिया। नवघणने देवायत से कहा – "पिताजी ! इस खड्डे में नीचे कुछ है।" देवायत समझ गया। उसने नवघण से कहा – "अभी उसे शिला से ढक दे।" नवघण ने उस पर शिला ढककर ऊपर मिट्टी डाल दी। देवायत नवघण को साथ लेकर घर आया। साथ ही मजदूरों के घर जाकर कह आया – "आज कुछ भी काम नहीं करना है। अतः कल आना।"

इस प्रकार संन्यासी रानी को उपदेश दे रहा था, उधर राजा की नींद खुल गई, वह जागृत हुआ। रानी को अपने पास नहीं देखी, इसलिए मन में सोचा - 'रानी मुझे अकेला छोड़कर कहीं जाती नहीं, पर आज कहाँ चली गई ? कदाचित् बगीचे में घूमने गई होगी। जरा इधर-उधर खोजूं ! यों विचार कर राजा रानी को ढूंढने लगा। देखा तो, रानी एक साधु का उपदेश सुनने में लीन है। राजा ने दूर से देखा कि रानी संन्यासी के सामने बैठी है। संन्यासी रानी को कुछ कह रहा है और रानी दत्तचित्त होकर सुन रही है। इस प्रकार परपुरुष के पास रानी को बैठी हुई देखकर राजा को बहुत ही क्रोध आया।

बन्धुओं ! मनुष्य की जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सारी सृष्टि उसे दिखाई देती है। यह राजा भी अत्यन्त कामी था, भोलविलास में रत रहता था। इस कारण उसकी दृष्टि में संन्यासी भी कामी नजर आया। अतः वह संन्यासी के पास जाकर बोला - "ओ पाखंडी ! तुझे इस जगत् में दूसरी कोई स्त्री नहीं मिली कि तू मेरी रानी के सामने गलत हावभाव कर रहा है। तू मेरी रानी को बिगाड़ने को उतारू हुआ है ? संन्यासी का वेश पहनकर झूठा ढोंग कर रहा है। परन्तु तुझे पता नहीं है, मैं कौन हूँ ? मैं इस गाँव का राजा हूँ। यह मेरी रानी है ? उसके साथ एकान्त में बात करते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? अगर तू सच्चा साधु है तो मेरे साथ लड़ने के लिए आ जा मैदान में ! मैं भी देख लूं, तेरे में कितनी शक्ति है ?"

मरणान्त उपसर्ग में भी संन्यासी ने रखी अद्भुत क्षमा : राजा के ये अपशब्द सुनकर संन्यासी बिलकुल डरा नहीं। किन्तु रानी तो थर-थर कांपने लगी। वह राजा से कहने लगी - "स्वामीनाथ ! यह कोई खराब पुरुष नहीं है, पवित्र संत हैं। मुझे यह धर्म का उपदेश दे रहे हैं।" किन्तु राजा रानी की बात नहीं सुनता। संन्यासी ने राजा से कहा - "राजन् ! धर्म का उपदेश देना संन्यासी का कर्तव्य है। लड़ना मेरा कर्तव्य नहीं है। मैं अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करता हूँ। उससे मुझे आत्म-संतोष मिलता है। वह मेरा (आत्म-) धन है। और वैरी पर विजय प्राप्त करने के लिए मेरे पास एक अमोघशस्त्र है, उसका नाम क्षमा है। उस शस्त्र के बल से मैं निर्भय होकर विचरण करता हूँ। जो पापी होता है, वही डरता है, मैं पाप करता नहीं फिर क्यों किसी से डरूँ ?" इस पर आवेश में आकर राजा ने कहा - "तू निर्भय है तो देखता हूँ तुझे !" यों कहकर तलवार के एक झटके से संन्यासी का हाथ काट डाला।

यह दृश्य देखकर रानी तो कांप उठी। भय के मारे उसके मुँह से भयंकर चीख निकल गई - "अरर ! मुझे ऐसा पता नहीं था। मेरे कारण से ऐसे पवित्र संत का हाथ काट डाला गया !" रानी अधिक देर तक यह दृश्य देख नहीं सकी। वहाँ से दूर चली गई। संन्यासी पर राजा द्वारा ऐसा जुल्म ढहाया गया, फिर भी उन्होंने जरा भी क्रोध नहीं किया। अहा ! कितनी अद्भुत क्षमाभावना थी उनमें ! असह्य वेदना होने पर भी उफ

प्रभु की वाणी। उस वीतरागवाणी को सुनने के लिए नाट्यारम्भ छोड़कर देवलोक की देवियाँ और वहाँ के देव मर्त्यलोक में आते हैं। तीर्थंकर भगवान की देशना एक पहर तक चलती है। देव-देवियों के मन में तीर्थंकर प्रभु की वाणी का जितना माहात्म्य है क्या उतना माहात्म्य तुम्हारे मन में है? अगर तुमने वीतरागवाणी का महात्म्य समझा होगा तो तुम व्याख्यान में ठीक समय पर उपस्थित हो जाओगे। तुम्हारे मन में वीतरागवाणी का माहात्म्य है या चाय-पानी का? याद रखें – वीतरागवाणी साधारण व्यक्ति या आजकल के उच्च शिक्षित व्यक्ति की वाणी जैसी क्षुद्र नहीं है। जिस वीतरागवाणी का मूल्यांकन इन्द्र भी नहीं कर सकते, ऐसी महावीर भगवान् की वाणी है।

'ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में मल्लिनाथ भगवान् का अधिकार चल रहा है। मल्लिनाथ तीर्थंकर पूर्वभव में कौन थे? उसका वर्णन चल रहा था। महाबल अनगार ने वीतरागवाणी का माहात्म्य समझकर संसार के वैभव-विलास से विकसित वाड़ी का त्याग कर छह-छह मित्रों के साथ वीतराग-वाटिका में विरति का बीजारोपन करके विचरण करने लगे। वह तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करने के २० स्थानकों की आराधना कर रहे हैं। उन २० बोलों में से कल ज्ञान की आराधना के विषय में हमने आपके समक्ष चिन्तन प्रस्तुत किया था। ज्ञान प्राप्त करने के बाद स्वाध्याय न किया जाए तो अर्जित ज्ञान के जंग लग जाता है, वह विस्मृत हो जाता है। इसलिए भगवान् ने साधक को स्वाध्यायकाल में दिन और रात में चार बार स्वाध्याय करने का निर्देश किया है, जिसका शास्त्रों में विधान है।

बन्धुओं! आत्मा पर लगे हुए दाग को साफ करानेवाला कोई साधन हो तो वह शास्त्र (सिद्धान्त) है। आत्मिक सुख प्राप्त करने के लिए शास्त्र (सिद्धान्त) जड़ी-बूटी के समान है। सिद्धान्त की बात को सुदृढ़ करने के लिए दूसरे न्याय देने पड़ते हैं। परन्तु मूल में तो सिद्धान्त मुख्य है। दरवाजे को फिट करने के लिए कीलों और कब्जों की जरूरत पड़ती है। किन्तु केवल कीलों और कब्जों का बड़ा ढेर कर देने मात्र से दरवाजा नहीं बनता। क्योंकि सिर्फ कीलें और कब्जे क्या करेंगे? प्रमुखता तो दरवाजे की है। इसी प्रकार बाहर का ज्ञान चाहे जितना प्राप्त कर लो, परन्तु सिद्धान्त (शास्त्र) का ज्ञान नहीं हो तो बाह्य ज्ञान की विशेषता नहीं है। सिद्धान्त ज्ञान (शास्त्र का ज्ञान-श्रुत ज्ञान) चारित्र को सुदृढ़ बनाता है। चारित्र से सम्बन्धित विचार और आचार कैसा होता है? या होना चाहिए? इसे समझाता है। आज (भौतिक या लौकिक) ज्ञान तो बहुत बढ़ गया है, बी. कोम., एम. कोम., बीए, बीए-बीटी, एम. ए. इत्यादि अनेक डिग्रियाँ मनुष्य प्राप्त कर लेता है। और इनसे भी अधिक पढ़ने के लिए कई माता-पिता अपने लाड़कों को जर्मन, इंग्लैण्ड, अमरिका आदि विदेशों में भेजते हैं। वहाँ जाकर लड़का डिग्री पाकर आता है, तब माता-पिता हर्षित होते हैं। ज्ञानीपुरुष कहते हैं – डिग्रियाँ प्राप्त करके तू चाहे जितना खुश हो जाय, पर उनका फल कितना मिल पाता है? मनुष्य को डिग्री के अनुसार नौकरी मिल जाती है। इस प्रकार कमाई बढ़ती है, उसके फलस्वरूप सोना, चांदी, धन-माल, मिल्कियत, घरबार, बंगला, बगीचा, मोटर, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, खाने-पीने,

उक्त योगी संन्यासी के हाथ-पैर कट गए हैं, इस कारण असह्य वेदना हो रही थी। फिर भी समभाव से, शान्ति से सहन करके प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे – "प्रभो ! मेरे हाथ-पैर कट गए, उसकी प्रचण्ड वेदना मैं आपकी कृपा से शान्ति से सहन कर सका, किन्तु वह अज्ञानी और सुकोमल शरीरवाला राजा इस घोर पाप के कारण नरक में जाएगा, वहाँ दी जानेवाली अपार वेदना और यातना कैसे सहन करेगा ? मैंने तो उसे अंतःकरण से क्षमा दे दी है, किन्तु प्रभो ! तू उसे माफ कर देना।" इस प्रकार संन्यासी राजा के प्रति किसी प्रकार का दुर्भाव अथवा दुर्ध्यान न लाकर सद्भाव से प्रभु से प्रार्थना कर रहा था। रात्रि के नीरव शान्त वातावरण में राजा ने संन्यासी के मुख से निकलते हुए ये शुभ उद्गार सुने तब उसके मन में विचार स्फुरित हुए – 'अहो ! मैंने तो इस संन्यासी के हाथ-पैर काट डाले, फिर भी मेरे प्रति कोई क्रोध, दुर्भाव या दुर्ध्यान इसके मन-वचन में नहीं है, प्रत्युत मेरे लिए प्रभु से क्षमादान की प्रार्थना कर रहा है। सचमुच, ऐसे पवित्र संत का मैंने घोर अपराध किया, फिर भी मुझे क्षमादान दे रहे हैं।' संन्यासी के उद्गार सुनकर राजा का क्रोध शान्त हो गया था। राजा और रानी दोनों की आँखों से पश्चात्ताप के आंसू छलछला उठे। वास्तव में, क्षमा कितना अमोघ शस्त्र है, उसका विरोधी और विमुख पर अचूक प्रभाव पड़ता है। कितना सुन्दर असर हुआ राजा पर ? नीतिकारों ने भी कहा है –

"क्षमा-खड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति ?
अतृणे पतितो वह्निः, स्वयमेवोपशाम्यति ।।"

जिसके हाथ में क्षमारूपी शस्त्र (तलवार) है, उसका दुर्जन क्या बिगाड़ सकता है ? जहाँ तृण-घास आदि नहीं होते, ऐसी जमीन पर पड़ी हुई अग्नि अपने-आप बुझ (शान्त हो) जाती है। एक व्यक्ति क्रोध करता है, परन्तु सामनेवाला व्यक्ति क्षमाधारी हो तो क्रोधी का क्रोध स्वयमेव शान्त हो जाता है। वैर पर विजय प्राप्त करने के लिए क्षमा जैसा कोई भी श्रेष्ठ साधन नहीं है। संन्यासी का क्षमाभाव, समभाव, शान्त स्वभाव देखकर राजा का क्रोध शान्त हो गया। तुरंत संन्यासी के पास जाकर उनके चरणों में पड़कर अपनी भूल के लिए घोर पश्चात्ताप करते हुए राजा ने माफी मांगी। उस समय राजा की आँखों से सावनभादो बरसने लगे और "मुझे क्षमा करें, मैंने आप निरपराधी के हाथ-पैर काट डाले, अब मेरा क्या होगा ?" यों बार-बार राजा पश्चात्ताप करने लगा। संन्यासी ने राजा को सांत्वना दी, ढाढस बंधाया। अन्त में, राजा का जीवन सुधर गया। राजा ने ऐसा नियम लिया कि अब मैं भविष्य में ऐसा अघटित कार्य नहीं करूँगा। इसका नाम है क्षमा। क्रोध पर क्षमा ने विजय पाई। क्षमा से शत्रु के, अपराधी के कठोर हृदय को भी कोमल बनाया जा सकता है। संन्यासी भी क्षमामय जीवन जीते हुए चार दिन में उस नश्वर शरीर का त्याग कर चल बसे।

गणधरों ने उसे ग्रहण कर लिया और शास्त्ररूप में गूंथा, उस परम्परागत मौखिक शास्त्रज्ञान को आचार्यों ने लिपिबद्ध किया (लिखा), वही भगवद्वाणी हमें साधु साध्वियों द्वारा सुनने को मिली है। भगवद्वाणी भव (संसार) सागर को तिरने का प्रबल साधन है। चाहे जैसा होशियार (कुशल) और बलवान् तैराक हो तो भी तैरने के लिए उसे साधन तो लेना ही पड़ता है न ? भले ही वह नौका से तरे अथवा भुजाओं से तरे सहारे के बिना तो कोई भी तैराक तर नहीं सकता। इसी प्रकार सर्वज्ञ प्रभु की यह वाणी भवसागर तरने के लिए आधारभूत है। जो मनुष्य इसका सहारा लेता है, वह देर-सवेर अवश्य भव-सागर तर (पार कर) जाता है। जीव को उस पर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए आज तो इस श्रद्धा का दिवाला है। कई लोग तो यों कहने लगते हैं - क्या शास्त्र भगवान् की वाणी है ? यह कौन जानता है ?

बन्धुओं ! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक बात पूछती हूँ कि किसी का पिता गुजर गया उसके पिता द्वारा लिखी हुई बही में जिस कर्जदार से पैसा वसूल करना है, उसका नाम लिखा है। उसके आधार पर वह कर्जदार के पास से रकम वसूल करने गया, उस समय वह कर्जदार उसे कहे कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता, तब प्रत्युत्तर में वह कहता है - "तू मुझे नहीं पहचानता, किन्तु मेरे पिता को तो पहचानता था न ? देख, इस बही में क्या लिखा है ?" वह व्यक्ति उस कर्जदार को नहीं पहचानता, और कर्जदार उक्त साहूकार के पुत्र को नहीं पहचानता, फिर भी अपने पिता द्वारा लिखी हुई बही के आधार से श्रद्धा करता है न ? परन्तु यहाँ वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की वाणी पर जीव को श्रद्धा नहीं है। इसी कारण यों कहता है कि कौन जानता है, या किसने देखा है कि शास्त्र (सिद्धान्त) में कही हुई बात सच्ची है ? भगवान् के वचनों को उत्थापित करने (उत्थापना करने) वाले को यह पता नहीं है कि मैं इस प्रकार कह रहा हूँ, तो मेरी क्या दशा होगी ? सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के वचनों की आशातना करने से बंधे हुए घोर अशुभ-कर्म मेरी हड्डियाँ चूर-चूर कर देंगे।

जिसे वीतरागवाणी पर दृढ़ श्रद्धा है, वह आत्मा दुकान पर बैठा होगा, वहाँ भी शास्त्र-सम्मत (शास्त्रों) की बात करेगा। तुमने धर्म को प्राप्त (अर्जित) किया होगा तो तुम दूसरों को धर्म प्राप्त करा सकोगे। तुम्हारे पास में आनेवाला व्यक्ति अन्यधर्मी होगा, तो भी जैनधर्म को प्राप्त कर सकेगा, उसे जैनधर्म का महत्त्व समझ में आ जाएगा। भगवान् की आज्ञा में विचरण करनेवाले साधुवर्ग की तो शास्त्र में रमणता होती है, उसके पास में जो आता है, उसे वह धर्म प्राप्त कराता है। 'दशवैकालिक सूत्र' (अ.-८, गाथा-२९) में बताया गया है कि भगवान् की आज्ञा में चलनेवाला साधुवर्ग कैसा होता है ?

अतिंतिणे अचवले, अप्पभासी मियासणे ।
हवेज्ज उअरे देते, थोवं लद्धुं न खिंसए ॥

वीतराग भगवान् का साधुवर्ग (साधु-साध्वी) कैसा होता है ? जो साधुवेश पहनकर पट्ट पर बैठ जाय, वह नहीं। भगवान् कहते हैं - "मेरा साधुवर्ग सौ टच के सोने जैसा

सैनिक भी अत्यन्त आनन्द में रहते थे। इसी बीच बरात आ गई। सबके मुख पर आनन्द का सागर लहरें ले रहा था। विवाहविधि सम्पन्न होने के बाद कन्यादान के समय एक तेजस्वी युवक खादी के कपड़े पहने हुए आया। उसने अपने मस्तक पर छत्तीस लपेटे वाली धोती बांधी हुई थी। कमर में एक चादर खोसकर बांधी हुई थी। उसके हाथ में सोने के मूठवाली तलवार सुशोभित थी। वह सहसा विवाहमण्डप में आया। उसे देखकर सभी आहीर एक बार तो खलबला उठे। सभी ऊँचे उठकर देखने लगे। देवायत ने सबको शान्त रहने को कहा। वह युवक वर और कन्या के पास आया। पहले वरराजा के हाथ में भेंट दी। तत्पश्चात् वह मधुर स्वर में बोला - "बहन! हाथ बहार निकाल, मैं तेरे हाथ में भेंट देने आया हूँ।" उस समय जाहल ने कहा - "भैया वीरा! इस समय मुझे यह भेंट नहीं चाहिए। इस समय तेरे पास में इसे मेरी अमानत के रूप में रख। जब मुझे जरूरत पड़ेगी, तब मैं मांग लूंगी। इस समय तो यह तेरे पास अमानत के रूप में रहेगी।" जाहल ने जब प्रेम के शब्दों में भाई से कहा तो प्रत्युत्तर में भाई ने कहा - "बहन! तेरी खुशी है। जब तुझे जरूरत हो, तब मांग लेना।" इतने शब्द कहकर आहीरों की मेदिनी पर एक मीठी नजर फेंककर वह तेजस्वी युवक चला गया। जाहल विवाह करके ससुराल आई।

इस ओर देवायत ने नवघण को राजा बनाने की तैयारी की। जूनागढ़ के सैनिकों को बहुत शराब पिलाकर बेहोश कर दिया। नवघण को राजा बनाने की तैयारी की। जूनागढ़ के सैनिकों को अत्यन्त शराब पिलाकर बेहोश कर ही दिया था। नवघण ने आहीर की पोशाक उतार कर राजवंशी पोशाक पहनी। फिर बख्तर आदि शस्त्रों से सुसज्ज होकर अपने पिता तथा दूसरे आहीरों का सहयोग लेकर अचानक जूनागढ़ के सदर दरवाजे में प्रवेश करके नवघण ने सूबेदार को पकड़ लिया और तत्काल जूनागढ़ पर कब्जा कर लिया। यों जूनागढ़ पर विजय प्राप्त कर ली। एक शुभ दिवस को नवघणकुमार का राजतिलक कर दिया गया। अब वह नवघणकुमार नहीं रहकर रा' नवघण बना। रा'नवघण देवायत को और उसकी पत्नी को माता-पिता समान मानता था। उन्हें उगा की जरा भी क्षति उनके मन में नहीं आने देता था। उसके मन में उपकारी का उपकार सदैव हृदय में रमता रहता था। रा'नवघण द्वारा राज्य में कुशल मंगल व शान्ति प्रवर्तने से देवायत के मन में खूब शान्ति हुई। अन्त में भगवद्-भजन करते हुए पति-पत्नी परलोक सिधारे। माता-पिता के जीवित रहते जाहल जूनागढ़ आती थी; उनकी मृत्यु के बाद माता-पिता की याद बहुत आ जाए, इस कारण मन अशान्त हो जाने से वह आती नहीं थी।

एक बार ऐसा हुआ कि चौमासे भर में वर्षा नहीं होने से जाहल के देश में दुष्काल पड़ा।

> 'देशमां डंका वागिया, कपरो पड्यो छे काळ।
> पुरुषे छोडी प्रमदा, माताए छोड्या बाळ॥'

हाँ तो, साधु कैसा हो ? इस विषय में पूर्वोक्त गाथा में बताया गया है - वह *'अतिंतिणे'* हो, उसमें जरा-जरा-सी बात पर तनतनाहट न हो, वह गंभीर रहे, ज्ञाता-द्रष्टा बनकर रहे । गौचरी के लिए गृहस्थ के घर में जाए, किन्तु आहार न मिले, अथवा रूखा-सूखा या अपर्याप्त आहार मिले, तो भी वह तनतनाहट न करे । उक्त गृहस्थ की निन्दा न करे, कि रोज घर पधारने की भावना भाता था, किन्तु घर में आहार-पानी का कोई ठिकाना नहीं था, क्या ऐसे घर में गौचरी जाने योग्य है ? इस प्रकार साधु न बोले, अपितु समताभाव रखे । कहीं आहार आदि न मिले तो यों विचारे कि मेरे लाभान्तराय कर्म का उदय है और गृहस्थ के दानान्तराय कर्म का उदय है, इस कारण ऐसा हुआ है । एक घर में आहार न मिले तो दूसरे-तीसरे घर में जाय, घर-घर में जाकर शुद्ध निर्दोष आहार की गवेषणा करे । वह **अचपल** रहे, चपलता-चंचलता न करे । साधु अल्पभाषी हो, कोई किसी बात पर पूछे तो बहुत ही अल्प शब्दों में उसका उत्तर दे । साधु अपना **आहार भी परिमित** करे । सरस स्वादिष्ट आहार आये तो भी ठूँस-ठूँसकर न खाए । गौचरी करने या स्थंडिल आदि जाते या विहार करते हुए किसी ने अपमान कर दिया, अपशब्द कह दिया, यहाँ तक कि किसी ने प्रहार भी वाणी के द्वारा या डंडे आदि के द्वारा कर दिया, इन्द्रियों-विषयों के अनुकूल प्रतिकूल मिलने पर भी शान्त-दान्त रहे । जैसे खंधक अनगार के ५०० शिष्यों को घाणी में पिरा दिया फिर भी उन्होंने पिलनेवाले पर न द्वेष किया और न शरीर पर रागभाव (मोह-ममत्व) लाए, मन से भी उसके प्रति कषायभाव न लाए । इस प्रकार आहारादि न मिले, थोड़ा मिले, तो उक्त गृहस्थ पर जरा भी गुस्सा न करे, समभाव में रहे ।

इस काल में ऐसे उपसर्ग या परिषह नहीं आते । गौचरी में भी पहले के जैसा कष्ट नहीं है । कदाचित् कष्ट आता है तो भी मामूली । पूर्व काल में गाँवों में अन्यधर्मी के यहाँ गौचरी लेने जाते तो साधुओं को बड़ी कठिनाई से गौचरी मिलती थी । अब तो विहार के रास्ते में पड़नेवाले गाँवों में अन्यधर्मी भी जैन साधु के आचार-विचार से परिचित हो गये हैं । अतः पहले जैसा कष्ट आज साधुओं को नहीं सहने पड़ते । साधु वर्ग के कल्प-अकल्प से प्रायः परिचित हो गए हैं । और कुछ नहीं तो छाछ और रोटी तो वे भी बहरा देते हैं । धोवन पानी या कहीं गर्म पानी भी बहरा देते हैं । इसलिए पहले के महापुरुषों जैसे परिषह इस काल में सहन नहीं करने पड़ते । आज तो यातायात के साधन सुलभ होने से श्रावक-श्राविका वर्ग भी अन्य धर्मी शाकाहारी घरों में गौचरी की दलाली कर देते हैं ।

मैं तो अपनी साध्वियों से कहती हूँ कि आज तो ऐसा कोई परिषह तुम्हें सहन नहीं करने पड़ते, किन्तु कोई तुम्हें कटुवचन कहे, उस समय अगर समभाव रखेंगे तो कर्मों की महान् निर्जरा होगी । मासखमण के तपस्वी मासखमण करें और किसी साधक को कटुवचन कहें, उस समय आँख का कोना भी लाल न होने दे और समझपूर्वक क्षमाभाव

धर्म त्राण और शरण रूप है। धर्म गति और आधार रूप है। धर्म की सम्यक् आराधना
करने से जीव अजर-अमर स्थान को प्राप्त कर लेता है। ऐसा उत्तम कल्पवृक्ष और
चिन्तामणिरत्न के समान धर्म हमें मिला है। ऐसा धर्म बार-बार नहीं मिलेगा। तप, त्याग
के तोरण बाँधकर और श्रद्धा के सुमन विकसित करके मानवजीवन को श्रृंगारित
करो। धर्म आत्मा का सच्चा श्रृंगार है। गुलाब के फूल में सुवास हो तो उसकी कीमत
है। सुगन्धरहित फूल चाहे जितना मनोहर और आकर्षक हो, उसकी कोई कीमत नहीं
है। ज्ञानीपुरुष कहते हैं "कि धर्मरहित जीवन भी सुगन्धरहित पुष्प जैसा है। मनुष्य धन
के बल से दूसरों को आकर्षित कर लें, परन्तु उनके जीवन में धर्म के अभाव में
शान्ति या आनन्द नहीं होता। धर्म से मानव की कीमत है।

बन्धुओं ! आपको अगर मानवजीवन को सफल बनाना हो तो तन-मन-वचन एवं
प्रत्येक व्यवहार-कार्यों में धर्म को ओतप्रोत कर दो। व्यापार करते हो तब ऐसा विचार
न करना कि व्यापार और धर्म के क्या सम्बन्ध है ? ईमानदारी, प्रमाणिकता और
सत्य, व्यापार का धर्म है। सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये रत्नत्रय समग्र जीवन का धर्म
है। चारित्र धर्म के बिना तो जीवन शून्य है। महात्मा भर्तृहरि ने कहा है -

"येषां न विद्या, न तपो, न दानम्, न चाऽपि शीलं न गुणों न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥"

जिसके जीवन में विद्या नहीं है। यह विद्या का अर्थ आजकल का शिक्षण नहीं,
परन्तु जो जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति दिलावे, ऐसी विद्या। कहा है - *"सा विद्या
या विमुक्तये"* भारतीय संस्कृति के पुरस्कर्ताओं ने उसी को विद्या कहा है, जो
आधि, व्याधि, उपाधि तथा सब प्रकार के तापों-दुःखों से मुक्ति दिलाए। जिसके जीवन
में कर्म की तमाम वर्गणीओं को जलाकर खाक कर दे, वैसा बाह्य या आभ्यन्तर तप
नहीं है, अपने सुख को छोड़कर दूसरों का भला करने की निःस्वार्थ भावनावाला
दान नहीं हैं तथा जिसके जीवन में दया, क्षमा, सेवा, विनय आदि सद्गुण नहीं है और
जिसका शील अच्छा (शुद्ध) नहीं है, वैसे जीव इस पृथ्वी पर भारभूत हैं। उसमें और
जंगल में विचरते मृगों में कोई अन्तर नहीं है। जिसके जीवन में धर्म है, वही सच्चे
अर्थो में मानव है।

बन्धुओं ! धर्म के प्रताप से तुम्हें मानवजीवन और इतनी सुख-सामग्री मिली है,
परन्तु उसमें लुब्ध और आसक्त मत बनो। एक सेठ को दो पुत्र थे। दोनों ही अशुभ कर्म
के उदय से बहुत गरीब थे। एक देव उनपर प्रसन्न हुआ। वह उन दोनों को रत्नद्वीप ले
गया। आपको भी रत्न बहुत अच्छे लगते हैं न ? तुम्हें कोई आकर यों कहे कि
अमुक जगह रत्न निकले हैं, तो तुम्हारे भी कान उत्सुकता से खड़े हो जाएँगे। पूछोगे -

पुत्र, धन या सुखसाधनों की इच्छा नहीं है । मैं संसार में लिप्त न हो जाऊँ, मेरी आत्मा सदैव जागृत रहे, ऐसा धर्मोपदेश सुनने की आशा से मैं आपके पास आई हूँ । यहाँ आने का मेरा और कोई प्रयोजन नहीं है । मैं इस शहर के राजा की रानी हूँ । राजा और मैं दोनों खूब दूर सैर करने गए थे । वापस लौटते समय थक जाने से विश्राम लेने हेतु इस बगीचे में आये थे । महाराजा इस समय निद्राधीन हो गए हैं । मैंने आपको दूर से देखा तो सोचा – अनायास ही ऐसा सुअवसर मिला है, मैं महात्माजी के पास जाऊँ, ये मुझे कुछ जीवन जीने की कला समझाएँगे । अतः आप मुझे मेरा जीवन सफल बने, ऐसा मार्ग समझाएँ ।" रानी बारबार उपेदश के लिए संत के सामने खूब गिड़गिड़ाई, तब संन्यासी ने मन में सोचा – 'इस रानी की अत्यन्त जिज्ञासा है और मेरा यह नियम है कि जो जिज्ञासु बनकर आए, उसे मुझे धर्मोपदेश देना । और फिर साधु उसका नाम है, जो आत्मकल्याण करते हुए पर का कल्याण कराए ।' ऐसा विचार करके उन्होंने रानी को उपदेश देने के लिए आँखें खोली । रानी को उपदेश देने हेतु उसने सर्वप्रथम अहिंसा की बात उठाई । 'महारानीजी ! इस जगत् में अहिंसा परम धर्म है । किसी भी जीव को मारना नहीं, और किसी को भी दुःख हो, ऐसा अनुचित कार्य नहीं करना, इसका नाम अहिंसा है । जैनधर्म में तो यहाँ तक कहा है कि एक फूल की कलि को दुःख हो, वहाँ हिंसा है । जहाँ अहिंसा होती है, वहाँ अभय है, और जहाँ हिंसा है, वहाँ भय है । मनुष्य सिंह, बाघ, एवं सर्प जैसे हिंसक प्राणियों को देखकर डरता है, उससे दूर भागता है । किसलिए ? क्योंकि सिंह, बाघ, सर्प आदि हिंसक प्राणी हैं, इस कारण उसे भय लगता है । सर्प की दाढ़ में जहर है, अगर वह काट लेगा तो मर जाएँगे । इस कारण उससे सब डरते हैं । परन्तु ये सिंह, बाघ आदि हिंसक प्राणी कदाचित् मारते हैं तो दो-चार मनुष्यों को मारते हैं, सांप भी दो-चार आदमियों को काटेगा, किन्तु दुष्ट भावनावाले क्रूर मनुष्य इतने निर्दय होते हैं कि एक ही दिन में लाखों जीवों का संहार कर डालते हैं । अतः विषधर (सर्प) की अपेक्षा भी भयंकर विष मानव के हृदय में भरा हुआ है । ऐसे मनुष्यों में जितनी क्रूरता है, उतनी इन हिंसक प्राणियों में नहीं है । इसलिए सर्वप्रथम तो मनुष्य को अपने हृदय में स्थित क्रूरभावना (क्रूरता) समाप्त करके अहिंसा को अपनानी चाहिए । अहिंसा का पालन करने के लिए जीवन में क्षमा की जरूरत है । क्षमा के अन्तर्गत शान्ति, सहिष्णुता, सेवा, मृदुता, दया, अनुकम्पा, मानवता आदि गुणों का समावेश हो जाता है । कई बार हम आगे-पीछे का विचार किये बिना छोटी-छोटी बातों में क्रुद्ध हो जाते हैं, बुरा मान जाते हैं, सहनशीलता खो बैठते हैं, ऐसा करने से स्वयं भी अशान्त बनते हैं, और दूसरों को भी अशान्त बना डालते हैं । इसके बजाय ऐसे मौके पर शान्ति रखकर अपराधी के अपराध सहन करके क्षमा प्रदान कर दें तो अपनी आत्मा भी शान्त और निर्भय हो जाती है, सामनेवाले व्यक्ति के हृदय में भी उसका प्रभाव पड़ता है, उसका हृदय-परिवर्तन जाता है ।"

नाम दैवी लक्ष्मी (सम्पत्ति)। जिन जीवों को पुण्य के प्रताप से बंगला मिला, किन्तु बंगले में रहकर वे धर्म नहीं करते, वह अन्धकार (तामस योनि) में जानेवाला है। जो जीव पूर्वजीवन में धर्म की आराधना करके आए हैं और इस भव में भी धर्म की आराधना करते हैं, ऐसे पुण्यवान् जीव प्रकाश में से आए हैं और प्रकाश में ही जाएँगे। कदाचित् पाप कर्म के उदय से धन न मिले, परन्तु धर्म को कदापि छोड़ना मत। गेहूँ बोनेवाले किसान को घास तो सहज ही मिल जाता है। इसी प्रकार जो धर्माचरण करता है उसे धन तो सहज ही मिल जाता है। अतः धन की चिन्ता मत करना, अपितु धर्म की चिन्ता करना।

हमने इससे पूर्व उक्त दो भाइयों की बात कही थी कि एक देव उनपर प्रसन्न हुआ। उस देव ने शर्त की थी कि 'सूर्योदय के समय तुम्हें रत्नद्वीप लाकर रखूंगा और सूर्यास्त के समय रत्नद्वीप से वापस तुम्हारे स्थान पर रख दूंगा। इस दौरान जितने भी रत्न लिये जा सकें, उतने ले लेने हैं।' अतः इस बारे में हमें भी विचार करना है, पुण्यरूपी देव ने हमें मानव भवरूपी रत्नद्वीप में लाकर रखे हैं। उस पुण्य-देव ने भी शर्त रखी है कि 'जहाँ तक तुम्हारे आयुष्यरूपी सूर्य का उदय है, वहाँ तक हे भव्यजीवों ! तुम इस मानव भवरूपी रत्नद्वीप में से ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूपी अमूल्य रत्न जितने भी तुम से लिये (अर्जित किये) जा सकें, उतने ले लो।'

पुण्यदेव ने उन दोनों भाइयों के रत्नद्वीप में रहने के लिए सुन्दर महल बना दिया। घूमने-फिरने के लिए बगीचा और खाने-पीने के एक से बढ़कर एक बढ़िया से बढ़िया भोजन की व्यवस्था कर दी। वहाँ जाकर दोनों भाई विचार करने लगे कि 'यहाँ तो स्वर्ग जैसे सुख हैं। हमें क्या करना है ?' बड़ा भाई तो पहले कभी नहीं खाये हुए पकवान्न और फरसाण खाने में ललचा गया। उसने पेटभर कर खूब खाया। जबकि छोटे भाई ने थोड़ा-सा खाया। अधिक खाने से प्रमाद आता है। इस कारण उसने भूख मिटे और काम हो, इस लिहाज से थोड़ा खाया। फिर वह अपनी गाड़ी में रत्न भरने लगा। सारी गाड़ी रत्नों से भरकर उस पर कपड़ा ढक दिया। फिर वह निश्चिंतता से सो गया। जबकि बड़े भाई ने पेट में ठूंस-ठूंसकर मिठाइयाँ खाई, फिर वह बगीचे में घूमने गया। नींद आने लगी तो निश्चिंत होकर सो गया। उसके छोटे भाई ने उसे दो-तीन बार जगाया और कहा - "आप अब क्यों सो रहे हो ? जल्दी उठो और गाड़ी में रत्न भर लो। अभी रात पड़ जाएगी और देव अपने को अपने घर पहुँचा देगा।" इस पर बड़ा भाई बोला - अभी क्या उतावल है ? अभी झटपट रत्न बटोर लेता हूँ। फिर गाड़ी में रत्न भरने में कितनी देर लगेगी ? जीने की अपेक्षा देखना भला। ऐसा खाने-पीने की और घूमने फिरने की मौज कहाँ मिलेगी ?" बड़ा भाई तो खाने-पीने और घूमने फिरने में ही रह गया। सूर्यास्त होते ही देव उपस्थित हुआ और बोला - "तुम अपनी-अपनी गाड़ी में बैठ जाओ।" इस पर बड़ा भाई बोला - "अजी ! थोड़ी देर ठहरो, मैं रत्न ले लूं।" देव ने

पुत्र, धन या सुखसाधनों की इच्छा नहीं है। मैं संसार में लिप्त न हो जाऊँ, मेरी आत्मा सदैव जागृत रहे, ऐसा धर्मोपदेश सुनने की आशा से मैं आपके पास आई हूँ। यहाँ आने का मेरा और कोई प्रयोजन नहीं है। मैं इस शहर के राजा की रानी हूँ। राजा और मैं दोनों खूब दूर सैर करने गए थे। वापस लौटते समय थक जाने से विश्राम लेने हेतु इस बगीचे में आये थे। महाराजा इस समय निद्राधीन हो गए हैं। मैंने आपको दूर से देखा तो सोचा - अनायास ही ऐसा सुअवसर मिला है, मैं महात्माजी के पास जाऊँ, ये मुझे कुछ जीवन जीने की कला समझाएँगे। अतः आप मुझे मेरा जीवन सफल बने, ऐसा मार्ग समझाएँ।" रानी बारबार उपेदश के लिए संत के सामने खूब गिड़गिड़ाई, तब संन्यासी ने मन में सोचा - 'इस रानी की अत्यन्त जिज्ञासा है और मेरा यह नियम है कि जो जिज्ञासु बनकर आए, उसे मुझे धर्मोपदेश देना। और फिर साधु उसका नाम है, जो आत्मकल्याण करते हुए पर का कल्याण कराए।' ऐसा विचार करके उन्होंने रानी को उपदेश देने के लिए आँखें खोली। रानी को उपदेश देने हेतु उसने सर्वप्रथम अहिंसा की बात उठाई। 'महारानीजी! इस जगत् में अहिंसा परम धर्म है। किसी भी जीव को मारना नहीं, और किसी को भी दुःख हो, ऐसा अनुचित कार्य नहीं करना, इसका नाम अहिंसा है। जैनधर्म में तो यहाँ तक कहा है कि एक फूल की कलि को दुःख हो, वहाँ हिंसा है। जहाँ अहिंसा होती है, वहाँ अभय है, और जहाँ हिंसा है, वहाँ भय है। मनुष्य सिंह, बाघ, एवं सर्प जैसे हिंसक प्राणियों को देखकर डरता है, उससे दूर भागता है। किसलिए? क्योंकि सिंह, बाघ, सर्प आदि हिंसक प्राणी हैं, इस कारण उसे भय लगता है। सर्प की दाढ़ में जहर है, अगर वह काट लेगा तो मर जाएँगे। इस कारण उससे सब डरते हैं। परन्तु ये सिंह, बाघ आदि हिंसक प्राणी कदाचित् मारते हैं तो दो-चार मनुष्यों को मारते हैं, सांप भी दो-चार आदमियों को काटेगा, किन्तु दुष्ट भावनावाले क्रूर मनुष्य इतने निर्दय होते हैं कि एक ही दिन में लाखों जीवों का संहार कर डालते हैं। अतः विषधर (सर्प) की अपेक्षा भी भयंकर विष मानव के हृदय में भरा हुआ है। ऐसे मनुष्यों में जितनी क्रूरता है, उतनी इन हिंसक प्राणियों में नहीं है। इसलिए सर्वप्रथम तो मनुष्य को अपने हृदय में स्थित क्रूरभावना (क्रूरता) समाप्त करके अहिंसा को अपनानी चाहिए। अहिंसा का पालन करने के लिए जीवन में क्षमा की जरूरत है। क्षमा के अन्तर्गत शान्ति, सहिष्णुता, सेवा, मृदुता, दया, अनुकम्पा, मानवता आदि गुणों का समावेश हो जाता है। कई बार हम आगे-पीछे का विचार किये बिना छोटी-छोटी बातों में क्रुद्ध हो जाते हैं, बुरा मान जाते हैं, सहनशीलता खो बैठते हैं, ऐसा करने से स्वयं भी अशान्त बनते हैं, और दूसरों को भी अशान्त बना डालते हैं। इसके बजाय ऐसे मौके पर शान्ति रखकर अपराधी के अपराध को सहन करके क्षमा प्रदान कर दें तो अपनी आत्मा भी शान्त और निर्भय हो जाती है, और सामनेवाले व्यक्ति के हृदय में भी उसका प्रभाव पड़ता है, उसका हृदय-परिवर्तन भी हो जाता है।"

न ? आप लोग इतने सब बैठे हैं, इन सबमें से कुछेक भाइयों को प्रतिक्रमण आता होगा। किसे प्रतिक्रमण सीखने का मन होता है ? प्रतिक्रमण पापों का प्रतिलेखन (अवलोकन) करके उन्हें पश्चात्तापपूर्वक प्रज्वलित करने का अमोघ साधन है । सारे दिवस भर में जो-जो पाप जिस-जिस प्रकार से लगा हो, उसे याद करके प्रतिक्रमण के दौरान उसकी आलोचना निन्दना-गर्हणा और क्षमापना करनी है । दिवस में जो दोष लगे हों, उनका प्रायश्चित्त शाम को प्रतिक्रमण करने के समय कर लेना । इस प्रकार उपयोगपूर्वक एकाग्रचित से प्रतिक्रमण (षड् आवश्यक रूप प्रतिक्रमण) करने से आत्मा पापरहित निर्मल बनती है और हलकी फूल हो जाती है ।

जब मनुष्य को कोई रोग हो जाता है, जब डोक्टर के पास रोग का निदान कराने जाते हैं । डोक्टर जांच करके कहता है - "तुम्हारे शरीर में अमुक प्रकार के जन्तु बढ़ गये हैं । इसके कारण रोग ने तुम्हारे शरीर पर हमला किया है ।" शरीर में जितने जन्तु चाहिए उतने रहने चाहिए । अगर वे बढ़ जाते हैं तो आरोग्य को धक्का पहुँचाते हैं । रोग मिटाने के लिए मानव तुरंत उपचार करता है । परन्तु इस भवरोग को नष्ट करने का कोई उपचार करता है ? जन्तु बढ़ते हैं तो शरीर को हानि पहुँचती है । इसी तरह भगवान् कहते हैं - "तेरी आत्मा पर पाप के जन्तु बढ़ जायेंगे तो आत्मा के आरोग्य को निर्बल कर देंगे ।" अतः पापरूपी जन्तुओं को नष्ट करने के लिए सावधान हो जाओ । आत्मा तो मूल स्वरूप में विशुद्ध और निर्मल है । परन्तु जहाँ तक यह शरीर के साथ जकड़ा हुआ है, वहाँ तक कर्मरूपी अनेक छोटे-बड़े रोग उससे चिपटे हुए हैं । सबसे बढ़कर बड़ा से बड़ा कोई रोग हो तो वह है - भवरोग ! इस रोग के कारण आत्मा को असह्य यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं । जन्म-समय की तीव्र वेदना और मरण का महादुःख जीव को भोगना पड़ता है । इसके अतिरिक्त दूसरे अनेक छोटे-बड़े रोग हैं, जिनसे पीड़ित होना पड़ता है । इन रोगों का उपचार करनेवाले कितने हैं ? यह रोग किस कारण से होता है ? इसका निदान कितने लोग करते हैं ?

बन्धुओं ! इस भव-रोग का कारण अधर्म व पाप का आचरण है । मानव जितना-जितना धर्म से विमुख होकर अधर्म व पाप का आचरण करता है, उतना-उतना उसका रोग बढ़ता जाता है और धीरे-धीरे वह रोग पुराना होता जाता है । रोग जितना पुराना होता जाता है, उतना ही उसे दूर होने में समय लगता है । अनन्त भवों के कर्म इस मानवभव में आकर खपाने हैं । पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ कर्म का सर्वथा नाश हो जाए, तभी आत्मा नीरोगी बनती है, तभी मोक्ष के अव्याबाध सुख उसे मिलते हैं । किन्तु यह भव-रोग तुम्हें रोग रूप में कष्टप्रद लगे तो निदान कराने हेतु आओ न ? संक्षेप में, हमारी बात चलती थी 'आवश्यक सूत्र' की । प्रतिक्रमण छह आवश्यकों में से चौथा आवश्यक है । किन्तु प्रतिक्रमण सीखोगे नहीं तो, क्या करोगे ? प्रतिक्रमण तुम सीखोगे, तो पन्द्रह कर्मादान किसे कहते हैं ? यह जान सकोगे और प्रतिदिन प्रतिक्रमण के समय बोलने से, ऐसा विचार होगा कि यह कर्मादानवाला व्यवसाय मुझे नहीं करना है । "जैसे

तक नहीं किया उन्होंने । अद्भुत क्षमावान् संन्यासी ने कहा - "भगवान् तुम्हें सद्बुद्धि दें । मैं तुम्हारे अपराध के लिए क्षमा प्रदान करता हूँ । देह काटा जाता है, आत्मा तो अमर है ।" यह सुनकर जैसे अग्नि में घी डालने पर अधिक भड़क उठती है, वैसे ही राजा का क्रोध भड़क उठा । नीतिकार ने ठीक कहा है - *'उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय, न शान्तये ।'* - "मूर्खों को उपदेश देने से वे शान्त नहीं होते, बल्कि अधिकाधिक प्रकोप करते हैं । संन्यासी के उद्‌गार सुनकर राजा का क्रोध और अधिक बढ़ गया । वह आवेश में आकर जोर से चिल्लाया - "अरे जोगड़े ! तेरे पास है ही क्या, जो तू अपना बचाव कर सके ? और तू मेरे अपराध के लिए क्या क्षमा करनेवाला था । मुझे तेरी क्षमा की जरूरत नहीं है !" यों कहकर राजा ने तलवार से संन्यासी का दूसरा हाथ भी काट डाला । फिर भी संन्यासी जरा भी क्रुद्ध नहीं हुए । वह शान्तिपूर्वक बोले - "राजन् ! मुझे जीतने की अपेक्षा तू अपनी आत्मा को जीत, तो तेरा कल्याण होगा ।" इस पर राजा ने अधिक कुपित होकर उनका पैर काट डाला । इस पर भी संन्यासी ने शान्तभाव से कहा - "मैं अब भी तुम से कहता हूँ कि कुछ समझो । मुझे तो तुम पर दया आती है । क्रोधावेश में तुम्हें अपने कर्तव्य का भान नहीं है । जब भान होगा, तब तुम्हारे हृदय में पछतावे का पार नहीं रहेगा । अब भी सोचो । किसी के अपराध का विचार किये बिना निरपराधी को सजा करना पाप है । यह पाप तुम्हें परभव में भयंकर पीड़ित करेगा, यह याद रखना ।" इतने पर भी रोषवश राजा ने उनका दूसरा पैर भी काट डाला । संन्यासी की एक बात भी नहीं सुनी । अत्यधिक क्रोधावेश में आकर राजा अपनी रानी को लेकर राजमहल चला गया ।

संन्यासी की चिन्ता में रानी की नींद उड़ गई : रात पड़ी । राजा-रानी दोनों सो गए, परन्तु नींद दोनों को नहीं आ रही थी । रानी के मन में ऐसे विचार उमड़-घुमड़कर आने लगे - 'अहो ! संन्यासी कितने पवित्र और सच्चरित्र थे ? वह तो अपने ध्यान में मग्न थे । मैंने बहुत विनती की, तब उन्होंने मुझे उपदेश दिया । उनकी दृष्टि कितनी पवित्र थी ! मेरे कारण उस पवित्र आत्मा के हाथ-पैर काट डाले गए ! इसकी अपेक्षा तो राजा ने मुझे मार डाली होती तो अच्छा होता ! आज मेरे निमित्त से कितना घोर पाप हो गया ?' इसी चिन्ता ही चिन्ता में रानी की नींद हराम हो गई । उधर राजा के मन में भी रह-रहकर ऐसे विचार आने लगे - 'पापी कितना नीडर था ? उसने मेरा अपमान किया । मैंने उसे इतनी सजा दी, फिर भी मेरे से माफी नहीं माँग रहा था ! ऊपर से कह रहा था - मैं तुझे क्षमा करता हूँ । चलकर देखें तो सही, उसका क्या हाल हो रहा है ? वह हमें बद्दुआ दे रहा होगा ।' रानी ने भी कहा - "वे ऐसे साधु नहीं हैं । हम दोनों चलकर देखें ।" अतः आधी रात होने पर भी राजा और रानी दोनों मन का भार हलका करने के लिए बगीचे में आए ।

दुष्काल के कठिन दिवस बिता देंगे और एक वर्ष के पश्चात् यहाँ सुकाल हो जाएगा, तब हमलोग वापस लौट आएँगे । मेरे लिए आपका मन बहुत ही दुःखित होता है, मुझे साथ में ले जाने की आपकी इच्छा नहीं है । परन्तु मुझे तो आपके साथ ही रहना है । मुझे पीहर जाकर क्या करना है ?" जाहल की दृढ़ता देखकर उसके पति ने सिन्धदेश में जाने का निश्चय किया ।

बन्धुओं ! कितनी दृढ़ता है, जाहल की ? अपना भाई अगर बड़ा राजा हो तो वर्तमान स्त्रियाँ जंगल के दुःखों को सहने के लिए तैयार नहीं होती । यहाँ तो रा'नवघण जैसा जूनागढ का बलिष्ठ व्यक्ति जिसका बांधव था । जाहल जैसी हजारों नारियाँ और उसके पति जैसे हजारों पुरुष जिंदगीभर उनके राज्य में रहे, तो भी उसे किसी बात का घाटा होनेवाला नहीं था, जाहल का नाम सुनकर नवघण नंगे पैर सामने दौड़कर आए और जिसके मुँह से निकलते बोल झेलने के लिए तैयार रहे, ऐसा था और जिसकी छाया में, एक तो क्या, सैंकड़ों दुष्काल पड़ें तो भी कोई गर्म आंच आए, ऐसा नहीं था । ऐसे स्थान में भी दुःख के वक्त में जाहल को जाना उचित नहीं लगा । वहाँ जाना हो तो सुख में जाना, दुःख में तो हर्गिज नहीं ।

सारा देश दुष्काल का शिकार बन गया था । समग्र देश के लोग अन्न-पानी के बिना तड़प रहे थे । ऐसे नाजुक वक्त के समय में नवघण राजवैभव के आनन्द में मशगूल होकर अपनी प्रिय बहन जाहल को भूल गया था । यह संसार ऐसा विचित्र है कि मनुष्य अपने सुख में मग्न हो जाता है, तब दूसरे सुखी हैं, या दुःखी, उसका जरा भी विचार उसे नहीं आता । जाहल, उसका पति और उनके सारी ढाणी में रहनेवाले आहिर अपने-अपने कुटुम्ब और पशुधन को साथ लेकर सिन्धदेश में जाने को तैयार हुए ।

सघळो सोरठ देश, रोत्तो राता पाणीओ ।
हलकी हाल्यो विदेश, धनथी तनने पोषवा ॥

अपनी जन्मभूमि (वतन) को छोड़कर किसी को अन्यत्र जाना अच्छा नहीं लगता । ऐसे नाजुक समय में पापी पेट को पोषने के लिए जाते वक्त जाहल का हृदय भर आया । परन्तु गये बिना कोई भी चारा नहीं था । या तो देह का नेह छोड़ना पड़े अथवा मरण की शरण स्वीकारनी पड़े । दो में से एक रास्ता लिये बिना चले ऐसा नहीं था । सभी आहीरों को भी दुःख हुआ । मानो, सारी ढाणी के लोग एक कुटुम्ब के हों यों इकट्ठे होकर सिन्धदेश में जाने के लिए तैयार हुए । जब सोरठ देश छोड़कर सिन्ध में जाने के लिए कदम उठाए, उस समय जाहल अपने पशुओं को सम्बोधन करके कहने लगी - "अब चलो । इस देश में अपना कोई आधार नहीं है । इसलिए अब हमें परदेश का आश्रय लेना पड़ेगा ।" यों कहते-कहते उसकी आँखों से धाराप्रवाह अश्रुपात होने लगा । सभी आहीर

पूर्वोक्त गाथा में सच्चे साधु के लक्षण के विषय में बात चल रही थी। भगवान् कहते हैं – "मेरे शासन के साधु का कोई तिरस्कार करे या सत्कार करे, उसे गौचरी मिले या न मिले, किन्तु वह तनतनाहट नहीं करता, शान्त रहता है।" शासनस्थ साधु किसी भी कार्य में चपलता-चंचलता न रखे, अपितु स्थिरचित्त रखे। मन में स्थिरता हो तो कार्य में सफलता मिलती है। गौचरी में अलाभ का परिषह आए तो शान्त रहे। ऐसा साधु *अप्पभासी*-अल्पभाषी हो। अर्थात् – बोलने की जरूरत पड़े तो बहुत ही थोड़े नपे-तुले शब्दों में बोले, अधिक न बोले, न ही अप्रासंगिक बोले। बिना मतलब वह न बोले। *मियासणे* – मिताशन अर्थात् – वह बहुत ही परिमित आहार करे, प्रमाण से अधिक या स्वाद लोलुपता के कारण अधिक आहार करने पर स्वाध्याय और ध्यान भलीभांति नहीं हो सकता, नींद ज्यादा आएगी, आलस्य घेरेगा। अल्पाहार करने से इन्द्रियाँ भी शान्त रहती हैं। गौचरी जानेवाला संत, आहार न मिले या कम मिले तो भी गृहस्थ की निन्दा न करे। वीतराग-प्रभु ने साधु-साध्वी के लिए ऐसा सुन्दर और निरवद्य मार्ग बताया है। महाबल अनगार वीतराग-प्रभु की आज्ञा का पालन करते हुए बीस स्थानक की आराधना कर रहे हैं।

रा'नवघण की कथा

जाहल के विवाह के अवसर पर आहीरो की समस्त ज्ञाति इकट्ठी हुई। उस समय देवायत सूबेदार के पास गया और उससे निवेदन किया – "साहब ! मैंने अपनी पुत्री जाहल का विवाह धामधूम से करने का निश्चय किया है। हमारी न्यात (ज्ञाति) बहुत बड़ी है। साथ ही हमारी आहिर जाति बहुत ही खुमारीवाली होती है। भोजन में या अन्य किसी बात में आपत्ति आये तो न्यात में दो भाग पड़ जाते हैं, वे एक-दूसरे के लिए कट मरते हैं। अतः व्यवस्था भलीभांति रखने के लिए मुझे थोड़ी सेना दीजिए।" सूबेदार को यह बात पसंद नहीं आई। क्योंकि जिसने शत्रु का अपने घर में पालन-पोषण किया था, उसे सेना कैसे दी जा सकती है ? उसे किले के बाहर सेना को भेजना सुरक्षाभरा प्रतीत नहीं हुआ। अन्य अधिकारियों ने सूबेदार से कहा – "इस देवायत को जेल में बंद करके बहुत कष्ट दिया है। इस कारण अगर आप उसे ऐसे समय में सेना नहीं देंगे तो इस विवाह में सभी आहीर इकट्ठे हुए हैं। वे उक्त दुःख का वैर वसुल करने के लिए जूनागढ पर चढाई कर सकते हैं। इसकी अपेक्षा ऐसे समय में उसे अपनी सेना देना ठीक है। अपना सैन्य उसकी देखरेख में हो तो वह कोई गलत खेल नहीं खेल सकेगा। कदाचित वह गलत खेल खेलेगा तो साथ में अपना सैन्य होगा तो कोई आपत्ति नहीं आएगी। अतः ऐसे समय में उसे अपनी सेना देने में अपना हित रहा हुआ है।"

यह बात सूबेदार के गले उतर गई। इस कारण उसने आधी सेना देवायत के यहाँ भेज दी। देवायत और दूसरे आहीर उसकी बहुत खातिरदारी करते थे। इस कारण लश्करी

व्याख्यान - ४०

श्रावण वदी ४, शुक्रवार | ता. १३-८-७६

जिसको चढ़ा आत्मा का रंग : छूट जाए मिथ्यात्व का संग

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि सर्वज्ञ भगवन्त के मुख में से प्रवाहित वाणी का नाम है - सिद्धान्त (श्रुत या आगम)। अनन्तकाल से भवाटवी में भटकते हुए जीवों को भगवान् ने सिद्धान्तोपदेश द्वारा मोक्ष जाने के लिए मार्गदर्शन किया है। *'पणया वीरा महावीहिं ।'* इस सिद्धान्त-वाणी पर श्रद्धा करके इस महान् मोक्षमार्ग में अनेक महापुरुषों ने संयम में अपना बल-पराक्रम करके संसार के परिभ्रमणरूप जन्म-मरणरूप दुःखों को तथा अष्टविध कर्मों को समूल नष्ट करके शाश्वत-सुख के स्थानरूप मोक्ष को प्राप्त किया है। इस वाणी पर श्रद्धा करके भूतकाल में भी अनन्त जीव मोक्ष में गए हैं।

जबतक वीतरागवाणी पर यथार्थ श्रद्धा नहीं हुई, वहाँ तक मोक्ष बहुत दूर है, यह समझ लेना। वास्तव में, यदि तुम समझो तो भगवान् ने सिद्धान्त में ज्ञान के मोदक परोसे हुए हैं, परन्तु गले में कुशंकारूपी प्लेग की गांठ हो गई हो तो वह लड्डू गले कैसे उतरे ? भगवान् की वाणी तो लड्डू से भी अधिक मीठी अमृत-सरीखी है। परन्तु अश्रद्धा के कारण जीव संसार में परिभ्रमण करता है। यों तो मिथ्यात्वी जीव भी नव-ग्रैवेयक देवलोक तक तो जाता है, परन्तु इससे उसका संसार-परिभ्रमण रुकता नहीं है। एकबार सम्यग्दर्शन का दीपक प्रकट हो जाए तो जीव को मोक्ष-गमन का सर्टीफिकेट मिल जाता है। फिर उसे ज्यादा से ज्यादा अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल से अधिक संसार-भ्रमण करना नहीं होता। तुम अपने पुत्र को अच्छे से अच्छे कोलेज में प्रवेश का एडमिशन प्राप्त कराने के लिए कितनी दौड़धूप करते हो ? सुना है कि पन्द्रह, बीस या पच्चीस हजार रुपये डोनेशन देकर भी लोग कोलेज का एडमिशन प्राप्त करते हैं।

बन्धुओं ! मैं आपसे पूछती हूँ कि आपने बहुत दौड़धूप करके अपने पुत्र को (कोलेज) में प्रविष्ट कराने के लिए डोनेशन देकर एडमिशन प्राप्त किया। परन्तु लड़का पढ़ने के बाद कैसा होगा ? यह तो ज्ञानी जानें। वह पास होगा या फेल ? यह भी भाग्य की बात है। फिर भी तुम्हारे मन में कितनी उमंग है ? परन्तु क्या हमारे महावीर प्रभु की मेडिकल कोलेज में आपको अपने पुत्र को प्रविष्ट कराने का मन होता है ? इसमें आप उसे प्रविष्ट कराने आएँगे तो डोनेशन देना नहीं पड़ेगा। इस कोलेज में प्रविष्ट होने के पश्चात्त आत्मा का कल्याण है। फिर भी जीव में कितना भयंकर अज्ञान है कि ऐसा सुन्दर भव्य मार्ग

अन्न के बिना मनुष्य मरने लगे। जाहल के घर में पशुधन बहुत था। उसके सामने चिन्ता खड़ी हुई कि इन सब पशुओं का रक्षण कैसे करना ? जाहल की स्थिति बहुत विषम (मुश्किल) हो गई। परन्तु उसमें काफी ताकत थी; कि दुःख के समय भाई के यहाँ भी नहीं जाना। उसके पति ने उसे बहुत समझाया कि "तू सुख में पली-पुसी है, अतः अभी तो तू अपने पीहर (भाई के यहाँ) चली जा। जब सुकाल हो जाय, तब आ जाना। तेरे से यह कष्ट सहन नहीं हो सकेगा।" अब जाहल प्रत्युत्तर में क्या कहेगी ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

(आज पूज्य अजरामरजी महाराज साहब की पुण्यतिथि होने से उस प्रसंग पर महाविदुषी बा. ब्र. पू. शारदाबाई महासतीजी तथा बा. ब्र. अनिलाबाई महासतीजी पूज्य महाराज साहब के ज्ञान-दर्शन-चारित्र से परिपूर्ण जीवन का सुन्दर सांगोपांग वर्णन किया था।)

व्याख्यान - ३९

श्रावण वदी ३, गुरुवार | ता. १२-८-७६

प्रत्येक प्रवृत्ति में सद्धर्म को आगे रखो

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी महापुरुष भव्यजीवों को प्रेरणा के पीयूष का पान कराते हुए कहते हैं - "ओ भव्यजीवों ! इस मानवजीवन में यदि कोई नवनिर्माण करने और प्रेरणा का देनेवाला हो तो *एगो धम्मो*, अर्थात् - केवलि-प्ररूपित (आत्म) धर्म है। धर्मविहीन दूसरे सब तत्त्व असार हैं। जैसे प्राणरहित कलेवर की कोई कीमत नहीं होती, वैसे ही धर्मविहीन जीवन की भी कोई कीमत नहीं होती। धर्म जीवन का प्राण है। धर्म और जीवन तथा जीवन और धर्म, इन दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध है। मानवशरीर में प्राण होता है, तबतक शरीर को रखा जाता है, देह में से प्राण चले जाने के बाद उसे जला दिया जाता है अथवा दफना दिया जाता है। इसी प्रकार जिसके जीवन में धर्म का प्राण धड़कता होगा, तभी तक जीवन का मूल्य है। धर्म से रहित जीवन मृत-कलेवर जैसा है। धर्म के महत्त्व के विषय में कहा गया है -

धम्मो ताणं धम्मो सरणं, धम्मो गइ - पइट्ठाय।
धम्मेण सुचरिएण, लब्भइ अयरामर ठाणं ॥

कहलाते हैं, इन १६ महारोगों की अपेक्षा भी अगर कोई बड़ा से बड़ा रोग हो तो वह मिथ्यात्व है । कहा भी है –

मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं तमः ।
मिथ्यात्वं परमः शत्रुः, मिथ्यात्वं परमं विषम् ॥

अर्थात् – मिथ्यात्व उत्कृष्ट रोग है, मिथ्यात्व घोर अन्धकार है, मिथ्यात्व बड़ा भारी शत्रु है और मिथ्यात्व भयंकर हलाहल विष है । जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ संसार है । जिसके मिथ्यात्व का भंग (नाश) हो जाता है, उसका संसार कट हो जाता है । जीव को संसार में भटकाने वाले पाँच कारणों में से सबसे अव्वल कारण मिथ्यात्व है । सर्वप्रथम मिथ्यात्व चला जाए तो फिर अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग को दूर करने का पुरुषार्थ किया जाता है । जबतक मिथ्यात्व नष्ट न हो, वहाँ तक कुछ सूझता नहीं । मिथ्यात्व का अन्धकार मिटे और सम्यक्त्व का सूर्य प्रकट हो, तभी दूसरे चार कारणों को टालने का मार्ग सूझता है । सम्यक्त्व के पाँच प्रकार हैं । उनमें से एक क्षायिक सम्यक्त्व तो इतना पावरफुल है कि जिसको यह सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, वह मनुष्य उसी भव में (नरकादि का आयुष्य पहले न बंधा हो तो) मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । जैसे कोई दवा पावरफुल होती है तो वह रोग को तुरंत दबा देती है न ? वैसे ही यह सम्यक्त्व उसी भव में संसार का (भव-भ्रमण) रोग मिटाकर व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करा देता है । अतः निश्चय करो कि मुझे सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं मरना है ।

मिथ्यात्व भाव में जीव अज्ञान (अबोध) के वश होकर कितने कर्म बांध लेता है ? यह शरीर भी कर्माधीन है । कर्म है तो शरीर है । शरीररूपी कोथले में अनन्तशक्ति का स्वामी आत्मा भरा हुआ (बंद) है । किसी मनुष्य को कोथले में भरकर बंद कर दिया जाए तो कैसी व्याकुलता होती है ? परन्तु अनन्तकाल से कार्मणि के कोथले में बंद होकर जीव अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करता है, उसकी कितनी व्याकुलता होती है ? जो शरीर का सर्वथा त्याग करके सिद्ध परमात्मा हो गए, क्या उन्हें कोई उपाधि है ? कुछ भी नहीं । यह सब उपाधि तो संसार में है । मिथ्यात्व आत्मा के आरोग्य में बाधक महान् रोग है । यह बात आपने अनेक बार सुनी है । जानते भी हो, फिर भी आज आत्मा का स्वरूप भूलकर भ्रान्ति में पड़े हुए हो । आत्म-भ्रान्ति ही तो मिथ्यात्व है । कहा भी है –

"आत्मभ्रान्ति - सम रोग नहिं, सद्गुरु वैद सुजान ।
गुरु-आज्ञा-सम पथ्य नहिं, औषध विचार है - ध्यान ॥"

भ्रान्ति का अर्थ क्या है ? भ्रान्ति चतुर्गतिक-परिभ्रमण का मूल कारण है । भ्रान्ति महारोग है । उससे आत्मा अपना लक्ष्य चूक जाता है । भ्रान्ति के कारण आत्मा का अनादर होता है । अतः भ्रान्ति को दूर करने के लिए वीतरागवाणी में यथार्थ प्रतीति करनी पड़ेगी । भ्रान्ति का दूर होना ही सम्यग्दर्शन प्राप्त होना है । एक बार भी जीव को सम्यक्दर्शन का स्पर्श हो जाए तो वह आत्मा देर-सबेर अवश्य तर जाता (संसारसागर से पार हो जाता) है । सम्यग्दर्शन आत्मकल्याण का मूलाधार है ।

"हैं ! कहाँ हैं रत्न ?" तुम्हें अगर निश्चित खबर मिल जाए कि अमुक जगह रत्न मिलते हैं, तो उन्हें लेने के लिए दौड़-धूप करोगे न ? याद रखना, रत्न चाहे जितने इकट्ठे कर लो, तिजोरी में भर लो, परन्तु ये कोई साथ में आनेवाले नहीं हैं। बोलो, अब तुम्हें कौन-सा रत्न चाहिए ? प्राप्त करने जैसा कोई रत्न हो तो भगवान् कहते हैं - *'एगो धम्मो'* - वह है एक मात्र धर्मरत्न। यह रत्न जिसने प्राप्त कर लिया, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं रहता। ऐसे उत्तम धर्मरत्न को प्राप्त करने के लिए मनुष्य जन्म की महत्ता बताई है। एक भक्त ने गाया है -

हुं केवो भाग्यशाळी, भगवाननी भूमिने आ भवमां में निहाळी।
अजगर कोई बने छे, कोई पशु बने छे,
कोई बने कबूतर, जन्तु कोई बने छे।
हुं मानव-जन्म पाम्यो, जे जीवने ले उगारी ॥ हुं केवो...

मैं कैसा भाग्यवान् हूँ कि जिस भूमि से भगवान् बना जा सकता है, वैसी भूमि में मेरा जन्म हुआ है। ज्ञानी कहते हैं कि मृत्युलोक में प्रत्येक प्रकार के जीव हैं - कोई कबूतर, चिड़िया और तोते के रूप में जन्मा है, परन्तु मैंने तो उत्तम मानव-जन्म पाया है। भले ही इस समय कर्मयोग से तीर्थंकर भगवान् नहीं मिले, परन्तु मेरे महान् भाग्य हैं कि वीतराग-धर्म को भलीभांति समझानेवाले धर्मगुरु मिले हैं। इन बेचारे चींटी, मकौड़े, आदि को तो कितना भय रहता है ? रास्ते पर चले जा रहे मानव देख-भाल किये बिना पैर रखे तो वे बेचारे कुचलकर मर जाएँ, ऐसा इनका जीवन है। सर्प, अजगर आदि हिंसक जानवर हैं। ये सब कुछ भी धर्म का आचरण कर नहीं सकते। परन्तु मैं तो धर्मरत्न को प्राप्त करके अपना जीवन अवश्य सफल बनाऊँगा।

बन्धुओं ! तुम अपने आपको किस कारण से भाग्यवान् मानते हो ? धन से या धर्म से ? *आज अधिकांश मनुष्य धन से अपने आपको भाग्यशाली मानते हैं।* पर विचार करो, जिसे करोड़ों की सम्पत्ति मिली है, परन्तु धर्म नहीं मिला, उसके जैसा कोई दुःखी नहीं है। आज अधिकांश लोगों को देखते हैं कि जिनके यहाँ सम्पत्ति बढ़ती जाती है, उसके यहाँ धर्म प्रायः भुलाता जा रहा है। जैन कहलानेवाले धनिकों के यहाँ आलू, प्याज तो कोमन हो गया है। अरे ! कितने ही लोग तो अंडे भी खाने लगे हैं। यह क्या कम दुःख की बात है ? जब मैं सुनती हूँ, जैनों के घरों में अंडे खाये जाते हैं तब मेरा रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। ओह ! ऐसे जीवों को कैसे सुधारा जाए ? पूर्वकृत पुण्य के फल-स्वरूप सुख और सम्पत्ति मिली है, किन्तु ऐसे जीव पुण्य को जलाकर खाक कर रहे हैं। परिणाम-स्वरूप पाप उन्हें अधोगति में फेंक देगा। लक्ष्मी पुण्य से मिली है, परन्तु लक्ष्मी आने पर धर्म नष्ट होता हो तो ऐसी आसुरी लक्ष्मी पसन्द मत करना। आज बहुत से ऐसे भी कुटुम्ब हैं, जिन्हें लक्ष्मी मिली है, फिर भी वे धर्म को नहीं भूलते। इसका

जाएगा। वैसे ही आत्मा अगर अपने ज्ञान-दर्शनादि स्व-भाव में स्थिर रहे तो उसकी शोभा है, किन्तु पर-पुद्गल में पड़कर वह विषयों का गुलाम बन जाएगा तो चतुर्गति संसार में फेंका जाकर भटकता रहेगा। मानवतन विषयों में आसक्त बनने के लिए नहीं है, अपितु मोक्ष में जाने के लिए साधन है। यह साधन बन्धन न बन जाए, इसका ध्यान रखना। इस एक ही साधन द्वारा मोक्ष में भी जाया जा सकता है और नरक में भी जाया जा सकता है।

मने आ देह उद्धारे, नरकमां ए ज गबड़ावे, दमुं तो पार उतरावे, ने नमुं तो पाप बंधावे।
साधन तरी जवानुं, कांठा उपर डूबावुं छुं, आ देहनी पूजामां दिनरात वितावुं छुं।
कीमती समय जीवननो हुं राखमां मिलावुं छुं॥ आ देहनी...

इस शरीर का तप और संयम द्वारा दमन किया जाए तो मोक्ष में जाया जा सकता है। किन्तु अगर उस पर राग (आसक्ति) करके उसे सजाने-संवारने में, खिलाने-पिलाने में रचे-पचे रहोगे तो यह तरने का साधन तुम्हें भव सागर में डूबो देगा। भव सागर तरने का यह उत्तम साधन, बन्धन न बन जाए, इसका ध्यान रखना। साधन मिला है तो आत्म-साधना करने में उसका ठीक-ठीक उपयोग कर लो। परन्तु उसके दास बनकर विषयों की गुलामी में मत पड़ना। इसीलिए ज्ञानीपुरुष कहते हैं -

"जेने थयो आत्मानो राग, तेना संसारभावमां लागे आग।
जेना संसारमां लागे आग, तेनो खीली उठे आतम-बाग॥"

जिनका आत्म-बाग खिल उठा है और पुद्गल के प्रति प्रीति छूट गई है, वैसे 'महाबल' आदि सात अनगार देहरूपी साधन द्वारा आत्म-साधना करके मोक्षरूपी साध्य की सिद्धि करने हेतु बाह्याभ्यन्तर तप कर रहे हैं। उसमें भी महाबल अनगार बीस बोल (स्थानक) की आराधना कर रहे हैं। इससे पूर्व बारहवें बोल तक आपके समक्ष कहा जा चुका है।

अब **तेरहवें बोल** (स्थानक) में भगवान् कहते हैं - *"खण-लव"* / मानवजीवन का प्रत्येक क्षण कितना कीमती है, इस पर सोचें। 'खण-लव' काल का एक मा है। उसमें तुम प्रमाद को छोड़कर हो सके उतनी आत्म-साधना कर लो। भगवान् ने तो गौतम जैसे गणधर को भी कह दिया - *"समयं गोयम ! मा पमायए"* - हे गौतम ! एक समय मात्र भी प्रमाद मत कर। जब गौतमस्वामी को एक समय का भी प्रमाद करने से इन्कार किया है, तब हम से तो प्रमाद कैसे किया जा सकता है ? जिंदगी के जो क्षण बीत रहे हैं, वे हीरों से भी कीमती हैं। लाखों प्रयत्न करने पर भी गया समय वापस नहीं आता। कवि ने कहा है -

"गयेली संपत् सांपडे, गया वळे छे वहाण।
गत अवसर आवे नहि, गया न आवे प्राण॥"

तुम्हारी लाखों की पूंजी चली गई होगी, तो पुण्य के बल से वापस प्राप्त की जा सकेगी। समुद्र में गुम हुए वाहन भी कदाचित् पुण्य होगा तो वापस मिल सकेंगे। परन्तु

कहा – "मेरी शर्त पूरी हो गई। अब एक सेकंड भी रह नहीं सकते।" देव ने तो पलक झपकते जितने समय में उन दोनों को घर पहुँचा दिया।

बन्धुओं ! तुम्हें तो ऐसा लगता होगा कि बड़ा भाई कैसा मूर्ख था ? देव ने सूर्यास्त होते ही रत्नद्वीप छोड़ देने का उसे कहा था, फिर भी उसने गाड़ी में रत्न नहीं भरे, कैसा मूर्ख कहलाया वह ? अब मैं तुम से पूछती हूँ कि वह तो मूर्ख था, कि रत्न प्राप्त करने के स्थान में जाकर भी प्रमाद किया। वह खाने-पीने में रह गया। किन्तु तुम इस मनुष्य-जन्म रूपी रत्नद्वीप में आकर उसके जैसी मूर्खता का काम तो नहीं करते न ? जिसने रत्न नहीं लिये वह तो दरिद्र रहा। यह दरिद्रता तो एक भव की है। किन्तु यदि यह जीव मनुष्य-भवरूपी रत्नद्वीप में आकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप रूपी उत्तम रत्न लेना छोड़कर, खाने-पीने और सैर-सपाटे में ही रह जाएगा तो वह तो इसकी अपेक्षा भी डबल मूर्ख कहलाएगा। बोलो, आप सबमें से कितने भाई-बहन त्रिदान लेने का पुरुषार्थ करेंगे। अंगुली ऊँची करो तो पता लगे ! यहाँ पुरुषार्थ नहीं करोगे तो इस भव और पर-भव में दरिद्र रह जाओगे। फिर पश्चात्ताप का कोई पार नहीं रहेगा।

छोटा भाई रत्नों से गाड़ी भरकर ले आया तो उसकी पत्नी राजी-राजी हो गई। वह बड़ा कोट्याधीश सेठ बन गया और बड़ा भाई जैसा था, वैसा ही बना रहा। उसकी पत्नी ने कहा – "आपका छोटा भाई तो ढेर सारे रत्न लेकर आया, परन्तु आपने वहाँ जाकर क्या किया ? आप कैसे खाली गाड़ी लेकर वापस आ गए ?" बड़े भाई को इसका अपार पश्चात्ताप था। छोटे भाई ने उसे चेताया, फिर भी वह चेता नहीं। अब वह चीखचीख कर जोर-जोर से रोने लगा। किन्तु अवसर बीतने के बाद चाहे जितना रोये उससे क्या होता है ? इसी प्रकार संत-सतीवृन्द चेताते हैं कि "हे श्रावको ! तुम जाग जाओ, किन्तु प्रमाद का बिछौना छोड़कर, जितनी हो सके, धर्माराधना कर लो। आयुष्य का दीपक कब बुझ जाएगा, उसका पता नहीं है।" फिर भी नहीं चेतोगे तो पछताना पड़ेगा। एक वक्त ऐसी आराधना कर लो कि पुनः इस संसार में आना न पड़े और जन्म-मरण दुःख न सहना पड़े। जिन्हें जन्म-जरा-मरण का त्रास लगा है और उत्तम रत्न लेने की तमन्ना जगी है, वे महाबल अनगार शुद्ध-भाव से बीस बोल (स्थानक) की आराधना कर रहे हैं। देखिए आगे के बोल –

दंसण-विणय-आवस्सएय, सीलव्वए निरइयारे।
खणलव-तव-च्चियाए, वेयावच्चे समाहिए॥

पूर्व प्रवचन में दर्शन और विनय की बात पर प्रकाश डाला जा चुका है। ग्यारहवें बोल में अब आवश्यक की बात आती है। दो टाइम शुद्ध भाव से (दैवसिक और रात्रिक) प्रतिक्रमण किया जाए तो उससे भी जीव तीर्थंकर – नामकर्म बांध लेता है। साधु को शाम-सुबह दोनों टाइम प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। परन्तु आप संसार में रहकर भी मन में धारो तो प्रतिक्रमण कर सकते हो। परन्तु प्रतिक्रमण सीखोगे, तभी कर सकोगे

अपुव्व-णाणग्गहणे, सुयभत्ती, पवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ।।

१८वाँ बोल है - *अपुव्व-णाणग्गहणे* - **अर्थात् - अपूर्व - ज्ञान का ग्रहण करना ।** तात्पर्य यह है कि शास्त्रों, आगमों या सिद्धान्तग्रन्थों में जो अपूर्व ज्ञान निहित है, उसका वाचन, ग्रहण, पठन-पाठन, श्रवण, पृच्छा, पर्यटन, अनुप्रेक्षण, एवं धर्मकथा (प्रवचनादि) द्वारा स्वाध्याय करना । शास्त्रों में यत्र-तत्र *'सज्झायम्मि रओसया'* कहकर साधु वर्ग को स्वाध्यायकाल में अन्य बातों में प्रमाद न करके स्वाध्याय करने का निर्देश भगवान् ने दिया है । जब भी समय मिले अपूर्वज्ञान ग्रहण करने का पुरुषार्थ करना । निद्रा, कलह, गपशप, व्यर्थ की बातों में समय न खोना । यही इस स्थानक का तात्पर्य है ।

१९वाँ बोल है - *'सुयभत्ती* **= श्रुतभक्ति । जिनेश्वर देवों द्वारा कथित, प्ररूपित, निर्दिष्ट आगमों, शास्त्रों (अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य सूत्रों) के प्रति भक्ति, बहुमान, एवं अनुरक्ति रखना ।** आगम या शास्त्र अथवा श्रुत सम्यग्ज्ञान की अनमोल निधि है । ये साधकवर्ग के लिए दर्पण हैं । द्रव्य-दर्पण तो मुख पर रहे हुए दाग आदि बता देता है, किन्तु वह दाग को मिटाता नहीं । किन्तु आगम आदि भाव-दर्पण हैं, आगमों में अंकित वीतराग-परमात्मा की वाणी तथैव वीतराग-मार्गानुयायी संतों के प्रवचन जीवात्मा की भूलों रूपी दाग-दोष को बताता है, परन्तु वह दोष, भूल आदि को दूर करने के लिए पुरुषार्थ तो स्वयं को ही करना पड़ता है । उसमें दूसरों का पुरुषार्थ काम नहीं आता । किसी मनुष्य ने दर्पण में मुख देखा, उसने उसमें अपने मुख पर दाग देखा । वह दाग उसे अच्छा नहीं लगता । इसलिए उसे दूर करने के लिए गीला कपड़ा करके दर्पण पर घिसने लगा । किसी चतुर मनुष्य ने यह देखकर कहा - "भाई ! यह तू क्या कर रहा है ?" इस पर वह कहता है - "मेरे मुख पर दाग पड़ा है, उसे मैं साफ कर रहा हूँ (हँसाहँस) । बुद्धिशाली व्यक्ति ने कहा - "दाग तेरे मुख पर है और तू पोंछ रहा है दर्पण पर न ?" दर्पण पर दाग नहीं है, दर्पण तो दाग दिखला देने का साधन है । अतः तेरे मुँह पर दाग है, उसे पोंछ ।"

देवानुप्रियों ! तुम्हें उस व्यक्ति की मूर्खता पर हंसी आई । परन्तु विचार करो - तुम क्या करते हो ? तुम किसे साफ कर रहे हो ? आत्मा को या शरीर को ? जिस जड़ शरीर को यहाँ छोड़कर जाना है, उसे साफ करते हो ! और जिस चेतनदेव को साफ करना है, उसे मलिन रखते हो । यह तुम्हारी मुर्खता है या चतुराई ? अज्ञान में पड़कर जीव ने उल्टा पुरुषार्थ किया है । अतः अब कुछ समझो और सीधा पुरुषार्थ करो तो कल्याण होगा । अन्त में **बीसवाँ बोल** (स्थानक) है - *'पवयणे पभावणया'* - **अर्थात् 'प्रवचन की प्रभावना करना ।'** प्रवचन-प्रभावना के कई प्रकार हैं - एक है - भव्यजीवों को प्रतिबोध देकर उन्हें भागवती मुनिदीक्षा देनी या व्रतनिष्ठ श्रावक धर्म की दीक्षा देना । और है - संसाररूपी बावडी में पड़ते हुए प्राणियों को जिनशासन की महिमा

जनेऊ अवश्य पहननी पड़ती है, वैसे ही ज्ञानी कहते हैं - जैनकुलोत्पन्न श्रावक को प्रतिक्रमण तो अवश्य आना ही चाहिए ।" अनन्तकाल किसे कहा जाता है ? यह जान जाओगे तो प्याज और आलू आदि खाने से रुकोगे । अगर इसे नहीं समझोगे तो प्याज और आलू आदि कैसे छोड़ सकोगे ? इसलिए तुमसे कहते हैं कि तुम जैनधर्म के तत्त्व को जानो । जानोगे तो पाप करने से रुकोगे ।

इसी भव रोग को नष्ट करने के लिए महाबल अनगार वीस स्थानक की आराधना करते हैं । अब बारहवाँ बोल है : *सीलव्वए निरइयारे* / शील और दूसरे व्रतों में अतिचार (दोष) लगाए बिना प्रवृत्ति करनी चाहिए । अर्थात् - व्रत - प्रत्याख्यान का पालन निर्मलरूप से करना चाहिए । अतः शील निर्मलरूप से पालो । सुदर्शन शेठ जैसे - सद्गृहस्थों ने गृहस्थाश्रम में रहकर स्वदार-सन्तोषव्रत ग्रहण किया था । इन्होंने परस्त्री के सामने कभी कुदृष्टि नहीं की । केवल अपनी विवाहिता पत्नी में सन्तोष मानना, ऐसा व्रत उन्होंने लिया था । उसी निर्मल शीलव्रत के प्रताप से शूली का सिंहासन हो गया था । तब फिर जो आत्माएँ यावज्जीव पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार करता है, उन्हें कैसा धर्मलाभ होता है । मानवजीवन में शील की महत्ता है । जैनदर्शन में अनेक सतियाँ हो गई हैं, जिन्होंने अपने शीलव्रत की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया है । इस प्रकार जाहल ने भी अपनी शीलव्रत सुरक्षित रखा है ।

रा'नवघण की कथा

सिन्धप्रदेश में दुष्काल पड़ा । इस कारण जाहल के पति ने उससे कहा - "तू यह कष्ट नहीं सहन कर सकेगी । अतः तू अभी पीहर चली जा । जब सुकाल हो जाय, तब वापस आ जाना ।" जाहल एक वीर नारी थी, अतः उसने कहा - "स्वामीनाथ ! आप यह क्या कह रहे हैं ? क्या तुम दुःख सहनकर सकोगे और मेरे से दुःखसहन नहीं हो सकेगा ? पहले की सतियों ने कैसे कष्ट सहन किये हैं ?

रामचन्द्रजी को वनवास मिला, तब क्या सीताजी साथ में नहीं गई थीं ? नल-राजा के साथ दमयन्ती गई थी न ? वे तो राजवैभव छोड़कर गये थे । उनके जितना सुख अपने यहाँ नहीं है । मान लो, कदाचित् सुख हो, किन्तु जहाँ देह हो, वहाँ उसकी परछाई रहती है । वह उससे अलग नहीं हो सकती, वैसे पत्नी भी पति के साथ शोभायमान होती है, अतः मैं आपके साथ आऊँगी । कहा भी है -

सती सीताने द्रौपदी, विदर्भी वनमांय ।
पति संगाये जाय, राजवैभवने परहरी ॥

स्वामीनाथ ! अपना सब पशु-धन दुष्काल में मरने जा रहा है । अपने खाने के लिए भी अन्न नहीं है । ऐसी स्थिति में विलम्ब किये बिना हमें इस पशुधन को लेकर सिन्धप्रदेश में जाना चाहिए । ऐसा सुना है कि सिन्ध-देश में सुकाल है । अतः वहाँ जाकर

हुआ हूँ, वही ललना मुझे अंदर बुला रही है, यह जानकर उसे अत्यन्त खुशी हुई। वह अन्दर गया।

बन्धुओं! सती स्त्रियाँ अपने शील की सुरक्षा के लिए वचन से असत्य बोलना पड़े तो बोलती हैं, उनके मन में असत्य बोलने का भाव नहीं है, उनके हृदय में यही भाव होता है, कि हमें मन-वचन-काया से भी शीलभ्रष्ट नहीं होना है। जाहल के मन में सुमरा के प्रति अन्तर में तो अपार क्रोध था, किन्तु ऊपर से क्रोध का शमन करके कृत्रिम प्रेम बताकर कहा - "मैंने जब से आपको देखा, तब से मेरा मन आपमें आसक्त है। मुझे इस झोंपड़े में रहकर दुःख सहना अच्छा नहीं लगता। राजमहल के सुख किसे पसंद नहीं हैं? मैं खुशी से तुम्हारी रानी बनने को तैयार हूँ। पर मेरी एक शर्त है। मैंने कल अपने धर्म के नियमानुसार छह महीने तक पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत पालने की प्रतिज्ञा की है। यह प्रतिज्ञा इतनी कठिन है कि इससे मुझे पुरुष का तो क्या, पुरुष के कपड़े का भी स्पर्श नहीं किया जा सकता। मेरे इस व्रत का अगर भंग होगा तो मैं जीभ काटकर मर जाऊँगी, किन्तु अपने व्रत को खन्डित नहीं करूँगी।" जाहल के शब्दों का सुमरा पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। उसने सोचा - 'छह महीने तो बात-बात में चले जाएँगे। अगर मैं बलात्कार करने जाऊँगा, तो हाथ में आया हुआ हीरा चला जाएगा।' यों विचार कर उसने कहा - "अच्छा! तुम्हारी यह शर्त मुझे मंजूर है। मैं छह महीने बाद आऊँगा।" आहीर लोग किसी तरह छटक न जाएँ, इसके लिए राजा ने तम्बू के चारों ओर सेना का चौकी-पहरा बिठा दिया। सारे आहीर चिन्तातुर हो गए। जाहल ने उनसे कहा - "अब ६ महीने तक तो कोई चिन्ता नहीं है। किन्तु अब आप में से कोई जूनागढ जाए और मेरे भाई रा'नवघण को ये समाचार देकर उसे यहाँ ले आए तो यहाँ से अपना छुटकारा हो सकता है। अगर वह ६ महीने के अंदर-अंदर नहीं आए तो मैं अपने प्राणों को त्याग दूंगी, किन्तु अपने शील का खण्डन हर्गिज नहीं होने दूंगी।" जाहल के पति ने जूनागढ जाने का दायित्व अपने सिर पर उठाया। इस पर जाहल ने ब्योरे वार एक पत्र लिखकर दिया। उसे लेकर जाहल का पति गुप्तरूप से वहाँ से जूनागढ जाने के लिए रवाना हुआ।

उस समय गाड़ी-मोटर आदि वाहनों की सुविधा नहीं थी। पैदल यात्रा करनी होती थी। कहाँ सिन्ध और कहाँ सोरठ? छह महीने में वापस आना है। फिर यह भी चिन्ता करता हुआ कि मुझ फटेहाल को नवघण पहचानेगा या नहीं? मेरी बात सुनेगा या नहीं? भूखा-प्यासा, रात्रि-जागरण करता हुआ जाहल का पति जूनागढ़ पहुँचा। उसने नवघण की अश्वशाला में प्रविष्ट होकर वहाँ के नौकर से पूछा - "यहाँ महाराजा आते हैं क्या?" उसने कहा - "हाँ, सप्ताह में एक दिन राजा अपने इस अत्यन्त प्रिय घोड़े को संभालने हेतु यहाँ आते हैं। कल वह यहाँ आएँगे।" पत्रवाहक बोला - "भाई! मैं एक गरीब और दुःखी मनुष्य हूँ। मुझे अपने पास दो दिन रहने दोगे?" अश्वरक्षक ने कहा - भले ही रहो। पर कल राजा आए, तब तू कहीं छिप जाना। क्योंकि मैंने तुम पर दया लाकर तुम्हें यहाँ रखा है। इस बात को कोई जान जाएगा तो मेरा तो आ ही बनेगा!"

चलने लगे । जाहल की आयु छोटी थी, पर उन सब में उसकी बुद्धि श्रेष्ठ थी । इसलिए सब उसे पूछकर ही कदम उठाते थे और उसके परामर्श के अनुसार सब चलते थे । जाहल का सभी बहुत सम्मान करते थे । चलते-चलते जाहल की दृष्टि गिरनार पर पड़ी; उसे देखकर उसे अपना भाई नवघण और माता-पिता बहुत याद आए ।

मावतर विना मान नहि, आदर न आपे कोई, नवघण नीरख जोय जाहल फरी सिंधमां ।
उछर्या एक साथ, स्नेह थकी साथे रही, नव सोरठनो नाथ जोशुं जो इशुं जीवता ॥

आँखें लाल हो रही हैं, जाहल बोली - "वीरा ! मैं जा रही हूँ । इसलिए दूर से ही निहार लूं । वीरा ! जीते रहे तो फिर मिलेंगे । नहीं तो 'राम-राम !' यों बोलते-बोलते उसकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू टपक पड़े । वह फफक-फफक कर रोने लगी । इस प्रकार मन में कठोर रुदन करती हुई जूनागढ़ के राजा की बहन जाहल रोती आँखों से सिंध की ओर चली । मार्ग में जहाँ अन्न-पानी की सुविधा मिलती, वहाँ कुछ दिन रुकते-रुकते बहुत दिनों बाद वे सिंध देश में पहुँचे ।

उस समय सिंध में हमीर-सुमरा राज्य करता था । वहाँ सुकाल था । इसलिए सुखपूर्वक आनन्द से वहाँ दुःख के दिवस बिताने लगे । यों करते-करते एक वर्ष सिंध में विताया । वर्ष पूर्ण हुआ, इसलिए जाहल ने कहा - "हमने एक वर्ष अपनी-अपनी गायों-भैंसों के दूध-घी वेचकर गुजरान चलाया । अब १ वर्ष पूरा हुआ । सोरठ में अब सुकाल हुआ होगा । अब हम सब वहीं चलें ।" इस पर उसके पति और दूसरे आहीर कहने लगे - "सोरठ में सुकाल होने के समाचार मिलने के बाद चलें ।" इस कारण सभी कुछ दिन और रुक गए । जाहल की इच्छा अब यहाँ बिलकुल रहने की नहीं थी, किन्तु सबकी इच्छा थी, इसलिए मन - से वेमन से भी जाहल को रुकना पड़ा । अब कर्म क्या करते हैं ? देखिए -

एक दिन जाहल तालाब पर कपड़े धोने और स्नान करने गई थी । वह स्वयं कपड़े धोकर तालाब में स्नान कर रही थी, उस वक्त हमीर घूमता घामता तालाब के पास आया । जाहल का ध्यान स्नान करने में था । जाहल का अद्‌भुत रूप-रंग देखकर सूबेदार उसके रूप में मुग्ध होकर उसके सम्मुख टकटकी लगाकर देखने लगा । जाहल स्नान करके कपड़े बदल रही थी । उस वक्त उसकी दृष्टि हमीर पर पड़ी । उसे लगा कि अवश्य ही मेरे पर इसकी कुदृष्टि हुई है, क्योंकि यह मेरे सामने एकटक देख रहा है ! अतः जाहल एकदम अपने वस्त्र लेकर तेज कदमों से चली गई । हमीर भी अपना घोड़ा धीमे-धीमे चलाता हुआ उसके पीछे गया । जाहल बहुत विचक्षण थी । वह समझ गई कि यह पापी मेरा शील लूटेगा । मेरा क्या होगा ? इस पापी के पंजे से मुझे कौन छुड़ाएगा ? यों विचार करती हुई भय से कांपती हुई जाहल अपने तम्बू में प्रविष्ट हो गई । अब हमीर सुमरा वहाँ आएगा और क्या करेगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

से कहाँ अनजाना है ? सूबेदार को पता लगा कि देवायत के यहाँ नवघण का पालन पोषण हो रहा है, इस कारण क्रोध में पागल होकर नंगी तलवार लेकर वह देवायत के यहाँ आया और नवघण को बताने का कहा ।

उगो आढो आपीयो, वहाला मायरा नरवीर ।
समझे मांय शरीर, नवघण नव सोरठ धणी ॥

उस समय मेरे पिता ने तुझे नहीं बताया । नवघण मेरे घर में है, यह बात कबूल नहीं की । अपने सिर पर आफत ओढ ली, किन्तु तुझे नहीं बताया । तब उसे पकड़कर जेल में डाल दिया । वहाँ मेरे पिता को खूब मारा गया । इतने से ही काम नहीं निपटा । उनके पैर में सार से छेद करके यातना दी । उस समय तेरा रक्षण करने के लिए मेरे एकलौते लाडले भाई उगा को, यह नवघणकुमार है, यों कहकर सूबेदार को सौंप दिया । मेरे पिता के देखते उसके सिर और धड़ तलवार से अलग कर दिया । मेरे माता-पिता ने अपने एकलौते पुत्र के प्राण देकर तुझे जीवित रखा है । वीरा ! अपने उदर का पुत्र किसे प्रिय नहीं होता ? जानवर को भी अपना बच्चा प्यारा होता है, तो क्या मेरे माता-पिता को अपना पुत्र प्रिय नहीं था ? उगा पर उन्होंने कितने आशा के मिनारे बांधे थे ? फिर भी छाती पर शिल्प रखकर उसे सूबेदार को सौंप दिया ।

हे सोरठ के धणी नवघण ! मेरे भाई खो देने के बाद तेरे पर आशा के मिनारे थे । मैं और तू साथ-साथ चलते-फिरते, खेलते और खाते पीते थे । मेरा और तेरा स्नेह दूध और शक्कर जैसा था । तू मुझे बहन-बहन कहकर बुलाता था, बहन-बहन कहते हुए तेरी आवाज सूखती न थी और भाई-भाई कहते हुए मेरी आवाज सूखती नहीं थी । इतना अत्यधिक प्रेम तू इस समय भूल तो नहीं गया न ? अंत में, मैं बड़ी हुई, मेरा विवाह हुआ । उस वक्त क्या हुआ ?

"मांडवीए अमारे म्हालतां, गांधव दीधेल गोल ।
करवी कापड़ानी कोर, जाहलने जूनाणां धणी ॥"

मेरे विवाह के समय लग्नमण्डप में हे वीरा ! तू कपड़े की भेंट देने आया था । ओ बांधव ! तू याद कर ! उस समय मैंने कहा था : वीरा ! इस समय पिताजी ने मुझे बहुत दहेज दिया है । इस समय मुझे तेरे कपड़े की भेंट की जरूरत नहीं है । मुझे जरूरत पड़ेगी, तब मैं मांग लूंगी । तेरे यहाँ इस समय इसे मेरी अमानत के रूप में रख ! तूने मुझे जरूरत पड़ने पर मेरी अमानत मांगने पर देने का वचन दिया था । तो वीरा ! अब मुझे उस अमानत (कपड़े की भेंट) की जरूरत पड़ी है । हम यहाँ (सिंध में) जीने की आशा से आए थे और जीवन-निर्वाह करते थे । किन्तु इस समय हृदय का सत्त्व (तेज) सुख गया है । सभी के जीव अधर हैं । हमीर सुमरा ने मेरे तम्बू के चारों ओर चौकी-पहरा लगाकर मुझे घेर ली है । इस कारण हम निकल नहीं सकते यहाँ से । मैं कहाँ जाऊँ ? इस समय तो तेरे सिवाय मुझे इसके चंगुल से कोई छुड़ानेवाला नहीं है ।

होते हुए भी इस मार्ग पर आने (चलने) का मन नहीं होता। क्या आपके अरबों रुपयों में या सर्वोच्च डिग्री में मोक्ष का सर्टीफिकेट देने की ताकत है ? अगर हो तो मुझे ताओ ! यह ताकत तो सम्यक्दर्शन में है। अतः सम्यक्त्व प्राप्त करने हेतु इस भव में भगीरथ पुरुषार्थ करो। मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? क्या यह जानते हैं ? मिथ्यात्व का लक्षण एक आचार्य ने किया है - "विपरीत तत्त्व-श्रद्धा-मिथ्यात्वम्" तत्त्व के विषय में विपरीत श्रद्धा का नाम मिथ्यात्व है। संक्षेप में - जीव को अजीव और अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व है। ज्ञानी कहते हैं -

"जेने लाग्यो आत्मानो रंग, तेनो थयो मिथ्यात्वनो भंग।"

अनन्तकाल से जीव ने पुद्गल का संग किया है। आप भी कहते हैं - 'जैसा संग, वैसा रंग और जैसी सोहबत, वैसा असर।' यानी पुद्गल का संग करोगे तो पुद्गल का रंग लगेगा और आत्मा का संग करोगे तो आत्मा का रंग लगेगा। पुद्गल आत्मा से पर (भिन्न) है। आप पुद्गल का चाहे जितना संग करें, मगर आत्मा के संग से रहित समस्त संग 'एक' से रहित कोरे शून्य (०) जैसा है। जब आत्मा का रंग लगेगा, अन्तर में चेतना की चमक होगी, तब 'पर' का संग या रंग सभी तुच्छ प्रतीत होंगे। क्योंकि 'पर' का राग अनित्य है और आत्मा का राग नित्य है। 'पर' से मिलनेवाला सुख भी अनित्य है, जबकि आत्मा से मिलनेवाला सुख नित्य है। आत्मा 'स्व' (स्व-भाव) है और पुद्गल 'पर' (परभाव) है। आत्मा के लक्षण क्या हैं और पुद्गल के लक्षण क्या हैं ? 'उत्तराध्ययन सूत्र' के २८वें अध्ययन की ११वीं गाथा में बताया है -

नाणं च दंसणं चेव, चरितं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य एयं जीवस्स लक्खणं॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग, यह है जीव का लक्षण जबकि पुद्गलों (अजीवों) का लक्षण किया गया है -

सद्दंधयार-उज्जोओ, पभा-छाया तवोइ वा।
वण्ण - रस - गंध - फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं॥

(वही, अ. २८/१२)

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, ताप, धूप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श, ये पुद्गलों के लक्षण हैं।

जिस मनुष्य को आत्मा का रंग लगा है, उसे पुद्गल की बातों में रस (रुचि या दिलचस्पी) नहीं होता। उसे तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और उपयोग की बात आए, तब अपूर्व आनन्द आता है। जैसे मेघ का गर्जन होते ही मयूर नाचने लगता है, वैसे ही आत्मा की बातें सुनते ही उसका मनमयूर नाच उठता है। जिसे आत्मा का रंग लगता है, उसके (हृदय से) मिथ्यात्व का भंग (नाश) हो जाता है। दुनिया में १६ बड़े-बड़े रोग

कीमती है। ऐसे कीमती क्षणों का तुम किसमें उपयोग करते हो ? यदि एकान्त संसार-सुख में रचेपचे रहने में उपयोग होता हो और आत्मकल्याण का लक्ष्य भुला दिया जाता हो तो समझ लेना कि तुम्हें मानवजन्म की कीमत समझ में नहीं आई।

भर्तृहरि का दृष्टांत : मुझे इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त याद आ रहा है। एक बार महात्मा भर्तृहरि जंगल में बैठे-बैठे चिन्तन कर रहे थे कि जो मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म लेकर तप नहीं करता, दान नहीं देता, ज्ञान-प्राप्ति में उद्यम नहीं करता तथा धर्म के नियमों का पालन नहीं करता, मुझे उस मनुष्य को किस की उपमा देनी चाहिए ? बहुत विचार के अन्त में उनके अन्तर में स्फुरणा हुई - "मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।" जिस मनुष्य में उपर्युक्त गुण नहीं हैं, वह मर्त्यलोक में मनुष्य के रूप में मृग के समान है। मानव चाहे तो विकास कर सकता है, परन्तु जो मनुष्य विकास करने में तत्पर नहीं होता, उसे मृग की उपमा दूं तो गलत नहीं है। इस प्रकार चिन्तन करके भर्तृहरि बोले, इतने में तो एक मृग भर्तृहरि के ये उद्‌गार सुनकर वहाँ खड़ा हो गया, बोला - "महात्मन् ! आप दुर्गुणी मनुष्य के साथ मेरी तुलना कैसे कर रहे हैं ? मुझे दुर्गुणी मनुष्य के समान न बनाएँ, क्योंकि मेरे में तो अनेक गुण हैं। सर्वप्रथम तो यह है कि मैं कस्तूरी की खान हूँ। मेरी नाभि में बहुमूल्य कस्तूरी प्राप्त करके उसे बेचकर लोग धन कमाते हैं। फिर कस्तूरी का उपयोग औषध के रूप में भी होता है। क्या दुर्गुणी मनुष्य कभी कस्तूरी का निर्माण कर सकता है ? कस्तूरी की सुगन्ध भी अवर्णनीय है। मुझमें यह प्रथम गुण निहित है। दूसरा गुण यह है कि मेरी आँखें इतनी सुन्दर और आकर्षक हैं कि कवियों और बड़े-बड़े विद्वानों को नारी की आँखों की उपमा के लिए मेरी आँखों का उल्लेख करने की आवश्यकता पड़ती है। मेरी आँखें गुणवन्ती नारी के नेत्रों के जैसी होने से काव्यरसिक उन स्त्रियों को मृगाक्षी अथवा मृगलोचनी कहते हैं। तीसरा गुण यह है कि मेरे सींगों का महत्त्व भी कम नहीं है। उन सींगों से 'श्रृंगी' नामक बाजे का निर्माण होता है। जिसके मधुर स्वर से लोग मुग्ध हो जाते हैं। मेरे शरीर की चमड़ी भी निरर्थक नहीं होती। कई धनिक लोग मृगचर्म को अपने ड्राइंगरूप में सजाकर रखते हैं। तथा योगी और संन्यासी लोग सोने-बैठने में उसका उपयोग करते हैं। जबकि मनुष्य के शरीर की एक भी वस्तु किसी उपयोग में नहीं आती।" इसलिए हिरण कहता है कि "मुझमें अनेक गुण रहे हुए हैं, इस कारण मेरी तुलना आप निर्गुणी मानव के साथ करते हैं, यह कदापि उचित नहीं है।"

हिरण की बात सुनकर महात्मा भर्तृहरि विचार करने लगे - 'अब वैसे धर्महीन मानव को किसकी उपमा दूं ? उसे गाय की उपमा दूंगा तो गलत नहीं होगा।' तब यह सुनकर गाय अत्यन्त दुःखी होकर बोली - "महात्मन् ! आपका कथन उचित नहीं है।"

बन्धुओं ! आप जानते हैं कि गाय अत्यन्त सीधी और सरल प्राणी होती है। उसकी भी निर्गुणी मनुष्य के साथ तुलना करने में आई तो उसे यह अच्छा नहीं लगा। इस कारण वह कहने लगी - "मुझमें जो गुण हैं, वे गुणहीन व्यक्ति में नहीं हैं। आप सब जानते

बन्धुओं ! जिसे रोग लगा है, उसे औषध का सेवन करने से वह मिट जाएगा । परन्तु जिन्हें मिथ्यात्व का महारोग लगा है, उसे बाह्य औषध के सेवन करने या औषधोपचार करने से वह नहीं मिटेगा । उस महारोग को मिटाने के लिए तुम्हारे डबल डिग्री-प्राप्त बड़े-बड़े सर्जन, इंजेक्शन या टेबलेट, ये उपचार कुछ भी काम नहीं आएँगे । इस महारोग को मिटाने के लिए सद्‌गुरुरूपी वैद्यों और डोक्टरों के पास जाना पड़ेगा । ऐसे सद्‌गुरुओं की आज्ञा का पालन, इस भव-रोग को निर्मूल करने का अमोघ औषध है ।

सद्‌गुरुओं की उपासना, पर्युपासना या सेवा-भक्ति करने से आत्मस्वरूप की पहचान होती है । कामदेव जैसे श्रावक (श्रमणोपासक) को आत्मस्वरूप की पहचान हो गई थी । उसे श्रद्धा से भ्रष्ट करने के लिए देव ने कैसे-कैसे उपसर्ग (कष्ट) दिये थे ? उसने हाथी बनकर अपने दंतशूल में पकड़कर उन्हें ऊँचा उछाला, फिर भी वे वचन से इतना भी बोलने को तैयार नहीं हुए कि जैनधर्म खोटा है । देह छूटे तो कुर्बानी मंजूर है, किन्तु देव-गुरु-धर्म के प्रति मेरी श्रद्धा नहीं छूटे । देह तो नश्वर है । आज या कल, देर-सबेर यह शरीर छूटने ही वाला है ।

इस दुनिया में प्रतिदिन कितने ही प्राणी जन्म लेते हैं और कितने ही मरते हैं । कितने ही जीव महान् रोग से पीड़ित होते हैं और तो और, कितने ही जीव तो यौवन के आंगन में पैर रखते हुए जवान पुत्र भी मर जाते हैं । उनके कुटुम्बीजन उनके पीछे घोर रुदन (विलाप) करते हैं । यह सब प्रत्यक्ष देखते हुए भी तुम्हें संसार से वैराग्य क्यों नहीं प्राप्त होता ? चार प्रत्येक बुद्ध हो गए, उन्हें तो इस संसार में जड़ और चेतन के सामान्य निमित्त मिलते ही विरक्ति हो गई थी ।

एक प्रत्येक बुद्ध को स्तम्भ को देखकर वैराग्य हो गया था । स्तम्भ तो जड़ है न ? उसे देखकर कैसे वैराग्य उत्पन्न होता है ? तुम्हारे यहाँ विवाह होता है, तब माणक-स्तम्भ रोपा जाता है न ? फिर माणक-स्तम्भ के मौली बांधी जाती है । फिर उसे फूल का हार पहनाया जाता है, उसकी कुंकुम् से पूजा की जाती है । पर यह सब कहाँ तक ? जबतक विवाह निपट न जाय, तबतक ! विवाह हो जाने के बाद उसे कहीं भी फेंक देते हैं । उसकी फिर कोई कीमत नहीं रहती । यह देखकर मानव इससे बोध ग्रहण कर सकता है कि एक घड़ी पहले स्तम्भ का कितना सम्मान था और कार्य पूरा हो जाने के बाद उसे कोई पूछता नहीं और ढूंढता भी नहीं कि उसे कहाँ डाला गया है या फेंका गया है ? अरे ! आपके मस्तक के केश आपके मस्तक पर रहते हैं, तब उनकी कितनी संभाल रखते हैं ? और वे ही मस्तक के केश झड़कर आपके भोजन की थाली में पड़े तो क्या आप उन्हें रखेंगे या फेंक देंगे ? वही बात आत्मा और शरीर के बारे में समझिए ।

बन्धुओं ! अगर आप आत्मस्वरूप को भलीभांति समझे हुए होओगे तो ऐसे निमित्त मिलने पर घर-बैठे वैराग्य प्राप्त हो जाएगा । गुलाब का फूल उसकी डाली पर लगा होगा तो उसमें उसकी शोभा है, परन्तु वह डाली को छोड़कर नीचे गिर जाएगा तो उसकी कोई खास कीमत नहीं होगी, प्रत्युत वह लोगों के पैर के नीचे कुचला

बन्धुओं ! प्राचीन काल की सतियों ने अपने शील की सुरक्षा के लिए कितने कष्ट सहे थे ? ऐसी सतियाँ भारत के आभूषण हैं । ऐसी वीर नारीरत्नों से यह भारत की भूमि पवित्र और सुशोभित बनी है । भारत में ऐसी कितनी ही सतियों ने अपने प्राणाप्रण से भी अपने शील की रक्षा की है । महिलाओं का सच्चा-श्रृंगार शील है । शील के श्रृंगार के बिना दूसरे सब श्रृंगार फीके हैं । नारी का सत्त्व शील है । राणकदेवी, जसमा ओडण, पर सिद्धराज ने कुदृष्टि की थी । राणकदेवी के देखते-देखते उसके दो पुत्रों को काट डाले, फिर भी वह अपने चारित्र में अडिग रही, राज्य के लोभ में ग्रस्त नहीं हुई । इसी कारण आज उसके गुणगान किये जाते हैं । जैसे सतियों ने अपने प्राण देकर भी शील की रक्षा की है, वैसे पुरुषों को भी ऐसे प्रसंग पर चारित्र में दृढ़ रहना चाहिए । केवल स्त्रियों का ही यह धर्म है, ऐसा नहीं है । यद्यपि स्त्रियों की जितनी कसौटी होती है, उतनी पुरुषों की नहीं होती । अतः आप नवघण वीर भैया की तरह सच्चे माने में वीर बनना । समय काफी हो चुका है । शेष भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

व्याख्यान - ४२

श्रावण वदी ६, रविवार | ता. १५-८-७६

पन्द्रह का धर : 'एवं पन्द्रह अगस्त की प्रेरणाएँ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

परम परमार्थ-पथ के दर्शक, भव-भव के भेदक, स्याद्वाद के सर्जक अनन्तज्ञानी और अनन्तदर्शी भगवन्त, जिन्होंने अपने जीवन में से अनादिकालिक राग की आग को बुझाकर वीतराग दशा प्राप्त की है, तथा परम (उत्कृष्ट) साधनों द्वारा जो साध्य को सिद्ध कर चुके हैं, तथैव प्रबल पुरुषार्थ करके केवलज्ञान-केवलदर्शन की जाज्वल्यमान ज्योति जिन्होंने प्रगट की है । वैसे जिनेश्वर देवों ने जगत् के जीवों के उद्धार के लिए, कल्याण के लिए, करुणा लाकर सिद्धान्तरूप (शास्त्र की) वाणी का प्रकाशन किया है । सिद्धान्त का अर्थ है - आत्मा के अक्षय भण्डार को खोलने की स्वर्णमयी कुंजी, तथा आत्मा के अलौकिक सुख को प्राप्त करने हेतु भावभरा आमंत्रण देने की कुंकुमपत्रिका के समान भगवान् के सिद्धान्त रहे हुए हैं । वीतराग-प्रभु के वचनामृतों पर अगर जीव श्रद्धा करे तो अनादि से आत्मा पर रहे हुए अज्ञानान्धकार को दूर किये बिना न रहे । अज्ञान के कारण अनन्तकाल से आत्मा इस संसाराटवी में भटका करता है । भगवान् कहते हैं - *"अविद्या दुःखमूलम्"*- अर्थात्- अज्ञान दुःख का मूल है । इस जगत् में अज्ञान जैसा कोई दुःख नहीं है और ज्ञान जैसा कोई सुख नहीं है । अज्ञान जैसा कोई अन्धकार नहीं है और ज्ञान जैसा कोई प्रकाश नहीं है । हिंदी के एक दोहे में भी कहा है-

जो समय जीवन में से गुजर जाता है, वह पुनः नहीं आता । अतएव प्रमाद छोड़कर आत्मा की आराधना कर लो ।

इसके पश्चात् **चौदहवाँ बोल** (स्थानक) है : *'तव'* **अर्थात् - बारह प्रकार का बाह्य - आभ्यन्तर तप है ।** इन बारह प्रकार के तप में से हो सके, उतना तपश्चरण करना । निरतिचार तप करने से जीव तीर्थंकर-नामकर्म बांधता है । अब हमारे पर्वाधिराज पर्युषण पर्व निकट आ रहे हैं । प्रतिदिन तप का डिंडिम-घोष हो रहा है, तपस्या की ड्योंडी पीटी जा रही है । बालकुमारी सोनलबहन के आज ३० वाँ उपवास है । हमारी दो महासतियों - महासती चंदनबाई और महासती हर्षिदाबाई के भी आज ग्यारहवाँ उपवास है । तथैव दूसरी बहुत-सी बहनों ने दीर्घतपस्या शुरू की है । तप करने से कर्मो की निर्जरा - शुद्ध निरतिचार तप से सकाम निर्जरा होती है, अतः यथाशक्ति तप करो ।

तदनन्तर **पन्द्रहवा बोल** (स्थानक) है - *च्चियाए* - **अर्थात् यथाशक्ति त्याग प्रत्याख्यान करना ।** त्याग का एक अर्थ-दान भी होता है । अर्थात् - अभयदान और सुपात्रदान देना त्याग है । किसी भी जीव को भय की स्थिति में नहीं डालना । भयभीत जीव पर सान्त्वना, सहानुभूति, दया लाकर भयमुक्त करना-कराना अभयदान है । दूसरे किसी जीव ने किसी जीव को भयग्रस्त किया हो, प्राण संकट में डाला हो, अथवा कोई जीव मरणासन्न हो, तो यथाशक्ति उसका रक्षण करके उसे बचाना, उस पर करुणाभाव रखना, यह भी अभयदान है । दूसरा है - सुपात्रदान । पंचमहाव्रती, प्रतिमाधारी श्रावक एवं व्रतधारी श्रावक को सुपात्र समझकर आहारादि का दान देना सुपात्रदान है । यह सब त्याग है । त्याग के बिना दान नहीं दिया जाता और त्याग के बिना संयम भी नहीं लिया जाता । अतः त्याग के लिए सदा तत्पर रहना । इसके बाद **सोलहवाँ बोल** है - *वेयाव-च्चे* - **अर्थात् - वैयावृत्य (निष्काम भाव से सेवा)** गुरु की, वृद्ध की, स्थविर की, तपस्वी की, रोगी-ग्लान की, नवदीक्षित की, सम्मनोज्ञ साधु वर्ग की, तथा गण, कुल, संघ आदि की शुद्ध निष्काम भाव से सेवा करना, वैयावृत्य करना तीर्थंकर-नाम-गोत्र कर्म-बन्ध का कारण है ।

इसके बाद **सत्रहवाँ बोल** है - *समाहिए*-**अर्थात् समाधि ।** अपने आपको समाधिभाव में रखना तथा जगत् के सभी जीवों को सुख-शान्ति-समाधि मिले, ऐसा कार्य करना । अपनी तरफ से या अपने निमित्त से वचन, मन और तन से, बोलने, सोचने और प्रवृत्ति करने, लिखने आदि किसी भी कार्य से किसी भी जीव को दुःख, सन्ताप, शोषण, कष्ट आदि हो तो ऐसा असमाधि युक्त कार्य न करना । किसी की हंसी-मजाक करने से कठोर, मनोदुःखकारक, पीड़ाकारक शब्द बोलने से किसी की समाधि पर आघात पहुँचता हो, समाधि लुट जाए, ऐसा एक शब्द भी न बोलना । हो सके तो किसी को सुख शान्ति - समाधि उत्पन्न हो, वैसी प्रवृत्ति करना । अब १८ से २० वें बोल तक की गाथा इस प्रकार है -

बन्धुओं ! प्राचीन काल की सतियों ने अपने शील की सुरक्षा के लिए कितने कष्ट सहे थे ? ऐसी सतियाँ भारत के आभूषण हैं। ऐसी वीर नारीरत्नों से यह भारत की भूमि पवित्र और सुशोभित बनी है। भारत में ऐसी कितनी ही सतियों ने अपने प्राणार्पण से भी अपने शील की रक्षा की है। महिलाओं का सच्चा-श्रृंगार शील है। शील के श्रृंगार के विना दूसरे सब श्रृंगार फीके हैं। नारी का सत्त्व शील है। राणकदेवी, जसमा ओडण, पर सिद्धराज ने कुदृष्टि की थी। राणकदेवी के देखते-देखते उसके दो पुत्रों को काट डाले, फिर भी वह अपने चारित्र में अडिग रही, राज्य के लोभ में ग्रस्त नहीं हुई। इसी कारण आज उसके गुणगान किये जाते हैं। जैसे सतियों ने अपने प्राण देकर भी शील की रक्षा की है, वैसे पुरुषों को भी ऐसे प्रसंग पर चारित्र में दृढ़ रहना चाहिए। केवल स्त्रियों का ही यह धर्म है, ऐसा नहीं है। यद्यपि स्त्रियों की जितनी कसौटी होती है, उतनी पुरुषों की नहीं होती। अतः आप नवघण वीर भैया की तरह सच्चे माने में वीर बनना। समय काफी हो चुका है। शेष भाव यथावसर कहे जाएँगे।

श्रावण वदी ६, रविवार — ता. १५-८-७६

पन्द्रह का धर: एवं पन्द्रह अगस्त की प्रेरणाएँ

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

परम परमार्थ-पथ के दर्शक, भव-भव के भेदक, स्याद्वाद के सर्जक अनन्तज्ञानी और अनन्तदर्शी भगवन्त, जिन्होंने अपने जीवन में से अनादिकालिक राग की आग को बुझाकर वीतराग दशा प्राप्त की है, तथा परम (उत्कृष्ट) साधनों द्वारा जो साध्य को सिद्ध कर चुके हैं, तथैव प्रबल पुरुषार्थ करके केवलज्ञान-केवलदर्शन की जाज्वल्यमान ज्योति जिन्होंने प्रगट की है। वैसे जिनेश्वर देवों ने जगत् के जीवों के उद्धार के लिए, कल्याण के लिए, करुणा लाकर सिद्धान्तरूप (शास्त्र की) वाणी का प्रकाशन किया है। सिद्धान्त का अर्थ है - आत्मा के अक्षय भण्डार को खोलने की स्वर्णमयी कुंजी, तथा आत्मा के अलौकिक सुख को प्राप्त करने हेतु भावभरा आमंत्रण देने की कुंकुमपत्रिका के समान भगवान् के सिद्धान्त रहे हुए हैं। वीतराग-प्रभु के वचनामृतों पर अगर जीव श्रद्धा करे तो अनादि से आत्मा पर रहे हुए अज्ञानान्धकार को दूर किये विना न रहे। अज्ञान के कारण अनन्तकाल से आत्मा इस संसाराटवी में भटका करता है। भगवान् कहते हैं - *"अविद्या दुःखमूलम्"*- अर्थात्- अज्ञान दुःख का मूल है। इस जगत् में अज्ञान जैसा कोई दुःख नहीं है और ज्ञान जैसा कोई सुख नहीं है। अज्ञान जैसा कोई अन्धकार नहीं है और ज्ञान जैसा कोई प्रकाश नहीं है। हिंदी के एक दोहे में भी कहा है-

समझाकर धर्म प्राप्त कराना । जगत् के सभी जीवों को जिनशासन - रसिक बनाना । मिथ्यात्वरूप गाढ़ - अन्धकार का नाश करना और चरण-सप्तति और करणसप्तति की शरण में रहना। ये और इस प्रकार के कार्य प्रवचन-प्रभावना हैं । ये बीस स्थानक सभी जीवों के लिए तीर्थंकर-पद की प्राप्ति करने में कारणभूत हैं ।

महाबल अनगार ने इन बीस ही स्थानकों की आराधना करके तीर्थंकर-नामकर्म का उपार्जन किया । ऐसी महान् आराधना करनेवाले महाबल अनगार के तप की आराधना में जरा माया (कपट) की, इस कारण स्त्रीरूप में तीर्थंकर होंगे । संक्षेप में इतना अवश्य समझ लेना कि तीर्थंकर हो, चक्रवर्ती हो या अन्य कोई श्लाध्य पद हो, मगर कर्म किसी को छोड़ते नहीं हैं । अब महाबल अनगार कैसे उग्र तप की आराधना करेंगे ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

रा'नवघण की कथा

अब हम पिछले चार दिनों से चालू जाहल की कथा चलायेंगे । जाहल एक सती स्त्री थी । सुमरा को देखकर वह समझ गई कि यह मेरे रूप पर मुग्ध बना है । इस कारण वह शीघ्र ही चलकर अपने तम्बू में घुस गई । हमीर सुमरा उसके तम्बू के पास आकर खड़ा रहा । उस समय सभी आहीर इकट्ठे होकर बात कर रहे थे, तभी वहाँ हमीर आकर खड़ा रहा । हमीर सुमरे को देखकर सभी आहीर खड़े होकर पूछने लगे - "साहब ! आपको यहाँ पधारने की जरूरत क्यों पड़ी ?" तब उसने कहा - "वह बाई, जो कपड़े धोकर अंदर गई, वह कौन है ?" इस पर आहीरों ने कहा - "वह हमारी आहीर रानी है।" हमीर बोला - "तुम सब कौन हो ?" आहीरों ने कहा - "हम सोरठ के निवासी आहीर हैं । सोरठ में भयंकर दुष्काल पड़ा, इसलिए हम यहाँ सिन्धप्रदेश में आए थे ।" हमीर ने कहा - "मेरे देश में तुम दुष्काल बिताने के लिए आये । अब दुष्काल पूर्ण हो गया और सुकाल हो गया है तो तुम्हें मुझे कुछ भेंट तो देनी चाहिए न ?" आहीर बोले - "हम अपनी शक्ति के अनुसार जरूर भेंट देंगे ।" इस पर उसने कहा - "मुझे तुमसे पैसा या दूसरा कुछ भी नहीं चाहिए । मुझे तो जो बाई तम्बू में प्रविष्ट हो गई, वह चाहिए । मुझे उसकी भेंट दो ।" सुमरा के उद्गार सुनकर आहीर घबराए । उन्होंने कहा - "साहब ! आप हमारे पितातुल्य कहलाते हैं । आप हमारे रक्षणकर्ता हैं । आपको ऐसी (तुच्छ) मांग नहीं करनी चाहिए ।" इस पर हमीर सुमरा क्रुद्ध होकर बोला - "यह रानी तुम्हारे तम्बू में शोभा नहीं देती, यह तो हमारे राज्य में शोभा देगी । अगर तुमलोग राजी-खुशी से नहीं दोगे, तो मैं जबर्दस्ती से ले जाऊँगा ।" यह सुनकर सभी आहीर थर-थर कांपने लगे। जाहल के पति ने अंदर आकर सारे समाचार जाहल से कहे । तब जाहल ने कहा - "स्वामीनाथ ! बड़ी भारी आफत आ गई । हम यहाँ से चले गए होते तो अच्छा था । फिर भी जाहल सती ने हिम्मत करके कहा - "उस दुष्ट को मेरे पास भेजो ।" आहीरों ने सुमरा से कहा - "हमारी रानी आपको अंदर बुला रही है ।" मैं जिसके रूप पर फिदा

बन्धुओं ! प्राचीन काल की सतियों ने अपने शील की सुरक्षा के लिए कितने कष्ट सहे थे ? ऐसी सतियाँ भारत के आभूषण हैं। ऐसी वीर नारीरत्नों से यह भारत की भूमि पवित्र और सुशोभित बनी है। भारत में ऐसी कितनी ही सतियों ने अपने प्राणार्पण से भी अपने शील की रक्षा की है। महिलाओं का सच्चा-श्रृंगार शील है। शील के श्रृंगार के बिना दूसरे सब श्रृंगार फीके हैं। नारी का सत्त्व शील है। राणकदेवी, जसमा ओडण, पर सिद्धराज ने कुदृष्टि की थी। राणकदेवी के देखते-देखते उसके दो पुत्रों को काट डाले, फिर भी वह अपने चारित्र में अडिग रही, राज्य के लोभ में ग्रस्त नहीं हुई। इसी कारण आज उसके गुणगान किये जाते हैं। जैसे सतियों ने अपने प्राण देकर भी शील की रक्षा की है, वैसे पुरुषों को भी ऐसे प्रसंग पर चारित्र में दृढ़ रहना चाहिए। केवल स्त्रियों का ही यह धर्म है, ऐसा नहीं है। यद्यपि स्त्रियों की जितनी कसौटी होती है, उतनी पुरुषों की नहीं होती। अतः आप नवघण वीर भैया की तरह सच्चे माने में वीर बनना। समय काफी हो चुका है। शेष भाव यथावसर कहे जाएँगे।

व्याख्यान - ४२

श्रावण वदी ६, रविवार ता. १५-८-[illegible]

पन्द्रह का धर : 'एवं पन्द्रह अगस्त की प्रेरणाएँ'

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

परम परमार्थ-पथ के दर्शक, भव-भव के भेदक, स्याद्वाद [illegible] और अनन्तदर्शी भगवन्त, जिन्होंने अपने जीवन में से अनादिका[illegible] बुझाकर वीतराग दशा प्राप्त की है, तथा परम (उत्कृष्ट) साधनों [illegible] कर चुके हैं, तथैव प्रबल पुरुषार्थ करके केवलज्ञान-केवलदर्शन [illegible] तत जिन्होंने प्रगट की है। वैसे जिनेश्वर देवों ने जगत् के जीवों [illegible] वषय के लिए, करुणा लाकर सिद्धान्तरूप (शास्त्र की) वाणी [illegible] र खड़ा का अर्थ है - आत्मा के अक्षय भण्डार को खोलने की [illegible] पकड़कर अलौकिक सुख को प्राप्त करने हेतु भावभरा आमंत्रण [illegible] चक्रवर्ती की भगवान् के सिद्धान्त रहे हुए हैं। वीतराग-प्रभु के [illegible] -सा तो अनादि से आत्मा पर रहे हुए अज्ञानान्धकार को दूर [illegible] अनन्तकाल से आत्मा इस संसाराटवी में भटका [illegible] *दुःखमूलम्*"- अर्थात्- अज्ञान दुःख का मूल है [illegible] है नहीं है और ज्ञान जैसा कोई सुख नहीं है। [illegible] जैसा कोई प्रकाश नहीं है। हिंदी के एक दोहे [illegible]

पत्रवाहक बोला - "अच्छा ! आप कहोगे, वैसे ही करूँगा ।" राजा के आने का समय हुआ । अतः पत्रवाहक छिप गया । रा'नवघण अपने अतिप्रिय अश्व को संभालने हेतु अश्वशाला में आए । अपने घोड़े पर हाथ फिराकर वह वापस लौटे, उस समय छिपा हुआ पत्रवाहक दरवाजे के पास जाकर खड़ा रहा । नवघण राजा वहाँ आए, तब वह राजा के मार्ग में आड़ा लेट गया । इसलिए राजा ने कहा - "भाई ! खड़ा हो । यहाँ मार्ग के बीच में क्यों सोया है ?" तब वह बोला - "बापू ! मुझे दूसरा कोई काम नहीं है । पर पहले मेरा इतना पत्र पढ़ लीजिए ।" पहले के राजा सत्ता के मद में गरीब आदमी को तिरस्कार करके निकालते नहीं थे । अपितु गरीब की बात सुनते थे और उसका दुःख दूर करते थे । आज तो 'गरीबी हटाओ' की बातें चलती हैं, किन्तु गरीबी के बदले गरीबों को पीछे हटा रहे हैं ।

रा'नवघण ने पत्र हाथ में लिया । उनके मन में विचार हुआ कि 'ऐसा गरीब व फटे हाल मानव किसका पत्र लाया होगा ? देखूं पढूं तो सही ।' पत्र खोलकर नवघण उसे पढ़ने लगा । पत्र में जाहल ने अपने दुःख की बात बताते हुए, क्या-क्या लिखा था ? यह उसका भाई पढ़ रहा है -

"जाहल चिट्ठी मोकले, वांचे नवघण वीर ।
सिंधमां रोकी सुमरे, हालवा दे न हमीर ॥"

हे मेरे वीर ! (भैया) ! सोरठ देश में विकट दुष्काल पड़ा । कुँए या नदी में नीर नहीं रहे । खाने के भी लाले पड़ गये । पशुधन तथा मनुष्य मरने लगे । हमारी स्थिति बड़ी कठिन हो गई । इसलिए हम सोरठ छोड़कर सिन्ध में आए । दुष्काल समाप्त होते ही हमें लगा कि सोरठ में अब सुकाल हुआ होगा, यों जानकर कुछ दिनों बाद सोरठ जाने की तैयारी में थे । इसी बीच सिन्ध का सूबेदार हमीर सुमरा मेरे रूप पर मुग्ध हो गया । उसे मैंने ६ महीने की मुद्दत दी है । वीरा ! तू तो राज्य-सुख में आसक्त हो गया है । मैं तुझे पूर्व-स्मृति ताजी करा रही हूँ । इसे तू बराबर पढ़ ले - हे नवघण वीरा ! पाटण के लश्कर ने जूनागढ पर जंग मचाया और जूनागढ़ को जीत लिया । तेरे पिताजी उस युद्ध में वीरगति पाये और माता ने अग्निस्नान किया । उस वक्त तेरी रक्षण करने हेतु तेरी वफादार दासी किसी सज्जन मानव को ढूंढती बोडीदार गाँव में आकर तुझे देवायत आहीर को सौंपा । हे वीर ! देवायत ने तेरा रक्षण तो किया, पर कैसे किया यह सुन ! मेरा भाई उगो दो वर्ष हमसे बड़ा था । मैं और तू दोनों समवयस्क थे । उस समय तू ६ महीने का था, मेरे पिता ने मेरी माता की गोद में डालकर तुझे सौंपा । मैं माता की गोद में सोती थी, तब मुझे माँ की गोद से लेकर तुझे सुलाया । वीर ! तू आया तब से मैंने माता के मीठे दूध का स्वाद नहीं चखा । मैं एक गुदड़ी में पड़ी रहती, माता मुझे रमाती नहीं थी, तुझे लाडप्यार से पालती थी । तेरे प्रति माँ के स्नेह के कारण मैंने माँ का लाडप्यार खोया, दूध खोया । मैं तो यों भटकती हुई बड़ी हुई । इस प्रकार तुझे बड़ा करने (पालने-पोसने) में मेरे माता-पिता के सिर पर कितना संकट आया है ? यह तेरे

कहते हैं – "इस समय तू मोहरूपी मदिरा पीकर विषयों में आसक्त हो गया है, पर याद रखना कि तेरे द्वारा किये हुए कर्म तुझे ही भोगने पड़ेंगे। भगवान् ने फरमाया है – *"अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाणय सुहाणय ॥"* आत्मा ही अपने सुखों और दुःखों का कर्ता और भोक्ता है। मतलब यह है कि शुभ-अशुभ कर्म का करनेवाला आत्मा है और उसे भोगनेवाला भी आत्मा है। आप यह न मानना कि बाप कर्म करता है तो उसका फल उसका पुत्र भोगेगा। जो करेगा, वही भोगेगा। एक कवि ने इस विषय में युक्ति प्रस्तुत की है –

> पिता आदि द्वारा संचित धन, होने से अधिकार कभी।
> बिना कमाये ही पुत्रों को, मिल जाता है अहो सभी।
> इसी तरह पिछले पापों का, इस भव में फल मिलता है।
> ज्ञानीजन इसलिए पाप से, सदा विरत ही रहता है॥

पिता की पूंजी का उत्तराधिकार कमाने की मेहनत किये बिना पुत्र को मिल जाती है। इसी प्रकार इस भव में भले ही जीव ने पाप नहीं किया, किसी प्रकार का गाढ़ कर्मबन्धन नहीं किया, ऐसे पवित्र जीवों को भी पूर्वभव में बांधे हुए कर्म के फल उत्तराधिकार रूप में आते हैं, उन्हें भोगने पड़ते हैं। किसी पवित्र, न्यायी और धर्मिष्ठ मनुष्य पर यदि दुःख आ पड़ता है, अथवा वह रोग से पीड़ित होता है तो उसे देखकर बहुत-से लोग कहने लगते हैं – *'अरेरे ! इसने क्या पाप किये ? यह तो एक चींटी को* भी दुःखित करे, ऐसा जीव नहीं है, फिर भी ऐसा दुःख क्यों आ पड़ा ? ओह ! संसार छोड़कर साधु बन गए, फिर भी उन पर ऐसा रोग क्यों आया ?' भला, सोचो तो सही, साधु हो या गृहस्थ हो, संसारी हो या भोगी, धर्मात्मा हो या पापात्मा, तीर्थंकर हो या चक्रवर्ती, चाहे जो हो, कर्म किसी को नहीं छोड़ता ! इसलिए ज्ञानीपुरुष पापकर्म से सदैव डरते रहते हैं।

चक्रवर्ती कितने बलवान होते हैं। छह-छह खण्ड में जिनका आण (आज्ञा) प्रवर्तित होती है। जो चलते समय धरती को कम्पित कर देते हैं। चक्रवर्ती के बल के विषय में कहा जाता है कि नदी के एक किनारे चक्रवर्ती रस्से का एक सिरा पकड़ कर खड़ा रहे, और उसी रस्से का दूसरा सिरा सामनेवाले किनारे हजारों शूरवीर सैनिक पकड़कर खड़े रहें, वे सभी सैनिक इकट्ठे होकर रस्से को खूब जोर से खींचें, तो भी चक्रवर्ती की कनिष्ठ अंगुली को भी नमा नहीं सकते। इसके विपरीत चक्रवर्ती अगर जरा-सा धक्का मारे तो हजारों सैनिक नदी में गिर सकते हैं। विचार कीजिए, चक्रवर्ती का बल कितना प्रबल होता है ? ऐसे बलवान् चक्रवर्तियों को भी पाप का डर लगा कि वे संसार छोड़कर साधु बन गए। अब तो तुम्हें समझ में आता है न कि पाप छोड़ने योग्य है। अभी तक चाहे जो कुछ किया, अब अगर तुम्हें समझ में आ गया हो कि पाप खराब है, त्याज्य है, तो पाप का त्याग करो। पूर्व-कृत भूलों को सुधार लो।

णिग्गंथं पावयणं सच्चं, अणुत्तरं... सल्लकत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, निज्जाणमग्गं, निव्वाणमग्गं...।"

यही निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, अनुत्तर (उत्कृष्ट) है, शल्यों को काटनेवाला है। इसका तात्पर्य है - अनादिकाल से जीव के साथ तीन शल्य (तीखे कांटे) लगे हुए हैं - मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शन-शल्य । इन तीन शल्यों में सबसे बड़ा शल्य है - मिथ्यादर्शन । उसके कारण आत्मा अपना भान भूला हुआ है । यही कारण है कि वह अपने ज्ञान का प्रवाह अपने में मोड़ने (बहाने) की अपेक्षा पर की प्राप्ति में मोड़ (बहा) रहा है । जहाँ (जिन परपदार्थों में) सुख, शान्ति और समाधि नहीं है, वहाँ उन्हें लेने के लिए तनतोड़ परिश्रम कर रहा है । ज्ञानी कहते हैं - "ओ भान भूले हुए (संसार) यात्री ! एक बार तू अपने स्वरूप-रमण को लक्ष्य बना ले तो तेरी मेहनत व्यर्थ नहीं जाए ! अगर तुझे यह भान हो जाएगा कि सच्चा सुख मेरे (मेरी आत्मा) में है, मेरी शान्ति का कारण मैं हूँ, तो तुझे अवश्य शान्ति मिलेगी ।" किन्तु आत्मा अपने उल्टे पुरुषार्थ से 'पर' में खोज चलाता है, क्योंकि उसे अपनी स्थिति का ध्यान नहीं है, इसीसे वह सांसारिक सुख की सामग्री प्राप्त करने हेतु दौड़-धूप करता है । क्योंकि उसे धर्माचरण करने की सामग्री का महत्त्व समझ में नहीं आया । बोलो बचुभाई ! तुम पुण्यवान् किसे कहते हो ? (श्रोताओं में से आवाज - जिसके घर में धन हो उसे) जिसके घर में सम्पत्ति का सागर हिलोरे ले रहा हो, जिसके आंगन में चार-चार कारें खड़ी रहती हों, खुशामद खोर लोग - जिन्हें सेठजी, सेठजी ! कहकर खुशामद करते हों, उसे तुम पुण्यवान मानते हो और तुम धन में शान्ति मानते हो । पर याद रखो, पापकर्म का उदय आने पर पर-पदार्थ, या साधन तुम्हें शान्ति देनेवाले बनेंगे क्या ? अतः समझो, इस मानवजीवन का प्रत्येक क्षण कोहीनूर हीरे की अपेक्षा भी कीमती है ।

जो अवसर हाथ से चला जाता है, वह फिर नहीं आता है । मान लो, किसी का इकलौता लाडला पुत्र मर जाए, उस वक्त उसके माता-पिता फोरेन से डोक्टर बुलाएँ और उनसे कहें कि सिर्फ एक घंटे के लिए आप मेरे पुत्र को जिंदा कर दो, तो क्या डोक्टर की वैसी ताकत है ? एक घंटा तो क्या एक सेकंड भी मृतकलेवर में प्राण-संचार कराने की किसी की ताकत नहीं है । भगवान् महावीर जब स्वयं मोक्ष जानेवाले थे, तब इन्द्र ने कहा - "प्रभो ! आप दो घड़ी ठहर जाइए । क्योंकि भस्मग्रह बैठ रहा है, इस समय !" तब त्रिलोकीनाथ प्रभु ने कह दिया - "इन्द्र ! न एवं भूतो, न भविष्यति" - इन्द्र ! न तो ऐसा कभी हुआ है और न भविष्य में कभी हो सकता है कि कोई भी जीव आयुष्य के क्षण बढ़ा या घटा सके । जब स्वयं भगवान् का आयुष्य नहीं बढ़ा तो दूसरों की तो बात ही क्या करनी ? संक्षेप में, मुझे तो [illegible] है कि मनुष्यजीवन का [illegible] क्षण कितना मूल्यवान् है ? सुनार [illegible] हैं, तब सोने की कणियाँ गिर [illegible] हैं । उन सोने की [illegible] की [illegible] का एक-एक क्षण बहुत [illegible]

कहते हैं - "इस समय तू मोहरूपी मदिरा पीकर विषयों में आसक्त हो गया है, पर याद रखना कि तेरे द्वारा किये हुए कर्म तुझे ही भोगने पड़ेंगे। भगवान् ने फरमाया है - "*अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाणय सुहाणय ।।*" आत्मा ही अपने सुखों और दुःखों का कर्ता और भोक्ता है। मतलब यह है कि शुभ-अशुभ कर्म का करनेवाला आत्मा है और उसे भोगनेवाला भी आत्मा है। आप यह न मानना कि बाप कर्म करता है तो उसका फल उसका पुत्र भोगेगा। जो करेगा, वही भोगेगा। एक कवि ने इस विषय में युक्ति प्रस्तुत की है -

पिता आदि द्वारा संचित धन, होने से अधिकार कभी।
बिना कमाये ही पुत्रों को, मिल जाता है अहो सभी।
इसी तरह पिछले पापों का, इस भव में फल मिलता है।
ज्ञानीजन इसलिए पाप से, सदा विरत ही रहता है ।।

पिता की पूंजी का उत्तराधिकार कमाने की मेहनत किये बिना पुत्र को मिल जाती है। इसी प्रकार इस भव में भले ही जीव ने पाप नहीं किया, किसी प्रकार का गाढ़ कर्मबन्धन नहीं किया, ऐसे पवित्र जीवों को भी पूर्वभव में बांधे हुए कर्म के फल उत्तराधिकार रूप में आते हैं, उन्हें भोगने पड़ते हैं। किसी पवित्र, न्यायी और धर्मिष्ठ मनुष्य पर यदि दुःख आ पड़ता है, अथवा वह रोग से पीड़ित होता है तो उसे देखकर बहुत-से लोग कहने लगते हैं - 'अरेरे ! इसने क्या पाप किये ? यह तो एक चींटी को भी दुःखित करे, ऐसा जीव नहीं है, फिर भी ऐसा दुःख क्यों आ पड़ा ? ओह ! संसार छोड़कर साधु बन गए, फिर भी उन पर ऐसा रोग क्यों आया ?' भला, सोचो तो सही, साधु हो या गृहस्थ हो, संसारी हो या भोगी, धर्मात्मा हो या पापात्मा, तीर्थंकर हो या चक्रवर्ती, चाहे जो हो, कर्म किसी को नहीं छोड़ता ! इसलिए ज्ञानीपुरुष पापकर्म से सदैव डरते रहते हैं।

चक्रवर्ती कितने बलवान होते हैं। छह-छह खण्ड में जिनका आण (आज्ञा) प्रवर्तित होती है। जो चलते समय धरती को कम्पित कर देते हैं। चक्रवर्ती के बल के विषय में कहा जाता है कि नदी के एक किनारे चक्रवर्ती रस्से का एक सिरा पकड़ कर खड़ा रहे, और उसी रस्से का दूसरा सिरा सामनेवाले किनारे हजारों शूरवीर सैनिक पकड़कर खड़े रहें, वे सभी सैनिक इकट्ठे होकर रस्से को खूब जोर से खींचें, तो भी चक्रवर्ती की कनिष्ठ अंगुली को भी नमा नहीं सकते। इसके विपरीत चक्रवर्ती अगर जरा-सा धक्का मारे तो हजारों सैनिक नदी में गिर सकते हैं। विचार कीजिए, चक्रवर्ती का बल कितना प्रबल होता है ? ऐसे बलवान् चक्रवर्तियों को भी पाप का डर लगा कि वे संसार छोड़कर साधु बन गए। अब तो तुम्हें समझ में आता है न कि पाप छोड़ने योग्य है। अभी तक चाहे जो कुछ किया, अब अगर तुम्हें समझ में आ गया हो कि पाप खराब है, त्याज्य है, तो पाप का त्याग करो। पूर्व-कृत भूलों को सुधार लो।

ल को सुमरे के चंगुल से छुड़ाकर उसके शील का रक्षण करना है। अपनी सेना
ज्जित की। इसके अतिरिक्त उसने समग्र सौराष्ट्र में जो-जो शूरवीर योद्धा थे, उन्हें
या। कुल नौ लाख सेना एकत्रित करके सिन्ध पर चढ़ाई करने हेतु रा'नवघण जूनागढ
कूच करके चल पड़ा।

रा'नवघण की सेना पानी के प्रवाह की तरह द्रुतगति से चली जा रही है। चलते-
ते सारी सेना 'खोड़' नामक गाँव के बाहर, जहाँ गाँव के ढोर इकट्ठे होकर बैठते हैं,
पहुँची। इस समय 'वरूडी' नाम की एक चारण पुत्री, अपनी समवयस्क सहेलियों
साथ खेल रही थी, वह रा'नवघण के बीच में रास्ता रोककर खड़ी हो गई। यह देख
घण ने कहा - "बहन! तू हमारे मार्ग से दूर हट जा। हमें जल्दी आगे पहुँचना है।"
घण के पीछे सारी सेना रुक गई। वरूडी बोली - "ओ मेरे नवघण वीरा! मैं तुझे
जन कराये बिना आगे नहीं जाने दूंगी।" तब नवघण ने कहा - "मैं अकेला नहीं
मेरे साथ नौ लाख सेना है। इन सबको तू कैसे भोजन कराएगी?" इस पर वरूड़ी
कहा - "सब हो जाएगा वीरा! तू श्रद्धा रख।" वरूडी की बात सुनकर रा'नवघण
बोल नहीं सका। उसने वरूडी का आमंत्रण स्वीकार कर लिया। सारी सेना वहाँ
दी। उस समय वरूड़ी ने एक कुलड़ी में चावल पकाए। उस पर कपड़ा ढांक दिया।
दो हाथ जोड़कर बोली - "मेरी जाहल बहन सच्ची सती हो तो उसके शील के प्रभाव
स कुलड़ी में से मेरा नवघण भैया और उसका सारा सैन्य भोजन कर ले, इतना
वान और सारा भोजन मिल जाए।" यों कहकर उसने अंदर से मिठाइयाँ बाहर
लीं, नवघण-सहित सारा सैन्य भोजन कर चुका, परन्तु भोजन कम नहीं हुआ। यह
कर नवघण को वरूडी पर श्रद्धा सुदृढ़ हुई। उसने नमन करके हमीर सुमरा पर चढ़ाई
हेतु जाने की आज्ञा मांगी। इस पर वरूड़ी ने कहा - "वीरा! तू सती पर आये
संकट में सहायता के लिए जा रहा है। अवश्य ही तेरी विजय होगी। तू विजय का
बजाकर मेरी जाहलबहन को लेकर जल्दी आना।" जाहल की ६ महीने के प्रतिज्ञा
ब सिर्फ एक-दो दिन बाकी थे, तभी रा'नवघण सैन्य सहित सिंध में पहुँच गया।
पहुँचते ही हमीर-सुमरा के शहर के चारों ओर घेरा डाल दिया। अचानक सौराष्ट्र
सैन्य को अपने शहर पर चढ़ आये जानकर हमीर-सुमरा घबरा गया। फिर दोनों में
सान लड़ाई हुई, जिसमें सुमरा की सेना शीघ्र ही कुचल दी गई। हमीर रा'नवघण
शरण में आया। रा'नवघण विजय-पताका फहराकर सहर्ष अपनी वात्सल्यमयी बहन
पास आया। जाहल ने उत्साहपूर्वक भाई पर न्योछावर किया। अनेक वर्षों के पश्चात्
को देखकर उसकी आँखों से हर्षाश्रु उमड़ पड़े। वह बोली - "भैया! आज तू न
या होता तो मेरी क्या हालत होती?" नवघण बोला - "अरी बहन! जबतक इस
र में प्राण है, तबतक तो मैं अपनी बहन का बाल भी बांका नहीं होने दूंगा।" यों
ल को छुड़ाकर विजय प्राप्त करके रा'नवघण सुखपूर्वक जूनागढ आया। फिर उसने
ल और उसके पति का बहुत सत्कार करके सन्तुष्ट किया और उन्हें अपने पास रखे।

के लिए उन पर मुझे डालते हैं । जहाँ ऊँची-नीची जमीन होती है, वहाँ मुझे डालकर सारी जमीन एक-सरीखी बना दी जाती है । मेरा उपयोग धर्मकार्य में भी होता है । अनपढ़ बहनें जो घड़ी देखना नहीं जानती थी, वे काच की दूतरफी घड़ियाँ बनाकर उनमें मुझे (बालू) भर लेती थी, और मैं (बालू) ऊपर से नीचे गिरकर सामायिक पूरी होने का टाइम बता देती हूँ । इस तरह मुझमें अनेक गुण हैं । इस कारण मेरी तुलना गुणहीन मानव के साथ कदापि नहीं हो सकती ।"

अन्त में भर्तृहरि ने निर्गुणी की तुलना कुत्ते के साथ की । वे बोले -

"मनुष्यरूपेण कुक्कुरो भवति" वह मनुष्य के रूप में कुत्ता होता है । कुत्ते ने जब यह सुना तो कहा - "निर्गुणी मनुष्य को कदापि मेरी उपमा नहीं दी जा सकती । मुझे दुर्गुनी मनुष्य के सदृश बताकर मेरे पर झूठा कलंक लगाते हैं । मुझ में दुर्गुणी मानव की अपेक्षा अनेक गुण रहे हुए हैं । मैं अपने मालिक का अनन्य भक्त बनकर रहता हूँ । जो एक बार मुझे खिला-पिला देता है, और मुझे अपना मानकर रखता है, प्राण अर्पण करके भी उसकी मैं अहर्निश रक्षा करता हूँ । अपने मालिक के प्रति मेरी भक्ति भगवान् के भक्त से जरा भी कम नहीं है । मैं अपने मालिक को कभी धोखा नहीं देता । जबकि निर्गुणी मानव दगा करता है, विश्वासघात करता है, तथा समय आने पर उपकारी के उपकार को भूलकर उपकार पर अपकार करता हुआ भी नहीं हिच-किचाता । मानव प्रायः स्वार्थी और नमक़हरामी होता है । मनुष्य उदरपूर्ति के लिए सरस स्वादिष्ट भोजन बनाता है । हजारों रुपये घी, दूध, मिठाई आदि में खर्च करता है । जब कि मुझे रूखी-सूखी या बासी जो कुछ भी खाने को मिलता है, उसी में संतोष मानता हूँ । मेरे में आलस्य तो जरा भी नहीं है, जबकि निर्गुणी मनुष्य आलसी होता है । मैं समयसूचक भी हूँ । अगर मेरे सामने मुझसे कोई बलिष्ठ प्राणी आता है तो मैं उसके सामने झुक भी जाता हूँ । इस प्रकार मुझमें नम्रता भी है । मैं चोर को ढूंढ देने में भी सहायता करता हूँ । बन्धुओं ! यह तो एक रूपक है । यद्यपि पशु, पेड़, तृण, धूल ये सब बोलते नहीं हैं । परन्तु इनमें जो गुण रहे हुए हैं, उनसे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता । जो गुणहीन व्यक्ति मनुष्यजन्म पाकर दान, शील, तप, संतोष, क्षमा आदि सद्गुणों को नहीं अपनाते, केवल विषयभोगों में आसक्त रहते हैं, वे यह भव और पर-भव दोनों भव बिगाड़ते हैं । इस समय संसार में दगा, प्रपंच, स्वार्थ आदि बढ़ गए हैं । धर्म को तो डंडे मारकर भगा दिया है । आज अधर्म तो मौज उड़ा रहा है । एक जमाना ऐसा था कि चोर के पेट में जिसके घर का नमक जाता था, वह उसके घर में चोरी नहीं करता था । एक बार एक चोर किसी के घर में चोरी करने गया । चोरी का माल ढूंढते हुए उसके हाथ में एक घड़ा आया, जिसमें पीसा हुआ नमक था । उसने उसे शक्कर समझकर मुँह में डाल ली । खाने पर पता लगा कि यह तो नमक है । इतने में तो घर का मालिक जाग गया, उसने चोर को पकड़ लिया और मारने लगा । तब चोर ने कहा - "भाई ! मैं चोर हूँ । चोरी करने के लिए आया हूँ । परन्तु मैंने एक पाई की

जाहल को सुमरे के चंगुल से छुड़ाकर उसके शील का रक्षण करना है । अपनी सेना सुसज्जित की । इसके अतिरिक्त उसने समग्र सौराष्ट्र में जो-जो शूरवीर योद्धा थे, उन्हें बुलाया । कुल नौ लाख सेना एकत्रित करके सिन्ध पर चढ़ाई करने हेतु रा'नवघण जूनागढ से कूच करके चल पड़ा ।

रा'नवघण की सेना पानी के प्रवाह की तरह द्रुतगति से चली जा रही है । चलते-चलते सारी सेना 'खोड़' नामक गाँव के बाहर, जहाँ गाँव के ढोर इकट्ठे होकर बैठते हैं, वहाँ पहुँची । इस समय 'वरूडी' नाम की एक चारण पुत्री, अपनी समवयस्क सहेलियों के साथ खेल रही थी, वह रा'नवघण के बीच में रास्ता रोककर खड़ी हो गई । यह देख नवघण ने कहा - "बहन ! तू हमारे मार्ग से दूर हट जा । हमें जल्दी आगे पहुँचना है ।" नवघण के पीछे सारी सेना रुक गई । वरूडी बोली - "ओ मेरे नवघण वीरा ! मैं तुझे भोजन कराये बिना आगे नहीं जाने दूंगी ।" तब नवघण ने कहा - "मैं अकेला नहीं हूँ । मेरे साथ नौ लाख सेना है । इन सबको तू कैसे भोजन कराएगी ?" इस पर वरूड़ी ने कहा - "सब हो जाएगा वीरा ! तू श्रद्धा रख ।" वरूडी की बात सुनकर रा'नवघण कुछ बोल नहीं सका । उसने वरूडी का आमंत्रण स्वीकार कर लिया । सारी सेना वहाँ रोक दी । उस समय वरूड़ी ने एक कुलड़ी में चावल पकाए । उस पर कपड़ा ढांक दिया । फिर दो हाथ जोड़कर बोली - "मेरी जाहल बहन सच्ची सती हो तो उसके शील के प्रभाव से इस कुलड़ी में से मेरा नवघण भैया और उसका सारा सैन्य भोजन कर ले, इतना पकवान और सारा भोजन मिल जाए ।" यों कहकर उसने अंदर से मिठाइयाँ बाहर निकालीं, नवघण-सहित सारा सैन्य भोजन कर चुका, परन्तु भोजन कम नहीं हुआ । यह देखकर नवघण को वरूडी पर श्रद्धा सुदृढ़ हुई । उसने नमन करके हमीर सुमरा पर चढ़ाई करने हेतु जाने की आज्ञा मांगी । इस पर वरूड़ी ने कहा - "वीरा ! तू सती पर आये हुए संकट में सहायता के लिए जा रहा है । अवश्य ही तेरी विजय होगी । तू विजय का डंका बजाकर मेरी जाहलबहन को लेकर जल्दी आना ।" जाहल की ६ महीने के प्रतिज्ञा में अब सिर्फ एक-दो दिन बाकी थे, तभी रा'नवघण सैन्य सहित सिंध में पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही हमीर-सुमरा के शहर के चारों ओर घेरा डाल दिया । अचानक सौराष्ट्र के सैन्य को अपने शहर पर चढ़ आये जानकर हमीर-सुमरा घबरा गया । फिर दोनों में घमासान लड़ाई हुई, जिसमें सुमरा की सेना शीघ्र ही कुचल दी गई । हमीर रा'नवघण की शरण में आया । रा'नवघण विजय-पताका फहराकर सहर्ष अपनी वात्सल्यमयी बहन के पास आया । जाहल ने उत्साहपूर्वक भाई पर न्योछावर किया । अनेक वर्षों के पश्चात् भाई को देखकर उसकी आँखों से हर्षाश्रु उमड़ पड़े । वह बोली - "भैया ! आज तू न आया होता तो मेरी क्या हालत होती ?" नवघण बोला - "अरी बहन ! जबतक इस शरीर में प्राण है, तबतक तो मैं अपनी बहन का बाल भी बांका नहीं होने दूँगा ।" यों जाहल को छुड़ाकर विजय प्राप्त करके रा'नवघण सुखपूर्वक जूनागढ आया । फिर उसने जाहल और उसके पति का बहुत सत्कार करके सन्तुष्ट किया और उन्हें अपने पास रखे।

के खिलाफ जूझे । महात्मा गाँधीजी ने भी कितनी ही बार जेल में सजा काटी ? उनका एक ही ध्येय था कि अंग्रेजों को हटाकर भारत को बन्धन-मुक्त करके आजादी प्राप्त करें। अन्त में उन्होंने अपना ध्येय सिद्ध किया और अंग्रेजों को हटाकर भारत को स्वतंत्र कराया । यह स्वतंत्रता एक जीवन तक की है ।

बन्धुओं ! भारत ने अंग्रेजों की गुलामी २०० से २५० वर्ष तक सहन की । अंग्रेजों की यह गुलामी खटकी तो इस गुलामी से मुक्त होने और अंग्रेजों का साम्राज्य हटाकर भारत का साम्राज्य स्थापित करने हेतु भारतवासियों को कितना पुरुषार्थ करना पड़ा ? कितने युवकों का बलिदान देना पड़ा ? कितने कष्ट सहने पड़े ? तो आत्मारूपी भारत-सरकार पर अष्टविध कर्मरूपी ब्रिटिश सरकार ने अनन्तकाल से कितना वर्चस्व जमा रखा है ? अष्टकर्म रूपी अंग्रेज आत्मा को चार गतियों में परिभ्रमण कराते हैं । उसे हटाकर आत्मारूपी भारत का साम्राज्य स्थापित करने का मन होता है क्या ? जिन्हें यह (कर्मों की) गुलामी खटकी है, उन आत्माओं ने कर्मों की गुलामी से मुक्त होने के लिए संसार छोड़कर संयम अंगीकार किया है ।

'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' में थावच्चाकुमार का अधिकार आता है । वह राजसी ठाठबाठ जैसे सुख में रहते थे । उनके ३२-३२ देवियों जैसी पत्नियाँ थीं । एक बार उन्होंने भवगान् अरिष्टनेमिनाथ की वाणी सुनी तो वे संसार से विरक्त हो गए । घर आकर उन्होंने माता से कहा - माँ ! अब मुझे कर्मरूपी शत्रु की गुलामी के नीचे दबकर नहीं रहना है । मुझे अपनी आत्मा को स्वतंत्र बनाने हेतु नेमनाथ प्रभु की शरण में जाना है और उनका सच्चा सैनिक बनकर कर्मसंग्राम में जूझकर कर्मशत्रु को हटाकर मोक्ष का अव्याबाध सुख प्राप्त करने के लिए भागवती दीक्षा लेनी है । अतः आप मुझे आज्ञा प्रदान करो ।" थावच्चापुत्र अपनी माता का एकलौता लाड़ला पुत्र था, किन्तु उसके वैराग्य के आगे किसी की बात नहीं चली । इसी प्रकार महाबल आदि संतों अनगारों को कर्म की परतंत्रता खटकी, इस कारण वे संयम ग्रहण कर उत्कृष्ट आराधना करने लगे ।

देवानुप्रियों ! संसार छोड़कर साधुत्व स्वीकार करना कोई आसान बात नहीं है । जब अन्तर से ऐसी रुचि उत्पन्न होती है, तभी संयम लिया जाता है । आर्हती दीक्षा लेने के लिए संसार के प्रति रागभाव छोड़ना पड़ता है । जो तप करते हैं, उन्हें देह के प्रति रागभाव छोड़ना पड़ता है और दान करते हैं, उन्हें परिग्रह की ममता छोड़नी पड़ती है । वहाँ लोभ काम नहीं आता । एक सेठ अत्यन्त लोभी थे । अपने घर के लड़कों को किसी दिन भी मिठाई नहीं खिलाते थे । एक दिन उसके पुत्र का पुत्र (पौत्र) बोला - "दादाजी ! आज तो १५ अगस्त है, स्वातंत्र्य दिवस है । आज तो आप हमें पेड़े खिलाइए ।" लड़के हठ पर उतर गए । दादा की धोती पकड़कर कहने लगे - "आज तो हमारे लिए पेड़े ला दीजिए ।" इस कारण दादा हाथ में रानीछाप रुपया लेकर हलवाई की दुकान पर पेड़े लेने गए । वह प्रत्येक दुकान पर पेड़ा चखते हैं, परन्तु खरीदते नहीं हैं । यों खाली हाथ घर आए । लड़कों ने पूछा - "दादा ! पेड़े लाए क्या ?" दादा ने

जाहल को सुमरे के चंगुल से छुड़ाकर उसके शील का रक्षण करना है । अपनी सेना सुसज्जित की । इसके अतिरिक्त उसने समग्र सौराष्ट्र में जो-जो शूरवीर योद्धा थे, उन्हें बुलाया । कुल नौ लाख सेना एकत्रित करके सिन्ध पर चढ़ाई करने हेतु रा'नवघण जूनागढ से कूच करके चल पड़ा ।

रा'नवघण की सेना पानी के प्रवाह की तरह द्रुतगति से चली जा रही है । चलते-चलते सारी सेना 'खोड़' नामक गाँव के बाहर, जहाँ गाँव के ढोर इकट्ठे होकर बैठते हैं, वहाँ पहुँची । इस समय 'वरूडी' नाम की एक चारण पुत्री, अपनी समवयस्क सहेलियों के साथ खेल रही थी, वह रा'नवघण के बीच में रास्ता रोककर खड़ी हो गई । यह देख नवघण ने कहा - "बहन ! तू हमारे मार्ग से दूर हट जा । हमें जल्दी आगे पहुँचना है ।" नवघण के पीछे सारी सेना रुक गई । वरूडी बोली - "ओ मेरे नवघण वीरा ! मैं तुझे भोजन कराये बिना आगे नहीं जाने दूंगी ।" तब नवघण ने कहा - "मैं अकेला नहीं हूँ । मेरे साथ नौ लाख सेना है । इन सबको तू कैसे भोजन कराएगी ?" इस पर वरूड़ी ने कहा - "सब हो जाएगा वीरा ! तू श्रद्धा रख ।" वरूडी की बात सुनकर रा'नवघण कुछ बोल नहीं सका । उसने वरूडी का आमंत्रण स्वीकार कर लिया । सारी सेना वहाँ रोक दी । उस समय वरूड़ी ने एक कुलड़ी में चावल पकाए । उस पर कपड़ा ढांक दिया । फिर दो हाथ जोड़कर बोली - "मेरी जाहल बहन सच्ची सती हो तो उसके शील के प्रभाव से इस कुलड़ी में से मेरा नवघण भैया और उसका सारा सैन्य भोजन कर ले, इतना पकवान और सारा भोजन मिल जाए ।" यों कहकर उसने अंदर से मिठाइयाँ बाहर निकालीं, नवघण-सहित सारा सैन्य भोजन कर चुका, परन्तु भोजन कम नहीं हुआ । यह देखकर नवघण को वरूडी पर श्रद्धा सुदृढ़ हुई । उसने नमन करके हमीर सुमरा पर चढ़ाई करने हेतु जाने की आज्ञा मांगी । इस पर वरूड़ी ने कहा - "वीरा ! तू सती पर आये हुए संकट में सहायता के लिए जा रहा है । अवश्य ही तेरी विजय होगी । तू विजय का डंका बजाकर मेरी जाहलबहन को लेकर जल्दी आना ।" जाहल की ६ महीने के प्रतिज्ञा में अब सिर्फ एक-दो दिन बाकी थे, तभी रा'नवघण सैन्य सहित सिंध में पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही हमीर-सुमरा के शहर के चारों ओर घेरा डाल दिया । अचानक सौराष्ट्र के सैन्य को अपने शहर पर चढ़ आये जानकर हमीर-सुमरा घबरा गया । फिर दोनों में घमासान लड़ाई हुई, जिसमें सुमरा की सेना शीघ्र ही कुचल दी गई । हमीर रा'नवघण की शरण में आया । रा'नवघण विजय-पताका फहराकर सहर्ष अपनी वात्सल्यमयी बहन के पास आया । जाहल ने उत्साहपूर्वक भाई पर न्योछावर किया । अनेक वर्षों के पश्चात् भाई को देखकर उसकी आँखों से हर्षाश्रु उमड़ पड़े । वह बोली - "भैया ! आज तू न आया होता तो मेरी क्या हालत होती ?" नवघण बोला - "अरी बहन ! जबतक इस शरीर में प्राण है, तबतक तो मैं अपनी बहन का बाल भी बांका नहीं होने दूँगा ।" यों जाहल को छुड़ाकर विजय प्राप्त करके रा'नवघण सुखपूर्वक जूनागढ आया । फिर उसने जाहल और उसके पति का बहुत सत्कार करके सन्तुष्ट किया और उन्हें अपने पास रखे।

रक्त के अणु मिटकर दूध बन जाते हैं और माता तब अपनी संतान को स्तनों से दुग्धपान कराती है। माता के शरीर में दूध का डिब्बा भरा हुआ नहीं है, परन्तु बालक के जन्म लेने के साथ ही दूध बन जाता है, यह है माता के वात्सल्य का प्रभाव !

रुक्मिणी बच्चे की माता बनी, किन्तु बच्चे को पास में न देखकर कहती है - "ओ मेरे लाडले लाल ! मेरे नन्हे मुन्ने ! तू किस दिशा में चला गया ? तेरे बिना तेरी माँ झूर रही है। तेरे बिना मेरी आंतें टूट-सी रही हैं। मेरे नयनों के तारे ! तू जिस दिशा में गया हो, वहाँ से शीघ्र आ जा बेटा ! जैसे अन्धे को लकड़ी का सहारा होता है, वैसे ही तू मेरे जीवन का सहारा (आधार) है। हे मेरे यादवकुल के श्रृंगार ! जैसे पानी के बिना मछली तड़फ कर मर जाती है, वैसे तू नहीं आएगा तो तेरे वियोग में तेरी माता तड़फ कर मर जाएगी। अतः तू जल्दी से आकर अपनी माँ को तेरे मुख का दर्शन करा !

बेटा ! तुम बिन धन कंचन धूल है, वस्त्राभूषण सब आग-समान।
भोजन भी उग्र हलाहल सरीखो, मुझ से तो पक्षिणी है पुण्यवान हो॥ श्रोता...

पुत्र ! तेरे बिना यह सोना, हीरा, माणिक आदि सब धूल और कंकर के समान लगते हैं, ये सुन्दर वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण मुझे आग के तुल्य लगते हैं। खाना-पीना सब जहर के समान लगता है। यह भव्य महल स्मशान जैसा सूना-सूना मालूम होता है। मेरी अपेक्षा तो वह चिड़िया भी मुझे सुखी दिखाई देती है, जो अपने बच्चों के लिए चुग्गा लाकर खिलाती है, अपने बच्चों को रमाती है। यह कितनी भाग्यशालिनी है कि अपने बच्चों को प्यार करती है, दुलारती है। यह कैसी पुण्यशालिनी है ? मैं तो चिड़िया की अपेक्षा भी दुखियारी हूँ। मैंने पूर्वभव में पाप करते हुए कोई संकोच नहीं किया, उसी का यह फल मालूम होता है। हे आत्मन् ! तूने पूर्वभव में पशु-पक्षी का उनके बच्चों से वियोग (विछोह) कराया होगा !" आज बहुत-से लोग तोता, चिड़िया मैना आदि पक्षियों को पकड़कर पींजरे में बंध करके रखते हैं। उन्हें रमाने में आनन्द मानते हैं। उन्हें आनन्द होता है, परन्तु वह बच्चा अपने माता-पिता से अलग पड़ जाता है, तब झूरता है, उसके माँ-बाप भी अपने बच्चे के वियोग में झूरते हैं। रुक्मिणी कहती है कि "मैंने पशु-पक्षियों के बच्चों को खेलाने के शौक से उनके माँ-बाप से विमुक्त किये होंगे। मैंने अंडे फोड़े होंगे। किसी भव में निर्दय शिकारी बनकर मैंने पानी से भरे हुए सरोवर सूखा कर मछलियाँ मारी होंगी। किसी का धन चुराया होगा। कुलटा स्त्री बनकर गर्भ गलाए होंगे। हरेभरे वनों में आग लगाकर उन्हें जला डाले होंगे। रात्रिभोजन किये होंगे। अज्ञानतापूर्वक मद्य-मांस का सेवन किया होगा। किसी पर चोरी का मिथ्या दोषारोपण किया होगा। मैंने पूर्वभव में ऐसे महान् पापों का सेवन किया होगा। सास और पुत्रवधू को प्रेम से रहते देखकर मेरे दिल में ईर्ष्या की आग लगी होगी, उनका यह प्रेम मेरे से बर्दाश्त नहीं हुआ होगा, और मैंने सच-झूठ करके उन सास-बहू के प्रेम को भंग कराया होगा, उनके दिल में दरार पैदा की होगी। किसी की धरोहर को हड़प ली

"तन रोगों की खान है, धन भोगों की खान ।
ज्ञान सुखों की खान है, दुःख-खान अज्ञान ।।"

यह औदारिक शरीर रोगों की खान है, क्योंकि हमारे शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम राजि है । उसमें एक-एक रोम (रोवें) पर पौने दो-दो रोग रहे हुए हैं । परन्तु इनका उदय नहीं हुआ । वे अन्दर अभी सत्ता में पड़े हुए हैं, तबतक सुखपूर्वक धर्माराधना की जा सकती है और धनभोग की खान है । यह तो तुम्हें बहुत पता है कि मनुष्य के पास ज्यों-ज्यों धन का ढेर लगता जाता है, त्यों-त्यों उसके निमित्त से भोग-विलास बढ़ता जाता है । इसलिए कहा - धन भोगों की खान है, और ज्ञान सुखों की खान है । इसका कारण यह है कि ज्यों-ज्यों आत्मज्ञान का जीवन में आगमन होता है, त्यों-त्यों जीव को विषयों के प्रति विरक्तिभाव पैदा होता है । ज्ञान द्वारा जीव शुभाशुभ कर्म के फल को जान सकता है । इस कारण वह सुख में आसक्त नहीं होता और नहीं दुःख में घबराता है । इसलिए चाहे जैसे संयोगों में ज्ञानी आत्मा समभाव रख सकता है, जबकि अज्ञानी को जीव-अजीव का भान नहीं है, सच्चे-खोटे की पहचान नहीं है; करने योग्य क्या है और छोड़ने योग्य क्या है, इसका ज्ञान नहीं है । इस कारण उसे पद-पद पर दुःख हुआ करता है । इसी कारण अज्ञान को दुःख की खान के समान कहा है ।

वस्तुतः अज्ञान एक प्रकार का अन्धत्व है । कोई मनुष्य आँखों से अन्धा है, उसकी अपेक्षा भी अज्ञान का अन्धत्व भयंकर है । आप जानते हैं कि आँख से अन्धी ग्रेज्युएट हो जाता है, क्योंकि उसके बाह्यदृष्टि नहीं है, किन्तु आन्तरदृष्टि खुली है । जिसकी बाह्यदृष्टि खुली है, लेकिन आन्तरदृष्टि बंद है; ऐसे अज्ञानी आत्मा रात-दिन अशान्ति की आग में जलता रहता हैं । उस पर दुःख आ पड़ता है, तब रोता है, विलाप करता है, झूरता है, और अपनी भूल का आरोप दूसरों पर डालकर नये कर्म बांधकर संसारवृद्धि करता है । जबकि ज्ञानी आत्मा के कर्मों का उदय होता है, तब वह अपने कर्मों का दोष देखता है; वह किसी पर दोषारोपण नहीं करता । वह ज्ञान के द्वारा उदय में आये हुए कर्मों का समभाव से भोग कर क्षय कर डालता है । अब तो समझ में आ गया न कि ज्ञान से कितना और क्या लाभ है ? भगवद् गीता (अ. ४, श्लो.३७) में स्पष्ट कहा गया है -

*"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।।"*

हे अर्जुन ! जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है । अर्थात् - ज्ञानरूपी अग्नि की एक चिनगारी, कर्म के ढेर को क्षणभर में जलाकर भस्मीभूत कर देता है । ज्ञानी आत्मा दुःख से घबराता नहीं है, किन्तु वह दुःख के कारणों को ढूंढता है । जरा सोचो तो समझ में आएगा कि मिथ्यात्व और अज्ञान, वे दो शत्रु आत्मा का अमूल्य धन रात-दिन लूट रहे हैं । क्या तुम्हें इसका पता है कि ज्ञानी गुरु मिथ्यात्व और अज्ञान के पाश से छुड़ाने का सतत प्रयत्न करते हैं, परन्तु मोहमूढ़ जीव को अभी तक भान नहीं होता । भगवान्

- पुत्री तथा मित्रों का परिवार भी प्राप्त किया। बोलो, अब क्या बाकी रहा ? मानवभव अनेकवार मिला, पर जो प्राप्त करना था, वह प्राप्त नहीं किया। भगवान् कहते हैं - "अनेकवार मानवभव मिलने पर भी अभी तक तेरे भव (जन्म-मरणरूप संसार) क्यों नहीं घटे ?" मुक्ति का सुख अभी तक उसे क्यों नहीं मिला ? इसके विषय में कभी सोचा है ? संसार के सुख के लिए सभी साधन प्राप्त किये। घर में उसे व्यवस्थित रूप से जमा कर घर सजाया। कब मुझे क्या करना है ? किस दिन कहाँ घूमने जाना है ? क्या खाना है ? किससे मिलने जाना है ? ये सब निर्णय किये, किन्तु सिर्फ एक आत्मा के सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया। आत्मा के स्वरूप की पहचान के बिना, चारित्र के स्वीकार के बिना, सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना तू अनन्तकाल से भटका है। किन्तु जैसा कि भगवान् ने कहा - *"एगो धम्मो न लब्भइ"* - जीव ने एक धर्म को नहीं प्राप्त किया।

देवानुप्रियों ! तुम अपने बही खाते में जमा और उधार (खर्च) का अलग-अलग हिसाब लिखते हो और वर्ष के अन्त में आंकड़ा मिलाते हो, नफा-नुकसान का तलपट निकालते हो। तो अब आत्मा का एक खाता खोलना। उसमें प्रतिवर्ष पर्युषण के अवसर पर आत्मा के जमा-खर्च (नामे) का तलपट निकालना कि आत्मा के खाते में कितना जमा है, कितना नामे (खर्च) है ? यदि आत्मा का हिसाब न मिलाया हो तो अब अवश्य मिलाने के लिए आतुरता जगाओ। तुम्हें सांसारिक सुख के लिए किसी चीज को पाने की आतुरता जागती है, उसे प्राप्त करने के लिए कितना पुरुषार्थ करते हो ? तुम्हारे पड़ोसी के यहाँ टी.वी. और फ्रीज आया है, तो तुम्हें भी ऐसा विचार आता है कि मैं भी अपने घर में टी.वी. और फ्रीज लाऊँ। परन्तु इन वस्तुओं को लाने की कदाचित् तुम्हारी आर्थिक शक्ति नहीं है। पास में पैसा न होने से ये चीजें खरीद नहीं सकते। परन्तु इन चीजों को खरीद कर लाने की चटपटी तो लगी रहती है कि मैं कब ऐसा धनाढ्य बनूं और अपने घर में टी.वी., फ्रीज आदि खरीद कर लाऊँ। इन भौतिक चीजों के लिए तुम चाहे जितनी उत्कट इच्छा करो, उन्हें प्राप्त कर भी लो, फिर भी क्या तुम इन चीजों को परलोक में साथ ले जा सकोगे ? मैं तुमसे पूछती हूँ, मुझे इसका जवाब दो। एक कवि के शब्दों में -

"तमे कमाणा लाखो रूपिया, फ्लेट लीधा रजवाडी।
फ्रीज, टी.वी. ने फर्नीचर छे परदेशी गाडी !
साथे तमे शुं लई जशो, बोलो शुं तमे लई जशो ?
भेगुं करेलुं बधुं तमे, अहींयां दई जशो।" साथे शुं...॥"

बोलो, ऊपर बताई हुई चीजों में से तुम अपने साथ (परलोक में) कौन-कौन-सी चीज ले जाओगे ? श्याह-सफेद करके कमाये हुए करोड़ों रुपये, तुम्हारा दो-तीन लाख रुपयों का फ्लेट, उसमें यथास्थान रखे हुए टी.वी., फ्रीज और फर्निचर अथवा अपनी अमेरिकन गाड़ी, इनमें से क्या-क्या साथ ले जाओगे ? क्यों तुम चुप क्यों हो गए हो, जवाब क्यों नहीं देते ? तुम बोल नहीं रहे हो इसलिए मुझे तो लगता है कि यह सब

"तन रोगों की खान है, धन भोगों की खान ।
ज्ञान सुखों की खान है, दुःख-खान अज्ञान ।।"

यह औदारिक शरीर रोगों की खान है, क्योंकि हमारे शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम राजि है । उसमें एक-एक रोम (रोवें) पर पौने दो-दो रोग रहे हुए हैं । परन्तु इनका उदय नहीं हुआ । वे अन्दर अभी सत्ता में पड़े हुए हैं, तबतक सुखपूर्वक धर्माराधना की जा सकती है और धनभोग की खान है । यह तो तुम्हें बहुत पता है कि मनुष्य के पास ज्यों-ज्यों धन का ढेर लगता जाता है, त्यों-त्यों उसके निमित्त से भोग-विलास बढ़ता जाता है । इसलिए कहा - धन भोगों की खान है, और ज्ञान सुखों की खान है । इसका कारण यह है कि ज्यों-ज्यों आत्मज्ञान का जीवन में आगमन होता है, त्यों-त्यों जीव को विषयों के प्रति विरक्तिभाव पैदा होता है । ज्ञान द्वारा जीव शुभाशुभ कर्म के फल को जान सकता है । इस कारण वह सुख में आसक्त नहीं होता और नहीं दुःख में घबराता है । इसलिए चाहे जैसे संयोगों में ज्ञानी आत्मा समभाव रख सकता है, जबकि अज्ञानी को जीव-अजीव का भान नहीं है, सच्चे-खोटे की पहचान नहीं है; करने योग्य क्या है और छोड़ने योग्य क्या है, इसका ज्ञान नहीं है । इस कारण उसे पद-पद पर दुःख हुआ करता है । इसी कारण अज्ञान को दुःख की खान के समान कहा है ।

वस्तुतः अज्ञान एक प्रकार का अन्धत्व है । कोई मनुष्य आँखों से अन्धा है, उसकी अपेक्षा भी अज्ञान का अन्धत्व भयंकर है । आप जानते हैं कि आँख से अन्धी ग्रेज्युएट हो जाता है, क्योंकि उसके बाह्यदृष्टि नहीं है, किन्तु आन्तरदृष्टि खुली है । जिसकी बाह्यदृष्टि खुली है, लेकिन आन्तरदृष्टि बंद है; ऐसे अज्ञानी आत्मा रात-दिन अशान्ति की आग में जलता रहता है । उस पर दुःख आ पड़ता है, तब रोता है, विलाप करता है, झूरता है, और अपनी भूल का आरोप दूसरों पर डालकर नये कर्म बांधकर संसारवृद्धि करता है । जबकि ज्ञानी आत्मा के कर्मों का उदय होता है, तब वह अपने कर्मों का दोष देखता है; वह किसी पर दोषारोपण नहीं करता । वह ज्ञान के द्वारा उदय में आये हुए कर्मों का समभाव से भोग कर क्षय कर डालता है । अब तो समझ में आ गया न कि ज्ञान से कितना और क्या लाभ है ? भगवद् गीता (अ. ४, श्लो.३७) में स्पष्ट कहा गया है -

*"यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ।।"*

हे अर्जुन ! जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञानरूप अग्नि समस्त कर्मों को भस्म कर देती है । अर्थात् - ज्ञानरूपी अग्नि की एक चिनगारी, कर्म के ढेर को क्षणभर में जलाकर भस्मीभूत कर देता है । ज्ञानी आत्मा दुःख से घबराता नहीं है, किन्तु वह दुःख के कारणों को ढूंढता है । जरा सोचो तो समझ में आएगा कि मिथ्यात्व और अज्ञान, वे दो शत्रु आत्मा का अमूल्य धन रात-दिन लूट रहे हैं । क्या तुम्हें इसका पता है कि ज्ञानी गुरु मिथ्यात्व और अज्ञान के पाश से छुड़ाने का सतत प्रयत्न करते हैं, परन्तु मोहमूढ़ जीव को अभी तक भान नहीं होता । भगवान्

चलेगा, किन्तु धर्म के बिना नहीं चलेगा। धर्म के अभाव में भौतिक सुख की सामग्री काम नहीं आती। शरीर के लिए अन्न-पानी जितने आवश्यक हैं, वैसे आत्मा के लिए धर्म भी उतना ही आवश्यक है। धर्मविहीन आसुरी धन त्याज्य है और धर्मरहित राजसी सत्ता राक्षसी है। धर्म से रहित जीवन प्राणरहित कलेवर जैसा है। कहा भी है -

"यस्य धर्म-विहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकार - भस्त्रेव, श्वसंन्नपि न जीवति ॥"

जिस मनुष्य के दिन धर्म से रहित आते और जाते हैं, वह लोहार की धौंकनी की तरह श्वास लेता हुआ जीवित मनुष्य नहीं है। मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म लेता है और जीता है, किन्तु अगर उसके जीवन में धर्म नहीं है तो उसका जीवन लोहार की धौंकनी जैसा है। वह श्वास लेता हुआ भी धौंकनी की तरह मृत है। अतः मृतवत् जीवन न जीना हो तो धर्म की आराधना कर लो।

वीतराग-प्रभु के अनुगामी संत तुम्हें वीर-वचनामृत का पान कराते हुए तुम्हें वीतराग -प्रभु का सन्देश बताते हैं कि जो तेरा नहीं है, तेरे साथ आनेवाला नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए तू जो प्रयत्न कर रहा है, वे प्रयत्न तेरे लिए नये नहीं हैं, अपूर्व नहीं हैं। हे जीव ! ऐसे प्रयत्न तो तू अनन्तवार कर चुका है, परन्तु उनसे तेरा दुःख मिटा नहीं है और सुख मिला नहीं है। अब 'जागे तव से सबेरा' इस कहावत के अनुसार मुझे अब क्या करना है ? इसका निर्णय कर ले। चौरासी लाख जीवयोनियों में तुझे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शरीर मिला है, इसका सदुपयोग कर ले। गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा - *"किं दुर्लभम्"* - प्रभो ! इस जीव के लिए दुर्लभ क्या है ? इस पर भगवान् ने जवाब दिया - "हे गौतम ! संसार में सर्वभवों में मनुष्यभव दुर्लभ है। उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि 'देवभव दुर्लभ है।' भगवान् ने अपने केवलज्ञान के प्रकाश में कहा - "इस जीव को प्रवल पुण्योदय के कारण मनुष्यभव प्राप्त होती है। इस भव में आकर जीव सम्यक् पुरुषार्थ करे तो मोक्ष में जा सकता है। इस अपेक्षा से मानवभव दुर्लभ है।"

तुम्हें अपने महान् पुण्योदय के फलस्वरूप यह मानवभव और उसमें भी वीतराग-प्रज्ञप्त धर्म मिला है। यह जैसा-तैसा पुण्य नहीं है। किसी भोले भाले गोपालक के हाथ में रत्न आ जाए तो उसके मन में रत्न की कीमत नहीं है। वह तो यों ही समझता है कि यह कोई चमकीला पत्थर है। इसे वींधकर उसमें डोरे पिरोकर मैं अपनी वकरी के गले में बांध दूं तो अच्छा लगेगा। यही रत्न किसी जौहरी के हाथ में पड़ जाए तो वह उसे वकरी के गले में बांधने नहीं जाएगा। वह तो उस रत्न पर दृष्टि पड़ते ही परख लेगा कि यह तो बहुमूल्य रत्न है। वह इसे अच्छी पुड़िया में बांधकर सुरक्षित रूप से तिजोरी में रख देगा। जब उसे खरीदनेवाला अच्छा ग्राहक आएगा, तव उसे वेचकर उसका पूरा मूल्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार यह मनुष्यजन्म हीरे जैसा वहुत कीमती है। उसमें भी अगर वह जीव धर्मप्राप्त कर ले तो उसका जीवन अमूल्य वन जाए। इसीलिए भगवान् ने कहा -

भूल्या त्यांथी धर्म कहे छे - फरी गणवानुं; भूल थई त्यां फरी नहि भूलवानुं ।
ए शिक्षा दिलमां उतारी ले ... आवता दिन सुधारी ले ।
मन ने मनावी ले, आवता दिन सुधारी ले । बगड्या ते भले बगड्या ॥

अभी तक जो-जो भूलें की हों, उन्हें सुधारकर जीवन को तेजस्वी बनाओ । जो-जो भूलें अज्ञानदशा में की, उन भूलों के परिणामस्वरूप हे जीव ! तू दुःखी हुआ । अब पुनः ऐसी भूलें न हों, इस हितशिक्षा को हृदय में धारण करके अपना भविष्य सुधार ले, ताकि तेरी आत्मा ऊर्ध्वगामी बने । भूलों को सुधारने के लिए यह मनुष्यभव कीमती सुनहरा अवसर है । परन्तु जो मनुष्य भूलों को सुधारता नहीं, और अपने जीवन में कोई भी गुण अपनाता नहीं, ऐसे मानव की आकृति मनुष्य की है, किन्तु प्रकृति पशु की है । हमने कल आपके समक्ष एक बात कही थी कि भर्तृहरि ने ऐसे दुर्गुणी मनुष्य की तुलना मृग और गाय के साथ की थी, तब मृग और गाय ने प्रतिवाद किया कि ऐसे मानव की अपेक्षा हममें अनेक गुण अधिक हैं, अतः आप ऐसे मनुष्य की हमारे साथ तुलना न करें । इस पर भर्तृहरि आगे विचार करते हैं कि ऐसे मनुष्य को किसकी उपमा दूं ? चिन्तन करते हुए उन्होंने कहा - *"मनुष्यरूपेण तृणानि सन्ति"*- ऐसे निर्गुणी मानव मनुष्य के रूप में तृण के समान हैं । यह सुनकर तृण ने कहा - "मैं तो पशुओं का आहार हूँ । गाय, घोड़ा, बैल आदि सब मुझे खाकर रात-दिन मनुष्यों का काम करते हैं । गाय मुझे खाकर आपको मधुर दूध देती है, जिससे आप कई तरह की मिठाइयाँ बनाते हैं । जब वर्षाऋतु आती है, तब मेरे हरेभरे रूप से वन की शोभा में वृद्धि होती है । चारों ओर सुन्दर सरस हरियाली दिखाई देती है । इसे देखकर लोगों का मन प्रसन्न हो जाता है । जब मैं सुख जाती हूँ, तब पशुगण उदरपूर्ति के लिए मेरे आहार करते हैं । तथा मैं गरीबों की झूंपड़ियों पर छप्पर छाने में काम आती हूँ । अत्यन्त गरीब मनुष्य तो सूखे घास से झोंपड़ी बनाते हैं । शर्दी की मौसम में मानव मुझे जलाकर ठंड मिटाते हैं, गर्मी प्राप्त करते हैं । कतिपय साधु-संन्यासी तो मुझे बिछाकर बिछौने के रूप में मेरा उपयोग करते हैं । इस प्रकार मुझ में अनेक गुण हैं, जो गुण मानव में नहीं है । अतः उसके साथ मेरी तुलना न करें ।"

यह सुनकर भर्तृहरि ने सोचा - 'किसी भी पशु अथवा तृण के साथ भी निर्गुणी मनुष्य की तुलना नहीं की जा सकती । तो अब उसकी धूल के साथ तुलना करूँ । वे बोले - *"मनुष्यरूपेण धूलेश्च पुंजः"* - ऐसा निर्गुणी मनुष्य धूल के ढेर के समान है । यह सुनकर धूल भी अपने गुण बताने लगी । उसने कहा - "क्या मैं निर्गुणी हूँ ? मेरे में तो अनेक गुण हैं । सर्वप्रथम गुण यह है कि मैं बालकों के खेलकूद के लिए श्रेष्ठ साधन हूँ । मेरे में से विविध खिलौने बनते हैं । वे खिलौने बहुत सस्ते और सुन्दर होते हैं । गरीब मनुष्य भी उन्हें खरीदकर आनन्द प्राप्त करते हैं । वर्षाऋतु में मिट्टी भीग जाने के कारण बच्चे उस गिली मिट्टी से मकान, चक्की, लड्डू आदि बनाकर खुश होते हैं । व्यापारी अपने वही खातों पर श्याही से अक्षर लिखते हैं, तब उन गीले अक्षरों को सूखाने

चलेगा, किन्तु धर्म के बिना नहीं चलेगा। धर्म के अभाव में भौतिक सुख की सामग्री काम नहीं आती। शरीर के लिए अन्न-पानी जितने आवश्यक हैं, वैसे आत्मा के लिए धर्म भी उतना ही आवश्यक है। धर्मविहीन आसुरी धन त्याज्य है और धर्मरहित राजसी सत्ता राक्षसी है। धर्म से रहित जीवन प्राणरहित कलेवर जैसा है। कहा भी है -

"यस्य धर्म-विहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकार - भस्त्रैव, श्वसंन्नपि न जीवति॥"

जिस मनुष्य के दिन धर्म से रहित आते और जाते हैं, वह लोहार की धौंकनी की तरह श्वास लेता हुआ जीवित मनुष्य नहीं है। मनुष्य इस पृथ्वी पर जन्म लेता है और जीता है, किन्तु अगर उसके जीवन में धर्म नहीं है तो उसका जीवन लोहार की धौंकनी जैसा है। वह श्वास लेता हुआ भी धौंकनी की तरह मृत है। अतः मृतवत् जीवन न जीना हो तो धर्म की आराधना कर लो।

वीतराग-प्रभु के अनुगामी संत तुम्हें वीर-वचनामृत का पान कराते हुए तुम्हें वीतराग -प्रभु का सन्देश बताते हैं कि जो तेरा नहीं है, तेरे साथ आनेवाला नहीं है, उसे प्राप्त करने के लिए तू जो प्रयत्न कर रहा है, वे प्रयत्न तेरे लिए नये नहीं हैं, अपूर्व नहीं हैं। हे जीव! ऐसे प्रयत्न तो तू अनन्तवार कर चुका है, परन्तु उनसे तेरा दुःख मिटा नहीं है और सुख मिला नहीं है। अब 'जागे तब से सवेरा' इस कहावत के अनुसार मुझे अब क्या करना है? इसका निर्णय कर ले। चौरासी लाख जीवयोनियों में तुझे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शरीर मिला है, इसका सदुपयोग कर ले। गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा - *"किं दुर्लभम्"* - प्रभो! इस जीव के लिए दुर्लभ क्या है? इस पर भगवान् ने जवाब दिया - "हे गौतम! संसार में सर्वभवों में मनुष्यभव दुर्लभ है। उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि 'देवभव दुर्लभ है।' भगवान् ने अपने केवलज्ञान के प्रकाश में कहा - "इस जीव को प्रबल पुण्योदय के कारण मनुष्यभव प्राप्त होती है। इस भव में आकर जीव सम्यक् पुरुषार्थ करे तो मोक्ष में जा सकता है। इस अपेक्षा से मानवभव दुर्लभ है।"

तुम्हें अपने महान् पुण्योदय के फलस्वरूप यह मानवभव और उसमें भी वीतराग-प्रज्ञप्त धर्म मिला है। यह जैसा-तैसा पुण्य नहीं है। किसी भोले भाले गोपालक के हाथ में रत्न आ जाए तो उसके मन में रत्न की कीमत नहीं है। वह तो यों ही समझता है कि यह कोई चमकीला पत्थर है। इसे वींधकर उसमें डोरे पिरोकर मैं अपनी बकरी के गले में बांध दूं तो अच्छा लगेगा। यही रत्न किसी जौहरी के हाथ में पड़ जाए तो वह उसे बकरी के गले में बांधने नहीं जाएगा। वह तो उस रत्न पर दृष्टि पड़ते ही परख लेगा कि यह तो बहुमूल्य रत्न है। वह इसे अच्छी पुड़िया में बांधकर सुरक्षित रूप से तिजोरी में रख देगा। जब उसे खरीदनेवाला अच्छा ग्राहक आएगा, तब उसे बेचकर उसका पूरा मूल्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार यह मनुष्यजन्म हीरे जैसा बहुत कीमती है। उसमें भी अगर वह जीव धर्मप्राप्त कर ले तो उसका जीवन अमूल्य बन जाए। इसीलिए भगवान् ने कहा -

भी चोरी नहीं की है, और इस घर में मैं चोरी भी नहीं करूँगा ।" गृहस्वामी ने पूछा कि "तुम्हारी बात को कैसे मान लूँ ?" चोर ने कहा – "मैंने तुम्हारे घर का नमक खाया है । मेरा नियम है कि जिसके घर का कणभर नमक खा लूँ उसके यहाँ चोरी नहीं करूँगा ।" विचार करो चोर में भी कितनी ईमानदारी थी ? आज तो चोर और साहूकार, सब एकसरीखे हो रहे हैं ।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि तुम मानवजीवन को पवित्र बनाओ । जीवन में धर्म का स्थापन करो । अगर जीवन में धर्म नहीं होगा तो तुम्हारा जीवन अपवित्र हो जाएगा । धर्म से जीवन सुखी और समृद्ध बनता है । इतना जरूर याद रखना कि आत्मिक समृद्धि के आगे भौतिक समृद्धि तुच्छ है । धर्म से आत्मिक समृद्धि मिलती है । यह समृद्धि जीव को इस भव, परभव और भव-भव में सहायता देती है । भौतिक समृद्धि तो मृत्यु के बाद यहीं रह जाएगी । इस (भौतिक) समृद्धि को प्राप्त करने के लिए जीव कितने पाप करता है ? फिर परिणामस्वरूप दुःख भोगता है । अतः धर्म से आत्मिक समृद्धि प्राप्त कर लो, ताकि उसके फलस्वरूप जीव को शाश्वत सुख मिले । *'सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं ।'* यानी सकल कर्म से रहित सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनने के लिए धर्माचरण करना है । देवगति से सीधा मोक्ष में नहीं जाया जा सकता । मानवभव से ही मोक्ष में जाया जा सकता है । नर से नारायण बना जा सकता है ।

मानवभव इतना श्रेष्ठ होने पर भी पूर्वोक्त पशुओं ने कहा – "हमारे साथ मानव की तुलना मत करना । हम मानव से श्रेष्ठ हैं ।" सोचो तो सही, जिसके जीवन में धर्म नहीं है, उसके लिए पशु ने कैसा कहा ? यह तो आपको समझाने के लिए एक रूपक दिया है । वस्तुतः गुणहीन मनुष्यों की जगत् में कीमत नहीं है ।

आज का दिन मंगलमय है । आज १५ अगस्त है । अर्थात् राष्ट्रीय स्वतंत्रता-दिवस है । दूसरी ओर धर्म की दृष्टि से पन्द्रह का धर है । पन्द्रह अगस्त का स्वातंत्र्य-दिवस तुम्हें क्या प्रेरणा देता है ? आज छोटे-छोटे बालक कोई कागज के तो कोई कपड़े के तिरंगे राष्ट्रध्वज लेकर इधर से उधर घूमते दिखाई देते हैं । वह मन ही मन हर्षित होता है कि आज आजादी का दिवस है । छोटे बच्चों को पता भी नहीं होगा कि हम किस की गुलामी से मुक्त हुए हैं । पर तुम तो जानते हो न ? ब्रिटिश सरकार की गुलामी से भारत ने आज के दिन स्वतंत्रता प्राप्त की है । उसकी खुशी में भारतवासी लोग प्रतिवर्ष १५ अगस्त के दिन स्वतंत्रता दिवस मनाते हैं । राष्ट्रध्वज चढ़ाकर ध्वज-वन्दन करते हैं ।

ब्रिटिश सरकार ने अधिक से अधिक २०० से २५० वर्ष तक भारत पर राज्य करके अपना साम्राज्य जमाया था । महात्मा गाँधीजी ने अंग्रेजी हुकूमत की गुलामी से मुक्त होने के लिए कितना सख्त परिश्रम किया था ? भारत के युवकों ने पीछे का विचार किए बिना स्वतंत्रतासंग्राम में अपना रक्त बहाया था । मैं इस स्वातंत्र्य युद्ध में मर जाऊँगा तो मेरे पत्नी-पुत्रादि का क्या होगा ? इसका कोई विचार नहीं किया । तीन से छह महीने जिनके विवाह को हुए हैं, ऐसे अपनी माँ के लाड़ले लाल मरजीवे बनकर अंग्रेजी-सरकार

यह जिनशासन जौहरी की दुकान है। जौहरी का लड़का जवाहरात को देखकर उसका मूल्यांकन कर देता है। उसे कुछ भी अधिक कहने की जरूरत नहीं पड़ती। वैसे ही इस जैनकुल में जन्मे हुए जैन के बच्चे को क्या हमें रोज कहना पड़ता है कि तुम उपाश्रय में आओ, सामायिक करो, व्याख्यान सुनो, सामायिक करने से इतना लाभ होता है ? वह नहीं समझा था, वहाँ तक कहना तो ठीक था, मगर समझे हुए को रोजाना क्या कहना पड़े ? तुम्हें अपने आप समझ लेना चाहिए। अमृत की एक बूंद हजारों रोगों को नष्ट कर देती है। परन्तु ऐसे अमृत का बड़ा समुद्र भी भर दिया जाए, तो भी वीतरागवाणी के एक वचन के तुल्य नहीं होता। क्योंकि अमृत बिन्दु शरीर का रोग मिटाता है, जबकि वीतरागवाणी आत्मा के रोग मिटाकर आत्मा को अजर-अमर बना देती है। याद रखना, तुम्हारे धन के भण्डार तुम्हें अजर-अमर नहीं बनायेंगे। जो स्वयं ही अनित्य है, वह दूसरे को अमर कैसे बनाएगी ? फिर भी ऐसे विनश्वर वैभव की सुरक्षा के लिए जीव कितनी देखभाल (संभाल) रखता है ? समझो तो सही, यह मानवजीवन कितने प्रबल पुण्योदय से मिला है ? एक विचारक ने कहा है -

"महता पुण्य-पण्येन क्रीतेयं काया-नौस्त्वया।"

महान् पुण्यरूपी धन से तुमने यह कायारूपी नौका खरीदी है। मतलब यह है कि मनुष्य ने यह महंगी जिंदगीरूपी नौका खरीदी है, पुण्यरूपी धन से। एक मिनट जितने समय में सत्कार्य करोगे तो उसके परिणामस्वरूप अनेकगुणा नफा मिलेगा। महावीर भगवान् का आयुष्य सिर्फ ७२ वर्ष का था। इतनी अल्पायुषी जिंदगी में उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त कर लिया। गजसुकुमार मुनि ने सुबह दीक्षा ग्रहण की और शाम को महाकाल स्मशानभूमि में १२वीं भिक्षु-प्रतिमा वहन करने गए। भयंकर उपसर्ग आया। उस समय उन्होंने गजब की समता रखी, आत्मध्यान में लीन हो गए। फलतः कर्मों के पुंज को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त कर लिया। कम से कम साधना में अधिकतम वेदना भोगी। फलतः मोक्ष प्राप्त किया। हमें भी ऐसी साधना करनी है। अतः साधना में जरा-सा भी प्रमाद नहीं करना है।

महाबल प्रमुख सात अनगारों ने भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ वहन कीं। तत्पश्चात् सातों ही अनगारों ने लघुसिंहनिष्क्रीड़ित तप किया। लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप क्या है ? सिंह जैसे अपने पिछले भाग की तरफ झांकता हुआ आगे चलता है, इसी प्रकार पहले जो तप किये हुए हैं, उन तपों को साथ लेकर आगे किये जाते हैं, वह तप लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप कहलाता है। उन सातों अनगारों ने इस क्षुल्लक लघु-सिंहनिष्क्रीड़ित तप किस प्रकार, किस विधि से किया, शास्त्रकार इसका स्पष्टीकरण करते हैं।

"चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेंति, पारित्ता छट्ठं करेंति। करित्ता चउत्थं करेंति, करित्ता अट्ठमं करेंति, करित्ता छट्ठं करेंति, करित्ता दसमं करेंति, करित्ता, अट्ठमं करेंति, करित्ता दुवालसगं करेंति, करित्ता चाउदसमं करेंति, करित्ता दुवालसगं करेंति॥"

कहा – "बेटा ! पेड़ा लेने गया था, पर रुपया रोने लगा ।" (हँसाहँस) लड़के पूछने लगे – "दादा ! रुपया कैसे रोता है ?" दादा ने रुपये को मुट्ठी में कसकर पकड़ रखा था । हथेली में पसीना छूटने से रुपया गीला हो गया था । उसे बताकर दादा ने कहा – "देखो, बेटा ! रुपया रो रहा है !" क्या तुम्हारे यहाँ भी रुपया रोता है ? कंजूस व्यक्ति एक रुपया बचाने के लिए कितना नाटक करता है ? लोभी मनुष्य को धन मिलता है, मगर उसकी तृष्णा कम नहीं होती । किन्तु ज्ञानी कहते हैं – "तुम्हारा पैसा एक दिन तुम्हें छोड़कर चला जाएगा, अथवा आयुष्य पूर्ण होने पर तुम्हें पैसे को छोड़कर चला जाना पड़ेगा । अतः अगर सच्चे माने में आजादी चाहिए तो संसार की ममता छोड़कर यथाशक्ति संयम का अभ्यास करने लग जाओ ।

आत्मा को आजादी दिलाने के लिए पर्युषणपर्व आ रहे हैं । आज पन्द्रह का धर है । आगामी रविवार से पर्वाधिराज पर्युषण प्रारम्भ हो जाएँगे । तप का मण्डप बांध दिया गया है । तप किसे कहते हैं ? तप का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है – *"तापयति अष्टप्रकारं कर्म इति तपः ।"* – जो आठ प्रकार के कर्मों को तपाता है, उसका नाम तप है । तप द्वारा आत्मा पर हुए कर्म झड़ जाते हैं, और आत्मा निर्मल (कर्ममलरहित) व तेजस्वी बनती है । आज अपने यहाँ ब. ब्रा. चंदनबाई बा. ब्र., हर्षिदाबाई म. को आज तेरहवाँ उपवास है । बहन सोनल के आज ३१ उपवास पूर्ण हुए हैं । शेष १० बहनों के आज सोलहवाँ उपवास है । तपोमहोत्सव जोरशोर से गाज रहा है । अकबर बादशाह को सद्धर्म प्राप्त हुआ था, तपस्वी श्राविका चम्पाबहन के छहमासी तप के प्रभाव से । आप सब भाई-बहन व्रत, नियम, तप, त्यागरूपी पुष्पों की सौरभ लेकर आत्मा को पवित्र बनाओ । विशेष भाव यथावसर ! अब मैं ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करनेवालों को प्रतिज्ञा दिलाती हूँ ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

कर्म की विडम्बना कैसी भयंकर है ? कर्म किसी को नहीं छोड़ता । इस बात को प्रमाणित करनेवाला प्रद्युम्नकुमार का चरित्र आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा था । परन्तु पिछले सात दिनों से वह स्थगित था । आज पुनः उस चरित्र का वर्णन कर रही हूँ ।

प्रद्युम्नकुमार कृष्ण वासुदेव का प्राणप्रिय पुत्र है । उसका जन्म होने के बाद छठी रात को कोई देव अपहरण करके ले गया था । रुक्मिणी जब जागी और अपने बगल में अपने नवजात पुत्र को नहीं देखा तो जोर-जोर से विलाप करने और झूरने लगी । "अरे मेरे लाडले लाल ! तूने मेरी कूख में जन्म लेकर, मुझे राजी करके पुनः रुलाकर तू कहाँ चला गया ?"

माता के हृदय में पुत्र के प्रति कितना वात्सल्य होता है ? इसका अनुमान करना कठिन होता है । बालक जरा-सा बीमार पड़ता है तो माता उसके लिए कितने निवारणोपाय करती है ? पुत्र का जन्म होता है, तब माता के दिल में इतना वात्सल्य उमड़ता है कि

से प्रारम्भ करके चतुर्थ भक्त (एक उपवास) तक पूरा किया जाता है। यों अनुलोम और प्रतिलोम विधि से किया गया यह तप क्षुल्लक-सिंह-निष्क्रीड़ित तप कहलाता है।

अनुलोम विधि की समाप्ति के बाद प्रतिलोम विधि से यह तप प्रारम्भ करके उससे पहले बीच में अठारह भक्त (अट्ठाई) तप हो जाता है। यह चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम भक्त वगैरह एक-एक उपवास की वृद्धि से एक उपवास दो उपवास, तीन उपवास आदि तप होते हैं।

इसमें चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, चतुर्दश और षोडशभक्त, ये सब अनुक्रम से चार, चार, तीन, तीन हो जाते हैं। तथैव विंशतितम यानी ९ उपवास दो बार होते हैं। इस तपस्या की आराधना में तपस्या के १५४ दिन और पारणों के ३३ दिन दोनों के कुल मिलाकर प्रथम परिपाटी में १८७ दिवस होते हैं। पारणा के दिन विगय सहित आहार किया जाता है। इस प्रकार लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की प्रथम परिपाटी की शास्त्र में कथित विधि के अनुसार ६ मास और ७ दिवस-रात्रि (अहोरात्र) तक आराधना की जाती है। यों प्रथम परिपाटी के अनुसार क्षुद्रसिंह-निष्क्रीड़ित तप की आराधना पूरी हो जाने के बाद दूसरी परिपाटी में चतुर्थ भक्त की तपस्या करनेवाले विगयरहित आहार से पारणा करते हैं। इसी प्रकार तीसरी परिपाटी भी होती है। उसका पारणा भी विगयरहित होता है, किन्तु रूखे अन्न से किया जाता है। इसी प्रकार चौथी परिपाटी भी होती है। किन्तु इसके पारणे भात आदि के ओसामण में यानी अचित्त पानी में भिगोये हुए रूखे अन्न का अर्थात् - आयम्बिल का होता है। धन्य है, ऐसे महान् तपस्वी मुनिवरों को अपने यहाँ तप की भेरी बजती है। युद्ध की भेरी बजती है, तब शूरवीर क्षत्रिय छलांग मारकर रणमैदान में कूद पड़ते हैं, वैसे ही कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए तप की रणभेरी बजती है, तब महावीर प्रभु के शूरवीर श्रावक-श्राविकावर्ग बैठे नहीं रहते। क्यों अब आपको खड़ा होना है न ?

राजपाट का त्याग करके सातों ही महान् आत्माओं ने संयम अंगीकार कर लिया। मैं तो तुम्हें सिर्फ ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने का कहती हूँ। अगर जिंदगी के अन्तिम छोर तक विषयभोगों को नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारा क्या होगा ? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को चित्तमुनि ने विषयभोगों का त्याग करने के लिए बहुत समझाया। अगर तू दीक्षा नहीं ले सकता है तो संसार में रहकर भी तू अपनी आत्मा के उद्धार के लिए धर्म के शुभ अनुष्ठान या आर्यकर्म तो कर ले। किन्तु ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नहीं माने। अन्त में, मरकर वह सप्तमनरक में गया। वहाँ वह 'कुरुमती कुरुमती' कहकर पुकार करता है। परन्तु कोई भी उसे दुःख से छुड़ाने को नहीं जाता। कोई उसकी पुकार नहीं सुनता। इस पर से समझ लो, कि कृत कर्मों का फल तो स्वयं जीव को भोगने पड़ते हैं। ऐसा धर्म महान् पुण्योदय से मिला है। इसकी आराधना-साधना करके शाश्वत सुख प्राप्त कर लो। महाबल आदि सात अनगारों के मन में तीव्र आतुरता उत्पन्न हुई कि कर्मराजा के कारागार से हमें शीघ्र छुटकारा मिले और हम सर्वकर्ममुक्तिरूप मोक्ष प्राप्त कर लें। इसके लिए वे उग्र तपश्चरण करते हैं। अधिक भाव यथावसर कहा जाएगा।

होगी । मैंने कैसे-कैसे पाप किये होंगे, इसे तो सर्वज्ञ भगवन्त जानते हैं ।" इस प्रकार अपने कृत-पापों का पश्चात्ताप करती हुई रुक्मिणी बोर-बोर जितने अश्रुपात करती हुई रोती है । रुक्मिणी के महल में हाहाकार मच गया है । रुक्मिणी अत्यन्त विलाप करती है । उसकी दासियाँ दौड़ती हुई कृष्ण वासुदेव को जाकर खबर देती हैं । यह सुनकर कृष्ण वासुदेव रुक्मिणी के पास आएँगे और उसे किस तरह से आश्वासन देंगे ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ४३

श्रावण वदी ७, सोमवार — ता. १६-८-७६

नरभव मिला है - अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्त करुणानिधि शासन-सम्राट महावीर प्रभु ने जगत् के जीवों से कहा - "हे भव्यजीवो ! तुम अनन्तकाल से संसार-अटवी में परिभ्रमण करके अनन्त दुःख सहन कर रहे हो, उसका मूल कारण क्या है ? जरा सोचो । जो प्राप्त करना था, उसे प्राप्त नहीं किया और जिसे प्राप्त नहीं करना था, उसे प्राप्त करने की आतुरता तुम में जागी है ।" शास्त्र में कहा है -

लभंति विमला लोए, लभंति सुर - संपया ।
लभंति पुत्त-मित्तं च, एगो धम्मो न लब्भइ ।।

भगवान् कहते हैं - "हे चेतन ! अनन्तकाल से जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई, उसे प्राप्त करने के लिए तुझे मनुष्यभव मिला है । जिससे जन्म-मरण के दुःख टलें, ऐसी आत्मा की चीज प्राप्त करनी है ।" इस गाथा में तुम्हें यह बात समझाई गई है कि जगत् में दुर्लभ चीज कौन-सी है और सुलभ चीज कौन-सी है ? उसकी चर्चा करते हुए ज्ञानीपुरुष फरमाते हैं कि "सम्पत्ति प्राप्त करनी या स्वर्ग के सुख पाना दुर्लभ नहीं है । क्या लाडी (पत्नी), वाड़ी (बंगला) और गाड़ी मिलने मुश्किल हैं ? नहीं । इसके लिए तो गाथा में कहा है - *'लभंति विमला लोए (भोए)'* - पुण्योदय से ऊँची भौतिक भोग-सामग्री अनेकबार प्राप्त की । मानवभव मिला । उसमें भी लोकसभा की सीट काँग्रेस के माध्यम से अनेकबार प्राप्त की । भारत का प्रधानमंत्री भी अनेकबार हो चुका होऊँगा । इतना ही नहीं, बड़ा चक्रवर्ती सम्राट् भी बना होऊँगा । अदालत में एक प्रश्न पर मुखासिल से एक मिनट के हजारों रुपयें फीस लेनेवाला धाराशास्त्री भी बना होऊंगा । इस जीव ने पुण्य के उदय से इन्द्र का सिंहासन भी प्राप्त किया और अहमिन्द्र पद भी पाया । पुत्र

सकता है ? तीन खण्ड में चाहे जहाँ से पुत्र का पता लग जाएगा । सारी द्वारिकानगरी में उदासीनता छाई हुई है । किन्तु सत्यभामा को जब इस बात का पता लगा तो उसके हृदय में खूब आह्लाद छा गया ।

भामारानी सुन नाचवा लागी रे, वांछित फल पाई में किरतार रे !
अब तो सौकण-सिर मुंडावस्युं रे, परणेगा मेरा भानुकुमार रे ॥ श्रोता...

रुक्मिणी के अंगजात प्रद्युम्नकुमार को कोई अपहरण करके ले गया है । सारी द्वारिका नगरी में तलाश कराई, किन्तु कुंवर का पता नहीं लगा । सुभट इसके आगे दूर-सुदूर तक उसकी खोज करने गए हैं । इस बात का सत्यभामा को जब पता लगा तो स्वयं प्रसूतिकाल में होती हुई भी उठकर नाचने-कूदने लगी । उसे बहुत ही खुशी हुई, वह कहने लगी - "उसने (रुक्मिणी ने) कृष्ण के साथ मेरा वियोग कराया, इस कारण उसे छह दिवसों में अपने पुत्र का वियोग हुआ । जो जैसा करता है, उसे वैसा फल मिलता है ।" समग्र द्वारिका नगरी प्रद्युम्नकुमार के गुम होने से शोकाकुल बनी है, जबकि सत्यभामा अकेली आनन्द के सागर में स्नान कर रही है । देखिए, सौतिया डाह व वैर कैसा होता है ? रुक्मिणी कितनी सरल और पवित्र है ? उसे सत्यभामा के प्रति जरा भी ईर्ष्या या द्वेष नहीं है । जबकि सत्यभामा को उस पर कितना द्वेष है ?

रुक्मिणी द्वारा प्रद्युम्नकुमार को जन्म देने के बाद सत्यभामा ने भी पुत्र को जन्म दिया था और उसके पुत्र का नाम भानुकुमार रखा गया था । इसलिए वह हर्षित हुई कि 'प्रभो ! तूने मेरी आशा पूर्ण की है । उसका (रुक्मिणी का) पुत्र गुम हो गया था, अब वह कहाँ मिलनेवाला है ? किसी ने मार डाला होगा ! अब मेरा भानुकुमार सर्वप्रथम विवाहित होगा । इसलिए मैं उसका मस्तक मुंडवाकर उसके बालों को अपने पैर के नीचे कुचलूंगी ।' इस प्रकार सत्यभामा हर्षाविष्ट हो रही है । रुक्मिणी का पुत्र गुम होने से सारी द्वारिका नगरी में शोक छाया हुआ था, इस कारण सत्यभामा के पुत्र का जन्मोत्सव नहीं मनाया गया, इसलिए उसे (सत्यभामा को) अत्यन्त दुःख हुआ । परन्तु क्या हो ? जहाँ श्रीकृष्ण स्वयं ही गमगीन हों, वहाँ उसके पुत्र का जन्मोत्सव कहाँ से मनाया जाता ?

श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे गए सुभट तीनों खण्डों के प्रत्येक नगर, गाँव, बाजार, चौराहा, पर्वत, गुफा, खाई, जंगल, नदी, नाले वगैरह सभी स्थानों में प्रद्युम्नकुमार की तलाश करके भग्नमनोरथ होकर उलटे पैरों वापस लौटे । उन्होंने कृष्ण वासुदेव से कहा - "देव ! हमने बहुत ही खोज की, किन्तु तीनों खण्डों में कहीं भी कुंवर नहीं मिले । अभी तक तो कृष्ण को हिम्मत थी, लेकिन अब वे भी सुभटों की बात सुनकर पस्त हिम्मत हो गए । सोचा - 'मैं तीन खण्ड का स्वामी हूँ, मेरे पुत्र को इतने चौकी-पहरे होते हुए भी कौन ले जा सकता है ?' यों विचार कर श्रीकृष्ण उदास होकर चिन्तामग्न होकर बैठे हैं । राजपरिवार तथा सारी द्वारीका नगरी में शोकमय वातावरण छाया हुआ है । सिर्फ एक सत्यभामा के मन में आनन्द है । अब कृष्ण की चिन्ता दूर करने के लिए कौन आएगा और आगे क्या घटना घटित होगी, उसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

तुम्हें अपने साथ ही ले जाना होगा । (श्रोताओं में से आवाज - नहीं साहब ! इनमें से एक भी चीज साथ में नहीं आएगी ।) बस, मुझे तुम्हारे मुख से इतना ही बुलाना था । हाँ तो जो चीजें साथ में आनेवाली नहीं हैं, उनके लिए इतनी सब आतुरता ? इसके विपरीत जो चीजें साथ में आनेवाली हैं, सुख-दुःख में साथ में रहनेवाली मित्र हैं, ऐसे धर्म और आत्मा के लिए जरा भी तड़फन नहीं ? जीव की यह कितनी बड़ी मूर्खता है ?

तुम्हें ऐसा क्यों नहीं लगता कि ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव (जन्म) मिला है, अनन्त भवों से नहीं मिला हुआ जिनभाषित उत्तम धर्म मिला है, इस धर्म का आलम्बन लेकर अनन्तजीव मोक्ष में गये हैं, उनको जैसी साधन-सामग्री मिली थी, वैसी ही मुझे मिली है । उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया तो मैं क्यों नहीं प्राप्त कर सकता ? पड़ोसी के घर में टी. वी. और फ्रीज आए, इसकी आतुरता तुम्हें हुई, परन्तु यह विचार क्यों नहीं होता कि यह मेरा पड़ोसी प्रतिदिन सबेरे उठकर सामायिक करता है । वह सामायिक किये बिना दूध नहीं पीता । तो मुझसे सामायिक किये बिना दूध कैसे पीया जा सकता है ? यह रोज प्रतिक्रमण करता है, तब मेरे से प्रतिक्रमण क्यों नहीं होता ? इन तपस्वियों ने मासखमण तपस्या अंगीकार की है, मुझसे ऐसा क्यों नहीं होता ? इन महात्माओं ने संसार छोड़कर संयम अंगीकार किया है, मैं क्यों अभी तक संसार के गर्त में पड़ा हूँ ? आतुरता करो तो ऐसी करो, मगर सांसारिक सुख की आतुरता न करो । यह धनाढ्य बन गया, मैं क्यों न बनूं ? ऐसी चटपटी आत्मा की नहीं है, यह भौतिक है, पौद्गलिक है ।

घाटकोपर से मुंबई जाना हो तो ट्रेन चूक न जाए, इसके लिए जल्दी स्टेशन पहुँच कर बैठ जाते हो, किन्तु वीतरागवाणी सुनने का टाइम चूक न जाएँ, पाँच मिनट भी लेट पहुँचूंगा तो मेरे प्रभु-वाणी सुनना रह जाएगा । अतः चलूँ, जल्दी से उपाश्रय पहुँच जाऊँ । क्या ऐसी चटपटी अन्तःकरण में लगती है ? यह आयुष्यरूपी जीवन की गाड़ी तेजी से दिन-रात सड़सड़ाट चलती रहती है और जिंदगी का एक-एक दिवस प्रतिदिन कम होता जाता है । अरे ! जीवनरूपी दीपक में से आयुष्य का तेल कम होता जाता है । कब जीवन-दीपक बुझ जाएगा इसका पता नहीं है । *'दुमपत्तए पंडुरए जहा'* जैसे पीला हुआ पत्ता वृक्ष पर से कब नीचे गिर पड़ेगा, इसका कुछ पता नहीं है । फिर भी तुम्हारी आशाएँ कितनी लम्बी चौड़ी हैं ? यह पा लूँ, वह भी प्राप्त कर लूं । परन्तु ऐसा विचार कभी आता है कि अब थोड़ी-सी जिंदगी बाकी है, तो धर्माचरण कर लूं, ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा कर लूं ?

इसीलिए त्रिलोकीनाथ कहते हैं कि "जीव ने अन्य सब प्राप्त कर लिया है, परन्तु एक धर्म ही नहीं प्राप्त किया ।" जिसकी प्राप्ति से जन्म, जरा-मरण के दुःखों को टालकर अजर-अमर अवस्था को प्राप्त करके अनन्त अव्याबाध सुख प्राप्त किया जा सकता है, ऐसे धर्म को तूने प्राप्त नहीं किया । बाकी सब प्राप्त किया है ! मेरे बन्धुओं ! विचार करो, तुम किसे प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करते हो, उन भौतिक साधनों के बिना काम

पैसा, प्रियपुत्र, पत्नी, परिवार, रेडियो, टीवी, फ्रिज आदि किसी चीज को लेने के लिए रुका रहेगा क्या ? माता-पिता सोये के सोये रह जाते हैं, कोमल फूल-सा बच्चा पालने में झूलता रह जाता है । धन तिजोरी में पड़ा रह जाता है । टी.वी., फ्रिज, रेडियो आदि सब दीवानखाने में पड़े रह जाते हैं, उन्हें लेने नहीं जाता, ऐसी गंभीर स्थिति में, सिर्फ अपने शरीर को साथ लेकर दौड़ता है । क्योंकि शरीर अत्यन्त प्रिय है, उसके प्रति अति मोह और ममत्व है ।

जब तपश्चर्या करने की बात आती है, तब शरीर के सामने दृष्टि करते हो और सोचते हो कि मुझे तपश्चर्या नहीं करनी है । तपश्चर्या करूँगा तो शरीर दुर्बल हो जाएगा । सामायिक करने का कहा जाए तो कहता है - मेरी कमर दुःखने लगी है । बोलो, शरीर तुम्हें कितना प्रिय है ? यह काया जब-तब चौंकानेवाली है, अरे ! ठगाई करनेवाली है !, समय आने पर यह तुम्हारा कहना नहीं माननेवाली है । फिर भी तुम इसका कितना लाड लड़ाते हो ?

शियाळे ऊन ओढाडुं, उनाळे नाग सुंघाडुं,
मिठाई खूब खवडावुं, पलंगे रोज पोढाडुं ।
अंकुशनी जरूर छे त्यां, लाड हुं लडावुं छुं,
कीमती समय जीवननो हुं, राखमां मिलावुं छुं ॥ ...आ देहनी...

सर्दियों में तुम इस शरीर को गर्म कपड़े पहनाते हो, गर्मियों में मलमल के मुलायम कपड़े पहनाकर बगीचे में घूमने ले जाते हो और मालमलिदा खिलाकर पलंग पर डनलप के गद्दे बिछाकर पोढ़ाते हो । इस शरीर का कितना लाड करते हो ? लाडला बेटा अपने बाप से कहता है कि - पापा ! मुझे यह चाहिए, तो पिता तुरंत लाकर उसे दे देता है । इसी प्रकार यह शरीर कहे कि मुझे आज यह चाहिए तो (शरीरमोही) तुरंत वह चीज उसे ला देता है । इसका तुम चाहे जितना लाड लड़ावो, किन्तु अन्त में यह अनित्य है, नाशवान् है । यहाँ का यहीं रहनेवाला है । आत्मा के साथ यह एक कदम भी चलनेवाला नहीं है । इसलिए ज्ञानीपुरुष शरीर की अनित्यता समझाकर शरीर का मोह छोड़ने को कहते हैं । अतः देह के पीछे अमूल्य समय का व्यय न करके आत्मा के लिए पुरुषार्थ करो । इस जगत् में जितने भी महान् पुरुष हो गए हैं, उन्होंने आत्म-साधना करते समय देह की परवाह नहीं की ।

'उत्तराध्ययन सूत्र' के नौवें अध्ययन में नमिराजर्षि का अधिकार (वर्णन) है । यह नमिराजर्षि जब संयम लेने के लिए उद्यत हुए, उस समय इन्द्र महाराज ने ब्राह्मण के रूप में आकर कहा - "हे राजन् ! आप अपने संसार के कार्यों को पूरे करके दीक्षा लें । वह आपकी मिथिला नगरी जल रही है, आपका अन्तःपुर रो रहा है, इसके सामने तो देखिए !" यह सब कहते हुए एक बात और कही -

पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टा लगाणि य ।
उस्सूलग-सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ - उत्त. अ-९, गा-१८

तुम्हें अपने साथ ही ले जाना होगा। (श्रोताओं में से आवाज - नहीं साहब ! इनमें से एक भी चीज साथ में नहीं आएगी।) बस, मुझे तुम्हारे मुख से इतना ही बुलाना था। हाँ तो जो चीजें साथ में आनेवाली नहीं हैं, उनके लिए इतनी सब आतुरता ? इसके विपरीत जो चीजें साथ में आनेवाली हैं, सुख-दुःख में साथ में रहनेवाली मित्र हैं, ऐसे धर्म और आत्मा के लिए जरा भी तड़फन नहीं ? जीव की यह कितनी बड़ी मूर्खता है ?

तुम्हें ऐसा क्यों नहीं लगता कि ऐसा दुर्लभ मनुष्यभव (जन्म) मिला है, अनन्त भवों से नहीं मिला हुआ जिनभाषित उत्तम धर्म मिला है, इस धर्म का आलम्बन लेकर अनन्तजीव मोक्ष में गये हैं, उनको जैसी साधन-सामग्री मिली थी, वैसी ही मुझे मिली है। उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया तो मैं क्यों नहीं प्राप्त कर सकता ? पड़ोसी के घर में टी. वी. और फ्रीज आए, इसकी आतुरता तुम्हें हुई, परन्तु यह विचार क्यों नहीं होता कि यह मेरा पड़ोसी प्रतिदिन सबेरे उठकर सामायिक करता है। वह सामायिक किये विना दूध नहीं पीता। तो मुझसे सामायिक किये बिना दूध कैसे पीया जा सकता है ? यह रोज प्रतिक्रमण करता है, तव मेरे से प्रतिक्रमण क्यों नहीं होता ? इन तपस्वियों ने मासखमण तपस्या अंगीकार की है, मुझसे ऐसा क्यों नहीं होता ? इन महात्माओं ने संसार छोड़कर संयम अंगीकार किया है, मैं क्यों अभी तक संसार के गर्त में पड़ा हूँ ? आतुरता करो तो ऐसी करो, मगर सांसारिक सुख की आतुरता न करो। यह धनाढ्य बन गया, मैं क्यों न बनूं ? ऐसी चटपटी आत्मा की नहीं है, यह भौतिक है, पौद्गलिक है।

घाटकोपर से मुंबई जाना हो तो ट्रेन चूक न जाए, इसके लिए जल्दी स्टेशन पहुँच कर बैठ जाते हो, किन्तु वीतरागवाणी सुनने का टाइम चूक न जाएँ, पाँच मिनट भी लेट पहुँचूंगा तो मेरे प्रभु-वाणी सुनना रह जाएगा। अतः चलूँ, जल्दी से उपाश्रय पहुँच जाऊँ। क्या ऐसी चटपटी अन्तःकरण में लगती है ? यह आयुष्यरूपी जीवन की गाड़ी तेजी से दिन-रात सड़सड़ाट चलती रहती है और जिंदगी का एक-एक दिवस प्रतिदिन कम होता जाता है। अरे ! जीवनरूपी दीपक में से आयुष्य का तेल कम होता जाता है। कब जीवन-दीपक बुझ जाएगा इसका पता नहीं है। *'दुमपत्तए पंडुरए जहा'* जैसे पीला हुआ पत्ता वृक्ष पर से कब नीचे गिर पड़ेगा, इसका कुछ पता नहीं है। फिर भी तुम्हारी आशाएँ कितनी लम्बी चौड़ी हैं ? यह पा लूँ, वह भी प्राप्त कर लूं। परन्तु ऐसा विचार कभी आता है कि अब थोड़ी-सी जिंदगी बाकी है, तो धर्माचरण कर लूं, ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा कर लूं ?

इसीलिए त्रिलोकीनाथ कहते हैं कि "जीव ने अन्य सब प्राप्त कर लिया है, परन्तु एक धर्म ही नहीं प्राप्त किया।" जिसकी प्राप्ति से जन्म, जरा-मरण के दुःखों को टालकर अजर-अमर अवस्था को प्राप्त करके अनन्त अव्याबाध सुख प्राप्त किया जा सकता है, ऐसे धर्म को तूने प्राप्त नहीं किया। बाकी सब प्राप्त किया है ! मेरे बन्धुओं ! विचार करो, तुम किसे प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ करते हो, उन भौतिक साधनों के बिना काम

को स्कूल में अच्छे मार्क्स से पास होने का खटका लग जाता है, तो वह खेलकूद आदि सब भूल जाता है। वैसे ही विरक्त आत्मा को भी यह धून लगती है कि कब मैं अपनी आत्मा को कर्मबन्धन से छुड़वाकर मुक्तिपुरी के शाश्वत सुख में मस्त हो जाऊँगा। ऐसी धुन लग जाये तो उसे संसार और संसार की बातें जहर के कटोरे जैसी लगती हैं। वह संसार में रहता जरूर है, पर उसे आत्मा के प्रति अधिक रुचि होती है। उसे एक ही लगन होती है कि कब मैं संसार के बन्धन से छूटूँ ? वह क्या करता है या करे ? इसके लिए 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ.-९, गा.-२२) में कहा गया है -

तव-नारायजुत्तेण, भित्तूण कम्मकंचुयं ।
मुणी विगय-संगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥

पराक्रम रूपी धनुष्य पर तप रूपी वाण चढ़ाकर कर्मरूपी बख्तर (कंचुक) को छिन्नभिन्न कर डालता है। उसे संसार में चैन नहीं पड़ता। जैसे भोजन करते समय अगर खाने में कोई वाल आ जाता है, तो वह गले में चिपक जाता है। जबतक वह निकलता नहीं, तबतक चैन नहीं पड़ता। कोई चीज दांत में फंस (अटक) जाती है, तो भी व्यक्ति को चैन नहीं पड़ती। उसे निकालने के लिए जीभ इधर से उधर फिरती है, और मन भी उसे निकालने की चिन्ता में रहता है। इसी तरह कर्मरूपी शत्रुओं ने आत्मा पर आधिपत्य जमा लिया है, इन्हें जल्दी से जल्दी कैसे निकालूं ? इन्हें नहीं निकाल दूं, वहाँ तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा, जब तुम में ऐसी लगन लगेगी, तब पराक्रमरूपी धनुष्य पर तपरूपी बाण चढ़ाकर कर्मरूपी शत्रुओं का भेदन करके जीव भव-संग्राम से निवृत्त होकर भवभ्रमण से मुक्त हो जाता है।

भवभ्रमण से मुक्त होने का एक मात्र स्थान है - मनुष्यभव। मनुष्यभव में जो साधना हो सकती है, वह देवभव में नहीं हो सकती। यों देखा जाए तो देव की (भौतिक) शक्ति कितनी है ? एक चिपटी बजाये उतने समय में देव जम्बूद्वीप के चारों ओर सात चक्कर मार आते हैं, तथापि मोक्ष में जाने की उसमें ताकत नहीं है, क्योंकि देव अविरति होता है। देवलोक में रहे हुए सम्यक्त्वी देवों को देवलोक के सुख खटकते हैं। अविरतिपन भी उसे खटकता है। वह मोक्ष के सुख के लिए तरसता है, पर देवभव से नहीं जा सकता। मोक्ष में जाने के लिए उसे मनुष्य बनना पड़ता है। मनुष्यभव के विना अनुत्तर विमान के देव भी मोक्ष को सर नहीं कर सकते। जबकि अपने (मनुष्य) में यह शक्ति है। अवसर अच्छा मिला है, तो उसका उपयोग कर लो। भावना इतनी तीव्र करो कि २४ घंटों में मोक्ष मिलनेवाला हो तो एक घंटे में क्यों नहीं प्राप्त कर लूं ? तुम्हें मासखमण करने की भावना होती हो तो अगले वर्ष करूँगा, ऐसी इंतजार मत करो। जो अवसर मिला है, उसे बधा लो। कोई व्यापारी माल खरीदने आता है, अगर उस माल के बेचने में अच्छा मुनाफा मिलता हो, तो क्या ऐसा विचार करते हो कि इस व्यापारी के साथ मुझे सौदा नहीं करना है ? दूसरा व्यापारी माल खरीदने आएगा, तब देदूँगा। वहाँ तो पर्याप्त धनराशि

"चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ।।"

इस संसार में जीव को चार परम अंग मिलने बहुत दुर्लभ हैं : (१) मनुष्यत्व (मनुष्यभव) (२) वीतरागवाणी (वीतराग-प्ररूपित धर्म) का श्रवण, (३) उस पर श्रद्धा होना और (४) संयम में पराक्रम करना (अपनी शक्ति लगाना) । इसका रहस्य यह है कि मनुष्यभव पाकर धर्म प्राप्त करने के बाद जीव अपने कषायों को मन्द कर लेता है, मोक्ष जाने योग्य पात्रता प्राप्त कर लेता है । उसके व्यवहारिक जीवन की शुद्धि हो जाती है । तब वह नीति-न्याय के लिए अपने प्राण अर्पित कर देता है । दुःखी अवस्था में भी वह अपनी मानवता को बेचता नहीं । ऐसे मानव बहुत विरले होते हैं । जबतक मानवता यानी सत्य, न्याय, नीति, सदाचार, पवित्रता आदि गुण जीवन में नहीं आते, तबतक तुम पवित्र धर्म स्थानक में आकर देव-गुरु-धर्म के प्रति श्रद्धा कैसे करोगे ? क्योंकि वीतराग-प्रभु की वाणी योग्य पात्र के बिना टिक नहीं सकती ।

बन्धुओं ! वीतरागवाणी को परोसनेवाले संतों के दर्शन तथा उनका समागम (सत्संग) होना भी दुर्लभ है । तुम्हें तो यह बहुत सुलभ लगता है न ? जरा सोचो, महान् पुण्योदय से वीतरागवाणी सुनने को मिली है । फिर भी जीव ने मोहान्ध बनकर अनादिकाल से (धर्मकथा के बदले) कामभोग की कथा में रस लिया है । यह अनादिकाल से आत्मा से लगा हुआ मिथ्यात्व का ज्वर (बुखार) है । इस बुखार को उतारने के लिए ज्ञानीपुरुष वीतरागवाणी का डोज देते हैं । जैसे माता बच्चे को दवा पिलाती है । बालक नहीं पीए तो भी उसे जबरदस्ती लालच देकर पिलाती है । वैसा करने से भी वह नहीं पीता तो उसे अपनी गोद में सुलाकर हाथ-पैर पकड़कर मुँह खोलकर उसके मुँह में जबरन दवा डालती है । परन्तु दवा को गले से नीचे उतारनी या न उतारनी, यह किसके हाथ की बात है ? बालक के हाथ की या माता के हाथ की ? यदि बालक दवा गले से नीचे न उतारे तो माता घूंट नहीं उतारती । यहाँ बालक की स्वतंत्रता है । अगर उसे दवा नहीं पीनी हो तो वह उल्टी करके उसे बाहर निकाल देता है । वैसे ही ज्ञानीपुरुष भी इस संसार में जिसे मिथ्यात्वरूपी ज्वर का रोग लगा हो, उसे वीतरागवाणी-रूपी धर्म की औषध देते हैं । तुम्हें यह दवा पीनी अच्छी न लगे तो भी जबरन पिलाने का प्रयत्न करते हैं । परन्तु पुरुषार्थ तो तुम्हारे आधीन है । अगर पुरुषार्थ नहीं करोगे तो संसारसागर से पार नहीं उतर सकोगे । अगर तुम रुचिपूर्वक एकाग्रचित्त से वीतरागवाणी का श्रवण करोगे, तो हेय-ज्ञेय-उपादेय को पहचानने का विवेक आएगा । कारण यह है कि विपरीत समझ को दूर करने के लिए वीतरागवाणी अमूल्य औषधि है । विपरीत समझ (दृष्टि) नहीं जाएगी, तबतक सम्यक्चारित्र नहीं आएगा । सम्यक्चारित्र की नींव सम्यग्दर्शन है । उसे पाने के लिए पुरुषार्थ करना पड़ेगा । मैं तुम्हें एक सलाह देती हूँ कि जहाँ साधु-साध्वीजी विराजमान हों, उनके पास जाकर शास्त्रवाणी सुनो ।

है क्या ? राग करना हो तो धर्म के प्रति करो । एक क्षण भी व्यर्थ खोये बिना जितनी हो सके साधना कर लो, जिससे बाद में पछताना न पड़े । हमें उक्त गरीब मनुष्य की तरह लोटियाबाबा जैसा होकर नहीं जाना है, अपितु मालदार (समृद्ध) होकर जाना है । आत्मा के पराक्रमरूपी धनुष्य पर तप का बाण चढ़ाकर कर्म के किले को तोड़कर जल्दी मोक्ष में जाना है ।

जिन्हें कर्मरूपी कवच का भेदन करके जल्दी मोक्ष में जाने की रुचि जागी है, ऐसे सात अनगार कैसा उग्र तप कर रहे हैं ? वे अनगार महान आत्मार्थी थे । केवल वेश पहना हो, वैसे संत नहीं थे । अगर सफेद कपड़े पहनकर बैठ जाने मात्र से मोक्ष मिल जाता होता तो भगवान महावीरस्वामी को इतनी कठिन साधना नहीं करनी पड़ती ! महाबल आदि सातों अनगारों ने संयम लेकर सर्वप्रथम तो आस्तव के दरवाजे बंद किये, इसलिए नये शत्रु अंदर प्रविष्ट होने से रुक गए । किन्तु उससे पहले जो शत्रु अंदर घुसे हुए हैं, उन शत्रुओं को दूर किये बिना शान्ति नहीं मिलेगी । इसीलिए वे सातों अनगार तप करने लगे । वह तप भी कैसा ? वह तप ज्ञानसहित था । उन्होंने दीक्षा लेकर सर्वप्रथम बारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया, अतः वे सब ज्ञानसहित तप करते हैं । ज्ञान द्वारा जानकर तप द्वारा वे कर्मो के कचरे को साफ करते हैं । तप से आत्मा तेजस्वी, निर्मल और पवित्र बनती है । आत्मा की जितनी निर्मलता होती है, उतनी ही आत्मा हलका फूल हो जाती है । कितने ही जीव बाहर से पवित्र और धर्मिष्ठ दिखाई देते हैं, किन्तु अंतर से मलिन होते हैं । भगवान् कहते हैं - "बाहर की चाहे जितनी शुद्धि करे, किन्तु अन्दर की पवित्रता नहीं होगी तो वर्षों तक चाहे जितनी धर्मक्रियाएँ करोगे, तो भी कल्याण नहीं होगा ।" अतः जैसे बाहर से पवित्र दिखाई देते हो, वैसे अंदर से भी पवित्र बनोगे तो उसका प्रभाव दूसरों पर भी पड़ेगा । उससे अपना और दूसरे का, दोनों का कल्याण होगा । अन्य दर्शन में भी आत्मा की पवित्रता का कितना महत्त्व बताया है ? इसे मैं एक दृष्टान्त द्वारा समझाती हूँ ।

सच्चा धर्मिष्ठ और पवित्रात्मा कौन है ? इसकी देव द्वारा की गई परीक्षा : सच्चा पवित्र धर्मात्मा कौन है ? उसकी परख उसके बाह्य दिखावे से नहीं होती, अपितु उसके आचरण पर से होती है । एक मन्दिर में एक चमत्कार हुआ । सवेरा होते ही मन्दिर का पूजारी भगवान् की पूजा करने गया, वहाँ उसने एक सोने की थाली पड़ी हुई देखी । यह देखकर पूजारी आश्चर्यचकित होकर थाली को टकटकी लगाकर देखने लगा । उसके मन में विचार हुआ कि मैं रोज भगवान् की पूजा करता हूँ, इस कारण भगवान् ने मेरे पर प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सोने की थाली रखी लगती है । मैं उसे ले लूं । यों विचार करके ज्यों ही वह उस थाली को लेने गया, त्यों ही आकाशवाणी हुई कि - "हे पूजारी ! जो सच्चा धर्मिष्ठ होगा, वही इस थाली को ले सकेगा, उसके सिवाय दूसरा कोई आदमी इस थाली को हाथ लगाएगा, तो यह सोने की थाली तुरंत लोहे की हो जाएगी ।" यह सुनकर पूजारी ने सोचा - 'मैं प्रतिदिन भगवान् की पूजा करता हूँ । प्रभु का भजन भी

उन सातों मुनिवरों ने सर्वप्रथम चतुर्थभक्त यानी एक उपवास किया । एक उपवास करके विगय-सहित सर्वकामगुणित पारणा किया । पारणा करके फिर छट्ठ यानी दो उपवास (बेला) किये, दो उपवास करके पारणा किया, तत्पश्चात् एक उपवास करके पारणा किया । तदनन्तर तीन उपवास (तेला) किये, अट्ठम करके पारणा करके छट्ठ (बेला) किया, छट्ठ का पारणा करके चार उपवास (दशमभक्त) किये । चार उपवास का पारणा किया । फिर अट्ठम (तेला) किया । अट्ठम करके पाँच उपवास किये । पाँच उपवास करके पारणा किया, फिर छह उपवास किये । छह उपवास का पारणा करके पुनः पाँच उपवास किये ।

आगे की तपश्चर्या का वर्णन इसी सूत्र के मूल-पाठानुसार यों है - पाँच उपवास का पारणा करके सात उपवास किये । सात उपवास का पारणा करके छह उपवास किये, छह उपवास का पारणा करके 'अठारह भक्त' में यानी ८ उपवास किये । आठ उपवास का पारणा करके सात उपवास किये । सात उपवास का पारणा करके ९ उपवास किये । उनका पारणा करके आठ उपवास किये । आठ उपवास का पारणा करके नौ उपवास किया, नौ उपवास का पारणा करके सात उपवास किये । सात उपवास का पारणा करके आठ उपवास किये । आठ उपवास का पारणा करके छह उपवास किये । छह उपवास का पारणा करके सात उपवास किये । सात उपवास का पारणा करके पाँच उपवास किये । पाँच उपवास का पारणा करके छह उपवास किये । छह उपवास का पारणा करने के बाद चार उपवास किये । चार उपवास का पारणा करके पाँच उपवास किये । पाँच उपवास का पारणा करके अट्ठम (तीन उपवास) किये । तीन उपवास का पारणा करके चार उपवास किये । चार उपवास का पारणा करके छट्ठ (दो उपवास) किये । छट्ठ का पारणा करके तीन उपवास किये । तीन उपवास का पारणा करके एक उपवास किया । एक उपवास का पारणा करके दो उपवास किये । दो उपवास का पारणा करके एक उपवास किया । उन्होंने ये सब पारणे विगय-सहित किये थे । इस प्रकार लघुसिंह -निष्क्रीड़ित तप की यह प्रथम परिपाटी है । इस परिपाटी में छह मास और सात रात-दिन (अहोरात्र) लगते हैं । अतः ६ मास एवं ७ अहोरात्र पर्यन्त सूत्रोक्त विधिपूर्वक उसकी आराधना होती है । देवानुप्रियों ! इन महामुनियों ने कैसी उग्र तपस्या की है ? उन्होंने दीक्षा लेकर थोड़ा-सा भी प्रमाद नहीं किया । यह तो एक परिपाटी का वर्णन हुआ है ।

यह लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप क्षुल्लक और महत् की दृष्टि से दो प्रकार का होता है । अनुलोम गति से पहले चतुर्थभक्त (एक उपवास) से प्रारम्भ करके बीस भक्त (९ उपवास) तक तप किया जाता है और प्रतिलोम गति से प्रथम बीस भक्त (९ उपवास)

+ देखे, इसका	१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९		
यंत्र, इस प्रकार है –	१	२	१	३	२	४	३	५	४	६	५	७	६	८	७	९	८	

भी है - *'पश्यन्नपि न पश्यति मूढः'* - "मूढ मानव देखता हुआ भी देखता नहीं।" इस विज्ञान के युग में अनेक प्रकार की वैज्ञानिक जानकारियों का भंडार समझा जानेवाला मानव-जगत् की विविध जानकारियों का ज्ञान रखता है। परन्तु वास्तव में वह अपने आपको पहचानता नहीं। वह शास्त्रों में पारंगत हो जाता है, किन्तु आत्मतत्त्व को पहचानता नहीं है। एक छोटी-सी थाली ने उन्हें आत्मभान कराया। ये तीनों जन शून्यमनस्क खड़े थे। इतने में वहाँ महाराजा पधारे। राजा ने मन्दिर में प्रवेश करते ही हँसमुख चेहरेवाले समझे जानेवाले नगरसेठ, हाजिरजवाबी अपने प्रधानजी और धर्म की चर्चा करनेवाले पूजारीजी, इन तीनों को एकदम गमगीन खड़े देखकर पूछा - "आज आप सब क्यों गमगीन बनकर खड़े हैं ?" इस पर उन्होंने राजा से सोने की थाली की बात कही। यह सुनकर राजा ने कहा - "तुम्हारे सम्बन्ध में चाहे जो हुआ हो, परन्तु मैं थाली को छुऊँगा तो ऐसा नहीं होगा। क्योंकि मैंने बहुत दान-पुण्य किया है। मैंने गरीबों की सारसंभाल करने में मुक्त हस्त से धन का उपयोग किया है। मैं संत-महात्माओं की सेवा भी करता हूँ। सुबह-शाम प्रभु-भजन भी करता हूँ।" यों कहकर राजा ने थाली उठाई। किन्तु राजा का हाथ थाली को छूते ही वह धूंधली पड़ने लगी, और घड़ीभर में लोहे की हो गई। राजा तो थाली के सामने देखते ही रहे। थाली का रंग बदलते ही राजा के मुख का रंग बदल गया और राजा ने सोने की थाली जमीन पर पटक दी। फिर वह मन्दिर में न रुक कर तत्काल अपने राजमहल में पहुँचे और जोर-जोर से रोने लगे। 'अहह ! इतना सब करने पर भी मैं सच्चा धर्मात्मा नहीं ?' इस विचार से राजा के दिल में भारी आघात पहुँचा।

धीरे-धीरे सोने की थाली की बात आसपास के अनेक गाँवों में पहुँच गई। जो-जो व्यक्ति अपने आपको धर्मात्मा मानते थे, वे सभी मन्दिर में आकर भगवान् के दर्शन करके इस थाली को उठाते और थाली लोहे की बन जाती। और वे थाली को जमीन पर फेंक देते तो वह सोने की बन जाती। मन्दिर में बहुत भीड़ इकट्ठी होने लगी। जैसे कोई नाटक या रामलीला होती है, तब मनुष्य चाहे जितना काम हो, तो भी वह उसे छोड़कर उसे देखने के लिए खड़ा रहता है, परन्तु यहाँ पाव या आधा घंटा देर हो जाय तो वह ऊँचा-नीचा हो जाता है। इस मन्दिर में भी दूर-दूर से भजन मंडलियाँ आ पहुँची। कोई वेद के मंत्रों का उच्चारण करते हुए आए तो कोई धून मचाते हुए आए। देखनेवाले उत्सुकतापूर्वक देखने लगे कि इन सब में सच्चा धर्मात्मा कौन है ? सच्चे धर्मिष्ठ पुरुष की कसौटी करने के लिए किसी देव ने यह थाली मन्दिर में रखी थी। लोकों के कुतूहल का कोई पार नहीं था। स्वयं महाराजा की सवारी में, सरकस में या सिनेमा में इतनी भीड़ इकट्ठी नहीं होती, जितनी अधिक भीड़ इस मन्दिर में जमने लग गई। सभी आगन्तुक अपनी-अपनी करणी का बखान करते हुए थाली उठाने जाते और थाली लोहे की हो जाती। इस कारण वे गुस्से से थाली को जमीन पर फेंक देते और वह सोने की बन जाती।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

रुक्मिणी का विलाप और कृष्ण वासुदेव का आगमन : रुक्मिणी पुत्र- विरह के दुःख से अत्यन्त विलाप करती है, जोर-जोर से रोती-विलखती है। दासियाँ दौड़ती हुई जाकर श्रीकृष्ण वासुदेव को यह खबर देती हैं।

रुक्मिणी के आक्रन्दन की बात सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव झटपट दौड़कर रुक्मिणी के महल में आए। रुक्मिणी कहती है - "स्वामीनाथ ! आप तीन खण्ड के स्वामी हैं, आपके राज्य में मैं लुट गई। अहह ! अब मैं कैसे जिंदी रह सकती हूँ ? आप के रहते आपके शिशु का अपहरण हो जाए ! यह कितना दुःखजनक है ? मैं अपने लाडले लाल के बिना अब एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती।" इस प्रकार कहकर रुक्मिणी करुण-स्वर में विलाप करने लगी। उसका रुदन देखा नहीं जा रहा था। अच्छे-अच्छे पाषाण जैसे कठोर हृदय के मानव भी पिघल जाएँ, ऐसा रुक्मिणी का अतिकरुण रुदन था।

रुक्मिणी कहती है - "स्वामीनाथ ! शिशुपाल जैसे प्रतापी राजा को आप जीत सके तो मेरे पुत्र को नहीं ला सकते ? मेरे पुत्र के लिए क्या आप अपना पराक्रम क्यों नहीं बताते ? आप शीघ्र इसकी खोज कराइए ! अधिक क्या कहूँ ! जो प्रसन्नचित्त से आपकी भक्ति करता है, आपके नाम का जप करता है, उसे भी इच्छित फल की प्राप्ति होती है, जबकि मैंने तो मन-वचन-काया से रातदिन अपना अन्तःकरण आपमें ओतप्रोत कर दिया है, फिर मेरे पुत्र का वियोग मुझ से क्यों हो गया ?" यों बोलती हुई रुक्मिणी कहती है - मेरी प्रिय दासियों ! मेरे पुत्र को सत्यभामा, या जाम्बवती आदि बहनें या उनकी दासियाँ रमाने के लिए कदाचित् ले गई हों, तो तलाश करो। उन्हें कहो : "मुझे एक बार तो अपने पुत्र का मुख देख लेने दो। फिर तुम्हें जितनी देर तक उसे रमाना हो, रमाए।" दासी ने तलाश करके कहा - "वहाँ तो कुंवर को कोई नहीं ले गया है।" अतः रुक्मिणी पुनः करुण स्वर में रोने लगी। ऐसे समय में कृष्ण वासुदेव ने रुक्मिणी को ढाढस बंधाते हुए कहा -

रुक्मिणी को धीरज दी मधुरायने रे, देवी ! तू मत कर हाय कलाप रे।
शोधन करशुं सौ सारा देश में रे, मेटूंगा प्यारी तुझ संताप रे॥ श्रोता...

"हे रुक्मिणी ! तू रो मत ! मैं तीन खण्ड का स्वामी हूँ। अभी ही तीनों खण्डों में मैं अपने सैनिकों को भेजकर तेरे पुत्र की तलाश करवाता हूँ। तू शान्त हो जा।" यों कहकर कृष्ण ने अपने सुभटों को बुलाकर आदेश दिया - "तुम सब जाओ और पहाड़, वन, गुफा सब छान मारो ! कोई चोर-डाकू प्रद्युम्नकुमार को लेकर तो नहीं भाग गया है ? इसकी पूरी छानवीन करना। जैसे भी हो वैसे खोज करके जल्दी वापस आओ।" इस प्रकार अपने खास सुभटों को कहकर प्रद्युम्नकुमार की खोज के लिए भेजे।

इस ओर सारी द्वारिकानगरी में हाहाकार मच गया। श्रीकृष्ण के दास-दासी, नौकर-चाकर आदि सारा परिवार अत्यधिक उदास हो गया। श्रीकृष्ण को भी अत्यन्त चिन्ता हुई। परन्तु उनके हृदय में हिम्मत है कि उसे तीन खण्ड के बाहर तो कौन ले जा

है, उससे अपना गुजारा चलाता हूँ। मैं विना मेहनत का पैसा कभी नहीं लेता।" इस पर पूजारी ने कहा - "तू इस थाली को उठा तो सही ! कदाचित् तेरा भाग्य होगा, तो यह (थाली) तुझे मिल जाएगी और ऊपर से तू बड़ा धर्मात्मा कहलाएगा।" किसान ने कहा - "मैं कहाँ बड़ा धर्मात्मा हूँ ? मैं तो गाँव का गरीब और अनपढ़ मनुष्य हूँ। मुझे यह थाली नहीं उठानी है।" किन्तु पूजारी ने अत्याग्रह किया, तब किसान ने अनिच्छा से वह थाली उठाई। किसान के हाथ में थाली आते ही, वह सोने की थाली अत्यधिक तेजस्वी होकर चमकने लगी। यह देखकर लोग आश्चर्यचकित होकर किसान के समक्ष देखने लगे। पूजारी ने पूछा - "भाई ! तूने क्या पुण्यकार्य किया है ?" इस पर किसान ने कहा - "भाई ! मैं तो एक निर्धन किसान हूँ। मैंने क्या सुकृत्य किया है, यह तो भगवान् जानें। मैं तो यह चला। मुझे आज बहुत देर हो गई है।" यों कहकर वह सोने की थाली मन्दिर में रखकर चल पड़ा। सबने बहुत आग्रह किया कि तू यह थाली ले जा। किसान बोला - "मुझे पराया धन नहीं चलता (खपता)।" इस प्रकार कहकर वह किसान चलता बना।

देवानुप्रियों ! देखिए ! यह किसान यद्यपि गरीब था, किन्तु उसमें कितनी पवित्रता थी ? साधु-संत (संन्यासीगण) और धनाढ्य भक्त जो कार्य नहीं कर सके, वह सुकृत्य किसान ने कर दिखाया। वह सच्चा धर्मात्मा सिद्ध हुआ। उसे स्वर्ण की थाली ले जाने हेतु पूजारी ने बहुत कहा, किन्तु उसने कहा - "मेरे लिए परधन धूल समान है।" मेरे वीतराग भगवन्त के अनुगामी श्रावक-श्राविकागण खामणी (पाँच पदों की वन्दना) में प्रतिदिन बोलते हैं - परधन पत्थर समान, परन्तु यह तो केवल बोलना मात्र है। परन्तु परधन हाथ में आ जाए तो घर-समान ! क्यों ठीक हैं न ? उपाश्रय से घर जाते समय सोने की ईंट (या बंगड़ी) रास्ते में पड़ी हुई मिल जाए तो उसे कौन छोड़ देगा ? यों तो *'वहुरत्ना वसुन्धरा'* है, यह बात एकान्तरूप नहीं है। कई बार समाचारपत्र में पढ़ते हैं कि टेक्सीवाले ने ३० हजार रुपयों का बटुआ (पाकेट) उसके मालिक को सौंप दिया। जगत् में ऐसे ईमानदार मनुष्य भी पड़े हैं, पर वे होते विरले ही हैं।

उक्त गरीब किसान ने थाली तो नहीं ली, इतना ही नहीं, उसके मन में जरा-सा भी अभिमान नहीं था। नरसिंह मेहता ने भी कहा है - "जो मनुष्य अपना सुख छोड़कर दूसरों को सुखी करता है, तथापि 'मैंने उसका यों भला किया', ऐसा मन में भी अभिमान न हो, वही विष्णु का सच्चा भक्त-वैष्णवजन है, और उसका जीवन पवित्र वनता है।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महावल अनगार आदि सातों मुनिवर ऐसे पवित्र आत्मा हैं। वे आत्मा को तेजस्वी वनाने के लिए उग्र तप की साधना कर रहे हैं। महावल - प्रमुख सातों अनगारों ने लघु-सिंह-निष्क्रीड़ित तप अंगीकार किया और दो वर्ष तथा २८ अहोरात्र तक सूत्रोक्तविधि के अनुसार तथा उसकी आराधना करने की भगवान् की जैसी आज्ञा है, तदनुसार आराधना करके जहाँ स्थावर भगवन्त थे, वहाँ आए। आकर क्या किया ? देखिए सूत्रपाठ -

व्याख्यान - ४४

श्रावण वदी ८, मंगलवार ता. १७-८-७६

छूट जाये तन - आसक्ति : जग जाए परमात्म-भक्ति

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तज्ञानी महान् भगवन्तों ने देह के पीछे पागल बने हुए जीवों को दिव्य वाणी द्वारा उद्घोषणा करके समझाया - "हे भव्य जीवों ! तुम अनन्तकाल से जिस पर रागभाव करके संसार में भटक रहे हो, जिसका पोषण करने के लिए आत्मा को बर्बाद कर डाली है । न्याय, नीति को एक बाजू रख दी है, अधर्म का आचरण करके पाप के पोटले बांधे हैं, और जिसके लिए हीरे से भी कीमती मानवभव खो रहे हो, वह तुम्हारा प्रिय शरीर कैसा है ? देखिए शास्त्रीय पाठ -

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइ-संभवं ।
असासयावासमिणं दुक्ख-केसाण भायणं ।। - उत्त. अ.-१९, गा.-१२

यह तेरा शरीर अनित्य है, इसकी प्रत्येक अवस्था प्रतिक्षण तुम्हें चेतावनी देती है । फिर जीव इसके मोह में पागल बनकर अपने स्वरूप की विचारणा नहीं करता । इस काया के वाचा नहीं है, परन्तु तुम्हें यह मूक रूप से उपदेश दे रही है कि मेरी माया कैसी है ? मेरी माया बिजली की चमक की तरह और सन्ध्या के रंग जैसी क्षणिक है । यह शरीर अनित्य है और अनित्यता का उपदेश देकर भान कराता है कि तेरी आत्मा त्रैकालिक ध्रुव है । तेरी आत्मा में सुख की निधि भरी हुई है, किन्तु उसे परखने की बुद्धि तेरे में नहीं है ।

बन्धुओं ! विचार करो - इस शरीर में क्या भरा है ? यह अशुचिमय (गंदे) पदार्थों से भरा है । इसमें रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी आदि पुराना जीर्णशीर्ण सामान भरा हुआ है । और यह शरीर भी अशुचिमय पदार्थों से उत्पन्न हुआ है । फिर वह अनित्य और अशाश्वत है तथा यह दुःखों और क्लेशों का भाजन है । ऐसे शरीर पर मोह जन्म-जरा-मरण के प्रचुर दुःखों का उत्पादक है । इस देह पर ममता ही बार-बार देह धारण कराती हैं, और कुछ न कुछ पापाचरण कराती है । फिर भी जीव को यह शरीर कितना प्रिय है ? बहुत-से लोग कहते हैं - मुझे पैसा प्यारा है , कोई कहता है - मुझे माता-पिता प्रिय हैं । कोई कहता है - मुझे अपनी पत्नी और पुत्र, परिवार प्रिय हैं । कोई कहता है - मुझे टी.वी., रेड़ियो और फ्रिज प्रिय हैं । किन्तु अगर घर में आग लग जाए, अथवा गुंडे घर में घुस जाएँ, उस समय मनुष्य क्या लेकर दौड़ता है ? उस समय माता-पिता,

व्याख्यान - ९५

श्रावण वदी ९, बुधवार | ता. १८-८-७६

आत्मशुद्धि का मूलाधार : तप

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

करुणानिधि विश्ववत्सल भगवान् महावीर-प्रभु ने जगत् के जीवों पर महान् अनुकम्पा करके आगम के रूप में वाणी प्रकाशी । भगवान् की वाणी भव्यजीवों पर महान् उपकार करनेवाली है । जैसे डोक्टर या वैद्य की दवा शारीरिक रोग का शमन करती है, वैसे ही वीतराग-प्रभु की वाणीरूपी दवा भवभ्रमण-रोग का नाश करती है । इस वाणी पर अगर जीव श्रद्धा करे तो मोक्ष के शाश्वत-सुख को प्राप्त कर सकती है । जिनेश्वर देवों द्वारा प्ररूपित वाणी सत्य और निःशंक है । 'आचारांग सूत्र (श्रु.-१, अ.-४, उ.-१) में कहा गया है -

"जे य अइया, जे य पडुपन्ना, जे य आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो, ते सव्वे एव भाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पन्नवेंति एवं परुवेंति...।"

जो अरिहन्त (तीर्थंकर) भगवन्त भूतकाल में हो गए, जो वर्तमानकाल में महाविदेह-क्षेत्र में विराजमान हैं और भविष्य में जो तीर्थकर भगवन्त होंगे, वे भी यही बात कहेंगे, जो-जो द्रव्य और जो-जो तत्त्व, जिस-जिस रूप में भगवन्तों ने कहे हैं, वे उस-उस रूप में निहित हैं । नवतत्त्व, द्रव्य, नय, निक्षेप जो ज्ञानियों ने कहे हैं, उन्हें अनन्तकाल में भी ज्ञानी उसी रूप में कहेंगे ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' का वर्णन चल रहा है । उसमें बताया है कि महाबल - प्रमुख सात अनगारों ने भवरोग निर्मूल करने के लिए लघुसिंह-निष्क्रीड़ित और महासिंह-निष्क्रीड़ित, इन दो महान् तपश्चरणों की आराधना की । इन दोनों तपस्याओं की आराधना की विधि के विषय में कल आप सुन चुके हैं । ऐसे महान् तप आप न कर सको, कम से कम सामायिक इत्यादि से ऐसी परिपाटी करो तो भी कर्मो का क्षय हो सकता है । इन सातों अनगारों के मन-मस्तिष्क में जन्म-मरणादि का दुःख खटका, इसलिए उन्होंने प्रबल (तपः) साधना अंगीकार की । उन्हें कर्मशत्रुओं को पराजित करने की लगन लगी और मोक्ष में जाने का उल्लास जगा । इस कारण उन्हें यह साधना कठिन नहीं प्रतीत हुई । एक बार १२ वर्ष की एक लड़की अपने डेढ़ वर्ष के भाई को लेकर सीढ़ियाँ चढ़ रही थी । चढ़ते-चढ़ते वह हाँफने

हे क्षत्रिय ! किला, मुख्य द्वार, मोर्चा, खाई, शतघ्नी तोप आदि की व्यवस्था करवा कर फिर दीक्षाभिनिष्क्रमण करना था, ताकि आपके राज्य पर शत्रु-राजा द्वारा चढ़ाई करके आने का भय न रहे। इस पर जिन्हें आत्मा की लगन लगी है, जिनके मुख पर वैराग्य की ज्योति जगमगा रही है, उन नमिराजर्षि ने उत्तर दिया –

सद्धंनगरं किच्चा, तव-संवरमग्गलं ।
खंतिं निउण-पागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥ – उत्त. सू., अ.-९, गा.-२०

मैंने तो श्रद्धारूपी सुन्दर नगरी बनाई है, उसके क्षमारूपी सुदृढ़ कोट-किला बांध दिया है। तप और संवररूपी अर्गला द्वारा उसके मुख्य द्वार बंध कर दिये हैं और उसमें तीन गुप्तिरूपी मजबूत शस्त्र-तोप द्वारा दुर्जय कर्मशत्रुओं से मैं अपनी आत्मा की रक्षा करता हूँ।

एक जमाना ऐसा था, जब पहले के शासक (राजा) अपने नगर पर कोई शत्रुराजा चढ़ाई करने हेतु आ जाए तो अगर मजबूत किला बनाया हुआ हो तो शत्रु अन्दर प्रवेश नहीं कर सकता था। इसलिए पहले के राजा करोड़ों रुपये खर्च करके मजबूत कोट-किला बनवाते थे। आज तो ऐसी हवा चली है कि ऐसे मजबूत किले को (बम आदि द्वारा) तोड़ डालते हैं। आज तो किले के विहीन नगरी में निवास करते लोग वर्तमान में धर्म के किले को तोड़-फोड़ रहे हैं। जैनकुल में जन्मे हुए व्यक्तिओं को जो प्रवृत्तियाँ या वस्तुएँ कल्पनीय नहीं हैं, उनका उपयोग धड़ल्ले से कर रहे हैं। जो पापजनक व्यवसाय (१५ प्रकार के कर्मादान आदि) कल्पनीय नहीं हैं, वैसे व्यवसाय कर रहे हैं। रात्रिभोजन, अंडा, मांस-मछली आदि का आमिष-भोजन कर रहे हैं, ये और इस प्रकार के अभक्ष्य-अपेय मांस-मद्यादि का सेवन करके वे नियमरूपी किले की मर्यादा तोड़ रहे हैं। जो ऐसे अनैतिक और अन्यायपूर्ण आचरण करे, उसने किला तोड़ दिया ही कहलाएगा न ? अगर आत्मसाधना करनी हो और कर्मशत्रुओं को पीछे हटाना हो, तो धर्म के किले को तोड़ना नहीं।

इसीलिए नमिराजर्षि ने इन्द्र को उत्तर दिया कि – "मैंने श्रद्धारूपी नगरी के क्षमारूपी मजबूत कोट-किला बना दिया है। तप और संवररूपी अर्गला से मुख्य द्वार बंध कर दिये हैं। साथ ही, त्रिगुप्तिरूपी मजबूत शस्त्र – तोप आदि द्वारा दुर्जय कर्मरिपुओं से मैं अपनी आत्मा की सुरक्षा करता हूँ।"

बन्धुओं ! क्या तुम्हें कर्म दुश्मन की तरह खटकते हैं ? अगर खटकते हैं तो उन्हें निकालने का मन होता है क्या ? जिसे मोक्ष में जाने की लगन लगती है, उसे कर्मशत्रु खटकते हैं और बन्धन से मुक्त होने की तमन्ना होती है कि प्रभो ! कब मैं इस बन्धन से मुक्त होऊँ ? तभी वह कर्मशत्रुओं को खदेड़कर बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। परन्तु तुम्हें तो संसार का जितना खटका है, उतना आत्मा का नहीं है। व्यापार में करोड़ों रुपये कमाने की चिन्ता होती है तो भूख और नींद भी भाग जाती है। एक विद्यार्थी

उसे किया जाए, तो शरीर का वजन कम हो जाएगा। डायटिंग की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और अनायास ही कर्मनिर्जरा होगी। इन सातों अनगारों ने आत्मलक्षी उग्र तप किया। फिर उन्होंने क्या किया ?

"तएणं ते महब्बले पामोक्खा सत्त अणगारा महालयं सिंहनिक्कीलियं अहासुत्तं जाव आराहेत्ता, जेणेव थेरे भगवंते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता बहूणि चउत्थ जाव विहरंति।"

तदनन्तर वे महाबल - प्रमुख सातों अनगार सूत्र में कहे अनुसार विधिपूर्वक महासिंह -निष्क्रीड़ित तप की आराधना करके जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ आए। उनके पास आकर उन्होंने उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके एक उपवास, छट्ठ, अट्ठम आदि तपश्चर्या करने लगे। आपलोग क्या कहते हैं ? मालूम है न ? मैंने तो अभी मासखमण किया, वर्षीतप किया। अब तपश्चर्या नहीं करनी है, क्योंकि मैंने पाँच अट्ठाइयाँ तीन सोलहभक्त (सात उपवास) और मासखमण, ये सब कर लिये हैं। मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुमने इतनी तप किये, उसके गाने गाते हो, परन्तु अनन्तकाल से भव-भ्रमण करते हुए जीव ने कितने कर्म बांधे ? उसका पता है ?

जैसे तेलीनी घाणी पर बैठनेवाले मनुष्य का कपड़ा चिकना हो जाने से अत्यन्त मैला हो जाए, फिर उसे धूल में रगड़ा जाए तो वह कपड़ा कैसा हो जाता है ? उस कपड़े की जाति या प्रकार दिखाई देता है क्या ? उसे गर्म पानी में साबुन या सोडा डालकर उबाला जाए और फिर बड़े डंडे से पीटकर धोया जाए तब बड़ी मुश्किल से वह उजला होता है। उस चिकने और मैले कपड़े की अपेक्षा भी आत्मा गाढ़ कर्मबन्ध से इतना चिकना और मैला हो गया है, कि उसे अपने स्वरूप का भी भान नहीं है कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? यह भी उसे पता नहीं है। ऐसे गाढ़ कर्मों के मैल को साफ करने के लिए इतनी तपस्या की, क्या वह बहुत कही जाएगी ? जबतक आत्मा कर्मरहित होकर शुद्ध न बने, तबतक पुरुषार्थ क्रिया करना पड़ेगा। इतना करके बैठे रहने से कर्मक्षय नहीं हो जाएगा। क्या तुम्हें कर्म-क्षय करने की चिन्ता जगी है ?

सातों अनगारों को कर्म-क्षय करने का मन में खटका हो गया था। हे प्रभो ! अब हमें भवभ्रमण नहीं करना है। माता के गर्भ में आकर दुःख सहने नहीं हैं। हम जन्म, जरा और मरण के दुःख से घबरा गए हैं। अब यह त्रास सहना नहीं है। शीघ्र ही अजन्म दशा प्राप्त करनी है, ताकि इस संसार में पुनः जन्म लेना न पड़े। उन्हें जन्म-मरण बंद करने का खटका हो गया था और तुम्हारा खटका तो बंद हो गया है। जैसे किसी मनुष्य का हार्ट काम नहीं करता, तब उसका धड़कना बंद हो जाता है। तब तुम उसके लिए कहोगे कि यह मनुष्य खत्म हो गया है। घड़ी की टक्-टक् आवाज होनी बंद हो जाय तब क्या कहोगे ? घड़ी बंद हो गई है। बस, इसी प्रकार समझ लो ऐसा उत्तम मानवजन्म पाकर जन्म-मरण का खटका न होता हो तो कैसा कहना ? बंद हुई घड़ी जैसा !।

नफे में मिलती हो तो आये हुए अवसर को चूकते नहीं, वहाँ जरा-सी भूल या गफलत नहीं करते। वैसे ही मनुष्यभव में धर्मार्जन का ऐसा अवसर हाथ से चला जाएगा, तो बाद में पछतावा होगा। यहाँ अल्प साधना (करणी) से बहुत निर्जरा होती है। यह अवसर खोने या भूल जाने जैसा नहीं है। महाविदेहक्षेत्र में जन्म होगा, तो वहाँ आयुष्य लम्बा है, इसलिए बहुत करणी (साधना) करनी पड़ेगी। यहाँ आयुष्य अल्प है, इसलिए अल्प करणी से बहुत निर्जरा हो जाएगी।

थोड़ा-सा माल देने से अधिक नफा मिलता हो और तुम उस मौके को छोड़ देते हो या चूक जाते हो तो मूर्ख ही कहलाते हो न? वैसे ही थोड़ी साधना से अधिक निर्जरा हो तो कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो जाने देगा? यहाँ आत्मसाधना का अमूल्य अवसर काम-भोगों में बिताओगे तो ज्ञानीपुरुषों की दृष्टि में मूर्ख ठहरोगे। साधक दशा में विचरण करनेवाले साधक एक ही विचार करें कि दुनिया क्या करती है? यह तुझे देखने की आवश्यकता नहीं है। तू अपनी साधना में तल्लीन रह। कोई राजा निर्धन मनुष्य पर प्रसन्न होकर कहे कि 'मैं तुझे २४ घंटे का राज्य देता हूँ। तुझे जितना धन लेना हो ले ले।' निर्धन को राज्य मिला, अतः वह खाने-पीने और शरीर का श्रृंगार करने में रह गया। कुछ भी धन न लिया। २४ घंटे पूरे होने के बाद राजा ने कहा – "अब तुम यहाँ से विदा हो जाओ।" तब उसने कहा - "मैंने तो अभी तक कुछ भी लिया नहीं।" राजा ने कहा – "तो फिर तूने २४ घंटों में क्या किया? अब कुछ नहीं हो सकता। अब तू यहाँ से चला जा।" तब उसे लोटियाबाबा की तरह खाली हाथ निकल जाना पड़ा। रंक को राज्य तो मिला, परन्तु उसने समय को पहचाना नहीं। इसी न्याय में अनन्तकाल से भौतिक सुख की भीख मांगते हुए रंक जैसे बने हुए आत्मा को इस भारतक्षेत्र में अल्प जिंदगी में आत्मिक धन के खजाने में जितना लिया जाए उतना लेने के लिए मनुष्यभव का राज्य मिला है। यह राज्य २५, ५० या १०० या १५० वर्ष का है। इतने समय में अगर जितनी हो सके उतनी साधना नहीं करो और खाने-पीने और खेलने में रह जाओगे, तो जिंदगी पूरी हो जाएगी। ऐसी स्थिति में उस गरीब मनुष्य की तरह लोटियाबावा होकर जाना पड़ेगा। फिर चाहे जितना पश्चात्ताप करोगे, तो भी कुछ नहीं होगा। यह मनुष्यजीवन कितना क्षणिक है, इसका तुम विचार करो। शास्त्र में कहा है –

"अणिच्चे खलु भो! मणुयाण जीविए, कुसग्ग-जलबिंदु चंचले!"

डाभ की नोक पर रहे हुए ओस-बिन्दु की तरह मनुष्य का जीवन चंचल है। तुम हमेशा आँखों से देखते हो कि किसी मनुष्य को सुबह व्याख्यान में देखा हो, और दोपहर को मालूम हुआ कि उसे हार्टएटेक हुआ है और उन्हें जसलोक होस्पिटल में एडमिट किया है और शाम खबर मिली कि अमुक भाई को लकवा हो गया है। अपने पास एक घंटा तक बातें करके गये, और सुबह होते ही हार्टएटेक आने के साथ ही वह गुजर गए। ऐसा अपना शरीर अनित्य और अशुचिमय पदार्थों से भरा है। उस पर राग करने जैसा

एक विधवा माता अशुभ कर्मोदय से अत्यन्त गरीब थी। तीन वर्ष के पुत्र को छोड़कर उसका पति परलोकवासी हो गया था। इस कारण माता-पुत्र दोनों निराधार हो गए। यह माता स्टेशन के निकट एक झोंपड़ी बांधकर रहती थी। गरीबी होते हुए भी माता धर्म को भूली नहीं थी। अपने पुत्र में भी वह धर्म के सुसंस्कारों का सिंचन करती थी। इस माता ने पुत्र पर आशा के मिनारे बांध रखे थे कि 'इसके पिता तो हमें छोड़कर चल बसे। किन्तु कल यह मेरा पुत्र बड़ा हो जाएगा और कमाने लग जाएगा, तब मेरे दुःख के दिन चले जाएँगे।' यों विचार करके आसपास के लोगों का काम करके तथा चक्की में आटा पीसकर आजीविका चलाती और अपने पुत्र को पढ़ाती थी।

बन्धुओं! गरीबी में वैधव्य सहन करना, जैसी-तैसी बात नहीं थी। कई बहनें विधवा होती हैं, परन्तु पास में पैसा होने से दुःख (व्यक्त रूप से) दिखाई नहीं देता। इस बाई को पति और पैसा दोनों के अभाव का दुःख था। माता ने कष्ट सहकर पुत्र को बड़ा किया। वह लड़का कर्म के उदय से गरीब था, लेकिन उसकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। अतः वह मैट्रिक पास हो गया। उसे आगे पढ़ने की तीव्र इच्छा थी, किन्तु माता ने कहा - "बेटा! अब मेरा शरीर घिस गया है, जर्जर हो गया है। आशा ही आशा में मेहनत-मजदूरी करके तुझे मैट्रिक तक पढ़ाया। अब मुझ से दुःख सहन नहीं होता। अतः तू चाहे जहाँ नौकरी कर ले।" लड़का बोला - "अच्छा माँ! अब तू कुछ भी काम मत कर। मैं नौकरी करके कमा लाऊँगा।" इस बात को सुनकर माता के मन में शान्ति हुई। परन्तु उसके कर्म उसे कहाँ शान्ति लेने दें, ऐसे थे? लड़का नौकरी की खोज करता है। एक दिन सार्वजनिक समाचारपत्र में पढ़ा - अमुक जगह मनुष्यों की आवश्यकता है, तो वहाँ जाता है। इंटरव्यू देता है, परन्तु नौकरी पास नहीं होती। मनुष्य का भाग्य मंद हो वहाँ चाहे जितने प्रयत्न करने पर भी उसमें निष्फलता मिलती है। संस्कृत भाषा का एक सुभाषित है -

'प्रतिकूले विधौ किं वा, सुधाऽपि हि विषायते।'

भाग्य प्रतिकूल होता है, तब अमृत भी विष का काम करता है। इस लड़के के लिए भी ऐसा ही हुआ।

देवानुप्रियों! तुम्हारे तो प्रबल पुण्य का उदय है। इसलिए तुम्हें तो सभी जी-जी कर बुलाते हैं। जहाँ जाते हो, वहाँ खम्मा खम्मा करते हैं। इसलिए तुम्हें पता नहीं लगता। परन्तु जिसके पाप का उदय हो, उसकी दशा तो देखो। कर्म का उदय होने पर बुद्धिशाली, चतुर और होशियार हो तो भी पागल लगता है। क्योंकि उसके पास पैसा नहीं है। जिसके पास प्रचुर धन है वह मनुष्य पागल और बुद्धू हो तो भी चतुर और बुद्धिशाली लगता है। निर्धन मनुष्य चतुर हो तो भी उसे बुद्धू कहते हैं। दौलत चतुर को पागल और पागल को चतुर भले ही बना दे, परन्तु वह कब दगा दे देगी, इसका पता नहीं है। लक्ष्मी के मद में मस्त बने हुए व्यक्ति को गरीबों के आंसू पोंछने की या उनके सामने देखने की

करता हूँ और इस गाँव के सेठ-साहूकार और राजा आदि सब मेरे चरणों में नमस्कार करते हैं, तो मेरे सरीखा पवित्र धर्मात्मा और कौन है ? मैं इस थाली को उठा लूं ।' पीला (सोना) देखकर पूजारी का मन लालच में पड़ गया । उसने आगे-पीछे दृष्टि दौड़ाई तो कोई भी दिखाई न दिया । अतएव पूजारी ने उक्त थाली उठा ली । तुरंत सोने से जगमगाती थाली लोहे की हो गई । इससे उसे अत्यन्त दुःख हुआ कि अहो ! मैं रोज भगवान् की पूजा, पाठ, स्तोत्र, मंत्र, जाप आदि सब करता हूँ, क्या फिर भी मैं धर्मिष्ठ नहीं ? इसी उधेड़बुन में वह कांप उठा और थाली उसके हाथ से गिर गई, और जमीन के साथ टकराते ही थाली पुनः सोने की बन गई । यह देखकर पूजारी फिर आश्चर्य में पड़ गया और मन ही मन सोचने लगा - 'मैं अपने आपको धर्मात्मा मानता हूँ । परन्तु अन्दर से मैं दम्भी हूँ । इसलिए सच्चे माने में मैं धर्मात्मा नहीं हूँ ।' इस प्रकार वह अपने पापाचरण का पश्चात्ताप करने लगा ।

मेरे जैसा धर्मात्मा कौन है ? : इसके बाद नगरसेठ मन्दिर में दर्शन करने के लिए आया । उसने भगवान् के दर्शन करके फिर आँखें बंद करके भगवान् का ध्यान किया। आँखें खोलकर भगवान् को नमन करके ज्यों ही वह वापस लौटने लगा, त्यों ही उसकी दृष्टि उस थाली पर पड़ी । नगरसेठ ने पूजारी से पूछा - "ऐसी सोने की थाली यहाँ किसने रखी है ?" तब पूजारी ने कहा - "रात को कोई देवदूत यहाँ रख गया है । सुबह जब मैं इस थाली को छूने जा रहा था, तभी आकाशवाणी सुनाई दी, कि जो व्यक्ति धर्मात्मा होगा, वही इस थाली को ले सकेगा । दूसरा कोई भी इस थाली को छूएगा तो यह सोने की थाली लोहे की हो जाएगी । मैं अपने आपको धर्मात्मा मानकर यह थाली उठाई, किन्तु यह लोहे की हो गई, फिर मेरे हाथ से गिरते ही पुनः सोने की बन गई ।" पूजारी का मजाक करते हुए सेठ ने कहा - "तू भगवान् की पूजा करता है, परन्तु तुझमें सच्ची पवित्रता नहीं है । किन्तु मैंने तो बहुत दान-पुण्य किया है और प्रतिदिन भगवान का दर्शन करने आता हूँ । इसलिए मैं सच्चा धर्मात्मा हूँ । मैं इस थाली को उठाऊँगा तो अड़चन नहीं आएगी ।" अपनी धार्मिकता के अहंकार में रचेपचे सेठ ने थाली हाथ में ली, किन्तु वह लोहे की बन गई, फीकी पड़ गई । अतः सेठ भी धुंधले पड़ गए । उनका अभिमान उतर गया । थाली हाथ से नीचे गिर गई । नीचे गिरते ही वह थाली जैसी थी, वैसी सोने की हो गई । सेठ शर्मिंदा हो गए । पूजारी और सेठ दोनों ही लज्जित हो गए, और वहाँ शून्यमनस्क होकर खड़े रहे । इतने में वहाँ प्रधानजी दर्शन करने आए । उन्होंने भी भगवान् के दर्शन किये । तत्पश्चात् पूजारी और नगरसेठ दोनों को उदासवदन खड़े देखकर उन्होंने पूछा - "सेठजी ! आप उदास क्यों हैं ?" यह सुनकर सेठ ने थाली की आद्योपान्त सारी बात कही । इस पर प्रधान ने कहा - "मुझे भगवान् पर पूर्ण विश्वास है । प्रभु मेरी लाज रखेंगे ।" यों कहकर प्रधानजी ने थाली उठाई, तो वह धुंधली पड़ गई । प्रधानजी भी धुंधले पड़ गए । उनका साहस भंग हो गया । हाथ कांप उठा, थाली नीचे गिर गई । नीचे जोर से पड़ने से थाली पुनः सोने की हो गई । ये तीनों व्यक्ति स्तब्ध होकर खड़े रहे । कहा

मुझे तो अधिकारी ने यों कहा ! परन्तु तुझे तो सभी अच्छी तरह पहचानते हैं । तू उसके पास जा । कदाचित् उसे तेरी शर्म पड़े और मुझे नौकरी मिल जाए ।" माता ने कहा - "अच्छा, मैं जाती हूँ ।" माता साहस करके अधिकारी के पास गई । अधिकारी उसका परिचित था । माता को देखकर कहा - "आओ मांजी !" यों उसे प्रेम से आदर देकर बिठाया । फिर पूछा - "कहो, किसलिए आना पड़ा ?" ऐसे प्रेमभरे उद्‌गार सुनकर मांजी मन ही मन हर्षित हुई कि आज अवश्य ही मेरा कार्य सफल होगा । इसलिए मांजी ने अपनी दुःखकथा का वर्णन करके कहा - "जहाँ श्रीमानों का हास्य है, वहाँ गरीबों की आह है । हमारी यह दशा है । हम आठ दिनों से भूखे हैं ।"

देवानुप्रियों ! जहाँ धनवानों का नाटक, सिनेमा, सरकस और धोबी आदि में जितना पैसा खर्चा जाता है, उतने में तो गरीब के कुटुम्ब का निभाव हो जाता है । परन्तु इन धनवानों को कहाँ से यह ख्याल आए ? वे पूर्वभव में पुण्यरूपी पेट्रोल की टंकी भरकर आए हैं । परन्तु इस भव में मौजशौक के पीछे पुण्यरूपी पेट्रोल जला रहे हैं । जैसे कड़ाही में पूड़ियाँ तली जाती है, तो तेल जल जाता है, वैसे ही इन मौजशौकरूपी पूड़ियों को तलने में पुण्यरूपी तेल जलाकर समाप्त करने लगे हैं ।

हाँ तो, मांजी अधिकारी के घर पर पहुँची । उसके द्वारा सत्कार किये जाने से खुश हुई । अपने दुःख की बात करके पुत्र को नौकरी रखने के लिए नम्र निवेदन किया । तब अधिकारी ने बंद लिफाफे में पाँचसौ रुपये देने की मांग की । वृद्ध माजी ने दीनता भरे स्वर में कहा - "बेटा ! जहाँ खाने के लाले पड़े हैं, वहाँ मैं इतनी बड़ी रकम कहाँ लाऊँ ? पाँच सौ रुपयों के बदले मेरे पास पाँच आने भी नहीं हैं । पाँच आने होते तो मैं चने फांककर भूख मिटा लेती ।" यों बहुत ही गिड़ागिड़ाते हुए मांजी ने कहा - "बेटा ! तू इस समय मेरे पुत्र को नौकरी दिला देगा तो मैं हर महीने तुझे थोड़ी-थोड़ी रकम देकर पाँच सौ रुपये पूरे कर दूंगी । किन्तु इस समय तो इतनी रकम देने की मेरी बिलकुल हैसियत नहीं है ।" तब अधिकारी ने कहा - "आज ही ५०० रु. दो तो नौकरी दिला दूंगा, अन्यथा नहीं ।" यह सुनकर मांजी ने उक्त अधिकारी को बहुत नम्रतापूर्वक विनत्ती की, अपना अंचल पसारा, उसके पैरों में पड़ी, परन्तु अधिकारी बिलकुल नहीं पिघला, नहीं माना । अतः मांजी वहाँ से उठकर खड़ी हुई । रोते-रोते बोली - "मेरे पुत्र ! मैं तुझे बाद में जरूर इतनी रकम दे दूंगी ।" परन्तु पैसे के मोह में पड़े हुए अधिकारी का हृदय नहीं पिघला । ऊपर से उसे मांजी पर गुस्सा आया । मांजी को धक्का मारा । आठ-नौं दिन से भूखी और वृद्ध अशक्त मांजी धक्का लगते ही गिर पड़ी । पत्थर के चबूतरे के साथ सिर टकराने से उसका सिर फट गया । धोरी नस टूट जाने से गिरते ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गए । आसपास के लोग दौड़कर आए और हत्या-हत्या, यों जोर-जोर से चिल्लाने लगे । तुरंत वहाँ पुलिस ने आकर पंच केस लिया । अधिकारी को हत्यारे के रूप में गिरफतार कर लिया । अधिकारी डर के मारे घबराने लगा कि अब मेरा क्या हाल होगा ? मुझे क्या पता था कि ऐसा हादसा बन जाएगा ? मांजी का पुत्र तो फफक-फफक

हम महान् संत एवं धर्मिष्ठ आत्मा हैं - ऐसी सबकी मान्यता : उसके बाद वैष्णव धर्म के संन्यासी आने लगे । कोई कहते - हमने बाल्यावस्था में संन्यासी बने हैं । कोई कहते - हम तपस्वी हैं; यों अपने-अपने बखान करके उस थाली को उठाने जाते; तो वह थाली लोहे की बन जाती । सभी लज्जित हो जाते । अभी तक कोई सच्चा धर्मात्मा नहीं मिला । नगरजनों की चिन्ता बढ़ने लगी और इस तमाशे को देखनेवाले अपना कामधंधा छोड़कर वहाँ बैठे रहते थे । इस प्रकार अनेक दिवस बीत गए । एक दिन पास के गाँव से एक गरीब किसान गाँव में लगी हाट (बाजार) में कुछ बेचने और कुछ खरीदने के लिए आया । उसने अपना माल बेचकर मन्दिर में आकर भगवान् के दर्शन किये । वह अत्यन्त भूखा था । खाने के लिए वह अपने साथ एक पोटली में रोटी और मिर्च लाया था । वह अपनी पोटली खोल कर मन्दिर के चबूतरे पर भोजन करने के लिए बैठने जा रहा था कि उसकी नजर सामनेवाले चबूतरे पर सोए हुए एक मनुष्य पर पड़ी । वह असह्य वेदना से पीड़ित हो रहा था । इसलिए उसके मुँह से कराहने की आवाज निकल रही थी । उसे सुनकर अपना भोजन छोड़कर वह गरीब किसान उसके पास गया । उसके अंग पर पूरे वस्त्र नहीं थे । उसके सारे शरीर में गुमड़े हो रहे थे । इस कारण सारा शरीर रक्त और मवाद से लथपथ हो रहा था और वह प्यास के मारे पानी-पानी पुकार कर रहा था । यह देखकर वह किसान दो प्याले भर कर पानी ले आया । फिर अपना साफा आधा फाड़कर उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके उस पीड़ित मनुष्य के गुमड़े साफ करके उसके शरीर पर पट्टे बांधे । अतः उसे कुछ शान्ति प्राप्त हुई । फिर वह बैठा हुआ । वह कितने ही दिनों से भूखा था । इसलिए किसान ने अपने खाने के लिए लाई हुई रोटी और मिर्च खिलाकर उसे पानी पिलाया । इससे वह रुग्ण और अशक्त मनुष्य किसान का बहुत आभार मानने लगा । किसान ने कहा - "भाई ! इसमें मेरा क्या आभार मानना है ? मैंने तो कुछ नहीं किया । मैंने तो अपना कर्तव्य अदा किया है ।"

सच्चा धर्मात्मा कौन ? : बन्धुओं ! हजारों मनुष्य यहाँ से होकर मन्दिर में जा रहे थे, परन्तु इस दुःखी के सामने देखनेवाला कोई नहीं था । इस किसान ने उसके सामने देखा । उसके पास जाकर थोड़ी देर बैठा । उसे कुछ शान्ति मिली, अतः किसान ने उस से पूछा - "भाई ! अब तुम्हारे ठीक है न ? तो अब मैं पुनः भगवान् के दर्शन करके जा रहा हूँ । मुझे गाँव में जाना है । इसलिए देर हो जाएगी ।" वह रोगी मनुष्य उसका बहुत उपकार मानता हुआ, उसके पैर पकड़ कर बोला - "आप मेरे सच्चे भगवान् हैं ।" किसान ने कहा - "भगवान् तो मन्दिर में विराजमान हैं, मैं नहीं हूँ ।" यों कहकर उसकी अनुमति लेकर वह मन्दिर में आया और भगवान् की मूर्ति के समक्ष खड़ा रहकर दत्तचित्र होकर प्रार्थना करने लगा - "प्रभो ! दीनदयाल ! उस गरीब मनुष्य की पीड़ा मुझसे देखी नहीं जाती । तू उसे शीघ्र स्वस्थ कर देना और सुखी करना ।" यों प्रार्थना करके चरणों में पड़कर वापस लौटता है । उस समय पूजारी ने उसे अपने पास बुलाकर कहा - "भाई ! तू यह थाली उठा ।" तब उस किसान ने कहा - "मैं पराई वस्तु को कभी नहीं छूता । मैं अपने खेत में मेहनत करके जो कुछ रूखी-सूखी रोटी मिलती

उठे, किन्तु कुछ बोले नहीं । तब राजा ने पूछा - "प्रधानजी ! सभी आगन्तुक अधिकारियों ने भोजन करते हुए भोजन की भरपेट बखान किया, मगर आप क्यों नहीं कुछ बोले ?" इस पर सुबुद्धि प्रधान ने कहा - "महाराजा ! जिस भोजन को बनाने में छहकाय के जीवों की हिंसा होती है । कहावत है : **'थाय छ कायनो कूटो, त्यारे बने एक रोटो'** एक सादी रोटी बनाने में भी षट्कायिक जीवों का कूटा (हिंसा) हो जाती है । उसे खाते हुए उसका बखाण कैसे किया जा सकता है ? फिर हे महाराजा ! चाहे जितने ऊँची जाति के सुगन्धित पकवान बनायें, पर वे इस पेट में पड़े, फिर वे शुभ पुद्गल अशुभ और दुर्गन्धित बन जाते हैं ।"

इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ का ऐसा स्वभाव है कि वे शुभ से अशुभ और अशुभ से शुभ बनते हैं, उनका क्या बखाण किया जाए ? किन्तु राजाजी को प्रधानजी की यह बात गले नहीं उतरी, उनके दिमाग में जँची नहीं । लेकिन सुबुद्धि प्रधान तो वास्तव में सुबुद्धि था । वह जैनधर्म के तत्त्वज्ञान का यथार्थ ज्ञाता था । इसलिए राजाजी से कहा - "राजन् ! समय आने पर मैं इस बात को सिद्ध करके बताऊँगा ।"

एक दफा राजा और प्रधान दोनों नगर के बाहर घूमने गए थे । रास्ते में एक गंदे पानी की खाई आई । उसमें से माथाफट जाय, ऐसी दुर्गन्ध आने लगी । राजा से यह बदबू सहन न हुई, इसलिए नाक के आगे कपड़े का डाट लगा लिया । मगर उस खाई की दुर्गन्ध बहुत दूर तक आ रही थी । बड़ी कठिनाई से उस रास्ते को पार किया । घर जाने के बाद सुबुद्धि प्रधान ने उस दुर्गन्धित खाई के पानी के १०० घड़े भराकर मंगाए । १०० घड़ों का पानी नीतरता, तब उसमें से नीचे जमा हुआ कचरा निकालकर १०० में से ५० घड़े पानी रखा । फिर ५० में से नीतार कर २५ घड़े पानी ले लिया जाता । उनमें से भी नीतारते-नीतारते ऊपर-ऊपर का पानी ले लेते । यों उन सौ घड़ों में से एक घड़ा पानी रखा । उस पानी को शुद्ध, शीतल और सुगन्धित बना लिया । एक दिन प्रधान ने राजाजी को अपने यहाँ भोजन का आमंत्रण दिया । राजा को विविध प्रकार के भोजन खिलाये और वही खाई का फिल्टर किया हुआ पानी पिलाया । पानी पीकर राजा ने पूछा - "प्रधानजी ! यह पानी आप किस कुंए या बावड़ी से लाये हैं ? यह तो अमृत-सा मीठा और ठंडा है । मैंने ऐसा पानी कभी पीया नहीं ।" प्रधानजी बोले - "साहब ! जिस खाई के पास से हम निकले थे, यह उसी दुर्गन्धित खाई का पानी है ।" राजा ने पूछा - "क्या यह वही पानी है ?" प्रधान ने कहा - "मैंने आपसे कहा था कि अशुभ में से शुभ और शुभ में से अशुभ पुद्गल बनते हैं । मैंने इस प्रयोग द्वारा अपनी बात प्रत्यक्ष सिद्ध करके बताई है ।" परन्तु राजा को यह बात मानने में नहीं आई । तब प्रधान ने राजा की नजर के समक्ष प्रयोग करके बता दिया । इससे राजा को प्रधान की बात पर श्रद्धा हो गई । सुबुद्धि प्रधान के सत्संग से राजा भी सुबुद्धिमान और जैनधर्मी बन गया ।

बन्धुओं ! इस प्रकार उक्त गरीब लड़के की विशाल उदार भावना देखकर लोभी स्टेशन मास्टर का हृदय पलट गया । अहो ! यह गरीब होते हुए भी (दिल का) कितना

"... उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्तानमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते ! महालयं सीहनिक्कीलियं तहेव जहा खुड्डागं नावरं चोत्तीसइमो निवत्तए एगाए परिवाडिए कालो एगेणं संवच्छरेणं छहिं मासेहिं अट्ठारसहियं अहोत्तेहियं समप्पेइ ।"

वहाँ जाकर स्थावर भगवन्तों को वन्दना-नमस्कार किया । वन्दना-नमस्कार करके उन्होंने विनयपूर्वक इस प्रकार कहा – "हे भगवन्तों ! हम महासिंह-निष्क्रीड़ित तप करना चाहते हैं ।" तत्पश्चात् स्थावर भगवन्त की आज्ञा से महाबलप्रमुख सातों अनगार महासिंह-निष्क्रीड़ित तप में प्रवृत्त हो गए ।

बन्धुओं ! इन सातों अनगारों ने पहले लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की आराधना पूर्ण की । इतना करके भी वे बैठे नहीं रहे । फिर उन्होंने महासिंह-निष्क्रीड़ित तप की आराधना शुरू की । इस तप की विधि भी लघुसिंह-निष्क्रीड़ित विधि की तरह ही होती है । परन्तु इस तप में इतनी विशेषता है कि इस तप की आराधना करनेवाला संयमी सर्वप्रथम एक उपवास (चतुर्थ भक्त) का तपश्चरण करता है । तदनन्तर अनुलोमगति से पहले कह गए, वैसे लघुसिंह-निष्क्रीड़ित तप की आराधना के क्रम की तरह तपश्चरण करता है, किन्तु नौ उपवास (बीस भक्त) के बदले सोलह उपवास (चतुस्त्रिंशतितम) तक तप करता है । तत्पश्चात् वहाँ से वापस पीछे लौटता है । पीछे लौटने का क्रम इस प्रकार है – जब वह १६ उपवास कर लेता है, तब प्रतिलोमगति से प्रत्यावृत्तिकाल में बीच में पन्द्रह उपवासरूप (बत्तीस भक्त) करता है । फिर १६ उपावासरूप चौतीस भक्त तप करता है । तत्पश्चात् चौदह उपवासरूप तीस भक्त तप करता है, तत्पश्चात् पन्द्रह उपवास करता है; इस प्रकार पूर्वोक्त क्रम से वह चतुर्थ भक्त (एक उपवास) तक तपश्चर्या करता है । इस प्रकार प्रथम-परिपाटी का तप करता है । महासिंह-निष्क्रीड़ित तप की एक परिपाटी में अनुलोम-प्रतिलोम की अपेक्षा से चतुर्थ, छट्ठ, अट्ठम वगैरह से लेकर चौदह उपवास तक सभी उपवास चार-चार होते हैं । अर्थात् – प्रथम ४ चतुर्थभक्त, ४ छट्ठ भक्त, ४ अट्ठम भक्त वगैरह चौदह उपवास (तीस भक्त) तक (प्रत्येक में ४-४ बार) जानना । पन्द्रह उपवास तीन बार और सोलह उपवास दो बार होता है । इस विधि के अनुसार यहाँ प्रत्येक परिपाटी में अनुलोम और प्रतिलोम विधि के अनुसार तपश्चर्या के सभी दिवसों की गणना करें तो ४९७ दिवस होते हैं । तथा पारणा के दिनों की संख्या ६१ होती है । इस प्रकार इस परिपाटी का काल १ वर्ष, ६ मास और १८ दिनों में पूर्ण होता है और इस महासिंह-निष्क्रीड़ित तप को पूर्णरूप से पूरे होने में ६ वर्ष, २ मास और १२ अहोरात्र जितना समय लगता है ।

उन सातों महान् अनगारों ने लघुसिंह-निष्क्रीड़ित और महासिंह-निष्क्रीड़ित दोनों तपश्चरणों की आराधना की । उनके पारणे रुखे-सूखे आहार से होते थे । फिर भी वे तप में इतने लीन रहते थे कि पारणा करना भी भूल जाते थे । जबकि आपलोग क्या भूल जाते हैं ? उपवास या पारणा ? उन सातों अनगारों ने ऐसी कठोर तपश्चर्या करके शरीर भी शुष्क-रूक्ष कर डाला । अब आगे वे क्या करेंगे, यह बात यथावसर कही जाएगी ।

खेलने से कितनी भयंकर हानि होती है, अधोगति और पतन होता है, इसे समझो ! जूआ, सट्टा, लौटरी, मटका आदि सब खेल इसी किस्म के हैं । जूआ खेलनेवाला अन्त में सातों कुव्यसनों का शिकार हो जाता है । फलतः ये व्यसन जीव को दुर्गति और अधोगति में पटकनेवाले हैं । जूआ खेलनेवाले को यहाँ सरकार पकड़ती है और परलोक में कर्म की सरकार पकड़ती है । अतः इसे समझो । धर्मराज युधिष्ठिर वैसे तो पवित्र पुरुष थे । वे जूआ खेलनेवाले नहीं थे । परन्तु शकुनि के कहने से दुर्योधन ने कपट-छल करके उन्हें जूआ खेलने में प्रवृत्त किया । धर्मराज ने अनिच्छा से भी जूआ खेला । इसके फलस्वरूप पाँचों पाण्डव, कुन्ती माता और सती द्रौपदी को वनवास के कष्ट सहने पड़े । तो जो रस (रुचि) पूर्वक हर्षित होकर जूआ खेलते हैं, उनकी क्या दुर्दशा होती है ? यह भी वर्तमान में देखते हैं । (पू. महासतीजी ने जुए के विषय में सजीव वर्णन किया था कि जूआ कितना हानिकारक है ? जूआ खेलनेवालों की कैसी दुर्दशा होती है ?'' जूआ खेलनेवाले की कैसी बुरी हालत होती है ? इस विषय में एक सच्ची घटना सुनाई थी, जिसे सुनकर सबकी आँखों में आंसू भी आए थे । पूज्य महासतीजी ने धूत के विरोध में जोरदार चेतावनी दी थी । जिससे व्याख्यान में बैठे हुए सभी भाई-बहनों ने खड़े होकर जूआ न खेलने की प्रतिज्ञा ली । इसके अतिरिक्त कृष्ण वासुदेव ने इस पृथ्वी पर जन्म लेकर कौन-कौन से महत्त्व के कार्य किये थे ? उनके जीवन में कैसे-कैसे गुण थे ? इस सम्बन्ध में सुन्दर और विशद वर्णन किया था । - सं.)

व्याख्यान - [illegible]

श्रावण वदी १०, गुरुवार — ता. १९-८-७६

समाधिमरण का पुरुषार्थ जब जगा

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, अनन्तउपकारी, विश्ववन्दनीय, अशरण के शरण जिनेश्वर भगवन्तों ने संसार के वैभव और भोगविलास के सुख प्राप्त करने के लिए मिथ्या प्रयत्न करनेवाले और अनादिकाल से अपनी भूल के कारण भटकते हुए जीवात्माओं को करुणाबुद्धि से सिद्धान्त के वचनरूपी अमृत का सिंचन करते हुए कहा - ''हे जीवात्मा ! तुझे पूर्वकृत पुण्योदय से मानवभव प्राप्त हुआ है । वह विषयभोगों के लिए मिथ्या प्रयत्न करने के लिए नहीं, परन्तु आत्मा का श्रेय साधने के लिए मिला है ।'' स्व-रूप की समझ के अभाव में आत्मा अनादिकाल से गाढ़ अज्ञाननिद्रा में **सोया** हुआ है । उसे जगाते हुए कहते हैं कि जबतक मृत्युरूपी कुल्हाड़ी के प्रहार तेरे जी**वनरूपी**

लगी, पसीने से तरबतर हो गई । किसी ने उससे कहा - "बेबी ! तू बहुत थक गई है। इस लड़के को नीचे उतार दे ।" यह सुनकर वह लड़की बोली - "नहीं, मैं थकी नहीं हूँ" "थकने पर भी तुझे थकान क्यों नहीं महसूस हुई ?" वह बोली - "मेरा प्यारा भैया है न ? इसे उठाकर ले जाने में क्या बोझ है, कैसी थकान है ?" इसी प्रकार यदि पाँच सेर चाँदी लेकर चार मंजिल चढ़ो तो क्या तुम्हें थकान लगेगी ? कोई तुमसे कहे कि लाओ, मुझे दे दो, मैं इसे ले चलता हूँ, तो उस समय तुम इन्कार कर दोगे ! ऐसे कई वस्तुओं के बोझ तो जीव ने बहुत वार उठाए । परन्तु कभी ऐसा विचार होता है कि दशवाँ व्रत (दयाव्रत) अंगीकार करके घर-घर में गौचरी करूँ ? गौचरी करो तो तुम्हें पता लगे कि साधु-मार्ग कितना कठिन है ? साधुवर्ग के गौचरी में भी कितना उपयोग और विवेक रखना पड़ता है ? 'दशवैकालिक सूत्र' में कहा है -

"अकप्पियं न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ।"

"साधु अकल्पनीय सदोष आहार न ले, अपितु निर्दोष और कल्पनीय आहार हो, उसे ग्रहण करे ।" उसमें भी जैसे-तैसे आहारादि न ले, किन्तु खूब उपयोग रखे । गृहस्थ को साधु को आहारादि दान देने में लाभ होता है, वह भी उपयोग रखे तो दोनों (साधु और गृहस्थ) कल्याण के भागी बने । साधु आहार किसलिए करता है ? यह जानते हो न ? साधु शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए आहार नहीं करता, नहीं जीभ के स्वाद के लिए करता है । 'उत्तराध्ययन सूत्र' के ३५वें अध्ययन (गा.-१७) में भगवान् ने कहा -

"अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए ।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥"

लोलुपता-रहित, रस-शुद्धि-रहित रसेन्दिय का दमनकर्ता और भोजन में मूर्च्छारहित होकर मुनि आहार करे । ऐसे महामुनि स्वाद के लिए आहार न करे, अपितु संयमयात्रा के निर्वाह के लिए आहार करे ।

संयम का निर्वाह करने के लिए आहार करते हुए भी साधु के मन में पश्चात्ताप होता है कि 'अहो ! प्रभो ! आत्मा का स्वभाव तो अनाहार है । अनाहारक दशा प्राप्त करने के लिए तप करना चाहिए । ऐसे महान् तपस्वी आत्मसमाधि में रहकर तप करते हैं । मैं ऐसा तप नहीं कर सकता । मैं ऐसा तप कब करूँगा ? अनाहारक दशा कब प्रगट करूँगा ? ऐसा विचार करे । अगर इस शरीर को टिकाने के लिए आहार करना पड़ता है, कम से कम द्रव्य से चलाऊँ । ऐसा साधु आहार करता हुआ भी तपस्वी है । तुम्हारा वजन बढ़ जाता है, तब तुम डोक्टर के पास जाते हो । डोक्टर कहता है - "बजन घटाने के लिए डायटिंग करो, रूखे खाखरे और बाफा हुआ साग खाओ । चाहे जितने भूख लगे तो भी दो से उपर तीसरा खाखरा खाना नहीं ।" बोलो, यह सब (डोक्टर के निर्देशानुसार) करते हो न ? ऐसे समय में अगर स्वेच्छा से स्वाद जीतो, भूख सहन करो, रूखा खाओ तो आयम्बिल तप का लाभ मिलेगा क्या ? नहीं । अब तुम्हें समझ में आता है कि भगवान् ने कैसा सुन्दर मार्ग बताया है ? अतः छोटा-बड़ा जो भी तप हो सके,

ही अनगारों ने जीवन के प्रति ममता का त्याग कर दिया । जैसे कपड़ा जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर मनुष्य उस कपड़े को शरीर पर से उतारकर नया कपड़ा पहनता है, वैसे ही यह शरीर अब जीर्ण-शीर्ण कपड़े की तरह हो गया है, अतः अब हमें शरीर के बन्धन से मुक्ति पाएँ । उन अनगारों को अब बन्धन खटकने लगा । जिसे बन्धन खटकता है, वह उसमें से छटकता है । गाय, भैंस आदि जानवरों को भी बन्धन खटकता है, तब वे बन्धन तोड़कर मुक्त होना चाहते हैं । बोलो, तुम्हें यह (कर्मो का) बन्धन कभी खटका है ? अगर खटकेगा तो उसके बन्धन से छुड़ानेवाले मिल जाएँगे । परन्तु तुम्हें तो बन्धन ही खटकता नहीं है । फिर छूटने की तो बात ही कहाँ ?

इस समय 'ज्ञाताकर्मकथांग सूत्र' में मुख्यतया तप की बात चल रही थी और तप-साधना के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है - वह पर्युषण पर्व भी निकट आ रहा है । इसलिए उपाश्रय में तपोमय वातावरण दिखाई देता है । ऐसे तपस्वियों को तप करते देखकर कभी तपस्या करने का मन होता है ? (श्रोताओं में से आवाज - मन तो होता है, पर हो नहीं सकता)

एकोऽहम सहायोऽहं, कृशोऽहम परिच्छिद: ।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते ।।

मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ, प्रजा (परिवार) रहित हूँ, ऐसी निर्बल चिन्ता स्वप्न में भी सिंह को नहीं होती ।

इस श्लोक में क्या कहा है ? आप लोग समझ गए न ? जो सिंह-समान शूरवीर है, उसे ऐसी चिन्ता नहीं होती कि मुझे मासखमण करना है, पर मुझसे नहीं हो सकता । जिस आत्मा में शूरवीरता जगी है, उसे कौन रोकनेवाला है ? परन्तु जिसे नहीं करना है, किन्तु करने का डोल करता है, वह नहीं करने के लिए कोई न कोई बहाना ढूंढता है । ताकि कोई मुझे तप न करने का कहे, इसकी राह देखते रहते हैं । एक बनी हुई घटना सुनाती हूँ ।

पर्युषणपर्व के दिन आए । गाँव में तपोमय वातावरण छाया हुआ था । किसी ज्ञानी संत का चातुर्मास था । इसलिए जहाँ देखो वहीं तपश्चर्या ही तपश्चर्या दिखाई देती हैं । आसपास में सर्वत्र तप की ही बातें चलती है और तप के ही गीत गाये जाते हैं । यह देखकर एक सास के मन में आया कि ये सब कितने भाग्यशाली हैं कि किसी के पुत्र ने तो किसी की पुत्री, पुत्रवधू अथवा सासू आदि सबने तपश्चर्या करने की ठान ली है, किन्तु मैं कैसी अभागी हूँ कि मेरे घर में कोई तप नहीं करता, मैं भी नहीं कर सकती ? सासु ने एकदिन अपनी बहू से कहा - "बेटी ! संघ में कोई घर खाली नहीं है । अपना घर खाली है । तो तुमसे हो सके तो अठाई करो । मुझे तो बहुत उमंग है । बोलो, तुम्हें करनी है अट्ठाई ?" यह सुनकर बहू बोली - "हाँ, माँ, मैं करूँगी अट्ठाई ।" इस पर सासू बहुत हर्षित हो गई । उसने हर्षावेश में एक खोपरे का कद्दूकश किया । उसमें

तुम एक बात अवश्य याद रखो कि 'अनन्त भवों के बंधे हुए कर्मों को तोड़ने के लिए एक क्षणभर भी प्रमाद करके नहीं बैठना है।' जिसे कर्म के टेकरे तोड़ने की तीव्र जिज्ञासा जगी है, वह एक मिनट भी आस्रव में नहीं जाने देता। आस्रव के सम्पूर्ण द्वार तो दीक्षा लेने पर बंद होते हैं। किन्तु संसारी (गृहस्थ) जीव को ऐसा लगता है कि मैं दीक्षा ले सकूं, ऐसी स्थिति नहीं है। किन्तु मुझे शीघ्र ही कर्मक्षय करना है, तो जितना समय मिले, उतना समय भी वह आस्रव में न जाने दे। उसे फिर संसार के वैभव का मोह नहीं रहे, वह एक ही विचार करता है - यह धन-सम्पत्ति, घरबार, या कुटुम्ब कबीला (पत्नी-पुत्रादि) कोई भी मेरे नहीं हैं। फिर इन पर मोह किसलिए रखूं ? एक कवि ने भी कहा है -

दोलत दगो देशे नहि, एवो तने विश्वास छे,
साथी दगो देशे नहि, एवो तने विश्वास छे,
काया दगो देशे नहि, एवो तने विश्वास छे,
जेनो तने विश्वास छे, क्या लगी, एनो साथ छे ?

तू जिस लक्ष्मी को पाकर अपनी मान रहा है, तथा उसके पीछे तू पागल बना हुआ है, उसके लिए पाप कर रहा है, तो क्या वह एक दिन तुझे दगा नहीं देगी, तुझे रुलाएगी नहीं, इसकी क्या प्रतीति है ? और तुझे तेरे साथी, स्वजन और इससे आगे बढ़कर कहूँ तो तेरी यह प्यारी काया क्या तुझे दगा नहीं देगी, इसका पूरा विश्वास है तुझे ! लक्ष्मी के लिए एक कवि ने कहा है -

हे लक्ष्मी ! जन तेरे हित, सदा कठिन श्रम करता है,
तेरा संचय करके तुझको, बड़े यत्न से रखता है।
चोरों से रक्षण करता है, लेता सुख की नींद नहीं,
तू न तनिक भी स्थिर रहती पर, निर्दय ! उसके यहाँ कहीं ॥

हे लक्ष्मी ! तेरे लिए मानव कितना परिश्रम करता है ? वह भूख-प्यास भी भूल जाता है, निद्रा त्यागकर, रात्रिजागरण करता है। गर्मियों में गर्मी और शर्दियों में ठंड सहन करता है। जंगल-जंगल भटकता है और मान-अपमान भी बहुत सहन करता है। तेरी रक्षा करने के लिए मनुष्य सुख से सो भी नहीं सकता। फिर भी तू कितनी निर्दय है कि समय आने पर तू उसे छोड़कर चली जाती है ? अरी लक्ष्मी ! तेरी कैसी बलिहारी है कि तेरे लिए धनवान् के चरणों में पड़कर गिड़गिड़ाना पड़ता है कि 'मुझे नौकरी दो।' आज मनुष्य चाहे जितना होशियार हो, भले ही डबल ग्रेज्युएट हो, फिर भी अगर उसे किसी की सिफारीश हो तो शीघ्र सर्विस मिल जाती है। इसके विपरीत जिसका कोई हाथ पकड़नेवाला न हो, उसे नौकरी के लिए भी व्यर्थ प्रयास होता है। ऐसी है आज के मानव की जिंदगी।

हटेगा। इसके अतिरिक्त जो ऐसा विचार करता है कि मैं युद्ध में तो जा रहा हूँ, वहाँ भाले लगेंगे, सामने से गोलियाँ छूटेंगी ? वे मेरे से कैसे सहन होगी ! ऐसा विचार करता है, वह रणसंग्राम में टिक नहीं सकता।

एक राजपूत युवक नई-नई ही शादी करके आया। दरवाजे पर उसकी माँ उसका स्वागत कर रही थी, इसी बीच रणभेरी बजी। भेरी की आवाज सुनते ही क्षत्रियपुत्र युद्ध में गया। वहाँ जाने के बाद उसे अपनी नवपरिणीत पत्नी का प्यार याद आते ही वह वापस लौटा। पत्नी ने यह देखा तो उसे उपालम्भ दिया कि "आप रणभूमि से वापस क्यों लौट आए ?" तब उसने कहा - "तेरे रूप को नीहारने के लिए आया हूँ।" ये शब्द सुनते ही क्षत्रियाणी का खून उबल उठा। उसने पति से कह दिया - "स्वामीनाथ ! ये शब्द आप को शोभा नहीं देते। तुम्हें इस चर्ममय शरीर के प्रति मोह जगा है ? परन्तु सोचिए कि इसमें क्या है ? -

तमने अभिमान छे, आ रूपनुं ने जुवानीतणुं।
चमकशे क्यां सुधी, आ गालनुं गुलाबीपणुं॥

चामडीना तेजने झंखाता वार नहीं, जोम भर्या देहने नखांतां वार नहीं,
इन्द्रियोना नूरने हणातां वार नहीं, आशा भरी आंखडी मींचाता वार नहि,
संध्यातणा रंगोने विलातां वार नहि॥

"स्वामीनाथ ! आपको मेरे इस रूप का मोह है। मृगनयनी जैसी इन आँखों का मोह है। प्रवाल (मूंगे) जैसे होठ और गुलाबी गाल की लालिमा, देखने के लिए आप युद्ध में गये हुए वापस लोटे हैं। परन्तु सोचिए आप कि यह जवानी और यह रूप कब विलुप्त हो जाएगा ? ये गुलाबीगाल कब मुर्झा जाएँगे, इसका कोई पता नहीं है। इस शरीर में रक्त और मांस भरे हैं, उनपर यह चमड़ी का चमकता कवर पड़ा हुआ है। शरीर में रोग आएगा, तब इसका तेज नष्ट हो जाएगा, इन्द्रियों का नूर पीला पड़ जाएगा और बलिष्ठ यह शरीर धड़ाम से गिर जाएगा। आँखें कब मूंद जाएँगी, इसका पता नहीं है। इतना होने पर भी आपको क्या मोह लगा है कि कलाई पर मींढल बंधा होने के बावजूद शूरवीर होकर रणभूमि में गये हुए वापस लौट आए ?" इस पर पति ने कहा - "तेरी इन जादुई आँखों को मैं भूल न सका।" ये कायरता के उद्गार सुनते ही उस क्षत्रियाणी ने भाले की नोक से अपनी आँखें निकाल कर दे दीं और प्राणत्याग दिये। इस प्रकार भान भूले हुए पति की शान ठिकाने आ आई। यह देख वह क्षत्रिय-पुत्र तुरंत रणभूमि में चला गया।

बन्धुओं ! यह तो क्षत्रिय था। भगवान् कहते हैं - "अपना आत्मा भी क्षत्रिय का भी क्षत्रिय है। इसमें अनन्तशक्ति रही हुई है। यह रंग-राग में पड़कर अपनी शक्ति का भान भूल जाता है। इस भूले हुए आत्मा को जगाने के लिए पर्युषणपर्व आता है। अब तो केवल दो दिन की देर है। कर्मशत्रुओं से जूझने के लिए अपनी आत्मा के क्षत्रियत्व

कहाँ फुरसत है ? उनका तो एक ही काम है - येनकेन प्रकारेण धन का संचय करना । परन्तु ज्ञानी कहते हैं - **'लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं ते तो कहो !'** पाप बढ़ाया और कुछ बढ़ा ? जैसे-जैसे धन बढ़ा वैसे-वैसे मोह बढ़ा ।

पहले के लोग दो रूम में सुख से रहते थे । आज पैसा बढ़ा, इस कारण फ्लेट में स्टोररूम, ड्राइंगरूम, बेडरूम, बाथरूम और उनके योग्य शोभाजनक फर्निचर, सोफा-सेट, गर्मी में एयर-कंडिशन, शर्दी में हीटर आदि चाहिए । चमड़े के मुलायम बूट और पर्स चाहिए । तुम्हें पता है, ये तुम्हारे मुलायम पर्स और बूट कैसे बनते हैं ? गर्भवती गायों और भैंसों का किस तरह से वध होता है ? उनके शरीर पर अत्यन्त तेज गर्म पानी छींटा जाता है । फिर उसे खूब मारापीटा जाता है । फलस्वरूप दोनों जीव मर जाते हैं । उनकी चमड़ी उधेड़ी जाती है, उससे मुलायम बूट और पर्स बनते हैं, कमर के पट्टे बनते हैं । दो-दो पंचेन्द्रिय जीवों का वध हो जाता है । अहिंसा का स्वरूप और प्रयोग के विषय में समझने के बाद प्राणी हिंसाजन्य दवा या किसी भी वस्तु का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए । सभी जीवों को जीना अच्छा लगता है ।

एक जमाना ऐसा था कि लोग चीटियों को जीवित रखने के लिए उनके दर के आगे आटा डालते थे । जबकि आज तो चींटी, मांकण आदि जीवों को मारने के लिए जहरीला पाउडर डाला जाता है । आज मनुष्य के हृदय से दया निकल गई है । किन्तु याद रखना, जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे उसका फल अवश्यमेव भोगना पड़ेगा ।

उक्त निर्धन लड़के के अशुभ कर्म का उदय है, जिससे कहीं नौकरी नहीं मिलती । पाँच दिनों से खाने का एक दाना भी पेट में नहीं पड़ा । उधर नौकरी के लिए भी कहीं सफलता नहीं मिली । घर में कुछ भी नहीं है, फिर भी भीख मांगनी नहीं है । माता-पुत्र दोनों भूख का दुःख सहन कर रहे हैं । ऐसे में एक दिन अखबार में जाहिर खबर पढ़ी - स्टेशन-मास्टर की जरूरत है । इस गरीब की झोंपड़ी स्टेशन के पास थी । इसलिए सभी इन माता-पुत्र को पहचानते थे । इस कारण लड़के ने सोचा - 'मैं वहाँ जाऊँ तो मुझे जरूर नौकरी मिल जाएगी ।' इसी आशा से वह दौड़कर पहुँचा रेल्वे अधिकारी के पास । अधिकारी से मिलकर नौकरी के विषय में बात की तो अधिकारी ने कहा - "बंद लिफाफे में ५०० दे तो तुरंत नौकरी दिला दूं ।" यह सुनकर गरीब लड़के के पैर कांप उठे । एक तो आठ दिनों से भूखा, उस पर इतने रुपये लाने कहाँ से ? इस विचार में वह निराशा के गर्त में गिर पड़ा ।

आज रिश्वतखोरी कितनी बढ़ गई है ? व्यापार-धंधे के लिए तो धन चाहिए, किन्तु नौकरी पाने के लिए भी धन चाहिए । अधिकारियों को गुप्तरूप से रिश्वत चाहिए । जहाँ-तहाँ रिश्वत का बाजार गर्म हो, वहाँ मनुष्य कहाँ से कैसे ऊँचा उठ सकता है ? लड़का निराश होकर घर आया । उसने अपनी माता से सारी बात कही । फिर कहा - "माँ !

जीवन पर्यन्त रहना होता है । फिर उसे हिलना-डुलना, चलना-फिरना या बोलना नहीं होता । जिस स्थिति में हो, उसी स्थिति में जीवन के अन्त तक रहना होता है । इसलिए पादपोपगमन संथारा बहुत ही कठिन है । हम तो खा-पीकर भी करवट बदले बिना लम्बे समय तक सो नहीं सकते । सोते-सोते भी कितनी ही बार करवट बदलनी पड़ती है । जबकि इन मुनिवरों की काया तपश्चर्या की थी । शरीर में हड्डियाँ खड़खड़ करती थीं । फिर भी ऐसा कठिन पादपोपगमन संथारा किया । संथारा करने के बाद मन में किसी प्रकार का विकल्प या विचार नहीं किया । बस, एकमात्र वीतराग-परमात्मा के स्मरण में लीन हो गए ।

महाबल - प्रमुख सात अनगारों का संथारा दो महीने चला । अन्त में, ८४ लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण करके अन्त में शरीर छोड़कर वे पाँच अनुत्तर विमान में तीसरे जयन्त नामक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए ।

बन्धुओं ! उनके आयुष्य कितने लम्बे थे ? ८४ लाख पूर्व: यानी कितना लम्बा काल? ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने पर उसका जो अंक आए, वह एक पूर्व का काल कहलाता है । ऐसे ८४ लाख पूर्व का उनका आयुष्य था । उसे पूर्ण करके वे जयन्त विमान में गए ।

"तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ढिई, तत्थणं महब्बल-वज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई ।।"

इस जयंत विमान में कतिपय देवों की स्थिति ३२ सागरोपम की होती है । इनमें महाबल अनगार के सिवाय बाकी के ६ अणगारों की स्थिति जयन्त विमान में कुछ कम ३२ सागरोपम की थी और महाबल अनगार की स्थिति पूरी ३२ सागरोपम की थी ।

मानवभव प्राप्त करके वे सातों ही अनगार आत्मा की अपूर्व साधना सिद्ध कर गए । संसार में साथ में रहे, दीक्षा भी साथ में ली और दीक्षापर्याय में भी साथ रहकर तपश्चर्या आदि क्रियाएँ साथ में की । अन्त में, संथारा साथ में किया और एक ही (जयंत) विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए । सम्यक्त्वी देव देवलोक की ऋद्धि में आसक्त नहीं होते । परन्तु नय, निक्षेप, नवतत्त्व तथा छहद्रव्यों का चिन्तन-मनन करते हैं । अब ये सातों ही देव जयन्त विमान का आयुष्य पूर्ण करके कहाँ - कहाँ उत्पन्न होंगे ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

कृष्ण वासुदेव ने रुक्मिणी को हिम्मत दी, धैर्य बंधाया कि चाहे जिस तरह से मैं प्रद्युम्नकुमार का पता लगाऊँगा । परन्तु खोज में लगे हुए सभी सुभट निराश हो कर वापस लौटे । कुमार का कहीं भी पता नहीं लगा । इस कारण कृष्ण वासुदेव सब तरह से बेहिम्मत हो गए । सोचा - 'अब मुझे क्या करना चाहिए ?' मुझे एक ओर तो पुत्रविरह

रोने लगा। अफसोस करने लगा – ''अरर ! मैं कैसा पापी हूँ ? मेरी माता ने अनेक दुःख सहकर मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया। हाथचक्की चलाकर, आटा पीसकर कष्टपूर्ण कमाई करके मुझे पढ़ाया। मैं अभागा उसे सुख नहीं दे सका। जिंदगीभर वह मेरी चिन्ता करती रही। अरर ! मुझे नौकरी दिलाने के लिए आजीजी करती हुई मेरी माँ ने अपने प्राण खोए।'' इस प्रकार यह लड़का माँ के वियोग में घोर बिलाप करने लगा। दूसरी ओर उक्त अधिकारी का कोर्ट में केस चला और अन्त में न्यायाधीश ने उक्त अधिकारी को फांसी की सजा सुनाई।

वह लड़का अशुभ कर्म के उदय से गरीब था, किन्तु उसमें मानवता का दीपक बुझा नहीं था। उसकी माता ने उसमें धर्म-संस्कारों का सिंचन किया था। अतः उसने सोचा – 'इस अधिकारी को फांसी की सजा हो जाने से माता मुझे वापस मिलनेवाली नहीं है। जो होना था, सो हो गया।' उसने हाईकोर्ट में न्यायाधीश के समक्ष अपना बयान दिया – ''साहब ! यह फैसला आप वापस खींच लें। मेरी माता तो लगभग एक महीने से बीमार थी। पिछले आठ-दस दिनों से तो उसने कुछ खाया नहीं था। अतः भूख और बीमारी के कारण चक्कर आने से वह गिर गई थी। उसके मस्तक में पत्थर की चोट लगी, इस कारण उसकी मृत्यु हुई है। इन साहब (अधिकारी) का अपराध बिलकुल नहीं है। यह साहब तो हमारे बहुत परिचित और बहुत भले हैं। यह मेरी माता की हत्या करें, ऐसे नहीं हैं।'' इस प्रकार का बयान देने से न्यायाधीश ने अधिकारी की फांसी की सजा रद्द कर दी, उन्हें निर्दोष छोड़ दिया गया। इस लड़के की उदारता देखकर उक्त अधिकारी का हृदय-परिवर्तन हो गया। उसे इस गरीब लड़के के प्रति सम्मान की भावना बढ़ी।

बन्धुओं ! आज उपकार के बदले उपकार करनेवाले तो अनेक मिल जाते हैं, किन्तु अपकार के बदले में उपकार करनेवाले विरले ही होते हैं। इस लड़के ने अपकार के बदले में अधिकारी पर उपकार किया। अतः अधिकारी की भी आँख खुल गई। उसके दिल में यह बात भलीभांति बस गई कि 'यह लड़का सामान्य नर नहीं, नारायण है। इसने ऐसा बयान न दिया होता तो मैं आज खत्म हो गया होता। मेरे पीछे मेरी पत्नी और बच्चों का क्या हाल होता ? इस लड़के की उदारता के कारण मैं बच गया।' यों सोचकर वह अधिकारी उस लड़के के चरणों में गिर पड़ा और उसे नौकरी दिला दी। इस संस्कारी लड़के के साथ रहकर वह अधिकारी भी संस्कारी और नम्र बन गया। मनुष्य को अच्छा सत्संग मिले तो उसका जीवन सुधर जाता है। 'ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र' में इस सम्बन्ध में एक सुन्दर उदाहरण अंकित है –

एक बार महाराजा ने सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन बनवाकर प्रधान आदि राज्य के समस्त अधिकारियों को आमंत्रण दिया। सभी भोजन करने बैठे। सभी भोजन की प्रशंसा करते-करते खाने लगे, किन्तु प्रधानजी चुपचाप भोजन कर रहे थे। राजा ने मन में सोचा – 'अभी प्रधानजी भोजन की प्रशंसा करेंगे।' किन्तु प्रधानजी तो भोजन करके

जीवन पर्यन्त रहना होता है । फिर उसे हिलना-डुलना, चलना-फिरना या बोलना नहीं होता । जिस स्थिति में हो, उसी स्थिति में जीवन के अन्त तक रहना होता है । इसलिए पादपोपगमन संथारा बहुत ही कठिन है । हम तो खा-पीकर भी करवट बदले बिना लम्बे समय तक सो नहीं सकते । सोते-सोते भी कितनी ही बार करवट बदलनी पड़ती है । जबकि इन मुनिवरों की काया तपश्चर्या की थी । शरीर में हड्डियाँ खड़खड़ करती थीं । फिर भी ऐसा कठिन पादपोपगमन संथारा किया । संथारा करने के बाद मन में किसी प्रकार का विकल्प या विचार नहीं किया । बस, एकमात्र वीतराग-परमात्मा के स्मरण में लीन हो गए ।

महाबल - प्रमुख सात अनगारों का संथारा दो महीने चला । अन्त में, ८४ लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण करके अन्त में शरीर छोड़कर वे पाँच अनुत्तर विमान में तीसरे जयन्त नामक विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए ।

बन्धुओं ! उनके आयुष्य कितने लम्बे थे ? ८४ लाख पूर्वः यानी कितना लम्बा काल? ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने पर उसका जो अंक आए, वह एक पूर्व का काल कहलाता है । ऐसे ८४ लाख पूर्व का उनका आयुष्य था । उसे पूर्ण करके वे जयन्त विमान में गए ।

"तत्थणं अत्थेगइयाणं देवाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ढिई, तत्थणं महब्बल-वज्जाणं छण्हं देवाणं देसूणाइं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई ॥"

इस जयंत विमान में कतिपय देवों की स्थिति ३२ सागरोपम की होती है । इनमें महाबल अनगार के सिवाय बाकी के ६ अणगारों की स्थिति जयन्त विमान में कुछ कम ३२ सागरोपम की थी और महाबल अनगार की स्थिति पूरी ३२ सागरोपम की थी ।

मानवभव प्राप्त करके वे सातों ही अनगार आत्मा की अपूर्व साधना सिद्ध कर गए । संसार में साथ में रहे, दीक्षा भी साथ में ली और दीक्षापर्याय में भी साथ रहकर तपश्चर्या आदि क्रियाएँ साथ में की । अन्त में, संथारा साथ में किया और एक ही (जयंत) विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए । सम्यक्त्वी देव देवलोक की ऋद्धि में आसक्त नहीं होते । परन्तु नय, निक्षेप, नवतत्त्व तथा छहद्रव्यों का चिन्तन-मनन करते हैं । अब ये सातों ही देव जयन्त विमान का आयुष्य पूर्ण करके कहाँ - कहाँ उत्पन्न होंगे ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

कृष्ण वासुदेव ने रुक्मिणी को हिम्मत दी, धैर्य बंधाया कि चाहे जिस तरह से मैं प्रद्युम्नकुमार का पता लगाऊँगा । परन्तु खोज में लगे हुए सभी सुभट निराश हो कर वापस लौटे । कुमार का कहीं भी पता नहीं लगा । इस कारण कृष्ण वासुदेव सब तरह से बेहिम्मत हो गए । सोचा - 'अब मुझे क्या करना चाहिए ?' मुझे एक ओर तो पुत्रविरह

अमीर है ? कैसी इसकी उत्तम खानदानी है ? मैंने तो इसकी माता को धक्का दिया, जिससे वह मर गई, फिर भी मुझे बचाने के लिए इसने कैसा सुन्दर बयान दिया ? यह अधिकारी गरीब युवक के चरणों में गिर पड़ा। उसके मन-मस्तिष्क में यह बात ठस गई कि हे जीव ! जिस दौलत के पीछे पागल बनकर तू ऐसे षड्यंत्र करता है, वह दौलत तुझे दगा नहीं देगी, क्या ऐसा तुझे पक्का भरोसा है ? और जिन पुत्र परिवार, पत्नी और मित्रों को तू 'मेरे-मेरे' कहता है, क्या वे सदा तेरे रहेंगे, इसकी तुझे प्रतीति है क्या ? और इस काया की मोह-माया में पड़कर काले कर्म करता है, परन्तु यह काया कबतक टिकनेवाली है ? अरे ! सगे-सम्बन्धियों का सम्बन्ध भी कहाँ तक रहेगा ? समझ लेना, संसार में स्वार्थ के बिना कोई किसी के साथ प्रीति नहीं करता।" अधिकारी को जब यह बात समझ में आ गई, तब उस लड़के को उसने स्टेशन-मास्टर की नौकरी दिला दी। वह लड़का सब प्रकार से सुखी हो गया। परन्तु अपनी माता के वियोग का घाव अभी तक नहीं भरा। उसका अन्तर रुदन करता रहता है। "भगवान् ! जिस माता ने अनेक कष्ट सहकर मुझे पढ़ाया-लिखाया, उसकी मैं सेवा न कर सका। अतः वह अपनी माता जैसी जिस-जिस दुःखी माता को देखता, वहाँ दौड़ जाता और अपने से जितनी हो सकती, उतनी सेवा करता था।

आज जन्माष्टमी का पवित्र दिवस है। कृष्ण वासुदेव ने भारतभूमि में जन्म लेकर कैसी धर्म-दलाली की थी ? यह बात आप सब जानते हैं। इस पृथ्वी पर अनेक पुरुषों ने जन्म लिया है। कृष्ण और कंस, महावीर और मंखलीपुत्र, राम और रावण, ये सब एक-एक से विरुद्ध थे। इनमें से कृष्ण, महावीर और राम आदि पुरुषों ने सत्कर्म करके अपना नाम अमर किया, जबकि कंस, रावण आदि ने अपने नाम को कलंकित किया। यह सब आप भलीभांति जानते हैं। ये महान् पुरुष इस पवित्र भारतभूमि में जन्मे थे और हम सब भी इस भारतभूमि में जन्मे हैं। अतः अब आपको भी अपने नाम को इन महापुरुषों की तरह उज्ज्वल करना है न ?

अधिकांश लोगों ने इस जन्माष्टमी के पवित्र दिवस को धूताष्टमी बना डाली है। भाई लोग तो जूआ खेलते हैं, साथी ही इस मुंबई में अच्छे-अच्छे कुटुम्ब की बहनें भी खेलती हैं। यह सुनकर मुझे विचार आता है कि यह क्या हो रहा है ? जूआ तो एक प्रकार का कुव्यसन है। सात कुव्यसन और उनमें फंसनेवालों की अधोगति भी एक श्लोक द्वारा बताई गई है –

धूते च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चौर्यं परदार-सेवा।
एतानि सप्त-व्यसनानि लोके, घोरातिघोरे नरके पतन्ति॥

इसका भावार्थ यह है कि जूआ, मांसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, शिकार और चोरी, ये सप्त कुव्यसन लोक में भयंकर हैं, ये घोरातिघोर नरक में मनुष्य को गिरानेवाले हैं। सात व्यसनों में धूत अर्थात् जुए का सबसे पहला नंबर है। इस जुए को

अवश्य कहनी चाहिए ।' यों विचार कर श्रीकृष्ण ने कहा - "ऋषिवर ! रुक्मिणी की कुक्षि से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र का किसी देव या दानव ने अपहरण किया है । इस कारण से मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है, दुःखी है । मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? यह मुझे कुछ भी सूझता नहीं है ।"

नारदजी द्वारा कृष्ण वासुदेव को दिया हुआ आश्वासन : श्रीकृष्ण के दुःखमय वचन सुनकर नारदजी को अत्यन्त दुःख हुआ । वह गम्भीरतापूर्वक बोले - "इस संसार में जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग निश्चित है । जहाँ जन्म है, वहाँ मृत्यु अवश्यंभावी है । स्नेह से पीड़ा उत्पन्न होती है । स्नेहपाश में जकड़े हुए योगीजन भी निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकते । किसके माता-पिता ? किसके पुत्र - परिवार ? किसके मदोन्मत्त हाथी ? किसके फुर्तीले घोड़े ? किसके पैदल सैन्य ? किसका धन ? आँखें बंद होते ही सारा ही खेल खत्म हो जाता है । यह मेरा, यह तेरा, यह सब भ्रमजाल है । अतः आप शोक रहित होकर प्रजा का पालन करिए । हे त्रिखण्ड भरतेश्वर ! जबतक आप शोक का त्याग नहीं करेंगे, तबतक मैं भी आपके दुःख से दुःखी रहूँगा । आप अपनी चिन्ता मुझे सौंप दो । हे कृष्ण मैं भी आपके पुत्र की खोज करूँगा । आपके लिए मैं सवकुछ करने को तैयार हूँ ।"

इस प्रकार नारदजी के कहने से श्रीकृष्णजी को शान्ति प्राप्त हुई । उनमें हिम्मत आ गई । उनका दिल जरा हलका हुआ । अर्थात् - वह शोक रहित हुए । तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने नारदजी से कहा - "मैं तो किसी भी तरह से शान्ति रख सकता हूँ । रुक्मिणी का मन किसी भी रूप में शान्ति की ओर नहीं मुड़ रहा है । अतः आप उसके महल में जाकर उस दुःखित बनी हुई पुत्रवियोगी माता को सान्त्वना देकर समझाइए ।" श्रीकृष्ण के वचन सुनकर नारदजी रुक्मिणी के महल में गए । उन्हें आते देखकर रुक्मिणी खड़ी हुई । उन्हें विनयपूर्वक आसन देकर विठाये । ऐसे दुःख के समय में भी ऐसा विनयभाव देखकर नारदजी का मन अतीव प्रसन्न हुआ । नारदजी को सम्मान बहुत चाहिए था । अगर कोई उन्हें सम्मान न दे तो समझ लो, उसके दिन फिर गए । कृष्णजी के साथ रुक्मिणी का विवाह करानेवाले कौन हैं ? नारदजी । एक वार नारदजी सत्यभामा के महल में गए । तब उसने नारदजी को देखकर मुँह मचकोड़ा और उन्हें सम्मान नहीं किया । इस कारण उसका अभिमान उतारने के लिए नारदजी ने कृष्ण के समक्ष रुक्मिणी की प्रशंसा की । उसका चित्र बताकर श्रीकृष्ण का मन उसके प्रति आकृष्ट कराया और फिर श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी के साथ पाणिग्रहण किया । यह किस्सा तो लम्बा है । सार वात यह है कि नारदजी का सत्यभामा द्वारा अपमान ही श्रीकृष्णजी के साथ रुक्मिणी के विवाह का कारण बना ।

नारदजी रुक्मिणी के महल में : नारदजी ने रुक्मिणी के पास आकर उसकी खूब प्रशंसा की । फिर कहा - "वेटी ! तू मेरी पुत्री है । तू चिन्ता मत करना । तेरा दुःख

वृक्ष को छेदन न कर डालें, तवतक हे जीव ! तुझे प्राप्त हुए उत्तम साधन और सामग्रियों का सदुपयोग कर ले ।

७. मल्लिनाथ का अधिकार

आपके समक्ष महावल आदि सात अनगारों का वर्णन सुनाया जा रहा है । उन्हें संसार -सुख की प्रचुर सामग्रीवाला राज्य – वैभव मिला था । उसे छोड़कर वे संयमी बने और कर्म के टेकरों को तोड़ने के लिए उन्होंने प्रवल पुरुषार्थ किया । जैसा रेत का बड़ा ढेर पड़ा हो, किन्तु अगर प्रचंडवायु का झपाटा आए तो उस रेत के बड़े ढेर को इधर-उधर बिखेर देता है । वैसे ही ज्ञानी कहते हैं कि "हे जीव ! तेरी आत्मा पर पड़े हुए कर्मरूपी रेत के वड़े ढेर को विखेरने के लिए पुरुपार्थ के प्रचण्ड झपाटे की जरूरत है ।" मंद-मंद हवा रेत के ढेर को विखेर नहीं सकती, वैसे ही अगर तुम मंद-मंद पुरुपार्थ करोगे तो कर्मरूपी रेत के ढेर को जल्दी विखेर नहीं सकोगे । कर्म का ढेर विखेरने का अगर कोई साधन है तो त्याग है । कहा भी है –

"त्याग एव हि सर्वेषां मुक्ति - साधनमुत्तमम् ।"

इस संसार में सर्व जीवों के लिए त्याग ही मुक्ति का उत्तम साधन है । इन सात अनगारों को शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त करने की लगन लगी । इसलिए संसार के लवालव भरे हुए वैभवों का त्याग करके मुक्ति के उत्तम साधनरूप 'त्याग' को तो उन्होंने अपना लिए । दीक्षा लेकर उन्होंने कैसे-कैसे उग्र तप किये ? लघुसिंह-निष्क्रीड़ित और महासिंह-निष्क्रीड़ित इन दोनों प्रकार की तपस्या उन्होंने की । तत्पश्चात् वे छट्ठ और अट्ठम के पारणे करने लगे । यों करते हुए उन्होंने अपना शरीर बिलकुल जीर्ण-शीर्ण कर लिया । उनका शरीर किसके जैसा हो गया था ? इसके लिए देखिए वह शास्त्रपाठ –

'तएणं ते महव्वल - पामोक्खा सत्त अणगारा, तेणं ओरालेणं सुक्का भूक्खा जहा खंदओ ।'

'भगवती सूत्र' के दूसरें शतक के प्रथम उद्देशक में स्कन्दकमुनि का वर्णन अंकित है । उस स्कन्दकमुनि ने इहलोक और परलोक की इच्छा से रहित उग्र तप किया था । ऐसे उग्र तप से उनका शरीर सूखा-भूखा हो गया था । वैसे ही इन महावल आदि सातों अनगारों का शरीर भी तप से शुष्क वन गया । शरीर की प्रत्येक नस दिखाई देने लगी । मूंग और चवले की फलियाँ सूख जाने पर उनके दाने खड़खड़ करते हैं, वैसे ही उनके शरीर में से रक्त और मांस सूख जाने पर अकेली हड्डियों का ढांचा रह गया था । जैसे मूंग और चवलों के सूखी फलियाँ खड़खड़ करती हैं, सूखे पत्ते जैसे खड़खड़ करते हैं, वैसे ही इन सातों मुनिवरों के शरीर की हड्डियाँ खड़खड करने लगीं । यहाँ से वहाँ उठकर जाने में तथा गुरु को वन्दन करने में थकान महसूस होने लगी । इस कारण वे समझ गए कि 'अब यह शरीररूपी साधन हमें आत्म-साधना करने में सहायक नहीं वन सकता । अतः समाधिमरणरूप संथारा अंगीकार कर लें ।' यों विचार करके सातों

वाणी सुनता है, परन्तु वह प्रत्याख्यान नहीं कर पाता । आस्रव के द्वार बंद करने हेतु व्रत-प्रत्याख्यानरूपी ताला उसके पास नहीं है । इस कारण देव अगर विचार करे कि मुझे आस्रव के द्वार बंद करके संवर की भूमिका में जाना है, संवर है, वहाँ कर्मों की निर्जरा है, आस्रव है, वहाँ कर्मबन्धन है । फिर भी वह संवर-निर्जरा की भूमिका में जा नहीं सकता । अतः जिस मनुष्य को भवभ्रमण का खटका हो, वह आत्मा उससे छुटकारा खोजता है । जिसे भव खटकता है वह आत्मा संसार से छटकता है । जैसे तुम्हें रोग खटकता है, तो औषध लेने की इच्छा होती है, वैसे ही जिस आत्मा को भव खटकता है, उसे संसार से छूटने का मन होता है । जबतक मिथ्यात्व है, तबतक भव-परिभ्रमण है । जीव अनादि-काल से आस्रव के प्रवाह की ओर खींचा जा रहा है । अतः अब एक बार संवरमार्ग से जुड़कर संसार-सागर तिर जाता है । अगर दुःख सहने न हों तो, ज्ञानी कहते हैं - संवरमार्ग में स्थित हो जा । जिसे सुख प्राप्त करना है, उसे संवरमार्ग में आना चाहिए । अगर जीव को सुख की विपास जागी हो तो त्यागमार्ग में आने की जरूरत है ।

जीव अनन्तकाल से आस्रव के प्रवाह की ओर खींचा चला जा रहा है । अतः अब एक बार संवरमार्ग से जुड़कर संसार-सागर तिर जाओ । जिस जीव को सुख की पिपासा जागी हो, उसे त्यागमार्ग में आना जरूरी है । जिसे जीवन में संवर-भाव का संवेग जगेगा, वह इस भव में त्यागमार्ग को भूलेगा नहीं । गौतमस्वामी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया - "हे मेरे त्रिलोकीनाथ ! संवेग से जीवों को क्या लाभ होता है ?" इसके उत्तर में भगवान् ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' (अ.-२९, बोल-१) में कहा -

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ । अणुत्तराए धम्मसद्धाएसंवेगं हव्वमागच्छइ। अणंताणुबंधि-कोह-माण-माया-लोहे-खवेइ । नवं च कम्मं न बंधइ । तप्पच्चइयं च णे मिच्छत्त-विसोहिंकाउण दंसणाराहए भवइ । दंसणविसोहीए णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ, विसोही-ए णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं ना इक्कम्मइ ।।१।।

संवेग से अनुत्तर धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है । अनुत्तर धर्म अनुत्तर गति प्राप्त कराता है । कीमती हीरा जैसे कीमती रकम दिलाता है, वैसे ही अनुत्तर धर्म अनुत्तर गति दिलाता है । जिसके जीवन में संवेग जाग जाता है; उसके जीवन में आत्मा का सम्यक्वेग प्रगट हो जाता है । गाड़ी का, ट्रेन का, प्लेन का आदि का वेग है, वैसे ही रोकेट का, चींटी, कछुआ आदि प्राणियों का वेग है । परन्तु यह सब वेग लौकिक है । तुम्हारा यहाँ आने का भी वेग तो है, किन्तु उपाश्रय में आने पर तुम्हारे मन में से गृहवास भुलाता नहीं है । जिस वेग से उपाश्रय में आते हो, यहाँ आकर दो घड़ी के लिए संसार को नहीं भूलते हो, तो समझ लेना, यहाँ बैठने पर भी भाव-आस्रव चालू है । काया तुम्हारी यहाँ है, परंतु वेग संसार की ओर है । जब संवेग (सच्चा वेग) आएगा, तब उत्तम-प्रकार की

शक्कर डालकर बहू को खिलाया । गूंद और खोपरा डालकर सूंठ बनाकर बहू को खिलाई । धारणे के दिन लड्डू खिलाये । अन्त में घी में शक्कर और लोंग का चूर्ण डालकर हिलाकर बहू को चटाया । बहू को अट्ठाई कराने का सासू को कितना उत्कट मनोभाव है ? सुबह होते ही सासू ने कहा - "बहू ! तुम कुछ भी काम मत करना दूसरे कर लेंगे । तुम जल्दी तैयार हो जाना । उपाश्रय में चलकर तुम्हें नौ बजे पच्चक्खाण (प्रत्याखान) दिलवाऊँगी ।" सासू के मन में अन्यन्त हर्ष है कि मेरी बहू अट्ठाई करेगी ।

यहाँ बैठी हुई बहनों ! तुम्हारी बहू तप करने योग्य हो तो तुम भी ऐसे उत्कट मनोभाव से कराना । स्वयं न कर सकता हो तो दूसरों को करने-कराने की अनुमोदना करने में भी महान् लाभ है । बहू ने उमंग में आकर सास के सामने अट्ठाई करने की स्वीकृति तो दे दी । सुबह हुई । नहा-धोकर अच्छे कपड़े पहनकर तैयार हुई । साढ़े-आठ बजे । उपाश्रय जाने की तैयारी थी, परन्तु बहू के मन में ऐसा विचार उठा कि 'अगर कोई कहे कि तुमसे अट्ठाई नहीं हो सकती, अतः दांतुन कर लो, तो मैं दांतुन कर लूं । सास को अट्ठाई कराने का बहुत ही हर्ष है ।' किन्तु बहू का अट्ठाई का मन नहीं है । इस कारण उसके मुख पर प्रसन्नता नहीं है । परन्तु मांजी का पुत्र बहुत ही होशियार है । वह अपनी पत्नी का मुख देखकर समझ गया कि 'इसके अन्तर में अट्ठाई करने का मन नहीं है । इस दुर्बल बैल को हाँक-हाँककर मेरी माँ ले जा रही है, परन्तु इसकी गाड़ी चलेगीद् नहीं । चलूं, मैं भी इसकी परीक्षा करके देखूं ।' यों सोचकर उसने अपनी पत्नी से कहा - "माँ तुझे अट्ठाई करने का कहती है, परन्तु माँ कहती है, इसलिए तुझे अट्ठाई करनी पड़े, ऐसा नहीं है । तेरा मस्तक दुखता हो तो दांतुन कर ले । शरीर बिगाड़ कर तप नहीं करना है ।" बहू बोली - "ऐसा नहीं है । मुझे तो अट्ठाई करने की बहुत उमंग है, किन्तु मस्तक बहुत दुखता है ।" उसके पति ने कहा - "तो कर ले दांतुन ।" इस पर बहू ने सास से कहा - "माँ ! मुझे तो अट्ठाई करने की बहुत उमंग है, परन्तु आपके पुत्र मुझे करने से इन्कार करते हैं ।" (हँसाहँस) बहू की बात सुनकर सास की उमंग नहीं रही । माँ ने पुत्र से कहा - "बेटा ! तू बहू को तपस्या करने से क्यों इन्कार करता है ? ऐसा अवसर फिर कब आनेवाला है ? इसको अट्ठाई करने का मन है और मुझे कराने का उत्कट मनोभाव हैं ।" यह सुनकर पुत्र ने कहा - "माँ ! मैंने इन्कार नहीं किया, परन्तु इसका मन ढीला पड़ गया है । यह इस इंतजार में बैठी थी कि मुझे कब कोई दांतुन करने का कहे तो मैं दांतुन कर लूं ।" वास्तव में, तपस्या करना कायर का काम नहीं है। **कर्मशत्रु के खिलाफ जूझना शूरवीर का काम है !** कहा भी है -

आ तो शूराना संग्राम, मायुं मूकी जाणे रे ।
अहीं नहीं कायरनुं कई काम, मायुं मूकी जाणे रे ।। आ तो...

यह तो जीवन का संग्राम है । कर्मशत्रु को भगाने के लिए शूरवीर बनना पड़ेगा । युद्ध में शस्त्र सज्जित होकर आया हुआ राजपूत लड़ाई के मैदान में पीछे नहीं

नहीं है, उसे यों लगता है कि मेरा समय कैसे गुजरेगा ? परन्तु जिसे श्रुतवाणी के प्रति शास्त्र-सिद्धान्त के प्रति रुचि जगी है, जीवन में रस जगा है, उसके वर्षों के वर्षों कैसे व्यतीत हो जाते हैं, वह पता नहीं लगता । वीतरागवाणी में रस जगाने के लिए, उसे युक्तिपूर्वक समझाने के लिए आपके समक्ष तर्कों, युक्तियों और न्याय और नयपुरःसर सिद्धान्त का भाव समझाते हैं । एक बार भगवान् की वाणी का रस जाग जाए तो आगम में मोक्ष के मोती दिखाई देंगे । भगवद्वाणी कैसी है ? जीवन में जाग जाए ।

तारी वाणी रसाळ शुं अमृतभर्युं, तारा नयनोमां जाणे शु जादु भर्युं,
जोतां लागे भर्यो जाणे मातानो प्यार...कोई पामे छे...
तारा दर्शननी टेक, जेने छे वारंवार...कोई पामे छे...

हे प्रभो ! तुम्हारी वाणी अमृत से भी मीठी है । तेरे नयनों में न जाने क्या जादू भरा है कि ऐसा होता है कि निरखते ही रहा करें । तुझे देखने पर लगता है कि माता के वात्सल्य की अपेक्षा भी तेरा वात्सल्य अधिक है । माता को बालक के प्रति कितना वात्सल्य होता है ? छोटे-से बालक की माँ डेढ-दो घंटे से बाहर चली गई हो तो बालक चारों ओर माता को देखता है, और उसे ढूंढने हेतु व्यर्थ प्रयास करता है । जब माता को आती हुई देखता है, तब उसकी निर्दोष आँखों में सहसा हर्षाश्रु उमड पड़ते हैं । एक बार मैं गौचरी जा रही थी, तब पुलिस गेट पर हजार मनुष्य इकट्ठे होकर खड़े थे । मैंने पूछा - "क्यों क्या है यहाँ ?" तब उत्तर दिया - "एक ढाई साल का बालक रास्ता भूल जाने से अपनी माँ से बिछुड़ गया है । इस कारण बहुत रो रहा है । पुलिसवाले उसे पपोलते हैं, प्यार करते हैं, दूध पिलाते हैं, मोटर-प्लेन आदि खिलौने देते हैं, बर्फी देते हैं, तो भी वह चुप नहीं रहता । वह बच्चा राजकुमार के जैसा मालूम होता था । चाहे जितना लालच देने पर भी वह बालक करुण कल्पांत करता है, झूरता है, और रोता रहता है । एक हजार मनुष्य का प्यार मिलने पर भी बच्चा रोना बंद नहीं करता । थोड़ी ही देर बाद उसकी माता बालक को ढूंढ़ती-ढूंढ़ती वहाँ आ गई । उस बच्चे का गाँव वहाँ से दो माइल दूर था । वह अपनी मां के साथ खेत में गया था । वहाँ दूसरे लड़कों के साथ खेलता-खेलता आगे निकल गया और रास्ता भूल गया था । उस बालक ने जब अपनी माता को आती हुई देखी तो हर्षावेश में पागल हो उठा । उसकी माता तो अपने पुत्र के लिए न तो लाई खिलौने, नहीं लाई पेड़े-बर्फी, वह तो बिलकुल खाली आई है । फिर भी बालक पुलिस के हाथ में से उछलकर अपनी माँ को भेंटने के लिए कूद पड़ा । जिसे पेड़े-बर्फी तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने दिये गए, फिर भी वह राजी नहीं हो रहा था, वह माँ को देखते ही नाच उठा । किसलिए ? उसे माता का प्रेम मिला । माता का प्रेम दुनिया में अलौकिक है । इसी प्रकार पंच-समिति, तीन-गुप्तिरूप अष्टप्रवचन माता है । अर्थात् - भगवान् ने साधु-साध्वियों के लिए इन आठों को निर्ग्रन्थ-प्रवचन में स्थिर होने, रमण करने, प्रवृत्ति-निवृत्ति में उपयोग सहित चर्चा करने का (श्रद्धा-भक्तिपूर्वक) निर्देश दिया है । इस अष्टप्रवचन माता की आवाज, आज्ञा, आदेश-निर्देश सुनोगे, उनके आदेश-निर्देशानुसार

को जगाओ, प्रकट करो। जिसे जन्म-मरण का त्रास लगता हो, मोक्ष में जाने की लगन लगी हो, वह क्षत्रिय बनकर कर्मों के साथ युद्ध करने हेतु तप, त्याग और शील (सदाचार) के शस्त्रों से सुसज्जित होकर जूझने के लिए तैयार हो जाएगा और जो कायर होगा, वह बैठा रहेगा। त्याग आत्मा को कर्मबन्धन से मुक्त कराने का उत्तम साधन है। तुम संसार (घर गृहस्थी) छोड़कर संयमी बनो तो श्रेष्ठ बात है। इस धर्मसभा में से एक भी साधु बन जाए तो घाटकोपर का नाम अमर हो जाय। क्यों वजुभाई ठीक बात है न? (हँसाहँस) हँसकर हमारी बात को कब तक टालोगे? मैं तो दीक्षा लेने का कह रही हूँ। किन्तु दीक्षा न ले सको तो कम से कम ब्रह्मचर्य व्रत तो अंगीकार करो?

महाबल आदि सातों अनगारों ने समझ-बूझकर संयम अंगीकार किया और कैसी उग्र साधना की? उन्होंने इतना सब किया तो क्या तुम संसार (गृहस्थाश्रम) में रहकर कामवासना पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते? तप करके उन मुनिवरों ने शरीर को गला दिया। अब उनका शरीर-साधना में सहायक नहीं बन सकता। स्वयं जहाँ बैठे हों, वहाँ से उठकर गुरुदेव के पास जाना हो तो दो-तीन जगह विश्रान्ति लेनी पड़ती है, ऐसी शरीर हो गया। तब उन्होंने क्या किया? सुनिए वह शास्त्रपाठ -

'णवरं थेरे आपुच्छित्ता चारु पव्वयं दुरुहंति, दुरुहित्ता जाव दो मासियाए संलेहणाए सवीसं भत्तसयं चउरासीइं वाससय - सहस्साइं सामण्ण - परियागं पाउणंति।''

स्कन्दकमुनि ने जैसे भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त की थी, वैसे ही इन सातों अनगारों ने स्थविर भगवन्तों से आज्ञा प्राप्त की। अर्थात् - सातों अनगार अपने स्थान से उठकर जहाँ स्थविर भगवन्त विराजते थे, वहाँ आए। वहाँ आकर उन्होंने वन्दना - नमस्कार करके बहुत ही नम्रतापूर्वक कहा - ''भगवंत! अब हमारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया है। अब इसमें आत्म-साधना में सहायक बनने की शक्ति नहीं रही। अतः आप आज्ञा दें तो हम संलेखना : 'संथारा करें।' स्थविर भगवन्तों ने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-देखकर उन्हें संलेखना-संथारा करने की आज्ञा दी। स्थविर भगवंतों की आज्ञा प्राप्त करके वे सातों ही अनगार चारु नामक पर्वत पर पहुँचे। वहाँ जाकर संथारा करने के पूर्व भूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन किया। प्रतिलेखन करके इरियावही प्रतिक्रमण किया। फिर लोगस्स का पाठ बोलकर भगवान् की स्मृति करके उन्होंने पादपोपगमन संथारा किया।

पादपोपगमन संथारा क्या है? जैसे वृक्ष पर से कोई डाली कटकर नीचे गिर जाती है। फिर नीचे गिरी हुई डाली स्वयं हिलती-चलती नहीं है, उसी प्रकार जो पादपोपगमन करता है, उसे उसी स्थिति में आमरण तक रहना पड़ता है। पादपोपगमन संथारे आराधक पहले निश्चित करता है कि मुझे सोये-सोये संथारा करना है, अथवा बैठे करना है; या फिर चित्त सोकर करना है अथवा एक करवट सोना है? इस

में जिस स्थिति में रहने का निश्चय किया हो, उसी स्थिति में

का लाभ लेकर जीवन की साधना करता है । हम भी शीघ्र मानवभव पाकर स्व-
ग करेंगे और दूसरों का कल्याण करायेंगे । इस प्रकार के शुभ चिन्तन-मनन और
क्षेपादि के तत्त्वज्ञान की चर्चा-विचारणा में अपना समय व्यतीत करते हैं ।

न्धुओं ! आत्मा के गुण-दोष की कमाई का आधार सत्-असत् (शुभ-अशुभ व
पुरुषार्थ पर है । मनुष्य अच्छा-शुभ या शुद्ध पुरुषार्थ करे तो सद्गुण आते-जाते
बकि खराब-अशुभ पुरुषार्थ करे तो दोष-दुर्गुण बढ़ते जाते हैं । एक कहावत है
प भला तो जग भला', हम स्वयं दूसरों का भला करें, भलाई का व्यवहार करें
पने लिए सारा जगत् परिणामतः (या समग्रतया) भला (अच्छा) दिखाई देता है ।
ी (प्रमोदगुणसपन्न) मनुष्य सामनेवाले में हजार अवगुण हों, फिर भी उसमें गुण
है । ऐसे गुणवान सज्जन और धर्मिष्ठ मनुष्य के जहाँ चरण पड़ते हैं, वहाँ दूसरों
ीवन भी सुधर जाता है । एक उदाहरण लीजिए ।

ासु-बहू का दृष्टांत : एक शहर में एक सज्जन मनुष्य एक भाई के यहाँ गए ।
ाई उसका दूर-दूर का सम्बन्धी होता था । वह घर ऐसा था कि उसमें सासु-बहू का
हाभारत होता था । एक घड़ीभर भी वहाँ शान्ति नहीं थी । मामुली-से कारण को
सासु-बहू झगड़ पड़ते थे । लाखों-करोड़ों की घर में सम्पत्ति हो, परन्तु जिस घर
, स्नेह और शान्ति न हो, वह संपत्ति किस काम की ? सासु-बहू रात-दिन कलह
रहती हैं । ज्ञानीपुरुष कहते हैं - "संसार में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान के बहुत कारण
।" देवरानी ने जिठानी से बिना पूछे उसकी साड़ी पहन ली, बाद में जिठानी को
लगा तब उसके मन में ईर्ष्या-द्वेष विचार आया कि मुझे पूछे बिना मेरी साड़ी क्यों
ली ? ऐसा विचार आना आर्त्तध्यान है । प्रतिक्रमण में प्रतिदिन बोलते हैं - **'चार
के ध्यान में से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान और
ध्यान न ध्याया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।'** इस प्रकार रोज बोल जाते
रन्तु ध्यान का स्वरूप क्या है ? यह तो आप नहीं जानते । आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान
जीव को दुर्गति की ओर ले जाते हैं । धर्मध्यान और शुक्लध्यान सुगति प्राप्त कराते
आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान से बचने के लिए मनुष्य जितना शास्त्रवाचन और तत्त्वज्ञान
, उतना ही वह इन दोनों से बचकर रहेगा ।

हाँ, तो पूर्वोक्त घर में सासु-बहू झगड़े रात-दिन चलते रहते थे । आगन्तुक सज्जन
ने ये झगड़े देखे । बहुधा समाधियुक्त मनुष्य असमाधिवाले स्थान में नहीं रह
ा । इस भाई को इस परिवार से कुछ काम था, इसलिए वह यहाँ आया था । वह
निपटा कि तुरंत वह जाने के लिए तैयार हुआ । वह भाई यहाँ से रवाना होने की
कर रहा था, तभी इस परिवार की पुत्रवधू ने धीरे से आकर सज्जन पुरुष से कहा
भाई साहब ! आप जा तो रहे हैं, किन्तु आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप एक घंटा
क रुककर इस घर में शान्ति करके जाइए । मेरी सासुजी को सच्ची सीख देकर
। इन्हें बात-बात में क्लेश करने की आदत है ।" यह सज्जन बोले - "अच्छा, तुम्हारी

को जगाओ, प्रकट करो। जिसे जन्म-मरण का त्रास लगता हो, मोक्ष में जाने की लगन लगी हो, वह क्षत्रिय बनकर कर्मों के साथ युद्ध करने हेतु तप, त्याग और शील (सदाचार) के शस्त्रों से सुसज्जित होकर जूझने के लिए तैयार हो जाएगा और जो कायर होगा, वह बैठा रहेगा। त्याग आत्मा को कर्मबन्धन से मुक्त कराने का उत्तम साधन है। तुम संसार (घर गृहस्थी) छोड़कर संयमी बनो तो श्रेष्ठ बात है। इस धर्मसभा में से एक भी साधु बन जाए तो घाटकोपर का नाम अमर हो जाय। क्यों वजुभाई ठीक बात है न? (हँसाहँस) हँसकर हमारी बात को कब तक टालोगे? मैं तो दीक्षा लेने का कह रही हूँ। किन्तु दीक्षा न ले सको तो कम से कम ब्रह्मचर्य व्रत तो अंगीकार करो?

महाबल आदि सातों अनगारों ने समझ-बूझकर संयम अंगीकार किया और कैसी उग्र साधना की? उन्होंने इतना सब किया तो क्या तुम संसार (गृहस्थाश्रम) में रहकर कामवासना पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते? तप करके उन मुनिवरों ने शरीर को गला दिया। अब उनका शरीर-साधना में सहायक नहीं बन सकता। स्वयं जहाँ बैठे हों, वहाँ से उठकर गुरुदेव के पास जाना हो तो दो-तीन जगह विश्रान्ति लेनी पड़ती है, ऐसी शरीर हो गया। तब उन्होंने क्या किया? सुनिए वह शास्त्रपाठ -

'णवरं थेरे आपुच्छित्ता चारु पव्वयं दुरुहंति, दुरुहित्ता जाव दो मासियाए संलेहणाए सवीसं भत्तसयं चउरसीइं वाससय - सहस्साइं सामण्ण - परियागं पाउणंति।''

स्कन्दकमुनि ने जैसे भगवान् महावीर से आज्ञा प्राप्त की थी, वैसे ही इन सातों अनगारों ने स्थविर भगवन्तों से आज्ञा प्राप्त की। अर्थात् - सातों अनगार अपने स्थान से उठकर जहाँ स्थविर भगवन्त विराजते थे, वहाँ आए। वहाँ आकर उन्होंने बन्दना - नमस्कार करके बहुत ही नम्रतापूर्वक कहा - ''भगवंत! अब हमारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया है। अब इसमें आत्म-साधना में सहायक बनने की शक्ति नहीं रही। अतः आप आज्ञा दें तो हम संलेखना : 'संथारा करें।' स्थविर भगवन्तों ने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-देखकर उन्हें संलेखना-संथारा करने की आज्ञा दी। स्थविर भगवंतों की आज्ञा प्राप्त करके वे सातों ही अनगार चारु नामक पर्वत पर पहुँचे। वहाँ जाकर संथारा करने के पूर्व भूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन किया। प्रतिलेखन करके इरियावही प्रतिक्रमण किया। फिर लोगस्स का पाठ बोलकर भगवान् की स्मृति करके उन्होंने पादपोपगमन संथारा किया।

पादपोपगमन संथारा क्या है? जैसे वृक्ष पर से कोई डाली कटकर नीचे गिर जाती है। फिर नीचे गिरी हुई डाली स्वयं हिलती-चलती नहीं है, उसी प्रकार जो पादपोपगमन संथारा करता है, उसे उसी स्थिति में आमरण तक रहना पड़ता है। पादपोपगमन संथारे का आराधक पहले निश्चित करता है कि मुझे सोये-सोये संथारा करना है, अथवा बैठे-बैठे करना है; या फिर चित्त सोकर करना है अथवा एक करवट सोना है? इस प्रकार पादपोपगमन संथारे में जिस स्थिति में रहने का निश्चय किया हो, उसी स्थिति में

भला तो जग भला' इस सूत्र को हृदय से अपना लिया। सासु के खोटे और क्रोधयुक्त हृदयभेदी बोलो के बदले बहू नम्रतापूर्वक सिर्फ दो वाक्य बोलकर चुप हो जाती – मैं जैसी हूँ, वैसी हूँ, तो भी आपके बेटे की बहू हूँ। आपको मुझे पुत्री की तरह निभानी है, पालनी है। मैं भूलों से भरी हुई हूँ। मेरी भूलों को आप सुधारती रहना।'

बन्धुओं ! इन उद्‌गारों में कौन-से भाव भरे हुए हैं ? यह आपको समझ में आता है न ? 'आप बहुत अच्छी हैं, सब भूल मेरी है। फिर ऐसी दोषों से भरपूर मुझे निभाने की मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ।' इस प्रकार स्वयं अपनी भूल को कबूल करना, इस में अपनी अच्छाई है, क्षमा, सहिष्णुता और नम्रता के गुण निहित हैं। सचमुख, बहू ने 'आप भला तो जग भला' इस सूत्र को अपना लिया, फलस्वरूप सासु को पश्चात्ताप करने का वक्त आया। तात्पर्य यह है कि एक सज्जन मनुष्य के घर में चरण पड़े तो जीवन में कितना परिवर्तन आ गया ? क्लेश-द्वेष-कलह सब शान्त हो गए। सासु और बहू दोनों धर्मिष्ठ बन गई। अब वे दोनों साथ-साथ प्रतिक्रमण करती हैं, उपवासादि तप करती हैं, जहाँ पहले आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान की आग जलती थी, वहाँ अब धर्मध्यान का वातावरण बन गया। घर के सभी लोग धर्मध्यान के भावों में विचरण करने लगे। जब गुण ग्राहक दृष्टि हो जाती है, तब सामनेवाले व्यक्ति दुर्गुण हों तो भी उनमें से वह गुण को ढूंढ लेती है, साथ ही अपनी भूल का स्वीकार कर लेती हैं।

की हुई भूल का प्रायश्चित्त करने के लिए पर्वाधिराज पर्युषणपर्व आ रहे हैं। इन दिनों में आत्मा को पवित्र और मंगलमय बनाना है। सातों अनगार जयन्त नामक अणुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् महाबल के अलावा वे छहों देव उस जयन्त नामक देवलोक के देवलोक सम्बन्धी आयुष्य कर्म के दलिकों की निर्जरा हो जाने से अर्थात् देवसम्बन्धी आयुष्य का क्षय हो जाने से, भव के कारणभूत गति वगैरह की निर्जरा हो जाने से, तथा स्थिति का क्षय हो जाने से उस समय देव-शरीर को छोड़कर इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में, भरतक्षेत्र में, विशुद्ध वंशवाले माता-पिता के यहाँ राजकुलों में अलग-अलग परिवार में पुत्र रूप में जन्म पाया। इन सब में कौन-कौन, कहाँ-कहाँ, किस-किस परिवार में जन्मा ? आगे चलकर क्या-क्या बने ? इसकी जानकारी के लिए देखिए सूत्रपाठ –

"पड़िबुद्धि इक्खागराया, चंदछाए, अंगराया, संखे कासीराया, रूप्पी कुणालाहिवइ, अदीणसत्तू कुरुराया, जितसत्तू पंचालाहिवइ।"

पहले अचल का जीव था, वह कौशल देश में माता के गर्भ में आकर उत्पन्न हुआ, समय व्यतीत होने पर जन्म हुआ। बड़ा होने पर कौशल देश का अधिपति हुआ। कौशल देश की राजधानी अयोध्या थी। अचल का जीव वहाँ प्रतिबुद्धि नाम से प्रसिद्ध हुआ। विशेष वर्णन तो महाबलकुमार का करना है। इन ६ जीवों ने भले ही तीर्थकर-नामकर्म का बन्धन नहीं किया, किन्तु ये सब मोक्षगामी जीव तो हैं ही। मोक्षगामी जीवों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह भी प्रबल पुण्य का उदय हो, तभी मिलता है, तथा
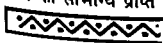
का दुःख है, दूसरी ओर लोग यों कहेंगे कि कृष्ण के पुत्र का अपहरण हुआ। ऐसे महान् कृष्ण वासुदेव हैं। इनके चलने से धरती कांप उठती है। ये तीन खण्ड के स्वामी होते हुए भी अपने पुत्र की रक्षा नहीं कर सके।' यों श्रीकृष्ण चिन्ता करते हैं। दूसरी ओर रुक्मिणी की व्यथा भी बढ़ती जा रही है। पुत्र के वियोग में रुक्मिणी ने खाना-पीना, स्नान-श्रृंगार, मस्तक पर कंघी करना वगैरह सबकुछ छोड़ दिया। पुत्र-वियोगिनी रुक्मिणी एक तरह से योगिनी जैसी दिखने लगी। वह कहने लगी - "हे प्रभो! मैं अपने पुत्र को ढूंढने के लिए क्या करूँ? जोगण बनकर वन-वन में भटकूँ? अथवा साध्वी बनकर देश-परदेश में विचरूँ? ताकि मेरा लाल मुझे मिल जाए।" इस प्रकार रुक्मिणी कल्पान्त करती है। कृष्णजी भी चिन्तातुर होकर बैठे हैं। किसी को कुछ भी सूझता नहीं कि क्या करें? वहाँ अचानक क्या बनता है? -

आकाश गमन करते हुए नारदजी का द्वारिका में आगमन

उस अवसर नारदऋषि चले आविया, सुन लीना जो,
बेटा! चिन्ता मत कर बालक तणी रे, वो नहीं मरता तुझ पुण्यवन्त रे। श्रोता...

इसी समय नारदऋषि आकाशमार्ग से विचरण करते हुए द्वारिका नगरी में आ पहुँचे। प्रद्युम्नकुमार का अपहरण होने से सारी द्वारिका नगरी में उदासी छाई हुई थी। इस कारण द्वारिका नगरी को सूनी-सूनी देखकर नारदजी ने नगरी के एक आदमी से पूछा - "यह नगरी क्यों सूनी-सूनी लग रही है।" तब उस मनुष्य ने अतीव दुःखित हृदय से कहा - "रुक्मिणी रानी की कुक्षि से जन्मे हुए पुत्र का किसी देव या असुर ने अपहरण कर लिया है। इस कारण द्वारिका नगरी शोकमग्न हो गई है।" यह बात सुनकर नारदजी को भी अत्यन्त दुःख हुआ। वे विचार करने लगे कि 'जिनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहने का मैंने निश्चय किया है, ऐसे मेरे मित्र श्रीकृष्ण अगर पुत्रवियोग से दुःखी हो गए हैं, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं जल्दी से जल्दी उनका दुःख दूर करूँ। यों सोचते हुए नारदजी शीघ्र ही कृष्ण के महल में पहुँचे।

इस समय कृष्ण वासुदेव चिन्तातुर होकर कनपट्टी पर हाथ देकर बैठे थे। यों तो जब भी नारदजी पधारते, तब श्रीकृष्ण खड़े होकर उनका विनयपूर्वक स्वागत करते थे और अपने बगलवाले आसन पर उन्हें बिठाते थे। परन्तु आज कौन आया? इसका उन्हें ख्याल नहीं रहा। जब नारदजी ने कहा - "हे त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव!" यह शब्द सुनते ही श्रीकृष्णजी ने आँखें खोलीं। वहाँ नारदजी को देखकर श्रीकृष्ण एकदम खड़े हो गए और उन्हें बैठने के लिए आसन दिया। ऐसी चिन्तामग्न अवस्था होते हुए भी कृष्णजी के विनय से नारदजी प्रसन्न हुए और कृष्णजी के विनयभाव की प्रशंसा करने लगे और कृष्णजी के पासवाले आसन पर बैठकर, स्वयं कुछ भी नहीं जानते, इस दृष्टि से कृष्णजी से पूछा - "आज आप इतने अधिक उदास क्यों दिखाई दे रहे हो? मुझे आप स्पष्ट बताइए।" नारदजी की बात सुनकर कृष्ण ने सोचा - 'जो व्यक्ति दुःख के निवारण का उपाय खोज सकता है अथवा जो मेरे दुःख में दुःखी होता है, उसे मेरे दुःख की बात

प्रद्युम्नकुमार के भविष्य के विषय में नारदजी का कथन : हे रुक्मिणी ! इस दुनिया में तुझे ही पुत्रवियोग हुआ है, ऐसा नहीं है । तेरे पुत्र की तरह अनेक लोगों के पुत्रों का अपहरण पूर्व में हुआ है । अनेक माता-पिता तेरी तरह दुःखी हुए हैं । और अनेक दिवसों के पश्चात् उन समृद्धिमान् पुत्रों ने आकर माता-पिता को प्रसन्न किया । इस प्रकार तेरा पुत्र भी विद्या और पराक्रमयुक्त होकर जरूर तेरे पास आएगा । इस समय तू जितना रो रही है, उससे अधिक वह तुझे प्रसन्न करेगा । अतः तू चिन्ता और रुदन् छोड़कर आनन्द में रह । रुक्मिणी जैसी जिसको माता है, और कृष्ण जैसे त्रिखण्डाधिपति जिसके पिता हैं और जो यदुवंश में जन्मा है, वह अवश्य ही भाग्यशाली होगा; वह यादवों में शिरोमणि के समान होगा । तेरे पुत्र को कोई मारना चाहेगा, तो भी वह मरेगा नहीं, ऐसा प्रतापी तेरा पुत्र बनेगा । अनेक प्रकार की विद्याओं और कलाओं से विभूषित होकर वह तेरे पास आएगा । जिनका अपहरण हुआ है, वे तुरंत अपने माता-पिता से नहीं मिले । अतः तू यों मानती है कि कल ही मेरा पुत्र मुझे मिल जाए, ऐसा नहीं हो सकता समय लगेगा, परन्तु मैं उसके कुशल समाचार तो अवश्य लाकर दूंगा । वह तुझे कब मिलेगा ? यह भी पता लगाकर तुझे बता दूंगा । अतः तू चिन्ता छोड़ दे ।" इस प्रकार नारदजी के शक्कर-सी मधुर वाणी सुनकर रुक्मिणी कुछ शान्त हुई । उसे आशा बंध गई कि अब अवश्य ही मेरा पुत्र मुझे मिलेगा । नारदजी के वचन सुनकर रुक्मिणी का हृदय हलका हुआ । फिर नारदजी ने कहा - "तेरे पुत्र का पता लगाने के लिए मैं महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी के पास जाऊँगा । महाविदेहक्षेत्र में पुष्कल विजय है और वहाँ पुण्डरगिरि नाम की नगरी है । वहाँ सीमन्धरस्वामी विराजते हैं । वहाँ जाकर तेरे पुत्र के सम्बन्ध में जानकारी करके जरूर लौट आऊँगा ।" रुक्मिणी नारदजी के वचनों की सफलता के शुभेच्छा प्रगट की ।

नारदजी सीमन्धरस्वामी के पास : रुक्मिणी को आश्वासन देकर नारदजी वहाँ से उठे । उन्होंने अपने विद्याबल से विमान की रचना की । उस विमान में बैठकर नारदजी विविध कौतुकों को देखते-देखते आकाशमार्ग से जा रहे थे । तभी सुमेरु पर्वत के सामने आते ही रात पड़ गई । इस कारण वे रात को वहीं ठहर गए । सवेरा होते ही वे आगे बढ़े । आकाशगामिनी विद्या के बल से बहुत द्रुतगति से जा रहे नारदजी पुंडरगिरी नगरी पहुँच गए, जो नगरी सीमन्धरस्वामी के चरणकमलों के स्पर्श से पवित्र बनी हुई थी । तीर्थंकर, केवलज्ञानी, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, तपस्वी तथा ज्ञानी साधु-साध्वी आदि से वह नगरी सुशोभित हो रही थी । ऐसी पवित्र नगरी थी, पुंडरगिरी ।

नारदजी ने अद्भुत समवसरण देखा : वहाँ पहुँचकर नारदजी ने अपूर्व समवसरण की रचना देखी । प्रभु के समवसरण में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक चारों प्रकार के देव तथा उनकी देवियाँ, मनुष्य-पुरुष, तिर्यंच-तिर्यंचनी, साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका, यों बारह प्रकार की परिषदा यथास्थान बैठी हुई थी । समवसरण स्वर्ण और रत्नों से श्रेष्ठ रूप से सुशोभित था । उसमें देवों के कारण समवसरण की शोभा

दूर हो जाएगा।'' रुक्मिणी ने कहा – ''मेरा पुत्र मुझे नहीं मिलेगा तो मैं प्राण-त्याग कर दूंगी। किन्तु पुत्र के बिना मैं जीवित नहीं रह सकूंगी।'' तब नारदजी ने कहा – ''हे पुत्री ! किसी देव या दानव ने तेरे पुत्र का अपहरण किया है। परन्तु मुझे विश्वास है कि तेरा पुत्र चाहे जहाँ होगा, वह अत्यन्त सुख में होगा और जीवित होगा। तू रो मत, झूर मत। मैं अल्प समय में ही तेरे पुत्र को खोज दूंगा।'' यह सुनकर रुक्मिणी ने कहा – ''हे मुनिवर ! त्रिखण्डाधिपति ने तीनों खण्डों के प्रत्येक गाँव, नगर, वन, चौराहे और बाजार एवं सर्वत्र घर-घर में उसकी तलाश कराई है। किन्तु किसी जगह भी उसका पता नहीं लगा है। इतना ही नहीं, उसका कोई समाचार भी नहीं है।'' नारदजी ने रुक्मिणी को धैर्य बंधाते हुए कहा – ''बेटी ! अगर मैं तुम्हारे पुत्र का पता न लगा दूं तो मेरा नाम नारद नहीं। मैं तीनों खण्डों में घूम-घूमकर पता लगाऊँगा। आकाश-पाताल एक कर दूंगा। फिर भी प्रद्युम्नकुमार का पता नहीं लगेगा तो मैं महाविदेहक्षेत्र में सीमंधर स्वामी भगवान् के पास जाकर तेरे पुत्र के विषय में पूछताछ करके उसके समाचार लेकर आऊँगा। यद्यपि वहाँ कोई पैदल चलनेवाला मानव जा नहीं सकता, किन्तु मैं तो आकाशगमन करनेवाला हूँ। इसलिए वहाँ जा सकूँगा।''

अब नारदजी प्रद्युम्नकुमार की तलाश करने के लिए कहाँ-कहाँ जाएँगे और वहाँ भी वह नहीं मिलेगा तो महाविदेहक्षेत्र में जाएँगे। वहाँ क्या-क्या घटना घटित होगी, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

व्याख्यान - ४७

श्रावण वदी ११, शुक्रवार — ता. २०-८-७६

आस्रव को अवरोधो - संवर को आराधो

वीतराग-भगवान की वाणी आधि, व्याधि और उपाधि से मुक्त करानेवाली है। इस वाणी का अगर जीव एक-एक शब्द समझे और आचरण में लाए तो जन्म, जरा और मरण की श्रृंखला टूटते देर नहीं लगती। वीतरागवाणी में इतनी शक्ति और सामर्थ्य रहे हुए हैं। परन्तु जबतक आत्मा उसके भाव, आशय और तात्पर्य को नहीं समझता तबतक उलटी दौड़ लगाता है। संसार के तरफ की दौड़ आस्रव की ओर ले जाएगी और संयम के तरफ की दौड़ संवर की ओर ले जाएगी। जैसे देवलोक में सम्यग्दृष्टि देव का जब वहाँ से च्यवन होने का होता है, तब वह क्या विचार करता है ? भले ही मुझे वैभव न मिले, किन्तु जहाँ जैनधर्म हो, वहाँ मेरा जन्म हो। सम्यग्दृष्टि देव ऐसी चिन्ता करता है। उसे देवलोक के सुख अरुचिकर लगते हैं। वह भगवान् के दर्शन करने जाता है, उनकी

"अमिलाय मल्लदामा, अणिमिस नयणाय, नीरज सरीरा चउरंगुलेण भूमिं न विसंति सुरा, जिणो कहिए ।"

(१) देव **अम्लान पुष्पमाला** वाले होते हैं । अर्थात् - देवों के कण्ठ में जो पुष्पमाला होती है, वह कभी मुर्झाती नहीं है । (२) वे **अनिमिष नयन** वाले होते हैं, अर्थात् - उनकी आँखें और उनकी पलकें स्थिर होती हैं । (३) उनका **शरीर** अपनी तरह **मलिन नहीं होता** । सदा निर्मल रहता है । (४) उनके पैर पृथ्वी से चार अंगुल अध्धर रहते हैं । देवों की शान्ति इतनी अधिक है कि वे अनेक प्रकार के रूप बना सकते हैं, अनेक प्रकार की भाषा बोल सकते हैं । देवों की ऐसी महान शक्ति होती है । वे मनुष्यों की तरह माता के गर्भ से उत्पन्न नहीं होते । उनके शरीर में रोग या बुढ़ापा नहीं आता । उनकी ऋद्धि में कमीवेशी नहीं होती । देव शाश्वत नहीं होते, किन्तु उनकी ऋद्धि तो शाश्वती है । मान लो, तुम अरबों रुपये कमा लो, परन्तु क्या वे रुपये तुम जीओगे, तबतक टिके रहेंगे ? नहीं । तथा यह शरीर आज अच्छा है, किन्तु कल इसे कुछ नहीं होगा, क्या यह भी निश्चित है । नहीं । यहाँ रहनेवाला मानव अशाश्वत हैं और उसकी ऋद्धि भी अशाश्वत है । फिर भी जीव तो खीली ठोककर बैठ गया है कि यह सब मेरा है । जो सुख मिला है, उसे भोग लूं ।

ऐसे तुच्छ कामभोगों में जीव मूढ़ बन गया है, किन्तु उसे भान नहीं कि देवलोक के देवों के सुख की अपेक्षा से यह सुख कितना तुच्छ है ? अनुत्तर विमान के देवों को तो बहुत सुख है, फिर भी उसके प्रति उनका राग (आसक्ति) नहीं है । जबकि मर्त्यलोक के मानव को तुच्छ और नाशवान् सुख के प्रति कितना राग है ? विषय-विकारों की कितनी परेशानी है कि पुत्र के पुत्र हो गए, सिर पर सफेद केश आ गए फिर भी अभी तक विषय-भोगों को छोड़ने का मन नहीं होता । देव ज्यों-ज्यों उच्च देवलोकों में जाते हैं, त्यों-त्यों उनके विषय-विकार कम होते जाते हैं । ज्यों-ज्यों ऋद्धि अधिक होती जाती है, त्यों-त्यों उसके प्रति आसक्ति कम होती जाती है । नव-ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान के देवों में विषयासक्ति का विशेषतः अभाव होता है । अधिक तो क्या कहूँ, सर्वार्थसिद्ध विमान के देव को तत्त्वचिन्तन करते हुए कोई शंका उत्पन्न होती है, तब उसके लिए मन में विकल्प करता है और मन से ही सर्वज्ञ भगवान् से प्रश्न पूछता है, तब मन में ही उसका समाधान हो जाता है ।

देवानुप्रियों ! देवों को ऐसा सुख और वह भी कितने दीर्घकाल का मिलता है ? अनुत्तर विमान के देवों के सुख का काल कितना है ? क्या तुम जानते हो ? पाँच अनुत्तर विमान के देवों की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की है । तैतीस सागरोपम का क्या अर्थ है ? ३३० कोटाकोटी पल्योपम वर्ष ३३ सागरोपम वर्ष का माप है । अनुत्तर विमान के ऐसे दीर्घकालिक सुख के आगे मानव के बिन्दु जितने और अल्पकालिक (थोड़े काल तक टिकनेवाले) सुख किस विसात में है ? और वह सुख भी अनित्य है । क्या इस पर विश्वास करके बैठा जा सकता है ? तथा ऐसे तुच्छ सुख को स्थायी मानकर क्या अभिमान में फूलते जाना है ? और अनुत्तर विमान के देवों को भी **दुर्लभ** ऐसी **महंगी** मानवीय

धर्मश्रद्धा होगी। उत्तम प्रकार का धर्म कौन-सा है ? कितने ही लोगों को इसका भी पता नहीं होगा। तिजोरी धन से छलाछल देखने पर जो आनन्द आपलोगों को आता है, वह आनन्द धर्माचरण में नहीं आता। किन्तु संसार का आनन्द जीव को दुर्गति की ओर ले जाएगा और धर्म का आनन्द मोक्ष की ओर ले जाएगा। जीवन में संवेग आएगा, तब देव, गुरु, धर्म और शास्त्र की बातें सुनकर हृदय हर्ष से नाच उठेगा। जहाँ संवेग आता है, वहाँ निर्वेद भी आता है। संवेग आता है तो मोक्षतत्त्व के प्रति रुचि जगाता है, और आत्मा में विचार चालू होगा, कि कहाँ मैं भोगों का गुलाम या भोगों का भिखारी! इतने भोगों का उपभोग किया, फिर भी अभी तक तृप्ति नहीं हुई। अनन्तकाल विषय-कषाय में, खानेपीने में और भोगों का उपभोग-परिभोग करने में बिताया, इस दुनिया में जितने कागज है, उन सब कागजों को लेकर उन पर लिखने बैठें, तो एक जीव ने कितना परिभ्रमण किया है ? वह भी पूरा लिखा नहीं जा सकता। उतना यह जीव संसार में भटका है, और विषयोपभोग किया है।

सच्चे सत्यशोधक वेग का नाम है - संवेग। ऐसे वेगवाला भोग की भूलभुलैया में फंसे नहीं, वह कीचड़ को छोड़कर किनारे आ जाए। संवेग का व्हील-पावर जिसमें जगा हो, उसमें वैराग्य का ऐसा पावर आ जाता है, कि वह कहीं बंधाता नहीं। संवेग से अनुत्तर धर्म की श्रद्धा उमड़ती है। धर्म के प्रति उत्कृष्ट श्रद्धा करने से संवेग की अर्थात् -मोक्षाभिलाषा की शीघ्र प्राप्ति होती है। अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया और लोभ का क्षय होता है, नये-कर्म का बन्धन नहीं होता। मिथ्यात्व की विशुद्धि करने से दर्शन की आराधना होती है। दर्शन विशुद्धि शुद्ध हो जाने पर कोई तो इसी भव में सिद्ध, बुद्ध मुक्त, शुद्ध हो जाता है। जो इस भव में सिद्ध नहीं हो पाता वह तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता। अर्थात् तीसरे भव तो अवश्य सिद्ध हो जाता है।

जिनके जीवन में संवेग जगा था, वे महाबल आदि सातों अनगार दीक्षा लेकर उग्र तप करके जयन्त नामक विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ महाबल के अतिरिक्त ६ अनगार जो जयन्त विमान में देव हुए हैं, उनकी स्थिति ३२ सागरोपम में कुछ कम थी, जबकि महाबल अनगार की स्थिति पूरे ३२ सागरोपम की थी। वे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए, वहाँ भी भगवान की वाणी के प्रति रस तथा भगवान को प्रश्न पूछने का रस उनके दिल में सतत रहता था। जीव के ५६३ भेद हैं। उनमें से एकान्त सम्यग्दृष्टि के कितने भेद हैं ? केवल १० भेद हैं। पाँच अनुत्तर विमानवासी देवों के पर्याप्ता और अपर्याप्ता। ऐसे उत्तम स्थान में सातों ही मुनिवर गए। वहाँ षड्द्रव्य, सप्तनय, निक्षेप एवं सप्तभंगी की चर्चा-विचारणा में उनका इतना सब समय कैसे व्यतीत होता है ? उसका पता नहीं लगता। हम किन्हीं भाइयों को कहते हैं कि "तुम्हारे पुत्र बड़े-बड़े हो गए हैं, वे घर और व्यापार का सब कामकाज बराबर संभाल रहे हैं, अतः आप अब संसार के कार्य से निवृत्ति लो।" तब वे कहते हैं - "महासतीजी ! आपकी बात सही है, परन्तु फिर हमारा टाइम कैसे पसार हो ?" जिसके जीवन में धर्म का रस नहीं है, श्रुतवाणी के प्रति प्रीति

मल्लिनाथ भगवान् माता के गर्भ में आए, तब कैसा योग था ? उस बात को बताते हुए भगवान् कहते हैं - *'सउणेसु जइएसु'* अर्थात् - कौए आदि पक्षीगण राजा आदि के लिए विजय-सूचक शब्दों का उच्चारण कर रहे थे । पवन भी दक्षिणावर्त होकर चल रही थी । वह शीतल, मंद और सुगन्ध से युक्त पवन अनुकूल मालूम होता था । वह पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ चल रहा था । ऐसा सुखद समय था, कि जिसमें निष्पन्न धान्य से मोहिनी पृथ्वी हरितिम आवरण से आवृत हो रही थी । जनपद भी हर्ष में सराबोर हो रहा था और भांति-भांति की क्रीड़ा में मस्त था । आधी रात का समय था । अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग हो रहा था । फाल्गुन मास का शुक्लपक्ष चल रहा था । यह महीना हेमन्त ऋतु के महीने में शरत्काल का चौथा महीना तथा आठवाँ पक्ष था । ऐसी फाल्गुन सुदी ४ के दिन आधीरात के समय महाबलदेव अपनी बत्तीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके उस जयन्त नामक विमान से च्यवकर प्रभावती देवी के गर्भ में स्थित हुए ।

बन्धुओं ! मल्लिनाथ भगवान् माता के गर्भ में आए, तब कैसा सुन्दर योग प्रवर्तमान था ? ऐसे पवित्र महान् पुरुषों का माता के गर्भ में आगमन होते ही सर्वत्र शान्ति का वातावरण छा जाता है । दुष्काल हो तो भी सुकाल में परिवर्तन हो जाता है । परस्पर क्लेश भी शान्त हो जाते हैं और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है । ऐसे महान् पुरुष को जिस माता के गर्भ में आकर जन्म होता है, वह माता भी धन्य-धन्य बन जाती है । सामान्य महान् पुरुष को जन्म देनेवाली माता भी जगत् में भाग्यशाली मानी जाती है, तो तीर्थंकर-प्रभु की माता तो उससे अनन्तगुणी पुण्यशालिनी और भाग्यशालिनी बन जाती है, इसमें क्या सन्देह है ? तीर्थंकर भगवान् की माता बनना कोई जैसी-तैसी बात नहीं है । प्रबल पुण्य का उदय होता है, तब तीर्थंकर-प्रभु की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है ।

जगत् में बहुत-सी बार पुरुष स्त्रियों को तुच्छ समझते-मानते हैं । पुरुषों को नारी कुछ कहने जाती है तो वे अहंकार के आवेश में कहते हैं - "अब बैठ-बैठ ! तू क्या करनेवाली थी ?" स्त्री को नीची माननेवालों ! जरा सोचो - तीर्थंकर को जन्म कौन देता है, उनकी माता या उनका पिता ? (हँसाहँस) तीर्थंकर-प्रभु को जन्म उनकी माता ही देती है । प्रत्येक जगह माताओं का बहुमान करने में आया है । दीपावली के दिनों में लक्ष्मीजी का पूजन होता है, विष्णु या शंकर का नहीं होता । बोलो, लक्ष्मीजी भी तो स्त्री ही हैं न ? हाँ, पूर्वभव में माया का सेवन किया, इस कारण स्त्री का अवतार (जन्म) मिला । परन्तु मोक्ष में जाने का अधिकार जितना पुरुष को है, उतना ही स्त्री को है । दोनों को मोक्ष में जाने का समान हक है । स्त्री हो, पुरुष हो या नपुंसक हो, वेद (काम) नष्ट होने के बाद अवेदी होने के पश्चात् मोक्ष में जाते हैं ।

जिसने-जिसने भागवती दीक्षा ली है, उस-उसने संयम लेने के लिए माता से आज्ञा मांगी है, ऐसा शास्त्रों में वर्णन आता है । जमालीकुमार, अयवंतामुनि, गजसुकुमार, थावच्चापुत्र आदि महान् साधकों ने जब प्रभु की वाणी सुनी और वैराग्य के रंग में रंजित हुए, तब माता के पास आज्ञा मांगते हुए, वे क्या कहते हैं ? एक कवि के शब्दों

प्रवृत्ति-निवृत्ति करोगे तो आत्मा में उल्लास आ जाएगा, इनके प्रति श्रद्धाभक्ति उमड़ेगी, इनका मातृवत्वात्सल्य मिलेगा। इनके आस्रय से कर्मों के टेकरे टूट जाएंगे। जैसे वह भोलाभाला निर्दोष बालक माता के वात्सल्य और प्रेम के पीछे सबकुछ भूल गया, वैसे ही अष्टप्रवचन-माता हमारी मैया है। इसके वात्सल्यवश हमें भी धन, वैभव, बंगले, फर्निचर आदि को संसार के खिलौने तथा विषयसुखों को जहर के मूल समझकर इनके प्रति आसक्ति, मोह, ममता आदि छोड़ देना है। सांसारिक सुखरूपी खिलौने व्यक्ति तभी भूल सकेगा, जब अष्ट प्रवचन-माता के प्रति उसे श्रद्धा-भक्ति और आदरभाव बढ़ेगा। प्रवचनमैया हमें जगाती है और कहती है -

चेतन जागो रे, हवे निद्रा बहु रे करी।
जगाड़े प्रवचन-माता, वीती गई हवे रात ॥... निद्रा...
धीमे धीमे रात वीती, उगी छे सवार, अनेकान्तनो अर्क रह्यो किरण प्रसार,
रह्यो समय सरी, गया दिन न आवे फरी, समक्षण धरी ले जरी।... चेतन...

हे चेतनदेव ! अब तू जाग। जैसे माता बालक के मस्तक पर वात्सल्यवश हाथ रखकर उसे जगाती है, और कहती है, "बेटा ! तू बहुत सो लिया। अब तू जाग जा।" उसी तरह प्रवचन-माता हमें जगाती है और कहती है - "मोहनिद्रा में बहुत सोते रहे, अब तो जागो। जीवन की बहुत-सी रातें बीत गई हैं। जो समय चला गया, वह पुनः आनेवाला नहीं है।" जन्म देनेवाली माता तो द्रव्यनिद्रा में से जगाती है, परन्तु यह प्रवचन-मैया भावनिद्रा से जगाती है। उस मैया की आराधना करने से आत्मा जन्म-मरण की श्रृंखला तोड़कर मोक्ष के शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकती है। जबकि जन्मदात्री माता दुर्गति में जाते हुए बचा नहीं सकती, न ही जन्ममरण की श्रृंखला तोड़कर मोक्ष-सुख को दिला सकती है। किन्तु प्रवचन-मातारूपी वाणी सुनने पर जीवन में से प्रमाद और विषय-वासना छूट जाने चाहिए और सांसारिक कर्मों को भूल जाना चाहिए।

७. मल्लिनाथ का अधिकार

सातों ही अनगार उग्र तप की साधना करके सर्वोच्च देवलोक में गए हैं। वे शास्त्र-सिद्धान्तरूपी वाणी की अमृतमयी घूंट पीकर और शुद्ध संयम पालकर गए हैं। इस कारण वहाँ भी ज्ञान-चर्चा में अपने संयम का सदुपयोग कर रहे हैं। उसमें भी ३२ सागरोपम की स्थिति कैसे पूरी हो गई ? इसका भी पता नहीं पड़ता। बन्धुओं ! पाँच अनुत्तर विमानवासी देव को ३२ हजार वर्ष में आहार की इच्छा होती है, परन्तु एक नवकारसी का लाभ उन्हें नहीं मिलता। यहाँ (मनुष्यभव में) एक नवकारसी करो, एक विगय का त्याग करो, ऊनोदरी, वृत्ति-संक्षेप, रस-परित्याग या उपवास आदि चाहे जो तप करो उससे कर्म की चट्टानें टूट सकती हैं। जबकि उन देवों को ३२ हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है, फिर इन पूर्वोक्त अनेक विधों में से एक भी तप में उनका नम्बर लग सकता है क्या ? नहीं। सम्यग्दृष्टि देव तो ऐसा विचार करते हैं कि धन्य है मानव को, जो अमूल्य

मल्लिनाथ भगवान् माता के गर्भ में आए, तब कैसा योग था ? उस बात को बताते हुए भगवान् कहते हैं - *'सउणेसु जइएसु'* अर्थात् - कौए आदि पक्षीगण राजा आदि के लिए विजय-सूचक शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। पवन भी दक्षिणावर्त होकर चल रही थी। वह शीतल, मंद और सुगन्ध से युक्त पवन अनुकूल मालूम होता था। वह पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ चल रहा था। ऐसा सुखद समय था, कि जिसमें निष्पन्न धान्य से मोहिनी पृथ्वी हरितिम आवरण से आवृत हो रही थी। जनपद भी हर्ष में सराबोर हो रहा था और भांति-भांति की क्रीड़ा में मस्त था। आधी रात का समय था। अश्विनी नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग हो रहा था। फाल्गुन मास का शुक्लपक्ष चल रहा था। यह महीना हेमन्त ऋतु के महीने में शरत्काल का चौथा महीना तथा आठवाँ पक्ष था। ऐसी फाल्गुन सुदी ४ के दिन आधीरात के समय महाबलदेव अपनी बत्तीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके उस जयन्त नामक विमान से च्यवकर प्रभावती देवी के गर्भ में स्थित हुए।

बन्धुओं ! मल्लिनाथ भगवान् माता के गर्भ में आए, तब कैसा सुन्दर योग प्रवर्तमान था ? ऐसे पवित्र महान् पुरुषों का माता के गर्भ में आगमन होते ही सर्वत्र शान्ति का वातावरण छा जाता है। दुष्काल हो तो भी सुकाल में परिवर्तन हो जाता है। परस्पर क्लेश भी शान्त हो जाते हैं और सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है। ऐसे महान् पुरुष को जिस माता के गर्भ में आकर जन्म होता है, वह माता भी धन्य-धन्य बन जाती है। सामान्य महान् पुरुष को जन्म देनेवाली माता भी जगत् में भाग्यशाली मानी जाती है, तो तीर्थंकर-प्रभु की माता तो उससे अनन्तगुणी पुण्यशालिनी और भाग्यशालिनी बन जाती है, इसमें क्या सन्देह है ? तीर्थंकर भगवान् की माता बनना कोई जैसी-तैसी बात नहीं है। प्रबल पुण्य का उदय होता है, तब तीर्थंकर-प्रभु की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

जगत् में बहुत-सी वार पुरुष स्त्रियों को तुच्छ समझते-मानते हैं। पुरुषों को नारी कुछ कहने जाती है तो वे अहंकार के आवेश में कहते हैं - "अब बैठ-बैठ ! तू क्या करनेवाली थी ?" स्त्री को नीची माननेवालों ! जरा सोचो - तीर्थंकर को जन्म कौन देता है, उनकी माता या उनका पिता ? (हँसाहँस) तीर्थंकर-प्रभु को जन्म उनकी माता ही देती है। प्रत्येक जगह माताओं का बहुमान करने में आया है। दीपावली के दिनों में लक्ष्मीजी का पूजन होता है, विष्णु या शंकर का नहीं होता। बोलो, लक्ष्मीजी भी तो स्त्री ही हैं न ? हाँ, पूर्वभव में माया का सेवन किया, इस कारण स्त्री का अवतार (जन्म) मिला। परन्तु मोक्ष में जाने का अधिकार जितना पुरुष को है, उतना ही स्त्री को है। दोनों को मोक्ष में जाने का समान हक है। स्त्री हो, पुरुष हो या नपुंसक हो, वेद (काम) नष्ट होने के बाद अवेदी होने के पश्चात् मोक्ष में जाते हैं।

जिसने-जिसने भागवती दीक्षा ली है, उस-उसने संयम लेने के लिए माता से आज्ञा मांगी है, ऐसा शास्त्रों में वर्णन आता है। जमालीकुमार, अयवंतामुनि, गजसुकुमार, थावच्चापुत्र आदि महान् साधकों ने जब प्रभु की वाणी सुनी और वैराग्य के रंग में [illegible] हुए, तब माता के पास आज्ञा मांगते हुए, वे क्या कहते हैं ? एक कवि के :

सासुजी को बाहर आने दो, मैं उन्हें हितशिक्षा के रूप में दो शब्द कहता जाऊँगा। परन्तु तुम इतना ध्यान रखना कि ये (सासुजी) जब भी तुम्हें कुछ कहें, तब तुम्हें सिर्फ ये दो शब्द कहने हैं।" यों कहकर कौन-से दो शब्द बोलने ? यह उसे (बहू को) बता दिया। थोड़ा टाइम हुआ, किन्तु सासुजी नहीं आई। इस सज्जन भाई को जाने की उतावल थी, इसलिए वह तो वहाँ से रवाना हो गए।

इस बात के डेढ़-दो वर्ष बाद पुनः इस गाँव में उस सज्जन भाई का इस घर में आगमन हुआ। वह सारे दिन रहे, किन्तु कोई खटपट या कलह जैसा कुछ भी नहीं देखा-सुना। भोजन करने के बाद वह सज्जन भाई आराम करने लगे, तभी सासुजी वहाँ आई और उस भाई के चरणों में पड़कर बोली - "भाई ! तेरे चरण धोकर पीऊँ तो भी कम है। तुझे पुत्र कहूँ, भाई कहूँ या पिता कहूँ, तू मेरे सर्वस्व है।" सज्जन ने पूछा - "क्यों, माँ ! क्या बात है ?" सासुजी बोली - "भाई ! तुम पहले यहाँ आए थे, तब मेरी पुत्रवधू को कौन-सा मंत्र दे गए कि वह तो देवी जैसी बन गई है। घर में तो मानो स्वर्ग उतर कर आया है, ऐसी अलौकिक शान्ति हो गई है। झगड़े का तो नामोनिशान नहीं है। घर में शान्ति-शान्ति हो गई है।" उस भाई ने पूछा -"मांजी ! क्या बात हुई ? आप किस तरह से देवी जैसी होने की बात कर रही हैं ?" सासु ने कहा - "तुम्हारे आने से पहले तो बहू से जरा-सी भूल या गलती हो जाती तो मैं गुस्से में आकर उसे उपलम्भ देती थी, तब वह झटके से मेरे सामने कितना ही अंटसंट बोलती और मुझे तमतमाती बातें सुनाती थी, परन्तु तुम्हारे जाने के बाद तुमने इसके कान में कौन-सा मंत्र फूंक दिया कि ऐसा चमत्कार हो गया कि सच्चा या झूठमूठ जब भी गुस्से में आकर कठोर शब्द सुनाती हूँ, तब यह दोनों हाथ जोड़कर नम्रता से विनयपूर्वक कहती है - 'हे पवित्र माँ ! आप पवित्र हैं। आप मुझे माता जैसी सासु मिली है। आप गुणी हैं, मैं दुर्गुणी हूँ, अपवित्र हूँ। फिर भी मेरी एक बात समझ लीजिए - मैं जैसी हूँ, वैसी हूँ, परन्तु आपके बेटे की बहू हूँ। मुझे आपको अपनी बेटी समझकर निभानी है। मुझे अपनी पुत्री समझकर सुधारना। मेरी भूल हो जाय, वहाँ मुझे टोकते रहना। आप क्षमावान् हैं। मैं क्रोधी और दोषों से भरी हूँ। मेरे कारण आपको क्रोध-अहंकारादि कषाय पैदा होता है। मुझे क्षमा करना।' बस इतना बोलने के सिवाय और कुछ नहीं बोलती। उसके इस कोमल और विनय भरे मीठे शब्दों से मेरा गुस्सा शान्त हो जाता। मुझे अपने मन में पछतावा होने लगा कि मैं तो जैसी थी, वैसी ही हूँ। बिना गलती के ही बहू से लड़ा करती; खटपट और क्लेश करती और उसका दोष निकालती थी। परन्तु बारबार बहू के मुख से ऐसे कोमल शब्द सुनने को मिले, तब मेरे मन में विचार स्फुरित होते कि मैं ही खोटी हूँ, बातबात में क्रोध करती हूँ। क्यों मैं अपनी बेटी पर जरा-जरा-सी बात में गुस्सा करती हूँ ? और तो और, बहू को तीखे तमतमाते हृदय-वेधक वचन सुनाती हूँ ? फिर भी सामने से अपूर्व शान्ति भरे वचन मिलते। तब से मेरा हृदय पसीज गया, और मेरे में बहुत परिवर्तन हो गया। उसके बाद तो बहू मुझे पुत्री की अपेक्षा भी विशेष प्रिय और एक देवी जैसी लगती है। मैं आपका बहुत-बहुत आभार मानती हूँ।" यह सब कैसे हुआ ? जब बहू ने 'आप

होगा। अवेदी-अविकारी बनना हो तो ब्रह्मचर्य का पालन अधिकाधिक करना होगा। (पू. महासतीजीने इस प्रसंग पर ब्रह्मचर्यव्रत पर सुन्दर दृष्टान्त सुनाया था।)

महाबल देव की आत्मा जयंत विमान से च्यवकर फाल्गुन सुदी ४ के दिन मध्यरात्रि के समय में मिथिला नगरी में कुम्भकराजा की प्रभावती नाम की रानी के उदर में आए। प्रभावती माता अत्यन्त पुण्यशालिनी है। तीर्थकर-प्रभु की माता बनने के लिए योग्यता प्राप्त करनी होती है। तीर्थकर-प्रभु के माता-पिता नियमतः भव्य और मोक्षमार्गी होते हैं। ऐसी पुण्यवती प्रभावती रानी के उदर में प्रबल-पुण्यवान् आत्मा आकर उत्पन्न हुआ है। अब प्रभावती रानी चौदह स्वप्न देखेगी, इसका भाव यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

नारदजी ने महाविदेहक्षेत्र में सीमंधरस्वामी की स्तुति की : नारदजी महाविदेहक्षेत्र में जाकर सीमन्धरस्वामी का समवसरण देखकर स्वयं को धन्य मानने लगे। तत्पश्चात् तीन प्रदक्षिणा करके मस्तक पर अंजलि करके नारदजी सीमन्धरस्वामी की स्तुति करने लगे -

"समस्त विघ्नों को दूर करनेवाले, कामदेव के मद को चूर करनेवाले, पूर्ण ज्ञान से सम्पन्न श्री सीमन्धरस्वामी को मेरा नमस्कार है। जो देवाधिदेव इन्द्रों से सेवित हैं। चन्द्र-कलाओं से परिपूर्ण होते हुए भी अपने कलंकों को दूर नहीं कर सकता। परन्तु हे प्रभो! आप तो मनुष्यों के कलंको को दूर करते हैं। आप तो दीन-दुःखियों के उपकारक हैं। सूक्ष्म वस्तुओं के प्रकाशक हैं। भव्य मनुष्य रूपी कमलों को विकसित करनेवाले हैं। संसारस्थ समस्त विषयों के प्रति उदासीन हैं। आप अशरण मनुष्यों के शरणदाता हैं। भूत-भविष्य-वर्तमान के संशय का छेदन करनेवाले हैं। हे नाथ! शेषनाग हजारों जिह्वाओं से भी आपके गुण-गान करने में असमर्थ हैं, फिर मैं अपनी एक जबान से आप के गुणों का वर्णन कैसे कर सकता हूँ? प्रभो! आपका दर्शन करके आज मैं धन्य बना हूँ। मेरा कितना, कैसा अहोभाग्य है कि इस समग्र विश्व में आपके अतिदुर्लभ दर्शन मुझे प्राप्त हुए हैं। आपके दर्शन से मेरा जीवन सार्थक हुआ।

भगवन्! आपके दर्शन पाकर मुझे अपार हर्ष है। वर्षाऋतु में मेघ के गर्जन और दर्शन से जैसे मयूर नाच उठते हैं, वैसे ही हे परमकृपालु प्रभो! आपके दर्शन और वाणी से मेरा हृदय-मयूर हर्ष से नाच उठता है। क्योंकि इस जगत् में आपसे बढ़कर दर्शनीय कोई पदार्थ नहीं है, कोई व्यक्ति नहीं है। आप तो अनन्य कोहीनूर हीरे जैसे हो। मेरे भगवन्! आपके सिवाय मुझे अपने मन-वचन-काया को कहाँ स्थिर करना होता है? हे परमात्मन्! प्रभो! ऐसे आप मुझे उत्कृष्ट नाथ मिले हैं, मार्गदर्शन और उद्धारक मिले हैं, मेरे भाग्य असीम हैं, उत्कृष्ट हैं। आज आपके दर्शन से मुझे अपार आनन्द हो रहा है, उससे बढ़कर स्वर्गीय आनन्द भी फीका है। मेरी अन्तरात्मा में उगे हुए कर्मों के दलि आपके दर्शन से प्राप्त अपार आनन्द से जलकर साफ हो जाएँगे। मोह को

ऐसे पुत्ररत्न की माता बना जाता है। अचल के जीव का नाम प्रतिबुद्धि था। दूसरा धरण अंगदेश का अधिपति हुआ। इसका नाम चन्द्रच्छाय रखा गया। तीसरा अभिचन्द्र का जीव काशीदेश का राजा हुआ। वहाँ वह शंख के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह काशीदेश बनारस (वाराणसी) नाम की नगरी है। चौथा पूरण का जीव कुणालदेश का अधिपति हुआ। वहाँ उसका नाम रुक्मी हुआ। कुणालदेश में श्रावस्ती नाम की नगरी है। पाँचवाँ वसु नाम का सख्स कुरुदेश का अधिपति हुआ। उसका नाम अदीनशत्रु हुआ। कुरुदेश में हस्तिनापुर नामक नगर है। छठ्ठा वैष्णव का जीव पांचालदेश का अधिपति बना। उसका नाम जितशत्रु हुआ। पांचालदेश में कपिला नाम की नगरी है। ये छहों जीव जबसे माता के गर्भ में आकर उत्पन्न हुए तब से माता की धर्मभावना बढ़ने लगी। उन्हें तप करने, सामायिक-प्रतिक्रमण आदि धर्मक्रिया करने का मन होता था। जब वे तप की बात सुनती, तब उन्हें तप करने के उत्कृष्ट भाव हो जाते। यह सब प्रभाव गर्भस्थ जीव का है।

'भगवती सूत्र' में गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया - "त्रिलोकीनाथ प्रभो ! गर्भस्थ जीव गर्भ में मरे तो क्या वह देवलोक में जा सकता है ?" उत्तर में भगवान ने कहा - "हाँ गौतम ! गर्भस्थ जीव तप की, ज्ञान की तथा संयम आदि की बातें सुनता है, तब वह सोचे कि मैं शीघ्र ही यहाँ से छूटूँ, तो फिर तप करूँगा, श्रावकव्रत ग्रहण करूँगा, संयममार्ग को अंगीकार करूँगा; ऐसे उत्कृष्ट भाव आए, और उस समय उसका आयुष्य पूर्ण हो जाए तो वह मरकर देवलोक में जा सकता है।" शुभ और शुद्ध भावना कितना सुन्दर कार्य करती है। ये ६ ही अनगार जयन्त विमान से च्यवकर अलग-अलग देशों में राजपद से सुशोभित हुए। प्रत्येक का राज्य अत्यन्त विशाल है। भौतिक सुख की कोई कमी नहीं है। महाबल अनगार ३२ सागरोपम का आयुष्य भोगकर वहाँ से च्यवकर भाग्यशाली पवित्र माता की कुक्षि में किस नगर में उत्पन्न होंगे ? इस बात पर यथावसर कहा जाएगा।

प्रद्युम्नकुमार का चरित्र

रुक्मिणी पुत्र के वियोग से बहुत विलाप करती हैं। रुक्मिणी जानती है कि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु एक दिन अवश्य होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। किन्तु यहाँ रुक्मिणी को एक और दुःख हो रहा है कि 'मेरा पुत्र जन्म लेकर कभी बीमार हुआ होता और गया होता तो मैं यों मान लेती कि जो होना था, सो हो गया। परन्तु इस प्रकार कोई उसका अपहरण करके ले जाए, वह कैसे सहा जा सकता है ? मैं जैसी-तैसी नहीं हूँ, मैं तो त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव की पटरानी हूँ। यों ही कैसे टाला जा सकता है, इस बात को ? मेरा पुत्र मुझे नहीं मिलेगा तो मैं अपने प्राण त्याग कर दूंगी।' यों रुक्मिणी कल्पान्त कर रही थी, इसी बीच वहाँ नारदजी आए। उन्होंने रुक्मिणी को बहुत आश्वासन देते हुए मधुर वचनों से कहा - "बेटी ! तू चिन्ता छोड़ दे। मैं तेरा पिता बैठा हूँ न ? तुझे रोने की आवश्यकता नहीं है। तेरा पुत्र कैसा प्रतापी और शक्तिशाली होगा ? यह मैं तुझे कहता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुन !

में सोये हुए हम जैसों को आज आपके दर्शन जगाकर ज्ञान और वैराग्य की नवचेतना प्रदान कर रहे हैं । प्रभो ! आपको कोटि-कोटि वन्दन ! एक आश्चर्यजनक बात यह है कि आप अनन्त ज्ञान सम्पन्न और गुणसम्पन्न होने पर भी मेरी स्तुतियों का स्वीकार करते हैं ।'' इस प्रकार भगवान् की स्तुति और वन्दना करके नारदजी विनयपूर्वक योग्य स्थान पर बैठ गए ।

अपने वामन शरीर को बचाने के लिए आश्रय लिया : भगवान् की वाणी की वर्षा हो रही है । सुनकर सबके हृदय हर्षित हो रहे हैं । वहाँ उपस्थित विशालकाय लोगों को देखकर नारदजी के मन में अपनी सुरक्षा की शंका उत्पन्न हुई । कवि के शब्दों में -

समवसरण (में) जिनवर दे देशना रे, बैठे सुरनर चक्रीश्वर राय रे,
सिंहासन - तल बैठे नारद मुनि रे, देखीने लोग अचंभो पाय रे...
यो है कोण जंतु मनुष्याकार का रे, हाथों पर ले ले निरखे लोग रे...

समवसरण में बैठने के बाद नारदजी के मन में विचार आया कि 'यहाँ के मनुष्यों का शरीर ५०० धनुष्य-प्रमाण होने पर भी अत्यन्त सुन्दर हैं और मैं तो दश धनुष्य की कायावाला हूँ । इनके देहमान के आगे मैं तो चींटी-मकोड़े जैसा हूँ । इन लोगों के पैर के नीचे कुचला जाऊँगा तो मर जाऊँगा । यद्यपि इनके पैर के नीचे कुचलाकर मरूँगा, तो सीमन्धर-प्रभु के समवसरण में उनके पास में मरूँगा, तो उत्तम आराधक बनूँगा । इसकी मुझे चिन्ता नहीं है । परन्तु मैं रुक्मिणी को उसके पुत्र का पता लगाने का वचन देकर आया हूँ, अगर ऐसे ही मर गया तो मेरे द्वारा दिया गया वचन व्यर्थ चला जाएगा । उसके लिए मुझे जीना जरूरी है ।' यों विचार करके नारदजी अपनी सुरक्षा करने हेतु सीमन्धर-प्रभु के सिंहासन के नीचे भाग में जाकर बैठ गए ।

नारदजी को देखकर पद्मचक्रवर्ती को हुई शंका और आश्चर्यमग्नता : नारदजी सीमन्धरस्वामी के सिंहासन के नीचे जाकर बैठे । इसलिए सभी लोगों का मुख उनके सामने हो गया । इस कारण सबकी दृष्टि उनकी ओर गई । वहाँ के पद्म नामक चक्रवर्ती भी प्रभु की देशना सुनने के लिए वहाँ आये हुए थे । प्रभु के सिंहासन के नीचे अदृष्टपूर्व स्वरूपवाले जीव को देखकर मन ही मन विचार करने लगे - 'देव, नारक, तिर्यंच और मनुष्य में यह कौन है ? यह किस जाति का पक्षी है ?' यों विचार करके नारदजी को चक्रवर्ती ने पक्षी की तरह अपने हाथ में ले लिया । हाथ में लेकर वे उन्हें (नारदजी को) रमाने (खेलाने) लगे । फिर उनके अंगोपांगों को कुतूहल-पूर्वक देखने लगे । यह किस प्रकार का जीव है ? इसकी कौन-सी योनि है ? इस विषय में चक्रवर्ती को तथा वहाँ बैठे हुए लोगों को शंका और कुतूहल हुआ । अब नारदजी का प्रश्न तो बाद में पूछा जाएगा। पहले पद्म चक्रवर्ती प्रभु को नारदजी के विषय में प्रश्न पूछेंगे और प्रभु नारदजी के विषय में उनका स्पष्ट समाधान करेंगे । इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे ।

॥ ॐ शान्तिः ॥

卐 व्याख्यान क्रमांक ४९ से १०९ तक देखिये द्वितीय भाग 卐

अत्यन्त मनोहारी प्रतीत हो रही थी । समवसरण की अपूर्व शोभा देखकर नारदजी आश्चर्यचकित हो गए ।

नारदजी ने अपने आपको धन्य माना : यहाँ आकर नारदजी अपने आपको धन्य मानने लगे कि अहो ! रुक्मिणी का पुत्र कैसा पुण्यवान् है कि जिसके निमित्त से मैं यहाँ आया और कृत-कृत हो गया । मैं भी कि भरतक्षेत्र में रहने पर भी आज मैंने अपनी आँखों से इस समवसरण का दर्शन किया । विष्णु के साथ मेरी मित्रता अत्यन्त लाभदायी सिद्ध हुई । रुक्मिणी के पुत्र का दुःखदायी अपहरण मेरे लिए सुखदायी सिद्ध हुआ, क्योंकि उसके पुत्र का पता लगाने के लिए मैं यहाँ आया हूँ । यहाँ आकर समवसरण को देखकर मैंने अपनी आँखों को तथा जिन्दगी को पवित्र बनाई है । इस प्रकार नारदजी अपने आपको धन्य मान रहे हैं । अब नारदजी सीमन्धरस्वामी की स्तुति करके फिर उन्हें किस प्रकार प्रश्न पूछेंगे तथा वहाँ क्या होगा ? इसका भाव यथावसर कहा जाएगा ।

व्याख्यान - ४८

श्रावण वदी १२, शनिवार — ता. २१-८-७६

सुसंस्कारों की छाया में सर्वांगीण विकास के स्रोत

सुज्ञ बन्धुओं ! सुशील माताओं और बहनों !

अनन्तकरुणा के सागर, समता के आगर, क्षमासिन्धु और जगत् के स्वरूप को हस्तरेखा की तरह प्रत्यक्ष द्रष्टा शासनपति वीतराग-प्रभु ने भव्यजीवों के कल्याण के लिए दिव्य देशना दी ।

आपके समक्ष मल्लिनाथ भगवान् का वर्णन चल रहा है । उसमें महाबल अनगार के सिवाय बाकी के ६ अनगार बत्तीस सागरोपम से कुछ कम स्थिति भोगकर जयन्त विमान से च्यवकर बड़े रजवाड़ों में राजरानियों के गर्भ में आकर राजकुमार के रूप में जन्मे । अब बाकी रहे, उन ६ अनगारों के नायक जो महाबल अनगार थे, वह जयन्त विमान में बत्तीस सागरोपम की पूर्ण स्थिति से उत्पन्न हुए । वे वहाँ से च्यवकर कहाँ आते हैं ? यह बात कहनी बाकी है ।

बन्धुओं ! चाहे जितना महान् तैतीस या बत्तीस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देव हो, तो भी उसका आयुष्य पूर्ण होने पर वहाँ से च्यवन करना ही पड़ता है । देवों की ऋद्धि और देवों का स्थान शाश्वत है । परन्तु वहाँ रहनेवाले देव शाश्वत नहीं हैं । देवों की पहचान कैसे की जाती है ? इसका निरूपण 'व्यवहार सूत्र' में भगवद्वाणी के सन्दर्भ में कहा गया है -

जिंदगी में आत्मसाधना करने का अमूल्य अवसर चूक जाना ? इस अवसर को चूक जाओगे तो बार-बार यह अवसर नहीं मिलेगा ।

बन्धुओं ! इन संसार भावों की अनित्यता पर तो विचार करो, ज्ञानीपुरुष कहते हैं - *"यैः समं क्रीड़िता यैश्च भृशमीडिताः"* इसका तात्पर्य यह है कि जीव जिन-जिन गतियों में गया, जिन-जिन के साथ बाल्यक्रीडा की, तथा कामक्रीड़ा की, एवं व्यापार में जिन्होंने सहयोग देकर लाखों का मुनाफा कराया, ऐसे सेठ-साहूकार के बहुतवार गुण गाए । तथा जिन्हें अपने स्वजन, स्नेही और सम्बन्धी मानकर स्नेह से बातें की, वे सब भी एक दिन छोड़कर चले जाते हैं । अपनी सगी आँखों से उनकी काया चिता में जलकर भस्म होती देखने पर भी जीव को क्या अपने आप का विचार आता है कि मैं भी एकदिन इन सब की तरह सबकुछ छोड़कर चला जाऊँगा ? मेरी काया भी एक दिन राख हो जाएगी ? जब आयुष्य पूर्ण हो जाएगा, तब एक दिन सब कुछ छोड़कर जाना है । यह जानते हुए भी तथा जो चले गए उनकी काया की राख होती आँखें से देखने पर भी जीव को ममत्व नहीं छुटता । दूसरे की काया की राख होती देखकर अपना (अपनी आत्मा का) विचार आएगा तो भी परलोक सुधर जाएगा ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महाबल अनगार जयंत विमान से ३२ सागरोपम की स्थिति पूरी करके वहाँ से च्यवकर मति, श्रुत अवधिज्ञान, इन तीन ज्ञानों को ग्रहण करके जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में कहाँ, किसकी कुक्षि में उत्पन्न हुई ? शास्त्रकार कहते हैं -

मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रन्नो पभावइए देवीए कुच्छिं सि...

मिथिला राजधानी में कुम्भकराजा की प्रभावती देवी के उदर में *आहार वक्कंतीए* आहार के परिवर्तन से - मानवोचित आहार के ग्रहण से, *सरीर-वक्कंतीए* शरीर की व्युत्क्रान्ति से, अर्थात् - देवशरीर के परिवर्तन से, *भव-वक्कंतीए* - भव की व्युत्क्रान्ति से - देवभव को छोड़कर मनुष्यभव को ग्रहण करने की अपेक्षा से गर्भरूप में जन्म पाया ।

जब वह प्रभावती देवी के उदर में गर्भरूप में अवतरित हुए, तब सूर्य आदि ग्रह उच्चस्थान में थे । चारों दिशाएँ दिग्दाह वगैरह उपद्रवों से रहित थीं । तीर्थंकर के प्रभाव से दिशाएँ प्रकाशयुक्त तथैव झंझावात रजकण वगैरह से रहित होकर स्वच्छ हो गईं ।

देवानुप्रियों ! विचार करो इस पृथ्वी पर कितने ही जीव देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ में, अधिकांशतः सामान्य जीव आते हैं । विशिष्ट पुरुषों में चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आते हैं, परन्तु इन सबसे तीर्थंकर भगवान् श्रेष्ठ हैं । ऐसे महान् पुरुषों का इस पृथ्वी पर अवतरण होता है, तब कैसे सुन्दर योग होते हैं । गाढ तिमिर दूर होकर पृथ्वी पर विलक्षण प्रकाश फैलता है, रोग आदि उपद्रव भी शान्त हो जाता है । शान्तिनाथ भगवान् जब माता के गर्भ में आए, तब महामारी जैसा महारोग भी शान्त हो गया था ।

जिंदगी में आत्मसाधना करने का अमूल्य अवसर चूक जाना ? इस अवसर को चूक जाओगे तो बार-बार यह अवसर नहीं मिलेगा ।

बन्धुओं ! इन संसार भावों की अनित्यता पर तो विचार करो, ज्ञानीपुरुष कहते हैं - *"यै: समं क्रीड़िता यैश्च भृशमीडिता:"* इसका तात्पर्य यह है कि जीव जिन-जिन गतियों में गया, जिन-जिन के साथ बाल्यक्रीडा की, तथा कामक्रीड़ा की, एवं व्यापार में जिन्होंने सहयोग देकर लाखों का मुनाफा कराया, ऐसे सेठ-साहूकार के बहुतवार गुण गाए । तथा जिन्हें अपने स्वजन, स्नेही और सम्बन्धी मानकर स्नेह से बातें की, वे सब भी एक दिन छोड़कर चले जाते हैं । अपनी सगी आँखों से उनकी काया चिता में जलकर भस्म होती देखने पर भी जीव को क्या अपने आप का विचार आता है कि मैं भी एकदिन इन सब की तरह सबकुछ छोड़कर चला जाऊँगा ? मेरी काया भी एक दिन राख हो जाएगी ? जब आयुष्य पूर्ण हो जाएगा, तब एक दिन सब कुछ छोड़कर जाना है । यह जानते हुए भी तथा जो चले गए उनकी काया की राख होती आँखें से देखने पर भी जीव को ममत्व नहीं छुटता । दूसरे की काया की राख होती देखकर अपना (अपनी आत्मा का) विचार आएगा तो भी परलोक सुधर जाएगा ।

भ. मल्लिनाथ का अधिकार

महाबल अनगार जयंत विमान से ३२ सागरोपम की स्थिति पूरी करके वहाँ से च्यवकर मति, श्रुत अवधिज्ञान, इन तीन ज्ञानों को ग्रहण करके जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में कहाँ, किसकी कुक्षि में उत्पन्न हुई ? शास्त्रकार कहते हैं -

मिहिलाए रायहाणीए कुंभगस्स रण्णो पभावइए देवीए कुच्छिं सि...

मिथिला राजधानी में कुम्भकराजा की प्रभावती देवी के उदर में *आहार वक्कंतीए* आहार के परिवर्तन से - मानवोचित आहार के ग्रहण से, *सरीर-वक्कंतीए* शरीर की व्युत्क्रान्ति से, अर्थात् - देवशरीर के परिवर्तन से, *भव-वक्कंतीए* - भव की व्युत्क्रान्ति से - देवभव को छोड़कर मनुष्यभव को ग्रहण करने की अपेक्षा से गर्भरूप में जन्म पाया ।

जब वह प्रभावती देवी के उदर में गर्भरूप में अवतरित हुए, तब सूर्य आदि ग्रह उच्चस्थान में थे । चारों दिशाएँ दिग्दाह वगैरह उपद्रवों से रहित थीं । तीर्थंकर के प्रभाव से दिशाएँ प्रकाशयुक्त तथैव झंझावात रजकण वगैरह से रहित होकर स्वच्छ हो गई ।

देवानुप्रियों ! विचार करो इस पृथ्वी पर कितने ही जीव देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ में, अधिकांशत: सामान्य जीव आते हैं । विशिष्ट पुरुषों में चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव आते हैं, परन्तु इन सबसे तीर्थंकर भगवान् श्रेष्ठ हैं । ऐसे महान् पुरुषों का इस पृथ्वी पर अवतरण होता है, तब कैसे सुन्दर योग होते हैं । गाढ तिमिर दूर होकर पृथ्वी पर विलक्षण प्रकाश फैलता है, रोग आदि उपद्रव भी शान्त हो जाता है । शान्तिनाथ भगवान् जब माता के गर्भ में आए, तब महामारी जैसा महारोग भी शान्त हो गया था ।

ाचुं समजाणुं रे... संतोनी वाणी थी।
कर्मो भमावे मने भव-भवमां (२) मने साचुं समजाणुं रे... ॥ध्रुव॥
ावरनो अवतार कालां कर्मोथी (२) मले इयळतणो अवतार काला कर्मोथी।
री-फरी (२) आवा अवतार, काळा कर्मोथी (२)
पाप करे खून खून, दुःख मळे गलाडून चोक्खु वंचाणुं रे...
े मने चोक्खुं वंचाणुं रे... मने साचुं समजाणुं रे, संतोनी वाणी थी...

का भावार्थ यह है - मैंने भगवान् की वाणी सुनी। अब मुझे संसार के स्वरूप र्थ भान हुआ। अनन्तकाल से आत्मा पाप के पोटले बांधकर एक गति से दूसरी परिभ्रमण करता है। अब संसार में रहकर मुझे पाप की गांठे नहीं बांधनी है और -भव में भ्रमण करना है। अनन्तकाल से अज्ञान के कारण विषयभोगों का करके मैंने भूल की, परन्तु अब मुझे ऐसी भूल का शिकार नहीं बनना है। तुम बहुत होशियार हो। व्यापार में एक बार ठगा जाते हो, तो पुनः न ठगे जाओ ाए कितनी सावधानी रखते हो? एक बार ट्रेन में मुसाफिरी करते हुए बेग कोई ाए, अथवा जेब कट जाए तो, दूसरी बार ऐसा न हो, इसके लिए कितने सजग धान रहते हो? उतनी सावधानी आत्मा चार गतियोंवाले संसार में खो न जाए, ाए रखते हो क्या? छोटे-छोटे बालक भी जब विरक्त और प्रतिबुद्ध हो जाते, ा को ये बातें बेधड़क कह देते थे। हमने पूर्वभवों में ऐसे घोरकर्म किये कि ारण यह आत्मा नरक और तिर्यच जैसी अशुभ गति और योनि में गई और वहाँ सह्य दुःख सहे। भगवान् का समागम होने पर हमें संसार के स्वरूप का भान है। अतः हे माता! मुझे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दो। अन्त में पुत्रों का य देखकर उन माताओं को भी उन्हें दीक्षा की आज्ञा देनी पड़ती थी।

ुओं! ऐसी भाग्यशाली और सुसंस्कारी संतान कब बनती है? जब ये माताएँ ीवन में सुसंस्कारों का सिंचन करके पुत्र के जीवन का निर्माण करती है। कहावत शिक्षक जो निर्माण नहीं कर सकते, वह एक माता करती है।' आज अधिकांश यों बिगड़ती हैं? माता-पिता प्रायः सैर-सपाटे करने में, नाटक-सिनेमा, टी.वी. खने में, शरीर की साजसज्जा करने में और भोग-विलास में मस्त हो गये हैं, फिर क का जीवननिर्माण कैसे कर सकते हैं? अगर माताएँ मौज-शौक छोड़कर के जीवन में सुसंस्कारों का सिंचन करें, संतान सुखी हों, साथ ही माता-पिता हों। तुम अपनी संतानों के जीवन का ऐसा निर्माण करो कि वह संतान भविष्य सुखी हो और माता-पिता के नाम को जगत् के कोने-कोने में गूंजा दें। भगवान् वामी जगत् के कोने-कोने में विचरण कर रहे थे, उस समय जो प्रभु के माता- परिचित थे, वे भगवान् को जब सम्बोधन करते थे, तब वे कहते थे - पधारो , त्रिशलानन्दन! यह है माता की विशेषता! अतः तुम स्त्रीजाति को हलकी और त मानो! वेद (कामवासना) का क्षय न हो, तबतक केवलज्ञान प्राप्त नहीं

में सोये हुए हम जैसों को आज आपके दर्शन जगाकर ज्ञान और वैराग्य की नवचेत
प्रदान कर रहे हैं। प्रभो ! आपको कोटि-कोटि वन्दन ! एक आश्चर्यजनक बात
है कि आप अनन्त ज्ञान सम्पन्न और गुणसम्पन्न होने पर भी मेरी स्तुतियों का स्वीक
करते हैं।" इस प्रकार भगवान् की स्तुति और वन्दना करके नारदजी विनयपूर्व
योग्य स्थान पर बैठ गए।

अपने वामन शरीर को बचाने के लिए आश्रय लिया : भगवान् की वाणी
वर्षा हो रही है। सुनकर सबके हृदय हर्षित हो रहे हैं। वहाँ उपस्थित विशालकाय लो
को देखकर नारदजी के मन में अपनी सुरक्षा की शंका उत्पन्न हुई। कवि के शब्दों मे

समवसरण (में) जिनवर दे देशना रे, बैठे सुरनर चक्रीश्वर राय रे,
सिंहासन - तल बैठे नारद मुनि रे, देखीने लोग अचंभो पाय रे...
यो है कोण जंतु मनुष्याकार का रे, हाथों पर ले ले निरखे लोग रे...

समवसरण में बैठने के बाद नारदजी के मन में विचार आया कि 'यहाँ के मनुष
का शरीर ५०० धनुष्य-प्रमाण होने पर भी अत्यन्त सुन्दर है और मैं तो दश धनुष्य
कायावाला हूँ। इनके देहमान के आगे मैं तो चींटी-मकोड़े जैसा हूँ। इन लोगों के
के नीचे कुचला जाऊँगा तो मर जाऊँगा। यद्यपि इनके पैर के नीचे कुचला
मरूँगा, तो सीमन्धर-प्रभु के समवसरण में उनके पास में मरूँगा, तो उत्तम आराध
बनूँगा। इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। परन्तु मैं रुक्मिणी को उसके पुत्र का पता लग
का वचन देकर आया हूँ, अगर ऐसे ही मर गया तो मेरे द्वारा दिया गया वचन व्यर्थ च
जाएगा। उसके लिए मुझे जीना जरूरी है।' यों विचार करके नारदजी अपनी सुर
करने हेतु सीमन्धर-प्रभु के सिंहासन के नीचे भाग में जाकर बैठ गए।

नारदजी को देखकर पद्मचक्रवर्ती को हुई शंका और आश्चर्यमग्नता : नारद
सीमन्धरस्वामी के सिंहासन के नीचे जाकर बैठे। इसलिए सभी लोगों का मुख उन
सामने हो गया। इस कारण सबकी दृष्टि उनकी ओर गई। वहाँ के पद्म नामक चक्रव
भी प्रभु की देशना सुनने के लिए वहाँ आये हुए थे। प्रभु के सिंहासन के नीचे अदृष्टपू
स्वरूपवाले जीव को देखकर मन ही मन विचार करने लगे – 'देव, नारक, तिर्यच अ
मनुष्य में यह कौन है ? यह किस जाति का पक्षी है ?' यों विचार करके नारदजी
चक्रवर्ती ने पक्षी की तरह अपने हाथ में ले लिया। हाथ में लेकर वे उन्हें (नारदजी को
रमाने (खेलाने) लगे। फिर उनके अंगोपांगों को कुतूहल-पूर्वक देखने लगे। यह कि
प्रकार का जीव है ? इसकी कौन-सी योनि है ? इस विषय में चक्रवर्ती को तथा व
बैठे हुए लोगों को शंका और कुतूहल हुआ। अब नारदजी का प्रश्न तो बाद में पू
जाएगा। पहले पद्म चक्रवर्ती प्रभु को नारदजी के विषय में प्रश्न पूछेंगे और प्रभु नारद
के विषय में उनका स्पष्ट समाधान करेंगे। इसके भाव यथावसर कहे जाएँगे।

॥ ॐ शान्तिः ॥

卐 *व्याख्यान क्रमांक ८९ से १०९ तक देखिये द्वितीय भाग* 卐